हिन्दी में
विज्ञान लेखन के सौ वर्ष

(द्वितीय खंड)

संपादक
डा. शिवगोपाल मिश्र

हिन्दी में
विज्ञान लेखन के सौ वर्ष
(द्वितीय खंड)

संपादक

डा. शिवगोपाल मिश्र

विज्ञान प्रसार

प्रकाशक

विज्ञान प्रसार

सी-24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया
नई दिल्ली-110 016
पंजीकृत कार्यालय : टेक्नोलॉजी भवन, नई दिल्ली-110 016
फोन : 26967532 फैक्स : 26965986
ई-मेल : vigyan@hub.nic.in
इंटरनेट : http://www.vigyanprasar.com

हिन्दी में विज्ञान लेखन के सौ वर्ष (द्वितीय खंड)

संपादक : **डॉ. शिवगोपाल मिश्र**

विज्ञान प्रसार द्वारा प्रायोजित परियोजना के अन्तर्गत प्रकाशित

परियोजना समन्वयक : *डॉ. सुबोध महंती, डॉ. हरिकृष्ण देवसरे*

शब्द-संसाधन एवं पृष्ठ-संयोजन : सुभाष भट्ट

प्रथम संस्करण, 2003

ISBN: 81-7480-092-1

HINDI MEIN VIGYAN LEKHAN KE SAU VARSH (Hundred years of Science Writing in Hindi : 1850-1950) : *An Anthology of selected articles on Popular Science* : (Vol. 2)
Editor : Dr. Shiv Gopal Mishra : Published by : Vigyan Prasar, New Delhi : 2003
Price : Rs. 250.00

मूल्य : 250 रुपए

मुद्रक : नागरी प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली – 110032

निदेशक की ओर से

"हिन्दी में विज्ञान लेखन के सौ वर्ष", भारतीय भाषाओं में विगत सौ वर्षों में हुए विज्ञान लेखन को प्रलेखित करने की एक महत्वपूर्ण परियोजना है। इसका उद्देश्य है – विभिन्न भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन की परंपरा का शुभारंभ, उसके कारणों को तलाशना तथा साहित्यिक और वैज्ञानिक पत्रिकाओं की खोज करना एवं उनमें प्रकाशित विज्ञान विषयक सामग्री का अवगाहन, लिप्यंतरण एवं विश्लेषण करके ऐसे मानक निबंधों का चुनाव करना जो विगत सौ वर्षों के विज्ञान लेखन का प्रतिनिधित्व कर सकें। हिन्दी में 'विज्ञान लेखन के सौ वर्ष' परियोजना विज्ञान प्रसार ने, विज्ञान परिषद्, प्रयाग को सौंपी थी। डॉ. शिवगोपाल मिश्र के निर्देशन में इस परियोजना के अन्तर्गत सन् 1850 से 1950 की अवधि में विभिन्न हिन्दी पत्रिकाओं में प्रकाशित एक सौ साठ लेखों को अंतिम रूप से चुना गया था। उन लेखों को दो खण्डों में विभक्त किया गया – मूलभूत विज्ञान और जीवनोपयोगी विज्ञान। प्रथम खण्ड में भौतिकी, रसायन, नक्षत्र विज्ञान आदि विषयों का समावेश किया गया था। यह खण्ड सन् 2001 में प्रकाशित हो चुका है। हमें हर्ष है कि प्रथम खण्ड का हिन्दी जगत ने भरपूर स्वागत किया और इससे हमारा उत्साह द्विगुणित हुआ है।

अब 'हिन्दी में विज्ञान लेखन के सौ वर्ष' का द्वितीय खण्ड प्रकाशित हो रहा है। इस खण्ड में जीवनोपयोगी विज्ञान के अन्तर्गत कृषि, स्वास्थ्य, उद्योग विषयक निबंध एवं जीवनियां सम्मिलित की गई हैं। हमें आशा है कि प्रथम खण्ड की भांति इस द्वितीय खण्ड का भी हमारे सुधी पाठक स्वागत करेंगे।

वसंत पंचमी
6 फरवरी 2003

विनय बी. काम्बले
निदेशक, विज्ञान प्रसार

विषय–सूची

द्वितीय खण्ड

जीवनोपयोगी विज्ञान

हरिद्वार*

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

श्रीमान् क.व.सु. संपादक महोदयेषु!

श्री हरिद्वार को रुड़की के मार्ग से जाना होता है। रुड़की शहर अंगरेजों का बसाया हुआ है। इसमें दो तीन वस्तु देखने योग्य हैं एक तो (कारीगरी) शिल्प विद्या का बड़ा कारखाना है जिसमें जल चक्की, पवन चक्की और भी कई बड़े बड़े चक्र अनवर्त[1] खचक्र[2] में सूर्य, चंद्र, पृथ्वी, मंगल आदि ग्रहों की भांति फिरा करते हैं और बड़ी बड़ी धरन ऐसी सहज में चिर जाती हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। बड़े बड़े लोहे के खंभे एक क्षण में ढल जाते हैं और सैकड़ों मन आटा घड़ी भर में पिस जाता है। जो बात है आश्चर्य की है। इस कारखाने के सिवा यहाँ सबसे आश्चर्य श्री गंगाजी की नहर है, पुल के ऊपर से तो नहर बहती है और नीचे से नदी बहती है। यह एक बड़े आश्चर्य का स्थान है। इसके देखने से शिल्प–विद्या का बल और अंगरेजों का चातुर्य और द्रव्य का व्यय प्रगट होता है। न जांने वह पुल कितना दृढ़ बना है कि उस पर से अनवर्त कई लाख मन वरन् करोड़ मन जल बहा करता है और वह तनिक नहीं हिलता। स्थल में जल कर रक्खा है। और स्थानों में पुल के नीचे से नाव चलती है यहाँ पुल के ऊपर नाव चलती है और उसके दोनों ओर गाड़ी जाने का मार्ग है और उसके पहले सिरे पर चूने के सिंह बहुत ही बड़े बड़े बने हैं। हरिद्वार का एक मार्ग इसी नहर की पटरी पर से है और मैं इसी मार्ग से गया था।

विदित हो कि यह श्री गंगाजी की नहर हरिद्वार से आई है और इसके लाने में यह चातुर्य किया है कि इसके जल का वेग रोकने के हेतु इसको सीढ़ी की भाँति लाए हैं। कोस कोस डेढ़ डेढ़ कोस पर बड़े बड़े पुल बनाये हैं वही मानो सीढ़ियाँ हैं और प्रत्येक पुल के ताखों[3] से जल को नीचे उतारा है। जहाँ जहाँ जल को नीचे उतारा है वहाँ बड़े बड़े सीकड़ों[4] में कसे हुए दृढ़ तखते[5] पुल के ताखों के मुँह पर लगा दिये हैं और उनके खींचने के हेतु ऊपर चक्कर रक्खे हैं। उन तखतों से ठोकर खाकर पानी नीचे गिरता है वह शोभा देखने योग्य है। एक तो उसका महान शब्द दूसरे उसमें से फुहारे की भाँति जल का उबलना और छीटों का उड़ना मन को बहुत लुभाता है और जब कभी जल विशेष लेना होता है तो तखतों को उठा लेते हैं। फिर तो इस वेग से जल गिरता है जिसका वर्णन नहीं हो सकता। और ये मल्लाह दुष्ट वहाँ भी आश्चर्य करते हैं कि उस जल पर से नाव को उतारते हैं या चढ़ाते हैं। जो नाव उतरती है तो यह ज्ञात होता है कि नाव पाताल को गई पर वे बड़ी सावधानी से उसे बचा लेते हैं और क्षण मात्रा में बहुत दूर निकल जाती है पर चढाने में बड़ा परिश्रम होता है। यह नाव का उतरना चढ़ना भी एक कौतुक ही समझना चाहिए।

---

* कविवचन सुधा, 30 अप्रैल 1871

इसके आगे और भी आश्चर्य है कि दो स्थान नीचे तो नहर है और ऊपर से नदी बहती है। वर्षा के कारण वे नदियाँ क्षण में तो बड़े वेग से बढ़ती थीं और क्षण भर में सूख जाती हैं। और भी मार्ग में जो नदी मिली उनकी यही दशा थी। उनके करारे[6] गिरते थे तो बड़ा भयंकर शब्द होता था और वृक्षों को जड़ समेत उखाड़ उखाड़ के बहाये लाती थी। वेग ऐसा कि हाथी न सम्हल सके पर आश्चर्य यह है कि जहाँ अभी डुबाव था वहां थोड़ी देर पीछे सूखी रेत पड़ी है और आगे एक स्थान पर नदी और नहर को एक में मिला के निकाला है। यह भी देखने योग्य है। सीधी रेखा की चाल से नहर आई है और बेंड़ी[7] रेखा की चाल से नदी गई है। जिस स्थान पर दोनों का संगम है वहाँ नहर के दोनों ओर पुल बने हैं और नदी जिधर गिरती है उधर कई द्वार बनाकर उसमें काठ के तखते लगाये हैं जिससे जितना पानी नदी में जाने देना चाहें उतना नदी में और जितना नहर में छोड़ना चाहें उतना नहर में छोड़ें।

जहाँ से नहर श्री गंगाजी में से निकाला है वहाँ भी ऐसा ही प्रबंध है और गंगाजी नहर में पानी निकल जाने से दुबली और छिछली हो गई हैं परन्तु जहाँ नील धारा आ मिली है वहाँ फिर ज्यों की त्यों हो गई है।

हरिद्वार के मार्ग में अनेक प्रकार के वृक्ष और पक्षी देखने में आए। एक पीले रंग का पक्षी छोटा बहुत मनोहर देखा गया। बया एक छोटी चिड़िया है उसके घोंसले बहुत मिले। ये घोंसले सूखे बबूल काँटे के वृक्ष में हैं और एक एक डाल में लड़ी की भांति बीस बीस तीस तीस लटकते हैं। इन पक्षियों की शिल्प विद्या तो प्रसि ही है लिखने का कुछ काम नहीं ह इसी से इनका सब चातुर्य प्रगट है कि सब वृक्ष छोड़ के कांटे के वृक्ष में घर बनाया है। इसके आगे ज्वालापुर और कनखल और हरिद्वार है।

आपका मित्र
यात्री

---

1. अनवरत 2. आकाश रूपी चक्र 3. दरवाजों 4. जंजीरों
5. पल्ले 6. किनारे, कगार 7. तिरछी

पेट की आत्म कहानी*

महेन्दुलाल गर्ग

शरीर नामी टापू के बीचोंबीच मेरी बस्ती है। आस पास और भी कई बस्तियां हैं जिनसे मेरा बड़ा लेन देन रहता है। हम सब एक दूसरे की सहायता करना ही अपना धर्म समझते हैं। जब तक आप हमारे परकोटे को भेदकर हमारा भेद न देख लें तब तक मैं अपना पूर्ण वृत्तान्त नहीं समझा सकता। तो भी आज आप को दो चार बातें कहनी हैं। हमारे यहां ऋतु सदा मनोभाविनी बनी रहती है; सर्दी तो कभी पड़ती ही नहीं; और न खुश्की आती है। मेरे एक गांव का नाम "आमाशय" है जो ठाकुर "पाचन" सिंह जी की ज़मीदारी का सदर मुक़ाम है। ज़मीदारी भर में इस गांव से बड़ा और कोई मौज़ा नहीं है। इसी गाँव से लगा हुआ "यकृत" — गिरि नाम का एक बड़ा पहाड़ है जहां से "पित्त" — गंगा निकल कर "आमाशय" से कुछ ही दूर आगे "पाचन" — सिंह की ज़मीदारी में आ बहती है।
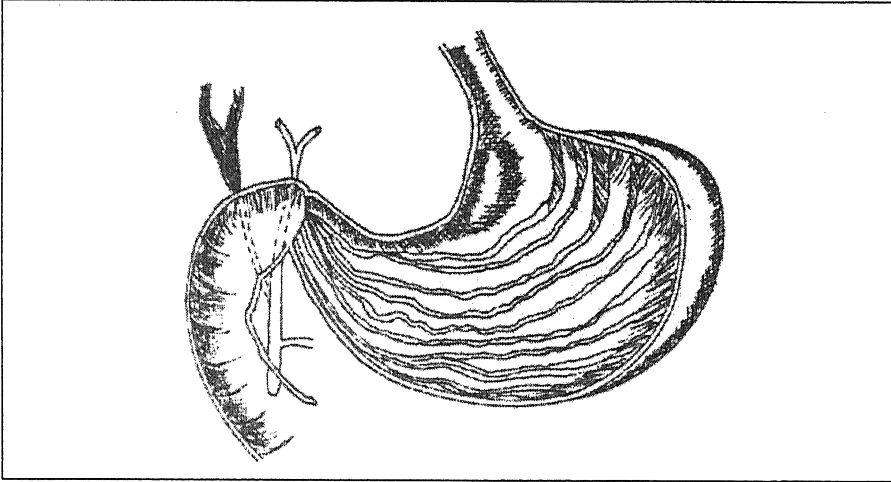
"आमाशय" से नीचे एक और पहाड़ी है जिस को अंग्रेज लोग "पेंक्रियास" कहते हैं। "पित्त" — गंगा की भांति इससे भी एक झरना आता है। बाबू "रक्त" — नाथ की जमीदारी भी इसी टापू[1] में है और "हृदय" — पुर गांव उनका सदर मुक़ाम है। इस गाँव में रात दिन भूचाल सा हुआ करता है। एक घड़ी भी शान्ति नहीं देखी जाती। गांव गूंजता रहता है। मैं "आमाशय" गाँव की बात कर रहा

---

* *सरस्वती*, सितम्बर 1904

था। इस टापू भर को भोजन पहुँचाने का काम ठाकुर "पाचन" सिंह की जमींदारी में होता है जिस का बड़ा कारखाना "आमाशय" में है। संसार भर के बड़े बड़े विद्वानों ने यह चेष्टा की कि इस टापू को रसद पहुंचाने का कोई और भी उपाय हो य परन्तु इस घड़ी तक "आमाशय" के बिना और कोई उपाय किसी को नहीं सूझा है। न जाने, कहां कहां से माल इकट्ठा होकर इस टापू के पास लाया जाता है और मुख "पुरी" — में आकर उतरता है। यहां चक्कियां (दांत) लगी हुई हैं; वे उस माल को एक प्रकार के जल से भिगो भिगो कर पीसती हैं। माल की जांच के लिये यहां एक परीक्षक है जिसका नाम हमने "रसना"[2] — शाह सुना है। वह माल को खूब चख कर तब आगे को रवाने करता है। फिर वह एक नहर द्वारा "आमाशय" में पहुँचता है। यहां पर माल की फिर जाँच होती है। यदि वह टापू के स्वास्थ्य के लिये उपयोगी नहीं होता तो "आमाशय" में नही रहने पाता; एक दम टापू से बाहर गिर पड़ता है। "आमाशय" की भूमि पर बसने वाले लोग देखने में बहुत ही छोटे हैं; परन्तु रसायनविद्या में वे बड़े चतुर हैं। वे अपने अपने घर से एक तेज़ाब (Gastric Juice) लाते हैं जिसके द्वारा "मुख" — पुरी से आया हुआ सब माल पकाया जाता है। ठाकुर "पाचन" सिंह जी की मुख्य आज्ञा तो यह है कि उन्होंने मुख पुरी में जो चक्कियां लगाई हैं वे पहले माल को खूब महीन करें और खारी झरने (थूक की नालियां) के जल से उसे पनीला बनाकर तब "आमाशय" को भेजें। परन्तु वहां कभी कभी ऐसी जल्दी की जाती है कि जैसे का तैसा माल इनके सिर पटका जाता है। उस दशा में इन लोगों को बड़ा कष्ट होता है। गाँव भर में खलबली पड़ जाती है और कुछ देर सब डर कर बैठ जाते हैं। अनन्तर बड़े परिश्रम से वे उसे पाचन योग्य बनाते हैं; परन्तु फिर कई दिन तक काम करने योग्य नहीं रहते। क्योंकि इन लोगों का तेज़ाब (गैस्ट्रिक जूस) तभी गुण[3] करता है जब पहले चक्की (दाँत) अपना पूरा काम करें। "आमाशय" से माल तैयार होकर एक चक्करदार नाली (छोटी आँतों) में छोड़ दिया जाता है। उसमें "पित्त" गंगा तथा पेंक्रियास के झरने का जल (पेंक्रियाटिक जूस) मिलकर उस माल को टापू के भोजन योग्य बना देते हैं। ज्योंही नाली में माल पहुंचता है, टापू भर के निवासी अपने अपने हिस्से के लिए हरकारे भेज देते हैं, जो स्वामी की रुचि के अनुसार भोजन ले जाते हैं। नाली के नीचे केवल वही अंश (मल) रह जाता है जो किसी के काम का नहीं। वह प्रतिदिन बाहर फेंक दिया जाता है।

---

1. द्वीप
2. जीभ
3. लाभ

आँख*

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

"य एषोक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति
होवाचैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्म"

— छान्दोग्य 4/15/1

"अक्षि चष्टेरनक्तेरित्यग्रायणस्तस्मादेत
व्यक्ततरे इव भवतः"

— निरुक्त 1/3/4

परमेश्वर की रचना में यों तो एक से एक अद्भुत, अनुपम और सुन्दर पदार्थ हैं; सारा विश्व ब्रह्माण्ड ही ऐसा है कि अपने गुणों से अपने कर्त्ता के लिए वह बारम्बार कहलाता है कि —

यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह

तथापि मनुष्यदेह से अधिक कोई पदार्थ अद्भुत नहीं। यही ईश्वर का प्रथम मन्दिर है, यही जगत् की सब लीलाओं का केन्द्र है। यदि किसी घर का रहने वाला अपने निवास का हाल न जाने तो वह हास्यास्पद होता है, किन्तु इस पवित्र घर में रहते भी हम इसका वृत्तान्त न जानने के अपराधी हैं। इस घर की प्रधान खिड़की आँख ऐसी विलक्षण है कि न्यूटन के कथननुसार आँख की परीक्षा नास्तिकता की परम महौषधि है। ऊपर लिखी श्रुति का अभिप्राय यह है कि ज्ञानी लोग आँख ही के द्वारा सच्चिदानन्द का ज्ञान प्राप्त करते हैं। निरुक्तकार "अक्षि" का अर्थ यह करते हैं कि वह स्वयं बहुत व्यक्त होती है अथवा सब चीजों को व्यक्त करती है। साधारण कहावत है कि आँख मूंदने पर कुछ भी नहीं रहता। सच है, आँख की आवश्यकता और उपयोगिता की महिमा तब तक कदापि कम नहीं हो सकती जब तक कि मनुष्य

जाति और इन्द्रिय उत्पन्न न कर ले। दूरबीन प्रभृति विज्ञान के मुकुट स्वरूप यन्त्र आँख के परिशेष–पूरक हैं। आँख न होने से वे किसी काम के नहीं। विशेष करके चंचलता और त्वक्[1] से सम्बन्ध होने के कारण आँख ने मानो जगत् के ज्ञान–साम्राज्य को ठोकर ही मार दी। ऐसी अनुपम इन्द्रिय का वृत्तान्त किसको न रुचेगा? नैयायिकों के अनुसार कृष्ण तारा के अग्रभाग में स्थित चक्षु इन्द्रिय आलोक–संयोग, और उद्भुत रूप संयोग से, उद्भुत रूप, रूपवान् द्रव्य, पृथकत्व, संख्या, विभाग, संयोग, परत्व, अपरत्व, स्नेह, द्रवत्व और परिमाण तथा क्रिया जाति और समवाय का ग्रहण
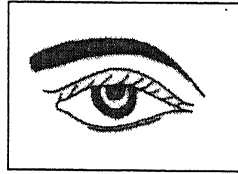
* *सरस्वती*, फरवरी–मार्च 1905

करती है। गवेषणा के नायक पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने आँख पर क्या क्या लिखा है उसका एक साथ समावेश करना अति दुष्कर है। तथापि उसका सार देने का यत्न किया जाता है।

आँख बाहर से प्रायः गोलाकार होती है। सामने ही जो काँच की सी झिल्ली दिखाई देती है उसे कार्निया कहते हैं। इसके पीछे थोड़ी दूर पर आइरिस नाम की झिल्ली है; यह वही रंगीन गोल पदार्थ है जो आँख के सफेदे के बीच में दिखाई देता है। इस झिल्ली के बीच में एक छिद्र होता है। यह मनुष्य की आँख में गोल होता है; बिल्ली की आँख में तंग और लम्बा होता है। इसी के द्वारा किरण आँख के भीतर प्रवेश करते हैं। प्रकाश के प्रवेश को नियमित करने के लिए यह फैल और सिकुड़ सकता है। इसके पीछे, बहुत पास ही दोनों ओर से उन्नातोदर एक काच वा उसके सदृश पदार्थ है। यह भी फैल और सिकुड़ सकता है। इस ताल को यथास्थान रखने के लिए "सिलिएरी" स्नायु नामक एक माँस का छल्ला है, जो ऊपर के ढक्कन स्केलोरोटिक में ही लगा हुआ है। इसके पीछे का सब भाग, आँख के पिछवाड़े तक, अण्डे के रस के सदृश चिपचिपे पारदर्शक पदार्थ से भरा हुआ होता है, जिसे "काचीय अर्क" कहना उचित होगा। आगे, "काच" और कार्निया के बीच में भी ऐसा ही विमल रस है जिसे "जलीय अर्क" कहते हैं। आँख के अन्दर का सब पिछला भाग रेटिना नामक मुलायम, श्वेत और विमल झिल्ली से मढ़ा हुआ है। यह मानो उस ज्ञानतन्तु का जाल की तरह फैला हुआ अग्रभाग है जो यहाँ से मस्तिष्क तक जाने तथा दर्शन का ज्ञान कराने के कारण चाक्षुष ज्ञानतन्तु कहलाती है। रेटिना ही दर्शनेन्द्रिय का प्रधान तथा दुर्बोध भाग है। ज्ञानतन्तु पीछे से आकर तन्तु शिराओं के रूप में अन्दरी सतह पर फैले हुए हैं वहाँ से पीछे को मुड़कर मस्तिष्क के प्रथम स्वरूप गोल गोल कणों की तरह वे व्याप्त हैं; वा छड़ी से अथवा शंकु[2] के से टुकड़ों का रूप धारण करके आड़े पड़े हुए हैं। मनुष्य की आँख में इन शंकुओं की संख्या 33,60,000 मानी गई है; छड़ियों[3] की संख्या का पता नहीं। इन छड़ियों में एक प्रकार का रंग है जो प्रकाश में उड़ जाता है और अन्धेरे में फिर प्राप्त हो जाता है। इन छड़ी शंकुओं का पूरा कर्तव्य क्या है सो तो मालूम नहीं, हां, आकारपरिज्ञान तथा रंगज्ञान में यह काम देते हैं। यदि आलोक ज्ञानतन्तु के एक ऐसे स्थान पर पड़े जहां कोई शंकु न हो, तो कुछ देख नहीं पड़ता; इस स्थान का नाम "अन्धबिन्दु" है। इसके विरुद्ध एक दूसरे स्थान पर बहुत से शंकु रक्खे हुए हैं; वहां पर बहुत तीव्र दर्शन होता है। इस स्थान को "पीतबिन्दु" कहते हैं। यह सब आँखों में एक स्थान पर नहीं होता; तथा मृत्यु के पीछे बहुत कम देर तक रहता है। बकरे की आँख में इस बिन्दु को मैंने स्वयं देखा है। रेटिना के पीछे एक और कोरोइड नामक झिल्ली है। उसमें कुछ काले गोल दानों के समान पदार्थ है जो उन किरणों को शोष लेता है जो दर्शन में काम नहीं दे सकतीं। अन्त में यही कहना है कि
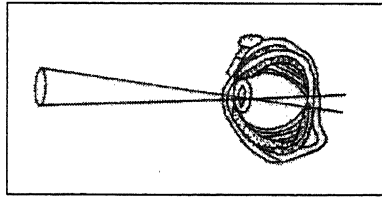
चित्र 1 : क बाईं आँख स्नायु दिखाती हुई ग शंकु और छड़ियां ख दाहनी आँख का असली रूप

चित्र 2

"स्क्लेराटिक" नाम की झिल्ली आँख को घेरे हुए है और आग्र आकर कार्निया में मिल गई है। यह सफेद ढक्कन आँख को सुरक्षित रखता है। इसी में पतली ढकनी से ढका हुआ छिद्र काच की खिड़की का काम देता है।

आँख की विशेष उपयोगिता इसी में है कि इसके प्रबन्ध के लिए कितने ही स्नायु हैं जो इसको समय समय पर मोड़ वा बदल सकते हैं। अन्दर के सीलियरी छल्ले का हाल कह ही चुके हैं। यह समीपावलोकन के लिए काच[4] को दबाकर अधिक उन्नातोदर कर देता है। बाहर की तरफ कपाल की हड्डी से लगे हुए स्नायु हैं; उनमें से चार तो खड़े हैं और डेले[5] को ऊपर नीचे घुमाने का काम देते हैं; और दो अगल बगल में रह कर आँख को तिरछा घुमा सकते हैं। इनसे आँख की धुरी बदल सकती है और हम पदार्थों को ध्यानपूर्वक देख सकते हैं। यदि आँख का डेला स्थिर होता तो आँख से बहुत कम ज्ञान मिलता। इस चंचलता से पदार्थपरिज्ञान में बड़ा काम निकलता है।

नेत्र द्वारा ज्ञान का मुख्य कारण दोनों ओर से उन्नातोदर इस काच को ही गिनना चाहिए; क्योंकि आलोक इसी के द्वारा भीतर जाकर ज्ञानतन्तु सम्बन्धी प्रकम्पन में परिणत होता है। अतएव, यहां पर, ताल काच और उन पर आलोक पड़ने के प्रभाव पर कुछ कहना अनुचित न होगा।

यहां काच वा ताल से 'दर्पण' का अभिप्राय नहीं है, किन्तु ऐसे काच के टुकड़े से अभिप्राय है जिसके दोनों किनारे एक दूसरे के समानान्तर न होकर किसी कोण को बनाते हुए झुके हों। सुप्रसि तिकोने काच में पदार्थों को उठा हुआ देखने के दृष्टान्त और इस चित्र से जान पड़ेगा कि आलोक की किरणें तरल पदार्थ से अधिक घने पदार्थ में घुसती बेर मुड़ जाती हैं।
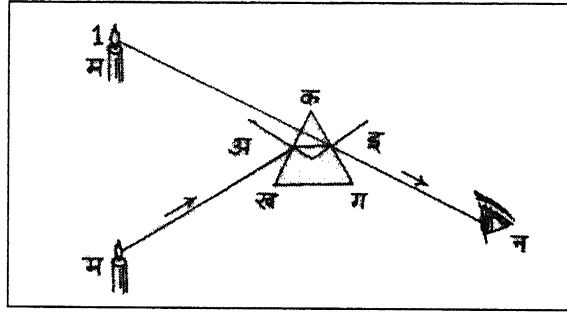
चित्र 3 : म मोमबत्ती, क ख ग ताल, अ इ प्रकाश की किरण के मुड़ने के स्थल, न आंख, म 1 मोमबत्ती का प्रतिबिम्ब

आलोक की किरण जिस पदार्थ में प्रवेश कर रही है उसकी सतह पर लम्ब खींचा जाय तो तरल पदार्थ में उस किरण का लम्ब के साथ बना हुआ कोण, घने पदार्थ में बने हुए कोण से बड़ा होगा। 'क,ख,ग' ताल में 'म' मोमबत्ती की किरण जा रही है। वह 'अ' 'इ' स्थानों पर उपर्युक्त
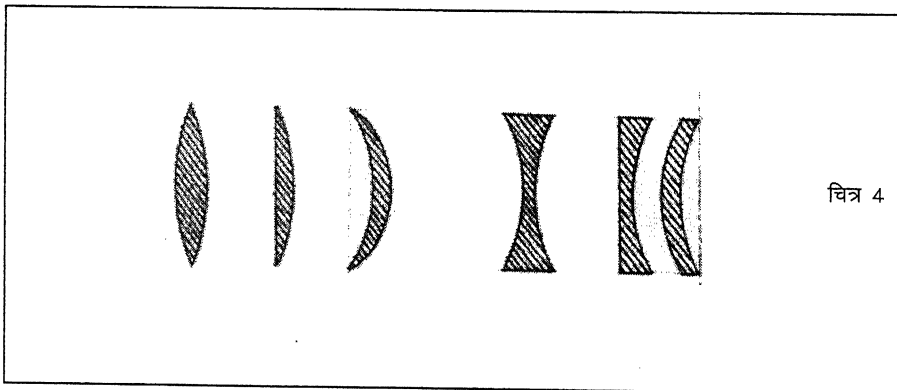
चित्र 4

नियमानुसार दो बेर मुड़कर 'न' नेत्र में पहुंची। अतएव 'न' नेत्र को 'म' अपने स्थान में नहीं किन्तु 'नइ' सिलसिले में 'म' पर दिखाई देगी। अर्थात् त्रिपार्श्व में देखे जाने से , पदार्थ, उसकी चोटी की तरफ, किरणों के वक्रीभवन से, बदले हुए दिखाई देते हैं। प्रकाश को दो बेर मोड़ देने का यह गुण तालों के विषय में जो कुछ कहा जायगा, उसका आधार है।

ताल 6 प्रकार के होते हैं और उन्हें दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं। इनके गुणों के विचार के लिए "अ" और "क" का ही विचार बस होगा, क्योंकि उस उस समूह के और और तालों के गुण उनके ही सदृश हैं।

अ उभयोन्नतोदर
इ समोन्नतोदर — केन्द्राकर्षक
उ मध्यस्थूल अर्धचन्द्र
क उभयनतोदर
ख समनतोदर — केन्द्राप्रसारक
ग मध्यकृश अर्धचन्द्र

उन्नतोदर ताल — यदि दो वृत्त एक दूसरे को काटें तो जो भूमि दोनों वृत्तों में समान होगी वही उभयोन्नतोदर ताल होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। इन दोनों वृत्तों के केन्द्र, गुलाई के केन्द्र, और उन दोनों केन्द्रों को जोड़ने वाली ताल में होकर जाने वाली रेखा प्रधान धुरी कहलाती है। काचके दोनों किनारों से समान दूरी पर, प्रधान धुरी पर जो बिन्दु हो उसे दर्शन केन्द्र कहना उचित होगा। ऐसी और कोई रेखा जो दर्शन केन्द्र में होकर जाय, किन्तु गुलाई के केन्द्रों से दूर रहे, उसे गौण धुरी कहेंगें। प्रधान धुरी एक ही होती है: गौण धुरी अनन्त है। अनन्त सरल रेखाओं के मिलने से वक्र रेखा व वृत्त बनता है। अतएव अ, इ, उ तालों को हम अनन्त त्रिपार्श्वों के, एक के आधार में दूसरे तथा दूसरे के आधार में तीसरे के, जुड़ने से बना हुआ मान सकते हैं। क,ख,ग तालों को इसके विरु चोटी की तरफ जुड़े हुए मान लें। अब यह समझना कठिन न होगा कि उन्नतोदर ताल केन्द्राकर्षक क्यों होते हैं, और नतोदर केन्द्रापसारी क्यों होते हैं क्योंकि त्रिपार्श्व में किरणें दो दफ़ा मुड़कर आधार की तरफ जाती हैं। उन्नतोदर में जुड़े अनन्त त्रिपार्श्वों का आधार बीच की तरफ और नतोदर में ऊपर की तरफ होता है। इसीलिए उन्नतोदर में किरणें बीच में आती हैं और नतोदर में ऊपर की ओर उड़ जाती हैं।

(1) मान लीजिए कि किसी उन्नतोदर ताल पर बहुत दूर के पदार्थ की किरणें पड़ रही हैं–इतनी दूर से कि वह एक स्थान से प्रचलित न दिखाई देकर समानान्तर दिखाई देती हों, जैसे सूर्य की किरणें तो उन किरणों में से जो किरण प्रधान धुरी पर जाती है वह तो मानों समानान्तर
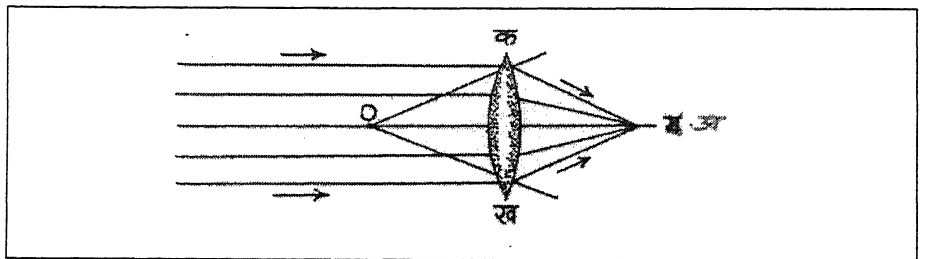
चित्र 5 : क ख ताल, अ अंशुनाभि

ताल में होकर जा रही है और बिना वक्र हुए निकल आती है। इससे कुछ दूर की किरण, नियमानुसार दो दफ़ा मुड़ती है और मध्यकिरण से समानान्तरता नष्ट होने पर उससे मिलती है। उससे अधिक दूर की किरण, अधिक झोंक वाले त्रिपार्श्व में टकराने से, अधिक झोंक खाकर मुड़ती है, क्योंकि ताल की झोंक केन्द्र से ऊपर की तरफ बढ़ती जाती है। इसीलिए यह मुड़कर पहली दो किरणों से उसी स्थान पर मिलती है जहां वे मिली थीं। ऐसे ही अधिक अधिक दूर की किरणें, अधिक अधिक झोंक खाकर, प्रधान धुरी के ऊपर, या नीचे, एक बिन्दु "अ" पर मिलती हैं।

यों समानान्तर किरणजाल केन्द्राकृष्ट किरण जाल बनकर एक बिन्दुपर मिलता है। इस बिन्दु का नाम अंशुनाभि[5] है। वास्तव में यह सूर्य का चित्र है। उन्नतोदर ताल ही "आतिशी शीशा" कहाता है। इस नाभि में आलोक ही नहीं, उष्णता भी इकट्ठी होकर जलाने का काम दे सकती है। ताल पर जिस तरफ़ से किरणें आती हैं उसके दूसरी तरफ यह बनता है। जितनी काँच की गुलाई अधिक होगी, उतनी ही यह नाभि छोटी और उष्ण होगी। यह नाभि सच्ची है अर्थात् ताल के पीछे कपड़ा या काग़ज़ रखने से दिखाई देगी।

2) अब मान लीजिए कि आलोक का पदार्थ (मोमबत्ती) अधिक समीप आ गया है; किन्तु अंशुनाभि से दूर है। समानान्तर किरणों की अपेक्षा इनमें एक दूसरे से कम अन्तर है, इसीलिए ताल के दूसरी ओर निकल कर यह उतनी जल्दी केन्द्राकृष्ट नहीं होतीं, किन्तु अंशुनाभि से हट कर अगाड़ी मिलती हैं।

---

1. कोन, नुकीली आकृति   2. Rods   3. लेंस   4. गोल वस्तु   5. फोकस

पौधों की नींद*

सूर्यनारायण दीक्षित

ज्यों ज्यों हम वानस्पतिक जीवन के भेदों को ढूंढते हैं, त्यों त्यों प्राणि–जीवन और वृक्ष–जीवन में अधिक समानता को देखकर हमें चकित होना पड़ता है। हम सांस लेते हैं; वृक्ष भी सांस लेते हैं। हमारे शरीर में रुधिर संचार होता है; वृक्षों में भी रस–प्रवाह होता है। परिश्रम करने के उपरान्त हम थक जाते हैं। रात होने पर पड़के[1] सो रहते हैं। वृक्ष भी सोते हैं। दिन भर की थकावट के बाद वृक्ष सन्ध्या को एक विशेष रूप धारण कर लेते हैं और उसी रूप में रात भर स्थित रहते हैं। यही पौधों की नींद है।

हमारे देश की स्त्रियां कहा करती हैं "भइया, संझा का पत्ता न तोड़ेउ, संझा का पेड़ सोवत हैं"। और भारतवर्ष ही में पाश्चात्य विद्वानों को सबसे पहले पौधो की नींद का पता लगा था। सन् 1567 ई. में Garcias de Horto नामक एक विद्वान ने भारतवर्ष में एक इमली के वृक्ष को सोते हुए देखा। परंतु इस अद्भुत बात का पूरा पूरा वर्णन और निर्णय करने का यश लीनियस (Linnaeus) नामक वृक्ष–विद्या–विशारद को ही मिला। इस विद्वान ने सबसे पहले अपनी फुलवाड़ी के एक कमल में इस बात को देखा। एक दिन प्रातःकाल उसमें फूल खिले हुए थे। परन्तु आधी रात के समय उसमें एक भी फूल न दिखाई दिया। लीनियस ने सोचा कि कदाचित् किसी ने उसकी वाटिका के सुन्दर पुष्पों को चुरा लिया होगा। परन्तु अधिक ध्यान देके देखने पर उसे ज्ञात हुआ कि इस चोरी का अपराधी स्वयं वह वृक्ष ही है। कुछ दिनों में इस तत्ववेत्ता ने पता लगाया कि वास्तव में रोज़ शाम को इस वृक्ष की पत्तियां एक ऐसे आसन में स्थित हो जाती हैं कि फूल का अन्दरी ढक्कन (Corolla) छिप जाता है। यह इस कमल वृक्ष के सोने का तरीक़ा है।

क्या एक कमल वृक्ष ही रात को सोता है या अन्य जाति के वृक्ष भी रात को शयन किया करते हैं। यह प्रश्न लीनियस के चित्त में उत्पन्न हुआ। इसका निर्णय करने के लिए वह रात रात भर मशाल लिये हुए अपनी वाटिका में घूमा किया और एक एक वृक्ष को देखने में उसने बहुत समय व्यय किया। निदान उसने देखा कि अधिकतर वृक्ष रात को सोते हैं। अर्थात् एक विशेष आसन में स्थित हो जाते हैं।

दिन के अन्त में प्राणिमात्र को विश्राम करने की आवश्यकता होती है। दिन के प्रकाश के अन्तर्हित होते ही प्राणी आराम करते हैं। मनुष्यों का दिन में सोना प्रकृति–विरुद्ध कार्य है। वृक्ष दिन में नहीं सोते। या यों कहिये कि प्रकाश में नहीं सोते; रात होने पर अन्धकार छा जाने ही पर वे सोते हैं। पूर्वोक्त आसन विशेष में स्थित होना ही उनका पैर फैलाकर नींद लेना है।

वनस्पति वर्ग की कई जातियों के पौधे सोने के समय ऐसा रूप धारण कर लेते हैं कि उनको

---

* *सरस्वती*, जुलाई 1905

उस समय पहचानना मुश्किल हो जाता है। वृक्ष निद्रा से वन का दृश्य बिलकुल बदल जाता है। बहुत से अपनी शाखाओं को तने के निकट ले आते हैं और अपने पत्तों को एक दूसरे के ऊपर रख देते हैं। उनके पत्ते ऐसे मालूम पड़ते हैं कि मानो शीत से बचने के लिए एक दूसरे से चिपक गये हों। छुई मुई जाति वाले पौधे (Sensitive plants) रात के समय ऐसा रूप धारण कर लेते हैं कि उनको देखते ही मालूम हो जाता है कि मानों वे सो रहे हों। जैसे श्रान्त मनुष्य पलकें बन्द करके निश्चल पड़ा रहता है, उसी भांति ये पौधे भी अपनी छोटी छोटी शाखाओं को झुका, नन्हीं नन्हीं पत्तियों को एक दूसरे के ऊपर रख, निश्चल भाव से गहरी नींद का आनन्द लेते हैं। चकौंड़ नाम का पौधा बरसात में अधिकता से होता है। शाम होते ही उसकी पत्तियां एक दूसरे से चिपट जाती हैं। जिस दिन बादल बहुत होता है और सूर्य नहीं देख पड़ता उस दिन इसकी पत्तियों की तरफ देख कर लोग जान लेते हैं कि अब दिन डूबने को है। उष्ण देशों में यह बात और भी अधिक अद्भुतता से देखी जाती है। हमबोल्ट ने उत्तरीय अमेरिका के कोलम्बिया प्रदेशान्तर्गत मगडालेना नामक नदी के तट पर देखा कि वहां के वृक्ष ठंडे देशों के वृक्षों से अधिक देर में जगते हैं। मानों उष्ण देश के वृक्ष भी उष्ण देश के मनुष्यों की भांति बड़े आलसी होते हैं। कई तरह के फूल तो इतने आलसी होते हैं कि क्या कहना। सन्ध्या होने में अभी घण्टों की देर है, परन्तु इन्होंने अभी से सोने की ठहराली। और सोएंगे भी कितनी देर। सूरज आकाश में बहुत ऊंचा चढ़ आया। चारों ओर धूप फैल गई। तब आप ने अंगड़ाई लेकर आँख खोली। वाह री नींद! भला सबसे पहले सोये थे तो जागते भी सब से आगे!

बहुत से पुष्प–वृक्ष संध्या ही को निन्द्रा की देवी की गोद में आराम करने के लिए पड़ रहे हैं। यदि हम संध्या के समय एक ऐसे मैदान को देखें कि जिसमें इस जाति के फूल बहुतायत से हों तो वह पहचानने में ही न आवैगा। ठीक दोपहर के समय वह मैदान बिल्लौरी पंखुरियों से सजा हुआ एक सब्ज़ बाजार था। बहुत सी पीली और नीली आँखे हमें ताक रही थीं। परन्तु संध्या को वे आँखे बंद हो गईं। बिल्लौरी पंखुरियां अद्दश्य हो गईं। उस मैदान का जीवन अंतर्हित हो गया। सब कुछ निर्जीव मालूम होने लगा है। उसके सारे फूल सो गये।

बहुतों ने इस नींद का कारण दिन और रात की उष्णता का फ़र्क ही विचारा है। दिन की अधिक उष्णता के कारण पेड़ जागते रहते हैं। परन्तु रात में कम उष्णता के कारण वे शिथिल पड़ जाते हैं, सो रहते हैं। परन्तु जब ग्रीन हाउसेज में भी, जहां कि रात और दिन दोनों ही में उष्णता बराबर रक्खी जाती है, पौधे सोते हुए देखे गये तो उनका यह विचार असत्य प्रमाणित हुआ। और वानस्पितक नींद का कोई और ही कारण ढूंढना पड़ा।

कैंडोल (Candaolle) नामक तत्ववेत्ता ने कई अदभुत तजरुबों से प्रमाणित कर दिया कि पौधों की नींद का वास्तविक कारण प्रकाश का अभाव ही है। इस वृक्ष विद्या विशारद ने छुई मुई के पौधों पर रात के समय बड़ा तीव्र प्रकाश डालकर उन्हें सोते से जगा दिया। और दिन में घोर अंध ाकाराच्छन्न स्थान में ले जाकर उन्हें उसने सुला दिया। यह पौधे बड़ी सुगमता से धोखे में कृत्रिम अंधकार को रात समझ कर दिन भर सोया किये और छः लैम्पों के तीव्र प्रकाश को सूरज का उजाला समझ रात भर वे जागा किये।

अयन रेखान्तर्गत देशों ही में विशेष कर पौधों की यह नींद देखने में आती हैं। और सबसे अधिक छुई–मुई जाति वाले वृक्षों (Sensitive plants) में नींद की अधिकता पाई जाती है।

---

1. लेटकर

वनस्पति विवरण*

एल. एन. नागर

यों तो इस पृथवी पर न जाने कितने आश्चर्य पैदा करने वाले पदार्थ हैं जिनसे ईश्वर की ईश्वरता प्रगट होती है पर वास्तव में अचरज पैदा करने वाले पदार्थ हम उन्हीं को कहेंगे जिसमें प्रकृति के नियम से संबन्ध रखने वाली नित्य के देखने की बस्तुओं के लक्षणों से कुछ ऐसे भिन्न लक्षण पाये जांय जो हमारी बुद्धि में न आ सकें। पाठक आपने संसार के सात आश्चर्यों (Seven wonders of the world) के बारे में सुना होगा। क्या संसार में बस सात ही पदार्थ अचरज के हैं ? इनमें ताजबीबी का रौजा भी एक है। ताजमहल के पत्थर तअज्जुब दिलाने वाले हैं तो क्या आपके घर के दासे[1] का पत्थर नहीं है? क्या बेबीलोन का लटकता उद्यान अचरज के पदार्थों में है तो आपकी गली में उगी हुई हरी दूब नहीं है? थोड़ा भी ध्यान देने से मालूम हो जायगा कि पत्थर व दूर्वा रौजा या अधर उद्यान से कहीं बढ़कर अचरज पैदा करने वाले हैं। ईश्वर की रचना का भेद पा जाना कठिन होने पर भी यह द्विपद जीव अर्थात् मनुष्य जो ईश्वर का आश्रित है और जिसे ईश्वर ने अपने ही रूप में सृजा है अर्थात् ज्ञान शक्ति दी है, अपनी ढाई चावल की खिचड़ी अलग ही पकाता हुआ ईश्वर की ईश्वरता का भेद खोलने के लिये उद्योग कर रहा है। अस्तु ! इसी के अनुसार आज हम ईश्वर के कारखाने में टांग अड़ाते कुछ चमत्कृत चीजों का उल्लेख करते हैं। संसार में दो तरह के पदार्थ हैं एक जंगम या सजीव, दूसरा स्थावर निर्जीव या एक जड़, दूसरा चैतन्य है। जड़ कहां तक सजीव है सो फिर कभी कहेंगे। आज वनस्पति के संबन्ध में कहते हैं जो जड़ कोटि में गिने जाते हैं–

प्रत्येक वृक्ष के 3 भाग होते हैं –एक धड़ जो पृथवी के ऊपर थोड़ी दूर सीधा उठ कर फिर डालियों में विभक्त हो हवा में फैल जाता है – दूसरा जड़ जो पृथवी के नीचे चारों तरफ फैली रहती हैं – तीसरे पत्तियां जो डालियों के किनारों से निकलकर कम व बेश चौड़ी होकर हवा में लहराया करती हैं – इन तीनों भागों की बनावट और काम अलग अलग हैं सो नीचे लिखे जाते है–

डालियों व धड़ की बनावट

कोई डाली को आरी से आड़ी काटने पर उसके तीन भाग दृष्टि में पडेंगे। बीचो बीच में गूदा, इसके चारों तरफ एक जालदार झिल्ली सा दृढ़ काष्ट और फिर त्वक या छाल जो पहले के दो भागों की बाहरी चोट आदि से रक्षा करती है। गूदे में बहुत ही छोटे कोष्ट (Cells) होते हैं जो मज्जा सम्बंधी आड़ी नलियों द्वारा और बाहरी छाल द्वारा हवा से समागम पैदा करते हैं। झिल्लीदार काष्ट और

---
* *हिंदी प्रदीप*, नवम्बर 1906

छाल के भीतरी भाग में लंबी खड़ी नलियाँ होती हैं जिनमें से तरल (Liquid) पदार्थ जड़ से पत्तियों और पत्तियों से जड़ तक आ और जा सकता है।

जड़ की बनावट

जड़ धड़ से छूटते ही मिट्टी में चारों तरफ फैल जाती है। इसकी थोड़ी दूर तक की बनावट धड़ ही के समान होती है पर जड़ के जरा अधिक लंबे होने पर गूदे का उसमें से लोप हो जाता है। जड़ मोटी सी क्रमशः पतली और दृढ़ होती जाती है। जड़ के सिरे बहुत ही पतले, सुफैद रंग, छिद्रयुक्त स्पंज की तरह होते हैं। इनमें धड़ के तीनों भाग का लोप हो केवल एक नरम पदार्थ रह जाता है जिसमें काष्ट व खाल की खड़ी नलियाँ आ मिलती हैं। इन्ही नलियों के द्वारा यह तंतु रूप में पृथवी में गड़े हुए भी हवा में हिलती हुई पत्तियों के साथ मेल खाते हैं।

पत्तियों की बनावट

टहनियों का बिस्तार पत्तियां हैं। पत्तियों में चारों तरफ फैली बहुत सी शिराएं या नसें हैं। यही जालदार काष्ट का बिस्तार हैं। यह भीतरी छाल के बिस्तार की नलियों से जो प्रायः इनके नीचे रहती है, जुड़ी रहती है। एक पतला अस्तर इन शिराओं के ऊपरी और नीचे के हिस्सों को आच्छादित रखता है। यह अस्तर छाल के बाहरी अथवा कोष्टिक (Cellular) भाग का बिस्तार है और सछिद्र रहता है। छिद्र (stoma) बहुत ही छोटे और असंख्य होते हैं। यही वृक्ष के मुख और आखें इत्यादि हैं। एक वर्ग इन्च में प्रायः 120000 छिद्र होते हैं। जो वनस्पति केवल जल में उगते हैं उन्हें छोड़ स्थलज उद्भिजों के पत्तों में ऊपरी भाग की अपेक्षा नीचे के हिस्सों में अधिक छेद रहते हैं।

वृक्ष के प्रधान भागों के कर्म

जड़ के कार्य – जड़, पानी और तरल खाद्य बस्तुओं के लिये मिट्टी में चारों तरफ तन्तु या प्ररोह को फैलाती है। स्पंज सदृश जड़ का भाग जिसका ऊपर वर्णन हो चुका है पानी व खाद्य बस्तु को चूस कर काष्ट की खड़ी नलियों द्वारा इनको ऊपर भेज देता है या खाद्य बस्तु पेड़ के रस में मिल जाती है और चारों तरफ घूमा करती है। इसी से जड़ पेड़ का अंश बनता है। जड़ पेड़ का पेट के रूप में है।

पत्तियों के कर्म – पत्तियों और जड़ के काम एक ही तरह के हैं अर्थात् पोषणोपयोगी रस को तैयार करना। भेद केवल इतना ही है कि जड़ तो तरल और पत्र द्रव्य खींचते हैं। पत्ते पेड़ों के श्वास यन्त्र स्वरूप हैं, प्रयोजनीय तरल पदार्थ का परिशोषण और निकम्मे पदार्थों को भाफ रूप से बाहर निकालना पत्तों का मुख्य कार्य है। दिन में हरी पत्तियां आंगारिकाम्ल[2] खोलती और अम्लजान[3] बाहर निकालती हैं अर्थात् कोयला[4] खाकर पेड़ को पुष्ट करती हैं। रात को यह कार्य विपरीत होता है – आंगारिकाम्ल निकालती हैं यह वायु प्राणियों के लिये हानिकारक है इससे रात को पेड़ के तले न सोवे। नये हरे पौधों की डालियों में और घास के हरे डंठल में भी छिद्र रहते हैं जिनके द्वारा आंगारिकाम्ल भीतर जाती है क्योंकि यह समय शीघ्र बढ़ने का है और बढाव के लिये अंगार कोयला की आवश्यकता रहती है, पीले अथवा लाल पत्ते या पौधों का इस रंग का कोई भाग आंगारिकम्ल निकालते हैं इसलिये यह पेड़ को हानिकारक हैं। एक दूसरा काम पत्तों का पानी को भाफ रूप में

बाहर निकालना है। एक फसल में एक एकड़ भूमि से 37500 से 62500 मन तक पानी निकलता है।

धड़ व डालियों के कर्म – धड़ की खड़ी नलियां वृक्ष रस[5] को पत्ती में पहुंचाती हैं। यहां यह रस पत्ती की शिराओं के द्वारा फैल जाता है। फिर रस जब आंगारिकाम्ल सोख भाफ निकाल कर गाढ़ा व परिपक्व हो जाता है तो पत्तों के नीचे वाली नसों के द्वारा छाल की भीतरी नलियों में आ जाता है। रास्ते में छिद्रों से वायु सोखता निकालता है, धड़ में की नालियों में घूमता हुआ फिर जड़ में पहुँच जाता है जहां जड़ से सोखे तरल द्रव्य में मिल फिर ऊपर चढ़ जाता है।

सिवाय सर्दी के सब ऋतुओं में यह रस चारों तरफ घूमा ही करता है। यह मनुष्य के खून के तरह है। जैसे मनुष्य के शरीर में खून से मांस, चरबी इत्यादि बनता है वैसे ही इस रस से पेड़ का गूदा गोंद इत्यादि बनता है। पेड़ से और जीव से कितनी समता है! पेड़ों के भी प्राण हैं – उन्हें भी आघात लगता है, बीमारी होती है इत्यादि।

---

1. चबूतरे 2. कार्बन डाई आक्साइड 3. ऑक्सीजन 4. कार्बन 5. कोशिका द्रव्य

रायबहादुर पण्डित लक्ष्मीशंकर मिश्र*

रामनारायण सिंह, सब डिप्टी इंस्पेक्टर

श्रीलक्ष्मीशंकर प्रवर, विद्वज्जन आधार।
हाय कासिका–धाम तजि, गये आगार।।

पण्डित लक्ष्मीशंकर सरयूपारीण ब्राह्मण थे। आप पण्डित रामजसन मिश्र के ज्येष्ठ पुत्र थे। आपके पिता संस्कृत कालेज बनारस में प्रोफेसर थे। पण्डित लक्ष्मीशंकर जी का जन्म 1849 ईसवीं में हुआ था। आप लड़कपन से ही गम्भीर, सुशील और कुशाग्र बुद्धि थे। 14 वर्ष की उम्र में आप बनारस कालेज में अंगरेजी पढ़ने के लिए भर्ती हुए। आपके अध्यापक आपसे बहुत प्रसन्न रहते थे। साहित्य की अपेक्षा गणित विषय क्लिष्ट है। इस कारण बहुधा लड़के गणित विषय को पसंद नहीं करते। वे उसे छोड़ साहित्य की ओर झुक जाते हैं। पर पण्डित लक्ष्मीशंकर जी का गणित ही पर विशेष प्रेम था। यह उनकी मस्तिष्क–शक्ति के बलवती होने का प्रमाण था। आपने एम.ए. में गणित ही लिया था। उस समय बनारस कालेज में राजर्स साहब गणित के प्रोफेसर थे। उन्हें पण्डित जी की तीव्र बुद्धि देख कर आश्चर्य होता था।

1870 ई0 में पण्डित लक्ष्मीशंकर जी ने आनर्स (नेकनामी) के साथ गणित में एम. ए. पास किया। आप की योग्यता और प्रतिभा पर मुग्ध होकर कालेज के प्रधानाध्यापक ग्रिफ़िथ साहब ने आपको अपने ही कालेज में गणित का प्रोफ़ेसर नियत किया। पण्डित लक्ष्मीशंकर की पढ़ाने की शैली ऐसी अच्छी थी कि कठिन से भी कठिन बातों को वे सहज में समझा देते थे। इससे इनके विद्यार्थी इनसे बहुत खुश रहते थे। इनके पढ़ाये हुए छात्रों में से बहुतेरे अच्छे पदों पर नियुक्त हुए। विचारपति सैयद महमूद और कुंवर ज्वालाप्रसाद (जज) ने इन्हीं से गणित पढ़ा था। ये दोनों महाशय पण्डित लक्ष्मीशंकर जी का आदर सत्कार, मरते दम तक, विद्या गुरु ही की तरह बराबर करते थे।

बनारस में बनारस–इन्स्टिट्यूट नाम की एक सभा थी। डाक्टर टीबो, सर सैयद अहमद और राजा शिवप्रसाद आदि बड़े बड़े लोग उसके मेम्बर थे। हमारे पण्डित जी भी उसके मेम्बर थे। आप कभी कभी इस सभा में अच्छे विषयों पर व्याख्यान देते थे, जिन्हें सुनकर आपकी कल्पना–शक्ति और विद्वत्ता की बड़े बड़े विद्वान् प्रशंसा करते थे।

पण्डित लक्ष्मीशंकर जी समय को बहुमूल्य समझते थे। वे कभी अपना समय व्यर्थ न खोते थे। अनेक आवश्यक काम करने पर जो समय आप को मिलता था उसमें आप उत्तमोत्तम पुस्तकें लिखते थे। जिस समय आप बनारस–कालेज में गणित के प्रोफ़ेसर थे, उस समय आपने त्रिकोणमिति (Triginometry) नामक गणित का एक ग्रन्थ हिन्दी में लिखा। उसकी उत्तमता पर

---

* *सरस्वती*, जून 1907

प्रसन्न होकर इन–प्रान्तों के तत्कालीन, छोटे लाट, सर विलियम म्योर साहब ने पण्डित जी को एक हजार रुपया पारितोषिक दिया।

अंकगणित में अच्छी पुस्तकों का अभाव देखकर कर पण्डित जी ने अपना ध्यान इस तरफ फेरा। थोड़े ही दिनों में आपने गणित कौमुदी नामक एक उत्तम ग्रन्थ, चार भागों में, बनाया। इस ग्रंथ के बन जाने से अंकगणित पढ़ाने में अध्यापकों को जो कठिनाइयाँ उठानी पड़ती थीं, वे प्रायः दूर हो गईं। इन प्रान्तों के शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर साहब ने इसे पसन्द करके पाठशालाओं में जारी कर दिया। यह ग्रन्थ अब तक पाठशालाओं में पढ़ाया जाता है।

1877 ईसवी तक पण्डित जी गणित शास्त्र के अध्यापक रहे। इसके बाद आप बनारस कालेज में विज्ञान शास्त्र के अध्यापक हुए। अब आपने विज्ञान पर पुस्तकें लिखना आरम्भ किया और पदार्थ–विज्ञान विटप, प्राकृतिक–भूगोल–चन्द्रिका, वायुचक्र–विज्ञान स्थिति–विद्या और गतिविद्या आदि बहुत ही उपयोगी पुस्तकों की रचना करके मातृ–भाषा के कोश को भरा। यदि पण्डित जी की तरह उच्च शिक्षा पाये हुए हमारे देश के विद्वान हिन्दी लिखने का परिश्रम उठाते तो हिन्दी का बहुत कुछ उद्धार हो गया होता। पर उस बेचारी के ऐसे भाग्य कहाँ!

पाठकों ने "काशी–पत्रिका" का नाम सुना होगा। यह पत्रिका बहुत दिनों तक काशी से निकलती रही है। पहले इसे बाबू बालेश्वर प्रसादजी, (बी.ए.) निकालते थे। आप ही उसके सम्पादक थे। आप बनारस नार्मल स्कूल के हेडमास्टर थे। पत्रिका पाक्षिक थी। जब पण्डित लक्ष्मीशंकर जी बनारस डिवीजन के मदरसों के स्थानापन्न इन्सपेक्टर हुए तब बाबू बालेश्वर प्रसादजी ने काशी पत्रिका पण्डित लक्ष्मीशंकर जी को दे दी। तब से आप उसका सम्पादन करने लगे। आप उसे अपने चंद्रप्रभा–प्रेस से निकालने लगे और साप्ताहिक कर दिया। गणित, विज्ञान, साहित्य, नीति और शिक्षा आदि विषयों पर बहुत ही उपयोगी लेख आप उसमें निकालने लगे। उसकी उपयोगिता को देखकर इन प्रान्तों के शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर श्रीयुक्त ह्वाइट साहब, ने उसे पाठशालाओं में जारी कर दिया। उसकी बहुत सी कापियाँ शिक्षा–विभाग के लिए मोल ली जाने लगीं। ह्वाइट साहब के बाद श्रीयुक्त लिविस साहब डाइरेक्टर हुए। आपने काशी पत्रिका और अलीगढ़ इन्स्टिट्यूट गजट के सिवा पंजाबी, अँगरेजी पत्र, ट्रिब्यून, को भी लेना शुरू कर दिया। ट्रिब्यून भी मदरसों में जाने लगा। इससे खर्च बढ़ गया। फल यह हुआ कि संयुक्त प्रान्त की कौंसिल में इस विषय पर एतराज़ किया गया। इस कारण गवर्नमेंट ने अपने खर्च से समाचार पत्रों और सामयिक पुस्तकों का मदरसों में भेजना बन्द कर दिया। तब से पण्डित लक्ष्मीशंकर जी को काशी–पत्रिका बन्द करनी पड़ी। क्योंकि उसका विशेष खपत मदरसों में ही था। जब वह बन्द हो गयी, और स्वदेशवासियों ने काशीपत्रिका की सहायता न की, तब पण्डितजी उसे बन्द करने के सिवा और करते ही क्या?[2]

जिस समय पण्डित जी बनारस–कालेज में अध्यापक थे, उस समय बनारस डिवीज़न के मदरसों की दशा अच्छी न थी; पठन–पाठन की प्रणाली का कोई ठीक प्रबन्ध न था। इस अव्यवस्था को दूर करने के लिए गवर्नमेंट ने पण्डित जी को 1885 में, बनारस डिवीजन का स्थानापन्न इंस्पेक्टर नियत किया। गवर्नमेंट पण्डितजी की योग्यता और कार्य दक्षता का परिचय पा चुकी थी। अतएव उसने पण्डित जी ही को इस पद के योग्य समझा। आपने भी गवर्नमेंट की आशाओं को अच्छी तरह पूरा किया। कुछ दिनों में आपने मदरसों की अव्यवस्था दूर कर दी। उनकी दशा सुधर गई। सब विषयों में यथेष्ट उन्नति हो गई।

1888 ईसवी में गवर्नमेंट ने पण्डित जी को इलाहाबाद डिवीज़न का भी स्थानापन्न इंस्पेक्टर नियत किया। आपने दोनों डिवीज़नों का काम बड़े ही योग्यता से सँभाला। आपके सुप्रबन्ध से सब खुश रहें।

आपकी कारपरदाज़ी और योग्यता से प्रसन्न होकर, 1889 में, गवर्नमेंट ने आपको रायबहादुर की पदवी से विभूषित किया। पण्डितजी कलकत्ता और इलाहाबाद दोनों विश्वविद्यालयों के फेलो थे। आपसे आपके मातहत कर्म्मचारी हमेशा खुश रहते थे। आप उनकी योग्यता और कार्यदक्षता पर हमेशा ध्यान रखते थे और तदनुकूल उनकी पदोन्नति और वेतनोन्नति भी करते थे। न्याय से आप कभी विचलित न होते थे। परीक्षा लेने का ढंग आपका ऐसा अच्छा था कि उसे देख कर अध्यापकों को सहज ही में शिक्षा देने की प्रणाली का अनुभव हो जाता था।

पण्डित जी की योग्यता को श्रीमान ह्वाइट साहब अच्छी तरह जान गये थे। अतएव, शिक्षा सम्बन्धी सुधार के जितने काम होते थे उनमें ह्वाइट साहब पण्डितजी से प्रायः सम्मति लिया करते थे। शिक्षा सम्बन्धी नियम–पुस्तक (कोड) बनाने में डाइरेक्टर साहब ने पण्डितजी से बहुत सहायता ली थी।

1882 ईसवी में, बड़े लाट लार्ड रिपन ने एक शिक्षा–कमिशन नियत किया था। उसमें इन प्रान्तों की तरफ से साक्ष्य देने के लिए पण्डित जी नियत किये गये थे। आपने कमिशन के सम्मुख उपस्थित होकर कमिशन के पूछे हुए प्रश्नों का उत्तर बड़ी ही योग्यता से दिया था।

पण्डित जी की प्रबन्ध–दक्षता और योग्यता की प्रशंसा सुनकर बंगाल के शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर, श्रीमान् क्राफ्ट साहब, ने आपको बिहार सर्किल की इन्सपेक्टरी देनी चाही। इस पर पण्डित जी ने अपने डाइरेक्टर साहब से सम्मति माँगी। पर डाइरेक्टर ह्वाइट साहब ने आपको अपने सरकिल से बाहर भेजना मंजूर न किया। उन्होंने कहा कि मैं आपको यहीं इन्सपेक्टर बनाऊँगा। मैं अपने सुयोग्य और अनुभवशील कर्म्मचारियों को अन्यत्र भेजना अनुचित समझता हूँ। अतएव रायबहादुर महाशय ने बिहार प्रदेश में विहार करना अस्वीकार कर दिया। 1892 ई. में, ह्वाइट साहब ने पण्डित जी को अवध प्रान्त का स्थानापन्न इन्स्पेक्टर बना भी दिया। पर इसके कुछ ही दिन बाद ह्वाइट साहब पेन्शन लेकर विलायत चले गये। उनकी जगह पर श्रीमान् नेस्फील्ड साहब इन प्रान्तों के डाइरेक्टर हुए।

पण्डितजी सत्यशील, न्यायपरायण और दृढ़प्रतिज्ञ थे। वे किसी का तोषामोद करना अनुचित और नीचता समझते थे। खुशामद आपको पसन्द न थी। इसी से कुछ लोग आपसे अप्रसन्न रहते थे। जिस समय आप अवध में क़ायम मुकाम इंस्पेक्टर थे, इनके विद्वेषियों ने नेस्फील्ड साहब से इनके खिलाफ बातें कह कर उनका चित इनकी तरफ से कलुषित कर दिया। दोनों में अनबन हो गयी। फल यह हुआ कि नेस्फील्ड साहब ने इन्हें फिर बनारस डिवीजन में कायम मुकाम इन्सेपक्टरी पर भेज दिया। कुछ दिन बाद नेस्फील्ड साहब ने कायम मुकाम इन्सपेक्टरी की जगह ही तोड़ दी। उसे तोड़ कर साहब ने 1895 में, पण्डितजी को असिस्टन्ट इन्सपेक्टर कर दिया। परन्तु पंडित जी की तनख्वाह वही रही। और असिस्टेंट इन्सपेक्टरों की तरह ये इन्स्पेक्टरों के मातहत भी नहीं रक्खे गये। ये भी यूरोपियन इन्स्पेक्टरों की तरह सीधे डाइरेक्टर साहब से लिखा पढ़ी करते थे।

1903 में श्रीमान् लिविस साहब ने रुहेलखण्ड डिवीज़न के सुधार के लिए इनकी बदली वहां कर दी। पर वहां जाना पण्डित जी ने पसन्द नहीं किया। अतएव आपने पेन्शन ले ली और बनारस ही में बने रहे।

रायबहादुर पण्डित लक्ष्मीशंकर जी पीछे पीछे अक्सर बीमार रहा करते थे। अन्त में सर्वग्रासी काल ने आपको इस लोक से उठा ही लिया। 2 दिसम्बर 1906 को आप परलोकवासी हुए।

पण्डित जी ने उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिखकर हिन्दी की बहुत सेवा की है। यदि आपके जन्म का गौरव और किसी देश, या इसी देश के और किसी प्रान्त, को प्राप्त होता तो आपकी कोई न कोई यादगार जरूर बन जाती। पर इन प्रान्तों में अपनी मातृभाषा और उसके उन्नायकों की बेक़दरी

देखकर परिताप होता है। यदि कोई सज्जन पण्डित जी का कोई स्मारक चिन्ह स्थापित करने का यत्न करें तो बहुत ही अच्छी बात हो।

नोट : इस निबन्ध को समाप्त करने के पहले मैं पंडित जी के अनुज श्रीमान् पण्डित रमाशङ्कर जी मिश्र एम.ए.सी.एस., मैजिस्ट्रेट और कलैक्टर गाजीपुर, को अनेक धन्यवाद देता हूँ। इस सम्बन्ध में जो कुछ मैंने आपसे पूछा आपने बड़ी कृपा करके बतलाया, और मेरे लेख का अनुमोदन किया। एतदर्थ मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ।

रक्त भ्रमण*

महेन्दु लाल गर्ग

रक्तभ्रमण समझना कुछ कठिन नहीं है। रुधिर एक प्रकार की नलियों में घूमता है और हृदय के फैलने सिकुड़ने से उसमें गति प्राप्त होती है। रुधिरवाही नाड़ियाँ शरीर में फैलते फैलते इतनी सूक्ष्म हो जाती हैं कि वे आखों से दिखाई नहीं देतीं। परन्तु उनमें होकर भी रुधिर आता जाता है। इन नलियों को कैप्लरीज़ कहते हैं। दीवार इनकी ऐसी होती है कि रुधिर के सफेद कण तथा जलांश इसमें से छन कर शरीर का पालन करने में समर्थ होते हैं। यहीं नसें भोजन में से सार पदार्थ ग्रहण करती हैं तथा रुधिर का दूषित भाग पृथक करती हैं। दूषित रुधिर इनसे इकट्ठा होते होते बड़ी नसों में पहुंच जाता है। लाल लहू हृदय से बड़ी नलियों द्वारा शरीर के पालन के लिये चलता है और फिर उन क्षुद्र नलियों तक पहुँचकर सारा अंश खोकर इकट्ठा होते होते बड़ी बड़ी नलियों द्वारा हृदय में वापिस आता है। लाल लहू वाली नाड़ियाँ आरट्रीज कहलाती हैं और नीले रंग वाली "वेन्स"। असल में रुधिर फेफड़ों से चलकर हृदय में आता है और शरीर में घूमकर फिर हृदय में पहुंचता है। तब वह फेफड़ों में आता है। तात्पर्य यह है कि रुधिर अपने एक चक्र में दो बार हृदय से हो कर गुजरता है। सरलता से समझाने के लिए रक्त भ्रमण दो भागों में वर्णन किया जाता है। प्रथम छोटा चक्र अर्थात् फेफड़ों से हृदय तक। इससे शरीर के शुरू होने का काम होता है। दूसरा बड़ा चक्र। इससे शरीर का पालन होता है।

हृदय के बीचों बीच एक ऐसी दीवार होती है जो उसको दो हिस्सों में बाँट देती है। ये हिस्से आपस में मिले रहने पर भी अलग अलग हैं। एक हिस्से में जो रुधिर है वह दूसरे हिस्से वाले से नहीं मिल सकता। छोटे चक्र में रुधिर हृदय के दाहिने भाग से एक आर्ट्री (Artery) द्वारा फेफड़ों में आकर फैल जाता है; फिर वेन्स (Veins) द्वारा वह हृदय को लौट जाता है।

बड़े चक्र में एओर्टा नाम की आर्ट्री द्वारा रुधिर हृदय से निकलता है और फिर छोटी नलियों में बंट जाता है। तब वह कैप्लरीज़ तक पहुँचकर सब शरीर पर फैलता है। यहाँ तक कि फेफड़े की बनावट का पालन भी इसी रुधिर से होता है। हृदय की दाहिनी ओर से जो मैला खून इसमें आता है उससे फेफड़े का पालन नहीं होता। कैप्लरीज में एक ओर से शुद्ध रुधिर जाता है और दूसरी ओर वही निस्सार हो कर वेन्स नाम की नलियों में एकत्र होना प्रारम्भ करता है। ये वेन्स बढ़ते–बढ़ते बहुत मोटी हो जाती हैं। शरीर के निचले भाग का रुधिर एक वेन में और ऊपर के भाग का दूसरी वेन में होकर दाहिनी ओर हृदय में प्रवेश करता है।

---

* *सरस्वती*, अक्टूबर 1908

हृदय के दाहिने बाँये हिस्से में दो दो कोठरियाँ होती हैं। ऊपर की कोठरी आरीकिल (Auricles) और नीचे की विन्ट्रीकिल (ventricles) कहलाती हैं।

आरीकिल्स की दीवारें बहुत पतली, परन्तु विन्ट्रीकल्स की बहुत मोटी होती हैं। बायाँ विन्ट्रीकिल बहुत दृढ़ है। आरीकिल्स केवल रुधिर इकट्ठा करने का काम देती हैं। परन्तु विन्ट्रीकिल सिकुड़ कर उस रुधिर को बाहर निकालती हैं और पंप का काम देती हैं। दाहिने विन्ट्रीकल का काम केवल फेफड़ों तक रुधिर पहुँचाना है। परन्तु बांयें विन्ट्रीकिल को समस्त शरीर में रुधिर घुमाने के लिए भारी जोर लगाना पड़ता है।

यदि हृदय केवल फैलने सिकुड़ने वाला खोखला यंत्र होता तो रुधिर की गति कभी स्थिर न रहती – अर्थात् सिकुड़ने के समय जो रुधिर बाहर निकलता है वह हृदय के फैलने के समय फिर लौट आता। यह दोष जिन खिड़कियों के खुलने बन्द होने से नहीं होने पाता उन्हें वाल्व कहते हैं। ये खिड़कियाँ चार हैं – दो हृदय के दाहिनी ओर और दो बाईं ओर। इनका यह काम है कि ये हृदय से निकले हुए रुधिर को वापिस नहीं आने देतीं। एक मिनिट में हृदय 60–80 बार सिकुड़ता है और शुद्ध रक्त को आर्ट्रीज़ में दौड़ाता है। नाड़ी पर हाथ लगाने से जो लहर मालूम होती है वह हृदय की गति से ही होती है। सिकुड़ाहट के साथ रुधिर आरीकिल्स से विन्ट्रीकिल में आता है और विन्ट्रीकिल्स से आर्ट्रीज में दाखिल होता है। इस समय नाम मात्र हृदय स्थिर होता है, जिससे वेन्स का रुधिर आरीकिल्स में भर जाता है। इसके बाद वह फिर सिकुड़ता है।

जब आरीकिल्स सिकुड़ते हैं तब खिड़कियाँ खुल जाती हैं और खून विन्ट्रीकिल्स में चला जाता है। वेन्स में होकर जो रुधिर आता रहता है उसके दबाव से रुधिर वेन्स के भीतर उल्टा नहीं जा सकता। फिर जब विन्ट्रीकिल्स सिकुड़ते हैं तब खिड़कियाँ उसे आरीकिल्स में वापिस नहीं जाने देतीं। इस समय आरट्रीज़ की किवाडियाँ खुल जाती हैं। जब विन्ट्रीकिल्स सिकुड़ चुकता है तब ये किवाड़ियाँ भी बन्द हो जाती हैं और रुधिर वापिस नहीं लौट सकता। विन्ट्रीकिल्स उस समय तक बन्द रहते हैं जब तक उनमें फिर आरीकिल्स से रुधिर नहीं आता।
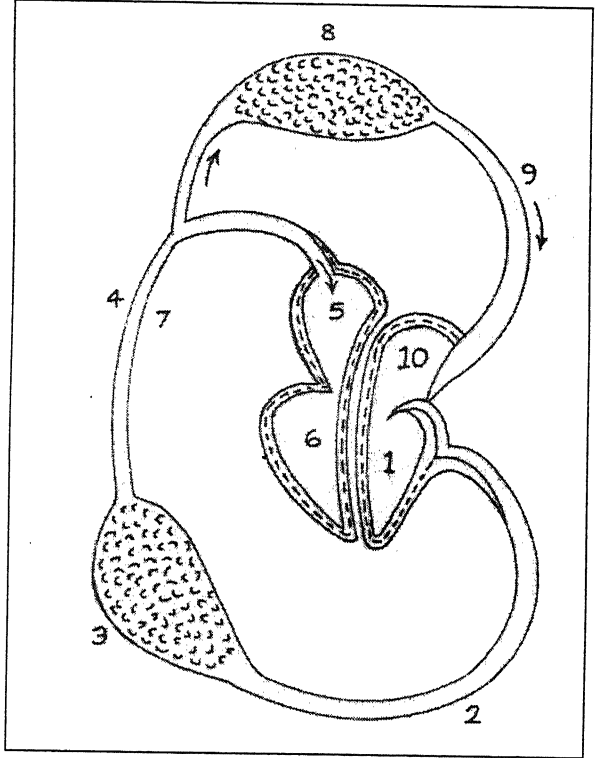
1. लैफ्ट विन्टीकिल, 2. शरीर की आर्ट्रीज, 3. शरीर की केप्लरीज, 4. शरीर की वेन्स, 5. दाहिना आरीकिल, 6. दाहिना विन्ट्रीकिल, 7. फेफड़े की आर्ट्रीज, 8. फेफड़े की केप्लरीज, 9. फेफड़े की वेन्स, 10. बायां आरीकिल

रक्तभ्रमण का मार्ग इस प्रकार समझना चाहिए :—

दाहिने आरीकिल से दाहिने विन्ट्रीकिल में, वहाँ से फेफड़े में जाने वाली आरट्री में। फेफड़े में रुधिर कैप्लरीज़ में बंट जाता है। ये कैप्लरीज़ फेफड़े की उन पोली[1] कोठ़रियों की दीवार में फैली होती हैं जिनमें साँस लेने की हवा ठहरती है। यहाँ रुधिर शुरू होकर जिन नलियों के द्वारा हृदय में लौटता है वे पल्मोनरी वेन्स कहलाती हैं। ये नलियाँ बाँये विन्ट्रीकिल में आकर खतम होती हैं। वहाँ से रुधिर बाँये विन्ट्रीकिल में दाखिल होता है और फिर एआर्टा नाम की मोटी नली द्वारा सिर, धड़ और हाथ—पैर की आरट्रीज और केप्लरीज में बँट जाता है। शरीर के अवयवों का पालन करके और अस्वच्छ होकर वेन्स के द्वारा रुधिर दो बड़ी बड़ी मोटी नलियों से दाहिने आरीकिल में जा पहुंचता है। फेफड़ों में रुधिर का शुरू होना और शरीर का पालन करके लौटना।

स्मरण रखना चाहिए कि रुधिर के शुरू होने तथा शरीर का पालन करके लौटने का काम साथ ही साथ होता रहता है। हृदय के सिकुड़ने से मैला खून साफ होने के लिए फेफड़ों में चला जाता है और साफ खून शरीर के पालन के लिए नाड़ियों में पहुँचता है। मनुष्य यदि बैठा या खड़ा हो तो उसका हृदय आराम से क़ाम करता है।

---

1. खोखली

डारविन का सिद्धांत*

गिरजादत्त बाजपेयी

डारविन, जिनका पूरा नाम चार्ल्स राबर्ट डारविन था, बड़े विख्यात प्राणिविद्या विशारद हो गये हैं। उनका जन्म 1809 ईसवी में और उनकी मृत्यु 1882 ईसवी में हुई। उनके पिता ने उनके लिए पादड़ियों का पेशा चुना था, परन्तु लड़कपन ही से उनकी रुचि जीवधारियों की व्युत्पत्ति के विषय के अध्ययन की ओर इतनी थी कि उन्होंने अपना सारा जीवन इसी विषय की खोज में लगाने का इरादा कर लिया। वे बीगल नामक जहाज़ पर लगभग 7 वर्ष तक दुनिया के अनेक भागों में घूमते और जानवरों की खूब देखभाल करते रहे। उनका सिद्धांत इसी जांच का परिणाम है।

डारविन ने पहले अपनी सैर का हाल पुस्तकाकार प्रकाशित किया। फिर, 1859 ईसवी में, "आरिजिन आव् स्पिशीज" (Origin of species) नामक ग्रन्थ में जीवधारियों के विषय का अपना प्रसिद्ध सिद्धान्त संसार के सामने रक्खा। इस पुस्तक में इस बात का निरूपण है कि सारे जीवधारी, कुछ प्राकृतिक–नियमानुसार, एक ही प्रकार के जीवतत्त्व से उत्पन्न हुए हैं। उनमें विभिन्नता क्रम से हुई है। भिन्न भिन्न जाति के प्राणियों को ईश्वर ने, खास तौर पर अलग अलग नहीं बनाया। इसके कुछ दिनों बाद 1881 में, उन्होंने अपना तीसरा ग्रन्थ "डिसेंट आव् मैन" (Descent of Man) प्रकाशित किया। इसमें उन्होंने उसी पूर्वोक्त सिद्धांत की पुष्टि की और लिखा कि मनुष्य भी इन्हीं नियमों के अनुसार पैदा हुआ है और बदलते बदलते अपनी वर्तमान अवस्था में पहुँचा है। 1837 से 1882 ईसवी तक उन्होंने अपनी सारी ज़िन्दगी इन्हीं सिद्धांतों की खोज, पुष्टि और प्रचार में व्यतीत की।

वे एक गाँव में सादी चाल से रहते और केवल विद्या का व्यसन रखते थे। पहले पहल, 1859 ईसवी में, जब उनका इस विषय का पहला ग्रन्थ निकला तब सारे योरप में हाहाकार मच गया। उनको हज़ारों गालियाँ मिलीं और लोगों ने उनको पागल समझा। परन्तु, उनके जीवन काल ही में योरप के प्रायः सारे विज्ञानवेत्ता और बहुत से ईसाई धर्म के नेता भी उनके इस सिद्धांत को मानने लगे।

डारविन का मूल सिद्धांत यह है कि संसार में जितने जीवधारी हैं सभी तुच्छ से तुच्छ वनस्पति से लेकर मनुष्य तक – कुछ प्राकृतिक नियमों के अनुसार एक दूसरे से स्वयं उत्पन्न हुए हैं और उनका उन सूरतों में कोई खास बनाने वाला नहीं। डारविन नाास्तिक न थे, परन्तु उनका मत था कि ईश्वर ने सजीव और निर्जीव सबके लिए नियम– विशेष बना दिये हैं। उन्हीं के अनुसार सारा सांसारिक काम चल रहा है। ईश्वर कुम्हारों की तरह गढ़ने नहीं बैठता। जीव विद्या में पूर्वोक्त सिद्धांत वही स्थान रखता है जो योरप के विद्वानों की राय में ज्योतिष में न्यूटन का आकर्षण शक्ति वाला

* *सरस्वती*, जनवरी 1912

सिद्धांत। न्यूटन से पहले योरप के विद्वानों का बहुधा यह मत था कि ईश्वर स्वयं ही आकाशीय पिण्डों को अपने अपने स्थान पर रखता और घुमता है। न्यूटन ने, यद्यपि वह ईसाई धर्म में पूर्णविश्वास रखता था, यह निश्चय किया कि संसार के सारे पदार्थ अपने अपने स्थान पर आकर्षण शक्ति के प्रभाव से स्थिर हैं और साधारणतः इसमें ईश्वर का कोई दखल नहीं। इसी प्रकार डारविन के मतानुसार प्राणिमात्र किसी प्राकृतिक नियम से पैदा होते और मरते हैं; ईश्वर उसमें हस्तक्षेप नहीं करता। यह विषय इतना बड़ा है कि कई किताबों में भी पूरे तौर पर इसका लिखा जाना असम्भव है। इससे यहाँ पर हम और जीवों का वर्णन या उनकी उत्पत्ति की भिन्न भिन्न श्रेणियों पर तद्विषयक नियमों का वृत्तांत नहीं लिखते। हम केवल उन प्रमाणों को संक्षेप में लिखते हैं जिनसे यह अनुमान किया जाता है कि मनुष्य भी जीवों की तरह ही उत्पन्न हुआ है।

बन्दर सबसे उच्च श्रेणी का जानवर है। उसी के रूप का, क्रम क्रम से रूपान्तर होकर, मनुष्य का विकास हुआ है। इस बात के प्रमाण :—

1. अब तक कई प्रकार के ऐसे बन्दर मौजूद हैं जिनके पूंछ नहीं है और जो बहुधा दो ही पैरों के बल चलते हैं।
2. इनमें से एक प्रकार के बन्दर सूर्य डूबने से पहले पेड़ों के नीचे टहनियाँ जमा करते हैं और उन पर घास बिछा कर सोते हैं। जाड़ों में वे अपने बदन को पत्तियों से ढक लेते हैं।
3. किसी किसी जाति के बन्दर पेड़ों पर छोटे छोटे झोपड़े से बनाते हैं और उन्हीं में अपने बच्चे रखते हैं।
4. ऐसी उन्नत बुद्धिवाले बन्दरों के शिकार को जब कोई जाता है तब वे पेड़ों की डालियां तोड़ तोड़ कर उस पर फेंकते हैं। शिकारी से लड़ते समय वे गोल की बँदरियों और बच्चों को अपने साथ नहीं रखते।
5. आठ या दस वर्ष की उम्र तक बच्चे माँ के साथ ही रहते हैं, और बारह तेरह वर्ष की उम्र तक जवान नहीं होते।
6. एक मनुष्य ने तो यह भी देखा है कि माँ अपने छोटे बच्चे को गोद में लेकर एक नदी के किनारे गई। वहां उसने उसका मुँह धोया। यद्यपि बच्चा चिल्लाता रहा, तथापि उसने उसके रोने की परवाह नहीं की।
7. कई बन्दरों को विशेष शिक्षा भी दी गई है। एक तो पाँच तक गिनती गिन सकता था, छुरी कांटे से खाता था और बिना बाँधे हुए सावधानी से कुरसी पर बैठा रहता था।

एक साहब वर्णन करते हैं कि उनके पास एक ऐसा ही पालतू बन्दर था। वह बड़ा चंचल था, चीज़ें इधर की उधर किया करता था। परन्तु डाँटने पर चुप बैठ जाता था। एक बार वे सिर झुकाये लिख रहे थे कि उन्होंने उसको साबुन उठाकर ले जाते हुए देखा। थोड़ी देर तक तो साहब कनखियों से उसे देखते रहे; फिर उन्होंने जरा खाँस दिया। इस पर बन्दर ठिठक कर लौट पड़ा और बट्टी को जहाँ की तहाँ फिर उसने रख दिया।

यह न समझना चाहिए कि जिन जानवरों की ये बातें हैं वे शायद बन्दर न हों, कदाचित् वे बनमानुस हों। नहीं, वे बन्दर ही हैं। उनके बदन पर बड़े बड़े रोयें होते हैं। वे दरखतों पर उछलते कूदते हैं और बहुधा हाथ पैर दोनों ही के बल चलते भी हैं।

ये तो मोटी मोटी बातें हैं जो डारविन के मत को पुष्ट करती हैं। इनके अतिरिक्त और अनेक सूक्ष्म बातें भी हैं। उनमें से भी दो एक सुनिए :

1. मनुष्य की ठठरी में अब तक दुम की जड़ पाई जाती है और अच्छी तरह जाँच करने से प्रकट होता है कि अभी तक हम लोगों के पैरों की हालत ऐसी नहीं है कि सीधे खड़े रहना बिलकुल प्राकृतिक कहा जा सके।
2. भलीभाँति परीक्षा करने से मालूम होता है कि सब से उच्च प्रकार के बन्दरों में और सब से अधिक जंगली आदमियों में उतना भी अन्तर नहीं जितना कि इन जंगली आदमियों और सभ्य मनुष्यों में है।
3. बीस पच्चीस हज़ार वर्ष पहले के मनुष्यों की ठठरियाँ बन्दरों की ठठरियों से अधिक मिलती जुलती हैं। उस समय मनुष्य के सिर और हाथ अधिक लम्बे, और ठुड्ढी और कपाल बहुत छोटे होते थे। अफ़्रीक़ा के हबशी और योरप के सभ्य मनुष्यों में अब तक यह भेद कुछ कुछ बाकी है।

यह विषय बड़ा गूढ़ और गम्भीर है। इसकी सब बातें जानने के लिए डारविन के ग्रन्थ पढ़ने चाहिए। हक्सले नाम के विद्वान ने भी इस विषय पर एक ग्रन्थ लिखा है। उसका नाम है — "Man's Place in Nature"। ये ग्रन्थ बड़े बड़े हैं; तथापि सब लोगों के सुभीते के लिए विलायत के ग्रंथ प्रकाशकों ने इनके पाँच पाँच आने तक के संस्करण निकाले हैं। डारविन के सिद्धान्तों पर हमारे अनेक देशवासी हँसते हैं। परन्तु हँसने या दिल्लगी करने से किसी सिद्धांत का खण्डन थोड़े ही हो सकता है। युक्तिपूर्ण प्रमाण देने चाहिए।

कीड़ों के रंग*

द्वारिकानाथ मैत्र

संसार में जिधर ही दृष्टि फेरिये सर्वत्र सुशृंखला विराजमान है, मानो यह ब्रह्मांड एक कल[1] हो। सब काम नियम से हो रहे हैं, कहीं भी कुछ व्यतिक्रम नहीं होने पाता। आकाश में चमकते तारे एक एक सूर्य हैं। हम लोगों का सूर्य भी एक तारा है। सबसे पास वाले तारे से पृथ्वी पर प्रकाश आने के लिए सवा चार वर्ष लगते हैं, जबकि प्रकाश की चाल प्रति सेकेंड एक लाख मील है। अनन्त तारका विस्तृत विशाल ब्रह्माण्ड में माध्याकर्षण के नियमानुसार ग्रह, उपग्रह तारे अपने अपने स्थान पर भ्रमण कर रहे हैं। गर्मी से पदार्थ हलका हो ऊपर उठता है और ठंड लगने से घनीभूत होता है। इसी नियम पर ऋतु परिवर्तन हो रहा है। विद्युत हास्यमयी वर्षा के गिरिशृंग पर अपना निशीथ निविड़ कुन्तलमाला के बिखरा देने से जलधार धारापात के होने का यही कारण है। मनुष्य और पशु कार्बन डाइऑक्साइड नाम की विषैली वाष्प निर्गत कर रहे हैं, यही वाष्प उद्भिदों का खाद्य है। इस प्रकार से वायु शुरू होकर हम लोगों के जीवनोपयुक्त होती है। ऊँची भूमि की मिट्टी नदी द्वारा क्रमशः नीची भूमि को पाट रही है। इस प्रकार गंगा, नील, मिसिसिपी इत्यादि नदियां पृथ्वी का नवीन त्वगावरण[2] निर्मित कर रही हैं। दूर जाने की आवश्यकता नहीं अपने शरीर की बनावट की ओर ही दृष्टिपात कीजिये। प्रत्येक अवयव की बनावट एक निर्दिष्ट कार्य को बताते हैं। अन्नदाता ने प्रत्येक जीव के खाद्य का बड़ा विचित्र बन्दोबस्त किया है। उनका कठिन आदेश यह है कि मैं तुम लोगों के लिए कौड़ी खरचने वाला नहीं हूं। यदि तुम लोग परस्पर को पकड़ पकड़ खाओगे तो किसी को कष्ट न होगा। अतएव उस परम कारुणिक मालिक के आज्ञानुसार गाय घास चरती है, सिंह गाय पर छापा मारते हैं, घास धान के भोजन का हिस्सा लगा धान का संहार कर रहे हैं और अन्नाभाव से दुर्भिक्षहत मनुष्य वसुन्धरा की गोद में जीर्ण कंकाल को फैला कृमि कीट, स्यार कुत्ते और कौये गीध को रसद पहुंचा रहे हैं। क्या ही अपूर्व नियम है !

इन सब बातों पर विचार करने से वास्तव में सृष्टिकर्त्ता की कारीगरी पर मोहित हो जाना पड़ता है। यह बात स्वतः मुँह से निकल पड़ती है 'तेरे काम तुही जाने'।

कीड़े नाना प्रकार रंग वाले होते हैं। यह रंग रूप इनकी भलाई के लिए होता है। प्रकृति में हर एक रेखा के साथ तात्पर्य का सम्बन्ध है और वह नियमाधीन है। कीड़ों के भिन्न भिन्न रंग को धारण करने का उद्देश्य स्वच्छन्दता–पूर्वक जीवन–यापन करना है। Struggle for existence and survival of the fittest अर्थात् अस्तित्व का संघर्ष और श्रेष्ठ का उद्भव का नियम अनन्त काल से चला आता है। जो देश काल के अनुसार अपने को गठित नहीं करते उन्हें धराधाम से प्रकृति वहिष्कार

---

* *मर्यादा*, दिसम्बर 1912

कर देती है। इसको Natural selection वा प्राकृतिक निर्वाचन कहते हैं। इस जीवन–युद्ध में जिसमें कुछ सामर्थ्य वा पटुता है वही अपनी वंश–रक्षा कर सकता है। दुर्बल और अपटु का यहाँ कोई काम नहीं। यह कहना कठिन है कि कौन किस उपाय से जीत रहा है। कोई तो कटीले तीखे दरांतीदार दांतों के बल, कोई मज़बूत सींगों के ज़ोर से और कोई अपनी बुद्धि के भरोसे से जीतता है। अपनी सामर्थ्य के भरोसे सिंह शार्दूल निर्भय विचरा करते हैं। 'य पलायति स जीवति' की कहावत को चरितार्थ करने वाले हरिन और खरगोस हैं।

भिन्न भिन्न कीट द्वारा कीट आक्रान्त होते हैं। इसके अतिरिक्त सभी कीड़ों को पक्षी, बिच्छू, छछुंदर, मेंढक, गिरगिट, सांप इत्यादि खाते हैं। इन सबसे बचने के लिए कीट नाना प्रकार के उपाय का अवलम्बन करते हैं:– 1. अस्वादकर होना 2. अस्वादकर की नाईं होना, 3. दृष्टि बचा जाना और 4. डराना।

1. बहुत से खराब स्वाद के कीड़े होते हैं जिसका अनुभव हम स्वयं चिड़ियों को खिला कर कर सकते हैं। बाज बाज[3] एक प्रकार का दुर्गंध युक्त रस वा तेल निर्गत करते हैं। पक्षियों को कीड़ों के पकड़ते ही निर्गत रस का असर फ़ौरन ही होता है और वे उन्हें छोड़ देती हैं। जिनमें रस निर्गत करने का गुण नहीं है उनका शरीर अस्वादकर मांस–पिंड से बना है या जो वस्तु वे खाते हैं वह अस्वादकर होता है। पूर्णतः रक्षित होने के लिए ये अस्वादकर कीड़े चेतावनी रंग के होते हैं। उनके रंग ही से यह प्रतीत होता है कि यह अस्वादकर हैं; अतएव उन्हें कोई नहीं छेड़ता और भी बड़े कड़े चमड़े के होने से या देह पर कांटा वा किसी नोकीली वस्तु के रहने से चिड़ियां बहुधा कम इन्हें छूंती हैं। प्रायः यह देखा जाता है कि देह पर बाल वाले झबरे कीड़ों (Catter piller) को चिड़ियाँ नापसंद करती हैं। इस उपाय की यहां तक चरम सीमा हो गई है कि बाज़ बाज़ कीड़े इन बालों से विष निर्गत करते हैं। बाज बाज कीड़े अपने को अपने मल में लपेटे फिरते हैं। किसी घृणाकर वा अखाद्य वस्तु में रहते हैं। किसी किसी का गुह्यद्वार ऐसा गठित होता है कि मल पीठ पर पड़ता है। ये सब उपाय शत्रुओं से बचने के लिए अवलम्बन किये गये हैं।
2. अस्वादकर की नाईं होना। यह दो प्रकार का होता है। (क) किसी घृणाकर वस्तु की नाईं दृष्टिगत होना जैसे चिड़ियों का मल। निम्बू की तितलियों का बच्चा (Larua of papelio demolis) ऐसे आकार का होता है। (ख) किसी ऐसी वस्तु की नाईं दृष्टिगत होना जो स्वयं असुखकर हो।
   यदि कोई जीव किसी भयानक या जोरावर जीव का अनुकरण कर सके तो अपने जीवन–युद्ध में वह उपाय उसे उपयोगी हो सकता है। बर्रे को उनके डंक मारने के कारण कोई दूसरा जीव सिवा लाल बर्रे के नहीं छेड़ता। अतएव यदि कोई मक्खी बर्रे का आकार धारण कर ले तो उसे उतना शत्रुओं का भय न रहे। बहुत सी मक्खियों और तितलियों को ऐसा करते पाया गया है, वे निर्भय से विचरा करती हैं। मक्खियां बर्रे, मधुमक्खी और तितलियों का अनुकरण करती हैं।
3. बहुत से कीड़े रात को चरते हैं, जब पक्षियां शयन करती हैं। इससे उनको बचने का अच्छा अवसर मिलता है; पर दिन में इनको अपनी रक्षा अवश्य करनी चाहिये। किसी दूसरी वस्तु का भेष धारण कर धोखा दे दृष्टि बचा जीवनरक्षा करने के सिद्धांत पर कीड़े पास की नाना प्रकार की वस्तु का अनुकरण करते हैं जैसे हरी घास, सूखे पत्ते, फूल इत्यादि। मि. बेल्ट का कथन है कि टिड्डियां हरी घास का अनुकरण करती हैं। एक बार बहुत सी चींटियां एक टिड्डी को घेरे थीं, वह सन्नाटा मारे पड़ा था मानो घास का पत्ता

पड़ा होय क्योंकि ज़रा हिलने से चींटियां यहां न छोड़तीं और यदि उड़ जायं तो वहां चिड़ियों से जान बचना कठिन था। ऐसी अवस्था में सिवाय इसके और कोई दूसरा चारा न था।

कदाचित धोखा देने वाले रंग का यहीं से आरम्भ हुआ हो। समय के फेर से इनमें विशेष प्रकार का रद्दोबदल हुआ है। इन पत्तों की नाईं भेष बदलने वाले कीड़ों में हमें प्रारम्भिक भेष बदलना ज्ञात होता है। पर चिड़ियों की दृष्टि बड़ी तीखी होती है और जब चिड़ियों ने इन्हें हिलते चलते देख पकड़ना शुरू कर दिया तो इनमें खलबली पड़ गई और इन्हें दूसरे उपाय का अवलम्बन करना पड़ा। इन कीड़ों ने जब देखा कि चारों ओर चींटियां बड़े मज़े में घूमती हैं तो इन्होंने इनका अनुकरण करना आरम्भ कर दिया। परिवर्तन सर्वदा हो रहा है और प्राकृतिक निर्वाचन इसके प्रतिफल से जीवों को समयोपयुक्त सांचे में ढालता है। इस तरह चिड़ियों के पास से इन कीड़ों के चले जाने पर भी चिड़ियां दूसरे कीड़ों के धोखे इन्हें नहीं खातीं। प्रकृति के ऐसे ही विचित्र नियम हैं; उसने सर्वत्र अपना माया–जाल फैला रक्खा है।

बोर्नियो में एक प्रकार के कीड़े की पीठ पर कांटे होते हैं जिनमें वह फूल की कलियों को खोंस लेता है, पर पत्तों को नहीं खोंसता। अतएव छोटा होने के कारण वह फूल के मखमल में छिप जाता है।

4. चौथा उपाय शत्रुओं को डरा देना है। कीट तत्त्ववेत्ता इस विषय का वर्णन बड़ी सतर्कता से करते हैं; क्योंकि जो वस्तु हमें भयावनी मालूम होती है सम्भव है कि उनसे शिकारी कीट वा चिड़ियों को भय न होता हो। अटलस माथ वा तितली के पंख गोखुर सांप की नाईं चिड़ियों को दूर से देख पड़ते हैं। नींबू की तितली का बच्चा सांप के ऐसा देखने में होता है। इस विषय की अच्छे प्रकार पर आलोचना नहीं की गई है। सम्भव है कि जैसा हमें देख पड़ता हो इसका वास्तविक रूप कुछ और ही हो।

यही नहीं कि कीट कुछ आत्मरक्षा के लिए ऐसा भेष बदलते हों, शिकारी कीड़े भी शिकार को धोखा देने के लिए भेष बदलते हैं। बोर्नियो और मलयद्वीप–समूह में एक प्रकार का कीट मैन्टिस (Mantis) पाया जाता है जो बिलकुल फूल सा देखने में होता है। एक मनुष्य का कथन है कि जब मैंने उस डाल की, जिस पर कीड़ा बैठा था, अच्छी तरह परीक्षा की तो मैं यह न पहिचान सका कि कौन कीट और कौन पुष्प का अंश है। दोनों के रंग रूप में कुछ अन्तर ही न था। अतएव किसी दूसरी वस्तु के अनुकरण करने का आत्मरक्षा के अतिरिक्त यह दूसरा कारण है। मैन्टिस चुपचाप पौधे पर बैठे रहते हैं और जब कोई मक्खी फल जान उनके पास आती है तो वह झपट कर उसे पकड़ लेता है और गड़प जाता है।

सुन्दरता में तितलियां सर्वोच्च हैं। बेट्स का कथन है कि ब्रेजिल के जंगलों में इनका उड़ना ऐसा ज्ञात होता है मानों फूल के पत्ते उड़ रहे हों। हिमालय की तराई में फूल इनकी सुन्दरता पर झख मारते हैं। संसार में मलयद्वीपपुंज की तितलियां सुन्दरता में अद्वितीय हैं। डाक्टर वालेस ऐसे वैज्ञानिक और तत्त्ववेत्ता इनकी सुन्दरता पर मुग्ध हो गये थे। क्या कारण है कि यह तितलियां जिनके पंख की तुलना सिवा दो एक पक्षी के पंखों के और कोई वस्तु नहीं कर सकती, इस प्रकार रंगयुक्त हैं; इस प्रश्न का उत्तर प्राकृतिक निर्वाचन के आधार पर आत्मरक्षा वा शिकार करने के लिए भेष बदलना नहीं दे सकता। प्राकृतिक निर्वाचन के अतिरिक्त और कोई वस्तु है जो जीवों की सुन्दरता की व्याख्या करने में समर्थ है और वह योनि निर्वाचन (Sexual Selection) है। स्वामी के

निर्वाचन विशेष कर सुन्दरता पर निर्भर करता है। अधिक सुन्दर जीव लगातार निर्वाचित किये जा रहे हैं और इसका प्रतिफल यह होता है कि सन्तानगण और भी सुन्दर दिनबदिन हो रहे हैं। निर्वाचन करने का भार साधारणतः पुरुष ही के ऊपर रहता है क्योंकि ये ही जोड़ा का अनुसंधान करते हैं; स्त्रियां केवल समागम ही जानती हैं। यह पुरुषत्व गुण सब जीवों में समान नहीं है। किसी किसी जाति में निर्वाचन का अधिकार दोनों स्त्री पुरुष को होता है। चिड़ियों में निर्वाचन का गुण सम्पूर्ण जीवों की अपेक्षा विशेष प्रस्फुटित है। मयूर में नर विशेष सुन्दर होते हैं और कबूतर में दोनों नर नारी समरूप से सुन्दर होते हैं। यह सभी जानते हैं कि सुन्दर नर–पक्षी मादा के सामने अपनी सुन्दरता को विशेष हाव भाव द्वारा प्रगट करता है। लोगों ने इसे विशेष कर मयूर और कबूतर में देखा होगा। इससे वह मादा का ध्यान आकर्षित करने की चेष्टा करता है। सुन्दरता के परिदर्शन करने का अवश्य कोई विशेष उद्देश्य होता है; नहीं तो वृथा शक्ति और समय के नष्ट करने का और दूसरा कारण क्या हो सकता है? तितलियों को मैथुन करते समय किसी ने विशेष लक्ष्य कर नहीं देखा क्योंकि इसमें बड़ी देर लगती है। चिड़ियों की भांति मैथुन करते समय ये दृष्टिगोचर नहीं होते। पर इतना अवश्य है कि इनमें पुरुष स्त्री की अपेक्षा अधिक सुन्दर होते हैं और वे मादा के चारों ओर घूमते हैं। मादा उन्हें हटा देती है। इससे निर्वाचन करने का आभास मिलता है। प्रतिद्वन्दी पुरुष भी वहां रहते हैं और उनमें विशेष उत्साह देख पड़ता है। यही इनका स्वयंबर है।

मधुमक्खियों की नाईं ये रंग का अनुभव कर सकते हैं। पर बहुतों का कथन है कि ये आकार का अनुभव करने में असमर्थ हैं। पर सूरत क्या है? जहां पर दो रंग आरम्भ होते हैं वहीं से एक रेखा उत्पन्न होती है और रेखाओं का समवाय ही आकार है। आकार स्वयं कोई वस्तु नहीं है, यह दो या उससे अधिक वस्तु को पृथक करने वाली रेखा है। यदि तितली रंग के बहार को अच्छी तरह देख सकती है तो यह कहना बिल्कुल तर्कशून्य है कि इन्हें आकार का अनुभव नहीं होता। मि. स्कुडर का कथन है कि मानटोबा में तितलियों को कभी कभी सूखी हुई पीली पत्तियों से फूल का भ्रम हो जाता है। वाह कैसा तर्क है ! हम लोगों में नित्य प्रति राजा, सेनापति, मन्त्री, नौकर चाकर सैकड़ों गलती करते हैं पर जो कुछ दोष है वह इन बेचारी तितलियों के ऊपर ही मढ़ दिया ! सच है अपना दोष नहीं देख पड़ता। बनावटी फूल या किसी और वस्तु के पास जाकर तितलियां लौट आती हैं; भूल सभी से होती है सो इससे यह सिद्ध नहीं होता कि तितलियों को आकार का अनुभव नहीं होता। बेट्स का कथन है कि तितलियां मकड़ियों के जाल को बचाकर या उसके भीतर से बड़ी खूबी के साथ निकल जाती हैं। यदि तितलियां दोषयुक्त दृष्टि से मकड़ी के जाले के भीतर से सरलपूर्वक निकल जाती हैं तो हम पाठकों के ऊपर इस बात का निर्णय करना छोड़ देते हैं कि हीनदृष्टि बुड्ढे भी बिना चश्मे के सहायता के अत्यन्त छोटी वस्तु का काम बिना अनुभव किये करते होंगे या कर सकते हैं।

---

1. मशीन, यंत्र   2. चमड़ी रूपी आवरण   3. कोई कोई

बिना सिंचाई के खेती*

मुखत्यार सिंह जी वकील+
सम्पादक 'विज्ञान कल्प तरु'

दुर्भिक्ष भारत के लिए अब एक साधारण बात है। कोई वर्ष भी ऐसा नहीं जाता जिसमें भारतवर्ष के किसी ने किसी कोने में अकाल की असह्य पीड़ा का घोर और भयानक शब्द न सुनाई देता हो। भारत के नेताओं के उन्नति के प्रोग्राम में दुर्भिक्ष का भी एक विशेष भाग है। भारत सरकार को भी इसके लिए प्रत्येक वर्ष कुछ न कुछ धन छोड़ना ही पड़ता है। यदि दुर्भिक्ष ऐसे ही कभी 20–30 वर्षों पर पड़ता होता तब इसकी ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता न थी किन्तु जब कि यह नित्य प्रति रहने वाला रोग बन गया है तब तो इस ओर विशेष ध्यान देने और इसके दूर करने के उपाय सोचने की विशेष आवश्यकता है।

यह सिद्धांत रूप से कहा जा सकता है कि वर्षा के ठीक समय पर न होने से ही दुर्भिक्ष पड़ता है। यद्यपि इस वर्ष दो तीन स्थानों पर वृष्टि के अधिक हो जाने के कारण लोगों को बड़ा कष्ट उठाना पड़ा और सहस्त्रों मनुष्य और पशु इसकी भेंट हुए किन्तु मोटी दृष्टि से अनावृष्टि ही इस दुर्भिक्ष का कारण है। यदि भारतवर्ष में ऐसे उपाय किये जाँय जिससे अनावृष्टि होनी असम्भव हो जाय अथवा इसका कोई भी भय न रहे तो दुर्भिक्ष होने की कोई भी सम्भावना न रहे।

भारतवर्ष के पुराने इतिहास से कृत्रिम वर्षा करने का पता चलता है किन्तु अभी तक विज्ञान ने इस ओर विशेष उन्नति नहीं की है अतः इस पर विचार करना निष्फल है। नहरों तथा कूपों से पूरी तौर से आपपाशी[1] होने पर भी यह कार्य भली भांति हो सकता है किन्तु इसके लिए बहुत ही अधिक धन की आवश्यकता है। यदि कोई ऐसा उपाय निकल आवे जिससे पानी की आवश्यकता ही न रहे अथवा इतने कम की आवश्यकता हो कि अनावृष्टि की दशा में भी उसका प्राप्त होना सम्भव हो तो कार्य बड़ी सुगमता से चल सकता है।

संसार के वैज्ञानिक विद्वानों ने हिसाब लगाकर बताया है कि एक फ़सल को जितनी मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है उससे कई गुना विशेष पानी सूर्य की किरणों से उड़ जाता है और वायु में निरर्थक नष्ट होता है। उपर्युक्त सिद्धांत के समझने के लिए पाठकों को निम्नलिखित हिसाब से कुछ सहायता मिलेगी:–

जितने पौधे संसार में पाये जाते हैं यदि उनको धूप में सुखाकर तौला जावे, अथवा रासायनिक विश्लेषण द्वारा उनकी परीक्षा की जावे तो उनमें जल की मात्रा 32 प्रति सैकड़ा से 97

★ *मर्यादा*, अप्रैल 1914

+ दुर्भिक्ष अंक के लिए विशेष रूप से आमन्त्रित लेख

प्रति सैकड़े तक होती है। इसका अर्थ है कि यदि किसी खेत में 3 मन अन्न उत्पन्न हो और तीन मन ही भूसा तो उस खेत में पैदा हुए पौधों में 6 मन जल से न्यून ही जल होगा। किन्तु इससे कहीं अधिक मात्रा में जल की पौधों के लिए आवश्यकता होती है। जिस प्रकार मनुष्य एक वर्ष के भीतर अपने परिमाण से भी कहीं अधिक पानी पी जाता और भोजन करता है ठीक उसी प्रकार से पौधों को उनके भार से कहीं अधिक जल की आवश्यकता होती है। इसका कारण यह है कि पौधों की जड़ पृथ्वी में से धीरे धीरे पानी चूसती रहती है और उस पानी का बहुत सा भाग पत्तों द्वारा सूर्य की गर्मी से उड़ता रहता है। पौधों में इस प्रकार पानी का एक स्रोत नित्य प्रति बहा करता है। अनेक वैज्ञानिक महापुरुषों ने पता लगाया है कि प्रत्येक फसल के लिए कितने पानी की आवश्यकता होती है। जरमनी देश में एक पौंड सूखा पौधा तथा अन्न उत्पन्न करने के लिए गेहूं को 338 से 459 पौंड जल की, जई को 376 से 664 पौंड की और जौ को 310 से 431 पौंड तक जल की आवश्यकता होती है। यह आवश्यक नहीं है कि सब देशों में पानी की इतनी ही मात्रा की आवश्यकता हो। जिन देशों में आकाश प्रायः मेघाच्छन्न नहीं रहता है तथा जहाँ वायु सूखी और गर्म रहती है वहां इससे कहीं अधिक जल की मात्रा की आवश्यकता होती है। ऊटाह देश में जो जरमनी से अधिक गरम है एक पौंड गेहू के लिए 1048 पौंड पानी की आवश्यकता होती है। भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों में किस फसल को कितना जल आवश्यक है यह ठीक नहीं कहा जा सकता क्योंकि भारतवर्ष में इस बात का कभी कोई हिसाब नहीं लगाया गया है। यदि 750 पौंड जल की मात्रा प्रत्येक प्रकार के अन्न के लिए पर्याप्त समझा जाय तो 1 मन अन्न के लिए 60000 पौंड पानी की आवश्यकता होगी। किन्तु एक मन अन्न के साथ प्रायः एक मन भूसा भी होगा। इस हिसाब से 120.000 पौंड पानी 1 मन अन्न और भूसे के लिए आवश्यक है। किन्तु साधारणतया 15 मन अन्न एक एकड़ में उत्पन्न होता है। उपर्युक्त हिसाब से 15 मन के लिए 1800,000 पौंड जल की आवश्यकता हुई। एक इन्च जल की मात्रा एक एकड़ में पड़ने से 126875 पौंड होती है अर्थात् यदि 8 इन्च वर्षा हो तो वह पानी सारी गेहूं की फसल को पकाने के लिए पर्याप्त होगा। घोर से घोर दुर्भिक्ष में भी इससे अधिक जल भारत में पड़ता है। बीकानेर जैसे देश में भी वृष्टि 11 इंच के लगभग होती है, यदि किसी वर्ष में जल कम भी पड़ा तो उससे पहिले वर्षों में वर्षा अधिक हो जाने से वह कमी पूरी की जा सकतीहै।

उपर्युक्त कथन से पाठकों को यह स्पष्ट हो गया होगा कि यदि जल निरर्थक न जाने पाये तो यह सम्भव है कि बहुत ही कम वृष्टि होने पर भी अच्छी उमदी फ़सल पैदा की जा सके किन्तु जितना जल पृथ्वी पर पड़ता है उसका बहुत सा भाग तो पृथ्वी पर गिरकर बह जाता है और इस प्रकार नदियों नालों में गिरकर किसानों के काम का नहीं रहने पाता। इसके अतिरिक्त बहुत सा भाग पृथ्वी के नीचे चला जाता है और वह जड़ों से बहुत नीचे चला जाने के कारण पौधों के काम में नही आ सकता। जो पानी अधिक देर तक खेतों में बना रहता है वह भी धीरे धीरे सूर्य की गरमी से उड़ जाता है। तात्पर्य यह कि यदि वर्षा का समस्त जल, चाहे वह कितना भी थोड़ा क्यों न हो, इन तीनों बाधाओं से बचा कर पृथ्वी में संचय किया जा सके तो बिना किसी प्रकार की सिंचाई के खेती हो सकती है।

पर क्या यह सम्भव है कि सूर्य की किरणें धरती से पानी खींचना छोड़ दें? अथवा वर्षा का पानी धरती में अधिक नीचे न जा सकें और खेतों पर से बहकर नदी नालों की भेंट न हों?

इन्हीं तीन प्रश्नों का उत्तर इस बड़े भारी कार्य के फलीभूत होने का कारण हो सकता है। हम देखते हैं कि यदि दो प्रकार के खेतों को एक साथ बराबर मात्रा में पानी दिया जाय तो एक का पानी दूसरे की अपेक्षा बहुत कम उड़ता है। जिन खेतों में लवणों की मात्रा अधिक हो, चिकनी मिट्टी अधिक हो, उनका जल दूसरे खेतों की अपेक्षा कम उड़ता है तथा जिन खेतों को पानी देते ही अच्छा

गहरा खोद दिया जाता है उनमें पानी की बहुत देर के पश्चात् आवश्यकता होती है, किन्तु जिन खेतों को केवल पानी देकर छोड़ दिया जाता है उनको पानी की आवश्यकता शीघ्र होती है। अन्य दूसरे नियमों का विचार इस स्थान पर छोड़कर इन्हीं तीन कारणों से यह पता लग जाता है कि खेतों की प्रकृति विशेष प्रकार की कर देने से तथा उनको गहरा खोद देने से जल की आवश्यकता बहुत न्यून हो जाती है। इसी प्रकार पानी बहुत नीचे न जाने देने से भी रोका जा सकता है। यदि खेत में नीचे तक चिकनी मिट्टी अधिकता से हो अथवा उसमें ऐसे रसायनिक पदार्थ उपस्थित हों जो जल को अधिक नीचे न जाने दें तो बहुत कुछ जल नष्ट होने से बचाया जा सकता है। जो खेत वर्षा से पूर्व खूब भले प्रकार जोत कर छोड़ दिये जाते हैं और वर्षा के पश्चात् मेड़ा[2] देकर दबा दिये जाते हैं उनमें प्रायः गेहूं की फ़सल अब भी बिना सिंचाई के हो जाती है। किन्तु साधारणतया खेतों को देर तक वर्षा न होने की अवस्था में खुला छोड़ने से उनकी सब की सब नमी उड़ जाती है। यदि पहिले से खेत जोत कर मेड़ा कर दिया जाय तो वर्षा होने पर जल अधिक नीचे न जा सकेगा। इस नियम के अनुसार भलीभाँति कार्य करने से सम्भव है बहुत से स्थानों में पानी की सिंचाई की आवश्यकता कम हो जाय। मुझे पता लगा है कि बिजनौर में प्रायः ईख जैसी पानी चाहने वाली फसल भी कीरतपुर के समीप बिना सिंचाई के इस नियम की बदौलत पैदा की जाती है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि कोई भी ऐसा कृषि संबंधी नियम अभी तक नहीं निकल सका है जिसका भारतवर्ष के किसी न किसी प्रान्त में पालन न किया जाता हो किन्तु शोक यह है कि कृषि का कार्य केवल उन लोगों के हाथ में है जो धन तथा विद्या के अभाव के कारण विशेष उन्नति नहीं कर सकते।

संसार की रिपोर्टों से पता चलता है कि एफ्रीका जैसे रेतीले देश में, जहाँ वर्षा भारत से भी कम होती है तथा जहां यहां की अपेक्षा गरमी भी अधिक है, धरती भी बिलकुल रेतीली होने से अधिक उपजाऊ नहीं है, खेती बिना सिंचाई उत्पन्न की जा सकती है और आलू जैसी फसल बिना पानी दिये उत्पन्न की जा सकती है। ऐसी अवस्था में कोई कारण नहीं है कि झाँसी जैसे स्थानों में तथा अन्य प्रान्तों में जहां वर्षा न होने के कारण प्रायः सर्वदा ही दुर्भिक्ष रहता है इसकी परीक्षा करके फसल न पैदा की जा सके। यदि संसार के अन्य प्रान्तों में इस नियम से सफलता हो सकती है तो कोई कारण नहीं है कि वही सफलता भारत में न हो सके। क्या सरकार का कृषि विभाग इस ओर ध्यान देगा? प्रार्थना है कि पाठकवृन्द भी इस आवश्यक विषय की ओर अधिक ध्यान दें और इससे लाभ उठावें। भारत का दुर्भिक्ष प्रतिवर्ष चन्दे करने से अथवा धन बांटने से दूर नहीं किया जा सकता। यह आवश्यक है कि हम विचारपूर्वक दूसरे देशों की अवस्था को देखें और वहां की दशा को पढ़ें, विचारें और जो नियम अपने देश के लिए उपयोगी समझें उसका अपने देश में प्रचार करें। देश का भार उन लोगों पर सबसे अधिक है जो पढ़े लिखे हैं और देश की हीन अवस्था का विचार कर सकते हैं। यदि संसार में दुर्भिक्ष के निवारण करने के उपाय उपस्थित हैं तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि हमारे नेता उसकी ओर दृष्टि दें। अनेक उपायों में से मैंने एक उपाय पाठकों के सन्मुख बहुत ही सूक्ष्म रूप से धर दिया है। देखें पाठक इससे क्या लाभ उठाते हैं। यह भी देखना है कि मेरी धीमी पुकार भारत सरकार पर क्या प्रभाव डालती है?

अन्त में ज्ञान स्रोत विद्या के आदि गुरु परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना है कि वे हम भारत-निवासियों को भी विद्या और वैज्ञानिक ज्ञान से परिपूर्ण करें जिससे हम पुरुषार्थहीन आलसी न रह कर अपने अपने कर्त्तव्य का पालन करें। संसार के प्रचलित वैज्ञानिक नियमों को जानने से और परमेश्वर की अटल आज्ञा का पालन करने से हम सुख से जीवन व्यतीत कर सकते हैं इसमें सन्देह नहीं।

---

1. सिंचाई 2. पाटा चलाना

धान*

नन्दकिशोर शर्मा

दुसार भर में जितने नाज[1] हैं उनमें से धान एक ऐसी जिन्स है जिस पर कि पृथ्वी के अधिकांश मनुष्यमात्र का आधार है। अनुभव से जाना जाता है कि 54 फीसदी मनुष्यमात्र की गुज़र चावल पर है और बाक़ी 46 फीसदी में गेहूं, चना, ज्वार, बाजरा, मक्का, इत्यादि आ जाते हैं। इसलिए ऐसी हालत में जाहिर है कि धान की खेती कैसे महत्व की है। समय का प्रभाव है कि चावल का इस्तेमाल रोज़बरोज़ बढ़ता जाता है। जहां लोग इसको जानते भी न थे अब वहां पर दिन दूनी रात चौगुनी इसकी तरक्की हो रही है। चावल की रिवाज इतनी अधिक है कि मामूली लोगों के यहां भी यह रोज़ाना खाया जाता है। मध्यम व अव्वल[2] श्रेणी के लोगों के यहां तो यह एक रोज़मर्रा की भोजन की सामग्री है।

धान की उत्पत्ति

धान अपनी असली हालत में शुरू शुरू में हिमालय पर्वत की घाटियों – ख़ास करके ओरीज़ा की घाटी में – पाया गया जहां पर कि वहां के ग़रीब लोग तीन चार हाथ लम्बे बांस के सिरे पर एक छोटी सी लम्बी गहरी डलिया को (बुन्देलखण्ड में इसको लहड़ी करके पुकारते हैं) बांध कर फ़सल पर धान के पौधों के ऊपर लहरा कर धान इकट्ठा कर लेते हैं। इस धान के सिरे पर करीब करीब दो अंगुल लम्बी दुम सी होती है। चावल इसका लाल खुशबूदार और एक खास स्वाद का होता है। बाज़[3] लोगों का ख्याल है कि जितने किस्म के धान आज दुनिया में बोए जाते हैं वे सब इसी हिमालय घाटी से पैदा हैं चाहे इसकी बनावट, स्वाद, जायका, रंग, रूप बिलकुल ही अलग है। जमीन, पानी, आबहवा और खेती के ढंग इन सबसे ऊपर लिखी बातों में फ़र्क आ जाता है। यही कारण है कि विद्वानों ने धान का नाम ओरीज़ा सेटीवा (Oriza sativa) रक्खा है।

धन्य है परमात्मा को कि यह महत्व भी अपने ही देश आर्यावर्त को प्राप्त है कि धान की उत्पत्ति इसी देश में हुई और यहां से ईसामसीह के 2822 वर्ष पहिले चीन देश में ले जाया गया। जिन दिनों कि रूम अपनी उन्नति के शिखर पर पहुंचा हुआ था उन दिनों चावल का व्यापार हिन्दुस्तान और रूम में अच्छी तरह से होता था। अरब के लोग धान को फारस और अरब ले गये और फिर वहां से मिसर को गया और वहां से सिसली को और फिर सिसली से मूर लोग स्पेन को ले गये जहां पर कि आज धान की खेती ऐसी होती है कि उसका हाल जानकर लोगों को अपनी हालत और पैदावार में तरक्की करनी चाहिए यानी हमारे देश की पैदावार से स्पेन की पैदावार

---

* *मर्यादा*, अप्रैल 1914

करीब करीब सतगुनी फी एकड़ अधिक होती है। कहावत है कि गुरू तो गुड़ रह गये और चेला चीनी हो गये। आठवीं शताब्दी में पहिले पहिल धान स्पेन में प्रगट रूप से पाया गया और पन्द्रहवीं शताब्दी के शुरू में वहां की सरकार ने इसकी खेती बढ़ाने का विशेष प्रयत्न किया। सन् 1521 ई. में इटली के राजा पंचम चार्ल्स ने अपने राज्य में धान की खेती कराई। सन् 1647 ई. में गवर्नर बरकले ने कुछ हिन्दुस्तान का धान इग्लैंड से बरजीना देश को भेजा लेकिन सन् 1694 ई. तक अमेरिका में धान की खेती अच्छी तरह से नहीं फैली। इन्हीं दिनों एक सौदागरी का जहाज़ जो कि हिन्दुस्तान से जा रहा था तूफान से बह कर केरीलोना (Corilona) के किनारे जा लगा, जहाज के कप्तान ने कुछ धान का बीज स्मिथ साहब को दिया और उन्होंने उसे अपने बाग में बोया। सन् 1745 ई. में वही धान केरीलोना के नाम से नई दुनिया में बहुत फैल गया। मामूली तौर से धान की खेती सब जगह हो सकती है।

धान की किस्में

दुनिया मे जितनी किस्में धान की हैं उतनी किसी नाज की नहीं हैं। यह सच है कि एक ही धान जगह जगह पर अलग अलग नाम से पुकारा जाता है फिर धान की हज़ारों किस्में ऐसी हैं कि जो एक दूसरे से रंग, रूपस्वाद इत्यादि में बिलकुल अलग अलग हैं – आमतौर से इनका विभाग चार किस्मों में किया जा सकता है –

1. पसई जो कि कुदरती तौर से नीची जगहों में अपने आप पैदा होता है और जिसको कि गरीब आदमी बीन कर खाते पीते हैं।
2. जेठवा धान जो कि फागुन या चैत में बोया जाता है और बैसाख या जेठ में काटा जाता है।
3. कतकी धान – यह जेठ आषाढ़ में बोया जाता है और कुआर कातिक में काटा जाता है।
4. अगहनी धान – यह वह धान है जिसकी बेड़ लगाई जाती है। आषाढ़ सावन में बेड़ लगाते हैं और फिर करीब एक महीने के बाद उसे उखाड़ कर खेत में रोपते हैं और फिर इसकी फसल अगहन पूस में तैयार होती है।

हमारे देश में जल और वायु के परिवर्तन से अक्सर जगहों में आबहवा भी बदलती गई है, इसलिए फसलों के रोपने और तैयार होने में भी एक जगह से दूसरी जगह में थोड़ा बहुत भेद पड़ता है।

ऊपर की चार किस्मों में से तीसरी और चौथी खास महत्व की चीज़ें हैं। देश में दरिद्रता अधिक होने से सबसे प्रिय और लाभदायक बात वही है जो कम से कम लागत, मेहनत और समय में पैदा हो कर लोगों के काम आने लगे। इस मतलब को पूरा करने के लिए कतकी धान है, इन धानों मे अधिकांश ऐसे हैं जो कि मोटे होते हैं और स्वाद रूखापन लिए होते हैं और इनमें भूसी का हिस्सा ज्यादा होता है। और महक तो किसी किसी में ही नाममात्र होती है।

चौथी किस्म में वह धान है जो कि बारीक, पतले, लम्बे, खुशबूदार होते हैं और ज्यादातर खुशहाल लोगों के काम में आते हैं। तिजारत[3] के लिहाज़ से इस धान की खेती में अधिक लाभ है।

धान जिन्स ऐसी है कि जब तक जगह जगह पर तजरबा करके यह मालूम न कर लिया जाय कि किस जगह पर कौन सा धान अधिक पैदा होता है तब तक किसी धान के ख़ास तौर पर बोने के लिए किसी खास जगह के लिए सिफारिश नहीं की जा सकती है। इस बात को जानने के लिए लोगों को चाहिए कि अपने आस पास के सरकारी खेती फार्म सुपरिंटेंडेंट साहब से पूछ लें।

दयालु सरकार ने जगह ब–जगह खेती के फार्म रिआया[4] के फायदे के लिए जारी कर रक्खे हैं। सिवा खास खास जगहों के जहां कि पानी काफी मिलता है और लोग मिहनती हैं ज्यादातर धान छिरकवा बोया जाता है। जो कुछ तजरबे अब तक हुए हैं उनसे साबित हुआ है कि बनिस्बत छिड़कवा बोने के बेड़ लगाकर धान की खेती ज्यादा फायदेवर है। छिरकवा बोने से एक तो बीज बहुत लगता है। औसतन बीस सेर फी एकड़ बीज डाला जाता है जब कि अगर बेड़ लगाई जावे तो एक एकड़ के लिए तीन सेर मोटे धान और पतले धान डेढ़ सेर काफी होते हैं। ध्यान देने लायक बात है कि बीज ही में कितनी बचत है। अगर बीज दस सेर का बिकता हो तो छिड़कवा बोने में दो रुपये का पड़ेगा और अगर बेड़ लगाकर बोना है तो मोटे धान का करीब पाँच आने का और पतले धान का बीज करीब तीन या चार आने का बीज लगेगा। जो कोई सौ पचास एकड़ धान की खेती करता है उसको एक बड़ी रकम की बचत तो बीज में ही हो जाती है फिर छिरकवां बोए हुए की बनिस्बत बेड़ लगाये हुए धान की पैदावार कहीं ज्यादा होती है। औसतन करीब करीब दूनी पैदावार होती है। अत्तर्रा[5] फार्म में किरोल नामी धान की पैदावार छिटकवां बोने से तो 14 मन फी एकड़ हुई और बेड़ लगाकर बोने से 48 मन फी एकड़ हुई। पर इससे साफ प्रगट है कि बेड़ लगा कर बोना बहुत ही फायदेमन्द है।

यह सब लोग जानते हैं कि खेत जैसा बलवान् होगा उतनी ही पैदावार अधिक होगी और खेत को बलवान करने का तरीका सिवा इसके कि खेत में काफ़ी खाद दिया जाय और मेहनत से उसकी कमाई की जाय दूसरा और कोई उपाय नहीं है। अविद्या और नासमझी के कारण खाद काफी नहीं मिलता। इस कमी को पूरा करने के कितने ही उपाय हैं। अव्वल यह कि धान के खेतों को गर्मी के दिनों में जोत कर डाल दिया जाय ताकि खेत में धूप लग जाय और धूप, हवा, रोशनी, गर्मी की वजह से बहुत से पृथ्वी के खाद्य पदार्थ चैतन्य अवस्था में आ जाते हैं जो कि फसल के लिए खाद का काम देते हैं और दूसरा फायदा यह है कि बारिश होते ही ज़मीन आसानी से और जल्द बोने के लायक तैयार हो जाती है और खेत में घास वगैरः[6] और नुक़सान पहुंचाने वाले कीड़े पतंगे नहीं रहते हैं। दूसरा तरीक़ा खेत को बलवान बनाने का यह है कि धान की फसल कटने के बाद उसी धान की नमी में चटरी मटरी का बीज डाल दिया जाता है और एक दफे हल चलाकर जोत दिया जाता है जिससे कि एक फसल की फसल मिल जाती है और छीमीदार फसल होने के कारण खेत बलदार बन जाता है। धान की फसल के बाद उसी खेत में गेहूं की फसल लेना खेत को बहुत बलहीन करना है।

धान का बीज और उसकी छानबीन

फसल की पैदावार ज्यादातर बीज के अच्छे होने पर मुनस्सिर[7] है। बुवाई के लिए बीज को अच्छी तरह से फटक लेना चाहिए ताकि हलके और खोखले दाने सूप से अलग हो जायँ। सूप से साफ़ किये हुए बीज की निमक[8] के पानी से जाँच करनी चाहिये। जो बीज निमक के पानी में ऊपर आ जाय वह बोने लायक नहीं और जो नीचे बैठ जाय वह बोने लायक है और ज़रूर उगेंगे। निमक का पानी तैयार करने का तरीका यह है कि 11 सेर पानी में 1 सेर पिसा हुआ बारीक निमक मिला दो और इस बारह सेर पानी से बीज जाँच करते जाओ जो कुछ पानी बच रहे उसे गाय, बैल, भैंस को चारे के साथ खिला सकते हैं। आम के आम गुठलियों के दाम। निमक के पानी से बीज की जांच भी हो गई और काम में भी आ गया।

बीज का बोना

जाँच किये हुए बीज को कंडे या उपले की राख में मिला कर कुछ पानी का छींटा देकर एक दिन रात रख छोड़ना चाहिये इससे उसमें अखुवे[9] निकल आते हैं। बेड़ लगाने की गर्ज[10] से करीब आठ गज लम्बे और आठ गज चौड़े टुकड़े में तीन सेर चुना हुआ और जाँच किया हुआ और राख में रक्खा हुआ बीज घने तौर से एक सा बो देना चाहिये। इतने टुकड़े की बेड़ एक एकड़ भूमि के लिए काफी होती है।

छिटकवा बोने के लिए इसी तरह के तैयार किये हुए बीज को खेत में छिटका जाता है। धान की खेती के लिए पानी की ज्यादा जरूरत होती है और खेत के चारों तरफ मेंड़ होती है ताकि खेत में पानी रोक लिया जाय। कहावत है कि पान धान नित अशनान। पानी भरे हुए खेत में ही हल चलाया जाता है और ऐसी हालत में उससे पिटेला या सरावन या हैंगा फेटा जाता है जो कि बैलों से रुदने से खूब कीचड़ हो जाती है, जब खेत इस तरह पर अच्छी तरह से तैयार हो जाता है उस समय बीज छिटक दिया जाता है और बाद में हलका सा पानी भर देते हैं। जब बीज तीन चार अंगुल का हो जाता है तब खेत से पानी निकाल देते हैं और फिर चार पांच दिन बाद पानी भर दिया जाता है, जब पौधे एक बालिश्त के हो जाते हैं उस वक्त पानी भरे हुए खेत में हलका पाटा फेर देते हैं। जब धान फूट आवे और दूध उसका खुश्क[12] होकर चावल तैयार हो तो उस वक्त पानी की जरूरत नहीं रहती है इसलिए कृषक को उचित है कि स्वाती नक्षत्र व्यतीत हो जाने पर या इस नक्षत्र के कुछ दिन रहते ही धान के खेत का पानी निकाल देवें।

बेड़ लगाने के लिए लगते ज्येष्ठ से आधे ज्येष्ठ तक बीज बो देना चाहिये और जब पौधे करीब 40 दिन के हो जायँ उस वक्त उनको उखाड़ कर जहां लगाना मंजूर हो वहां लगा देना चाहिये। बेड़ लगी हुई जगह को हर वक्त तर रखना चाहिये। कम से कम इसमें तीसरे चौथे दिन पानी जरुर देना चाहिये। और बेड़ को उखाड़ने के समय उसमें काफी पानी भरा हुआ होना चाहिये ताकि उखाड़ने में जड़ें न टूट जायँ। जिस खेत में बेड़ लगाना हो उसमें भी कम से कम एक बालिश्त की ऊँचाई में जरूर पानी भरा होना चाहिये। बेड़ लगाने का तरीका यह है कि एक डोरी लेकर खेत की सीध में लगाना चाहिये। उन्हीं उखड़े हुए पौधों में से दो दो पौधे एक एक बालिश्त की दूरी पर गाड़ देना चाहिए। जब पहली लेन[13] इस तरह से गड़ जाय तो दूसरी लेन इसी तरह से गाड़ देना चाहिये। ध्यान सिर्फ इस बात का रहे कि एक पौधे से करीब एक बालिश्त का फासला रहे और एक जगह में दो पौधे से ज्यादा न गड़ने पावें। बेड़ के उखड़े हुए पौधों को लगाने से पहिले किसी पानी भरी हुई जगह में एक एक बंडल करके अच्छी तरह से पानी में हिलोर लेना चाहिये ताकि पौधे की बारीक जड़ें एक एक से अलग हो जायँ। जब पौधे गड़ चुकें तब खेत में पानी दो दिन तक रुका रहना चाहिये बाद में पानी निकाल देना चाहिये। धान के खेत में हर वक्त पानी न भरा रहने देना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से पौधे की जड़ों को धूप और हवा नहीं मिल सकती है जिसके बिना पौधे अच्छी तरह से परवरिश नहीं पा सकते हैं। किसी हालत में तीन दिन से ज्यादा एक बारगी खेत में पानी रुका हुआ न रहना चाहिये। इसी तरह करते हुए छिटकवा बोया हुआ धान कुवार में और बेड़ का लगाया हुआ धान कातिक, अगहन में पक कर तैयार हो जाता है।

छिटकवा धान बोने के लिये करीब दस सेर फी बीघे के बीज पड़ता है और अगर इसी को बेड़ लगा कर बोया जाय तो एक बीघे के लिए दो सेर मोटा धान और एक सेर बारीक धान की बेड़ काफी होती है। पस प्रिय पाठकगण सोचो तो सही कि बेड़ लगाकर बोने में कैसा फायदा है कि एक तो करीब आठवें हिस्से के बीज लगता है और पैदावार करीब तिगुनी होती है। सन् 1913–14

में संयुक्तप्रान्त में 749112 एकड़ में धान बोया गया था। बीस सेर फी एकड़ बीज मान कर और एक रुपये का दस सेर बीज मानते हुए 1498224) का बीज खर्च हुआ। अगर यही बेड़ लगाकर बोया गया होता तो करीब 149000) रुपये का बीज लगता यानी 1349224) रुपये की बचत तो सिर्फ बीज में होती और अधिक पैदावार से भी मुनाफा होता वह अलग रहा। हां यह जरूर है कि बेड़ लगाने में मेहनत और थोड़ा खर्च होता है बिना मेहनत और खर्च के तो दुनिया में कोई चीज़ नसीब नहीं होती फिर इससे डरना फजूल सी बात है। इस तरह काम काज में लगे रहने से बहुत कुछ फायदे हैं। सबसे पहिले तो बहुत से लोगों का रोजगार लगा रहता है और काम में लगे रहने के कारण फजूल की बातों के लिये फुरसत नहीं मिलती। मसलन लड़ाई दंगे इत्यादि और जब रुपया ज्यादा पैदा होता है तब दुनिया की सब सुख की सामग्री मिल सकती है जिसके द्वारा अपना वा पराया इस लोक का और परलोक का साधन सिद्ध होता है।

धान की पैदावार

हम लोग अपने मुंह कैसे ही मियांमिट्ठू बनें और हर वक्त यही सवप्न देखतें रहें कि पिदरं सुल्तां ब्रद लेकिन अब समय उन्नति का है और जब कि घर बैठे दुनिया के सारे हालात मालूम होते हैं तो आश्चर्य है कि हम लोगों की गिनती किसी में भी नहीं। इसका कारण यही है कि हम लोगों ने विद्याभ्यास किया नहीं, कृषि कर्म को तुच्छ समझा। ध्यान देकर देखिये तो सही कि धान पैदा करने में भी हम लोग कहां हैं जब कि भारतवर्ष की सी आबहवा मौसम सारे संसार में कहीं नही।

देखिये नकशा पैदावार धान अपने देश और दूसरे देशों का मुकाबिला बाबत फसल सन् 1913:—

मुल्क	रकबाधान एकड में	पैदावार मनों में	औसत पैदावार की एकड मनों में
स्पेन	96000	6691200	69.30
इटली	360000	14524800	40.14
मिसर	254000	10200000	40.14
जापान	7393000	191107200	25.54
अमेरिका	827000	14062400	17.03
हिन्दुस्तान	70580000	766142400	10.82

यह नकशा एगरीकलचरेल जरनल आफ़ इन्डिया सफा 333 सन् 1914 के आधार पर है। नकशे से साफ जाहिर है। दुनिया में सब से ज्यादा अपने देश में धान की खेती होती और साथ ही साथ सब से कम पैदावार का औसत है। क्या यह अभाग्य की बात नहीं है कि इसी देश की चीज़ और इसी जगह इसका ऐसा अनादर? किसी ने सच कहा है कि जो जिस को जितना चाहता है उतना ही वह चीज़ उसको चाहती है। शुरू में लिखा जा चुका है कि पहिले पहिल मुल्क स्पेन में आठवीं शताब्दी में धान इसी देश से अन्य देशों के जरिये पहुंचा और बारह सौ बरस में वहां यह हालत हो गई कि यहां के बनिस्बत सतगुना पैदा होने लगा। क्यों न हो जिसने खोजा है उसने पाया है। जो लोग इस समय भी तरक्की न कर सकें उनसे ज्यादा अभागा कौन हो सकता है। दयालु सरकार ने जगह जगह पर कृषि प्रयोगशालाएँ खोल रक्खी हैं जहां पर कि हर किस्म के कृषि सम्बन्धी प्रयोग होते हैं और जो फायदेमन्द साबित होते हैं। उनका प्रचार किया जाता है। बुन्देलखंड में अतर्रा फार्म में ही बहुत सी किस्म के धानों की जाँच की गई और उनमें नीचे लिखे

धानों की पैदावार फी एकड़ जो हुई है वह यहां मनों में दर्ज है :–

धान	छिटकवां बोने से	बेड़ लगाकर बोने से
किरीयोल	48	14
गुरमुटिया	39	17
परेवा	37	15

इस पैदावार के देखने से मालूम होता है कि धान में किस कदर ज्यादा पैदावार करने का मौका है। इस मौके पर यह भी लिख देना काफी है कि अतर्रा फार्म के धान के खेतों में कोई खाद छै सात साल से नहीं दी जा रही है और फसल तो सालाना ली ही जा रही है; ध्यान देने की बात है कि अपने देश की औसत पैदावार को अगर दुगना भी कर सकें तो देश में कितना अधिक अनाज, रुपया और सुख हो।

धान को नुकसान पंहुचाने वाले कीड़े और उनसे बचने का उपाय

धान की फसल को ज्यादा नुकसान एक बदबूदार मक्खी से होता है जिसको गन्धी कहते हैं। बाज बाज दफे तो इससे इतना ज्यादा नुकसान होता है कि खेत के खेत साफ हो जाते हैं। और मन दो मन धान भी फी बीघे नहीं मिलता। जिस वक्त धान फूलने का समय होता है और धान में दूध पड़ता है उस वक्त यह मक्खी नज़र आने लगती है और यह नहीं कि एकाध खेत में ही दिखाई पड़े बल्कि कोसों दूर तक फैलती है और जिस तरह से मच्छर लहू का प्यासा होता है उसी तरह से यह मक्खी धान के दूध को चूस लेती है पस फिर सिवा भूसी के रह क्या जाता है।

इस मक्खी के नुकसान से बचने के लिये एक सहल उपाय है लेकिन वह उपाय जभी फायदेमन्द हो सकता है कि अड़ोसी पड़ोसी सब मिल कर काम करें। कोई यह चाहे कि अपने ही खेत में उपाय कर लूं और नुकसान से बच लूं सो मुम्किन नहीं है जब तक कि अड़ोस पड़ोस के सब किसान अपने खेत में उपाय न करें। इसीलिए किसी महात्मा ने सच कहा है कि दूसरे की भलाई में अपनी भलाई समझनी चाहिये। उपाय यह है कि जब यह गन्धी खेतों में नज़र आने लगे तो खेतवालों को एक जाल झिरझिरे टाट का बनाना चाहिये। जाल किसी शकल का बनाया जा सकता है लेकिन सबसे अच्छा इस तरह से बनता है कि दो लम्बे बांस और दो छोटे बांस का पहिले एक चौखटा बना लिया जाय यानी दो बांस चार चार हाथ लम्बे लो फिर दोनों लम्बे बासों के सिरे पर एक एक छोटा बांस बांध दो यह एक चौखटा बन जायगा। इस चौखटे पर कोनों से चार लम्बे बांस करीब पांच पांच हाथ लम्बे बांध दो और इन पांच पांच हाथ लम्बे चार हाथवाले बांस के बराबर बांध दो और फिर चौखटे के एक एक सिरे से एक एक लम्बा बांस उस सिरे पर जहां कि पांच पांच हाथ वाला बांस बांधा गया है बांध दो और फिर एक झिरझिरा टाट इस बांस के ढांचे पर चढ़ा दो और अब गन्धी कि पकडने का जाल तैयार है। जब गन्धी खेत में दिखाई पड़े फौरन इस जाल को काम में लाओ और अपनी फसल को बचा लो। काम में लाने का तरीका यह है कि हवा के उल्टे रुख इस जाल को धान के पौधों पर जल्दी से घसीटो। हवा की वजह से टाट फूलेगा और खेत की बहुत कुछ गन्धी पौधों पर से इस जाल में आ जायँगी। खेत के एक तरफ से जाल घसीटना शुरू करो जब खेत के दूसरे किनारे पर पहुंचो जाल को उलटा करके पकड़ी हुई गन्धियों को किसी खाली टीन के कनस्टर में इकट्ठा करते जाओ। एक दफे के घसीटने में पांच पांच सेर तक गन्धी पकड़ी जाती हैं। टीन के कनस्टर में एक बोतल तेल मिटटी और आठ बोतल पानी मथा हुआ होना चाहिये ताकि गन्धी उसमें मरती जायँ। यह इकट्ठी की हुई गन्धी एक आला दर्जे[16] का खाद होता है। पस प्रिय पाठकगण एक पंथ दो काज सिद्ध होते हैं। गन्धी पकड़ कर धान के खेत को बचाते हैं।

और साथ ही साथ एक आला दर्जे का खाद पाते हो। सच है आम के आम और गुठलियों के दाम इसी को कहते हैं। जैसा कहा जा चुका है गन्धियों के नुकसान से तभी बच सकते हो जब कि सब आस पास के खेतवाले अपने अपने खेत में यही तरकीब काम में लावें। अगर एक दो आदमी अपने खेत से गन्धी दूर करेगा तो कुछ फायदा नहीं हो सकता क्योंकि पास पड़ोस से यह फिर उड़ कर आ जायँगी। खेती का काम ऐसा है कि जो कुछ काम मेल से होता है वह दूसरी तौर से मुम्किन ही नहीं है और यही सोच कर दयालु सरकार ने जगह बजगह सहकारी–समितियों का प्रचार किया है। धान की खेती का सबसे बड़ा दुशमन गन्धी है और वैसे तो और भी हैं जैसे पानी, धान का गुबरेला, टिड्डा, छबुन्दा इत्यादि। इन सब के नुकसान से बचने का उपाय सिवा इसके कि इनको जाल से पकड़ कर इन्हें मार डाला जाय और कोई दूसरा सहल उपाय नहीं है। किसी खेत से सालहा साल[17] धान की ही फसल लेना मुनासिब नहीं क्योंकि खेत बलहीन हो जायगा और धान को नुकसान पहुंचाने वाले कीड़ों का जखीरा हो जायगा। पस धान की फसल के बाद धान की नमी में ही चटरा मटरा किस्म की छीमीदार फसलें बो देनी चाहियें। इन छीमीदार पौधों में ईश्वर ने एक अद्‌भुत ताकत दी है कि वे हवा से नाइट्रोजन (पौधों के लिए एक खास खाद्य पदार्थ है जिसके बिना कि पौधे पैदा हो ही नहीं सकते हैं) लेकर भूमि में जमा कर देते हैं जिससे कि भूमि अधिक बलदार हो जाती है और एक फसल भी बिना किसी अधिक मेहनत के हासिल हो जाती है।

बाज बाज जगह यह रिवाज़ है कि धान की फसल के बाद उसी खेत में गेहूं की फसल करते हैं। यह अच्छी रिवाज़ नहीं है क्योंकि ऐसा करने से खेत बलहीन हो जाता है और दोनों फसलें कम पैदा होती हैं। मसल मशहूर है कि दूविधा में दोऊ गये माया मिली न राम। पस काम वह करना चाहिये कि जिससे थोड़े से थोड़े समय में अधिक से अधिक लाभ हो सके। प्रिय पाठकगण अब सोने का समय नहीं है पस जागो और चेतो वरना जो रहा सो रहा। यही मौका है जो कुछ कृषि में उन्नति करना है वह करो ताकि अपना पराया और देश का भला हो।

---

1. अनाज 2. प्रथम 3. कोई कोई
4. व्यापार 5. जनता 6. बाँदा जिले का एक स्थान
7. इत्यादि 8. निर्भर 9. नमक, लवण (Nacl)
10. अंकुर 11. उद्देश्य 12. सूखकर
13. पंक्ति
14. आजकल का उत्तर प्रदेश, पहले इसमें आगरा और अवध के सूबे सम्मिलित थे
15. पृष्ठ 16. उच्च कोटि 17. वर्शानुवर्ष

महिलाओं की स्वास्थ्य रक्षा के लिये आवश्यकीय उपाय *

श्रीमती हेमन्त कुमारी देवी

स्वास्थ्यहीन और शक्तिहीन व्यक्ति यदि जीवित भी रहे तो उसको मृतक समान समझना चाहिये। शक्ति का भण्डार जिसका समाप्त हो गया है, काम करने की सामर्थ्य लुप्त हो गई है, शरीर बेवस और नसें कठोर परिश्रम से थकीं, मांसपेशियाँ भी दुर्बल हो गई हैं वहां सदा ही अशान्ति और मृत्यु का राज्य विराजमान समझना चाहिये। जिस शरीर में मन प्रतिदिन नया–नया काम करने में उत्साहित नहीं होता है, संसार के हज़ार–हज़ार कामों के आह्वान पर ध्यान नहीं देता वहां जीवन की धारा बहुत ही शीर्ण नदी के सदृश मन्द गति से बहती है। लोग दीर्घ जीवन के लिये लालसा रखते हैं परन्तु जराजीर्ण[1] शरीर को कोई भी नहीं चाहता। जराजीर्ण होने से मृत्यु ही माँगते हैं। शक्तिहीन जराजीर्ण वृद्ध हज़ार वर्ष भी जिन्दा रहे तो मानव–समाज का किसी भांति से कल्याण नहीं है वरन् वह समाज को भार है। जो वृद्धि को प्राप्त होता है परन्तु जीर्ण नहीं होता, जिसमें प्रवीणता नये–नये ज्ञान की खोज में नवीन जीवन के समान प्रकाशित होती है परन्तु जराग्रस्त नहीं होती, जिसमें शक्ति का कार्पण्य[2] नहीं है, आशा, निराशा और निर्जीवन के सागर में चिरमग्न नहीं रहता हम लोग ऐसे नीरोग और दीर्घजीवन को चाहतेहैं।

उस प्राणमय आनन्दमय जीवन के प्राप्त करने में जीर्ण शरीर को संस्कार करने की आवश्यकता होती है परन्तु समाधिग्रस्त तरुण चित्त को फिर से जीवित करने की विशेष आवश्यकता रहती है।

वयोवृद्धि के साथ ही साथ शरीर के शोणित कोष में एक तरह की मिट्टी के समान पदार्थ जम जाता है। क्रमशः वह धमनी और मांसपेशी को भर देता है। यह वस्तु ही शरीर की सजीवता को हर लेती है। इस हानिकारक पदार्थ को शरीर से दूर करने के लिये आहार के ऊपर दृष्टि, प्रचुर व्यायाम और निश्वास–प्रश्वास लेना इन तीन बातों का अवलम्बन करना चाहिये।

आहार के विषय में मैं इतना ही कहना चाहती हूं कि खट्टे फल का ज्यादा खाना अथवा भोजन के साथ दही का विशेष सेवन ऊपर कहे हुए सृष्टि बढ़ाने वाले पदार्थ को घटा देता है।

व्यायाम शरीर को पुष्ट और यौवन की नाईं बना देता है। जो नियम से व्यायाम करती हैं वे कभी जराग्रस्त नहीं होतीं। व्यायाम से भूख बढ़ती है और खाद्य पदार्थों को ग्रहण कर शरीर का क्षय रुकता है। इन सब कामों के लिये बहुत सी आक्सीजन वायु की जरूरत होती है। व्यायाम के समय श्वास–प्रश्वास क्रिया अधिक होकर आक्सिजन के अभाव को मिटा देती है।

बहुतेरे आदमी यह कहते हैं कि देश की वर्तमान अवस्था में महिलाओं के व्यायाम का किसी प्रकार प्रबन्ध नहीं है। परन्तु यदि इस पर विचार किया जाय तो महिलाओं के ऊपर व्यायाम का प्रबन्ध निर्भर है।

---

* *मर्यादा*, अगस्त 1915

रमणी[3] समाज का एक अंग है। सुतरां रमणी की शारीरिक और मानसिक अवनति होना समाज को शक्तिहीन अवश्य करेगा। व्यक्तिगत उत्कर्ष और सामाजिक उन्नति इन दोनों के लिये महिलाओं की स्वास्थ्योन्नति आवश्यक है। स्त्री यदि दुर्बल हो और परिपुष्ट न हो तो रोगी हो ही जावेगी। जो लोग भोग चुके हैं वे अच्छी तरह जानते हैं कि चिररुग्ना स्त्री संसार में किस प्रकार चिन्ता और व्यय बढ़ाने के कारण हैं। सन्तान भी अपुष्ट अवस्था में जन्म ग्रहण करने से तुरन्त जननी की धातुगत विकलता के कारण रोगी बनकर अकाल में कालकवलित होती है।

प्रश्न हो सकता है कि महिला व्यायाम किस प्रकार से करेंगी? उनको इतना समय ही कहां है? इसके उत्तर में मैं यह कहती हूँ कि उनका नित्य प्रति का काम व्यायाम का काम दे सकता है। इसके लिये डम्बिल प्रभृति विलायती वस्तुओं की आवश्यकता नहीं होती है। सबको मालमू है कि गृहकर्म महिलाओं से सम्पादित होते हैं। हरेक गृहकार्य करने का समय यदि महिलाएँ अपने-अपने अंगचालना के ऊपर दृष्टि रखकर नियत करें तो यथेष्ट होगा। शारीरिक सौन्दर्य ईश्वरदत्त भूषण होने पर भी उसकी उन्नति मानव विज्ञान के आधीन है। पश्चिमी लघु व्यायाम प्रणाली ने महिलाओं का अंगसौष्टव बढ़ाने में यथेष्ट सहायता दी है और दे रही हैं। मुंह के लावण्य न बढ़ने पर भी एक भांति के विज्ञानसम्मत व्यायाम से शारीरिक सौष्टव बढ़ सकता है और मुंह का भद्दापन अधिक अंश में ढक जाता है। कहना बाहुल्य है कि हम लोगों के नित्य प्रति के गृहकर्म में व्यायाम और पश्चिमी लघु व्यायाम दोनों का फल और उपपत्ति एक ही है। देश-भेद से आचार का भेद होना संभव है। भारतवर्ष में प्राचीन प्रथा के अनुसार गृहकर्म स्त्रियों द्वारा किये जाते हैं और पश्चिमी जगत् में नौकरों द्वारा इसलिए वहां की युवतियों को खुले मैदान में व्यायाम की आवश्यकता होती है। भारतवर्ष की महिलाओं के लिए समय के अभाव से नित्य प्रति के काम को व्यायाम की भांति करना और समझना चाहिये, दूसरा उपाय नहीं है।

दरिद्रियों के घरों में महिलाओं को परिश्रम बहुत करना पड़ता है यह बिल्कुल ठीक है। जब उनका बिना परिश्रम निर्वाह ही नहीं तब उनको व्यायाम करने के विचार से काम करना ज़रूरी है। इससे परिश्रम का डर मिट जावेगा और मन में प्रफुल्लता आ जावेगी।

धनी लोगों के घरों में इसके विपरीत है। गृह कार्य में परिश्रम का अभाव होने से कुलांगनाओं[4] को व्यायाम का पूरा अवसर नहीं मिलता। धन की गर्मी के मारे भोजन बनाने से भी वे बड़ी घृणा करती हैं। आत्माभिमान और आत्ममर्यादा इन दोनों में भेद मालूम न होने से मन का संकोच नहीं जाता।

जो स्त्रियां गृहकार्य से श्रमविमुख[5] हैं वे सुदीर्घ अवसर को परचर्चा और दिवानिद्रा[6] में न लगाकर यदि छत के ऊपर उन्मुक्त वायु में पदचारण[7] अथवा घर में लगे हुए बगीचे में जल सींचने आदि काम में समय को व्यतीत करें तो शरीर की उन्नति हो सकती है। परन्तु परिताप इतना ही है कि सुनिद्रा और श्रमाभाव के कारण उन लोगों का शरीर बहुत ही मोटे होकर सारा जीवन निकम्मा हो जाता है।

महिलाएँ अगर अपनी-अपनी कन्याओं को बाल्यावस्था से शारीरिक उन्नति की शिक्षा दें तो बड़ी होने पर स्वस्थ और सबल पुत्र व कन्याओं की जननी बन सकती हैं और बुढ़ापे में शरीर अटूट रख सकती हैं।

विशुद्ध वायु जीव मात्र का प्राणाधार है। थोड़ी ही देर तक खुली हुई जगह में घूमने से स्वास्थ्योन्नति हो सकती है–दवा, आहार और वस्त्र से जो नहीं हो सकता है वह विशुद्ध वायु से होता है। जब मन विकल रहता है, कुछ अच्छा नहीं लगता, मस्तक क्लान्त रहता है तब घर छोड़ कर बाहर निकलने की इच्छा होती है और उस समय ज्यादा दूर तक घूम आने से तबियत ठीक हो जाती है — यह सब जानते हैं।

सहज निश्वास–प्रश्वास से फुसफुस[8] का थोड़ा सा अंश काम करता है। उसके ऊपर का आधा भाग वायु से नहीं भरता है। नगरवासियों के फुसफुस का ऊपर का अंश अचल रहने के कारण गर्दा, धुआं और अन्यान्य बीजाणु भर जाते हैं। मनुष्य आहार के बिना ज्यादा दिन तक जी सकता है परन्तु बिना हवा कुछ मिनट भी नहीं जी सकता, वायु ही हम लोगों का सर्वश्रेष्ठ आहार है। इस वायु को जो लोग उत्तम रूप से ग्रहण कर सकते हैं वे दीर्घजीवी और स्वास्थ्यसम्पन्न होते हैं। सिर ऊंचा कर धीरे–धीरे श्वास खींचने पर जब तमाम फुसफुस हवा से भर जाता है तब कई एक सैकिन्ड श्वास रुक कर धीरे–धीरे प्रश्वास वायु को निकालना पड़ता है। इस प्रकार दीर्घ निश्वास और प्रश्वास अभ्यास करने से स्वास्थ्य की उन्नति हो सकती है और जीवनशक्ति बढ़ कर दीर्घ जीवन लाभ हो सकता है।

हम लोगों की श्वासक्रिया किस प्रकार की है : हम लोगों की प्रश्वास क्रिया में और आग के प्रज्ज्वलन में कुछ प्रभेद नहीं है। हम लोग जो कुछ भोजन करते हैं उससे कारबन पैदा होता है और आक्सिजन हम लोगों को हवा से श्वास के द्वारा मिलती है। परन्तु इसकी प्रक्रिया वैसी है जैसी आग जलने की होती है। भोजन करने के बाद आहार का कारबन और हाईड्रोजन उड़ जाता है परन्तु हवा की आक्सिजन के साथ मिल कर वह कार्बोनिक एसिड और जल बनाता है, ठीक ऐसे ही जैसे किसी चीज को जलाने से होता है। प्रोफेसर लिबिग (Liebig) का मत है कि शरीर का कारबन और हाईड्रोजन श्वास से खींची हुई आक्सिजन से मिल कर शारीरिक उत्ताप पैदा करता है। ऐसे ही आग जलने से होता है। इस प्रक्रिया से फी[9] सेकिंड में 10 से 12 भाग हवा की आक्सिजन खून के कारबन के साथ मिलकर कारबोनिक एसिड पैदा करती है जो नाइट्रोजन के साथ प्रश्वास क्रिया के द्वारा फेफड़े से निकल जाती है। इसी अनुमान पर डाक्टर कारपेन्टर (Doctor Carpenter) कहते हैं कि 'सैरिक' खून के फेंफड़े के अन्दर जाकर कारबोनिक एसिड गैस (CarbonicAcid gas) को निकाल देता और आक्सिजन को ले लेता है। सारांश यह है कि प्रश्वास क्रिया से कारबोनिक एसिड (CarbonicAcid) निकल जाता और आक्सिजन रुक कर रह जाती है।

देखने से मालूम हुआ है कि प्रत्येक युवा व्यक्ति प्रतिश्वास क्रिया के द्वारा 30.51 घन इंच वायु को निकालता है। इस हिसाब से एक मिनट में 16 बार प्रश्वास होने से 480 घन इंच वायु निकलती है और इसमें कारबोनिक एसिड का हिस्सा 100 में 4.6 है। सुतरां कारबोनिक एसिड (CarbonicAcid) प्रति घंटे में 1.348 घन इंच हम लोगों के शरीर से निकल जाता है। डाक्टर आरनट (DoctorArnott) का मत है कि आदमी को फी मिनट में 20 घन इंच हवा की आवश्यकता होती है।

लिबिग (Liebig) साहब कहते हैं कि जो युवा व्यक्ति थोड़ा सा व्यायाम (1) करते हैं वे कारबन का तेरह सही नौ बटे दस[10] औंस 24 घंटे में खर्च करते हैं। यह कारबोनिक एसिड गैस

(CarbonicAcid gas) के रूप में आदमियों के चमड़े और फेफड़े से निकल जाता है। कारबोनिक एसिड गैस (CarbonicAcid gas) में रूपान्तर होने के लिए तेरह सही नौ बटे दस औंस कारबन (Carbon) को 37 औंस आक्सिजन (Oxygen) की जरूरत होती है। गरम मुल्कों में शरीर का बोझा 60 औंस और सर्द मुल्कों में 30 औंस फी दिन ही घटता है।

अशुद्ध वायु से शरीर को हानि

जो हवा प्रश्वास से निकलती है वह फिर श्वास से ग्रहण करने के पहिले विशुद्ध हवा से मिलनी चाहिये। यह निश्चय हो चुका है कि जब एक कमरे में बहुत से आदमी एकत्र होते हैं तब उस जगह की हवा रक्त शुद्धि के लिए ठीक नहीं रहती और यदि वही हवा श्वास से ली जाय तो रक्त को साफ करना तो दूर वरन् खून में मिल कर वह और भी बीमारियां उत्पन्न करती है। लिबिग (Liebig) साहब के हिसाब से एक युवा व्यक्ति दैनिक 32.5 औंस आक्सिजन शरीर में लेता है और उसके खून की तौल (सैकड़ा पीछे 80 हिस्सा जलीय पदार्थ निकाल कर) 24 पौंड होती है। इस प्रकार हवा यदि श्वास से ली जाय तो वह शरीर में एक न एक समय में विष उत्पन्न करती है।

मानवशरीर में खून के कुल हिस्सों का बोझा 30 पौंड है। यह हर तीन मिनट में फुसफुस के वायु प्रकोष्ठ के अन्दर होकर जाता है और श्वास क्रिया से विशुद्ध होता है। यदि अशुद्ध वायु बहुत देर तक हम लोग नाक के द्वारा लें तो उसका खराब फल साफ दिखलाई देता है। बहुत से काम ऐसे हैं कि जिनमें आदमियों को अशुद्ध हवा लेनी पड़ती है जिसके फल से असमय बुढ़ापा, पाचन शक्ति की क्षीणता, मानसिक दुर्बलता और यक्ष्मा आदि रोग हो जाते हैं।

अशुद्ध वायु के कारण केवल यक्ष्मा ही नहीं होता वरन् बहुत से श्वास के रोग जैसे खांसी, निमोनिया आदि हो जाते हैं। गत वर्ष की रिपोर्ट देखने से मालूम होगा कि भारतवर्ष में यक्ष्मा से मरने वाले पुरुषों की अपेक्षा उसी रोग से मरने वाली स्त्रियों की संख्या बहुत अधिक है। अतएव देख पड़ता है कि क्षय रोग स्त्रियों को ही विशेष सताता है। यदि खांसी और निमोनिया की संख्या भी इसमें जोड़ी जाय तो श्वास रोग में बहुत ही अधिक स्त्रियां मरी हैं। इससे हम लोगों को यह शिक्षा मिलती है कि विशुद्ध वायु ही मानव जीवन के लिए एकमात्र अवलम्बन है।

हम लोगों को फेफड़े से कारबोनिक एसिड गैस (CarbonicAcid Gas) निकलना ईश्वर की इच्छा है। यह देखा गया है कि हम लोगों के फुसफुस से जो कारबोनिक एसिड निकलती है वह साधारण वायु से आधी भारी होती है। यदि उसको निकलने न दिया जाय तो मृत्यु अवश्य ही होगी परन्तु भारी हवा निकलने के समय वाष्प नाइट्रोजन (Nitrogen gas) और अन्यान्य पदार्थों के साथ मिली हुई रहती है। डाक्टर टाम्सन (Thomson) का मत है कि 6 ग्रेन भाफ हर मिनट में हम लोगों की श्वांस से निकलती है। यह भाफ बाहर की ठंढी हवा में श्वास लेने से साफ–साफ जान पड़ती है। डाक्टर कारपेन्टर (Doctor Carpenter) कहते हैं कि हम लोगों के चमड़े और फेफड़े से प्रतिदिन 3 से 4 पौंड तक जल निकलता है। फुसफुस की पतली वायु इस प्रकार से भाफ के साथ मिलकर साधारण हवा की अपेक्षा हलकी हो जाती है और इस कारण से जल्दी–जल्दी ऊपर को चढ़ जाती है। इससे साफ जान पड़ता है कि घर में हवा का संचार होने के लिए ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये कि ऊपर की कारबोनिक एसिड गैस (CarbonicAcid gas) फिर श्वास के द्वारा न ले ली जावे। यदि यह न किया जावे तो फल यह होगा कि कारबोनिक एसिड गैस (CarbonicAcid gas) ज्यादा भारी होने के कारण नीचे उतर आयेगी और अशुद्ध वायु रह जावेगी।

हवा संचार होने में बेफिकरी : अशुद्ध वायु होने से जो हानि होती है उसको सब जानते हैं। घर ऐसा बनाना चाहिये जिसमें हवा और उजेला अच्छी भांति प्रवेश करे। बीमारी के लिए डाक्टर को कितना ही रुपया दिया जाता है परन्तु यदि घर में हवा और उजेले के लिए उतना रुपया लगाया जावे तो डाक्टर को हमेशा रुपया देने की जरूरत नहीं पड़ेगी। घर में विशुद्ध वायुसंचार का अर्थ यह है कि हमेशा हवा साफ आती जाती रहे और अशुद्ध हवा को निकाल दे क्योंकि हवा आंख से दिखलाई नही देती। इस कारण इसका दोष हमेशा मालूम नहीं पड़ता और इसीलिए हमेशा अशुद्ध वायु श्वास के द्वारा लेकर सन्तुष्ट रहते हैं। परन्तु पानी की बात और है। कारण इसका यह है कि इसका रंग और स्वाद हम लोग जान सकते हैं। यदि हवा का गुण भी इसी तरह से हम लोगों को मालूम हो जाय तो अशुद्ध वायु से भी हम लोगों को वैसी ही घृणा हो जाय। परन्तु अभ्यास इस भांति का है कि लोग शारीरिक हानियां उठाते हुए भी अपनी भलाई की ओर ध्यान कम देते हैं। यदि हर एक आदमी को यह ज्ञान होता कि स्वास्थ्य के लिए विशुद्ध वायु की उतनी ही जरूरत है जितनी कि भोजन वा वस्त्र की है तो विशुद्ध वायु की सुविधा के लिये भी निर्मल जल की तरह परिश्रम किया जाता।

लखनऊ में 20 वर्ष पहिले ऐसे घर थे कि जिनके कमरों में खिड़कियां थीं ही नहीं। यदि किसी में एक खिड़की हुई तो परम सौभाग्य की बात समझी जाती थी। परन्तु विद्या के प्रचार से अब वे बातें नहीं रहीं। तब भी रसोई घर का हाल बड़ा ही बुरा है; धुआं निकलने का कोई प्रबन्ध ही नहीं रहता।

आवश्यकीय विमल वायु का परिमाण : हम लोग बहुधा देखते हैं कि एक कमरे में जो लम्बाई और चौड़ाई में 14 वर्ग फीट है और ऊँचाई में 6 से 8 फीट है–अर्थात् कमरे की कुल जगह 1568 घन फीट से कम होती है – 6 या 7 आदमी सोते हैं, कमरे में अँधेरा है, फर्श मिट्टी का है, खिड़की अगर हुई तो एक है, बहुधा होती ही नहीं, इसकी खिड़की भी 20ग्16 इंच से बड़ी नहीं है। अगर हवा आती भी है तो केवल द्वार से।

डाक्टर कारपेन्टर का मत यह है कि एक आदमी 24 घंटे में लगभग 10 घन फीट कारबोनिक एसिड (Carbonic Acid) तैयार करता है। यदि कोई आदमी हज़ार घन फीट कमरे में रहे तो बाद 24 घंटे में अपने 100 में एक हिस्सा कारबोनिक एसिड (Carbonic Acid) वायुमण्डल में छोड़ेगा। चमड़े से जो कारबोनिक एसिड (Carbonic Acid) निकलता है वह इसके अतिरिक्त है। हम लोगों का आहार, कपड़ा इत्यादि उतना बीमारी का कारण नहीं है जितना कि अशुद्ध वायु क्योंकि इससे संक्रामक रोग बड़ी जल्दी दूसरे आदमी पर आक्रमण करते हैं। स्वस्थ रहने के लिए हर एक आदमी को 600 फीट जगह होनी चाहिए।

मनुष्यों का विश्वास : मनुष्यों का यह विश्वास है कि यदि हवा दरवाजे या खिड़की द्वारा घर में घुसे तो घर की वायु का संचार ठीक–ठीक होता है लेकिन यह उनकी भूल है। वे नहीं समझते हैं कि हवा भी किसी जातीय पदार्थ की नाईं किसी जगह में भर सकती है जैसे कि पानी बोतल में। विमल वायु कमरे की हवा को तभी साफ कर सकती है जब कि भीतर की हवा को निकलने का रास्ता हो। यह तभी हो सकता है जब कि हवा का बोझा बढ़ जाता है और ठण्डी हवा घुस कर समता रखती है। यह स्रोतहीन वायु मानव स्वास्थ्य के लिए उत्तम नहीं हो सकती। अंगरेज़ लोगों के घरों में खिड़की और द्वार होने पर भी छत में भी हवा निकलने की जगह होती है। इसका उद्देश्य यह है कि जब घर के नीचे के भाग में ठंढी हवा घुसे तब भीतर की गर्म हवा ऊपर के रास्ते से निकल जाय। घर के अन्दर की और बाहर की हवा का उत्ताप एक सा होना चाहिये तब घर की हवा विशुद्ध हो सकती है।

अशुद्ध वायुसेवन का विषमय फल : आपने सुना होगा कि कभी कभी कोयला जलाने के समय कारबोनिक एसिड (Carbonic Acid gas) ने निकल कर आदमी का,प्राण नाश किया है। परन्तु यदि बाहर की हवा लग सके तो कारबोनिक एसिड गैस (Carbonic Acid gas) कुछ कर नहीं सकता। यह देखा गया है कि यदि मनुष्यों की श्वास–प्रश्वास की वायु किसी जगह में जमा हो और यदि कुल 15 भाग वायु में प्रश्वासित वायु 1 भाग हो तो आदमी का स्वास्थ्य नष्ट होना आरंभ हो जावेगा किन्तु यदि प्रश्वासित वायु का हिस्सा विशुद्ध वायु से अधिक हो तो शीघ्र ही मृत्यु हो जावेगी।

इसका सारांश यह है कि यदि रमणियों की स्वास्थ्योन्नति करनी है तो घर को हवादार बनाना चाहिये और उन्हें नित्य प्रति गृहकार्यों को व्यायाम समझ कर आलस्य त्याग कर करना चाहिए।

---

1. बुढ़ापे में त्रस्त एवं निर्बल 2. कंजूसी 3. स्त्री 4. स्त्रियां
5. काम करना नहीं चाहती 6. दिन में सोना 7. घूमना 8. फेफड़ा
9. प्रति 10. 13–9/10 यानी 13.9

वैज्ञानिकों की जिज्ञासा*

शिवनारायण द्विवेदी

भारतवर्षने आजसे हज़ारों वर्ष पूर्व वेदान्त विषयक ज्ञान निःसन्देह अपूर्व और उच्चकोटिका प्राप्त किया था; इसे प्रमाणों द्वारा सिद्ध करने की रंचमात्र भी आवश्यकता नहीं है। किन्तु, आज भारत संसारसे पीछे है, इसे भी सिद्ध करना व्यर्थ है। भारतमें विचार दक्षता बहुत अधिक थी; किन्तु क्रिया दक्षता सदासे बहुत कम रही है। बिना क्रिया वाले विचार दृढ़ विश्वास नहीं पैदा कर सकते; हमारे देशके अमित ज्ञानके लोप होनेका एक यह भी कारण है। क्रियाके द्वारा सिद्ध किये हुए शास्त्रीय सिद्धान्त देशकी जिज्ञासाको जगा देते हैं और जिज्ञासाही ज्ञानकी उन्नति और मूल कारण है। जहाँ जिज्ञासा नहीं है, वहाँ ज्ञानका भी अभाव है। जिस मनुष्यके भीतर जिस विषयकी जिज्ञासाकी प्रबलता रात दिन निवास करती है, उसे इस बात की जरा भी परवा नहीं होती कि उस विषयको पूरा जान पानेपर कुछ द्रव्यकी प्राप्ति भी होगी या नहीं? बिना जिज्ञासाके उन्नति होना कठिनही नहीं, असम्भव है। जिस समय जिज्ञासाकी प्रबलताहो जाती है, उस समय संसारकी उन्नति हुए बिना नहीं रहती। छोटे बच्चे कितनी शीघ्रतासे सब विषयोंके जानकार बनते हैं; कारण यही है कि उनकी जिज्ञासा बड़ी प्रबल रहती है। प्रत्येक पदार्थको देखकर बच्चा सैकड़ों प्रश्न करता है। इससे कहना चाहिए कि मनुष्यको मनुष्यत्व केवल जिज्ञासासे प्राप्त होता है। प्रसिद्ध अमरेकिन यात्री डा. कुक हिमालयके निर्जन प्रदेशोंकी खोज करनेको जानेवाले थे, इसका कारण क्या है? जब जब सूर्यका खग्रास या कंकणाकार ग्रहण होता है तब तब जर्मनी, अमेरिका, इंग्लैंड, फ्राँस आदिके बड़े बड़े विद्वान् अपनी अपनी दूरबीनें लेकर दूर दूर देशोंसे वेध करते हैं, इसका कारण क्या है? जिस समय भारतमें प्लेगका सपाटा जोरसे चल रहा था और सगा भाई बीमारीके डरसे अपने भाईको छोड़कर भाग जाता था, उस समय हॉपकिन जैसा उच्च कोटिका विद्वान् अपनी जान जोखिममें डालकर प्लेग–तत्त्वकी खोजमें लगा था? इन सब प्रश्नोंका उत्तर है ज्ञानतृष्णा, जिज्ञासा। अपने ज्ञानकी प्यास बुझानेके लिए विद्वानोंने रात दिन परिश्रम करके ज्ञानके सरोवर भर दिये हैं, जिनमेंसे निकले हुए ठंडे झरने संसारको शान्ति देते हैं। बहुतोंका विचार होगा कि दक्षिण ध्रुवके यात्री कप्तान स्काटने जो चार साथियों सहित अपने प्राण खो दिये, इसमें उसने कौनसी बुद्धिमत्ताका काम किया? एक मासिक पत्रमें सम्पादकने लिखा था, कि, "कप्तान शाकलटन दक्षिण ध्रुवकी खोजमें गये। कप्तान कुक और एडमिरल पेरी उत्तर ध्रुवपर गये, डाक्टर स्वेनहेडिनने हिमालय पार किया, पर इन लोगोंके ऐसे विकट प्रयत्नोंसे संसारको क्या लाभ हुआ? यदि ध्रुवका पता न लगा होता या हिमालय न उलांघा गया होता तो क्या किसीका काम रुका रहता? यह माना कि इन ध्रुवपर जानेसे एक विशेष जातिकी मछली और कुछ पक्षियोंका पता चला, पर यदि इनका पता न लगा होता तो क्या

---

* *विज्ञान*, अप्रैल 1916

किसी को रोटी हज़म न होती? हाँ, यदि वहाँकी मिट्टी सोनेकी होती या वहाँ पारस पत्थर मिलते तो हमारे परिश्रमकी सफलता थी। आलसी, निरुद्योग और हतज्ञान मनुष्य इससे अधिक और क्या सोच सकते हैं।" निःसन्देह उक्त सम्पादक के विचार भारतवासियोंके विषयमें एक एक अक्षर सत्य हैं।

"स्ट्रैंड मेगज़िन" एक प्रसिद्ध मासिक पत्रिका है। इसने अपने जून 1910 के अंकमें 'ध्रुवकी खोजसे लाभ' विषयपर अनेक प्रसिद्ध विद्वानोंके लेख छापे हैं। दक्षिण ध्रुवकी खोजमें अपनी बलि देने वाले प्रसिद्ध कप्तान स्काट्ने उक्त प्रश्नका उत्तर देते हुए लिखा था कि, "इसका लाभ हमारे देश और हमारे बच्चोंको होना संभव है। शायद हमारी इस यात्रासे भूगर्भ शास्त्र, ज्योतिष और रसायन शास्त्रकी कोई नई बात मालमू हो। नहीं तो, कमसे कम हमारे बच्चे इससे साहसका पाठ सीखेंगे। जिस समय सिर झुकाकर संसार कहेगा कि, दक्षिण ध्रुवकी खोज सबसे पहले एक अंग्रेज़ने की, उस समय हमारी जाति और हमारा देश स्वाभिमानसे अपना मस्तक ऊंचा कर सकेगा।" प्रसिद्ध यात्री वर्क ग्रेव्हिन्सके भी यही वाक्य हैं कि ऐसी साहसी बातें हमारी भावी सन्तानको साहसी और तेजस्वी बनायेंगी। सारांश यह है कि इन सब उद्योगोंका कारण ज्ञानकी प्यास बुझाना है। वास्तवमें ज्ञानकी प्यासका बढ़नाही देशकी उन्नतिका लक्षण है।

वास्तविक ज्ञान बड़े ग्रन्थोंके देख जानेसे नहीं बढ़ता। धन पानेकी इच्छा रखकर कोई ज्ञानके समुद्रमें नहीं उतर सकता। हाँ, फिर उसे कुछ प्राप्ति हो जाय यह दूसरी बात है किंतु यह निश्चित नहीं। प्रत्येक विषयकी बारीक जांचही उस विषयकी पूरी जानकारी है। सब आविष्कारोंकी जड़ यही है। इससे पुराने सिद्धान्तोंके भ्रम भी दूर हो जाते हैं और उनका संशोधन भी हो जाता है। भारतवासियोंका ज्योतिष विषयक ज्ञान बहुत पुराना है, पर योरपमें थोड़े समयसे इस विद्याका विकास हुआ है। वहाँ इसके विकासका कारण केवल उन लोगोंकी ज्ञान तृष्णा थी, और अब वे इस विद्याकी उन्नति करके वायुयान द्वारा मंगल आदि ग्रहोंपर भी पहुंचनेका विचार कर रहे हैं। हमारे यहाँ ज्योतिःशास्त्रकी इतनी उन्नति हुई थी कि विवाह, यज्ञोपवीत आदि बड़े कामोंसे लगाकर छोटे छोटे कामों तकमें इसे पूछते हैं; पर उदासीनताके कारण इस अत्युच्च शास्त्रमें बड़े–बड़े संशोधन होने आवश्यक तो हो गये किन्तु वे होते नहीं। 1971 के भाद्र मासमें चन्द्र ग्रहणके विषयमें ग्वालियरके पंचांगमें लिखा था कि 7 बजकर 19 मिनिट पर शुद्ध होगा किन्तु चन्द्र बिम्ब 8 बजकर 14 मिनिट पर शुद्ध हुआ। इसी ढंगका पन्द्रह बीस मिनिटका अन्तर तो प्रायः सदाही रहता है। पर कभी–कभी वह घण्टों पहुँच जाता है, और कई बार तो बिल्कुलही उलटाहो जाता है। गणित और सारणीके भी सुधारकी आवश्यकता है। बहुत बार बिचारे भोले भक्त दशमीके ही दिन एकादशी कर डालते हैं। दक्षिण भारतमें शुक्ल पक्षसे मास प्रारम्भ होता है और उत्तर भारतमें कृष्ण पक्षसे। पर, लोगोंके चित्तमें इसके संशोधनकी बात कभी न आयी होगी। पहले ज्ञानकी तृष्णा बढ़ानी चाहिए, तभी ज्ञानसे आनन्दहो सकता है।

जो ज्ञान जिज्ञासाके द्वारा प्राप्त किया जाता है, वह सांसारिक और आर्थिक लाभ पहुँचाता ही है। यदि कोई मनुष्य केवल ज्ञान प्राप्तिकी ही इच्छासे शरीर–शास्त्र का अध्ययन करे, और वह धमनी, नाड़ी, स्नायु, फेफड़े, पट्ठे, मांस, रक्त, अस्थि आदि विषयोंकी बारीक जाँच करे, तो यह कब संभव है कि उसे स्वस्थ रहनेकी विधि, हड्डी टूटने, खूनके घूमने और एक धातुसे दूसरे धातुके परिवर्तन आदिका पूरा ज्ञान न हो। मतलब यह कि उसकी जानकारी काम आवेगी ही। यह भी निश्चित है कि जिस विषयकी जितनी बारीक खोजकी जायगी वह उतनाही अधिक उपयोगी भी बन जायगा, और समय आने पर उस खोज से सम्पूर्ण संसार लाभ उठा सकेगा। ग्वालियरकी फौजमें एक महाराष्ट्र विद्वान् श्रीयुत् मन्हार शास्त्री थे। आपने गणित, ज्योतिष, त्रिकोणमिति, रेखागणित आदिका पूर्व मननपूर्वक विशेष अभ्यास किया था। फौजमें प्रचलित शत्रुकी दूरी मापनेके यंत्र

मेकामिटर, स्टुअर्डस् टेलीमिटर आदिका आपने सूक्ष्म निरीक्षण किया था। जब आपकी पेंशन हुई तब आपने उस यंत्रका सुधार करना सोचा और पहले काग़जकी नालियाँ बनाकर आजमाइश की। इन परीक्षामें ठीक उतरनेपर आपने उन्हें धातुका बनाया। ग्वालियर नरेशने शास्त्री जीके बनाये हुए इस यंत्रकी शिक्षा कई सिपाहियोंको दिलायी। जब इन सिपाहियोंकी परीक्षा ली गयी तब तो महाराज और भी विशेष प्रसन्न हुए, क्योंकि इस यंत्रसे शत्रुकी दूरी शीघ्र और सरलतासे मालूमहो जाती थी। इसी समय इंग्लैंडके सैनिक कार्यालयने (war office) सूचना निकाली कि, "शत्रुकी दूरी मापनेके यंत्रके संशोधन होना आवश्यक है, क्योंकि वर्त्तमान यंत्रोंमें दो मनुष्योंकी आवश्यकता होती है और जगह भी बहुत घिरती है। अब ऐसा यंत्र बनना चाहिए जिसका उपयोग एक मनुष्य कर सके और जो दो फ़ीटसे अधिक जगह न घेरे" शास्त्री जी ने ऐसाही यंत्र तैयार किया और सिपाहियोंसे काम करवाकर महाराजको दिखाया। महाराजने प्रसन्न होकर शास्त्री जीको 1000 रु. इनाम दिया और विद्यासागरकी पदवीसे भूषित किया। कलकत्ता मिलिटरी डिपोके रायल इंजिनियर कप्तान रियाचने शास्त्री जीके बनाये इस यंत्रकी जांचकी, तो इसकी और सब बातें तो ठीक उतरीहीं पर इन लाभोंके अतिरिक्त एक और विशेष लाभ भी हाथ आ गया। वह विशेषता यह थी कि शास्त्री जी के यंत्रका वज़न भी बहुत कम था। इंग्लैंडके सैनिक कार्यालयने इस यंत्रको स्वीकार किया और शास्त्री जी की कीर्ति देश विदेशोंमें छा गयी। जिस दिन शास्त्री जी गणित और यंत्रोंकी बारीक जांच कर रहे थे उन्हें यह ध्यान भी न हुआ होगा कि मैं एक ऐसा आविष्कार कर सकूंगा। किन्तु उनका एकान्तमें बैठकर किया हुआ परिश्रम आज लाखोंका लाभ कररहा है। इसी प्रकार रेल, तार, टेलीफ़ोन, विमान आदिकी रचना और संशोधन हुआ है।

ज्ञानसे भ्रम और सन्देह नहीं रहते। हममें भूत, पिशाच और यक्षिणी साधन आदिकी मूर्ख–श्रद्धा अपना जोर जमाये हुए है। प्रकृति शास्त्रके मननपूर्वक अभ्याससे यह भोली कल्पना सर्वथा छूट जाती है। ऐसे झूठे और निर्मूल काल्पनिक विचारोंमें ही हमारी बुद्धि रुकी रहती है; हमारी बुद्धिके अबके दुरुपयोगोंमें से एक यह भी है। इसे हटानेके लिए सृष्टि शास्त्रके अध्ययनकी आवश्यकता है। सूर्यके प्रकाशसे जैसे प्रत्येक पदार्थका वाह्य स्वरूप प्रकट हो जाता है, वैसेही प्रकृति शास्त्रके अध्ययनसे पदार्थकी भीतरी दशा प्रकटहो जाती है।

प्रत्येक कार्यमें युक्ति होती है। जब किसी आश्चर्यकारी पदार्थके विषयमें युक्तिपूर्वक विचार करते हैं तब वह उतना आश्चर्यकारी नहीं जान पड़ता। शरीरकी कौनसी इन्द्रियां और कौनसे अवयव क्या क्या काम कर सकते हैं, यह सौ में से पाँचको भी मालूम न होगा। राममूर्ति, जोशी आदिके अपूर्व कामोंको यदि युक्तिपूर्वक देखा जाय तो मालूम होगा कि केवल ताक़तसे ही काम नहीं करते, बल्कि उनमें युक्ति भी रहती है। यह सच है कि प्रत्येक मनुष्य राममूर्ति नहीं हो सकता, किन्तु जिस किसीमें मानवी सूक्ष्म निरीक्षणका गुण हो वह हो सकेगा। हमारे देखनेमें कितने आमके पेड़ आते हैं, पर उनमें किसी किसीके ही फल "अमृतफल" कहने योग्य होते हैं। हज़ार संकटों, आपत्तियों विपत्तियोंको सहकर प्रत्येक यात्रीको ठंडी छाया और मीठा फल देकर, उसके मुँहसे प्रशंसा सुननी किसी बिरले वृक्षके भाग्यमें होती है। प्रत्येक बड़े छोटेंके लिए प्रकृतिका यह नियम समान है। हज़ारों कवियोंमें सर रवीन्द्रनाथ ठाकुरका सम्मान है, लाखों पहलवानोंमें राममूर्ति का सम्मान है, लाखों विज्ञानाचार्योंमें डा. जे.सी. बोसका सम्मान है। यदि देश देशान्तरमें इनके गुणोंका प्रसार होकर ये सम्मानित न होते तो आज हमें उनका अभिमान न होता। मतलब यह है कि मनुष्य स्वयं उच्च बन कर अप्रत्यक्ष रीतिसे भी दूसरोंको लाभ पहुँचाता है।

छोटे बालकोंको विज्ञानशास्त्र सिखानेके लिए वस्तुपाठ (Object lessons) सिखाया जाता है। इसी प्रकार विचारशक्ति जगानेके लिए पदार्थ विज्ञानके व्याख्यान सुनने बांचने उनकें प्रयोग प्रत्यक्ष

देखने, डाक्टर बोस जैसे दिग्गज विद्वान्‌के प्रयोग, तर्क और व्याख्यान सुनने पड़ते हैं और प्रत्यक्ष देखने का ही नाम वस्तुपाठ है। प्रत्येक विद्यार्थीका उद्देश्य उच्च होना चाहिए सफलता का कोई न कोई अंश उसके हाथ आयेगा ही। प्रत्येक मनुष्य जस्टिस रानाडे, महात्मा गोखले, सर गुरुदास बनर्जी, डाक्टर भांडारकर या डाक्टर बोस नहीं बन सकता; किन्तु इन्होंने इतनी योग्यता कैसे हासिलकी इसीके जान लेनेमें विशेष लाभ है। प्रत्येक मनुष्य काशी नहीं पहुँच सकता, पर आशाकी सड़कपर चल पड़नाही कम लाभ नहीं है।

अपनी उन्नति करके व्यक्ति, समाज और उसको लाभ पहुँचानेके लिए सूक्ष्म निरीक्षण और प्रबल जिज्ञासाकी आवश्यकता है। इसी प्रकारके वस्तुपाठकी आवश्यकता है। संसारके हजारों पदार्थ हमारी आँखोंके सामने घूमा करते हैं, इनसे बढ़कर उपयोगी वस्तुपाठ और क्या हो सकता है? यानी, प्रत्येक प्राकृतिक पदार्थको देखकर, यह कैसे बना होगा, कब क्या होगा, इसके बननेमें किन पदार्थोंकी आवश्यकता हुई होगी, अब यह कितने दिन तक टिकेगा, इसका परिवर्तन किस हिसाबसे हो रहा है—आदि प्रश्न जिज्ञासु हृदयमें अपने आप उठते हैं। इस प्रकार कुछ पदार्थोंका पूरा सबक प्राप्त कर चुकने पर, बहुतसे पदार्थोंका अपने आप ज्ञानहो जाता है—और प्रत्येक पदार्थके विषयमें खोज करनेकी परिपाटी हाथ आ जाती है। हमारे पूर्वज ऋषि और मुनि इस विद्याको जानते थे। इस समय, जिन पदार्थोंको हम देखते हैं उनकी रचना किस प्रकार हुई है, वे नष्ट किस प्रकार होंगे, उस समय क्या क्याहो जायगा, उनकी रचना समझनेके बाद हम भी वैसा पदार्थ तैयार कर सकते हैं आदि—आदि बातोंकी विज्ञप्तिसे जो शास्त्र तैयार किया गया है उसे रसायन शास्त्र कहते हैं।

इस शास्त्रका मूल परमाणु है। सं. 1860 के लगभग एक डाल्टन नामक विद्वान्‌हो गया है, इसने यह सिद्धान्त निकाला कि संसारके प्रत्येक पदार्थका मूल परमाणु (atom) है। वह परमाणु अति सूक्ष्म, अविभाज्य है। पर डाल्टनका वह परमाणुवाद कोई नयी कल्पना नहीं है, उससे भी दो हज़ार वर्ष पूर्व ग्रीस देशके एम्पिक्लेडिस, डिमाक्राटिस, अरिस्टाटल तथा इपिक्यूरस आदि विद्वानोंने यही कल्पनाकी थी। ग्रीस देशके इन विद्वानोंसे पूर्व हमारे देशके कणाद और इनसे भी पहले कपिलने परमाणुकी पूरी व्याख्याकी थी। उन्होंने लिखा है कि रसायनशास्त्रका अध्ययन हमें करना चाहिए, इससे मोक्ष प्राप्ति होती है। वैशेषिक दर्शनमें महर्षि कणादने वायु तकके ही अणु सिद्ध करके विश्राम नहीं लिया, बल्कि यहाँ तक बताया है कि उन्हीं वायुके अणुओंके आन्दोलनसे शब्दोंकी गति होती है और वे हमें सुनायी देते हैं। महर्षिके उस मतसे आधुनिक शब्द और उसकी गतिके सिद्धान्तोंसे बहुत कुछ समानता है। उस अति प्राचीन कालमें हममें ऐसे अत्युच्च तत्वज्ञानी हो गये हैं, इसका हमें अभिमान होना चाहिए। हाँ, प्रत्येक तत्वके विभाग करने पर परमाणु उसकी चर्मसीमा है, इसे प्रयोगोंके द्वारा सबसे पहले डाल्टनने सिद्ध किया। विद्वान् मैक्समूलर और कोलब्रुकने अपने मतमें कहा है कि योरुपमें यह ज्ञान ग्रीस देशसे आया और ग्रीस वालोंने भारतवर्षसे यह ज्ञान सीखा। भारतने इस ज्ञानके लिए किसी देशको अपना गुरु नहीं बनाया।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि, डाल्टनने अपनी परमाणु कल्पनामें ऐसी कौनसी नयी बात दिखायी जो कणादको मालूम न थी। उत्तर यही है कि डाल्टनने सबसे पहले उसे प्रयोग द्वारा सिद्ध किया और हमारे विद्वानोंने जो कुछ कहा वह केवल अनुमानजन्य था। यदि हमारे विद्वानोंमें पहलेसे प्रयोग द्वारा सिद्ध करनेकी रीति प्रचलित होती तो हमें डाल्टनका सिद्ध करना आश्चर्यमें नहीं डालता। डाल्टनके समयमें लेव्हाशियर नामक फ्रेंच और बरज़ीलियस नामक स्वीडिश सृष्टिशास्त्रज्ञ विद्वान् थे, इन्होंने डाल्टनके कथनको प्रयोगोंसे सिद्ध किया।

लोगोंकी शंकाएं मिटानेमें डाल्टनको बहुत प्रयत्न करना पड़ा, पर अन्तमें यह मत सर्वसम्मतहो गया। कणादका परमाणवाद केवल श्रद्धापर स्थापित हुआ था, यह केवल शाब्दिक सिद्ध था। स्वयं

कणादने इस मतको बुद्धिवाद पर स्थापित किया था। प्रयोगों द्वारा सिद्ध करनेकी प्रथा योरुपमें डेढ़ सौ वर्षसे चली है।

जिस शास्त्रको अग्रेजीमें 'केमिस्ट्री' कहते हैं उसीको हम 'रसायनशास्त्र' कहते हैं। पर भावप्रकाशमें लिखा है "सम्यक् पक्वस्य भुँक्तस्य सारो निगदितो रसः" यानी भोजन क्रियाके द्वारा जो पदार्थ बनता है उसे रस कहते हैं। क्वाथादि बनानेकी क्रियाका नाम सुश्रुतमें 'रस–क्रिया' है। धीरे–धीरे पतली चीज़को सारके कारण रस कहने लगे। फिर तरल होनेके कारण प्रकृत पदार्थको भी रसके नामसे पुकारने लगे। "रसायनं च तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम्" अर्थात् रसायन उसे कहना जिसे बुढ़ापा और व्याधि नाशहो तथा मनुष्य दीर्घजीवीहो। वाग्भट्टके इस मतका ही प्रयोग आज कल भी होता है। भर्तृहरिने लिखा है "मित्रं प्रीति सायनं" यानी मित्र प्रेमको पुष्ट और चिरस्थायी बनाने वाला है। तांत्रिक ग्रन्थोंमें भी रस और रसायनका बहुत कुछ वर्णन है। उन्होंने बताया है कि रसायनसे इस लोकमें दीर्घ जीवन और परलोकमें मोक्ष प्राप्त होता है।

केमिस्ट्री शब्दका अर्थ है पदार्थकी आन्तरिक रचनासे सम्बन्ध रखने वाला शास्त्र, यह अर्थ आज कलके अर्थसे बिलकुल भिन्न है। वास्तवमें केमिस्ट्री शब्दका जो पहले अर्थ था वह अब नहीं है। योरुपमें तेरहवीं शताब्दीमें लोग कीमियाकी ओर अधिक झुक गये थे। उस समय सबका यही विचार था कि किसी प्रकार लोहेसे सोना बनानेकी विद्या मालूमहो जाय, किन्तु इसमें किसीको भी सफलता न हुई। पर इससे यह लाभ जरूर हुआ कि पदार्थोंकी आन्तरिक दशा मालूम हो गयी और अन्तमें सिद्धहो गया कि तांबे, पीतल, लोहेसे सोना नहीं बन सकता। उस समय केमिस्ट्री शब्द पदार्थोंके पृथक्करता और संयोगीकरणके लिए व्यवहृत होता था। केमिस्ट्री वासतवमें 'कीमिया' शब्द का बिगड़ा हुआ रूप है। पारस पत्थर छुआनेसे मनुष्यकी आयु 400 वर्ष तक बढ़ा देनेकी शक्ति है, यह मूर्ख श्रद्धा अब वहां नहीं है। तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी भारतमें भी लोगों को यही धुन थी, पर धीरे धीरे वह कमहो गयी और आयुर्वेदकी ओर लोगोंका ध्यान खिंच गया। धीरे–धीरे योरुपमें केमिस्ट्रीने ऐहिक रूप धारण किया। अब यह शास्त्र उन्नति कर चला है।

हम ऊपर लिख आये हैं कि मूलतत्त्वोंमें ही एक, दो, तीन या अधिकके संयोगसे पदार्थ बनाये जा सकते हैं या नहीं। इस सम्बन्धमें विचार या प्रयोग करनेका ही नाम आजकल रसायन शास्त्र है। आधुनिक रसायनशास्त्रवेत्ताओंने मूलतत्व माने हैं। इसके विशेष संयोग, वियोग और मिश्रणसे लाखों कृत्रिम पदार्थ तक बनाये जा चुके हैं। साधारणतः तत्व उनको कहते हैं जिसका रूपान्तर (transformation) किसी दूसरी वस्तुमें न हो सके, तथा उसका पृथक्करण भी न हो सके, यही मूलतत्व अथवा मौलिक (element) हैं। हमारे विद्वानोंने मूलतत्वोंकी कल्पना भिन्नही प्रकारकी। सांख्यशास्त्रमें 25 तत्व माने गये हैं, जिसके मुख्य तत्व 5 हैं। किन्तु इन पांच तत्वोंकी उत्पत्ति आदि तत्व आकाशसे मानी गयी है। उपनिषदोंमें कहा गया है कि आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथ्वी पैदा हुई; किन्तु इन तत्वोंमें एक दूसरेकी इतनी अनन्त भिन्नता किस प्रकार हो गयी इसका ज्ञान हमें नहीं है। अब तक यह केवल युक्तिवाद और शब्दवाद पर स्थित है, प्रत्यक्ष प्रयोग द्वारा किसीने सिद्ध नही किया। किन्तु जो रसायनशास्त्रके मर्मज्ञ प्रेमी हैं, उनके हृदयमें यह प्रश्न उठ जाता है कि एक तत्वसे दूसरे तत्वमें परिवर्तन कर देना कितना शक्य है? इस अनन्त विश्वकी उत्पत्ति 81, 85, या 5 तत्वोंसे हुई है, यदि ऐसा है तो इनका कोई एक आदि तत्व अवश्य होना चाहिए। प्राउट नामक प्रसिद्ध रसायनशास्त्रज्ञ विद्वानहो गया है, उसने 1871 वि. में एक लेख प्रसिद्ध किया था, जिसमें यह सिद्ध किया गया था कि आधुनिक पांच तत्वोंकी उत्पत्ति "हाइड्रोजन" नामक सबसे हलके वायु रूप पदार्थसे हुई है। उस समय तत्व शब्दकी व्याख्या यह की जाती थी कि वह दूसरे तत्वके रूपमें परिवर्तित नहींहो सकता और जो परिवर्तित हो तो वह तत्व

नहीं; इसीलिए उक्त विद्वान्ने उस लेखमें अपना कल्पित नाम दिया। कई विद्वानोंने प्रयोगों द्वारा इसकी परीक्षाकी किन्तु यह सिद्धान्त उचित नहीं जँचा, अशक्य मालूम हुआ। अब रेडियम नामक एक नये तत्वका पता लगा। इससे कुछ किरणें निकलती हैं। ये किरणें कुछ समय बाद हिलियम नामक पदार्थके समानहो जाती हैं। हिलियममें जो गुण हैं वे पूर्ण रूपसे इसमें भी पाये जाते हैं। अर्थात् रेडियमसे हिलियम पैदा होता है। निआन, आरगन, तांबा, सोडियम तत्वोंके विषयोंमें भी ऐसीही बातें मालूम हुई हैं। चाँदी और सीसेमें बहुत कुछ समानता है। इन बातोंसे मालूम होता है कि प्राउटके सिद्धान्तकी परीक्षा अभी भली भाँति नहीं हुई है। बड़े बड़े धुरन्धर आचार्य रात दिन इसकी खोजमें लगे हुए हैं। चाहे एक हाइड्रोजनसे बाकी 81 तत्वोंकी उत्पत्ति सिद्ध की जाय या आकाश तत्वसे–किन्तु इस सिद्धान्तकी पुष्टि करनेके लिए दोनों समानही हैं। सर ऑलिव्हर लाज एक प्रसिद्ध विद्वान् हैं, इन्होंने प्रयोगोंके द्वारा इलेक्ट्राणु[1] नामक अति सूक्ष्म कणोंकी स्थिति सिद्धकी है। इन्होंने सिद्ध किया है कि हाइड्रोजनके एक अणुमें 700 इलेक्ट्राणु रहते हैं, और आक्सीजनके एक अणुमें 11,200 इलेक्ट्राणु रहते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि हाइड्रोजन आदि सम्पूर्ण 81 मूलतत्वोंकी उत्पत्ति इलेक्ट्राणुसे हुई है। हमारा विश्वास है कि महर्षियोंका माना हुआ आदि तत्व आकाश केवल इलेक्ट्राणुओंका दूसरा नाम होगा।

रासायनिक प्रयोगों द्वारा पदार्थ एक दशासे दूसरी दशामें परिवर्तित किये जा सकते हैं और बहुतसे नये कृत्रिम पदार्थ भी बनाये जा सकते हैं। एक समय यह बात अशक्य मानी जाती थी; पर रात दिन परिश्रम करने वाले विद्वानोंको धन्य हैं, उन्होंने पत्थरके कोयलेसे हीरा बनाना सोचा। क्योंकि हीरे और कोयलेमें एकही प्रकारके तत्व हैं, यह बात प्रयोगोंसे सिद्धहो चुकी है। कोयलेके छोटे–छोटे टुकड़ोंसे मनोहर चमकदार हीरे तैयार भी किये गये, पर पृथ्वीके गर्भमें जितने अच्छे बनते हैं उतने नहीं बने। फिर भी समय पाकर यह प्रयत्न अवश्य सफल होगा। फ्राँसके मि. एम.ए. मैन के तैयार किये हुए हीरे कुदरती हीरोंकी बराबरी कर सकते हैं। रसायनिक तत्वोंके संयोगसे हीरे तैयार करनेमें जैसी सफलता हुई है, वैसेही और बहुतसे पदार्थोंके तैयार करनेमें भी सफलता हुई है। हाड़, तेल, बाल, मांस, शहद, सींग, हाथीदांत, कस्तूरी, साबूदाना, चमड़ा, रेशम आदि पदार्थ रसायनिक संयोगसे तैयार होने लगे हैं और ये सब कुदरती चीज़ोंकी बराबरी करते हैं। असली नील खेतोंमें पैदाकी जाती है, पर अब रासायनिक संयोगोंसे नक़ली नील तैयार होने लगी है। इस असली और नक़ली नीलमें ज़रा भी फरक़ नही जान पड़ता। यह नक़ली नील हज़ारों मन तैयारकी जाती है, इसके कारण असली नीलकी खेती दिन पर दिन कम होती जाती है। नीलके ही समान सैकड़ों रँग रसायनिक संयोगोंसे तैयार किये जाते हैं, जो कुदरतकी बराबरी करते हैं। प्रत्येक वनस्पति पर प्रयोग करके यह जानना कि उसमें किन–किन तत्वोंका मिश्रण है और उनका विपाक क्या हो सकता है, तथा उसमें फिर किन गुणोंका समावेश हो जायगा, इसे जांचके द्वारा निश्चित करनाही आधुनिक रसायन शास्त्रका काम है। वैद्यकशास्त्रने तो इस विद्याको बहुतही महत्त्व दिया है। गिलोयसे ज्वर दूर होता है तो गिलोयकी जगह उन्हीं अंशोंका प्रयोग करना सयुक्तिक होगा,–तथा रासायनिक क्रिया द्वारा गिलोयसे वे अवयव निकाल लिये जायँगे। ऐसा करनेसे गिलोयका वास्तविक महत्त्व भी समझमें आ जायगा और थोड़ी औषधिसे काम भी बन जायगा। इस प्रकार पदार्थोंकी जांच करके विद्वानोंने उनके उपयोगी अंश पृथक कर लिये हैं।

प्रकृतिने सब पदार्थ मनुष्यके सामने खोलकर रख दिये हैं, प्रत्येक पदार्थकी जांचमें प्रकृति उलटी सहायताकर रही है। इतना होते हुए भी अभी मनुष्यको बहुत कम पदार्थोंका ज्ञान है, और जिन कृत्रिम पदार्थोंको बनानेमें सफलता हुई है वे तो उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। मनुष्य अपनी बुद्धिका अभिमान करता है और मानता है कि मैं जो चाहे कर सकता हूँ। अनुभवसे मालूम होता है

कि यह अभिमान व्यर्थ है। प्रकृतिकी अनन्तता कहाँ, और रसायनशास्त्रमें होने वाले क्षुद्र प्रयोग कहाँ? हम प्रकृतिके किसी अंशांशको जान सकते हैं। प्रकृतिका निस्सीम महत्व इससे व्यक्त होता है। सचमुच सृष्टिशास्त्रके जाननेवाले प्रकृतिकी जितनी उच्चता स्वीकार करते हैं, उतनी साधारण मनुष्योंके ध्यानमें भी नहीं आ सकती है। विज्ञानवेत्ताओं पर जो नास्तिकताका दोष मढ़ा जाता है, वह ठीक नहीं। वास्तवमें प्रकृतिका सच्चा महत्त्व वैज्ञानिकही जानते हैं और वे उसके कर्त्ताका उससे भी अधिक सम्मान करते हैं। सृष्टिका अव्यक्त ज्ञान प्राप्त करनेके लिए ज्ञानकी विशेष उन्नति होनी आवश्यक है। निरंतर उद्योग करते रहनाही कर्त्तव्य होना चाहिये और उस कर्तव्यको नम्रता किन्तु दृढ़ताके साथ पूरा करना चाहिये। सर ऑलिव्हर लाजका कहना है कि मनुष्यके मर जानेके बाद स्मृति और मन जीवित रहते हैं, इस प्रकार विज्ञानके अभ्याससे आस्तिकता दृढ़ होती है और भ्रम रहित ज्ञान बढ़ता है।

वनस्पति तथा प्राणी सजीव हैं अन्य पदार्थ निर्जीव हैं, पर हमारे शास्त्र प्रणेता महर्षियोंने सजीव निर्जीव दोनोंमें आत्मा मानी है। इस सिद्धान्तको भारत माताके सपूत विज्ञानाचार्य डा. बोसने पूरी तरहसे प्रयोगोंसे सिद्ध कर दिया। डाक्टर बोसने सिद्ध किया कि प्राणी और वनस्पतिके मस्तकमें बिजली छोड़नेकी शक्ति है। इसी प्रकार वह शक्ति धातुओंमें भी है। गरमीसे जैसे प्राणियोंमें यह शक्ति कमहो जाती है वैसेही धातुओंमें भी हो जाती है। भिन्न दशामें रखने पर संखिये का भी ज़हर दूर हो जाता है। इसी प्रकार धातुओंकी शक्ति क्षीण, मृत तथा वर्धित होती है। इस प्रकार डा. बोसने सजीव और निर्जीव पदार्थों का भेद सिद्धकर दिया। संसार का वैज्ञानिक वर्ग उन्नतिकी एक सीढ़ी और चढ़ गया। कोई रसायनशास्त्री कृत्रिम मांस बनाने कोई रक्त तैयार करनेकी और कोई मरे जानवरको जिन्दा कर देने की धुनमें हैं। यद्यपि इन उद्योगोंमें सफलता नहीं हुई है किन्तु विद्वानोंको विश्वास है कि वे इसमें सफल अवश्य होंगे।

---

1. इलेक्ट्रान

भुनगा पुराण*

(कपाल खण्ड) महाप्रलय तथा भूगर्भ वर्णन

रामदास गौड़, एम.ए.

इतनी कथा सुन श्री भुनगेश जी महाराज परम विनीत भावसे शिर नवा कर जोड़ जुंग ऋषिजीसे बोले "महाराज, यह मनोहारिणी कथा सुन चित्त आह्लादित हो गया और अधिक सुननेकी ओर रुचि बढ़ गयी, परन्तु हे कृपासिन्धो! आपने जो यह कहा कि मनुष्य ग्रह है, इसमें मुझे बहुत शंका है, क्योंकि भुनगा–भुवनमें यह बात प्रसिद्ध है कि मनुष्य एक पहाड़ है जो डोलता फिरता है। इस पहाड़में अनेक गुफाएं, अनेक नदियां आदि हैं। इसे आपने ग्रह किस प्रकारसे समझा, सो मुझे विस्तार पूर्वक सुनाइये और मेरी शंकाको दूर कीजिए"।

यह प्रश्न सुन जुंग महामुनि आत्मगौरवसे फूल कर प्रसन्न हो बोले "हे वत्स, क्या तुमने वह यंत्र देखे हैं जिनके बलसे जुंगोंकी जातिने इस ग्रह तथा अनेक ग्रहोंकी खोजकी है। भुनगा–भुवनमें यह यंत्र कहां। जुंगोंके ढाई सौ वर्ष हुए होंगे कि ग्रहों और तारोंकी चाल नापनेके लिए जुंगोंमें से एकने एक ऐसा यंत्र बनाया जिसके द्वारा मालूम हुआ कि यह ग्रह नियमित समयसे आकाश–मंडलमें चक्कर लगाता है। जब इसका एक युग पूरा हो जाता है, तो एक स्थान पर स्थिर दूसरे युगभर स्थिर रहता है। तीसरे युग फिर चक्कर लगाता और फिर स्थिर हो जाता है।

महाराज! इस आकाशमंडलमें ऐसे सैकड़ों ग्रह इसी प्रकार भ्रमण करते और फिर आराम करते हैं। इन ग्रहोंके आराम करनेका युग सब एक साथही होता है। और चक्कर लगानेका युग भी साथही आता है।"

इतनी कथा सुन भुनगेश्वर जी ने प्रार्थनाकी, "कृपानिधान, युगका परिमाण भी कृपा करके बताइये।"

श्री जुंगेश्वर जी बोले "हे भुनगानन्दन, हमारे यहां भी वही युगका परिमाण है जो भुनगा–भुवनमें है। दोनोंमें तनिक भी भेद नहीं। अर्थात् जितनी देरमें एक बार पंखका फट फट होता है उसे एक पल, उस पचीस पलका एक घंटा और उस चौबीस घंटेका एक अहर्निश, 360 अहर्निशका एक वर्ष, 12 वर्षका एक युग। सो, जो जुंग भुनगादि संसारका एक युग होता है, इस मानव ग्रहके ब्रह्माका एक रात वा दिन होता है।

हे महाराज आपके प्रश्नोंमें से मैंने यह बताया कि यह कौन देश है और यहांके पेड़ कैसे हैं। अब इस पवित्र उर्वरा भूमिकी कथा सुनिए।

---

* *विज्ञान*, जून 1916

लवणामृतके स्रोत जहँ बहत सहस्रन धार,
रक्तसे मछरी जहाँ अहंनिसि करत विहार,
जोहिके बल यह चिकुर बन रहत निरंतर स्याम,
जुंगादिक जेहि पान करि राजत पूरन काम,
सबै जुंग निज मातु सम मानत धरती जेहि,
जासु नेह बस देह निज तृन समान तजि देहिं।

भगवन्, जैसी देश भक्ति जुंगोंमें है भुनगोंने कभी सपनेमें भी न देखी होगी। जिस पवित्र भूमि पर आप विराजमान हैं, एक कल्पसे हमारेही पूर्वजोंके अधिकारमें चली आयी है। यह पुण्यमयी धरती पहले तो बड़ी उपजाऊ है। द्वियुगीमें कमसे कम एक बार तो अवश्य किसी समय इस जंगलमें बड़ा तूफान आता है। मेघकी बड़ी घोर वर्षा होती है, पर इस घने जंगलके ऊपरही ऊपरसे पानी प्रायः बह जाता है और हम लोगोंके भीगनेकी नौबत बहुत कम आती है, परन्तु वर्षाके बादही बड़ा घोर बज्रपात होता है, बिजली चमकती है और इन्द्रदेव और वायु कुपित हो बज्र और आंधीसे चिकुरोंको दलित और मर्दित कर डालते हैं। इस घोर विपदमें बहुतेरे जुंगोंके, जो उस समय अपनी गुफाओंसे बाहर होते हैं, व्यर्थ ही प्राण जाते हैं। इस देशमें वर्षा भी भाँति भाँति की होती है। तेल, झाग, पानी, मिट्टी, सब कुछ बरसता है। किसी किसी ग्रहमें कल्पके अन्तमें और किसीमें बीचमें ही महाप्रलयहो जाता है। महाप्रलयके समय यह जंगल बिलकुल कटकर साफहो जाता है और जुंगोंका नाश हो जाता है। धरती पर चिकुर मूलको छोड़ और कुछ नहीं रह जाता, बल्कि एक पर्त्त पृथ्वी भी छिल सी जाती है। इस महाप्रलयमें पहले गरम जल बरसता और साथ ही बड़े जोरका झकोरा आता है और एक ओरसे ही सैकड़ों हजारों चिकुर इस तरह कटते जाते हैं, कि कोई इतनी तेज़ीसे खेत भी नहीं काटता। निदान इस महाप्रलयमें कोई नहीं बचता। हमारे ऋषियोंने अपनी दिव्य दृष्टिसे यह जान लिया है कि महाप्रलयमें भी यह धरती शेषनागके फन पर टिकी रहती है और अनेक युगोंके बाद ब्रह्मा फिरसे सृष्टि रचते हैं। धीरे–धीरे फिर बड़े–बड़े चिकुरोंका जंगल खड़ा हो जाता है और फिर जुंगावतार होता है।"

इतनी कथा सुनाय श्री जुंगेश्वरजी भुनगेश जी से बोले "भगवन्, यहतो पृथ्वी तलकी कथा हुई। यह तो सर्वसाधारणको भली प्रकार विदित है। जुंगपुराणमें अनेक स्थलोंमें इसका वर्णन हुआ है। परन्तु आज मैं वह गुप्त रहस्य वर्णन करना चाहता हूँ जो मैंने अपनी आंखों देखा है और जिसे त्रैलोक्यमें और कोई नहीं जानता। तुम्हें अपना परम प्यारा भक्त जानकर कहता हूँ।

हे भुनगानन्दन! वसन्त ऋतुका सुहावन समय था, सीरी सीरी मंद मंद सुगन्धसे सनी, घनी चिकुरावलीमें बहती हुई वायु प्रत्येक शाखाको हिलाती अटखेलियां करती जा रही थी। जहां मैं सुखसे बिचर रहा था वह इस कपाल–खंड भूमिका वह स्थान था जहां धरतीके दो भागसे हो गये हैं और जरा सा ही खोदनेसे बड़ा भयानक दरार दीखने लगता है। ऐसे स्थानमें मैं खड़ा ही था कि एकाएकी अनभ्र[1] बज्रपात अथवा उल्कापात हुआ। आकाश मंडलसे कोई तारा इस वेगसे टूटा और धरती पर गिरा कि उस स्थान पर 25 गज ब्यासका गड्ढा हो गया। कुशल हुआ, मैं बाल–बाल बच गया, क्योंकि मेरे एक गज परही यह भयानक गड्ढा फटा था"।

भुनगेश्वर जी ने बात काटनेकी क्षमा मांगते हुए इस स्थल पर पूछा "महाराज, आपने कालका परिमाण तो बताया, पर देश का परिमाण अर्थात् लम्बाईका परिमाण भी बतलानेकी कृपा करें"।

जुंगेश्वर जी बोले "हे वत्स! हमारा शरीर जुंग संसारका दो गज होता है। इसी गजसे 20 गज का एक मील होता है। ऐसाही जानना।

सो हे भुनगानन्दन जी, उस दुर्घटनाका प्रभाव इतना बुरा मेरे ऊपर पड़ा कि मैं उसी समय

मूर्च्छित हो गया। परन्तु यह मूर्च्छा शीघ्रही दूर हो गयी और मैं सचेतहो उठ खड़ा हुआ, वह बज्र जिससे यह गड्ढा हुआ उछलकर आकाशमें चला गया था। इन्द्रका आयुध इस मृत्युलोकमें कैसे ठहर सकता है।

जब मेरा मन शान्त हुआ, मैंने विचार किया कि इस गड्ढेमें प्रवेश करके धरतीमाताके गर्भके रहस्य जानने चाहिए। जब मैं अपनी जवानीमें शिखा–वनमें जुंग–महाविद्यालयमें शिक्षा पाता था उस समय भूगर्भ विद्याकी ओर मेरी बड़ी प्रवृत्ति थी और अनेक बार अपने शुंड–शूलसे मैंने खोद–खोद परीक्षा भी की थी। परन्तु ज्योंही परीक्षा करने लगता त्योंही ऐसी बड़ी आंधी[2] आ जाती कि सारा चिकुरबन बिदलितहो जाता था और शान्तिपूर्वक परीक्षा न हो सकती थी। इस बार उस विराट नर–परमात्मा की कृपासे मैं निर्विघ्न परीक्षा करनेमें समर्थ हुआ।

बड़ी सावधानीसे मैं गड्ढेके किनारे पर पहुँचा। देखा कि यद्यपि दस गजसे कम गहरा न होगा तथापि उसके चारों ओर नीचे ऊंचे छोटे छोटे गड्ढे इतने बन गये थे कि उनके सहारे उतर जाना कोई बात न थी। सो मैं धीरेसे उतरकर एक नन्हेंसे गड्ढेके सहारे खड़ा होकर धरतीके स्तर देखने लगा।

पहले पांच स्तर चीमड़े और बहुत ही छेदीले थे जिनके भीतर नलिका सरीखे असंख्य छिद्र थे। उन्हीं छिद्रोंके भीतरसे चिकुरमूल धरतीमें गड़े थे और धरतीसे अपना भोजन एक घुंडीके द्वारा खींचते थे। इसके नीचे कोषोंका एक स्तर था जिनमें पीयूष सरीखा रस भरा था। इनके नीचेके पर्त्तसे असंख्य छोटी–छोटी नालियोंका झुंड था। कोई नीली और कोई पीली थी। नालीमें से नीला रक्तयूष[3] बह रहा था और कई बड़ी नालियां थी, उनमेंसे विशुद्ध लाल लाल रक्तामृतकी धारा फव्वारेकी तरह निकल रही थी। इस स्तरके नीचे बड़ाही कठोर पत्थर या देव भाषाओंमें अस्थि कहते हैं। इस उल्कासे यह कठोर पत्थर भी फट गया था और इसके नीचे कोमल भूरी भूरी मिट्टी थी जिसमें करोड़ों ममाखियोंके से बने हुए रक्तामृतकी नालियां भी जगह जगहपर रही थीं और उस भूरी भूरी मिट्टीसे पीले पीले रेशे[4] थे जो उलझेसे बड़ी दूर फेले थे और एक स्थानमें तो गुच्छेसे होते थे।

गड्ढेमें मैं कुछ आगे बढ़ा। रक्तामृतकी धारा बह रही थी। उसमें बड़ी अद्‌भुत लीलाहो रही थी। लाल और श्वेत मछलियां बड़े वेगसे उनमें घबरायी हुई चल रही थीं। श्वेत मछलियां बड़ी विकराल थीं। आप समझ सकते हैं कि रक्तामृत[5] जैसा स्वादिष्ट रसको पीनेका किसे हौसला न होगा और जब इस तरहकी धारा बहती हो तो अपनी तृष्णाको कौन दबा सकता है। सैकड़ों छोटे छोटे जीव आकर उस धारामें अमृतपानके लिए टूट पड़े और उनका रक्तमें आना था कि उन पर वह श्वेत मछलियां बड़े विकराल रूपसे टूट पड़ीं और उन्हें छिन्न–भिन्न करने लगीं। बस, दोनों पक्षोंमें बड़ा घोर युद्ध मचा। इधर तो काले जीवों और सफेद मछलियोंमें देवासुर संग्राम हो रहा था उधर लाल मछलियां अपने शरीरसे उस बड़े गड्ढेको पाटनेमें लग गयीं। धरती माताके गर्भके यह चरित्र देख मैं दंग रह गया। उस भीतरी दृश्यको देखनेका आज तक मेरे किसी जुंगको सौभाग्य न हुआ। इस अवसरसे लाभ उठानेको मैं भी आगे बढ़ा। चाहता था कि एकाध घूंट रक्तामृत मैं भी पान कर लूं कि एकाएकी मूसलाधार विषैले जल की ऐसी बाढ़ आयी कि मेरे छओं पैर बेकाबू हो गये और मुझे मूर्च्छा आ गयी।

आधे युग तक मैं मूर्च्छा में ही रहा। आंखें खुलीं तो देखता क्या हूँ कि अपनी कुटीके पास एक चिकुरके नीचे सुख शय्या पर सो रहा हूँ। जंगली देवी पंखा झल रही हैं। बाल बच्चे घेरे हुए हैं। मुझे सचेत देख जुगनी जी ने नर–परमात्माके अनेकानेक धन्यवाद दिये, धरती माताको सीस नवाया, मुझे एक घूँट ताजा रक्तजल पिलाया। मेरा चित्त जब शान्त हुआ, मैंने अपनी धर्मपत्नीसे शेष कथा सुनी।

मैं जब मूर्छित होकर गड्ढेसे बाहर बह आया, तो एक चिकुर मूलसे लिपटा पड़ा रहा। इतनेमें उस बाढ़से गड्ढेका बहुतसा भाग धुल गया। फिर उसमें बड़े विषैले धूल[6] की ऐसी हुई कि गड्ढा भर गया। फिर उस पर बड़ी–मोटी टट्टी[7] चिकुर सरीखे मोटे पेड़ोंके डंठलोंकी पड़ गयी। यह अद्‌भुत टट्टी धरतीकी रक्षाके लिए देवताओंने आकाशसे गिरायी थी। इस टट्टीने सारी धरतीका एक कटिबन्धका कटिबन्धही घेर लिया। युगमें एक बार यह टट्टी उठ जाती थी और पहलेकी नाईं विषैले जलकी वर्षा और विषैली धूलका झोंका आता था और फिर टट्टी पड़ जाती थी। इस प्रकार कई द्वियुगियोंमें यह गड्ढा इन्द्रदेवकी कृपासे पट गया और टट्टी गायब हो गयी।"

इतनी कथा सुनाय श्री जुंगजी महाराज भुनगेश जी बोले –"भुनगेश जी, इस पुण्यमयी धरती पर देवताओंकी बड़ी कृपा रहती है। वह सदा इसकी रक्षा करते रहते हैं। समयानुसार यथोचित वर्षा आदि करते हैं। और बुद्धिमें तो यह आता है कि वह जो कभी कभी इस धरती पर महाप्रलय लाते हैं, अथवा जो प्रतियुग आंधी पानी वज्रपात आदि से कुछ जुंगोंका नाश भी कर देते हैं, यह भी हमारी भलाईके लिए है। मारना भी रक्षा का एक अंग है। हम लोग नर–परमात्माकी सृष्टि हैं। वह हमें अपनी अद्‌भुत शक्तिसे उत्पन्न करता, हमारे पालनके लिए पहलेसे ही उपाय कर रखता है, हमें उसीने आहार विहारादिके लिए शक्तिमती इंद्रियां दीं, और अन्तमें जब जुंग–जगतमें पाप अधिक फैल जाता है, जुंग नारियां कुलटा हो अनेक वर्णसंकर उत्पन्न करती हैं, जुंग पुरुष लोग अनधिकार कर्त्तव्य करने और देवताओं के नियमके विरुद्ध सीमोल्लंघन करने तथा धरती खोदना आदि अनेक उत्पात करने लगते हैं तब हमारी अच्छी जाति उत्पन्न करनेके लिए वह नर परमात्मा महाप्रलय कर देता है–

ज्याय पालि मारत केहि भांती धन्य अखिल रखवाल!

देखिये जुंगवेद में क्या कहा है–

"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्
धर्म संस्थापनार्थाय क्षौर कर्म्मं करोम्यहम्।।"

इत्यार्षे श्री भुनगा महापुराणे कपालखंडे भूगर्भ वर्णनो नाम द्वितीयो अध्यायः।

---

1. बादल रहित
2. सिर खुजलाना
3. सिरा व Veins जिसमें नीलिमायुक्त रक्त बहता है। धमनी में शुद्ध लाल रुधिर बहता है।
4. रक्तामृत रुधिर का वह वर्णहीन रस है जिसे श्वेत रुधिराणु कहते हैं और जो खून के अर्क सा बच रहता है। यह नमकीन होता है।
5. शव कार्बोलिक लोशन से धोया गया।
6. कपड़े की पट्टी
7. आइडोफार्म और बोरिक एसिड का चूर्ण

केला*

गंगाशंकर पंचोली

हिन्दुस्तानमें ऐसे बहुतही कम मनुष्य होंगे जिन्होंने केलेके पेड़को न देखा हो। यह प्रायः बगीचोंमें लगाया जाता है और देखनेमें सुहावना मालूम होता है। इसके पत्ते अकसर त्यौहारों+, उत्सवों, तथा व्रतोंके समय देवताओंके मंडप बनानेमें काम आते हैं, इसलिए सब लोग इससे जानकार हैं।

केलेके पेड़में पेड़ी और पत्ते होते हैं और डाली नहीं होतीं। पेड़ी जो हलके पीले रंगकी होती है उसको देखनेसे जान पड़ता है कि छालके खोलोंसे मढ़ी हुई है। यदि एक खोलको हटाया जाता है तो भीतर दूसरा खोल मिलता है। इस रीतिसे केलेकी पेड़ी छालके खोलोंसे[1] ढका हुआ बीचमें एक सफेद मूसला होता है और यही मूसला असली पेड़ी है। जब पौदा बहुत छोटा होता है तो यह पेड़ी गांठकी सूरतमें धरतीके समीपही रहती है और इस गांठसे ही रेशेदार जड़ें धरतीमें घुस जाती हैं। ज्यों–ज्यों पेड़ बढ़ता है जड़ें फैलती जाती हैं और गांठ ऊपरको बढ़कर (मूसला) पेड़ी होती जाती है।

केलेके पत्ते 4 से 8 फुट तक लम्बे और दो फुट तक चौड़े होते हैं। छालकी खोल ही बढ़ कर पत्तोंकी सूरतमें बदल जाती है अर्थात् खोलका ऊपरी सिरा बढ़कर पत्ताहो जाता है। पत्तोंके बीचमें एक मज़बूत गूदेदार रीढ़की नस होती है जिसमेंसे छोटी–छोटी नसें पत्तोंके किनारे तक सीधी जाती हैं। जब हवा ज़ोरसे चलती है तो वह चौड़े लम्बे पत्तोंसे रुकती है और पत्तोंको फाड़ देती है जिस कारण पत्ते फट कर झालर या बंदनवारकी सूरतके हो जाते हैं और फिर हवाको नहीं रोक सकते। पत्तोंकी रीढ़की नसमें तथा खोलोंमें असंख्य छोटे–छोटे छिद्र होते हैं जिनमें रस भरा रहता है, जिससे पेड़के सब अंगोंको पोषण मिलता रहता है। मूसला पेड़ी, खोल, रीढ़की नस सब–रस पूर्ण होते हैं।

पेड़के बीचकी मूसला पेड़ी बढ़कर जब खोलोंसे बाहर निकल आती है, तब वह फल फूल लगनेकी डालहो जाती है। मूसला पेड़ीमें जब फल फूल लग चुकते हैं तो पेड़ काट देनेके लायकहो जाता है। फूलका गुच्छा लगनेपर बोझके कारण डाल झुक जाती है। हर एक गुच्छा लम्बगोल मध्यनिम्न चिम्मड़ पत्तोंसे ढका रहता है। ये पत्ते भीतरकी ओर गहरे लाल रंगके और बाहरसे हलके लाल रंगके नीली झांई लिये होते हैं। इन पत्तोंमें से प्रथम के 8 वा अधिक जो उस झुकी हुई डालके आदिमें होते हैं, 10 या 16 फूलोंकी दुहरी कतार वा लड़ीको ढकते हैं और यही फूल फलोंको उत्पन्न करनेकी शक्ति वाले होते हैं। ज्यों ज्यों फूलोंकी कतार वा लड़ी पकती जाती है फूलोंकी पंखुड़ियां मुरझा कर गिरती जाती हैं और फल खुले होते जाते हैं। इसी प्रकार बाकी बचे और फूलोंके गुच्छे दो वा तीन मास तक खिलते और गिरते रहते हैं, पर उनसे फल उत्पन्न नहीं होते।

---

* *विज्ञान*, फरवरी 1917

+ त्योहारों के समय बहुत लोग इसके पत्रों को थाली की जगह काम में लाते हैं

फूलकी कली 6 पुटोंकी, दो भागमें होती है। तीन बाहरी छद और दो भीतरी दल मिलकर एक नलकी सूरतमें जुड़े रहते हैं जिनके बीचमें तीसरा भाग रहता है। फूलके 5 पुटोंके सिरे बनावटको स्पष्ट करते हैं। फूलमें 5 पुमंग होते हैं और छठा अपक्व अर्थात् बिना खिले वा उभड़े अंगका होता है। फूलोंके मूलमें सुस्वाद रस रहता है जिसको मधुमक्खी पीनेको आती है और एक फूलके गुच्छेसे दूसरे पर बैठती है। ऐसा करनेमें पुमंगकी परागको दूसरे गुच्छेके स्त्री–अंगके मुन्ड पर लगा देती हैं जिस कारण ग्रीवाके नाल द्वारा परागा डिम्बाशयमें पहुंच जाता है और फल उत्पन्न होता है। पुष्प डाल वा शाखाके आदि वाले फूलोंके गुच्छेमें प्रथमके आठ और अधिकके भागोंमें पुमंग परागहीन होता है। पर स्त्रीकेसरके मुन्ड लसवाले होनेसे वे स्त्री अंग बांझ नहीं होते। इसके खिलाफ
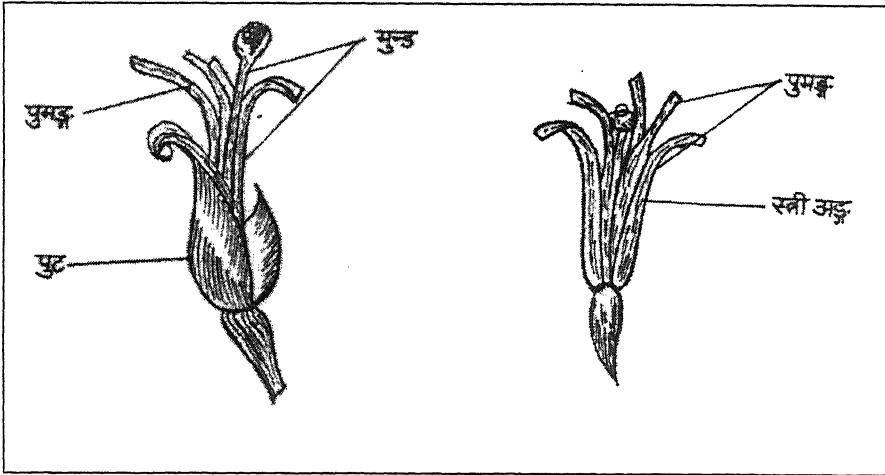
चित्र 1 : केले का फूल — चित्र 2 : पुट रहित केले का फूल

डालके नीचेके भागके फूलोंमें पुमंग तो फलोत्पादक शक्ति वाले होते हैं पर स्त्री अंग बांझ होते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि डालकी जड़के पासके गुच्छेमें फल लगते हैं और नोकके पासके फूल बिना फल दिये झड़ पड़ते हैं।

केलेका फल लम्बा मोटा तीन वा पांच पहलका और सिरे पर नोकदार होता है। फलके गूदेमें बीज छिपे हुए रहते हैं। बीज पूरे अंगके नहीं होते इस हेतु बीजसे केलेका पेड़ नहीं उग सकता। जो केला जंगलमें अपने आप उगता है उसके बीज भरे पूरे अंगके होते हैं और उनसे पेड़ भी होते हैं। मनुष्यने जंगली केलोंको अपने काम के और अधिक गूदेके उत्पन्न करने हेतु जुदी जुदी क्रिया कीं तो फलमें यह गुण उत्पन्नहो गया कि गूदा विशेष होकर बीज कमज़ोरहो गया। यही कारण है कि केलेका पेड़ बीजसे नहीं होता। जड़परसे छोटे छोटे पौदे उग उठते हैं और फिर उनको वहांसे हटा जुदे जुदे[1] लगाकर पेड़ उत्पन्न करते हैं।

केलेकी जातियां

केलेकी मुख्य चार जातियां फलके रंगके अनुसार नियतकी गई हैं– (1) देसी, (2) सुनहरी, (3) नीला, और (4) लाल।

(1) देसी केला अधिकसे अधिक 20 फुट तक ऊंचा होता है और हिन्दुस्तानके सब भागोंमें पैदा होता है। इसका फल 9 इंच लम्बा और 5 से 8 इंच तकके घेरेका होता है। कच्ची

चित्र 3
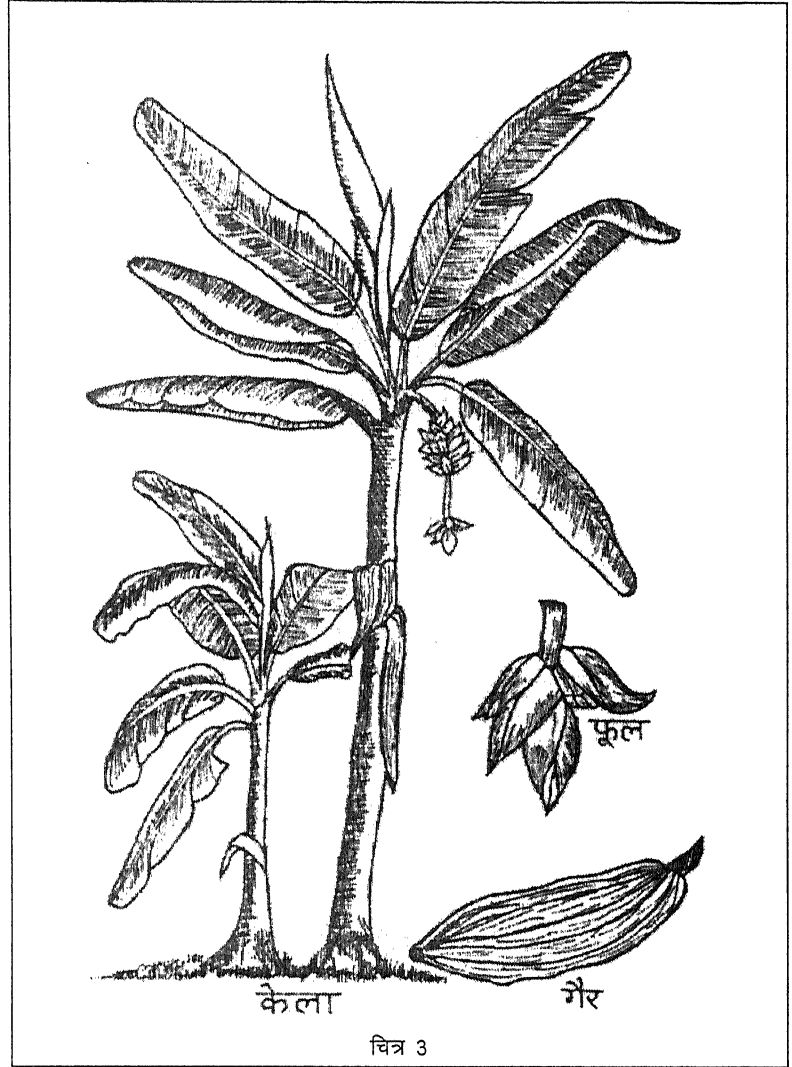
अवस्थामें हरा पर पक जानेपर हलके पीले रंगका काली नस वाला हो जाता है। इसके 3 से 5 तक पहल होते हैं और ऊपरका छिलका मोटा होता है। पके फल मीठे, पर बिना गंधके होते हैं। केलेके फलकी तरकारी और अनेक खानेकी वस्तुएं बनाई जाती हैं।

(2) सुनहरी फल वाले केलेका पेड़ बहुत ऊंचा बढ़ता है। फल छोटा और मीठा और बिना नस वाला होता है। पक जाने पर फल पीले रंगका हो जाता है। इसका छिलका पतला और गूदा मीठा होता है।

(3) नीले हरे रंग वाले फलका पेड़ छोटा होता है और उसको लोटन कहते हैं। फल पक जानेपर भी हराही रहता है। छिलका इसका भी पतला होता है और गूदा मीठा होता है। पेड़की पीड़ मोटी और मज़बूत पर 5 फुटसे अधिक बड़ी नहीं होती। पेड़ छोटा होता है

पर फल बहुत लगते हैं। फल फूल वाली डाल इतनी लम्बीहो जाती है कि उसके अधर लटकते रहनेके लिये नीचे धरतीमें गड़हा खोदना पड़ता है क्योंकि धरतीसे लगने पर फल बिगड़ जाते हैं। फल मीठा तो होता है पर गूदा कुछ पीले रंग का सा होता है। एक डाल पर 300 से 500 तक फल वा गैर लगती हैं।

(4) लाल गैर वाला केला 20 फुट तक ऊंचा होता है। गैरका फल 7 से 10 इंच तक लम्बा, रसदार और स्वादिष्ट होता है। पेड़का रंग भी लालझांई लिये होता है। छिलका मोटा और दलदार होता है। पक जाने पर भी फल लाल रंगका ही रहता है और बिना नस का होता है। डाल पर 90 फल तक लगते हैं।

ऊपर लिखी चार जातियोंमें और अनेक भेद भी हैं जैसे बसराइ, लाडम, एलचीया, राजेली, चीनाई, कदमी इत्यादि। ये सब जाति प्रायः दक्षिणमें होती हैं। डूंगरी नामका केला त्रावंकोर और दक्षिण कानाड़ामें बहुत होता है यह केला देखनेमें अच्छा होता है और 15 से 20 फुट की ऊंचाई तक पहुंचता है। इसकी पेड़ी बड़ी, फल छोटे पर बिना रस वा गूदेके होते हैं और बीच काले और बड़े होते हैं। जो कि बीजके सब अंग भरे पूरे और स्फुट होते हैं इसलिए बीजसे भी पेड़ हो सकता है।

धरती, जोत और पेड़ लगाना

केलेकी खेतीके लिए महीन रेतीके मेलकी दुर्मट[2] धरती तथा काली, भूरी व लाल और कछार अर्थात् नदीके पानीकीं तलछटसे बनी धरती बहुत काम की होती है। जो धरतीका ऊपरी पड़ (तह) मोटा होता है तो वह विशेष अच्छी गिनी जाती है।

केलेके पेड़को लगानेके लिए पहिले हल गहरा चलाना चाहिये जिससे मिट्टी ऊपर आ जाय और फिर उस मिट्टीको महीन कर गोबर या लीदका सड़ा खाद खेतमें हल जोतकर मिला देते हैं। जब जोत और खादसे धरती ठीक हो जाती है तो चौमासेके आरम्भमें हलसे 12 फुट लम्बी 6 फुट चौड़ी क्यारियां बनाते हैं और हर एक क्यारीमें दो दो पेड़ लगाते हैं। जब चौमासा शुरू हो जाता है उस समय पेड़ लगानेकी जगह दो फुट गहरे और डेढ़ फुट घेरेके गड्डे कर उनमें गोबरका सड़ा खाद वा एरंडकी खरी खाद या मछलीका खाद डेढ़ सेर तक देते हैं और केलेके छोटे छोटे पौदों को उनमें खड़ाकर ऊपरसे मिट्टी डालकर दबाते हैं। केलेके पौधोंको लगानेके बाद क्यारियोंमें पानी देते रहते हैं क्योंकि इस पौदेको पानी अधिक चाहिये। तीसरे चौथे महीने पौधे की जड़के पासकी मिट्टीको गोड़कर थोड़ा सा खाद मिला पानी देते हैं जिससे पौदा जोर बढ़ता है। चौमासेमें मेहका पानी मिलता रहता है पर जो मेहकी खेंच हो जाय (पानी देरमें बरसे) वा चौमासा बीत चुका होवे तो हर अठवाड़े पानी देते रहते हैं और महीने महीन पौदेके जड़की मिट्टीको गोड़कर पोच वा ढीली करते रहते हैं जिससे पानी नीचे उतर जाता है और जड़ोंके काममें आता रहता है।

केलेके पेड़को यथेष्ट पानी मिलने और खाद लगनेसे जड़ोंमें से छोटे छोटे पौदे फूट निकलते हैं और बढ़ने लगते हैं। इन नये पौदोंमें से एक दो को छोड़ बाकीको वहांसे उखाड़ कर दूसरे स्थान पर पूर्व लिखी रीतिसे जमाते हैं और उनको पेड़ीके बीचसे काट देते हैं जिससे पौदा जोरसे बढ़ने लगता है। केलेका पेड़ धरतीमें से बहुत सा रस चूस लेता है इसलिए पेड़को एकही जगह तीन वर्षसे अधिक नहीं रखते। पहिले कह चुके हैं कि केलेकी पेड़ीके बीचमें एक ठोस मूसला होता है और वही बढ़कर फूल फलकी डाल हो जाता है। जब केलेका फल वा गेर पक चुकती है तो फिर पेड़ फल देनेके कामका नहीं रहता और उसको धरतीकी बराबरसे काट लेते हैं। जो दो एक छोटे पौदे होते हैं

उनको बढ़ने देते हैं और बाकीमें से एक दो को छोड़, औरोंको उखाड़, दूसरे स्थानपर लगाते हैं वा फेंक देते हैं। इस रीति एकही जगहपर तीन वर्ष तक पेड़को रखते हैं। तीन वर्ष पीछे पहिली जगह पर तीन चार वर्ष केला नहीं लगाते।

जब कभी वायु ज़ोरसे चलता है तो फलोंकी डालके टूट पड़नेका भय रहता है। इस भयसे बचनेके लिए या तो केलोंको ओटकी जगह लगाते हैं कि जहां पवनका ज़ोर कम लगे या फलोंकी डालको सहारा या टेका लगाते हैं जिससे वह टूटकर गिर नहीं पड़ता।

पेड़ोंकी लैनोंके बीचमें खाली धरतीमें शकरकन्द लगाते हैं जिसका पौदा केलेकी पेड़ी पर चढ़ जाता है। सात मासमें शकरकन्द पक जाती है तब उसकी बेलको धरतीसे खोद निकालते हैं।

कहीं कहीं ऐसा करते हैं कि केलोंसे कुछ अन्तर पर कलमी आमके पौदे लगाते हैं। केलेका पेड़ एक जगह तीन वर्ष रखा जाता है इस समयमें आमके पौदे पोषण पाकर बढ़ जाते हैं। इसके पीछे धरतीको गोड़, खाद पानी देनेसे दो वर्षमें आम फल देने लगता है। इस रीतिसे केलेके पेड़ोंके संग आमको लगानेसे बहुत लाभ हो सकता है।

पेड़के ऊपरही जब गैर वा फल पूरे भर जांय और रंग पीला पड़ने लगे तो फलों वाली डालको तोड़ लेते हैं और गैरोंको इस रीति पकाते हैं। फलके गुच्छेको डोरीमें बांध खूटीपर अधर लटकाते हैं जिससे कभी कभी गैरें पक जाती हैं। जो शीघ्रही पकाना चाहते हैं तो मिट्टीकी नांद वा कोठीमें घास वा पत्ते बिछा उस पर फलोंके गुच्छोंको रख ऊपरसे और घास वा पत्ते ढक देते हैं और नांद के ऊपर दूसरी नांद वा ढकना लगा संध बंदकर ऊपर मेंगनी वा सूखे कंडों के चूरे को सिलगाकर गरमी पहुंचाते हैं जिससे भीतर रक्खी गैरें दो दिनमें पक जाती हैं। गैरोंके गुच्छेको धरतीपर नहीं रखते वरन डोरमें बाँध खूंटी पर लटकाये रखते हैं। ऐसा करनेसे फल पीले रहते हैं। जो धरती पर रखे जाते हैं वा बार–बार हाथ लगाया जाता है तो गैर काली पड़ जाती हैं।

केलेके पेड़में साधारण रीतिसे 100 से 150 तक गैर वा फल लगते हैं। छोटे फल वाले पेड़ोंमें 500 से 1000 तक फलोंके होनेके विषयमें अनुभव किया गया है।

केलेके पेड़ पत्ते और फलों का उपयोग

केला बहुतायतसे होता है और सहजमें ही उसकी काश्त हो सकती है। उसके सब भागोंको कुछ न कुछ काममें लाया जा सकता है। पेड़ खुद सुन्दर और सुहावना होता है, इसलिए प्रत्येक बगीचे वा बागमें अवश्य लगाया जाता है। पत्ते पत्तलका काम देते हैं। छोटे पौदे उत्सवों पर देव मंदिरोंमें तथा विवाह आदि शुभ मौकों पर मंडप बनानेमें लिये जाते हैं। फल पुष्टिकारक, स्वादिष्ट और ठंडक देने वाला है। फलोंकी तरकारी बनती है और पेड़ीका पानी पापड़ बनानेके उपयोगमें आता है। केलेकी जड़ और रस औषधके काम आता है। रसमें 'टेनिक एसिड' होता है जिसमें तरीको सुखा देनेका गुण है। रसका दाग दूर नहीं होता इस हेतु कपड़े पर निशान करनेमें काम आता है। चमड़ेको काला करनेमें छाल काम आती है। सबसे बड़ा उपयोग केलेकी छालसे रेशे निकालना और फलसे आटा बनाना है। इन दोनों रीतिके उपयोग दिन प्रतिदिन बढ़ते जाते हैं और उनसे लाभ भी अधिक होता है। रेशेसे कपड़ा, रस्से आदि कामकी वस्तुएं बनाई जाती हैं। कच्चे फलोंके गूदेको सुखाकर आटा बनाया जाता है जो पुष्टिकारक है। आटेको 'स्टार्च' अर्थात मांडी भी कहते हैं और बच्चों, बूढ़ों और रोगियोंको खुराकमें बताया जाता है। केलेकी गैरसे चौथाई आटा बैठता है। गेहूँ और गैरका आटा बराबर भागमें मिलाकर डबल रोटी तथा टिकिया बनाई जाती हैं और इनमें स्वादके लिए मसाले भी मिलाते हैं।

छालसे रेशे निकालना

हिन्दुस्तानके निवासी और विशेषतः हमारे इस प्रान्तके किसान, माली तथा बगीचोंके स्वामी केलेके पेड़से फल लेनाही मुख्य काम जानते हैं। फल ले लेनेके पीछे पेड़को उखाड़ फेंकते हैं और पेड़ी वा छालको किसी उपयोगमें लानेके विषयमें ध्यान ही नहीं देते। जिस भांति पेड़ी तथा छालको वे निकम्मा जानते हैं, उसमेंसे बड़े कामकी और बड़ा लाभ देने वाली वस्तु, रेशे निकाले जा सकते हैं कि जिनसे रस्सी, रस्से, किरमिज, टाट, पट्टी, कालीन, चिक, कपड़ा, आदि अनेक वस्तु बनती हैं। यह रेशा उष्ण देशमें जहां सूर्यका ताप विशेष पड़ता है अच्छा और मज़बूत निकलता है। इसी तरह छायाके स्थानमें उगे पेड़की अपेक्षा खुले स्थानमें उगने वाले पेड़से अधिक रेशा प्राप्त होता है। इसलिए यदि माली, किसान, वा बागोंके स्वामी रेशे निकालनेका उद्यम करें तो नफा ही रहेगा। रेशे निकालनेकी सरल रीति तो यह है कि केलेकी पेड़ीकी छालको चीर पतली दो तीन इंच चौड़ी धज्जी कर ईखके रस निकालनेके कोल्हूमें दाब रस निकाल लेते हैं। जो गूदा बचता है उसको पानीमें धोकर साफ कर लेते हैं और फिर रेशोंको जुदा जुदा कर बंडल बना रखते हैं। अथवा जैसे केतकीके पत्तों को छुरेसे छील गूदा जुदाकर रेशे निकालते हैं वैसे ही केलेकी छालसे भी रेशा निकाल सकते हैं पर यह बड़ी सिरपच्चीका काम है। सरल और सुगम रीति यंत्र द्वारा निकालनेकी है।

कलकत्तेकी एक प्रदर्शनीमें बंगालके बाबू जे.एन. बनरजीने रेशे निकालने का एक यंत्र रक्खा था जिसकी कीमत 15 है। उस यंत्रको सुगम और मजबूत बताया जाता है और वह एक जगहसे दूसरी जगह सुगमतासे ले जाया जा सकता है। बाबू साहबने सन् 1907 के 'इण्डस्ट्रिअल कांफ्रेंस' में एक लेख पढ़ा था उसमें यंत्र द्वारा रेशे निकालनेके फायदे दिखाये थे, जिसका सार यह था कि जब 18 मासमें केलेके पेड़से फल लिए जा चुकते हैं तो धड़को काट उसकी 311 इंच चौड़ी धज्जी उतारते हैं और उन धज्जियोंको साफ करते हैं। फिर यंत्रमें देकर रेशोंको जुदा जुदा कर लेते हैं। पेड़की बाहरकी छालकी अपेक्षा भीतरकी छालसे बहुत अच्छा रेशा निकलता है इस हेतु इन दोनों भागोंके रेशे जुदा रखनेमें लाभ रहता है।

बाबू साहबके हिसाबसे एक आदमी और एक लड़का साढ़े पांच आनेके खर्चेसे एक दिनमें सात सेर रेशा निकाल सकते हैं। इस हिसाबसे एक टन (2711 मन) रेशे निकालनेमें 55) खर्च पड़ता है और 45) लन्दन तक पहुंचानेका खर्चा मानें तो 100) में एक टन विलायतमें जाकर पड़ता है। उस समय लन्दनका भाव 35 पाउण्ड फी टन मानें तो फी टन 425) का नफा रहता है। यदि हिसाब ठीक है तो यह नफा थोड़ा नही है और जब पड़ता और नफा इस भांति है तो देशके किसानों, ज़मीदारोंको इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

सन् 1904 की बम्बईकी प्रदर्शनीमें एक दूसरा ही यंत्र दिखाया गया था और उसके चलानेकी क्रिया भी बताई गई थी। फिलीपाइन द्वीपके वासी इस यंत्रको काममें लाते हैं। मदरासके कृषि विभागकी तरफसे इस यंत्र विषयक सूचना प्रगट हुई थी। यदि यह यंत्र सचित्र यहां पर वर्णन किया जाय तो अनुचित न होगा। यंत्र का चित्र और उसके चलानेकी क्रिया काठियावाड़के 'खेडुत' नामके मासिक पत्र से लेकर यहां दी जाती है। (देखिए चित्र 4)

चित्र 4 में (अ) (अ) दो सोट वा बल्लीके हुक हैं जो धरतीमें समान ऊँचाई पर खड़े हैं और उनके ऊपर (व) गोल बल्लीका टूक कीलोंसे जड़ा हुआ है। (व) बल्ली 8 फुट लम्बी और 6 इंच व्यासकी एक सिरेसे दूसरे सिरे तक समान गोलाई की चिकनी है और उसका ऊपरी तल धरतीसे 2 फुट 7 इंच है। इस गोल बल्लीके बीचमें ऊपरकी ओर 15 इंच लम्बा और 2 इंच चौड़ा और आध इंच मोटा लोहेका पत्तर जड़ा हुआ है। (क) लोहेकी छुरी 4–1/2 सेरकी है जिसका गोल
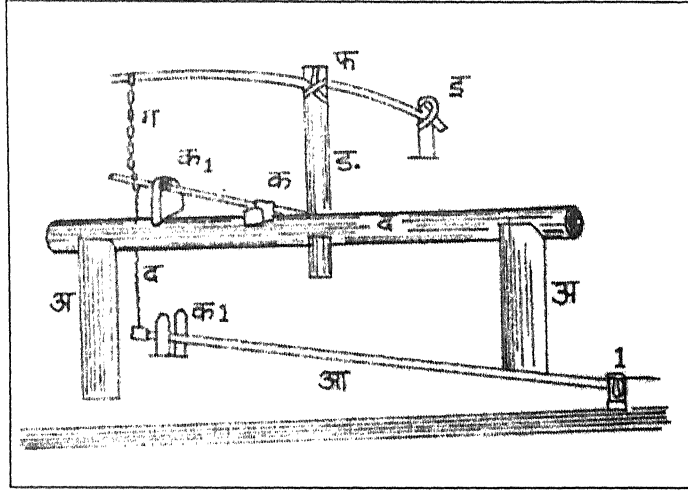
चित्र 4

दस्ता खूंटीमें इस रीति जड़ा है कि जिससे छुरी नीचे ऊपर हो सकती है। छुरीके दस्तेके सिरे पर एक संकल (ग) बंधी हुई है जो ऊपर (फ) बांसके सिरेमें लग रही है और नीचेकी ओर तार (ह) लगा हुआ है। यह तार (व) बल्लीके एक छिद्रमें होकर नीचे निकल गया है और वहां (आ) बांसके एक सिरेमें जड़ा हुआ है। (क) छुरीका दूसरा सिरा धारदार है जिसका फल लोहेकी पत्तीके अन्दाज लम्बा है पर फलकी धार पैनी न होकर मोटी और भोतरी है।

चित्रमें (ड) लकड़ीका एक और टूक है जो (व) बल्लीसे 6 फुटकी दूरी पर एक बगलमें गढ़ा है और वह धरतीसे 4–1/2 फुट ऊँचा है। इस (ड) लकड़ीसे 6 फुट आगे हटकर, पर छुरीके दस्तेके सिरे और (ड) लकड़ीकी सीधमें (इ) एक खूंटी गड़ी हुई है। इस खूटी और (ड) के ऊपरी सिरेसे एक बांस या लकड़ी जिसमें स्थिति स्थापक शक्ति है बंधी हुई है जिसका सिरा छुरोंके दस्तेके सिरेके ऊपर तक पहुंचता है और जिससे दस्तेमें लगी संकल बंधी हुई है। यंत्रके नीचे (आ) बांसके एक सिरेमें दस्तेसे बंधा तार लगा हुआ है। यह बांस (क$_1$) दो खूटियोंके बीच होता (व) बल्लीके चोखटेकी दूसरी तरफ 1 स्थान तक गया है और वहां या तो खुटीमें कीलसे घूमता हुआ जड़ा जाता है या कोई भारी बोझ उसके सिरे पर रख दिया जाता है।

ऊपर लिखे यंत्रसे केलेके रेशे तैयार करनेके लिए उसकी पेड़ीके 3–1/2 फुट लम्बे 1–1/2 वा 2 इंच चौड़े टूक वा फाड़ करते हैं। जिस दिन केलेको उखाड़ा जाता है उसी दिन रेशे निकालने चाहिएँ। पेड़ीकी भीतरी छालकी फाड़ोंमें से अच्छे और मज़बूत रेशे निकलते हैं इसलिए उनके दो तीन ऊपरके परतोंके रेशे जुदे निकालते हैं क्योंकि ये परत हरे होनेसे कुछ कड़े होते हैं और रेशे भी सुगमतासे नहीं निकलते।

जब धज्जी वा फाड़ बन चुकती है तो एक आदिमी दो तीन फाड़ोंको हाथमें लेकर (आ) बांसपर एक पैरको रखता है जिससे बांस नीचेको दब जाता है और उसके साथ (ह) तार खिंचनेसे छुरेका दस्ता नीचा होता है और फल ऊपर उठ जाता है। उस समय वह मनुष्य हाथमें की फाड़ोंके सिरेको लाहेकी पत्तीपर रखता है और धीरेसे (आ) बांस परसे अपना पैर उठाता है जिससे छुरा उन फाड़ोंपर होले' से गिरता है। ये फाड़ें लोह पत्तरसे छः वा सात इंच आगे बढ़ी रहती हैं। जब छुरा फाड़ोंपर गिर जाता है उस समय यह आदिमी लोहेके पत्तर और छुरेके बीच दबी हुई फाड़ोंको

खेंचता है। इस प्रकार पांच छः समय फाड़ोंके सिरेको छुरेके नीचे दाबकर निकालनेसे रेशे जुदे हो जाते हैं। इसके पीछे वह आदिमी फाड़ोंके दूसरे सिरोंको पूर्व रीतिसे छुरे और लोह पत्तरके बीच दाब दाबकर खेंचता है जिससे दूसरे सिरोंके भी रेशे जुदे जुदे हो जाते हैं। जब रेशे निकल आते हैं तो उनको बीचसे पकड़कर झटकारते हैं जिससे वे जुदे जुदे बिखर जाते हैं और बांस वा अड़गनी पर लटकाते हैं जो धरतीसे साढ़े पांच फुट ऊंची रहती है। जब तक रेशे सूख न जायं तब तक उनको लटका रखते हैं। जो दिन साफ और धूप वाला होता है तो ये सब शीघ्रही सूख जाते हैं। इस प्रकार तैयार किये रेशे पूर्व तरीकेसे उपयोगमें लाने योग्य होते हैं।

यंत्र सादा है जिसको मामूली खाती[4] व लुहार बना सकते हैं परन्तु इससे काम लेनेके लिए थोड़ेसे अभ्यासकी जरूरत है। जब तक काममें हाथ जमता नहीं तब तक रेशे निकालनेमें अड़चन जरूर पड़ती है।

इस हेतु हमारे देशके बगीचोंके स्वामी, माली और किसानोंसे यही कहना है कि वे केलेके फलोंका ही उपयोग न कर उसकी पेड़ीकी छालसे रेशे निकालनेके धंधेमें तरक्की करते हुए अपने विकासकी ओर ध्यान दें तो बहुत अच्छा हो।

यह छोटा सा लेख पाठशालाओंके उन विद्यार्थियोंके लिए लिखा है जो कृषि विद्याको पढ़ते हैं या जिनके घर कृषि होती है जिससे वे केलेकी पैदावार करना जानें और पेड़से जो उपयोगी वस्तु बन सकती हैं उनकी क्रिया जान फायदा उठावें।

---

1. अलग अलग 2. दोमट 3. धीरे से 4. बढ़ई

चार्ल्स डारविन*

श्यामसुन्दर जोशी

चार्ल्स राबर्ट डारविन इंग्लैंड के बड़े प्रसिद्ध प्राणि–विद्या विशारद हो चुके हैं। इनका जन्म शिरुसबरी–नामक स्थान में 12 फरवरी सन् 1809 हुआ। इनके पिता उसी नगर में वैद्यक कार्य किया करते थे। वे रोगियों से सदा सद्व्यवहार करते थे। इस कारण उनका अच्छा मान था। उनकी आय भी अच्छी थी। अतएव उन्होंने बहुत सा धन संचित कर लिया था। यही कारण है कि जो डारविन अपने सब वैज्ञानिक कार्यों को, किसी की आर्थिक सहायता के बिना, अपने ही धन से निर्विघ्नता–पूर्वक कर सके।

डारविन का हृदय बाल्यावस्था से ही विज्ञान की ओर जो इतना आकर्षित था और छोटी अवस्था से ही इनको जो इतना आनन्द आता था उसका कारण इनके पिता नहीं, बल्कि इनके पितामह थे। इनके पितामह ने दि लब्ज़ आव् दि प्लेंटस् (The Loves of the Plants) नामक एक अर्द्ध–वैज्ञानिक पुस्तक लिखी थी। उन्हीं से डारविन को विज्ञान का चसका लगा।

एक जर्मन लेखक के कहने पर डारविन साहब ने अपने जीवन का कुछ वृत्तान्त स्वयं लिखा है। उससे इनके जीवन की मुख्य मुख्य घटनायें और अन्य बहुत सी बातें, जो अपर लेखकों के ध्यान में भी न आतीं, ज्ञात होती हैं। ये आठ वर्ष की अवस्था में विद्याध्ययन के लिए पाठशाला भेजे गये। पाठशाला के सब शिक्षक, और इनके पिता भी, इनको एक सामान्य बुद्धि वाला और साधारण बालक समझते थे। क्योंकि इनको लैटिन, व्याकरण आदि रटने में आनन्द न आता था और उन दिनों इन्हीं का बहुत प्रचार था। इसे ये स्वयं भी स्वीकार करते हैं। इनको बचपन से ही प्राकृतिक वस्तुओं—वन वन विचर कर प्रकृति का अध्ययन करने और चूहे तथा छोटे छोटे जीवों को पकड़ कर प्राणि विद्या का अध्ययन करने इत्यादि—के अध्ययन करने में बड़ा ही आनन्द आता था। इन्हीं दिनों में आखेट करते समय इन्होंने प्रकृति की अनुपम सुन्दरता को देखा, जिसका चित्र इनके हृदय में सदा ही अंकित रहा। इस विषय में वे लिखते हैं, "मेरे करुण हृदय पिता ने मुझे नाना प्रकार से, और बहुत बार, मृगया और अकारण जीव–हत्या के दोष बताये और मुझे इस प्रकार समय–नाश करने से बहुत रोका; यहाँ तक कि कभी कभी उन्होंने मुझे कठोर शब्द भी कहे। परन्तु मुझ पर उनका कुछ भी प्रभाव न पड़ता था; क्योंकि मुझ पर तो और ही धुन सवार थी।" ये इन दिनों अपने घर ही पर रसायन शास्त्र का भी कुछ अध्ययन किया करते थे, जिससे इनके पिता और शिक्षक इन पर और भी क्रुद्ध हुए। इनके सहपाठी भी इनको "गैस गैस" (Gas gas) कहकर चिढ़ाया करते थे। पर ये उनकी ओर कुछ भी ध्यान न देते और अपने कार्य अपनी इच्छानुसार करते रहते।

---

* *सरस्वती*, मार्च 1917

जब इनके पिता ने इन्हें शिरुसबरी में कुछ करते न देखा तब इन्हें एडिनबर्ग (Edinburgh) को जहाँ इनके भाई भी थे, वैद्यक पढ़ने भेज दिया। ये वहाँ पर कुछ काल तक रहे, पर उन दिनों की चीर–फाड़ को, जब कि क्लोरोफार्म (Chloroform) का आविष्कार न हुआ था, न देख सके और वहाँ से कैम्ब्रिज लौट आये। यहाँ पर ये अध्यापक हैन्सलो (Henslow) नामक एक बड़े वनस्पति–शास्त्री के पास अध्ययन करने और विद्यालय में उनके व्याख्यानों को भी बड़े चाव से सुनने लगे। इस तरह होते होते उन्होंने एक दूसरे के गुणों को पहचान लिया तब दोनों में बड़ी गाढ़ी मित्रता हो गई। वहाँ इन्होंने बहुत से मनुष्यों को वृक्षों की काई और जड़ तथा कीचड़ आदि को एकत्र करने में लगा रक्खा था। उनके अध्ययन से इन्होंने बहुत से अपरिचित जीवों का ज्ञान संसार को कराया। इससे इनका नाम दिन दिन प्रसिद्ध होने लगा। इनका कहना है–"मुझे Stephens' History of British Insects" esa "Captured by C. Darwin Esqr." अर्थात् "स्टेफन साहब की हिस्ट्री आव् ब्रिटिश इन्सेक्ट्स" नाम की पुस्तक में "सी. डारविन द्वारा पकड़े गये" लिखा देख कर इतना आनन्द हुआ जितना किसी कवि को अपनी प्रथम कविता को मुद्रित देखकर भी न हुआ होगा।

कैम्ब्रिज में अपने अध्ययन–काल की एक घटना का वर्णन डारविन साहब ने इस प्रकार किया है। "एक दिन मैं एक बड़े पुराने पेड़ को खुरच रहा था। उसमें मुझे दो बड़े बड़े विचित्र गुबरैले दिखाई दिये। मैंने उन दोनों को अपने दोनों हाथों से उठा लिया। इतने में मुझे एक और विचित्र गुबरैला दिखाई पड़ा। इस शीघ्रता में मैं न सोच सका कि उसे क्या करूँ। इसलिए मैंने एक को मुख में रख कर दूसरे की ओर हाथ बढ़ाया। परन्तु मेरे मुखवाले गुबरैले ने कुछ दाहक, अर्थात् जलाने वाला, बड़ा गरम जल सा छोड़ा। तब मैंने उसे हठात् मुँह से डाल दिया। इसी बीच में तीसरा भी भाग गया।"

विज्ञान–विशारदों में डारविन के इतना प्रसिद्ध होने का मुख्य कारण इनका "बिगल" (Beegal) नामक जहाज़ द्वारा संसार–भ्रमण करना है। क्योंकि इनको अपनी प्रधान प्रधान पुस्तकें लिखने की सामग्री इसी भ्रमण में प्राप्त हुई। यह भ्रमण 1831 से 1836 ईसवी तक होता रहा। स्वदेश लौटने पर आपने अपने भ्रमण का वृत्तान्त प्रकाशित किया, जो अत्यन्त मनोरंजक है।

परन्तु इस भ्रमण से इनका आरोग्य बिगड़ गया, जो मरणपर्यन्त फिर न सुधरा। इस कारण ये लन्दन से 16 मील दूर एक स्थान में एकान्तवास करके अपना कार्य करने लगे। ये 1836 से 1841 ईसवी तक जियोलोजिकल सोसाइटी (Geological Society) के मन्त्री का कार्य करते रहे। वहाँ इनकी मैत्री लायल (Lyell) और हुकर (Hooker) साहब से हो गई।

इनकी सबसे प्रसिद्ध एवं मुख्य पुस्तक ओरिजन आफ स्पिशीज, 1859 के नवम्बर मास में, प्रकाशित हुई। इसको लिखने का कारण इन्होंने इस प्रकार बताया है–"जब मैं 1838 में–माल्थस आन पापुलेशन (Malthus on Population) – नामक पुस्तक पढ़ रहा था तब मेरे मन में नाना प्रकार की भावनायें उठीं। पर मैंने उन्हें अपने स्वदेशवासियों के विचारों की प्रवृत्ति और अपने धर्म के ध्यान से लिखने का साहस न किया। पर 1842 में मैंने अपने स्वदेशवासियों के विचारों ओर प्रचलित धर्म पर कुछ भी ध्यान न देकर, किन्तु सत्य का पक्ष लेकर, उन भावनाओं को पैंतीस पृष्ठों में लिख लिया। फिर उन्हीं को बढ़ा कर 1944 में मैंने दो सौ तीस पृष्ठों की एक पुस्तक लिखी जो अब भी मेरे पास है।" इसी पुस्तक को फिर इन्होंने, कोई पन्द्रह वर्ष उपरान्त, प्रकाशित किया। यद्यपि इस पुस्तक ने मनुष्यों के हृदय से कुछ पक्षपात दूर कर दिया और वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया तथापि ये सर्व–साधारण के कटाक्षपात से न बचे। कोई इनको पागल, कोई मूर्ख, कोई धर्म–द्रोही और कोई कुछ और बताने लगा। जितने मुँह उतनी ही बातें इनके विषय में सुनी जाने लगीं। इतना होने पर भी इस पुस्तक की 1250 प्रतियों का प्रथम

संस्करण तो मुद्रित होने के दिवस ही और 3000 प्रतियों का दूसरा संस्करण भी कुछ काल उपरान्त बिक गया। इस पुस्तक का अनुवाद योरप की कितनी ही भाषाओं में—स्पेनिश (Spanish) पालिश (Polish), बोहेमियन (Bohemian) और रशियन (Russian) सी जटिल भाषाओं तक में—हो गया है। सभ्य संसार की प्रायः समस्त भाषाओं में इनकी पुस्तक के अनुवाद पाये जाते हैं।

इनके रचित प्राणियों और वनस्पतियों से सम्बन्ध रखने वाले मुख्य मुख्य ग्रन्थ ये हैं— The Origin of Species, The Descent of Man, The Variations of Plants and Animals under Domestication, Worms, Different Forms of Flowers इत्यादि। परन्तु इनकी प्रथम दो पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हैं। उनका अध्ययन करके उनके आधार पर भिन्न भिन्न विद्वानों ने कितने ही ग्रन्थ लिख डाले हैं।

डारविन को अपनी अस्वस्थता के कारण लन्दन छोड़ना पड़ा। वे अपने गाँव से लन्दन जाया भी कम करते थे। वे अपने ही गाँव में अनेक वैज्ञानिक कार्य आनन्द से किया करते थे। अपनी नीरोगता अधिक न बिगड़ने देने के लिए और प्रकृति का अध्ययन करने के लिए ये वृद्धावस्था तक भी भ्रमण किया करते थे। यहाँ तक कि ये बरसात के दिनों में भी घर पर न ठहरते थे। इनका स्वभाव बालकों से बहुत मिलता—जुलता था। इनको बालकों के साथ खेलने में, मिस्टर ग्लैडस्टन की तरह, खूब आनन्द आता था। बालक भी इनको ढूँढ़—ढाँढ़ कर अपने साथ खेलने के लिए ले आते थे। ये मिठाई बहुत खाया करते थे।

19 अप्रैल 1882 को इनकी मृत्यु हुई। उस दिन भी वैज्ञानिकों में इनका बड़ा नाम हो चुका था। समस्त सभ्य संसार में हलचल मचा देनेवाली कितनी ही अनुपम बातों के ये आविष्कारक थे। पर ये सदा ही दुर्बल और रोगी रहे। यदि ये आरोग्य होते तो न जाने संसार का कितना उपकार करते। तो भी इन्होंने संसार का बहुत उपकार किया, जिसके लिए संसार इनका सदा ही कृतज्ञ रहेगा। यह सब इनके असीम धैर्य्य, कार्य्य—तत्परता और निदिध्यास का फल है।

बीटिल वर्ग के कीड़े (भुनगे)*

लज्जाशंकर झा

इस संसारमें असंख्य प्रकारके प्राणी देखनेमें आते हैं, और उनमेंसे बहुतसे इतने छोटे हैं कि मनुष्य उनकी ओर एक निगाह भी डालना व्यर्थ समझता है। उनका मन यही बोलता है कि इन तुच्छ जीवोंसे मुझे क्या मतलब, वे चाहे मरें चाहे जिएँ। परन्तु यदि कोई मनुष्य अवलोकन करे, तो उसे इन क्षुद्र प्राणियोंके जीवनमें अनेक चमत्कार मिलेंगे। उसे यह भी ज्ञात होगा कि प्रत्येक प्राणी अपना पेट भरनेकी फ्रिक करते समय अनायास संसारके कुछ न कुछ कार्यमें सहायता देता है और उस कार्यका सम्पादन ठीक रीतिसे जिस प्रकारके शरीर द्वाराहो सके वैसाही शरीर उसको मिलता है। इस लेखमें एक ऐसेही तुच्छ प्राणीके वर्णनकी चेष्टाकी जावेगी जिसकी तरफ लोग बहुत कम ध्यान देते हैं, परन्तु जिसका जीवन रहस्य अद्‌भुत है। इस जातिका कोई खास नाम हिन्दी भाषामें नहीं मालूम होता, कोई कोई 'भुनगे' शब्दका प्रयोग करते हैं, परन्तु उसका अर्थ अभी तक स्थिर नहीं हुआ और वह उतना व्यापक भी नहीं दीखता। इस कारण अंग्रेजी शब्द 'बीटिल' का ही प्रयोग किया जावेगा। लकड़ी तथा अनाजके घुन, जुगनू (खद्योत), गुबरीले आदि इसी वर्गके प्राणी हैं।

बीटिल जातिके कीड़ोंकी पहिचान विशेषकर यह है कि उसकी पीठ पर दुहरे पंख रहते हैं, जिनमेंसे एक जोड़ी कड़े ढक्कनके समान पीठ पर सटकर बैठती है और दूसरी पतले गाछ रूप पारदर्शक पंखोंकी होती है जो ढक्कनके भीतर रहती है। कड़ा ढक्कन न रहनेसे किसी भी प्राणीकी गणना बीटिल वर्गमें नहीं होती। जब इस वर्गका कोई प्राणी पत्ते अथवा फूलपर स्थिर खड़ाहो अथवा चलता हो, तब यह ढक्कन ऐसा सटकर कसा रहता है कि देखने वालेको यह अंदाज होना कठिनहो जाता है कि इसके भीतर पंख हैं। परन्तु उड़नेकी इच्छा होतेही पीठके पिछले भागपर एक लकीरसी फट जाती है और उसमेंसे सफेद पंख निकल आते हैं।

अन्य कीड़ोंके समान बीटिलके भी छः पैर रहते हैं और मार्गकी परीक्षा करनेके लिए उसके मुँहपर दो बड़ी मूँछें होती हैं, जिनको हिला घुमाकर वह अपने मार्गकी परीक्षा करता है। मक्खीके समान इसकी आँखें बड़ी बड़ी और अनेक पहलूदार होती हैं। इन पहलुओंका मुख भिन्न भिन्न दिशामें रहता है, जिसके कारण बीटिल बिना सिर घुमाये अनेक दिशाओंमें देख सकता है। जबड़े भी इसके दुचन्द होते हैं, एक तो काँतर स्वरूप बाहिर रहता है जो पकड़ने और काटनेके काममें आता है और दूसरा भीतर होता है, जो चाबनेमें काम आता है।

बीटिल जाति तितलियोंके समान न तो देखनेमें सुन्दर और न मधुमक्खियोंके समान बुद्धिमानही होती है। इसमें कोई शक नहीं कि घुन उपजातिके बीटिलको देखकर मनुष्यके मनमें एक प्रकारसे अनिच्छासी उत्पन्न होती है, परन्तु अन्य कई उपजातियोंके बीटिल रंग बिरंगे और

* *विज्ञान*, मार्च 1917

अत्यन्त सुन्दर होते हैं। सूर्योदय अथवा सूर्यास्तके समय जंगलों अथवा बगीचोंमें अनेक रंगके स्वच्छ शरीरधारी इधर उधर पत्तों तथा फूलोंपर उड़ते दिखाई देते हैं और उन्हें देखनेसे आनन्द होता है। कोई नारंगी, कोई नीले, कोई ऊदे', कोई मोतिया, कोई सुनहरी रंगके बीटिल सूर्यके मध्यम प्रकाशमें रत्नोंके समान चमकते हैं। रात्रिके समय जुगनुओंकी बहारका क्या पूछना है? छोटे छोटे बालक बीटिलोंके पकड़नेका प्रयत्न बड़े आनन्दसे करते हैं। पकड़में आतेही ये प्राणी अपने शरीरको ढक्कनसे ढँककर ऐसा कड़ा कर लेते हैं, कि अंगुलियोंके बीचमें दबानेसे उनके प्राण सहजमें नही जाते।

कोई कोई बीटिल जातिके प्राणी बहुतही लम्बे होते हैं, अर्थात् चार इंच तक लम्बे होते हैं यदि इन्हें कीड़ोंका राजा कहें तो अनुचित न होगा। उनके जबड़े इतने बड़े और तीक्ष्ण होते हैं कि एक बार मनुष्यको भी उनसे अपना पीछा छुड़ानेकी चिन्ता करनी पड़ती है। अन्य कई इतने छोटे होते हैं कि उन्हें पहिचाननेके लिए तीक्ष्ण दृष्टि चाहिये।

इस वर्गके प्राणियोंमें जो हिन्दुस्तानमें मिलते हैं बहुतेरे हानिकारक होते हैं, पर कोई कोई उपयोगी भी होते हैं। जैसे मुर्दाफ़रोश बीटिल जो मरे गले कीड़ों मकोड़ों तथा छोटे मोटे जन्तुओंको गाड़ते फिरते हैं, अथवा लेडीज नामकका बीटिल जो बगीचोंमें वनस्पतियोंको खा जाने वाले अन्य कीड़ोंकी पकड़ धकड़ किया करते हैं। ये वनस्पतियोंका पहरा स्वेच्छा सेवककी भांति बिना वेतनके दिया करते हैं और उनके हानि पहुंचाने वाले कीड़ोंको खाकर अपना काम चलाते हैं। कोई कोई उपजातिके बीटिल बड़े दुष्ट और हानिकारक होते हैं। यदि कृषक लोग फसलको हानिसे बचाना चाहें, तो उन्हें ठीकसे पहिचानना सीखना चाहिये कि हमारा शत्रु कौन है और मित्र कौन।

भारतवर्षमें सहस्रों उपजातिके बीटिल देखनेको मिलेंगे। यद्यपि उनकी संख्या बहुत है, तब भी वे देखनेमें कम आते हैं। इसका कारण यही है कि ये जीव छिपकर रहना पसन्द करते हैं और दिन भर आड़में रहते हैं; कोई कोई तो जन्म भर अंधेरेमें ही रहते हैं, जैसे कि लकड़ीके घुन। ये लकड़ीमें घर बनाकर उसीको खाकर रहते हैं और न जाने मेड़ोंके समान इनका सिर भी खुजलाया करता है अथवा नहीं; परंतु अपने घरकी दीवालोंसे अपना सिर लड़ानेका इन्हें बहुत शौक है। रात्रिके समय जब घरमें सुनसानहो जाता है, तब लोगोंको उनकी ठनकार सुनाई देती है और वह इतने जोरकी होती है कि यह विश्वास करना कठिन होता है कि यह यथार्थमें इन्हीं छोटे प्राणियोंके सिर लड़ानेके कारण उत्पन्न हुई है। जब मियां अथवा बीबी घुन एक दूसरेको पुकारना अथवा संदेशा भेजना चहाते हैं तो उनका टेलीग्राफिफ़ तरीका यही है।

गाने बजानेका शौक तो बंगालियोंमें ही पाया जाता है; उत्तरी हिन्दुस्थानमें यह शौक सभ्य लोगोंके अयोग्य समझा जाता है। यदि हम यह कहें कि बीटिलोंको गाने बजानेका शौक रहता है और उनके शरीरमें वाद्ययंत्र भी रहता है, तो विज्ञानके पाठक शायद उन्हें तवायफोंके अर्दली बनाये जाने योग्य समझेंगे। जो कुछ हो चाहे बीटिलोंका मान घटे अथवा बढ़े, यह कहनाही पड़ता है कि उन्हें गाना बजाना प्रिय है और ईश्वरने कृपा करके उनके शरीरमें वाद्ययंत्र भी दिया है। पीछेकी जांघोंपर अथवा शरीरके घेरे पर एक आरीसी रहती है, जिस पर ढक्कनकी किनार रगड़ रगड़कर सुरीली और तीव्र ध्वनि उत्पन्न करती है, जिसे सब बीटिल बड़े आनन्दसे सुनते हैं। मनुष्यके कानमें यह शक्ति नहीं है कि उसका आनन्द ले सकें; क्योंकि बड़ेसे बड़े बीटिलकी भी ध्वनि दो तीन गज़से अधिक नहीं सुनाई देती।

मधुमक्खियों, तितलियों और बर्रोंके समान इन प्राणियोंके भी चार रूपान्तर होते हैं। बीबी बीटिल पहिले अण्डे रखती है, अण्डे फूटनेपर इसमेंसे इल्ली निकलती है, इल्ली खा पीकर बढ़ती

और आराम करनेके लिये शंखी (अथवा कैंचुल) रूप धारण करती है और अंतमें बीटिलका स्वरूप धारण कर कैंचुलसे बाहर निकलती है।

मुर्दा फ़रोश बीटिल

इस संसारमें असंख्य प्राणी रोज़ पैदा होते और मरते हैं। न जाने कितने चूहे, चिड़िया, मेंढक, छछून्दर आदि खुले मैदानमें ही मर कर रह जाते हैं। परंतु ताज्जुब इस बात का है कि उनमेंसे शायद किसीकी ही लाश मनुष्यको पड़ी हुई मिलती है। प्लेगके चूहे तो अलबत्ता पड़े हुए मिल जाते हैं, उन्हें कौए तक नहीं छूते, परंतु लोग बहुधा यह प्रश्न करते हैं, कि क्या बात है कि और समय मरे हुए चूहे देखनेको नहीं मिलते। इसका उत्तर यही है कि जिस प्रकार भारी बीमारीके समय चुंगी महकमेकी तरफसे मुर्दा फ़रोशोंके गेंग[2] फिरा करते हैं, जिससे कोई लावारिस लाश पड़ी न रहे, इसी प्रकार ईश्वरने भी सृष्टिक्रम ऐसा रक्खा है कि जिससे किसी भी प्रकारके प्राणीका शव पड़ा रहकर हवाको अशुद्ध न करे। छोटे मोटे प्राणियोंके शव ले जाकर गाड़ देने वाले प्राणी वही बीटिल वर्गकी एक उपजाति है जिसे मुर्दा फ़रोश कहना अनुचित न होगा।
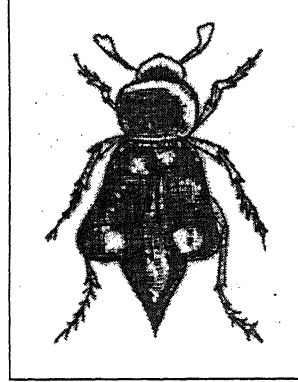
मुर्दा फरोश बीटल
बढ़ाया हुआ आकार

अंग्रेज लोगोंमें मुर्दे दफ़न करने वाले ऊपरसे नीचे तक काली पोशाक पहिनते हैं, यदि बिलकुल काली पोशाक न हुई तो काली पट्टी (जिसे क्रेप कहते हैं) अवश्य ही चाहिये। हिंदुओंका भी यही विश्वास है कि काला रंग शोकसूचक है। यमराज के वस्त्र भी काले और उनका वाहन भी, अर्थात् भैंसा, काला होता है। अब तो विधि बहुत कुछ मिल गई, क्योंकि मुर्दा फ़रोश बीटिल भी काले रंगके होते हैं, पर उनके शरीर पर चौड़ी लहरियादार नारंगी रंगकी पट्टियां सी रहती हैं। यह तो प्रसिद्ध है कि मुर्दा फ़रोशोंको किसीके मरनेका दु:ख नहीं होता और उनका काले वस्त्रोंका धारण करना एक प्रकारका ढोंग है। मुर्दा फ़रोश बीटिलका शरीराच्छादन उनकी यथार्थ मानसिक स्थितिका द्योतक है। काला रंग इसलिए है कि एक जीवके मरनेका दु:ख यदि नहीं है, तो होना अवश्य चाहिये। नारंगी रंगकी पट्टी इसलिए है कि पट्टी अच्छी प्राप्तिकी आशा भी है। प्राप्ति किस प्रकारकी होगी आगे बतलाया जायगा।

इन बीटिलोंके सिर मजबूत और चपटे होते हैं, और मूँछें मुदगल नुमा होती हैं। काले रंग पर नारंगी रंगकी पट्टी होनेसे वे सुन्दर मालूम होते हैं। लम्बाई प्राय: एक इंचकी होती है। सूर्यास्तके समय पति पत्नी अपने आश्रमसे निकलकर अपनी तीक्ष्ण घ्राणेन्द्रिय द्वारा मुर्दोंका पता लगाते फिरते हैं। मान लिया जावे कि एक मरा हुआ मेंढक पत्थर पर पड़ा हुआ उन्हें मिल गया। उसको हटाना उनकी सामर्थ्यके बाहर है। तो वे अन्य बीटिल दम्पतियोंको बुला लावेंगे और उनकी सहायतासे मृतक शरीरको घसीटकर नरम जगह पर ले जावेंगे। फिर वे उसके नीचेकी धरतीको खोद खोद कर गड्ढा तैयार करके और लाशको उसमें रखकर मिट्टीसे ढँक देते हैं और जमीनको बराबर कर सब नर उड़ जाते हैं। इस प्रकार मुर्दे गाड़कर ये प्राणी वायुको बिगड़नेसे बचाते हैं।

परन्तु अब यह प्रश्न उठता है कि वे ऐसा क्यों करते हैं? क्या वे ऐसे परोपकारी होते हैं, कि उन्हें स्वार्थकी सूझती ही नहीं, केवल पारमार्थिक कार्य किया करते हैं? संसारका अटल नियम है कि

जिसको देखो वह अपने पेटकी चिंतामें रहता है; यदि केवल अपने पेटकी चिंता नहीं तो बाल बच्चोंके पेटकी चिंता तो अवश्य ही रहती है। बीटिल दम्पति भी इस नियमके विरुद्ध नहीं चलते। दफ़न करते समय थोड़ा बहुत मुँह सभी मारते हैं, यह तो हुई पेटकी पूजा। ऊपर कह आये हैं कि नर बीटिल सब उड़ जाते हैं; परन्तु मादी क्या करती है? अब यह कहना अनुचित न होगा कि मेंढकके मृतक शरीरके साथ ही बीबी बीटिलें जीते जी गाड़ दी जाती हैं!! शान्तम् पापम् शान्तम् पापम् (ईश्वर इस पापसे बचाये)। नर बीटिल मादियोंके प्राण लेनेको इनमें नहीं गाड़ देते, परन्तु सन्तति उत्पन्न करने निमित्त। मादी कब्रमें पड़ी पड़ी अण्डे देती है और ऊपरकी मिट्टी हटाकर अण्डे वहीं छोड़ चली आती है। अण्डे वहां रखनेका कोई कारण है? हाँ, निस्सन्देह कारण अवश्य है। ऊपर कह आये हैं कि अण्डा फूटने पर इल्ली निकलती है और इल्ली कहीं जा नहीं सकती। गाड़ी हुई लाश उन इल्लियोंके नाजकी मडी सी हो जाती है और ये खा पीकर मस्त हो जाती हैं और अंतमें कैंचुल शरीर धारण करके सो रहती हैं। स्वप्नावस्थामें कैंचुलके भीतर इस प्राणीका रूप बदलकर बीटिल रूप हो जाता है।

ज़रा विचार करना चाहिये कि सृष्टि–क्रम कितना विचित्र है। एक प्राणी तो केवल स्वार्थकी ओर ध्यान देकर कार्य करता है, परन्तु उससे अनायास ही संसारका उपकार हो जाता है।

बीटिलोंके अनेक प्रकार हैं और प्रत्येकके अवलोकन करनेसे कुछ न कुछ जीवन रहस्य ज्ञात होता है। इस लेखमें सबका वर्णन करना असम्भव है। केवल दो चार प्रकारका थोड़ासा वर्णन करनेसे आशा है कि पाठकोंका ध्यान इस ओर आकर्षित होगा।

व्याघ्र बीटिल

एक विशेष प्रकारके बीटिल हैं जिन्हें व्याघ्र बीटिल कहना अनुचित न होगा। उनकी सूरत कुछ व्याघ्रके समान नहीं होती, पर वे उसके सरीखे निडर, फुर्तीले और क्रूर होते हैं। व्याघ्र बीटिल देखनेमें सुन्दर और नीले रंगका होता है और उसकी पीठपर सफ़ेद रंगके छः सात धब्बे रहते हैं, परंतु उसके सिर पर तथा ढक्कनके किनारेपर कभी कभी तामड़ा रंग रहता है। उसके लम्बे पाँव, निकली हुई आँखें, मज़बूत जबड़े और गठीला शरीर होता है। यह बहुधा बंगालमें धानके खेतोंमें मिलता है और फसलके खाने वाले कीड़ों मकोड़ोंकी शिकार किया करता है। इस तरह व्याघ्र बीटिल किसानोंकी बहुत कुछ सहायता कर देता है। खाकर अघाना तो यह जानताही नहीं। शिकारकी खोज करते समय इसकी फुर्ती, धूर्तता और क्रूरता देखतेही बनती है। निडर इतना होता है कि अपनेसे बड़े प्राणीपर भी हमला करनेसे चूकता नहीं। यदि कोई मनुष्य उसको शिकार पकड़ लेनेपर छेड़े, तो वह अपने शिकारको छोड़ता नहीं और यदि कोई उसका शिकार जबरदस्तीसे छुड़ा लेवे तो क्रोधके मारे काटने दौड़ता है।
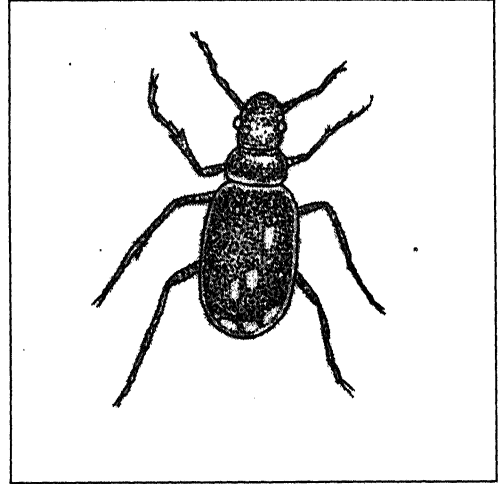
व्याघ्र बीटल

लेडी बर्ग बीटल की इल्ली (बढ़ाया हुआ आकार)

'पूतके लक्षण पालनेमें दीखते हैं।'+ इल्लीकी दशामें वह दौड़ धूप नहीं कर सकता और उसका शरीर भी नरम रहता है। पृथ्वीकी सतहपर रहनेसे कोई भी हिंसक प्राणी उसका जीवन समाप्त कर सकता है। परन्तु इसकी चालबाजी बाल्यावस्थामें भी काम देती है। वह पृथ्वीमें इस तरहसे गड्ढा करता है कि सारा शरीर उसमें धँस जावे, केवल मुँह बाहिर सतहसे सटा हुआ रह जाता है। बाहिरसे देखनेमें साफ धरती दीखती है। ज्योंही कोई भोला भाला कीड़ा पाससे निकला कि झपटकर उसने लिया और भीतर ले जाकर उसका जीवन समाप्त किया और अपनी पेट पूजाकी।

बंदूक चलानेवाले बीटिल

एक अन्य उपजातिका बीटिल हैं जिसको बंदूकची कह सकते हैं। यह बहुत छोटा होता है और यदि उसके पास बंदूक चलानेकी शक्ति न होती तो अन्य बीटिल उसे सुगमतासे हड़प जाते। इस उपजातिके प्राणियोंके शरीरमें एक गाँठ रहती है जिसमें स्फोटक गैस द्रव्य रूपसे भरी रहती है। ज्योंही कोई शत्रु उनको पकड़नेको झपटा कि बंदूकचीने उस गांठसे कुछ गैस छोड़ दी। इसमें हवा लगतेही आवाज होकर धुँआ निकलता है, जो शिकारीके मुँहमें जाकर अथवा आँखमें लगकर उसे विह्वल कर देता है। इतनेमें ये छोटे हज़रत रफूचक्कर हो जाते हैं। ये विचित्र बीटिल सैकड़ों अथवा हज़ारों एक साथ फिरते हैं और भय उपस्थित होनेपर धड़ाधड़ बंदूकें छोड़ने लगते हैं। उस समय सूक्ष्म रूपमें पल्टनकी वालीफ़ायर* बहार देखनेमें आती है।

लेडीबर्ड बीटिल

वनस्पतियोंपर हरे रंगकी एक मक्खी बैठा करती है, जिसे माहू कहते हैं। यह पत्तोंको खा जाती है, जिससे पौदे बढ़ने नहीं पाते और उन पर एक प्रकार रस छोड़ती है जिसके कारण वे सूख जाते हैं। माहू चिउँटियोंको बड़ी प्रिय है क्योंकि वे उससे एक प्रकारका रस दुहकर निकालतीं और अपने बच्चोंको खिलाती हैं। यद्यपि यह मक्खी चिउँटियोंको कामधेनुके समान है परन्तु वह मनुष्योंकी फसल बिगाड़कर हानि पहुंचाती है। फसलको माहूसे बचाने वाला एक बीटिल है, जिसे अंगरेजीमें लेडीबर्ड कहते हैं। वह स्वरूपमें मटर की दालके समान गोल अथवा कछुआनुमा होता है। इस देशमें उनका रंग बहुधा गेरुआ अथवा पीला होता है, जिसके कारण उसे गुसाँई जी भी कहने लगते हैं। परंतु गुसाँइयोंके गुण तो उसे छूकर भी नहीं गये। माँसभक्षी तो पूरा है, फिर धूर्त भी अव्वल दर्जेका होता है। किसीको आते देखा कि कछुओंके समान अपने सिर पैर ढक्कनके अन्दर छिपाकर निश्चलहो जाता है।
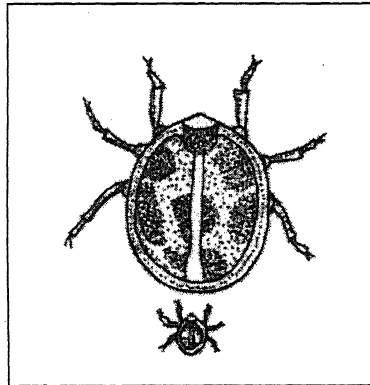
लेडीबर्ड बीटल यथार्थ आकार

देखनेवालों को यही भ्रम होने लगता है कि कोई अनाजका दाना पड़ा है। इस पर भी यदि किसीने अँगुली दिखाई कि चटसे धरती पर टपककर बिला गये। घास पातमें फिर उसका पता

+ एक कहावत

* फौजी लोग जब परेड पर एक साथ गोली दागते हैं, तब इस क्रिया को अंग्रेजी में वालीफायर कहते हैं

लगाना कठिन हो जाता है। इन कारणोंसे गुसाँई जी से तुलना करना ठीक नहीं। कछुआनुमा बीटिल कहनाही उचित दिखता है। ये प्राणी माहू मक्खीकी रात दिन शिकार किया करते हैं। यदि ये न हों तो उस मक्खीके कारण अनेक उपाय करने पर भी किसान अपनी फसलकी रक्षा नहीं कर सकते। उर्दू भाषामें कहावत है कि 'बड़े मियाँ तो बड़े मियाँ छोटे मियाँ सुभानअल्लाह" इन बीटिलोंके छोटे मियाँ सचमुच सुभानअल्लाह होते हैं। इल्ली अवस्थामें छोटे मियाँकी भूखका ठिकाना नहीं होता। माहू मक्खीही इनका प्रिय भोजन है और फिर वह पकड़नेमें चपल होता है। दिन रात उनको स्वाहा किया करता है। इंग्लिस्तानके किसान इस कारण लेडी बर्डकी विशेष चाह करते हैं।
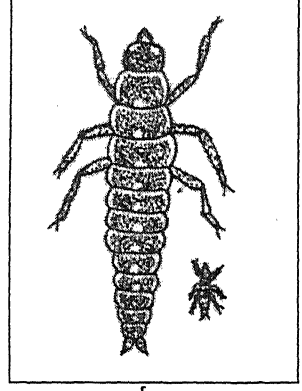
यथार्थ आकार

केंचुए का महत्व*

कृष्णदेवप्रसाद गौड़

संसारमें किसी वस्तुको तुच्छ न समझना चाहिये। संसारके सब प्राणी ईश्वरने बनाये हैं। हमको कोई अधिकार नहीं कि उनको किसी प्रकार कष्ट दें। इतनाही नहीं, न मालूम किसी छोटेसे जीवसे संसारमें क्या काम निकलताहो, या निकले। प्रकृतिकी अदभुत लीलाका पारावार नहीं है। क्या पता था कि जरा सी भापसे इतने बड़े इंजनकी उत्पत्ति होगी? कौन जानता था कि साधुओंके माला फेरकर घासपर रख देनेसे और घासके खिंच आनेसे विद्युत्शास्त्रकी नींव पड़ेगी। इसी प्रकार केंचुए भी तुच्छ दृष्टिसे देखे जाते थे और उनकी कोई परवाह न करता था। जीव विज्ञानके न जानने वाले अब भी इसके गुणोंको नहीं जानते।

पहले इस छोटेसे जानवरके बारेमें हम लोगोंको कुछ विशेष न मालूम था। सम्वत 1834 वि. में ह्वाइट नामक एक प्रकृतिवेत्ताने एक मित्रको लिखा "छोटेसे छोटे कीड़े मकोड़े भी इतने कामके होते हैं और प्रकृतिके मितव्ययमें इतनी सहायता करते हैं कि मामूली लोग उसका अनुभव नहीं कर सकते। वह इतने छोटे होते हैं कि मनुष्यमात्र का ध्यान उनकी ओर नहीं जाता और इस कारण वे अपना काम बे रोक टोक बड़ी तेज़ीसे करते हैं। केंचुआ देखनेमें चाहे तुच्छहो और प्रकृतिके ज़ंजीरका एक हीन ही कड़ा क्यों न हो, परन्तु यदि संसारसे निकाल दिया जाए तो अनर्थही हो जाय। इनसे वनस्पतियोंके उगनेमें बड़ी सहायता मिलती है। यह पृथ्वीको छेदकर मिट्टीको पोली बना देते हैं और इसीसे बरसातका पानी और पौदोंकी जड़ें आसानीसे पृथ्वीमें प्रवेश कर सकती हैं। उनके शरीरमें से सेवईकी तरह जो मिट्टी निकलती है वह बड़ीही महीन होती है और खेती बारीमें वह पौदोंके उगने और उनके खानेमें बड़ी सहायता देती है।" यह ह्वाइटने लिखा तो अवश्य परन्तु केंचुएके विषयमें डारविनने सौ बरससे कुछ ज्यादा हुए भली प्रकार अपनी एक पुस्तकमें लिखा। बरसों उसने बड़ी छान बीन और परिश्रम किये और तब संसारको पता लगा कि जिस जन्तुको हम लोग बिलकुल बेकाम भद्दा और निकृष्ट समझ रहे थे वह वास्तवमें मनुष्य जातिका उपकारक और सहायक है।

जिस समय डारविन केंचुएके रहन सहन, और उसके जीवन रहस्यके पता लगानेमें कठिन परिश्रम कर रहा था, उसके एक मित्रने कहा कि ऐसी तुच्छ वस्तु पर इतना परिश्रम और समय लगाना बिलकुल भूल है। परन्तु डारविन अच्छी तरह समझता था कि उसका परिश्रम व्यर्थ न होगा।

---

* *विज्ञान*, जुलाई 1917

केंचुए का रहन सहन

केंचुएका शरीर अच्छी तरह देखनेसे पता लगता है कि वह छोटे छोटे छल्लोंसे मिलकर बना हुआ है। भिन्न भिन्न जगहोंके केंचुओंमें छल्लोंकी भिन्न भिन्न संख्याएँ होती हैं। केंचुएके पेटकी ओर दो दो छोटे छोटे महीन बालके दो जोड़ होते हैं। यह बाल कुछ पीछेकी ओर झुके रहते हैं और इस कारण पीछेकी ओर केंचुआ नहीं हट सकता क्योंकि जब पीछे हटने लगता है तो यह बाल पृथ्वीमें धँस जाते हैं। सरकी ओरका भाग नोकीला होता है। मुंहके ऊपर कुछ चमड़ेका भाग साहब लोगोंकी टोपीकी तरह झुका रहता है। इसीकी सहायतासे पत्तीके टुकड़े तथा भोज्य पदार्थ वह उठा सकता है। हाथीकी सूंड़की अंगुलीकी भांति इसमें भी बड़ी सचेतनता होती है। यह तो लोग जानते ही हैं कि इसके आंख नहीं होती लेकिन आगेका भाग प्रकाशसे संचेत्य होता है। उसको अंधेरे उजालेका पता लग जाता है, और इसी कारण दिनमें कम निकलता है। बरसातमें उसके बिलमें पानी चले जानेसे वह दिनमें निकल आता है, नहीं तो रातमें ही निकल कर चरता और हवा खाता है। इसके कान भी नहीं होते और न शब्द सुन सकता है। परन्तु पृथ्वीके हिलावको तुरंत जान जाता है।

वह रहनेके लिये बड़े लम्बे लम्बे बिल बनाता है। तीन या चार फुट तक इसके बिल गहरे होते हैं। मुलायम जमीन, जैसे जुते हुए खेतमें, वह केवल अपने मुंहको नीचे करके बरमाकी तरह छेदता हुआ चला जाता है। छेदते समय उसके शरीर लगनेके कारण बिलकी दीवार बिलकुल चिकनीहो जाती है और उसके शरीरके छेदों* में से पसीनेकी भांति एक तरल पदार्थ निकलता है जिससे बिलके दीवार पर पलस्तर हो जाता है और दीवार एकदम गिर नहीं सकती। परन्तु जब कड़ी मिट्टीसे मुकाबला करना होता है, या किसी प्रकारसे मिट्टी ऐसी हो जाती है कि वह अपने शरीरसे छेद नहीं कर सकता तो वह मिट्टी खाने लगता है। जो मिट्टी वह खाता है वह मुँहमें से गलेमें जाती है। गलेके बाद एक 'एस' की शकलकी नली होती है उसमें जाती है। इसके बाद एक मांसकी चक्की होती है जिसमें दो छोटे छोटे पत्थर भी होते हैं। इन्हीं पत्थरोंकी सहायतासे कड़ी मिट्टी अथवा पत्थरके कण या और छोटे छोटे कड़े पदार्थ पीसे जाते हैं। यहांसे पिसकर और बारीक होकर मिट्टी पेटमें जाती है। पेटके भीतर मिट्टीमें मिले हुए जो छोटे जानवर अथवा पत्तियां हों वह हज़म हो जाती हैं। बाकी मिट्टी, पेटके अन्दरके भोजन पचाने वाले पदार्थों (digestive inrices)से मिलकर पीछेके
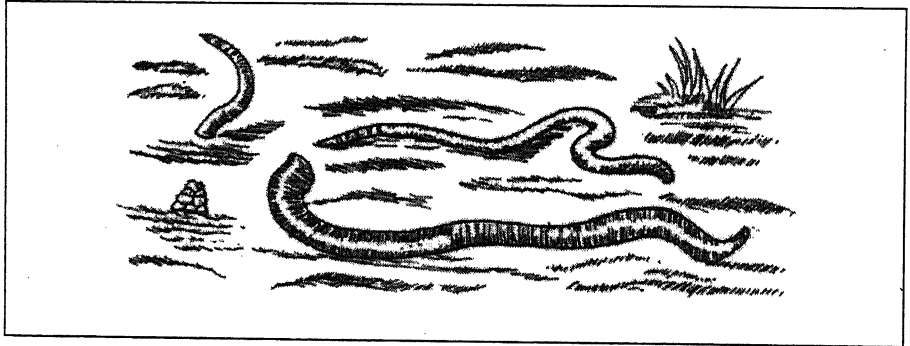
एक छेदसे सेवईके रूपमें बाहर निकल जाती हैं। इसको जन्तु मल त्याग (worms castings) कहते हैं। दिन भर केंचुआ बिलके भीतर रहता है और रातको भी जब बाहर निकलता है अपनी दुम या पिछला भाग बिलके पासही रखता है। इसलिए यदि कोई भयहो तो तुरन्त सारा शरीर बिलमें खींच ले। केंचुआ जो मिट्टी खाता है वही उसकी खोराक नहीं होती। इसके अतिरिक्त सड़ी पत्तियां और

घास पात भी खाता है। ऐसा करनेके लिए वह अपनी दुमका थोड़ा भाग छोड़कर सब धड़ बिलके बाहर निकाल लेता है और यथाशक्ति अपने शरीरको लंबा करता है। इसके बाद एक गोलाकारमें जो कुछ पाता है झाडूकी तरह बिलके मुंहपर बटोर लेता है और तब बिलमें उतरकर थोड़ा थोड़ा खाता है। जो थोड़ीसी पत्तियां ऊपरसे अपने भीतरकी कोठरीमें ले जाता है उसे मुंहमें से एक प्रकारका लुआब निकालकर ढ़क देता है। यह भी एक प्रकारका पाच्य पदार्थ है। इससे पत्तियां नरम हो जाती हैं और केंचुआ अपने बेदाँत मगर मज़बूत मुंहसे कुतुर सकता है। दिनमें अपना बिल केंचुआ पत्तियोंसे ढांक देता है। एक तो इसलिए कि बिलका मुंह छिपा रहे, दूसरे यह कि गर्मी और धूपसे उसका बिल सूखने न लगे, क्योंकि केंचुआ नम बिलमें ही रह सकता है।

केंचुएसे खेती बारीमें क्या लाभ होता है, इसमें बहुत कुछ तो अभी मालूमही हो गया होगा। बिल जो कई इंच गहरे होते हैं इनसे पृथ्वीके भीतर हवा और पानीकी बूंदें सरलतासे प्रवेश करती हैं, और पेड़ोंकी बारीक जड़ें भी आसानीसे जमीनके भीतर जाती हैं। जिससे उन्हें खूब भोजन और तरावट मिलती है। जब केंचुए बिल छोड़ देते हैं, तो वह कुछ समयमें गिर कर चूर चूरहो जाते हैं इस प्रकारसे धीरे धीरे परन्तु निरन्तर मिट्टी एक स्थानसे दूसरे स्थानको चला करती है। और नीचेकी मिट्टी ऊपर आती है जिस पर हवा, पानीका खूब असर होता है। ऊपरकी भी मिट्टी इसी प्रकार नीचे जाती है।

सड़ी हुई पत्तियां जो केंचुआ बिलके भीतर ले जाता है पौदोंके उगने में बड़ी सहायक होती हैं। और लुआब जिनसे कि पत्तियां ढ़की रहती हैं वह तो पौदोंके लिए सोनेमें सुहागेका काम देता है। ऊपर जो 'सेवईं' होती है वह क्या हैं ? नीचेके तहकी उत्तम मिट्टी जिसे केंचुएने और भी बारीक पीस दी है ऊपर पृथ्वीकी सतह पर आ जाती है और इस प्रकार पृथ्वीके ऊपरकी सतह सुन्दर बारीक मिट्टीसे ढक जाती है।

डारविनने किस प्रकार अनुसन्धान किया उसका भी कुछ उल्लेख आवश्यक है। अपने कमरेके चारों तरफ उसने गमलोंमें केंचुए पाल रक्खे, और बराबर उनको देखता रहा कि वे किस प्रकारका भोजन बहुत पसन्द करते हैं? किस प्रकारसे वे दो चार तरहके भोज्य पदार्थोंमें से अपने रुचिके भोजनको चुन लेते हैं? कैसे वह अन्य अन्य प्रकारकी पत्तियोंको खींचते हैं? एक दिनमें कितनी मिट्टी उनके पेटमें से निकलती है? लुआब का पत्तियों पर क्या असर पड़ता है? किस समय वह बड़े फुरतीले होते हैं? इत्यादि। यह भी समझकर कि शायद गमलोंकी तंग जगह अथवा घरमें रखनेमें उनके रहन सहनमें कुछ परिवर्तनहो जाय रातको लालटेन लेकर खेतोंमें जाकर भी वह देख भाल किया करता था।

इसके अतिरिक्त उसने और भी देखभाल शुरूकी। पत्थरके ढोके देखे गये। यह पाया गया कि वह धीरे धीरे धंसते जाते हैं। फिर यह देखा गया कि वह किस हिसाबसे धंस रहे हैं। एक खेतमें कुछ हिस्सेपर खड़ियाके छोटे छोटे टुकड़े बिछा दिये गये। तीस वर्ष तक ज्योंका त्यों वह खेत पड़ा रहा। इसके बाद पृथ्वीके सतहके सात इंच नीचे खड़ियाके ढोके बिछे हुए पाये गये। दूसरे खेतमें कड़े पत्थरके टुकड़े बिछा दिये गये। इसे भी तीस साल तक छोड़ दिया। तीस सालके बाद आसानीसे उस पर घोड़ा दौड़ाया जा सकता था और पत्थर लापता थे।

एक और जांचकी गयी। वह इससे भी ठीक थी। खेतमें एक गज़ लंबी और एक गज चौड़ी जमीन नाप ली गयी और सैकड़ों ऐसे टुकड़े नापकर निशानकर छोड़ दिये गये। एक साल तक बराबर हर टुकड़ेकी रोज जांच होती रही। साल भरमें एक एक वर्ग गज़की 'सेवईं' वाली मिट्टी तौली गयी और फ़ी वर्ग गज़ एक सेर 1 1 छटांक पायी गयी। इससे यह स्पष्ट हुआ कि ऐसीही एक एकड़ ज़मीनपर साल भरमें लगभग 1 9 2 मन मिट्टी नीचेसे ऊपर आती है।

इतिहासमें बहुतही प्राचीन कालमें हलका वर्णन आता है। इस यंत्रकी ईजाद बहुतही प्राचीन कालमें हुई थी परन्तु उसके पहले भी खेत इस प्राकृतिक हल द्वारा जोता जाता था। अब भी यह प्राकृतिक हल मनुष्यके कामको आसान करता है तथा उसे सहायता देता है। संभव है कि ऐसे और जानवर हों जिनका पता अभी मनुष्यको नहीं मिला है और वह भी मानवजातिको सहायता देते हों।

परन्तु यह हमें न समझना चाहिये कि केंचुए जान बूझकर हम लोगोंको मदद दे रहे हैं अथवा वे इस बातकी चेष्टा करते हैं कि मनुष्य जातिको फायदा पहुंचावें। इसके विपरीत गोभी तथा छोटे छोटे मुलायम पौदोंको कुतुर कर वे हम लोगोंको हानि भी पहुंचाते हैं। गाजर और अजवायन जब नयी नयी पत्तियां पृथ्वीके भीतरसे फेंकती हैं तब तो उनको बेतरह खाते हैं। तब भी उनकी जातिसे कोई विशेष हानि नहीं पहुंच सकती।

हम लोगोंके अतिरिक्त और जीव जन्तुओंको भी इनसे लाभही पहुंचता है। गोजर तो इनके बिलोंमें घुस जाता है और इनका खूब भोजन करता है। तीतर, श्यामा इत्यादि, ज्योंही इनका सर बिलके बाहर देखते हैं, तुरंत चोंचमें पकड़ कर पेटमें पहुंचानेकी कोशिश करते हैं। केंचुए केवल अपना जीवन पूरा करते रहते हैं और अनजानमें उनसे लाभ भी पहुंच जाता है।

संसारके प्रत्येक हिस्सेमें 10,000 फुट ऊंची ज़मीन तकमें केंचुए पाये जाते हैं। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है उनके रहनेके लिए कुछ नमीकी आवश्यकता है, इस कारण बहुत सूखे स्थानमें वे नहीं रह सकते। एकही देशमें भिन्न भिन्न स्थानों परके केंचुओंकी बनावट भिन्नहो जाती है। उनका प्रयोजन, उनके शारीरिक धर्म, उनकी भीतरी बनावट इत्यादि भी विचित्र होती हैं।

---

1. कड़ी

2. थूक, लसदार पदार्थ

कृषि और कृषि शिक्षा*

कार्यी

भारत की आर्थिक दशा बड़ी ही असन्तोषजनक है। अन्य देशों की दशा पर दृष्टि डालने से भारत की हीनता का चित्र सामने आ जाता है। जब भारत के लोगों की औसत वार्षिक आय की तुलना अन्य देशों के लोगों की आय से की जाती है, तो सचमुच ही बहुत हताश होना पड़ता है। देश के कुछ थोड़े से धनी — वकील, बैरिस्टर, सेठ, महाजन आदि— बड़े बड़े दो मंजिले मकानों, गमलेदार बंगलों और पुष्पवाटिकाओं में रहकर भले ही आराम और आनन्द से दिन बिताते हों और उन्हीं को देखकर कुछ ऐसे लोग, जिन्हें नगरों ही में रहने और वहीं के लोगों को दशा देखने का मौका मिला है और जो किसी वस्तु की असली दशा जानने के लिए कम परवाह करते हैं, भले ही भारतवासियों को सुखी और धन–धान्यशाली कहें परन्तु जनसमुदाय—साधारण जनता अथवा यों कहिये कि देश का कृषक वर्ग, जो देश का हाथ पैर है—सुखी नहीं है। इसकी दशा बहुत ही बुरी है। यदि आप इसको अपनी आंखों से देखना चाहते हों तो देहातों में जाइये। वहां पर आपको बेचारे गरीब कृषकों की दीनता उनके फटे और गंदे वस्त्र और अन्न के लिए तरसते हुए बालकों को देखकर आप दो आंसू बहाये बिना नहीं रहा जायगा। हाय ! जेठ वैशाख की कड़ी धूप में जो दिन भर सर से पैर तक पसीना बहायें उनको और उनके प्यारे बच्चों को दोनों वक्त भर पेट दाना और उन्हें पहिनने के लिए वस्त्र तक न मिले और अन्न के बिना करवटें बदल कर रात बितानी पड़े। भला इससे बढ़ कर हृदयविदारक और दुखदायी विषय क्या होगा? क्या इससे भी बढ़कर अवनत दशा हो सकती है?

जब तक इन बेचारे कृषकों की दशा सुधार कर इनके व्यवसाय की उन्नति न की जाय और इनके बालकों को उद्योग–धंधे की शिक्षा देने का प्रबन्ध ग्राम–ग्राम में न हो तथा मुफ्त और अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार न किया जाय और स्वास्थ्य–सम्बन्धी मोटे मोटे नियम न सिखाये जायं तब तक देश की दशा न सुधरेगी, क्योंकि इन्हीं बेचारों को लेकर देश की जनता बनी हुई है। प्रत्येक भारतवासी को जिसके हृदय में देश–भक्ति की थोड़ी भी मात्रा वर्तमान है और सरकार को, जिस की सहायता के बिना हमारी कोई भी उन्नति कठिन ही नहीं, असम्भव है, इन बेचारे कृषकों की दशा को सुधारने की चेष्टा करनी चाहिये।

कृषि व्यापार और उद्योग–धन्धों ही पर किसी देश की उन्नति और सुधार निर्भर है। अब हमें यह विचारना चाहिये कि इन तीन साधनों में से कौन साधन ऐसा है जिसके अवलम्बन से देश की दशा शीघ्र और आसानी से सुधर सकती है। कितने ही कारणों से हमारे देश में आजकल शिल्प और

---

* *मर्यादा*, सितम्बर 1917

कलाकौशल के कामों की बहुत कमी है और जो है उनकी दशा बहुत खराब है। शीघ्रता से इनका सुधार होना और नये कारख़ानों का खुलना असम्भव दीख पड़ता है। अतएव जब तक नये कारख़ाने खुलें और पुरानों का सुधार हो अथवा औद्योगिक कमीशन द्वारा उद्योग–धन्धों की उन्नति का कोई दूसरा ही उपाय ढूंढ़ा जाय तब तक हमें देश की दशा को सुधारने का दूसरा ही मार्ग अवलम्बन करना चाहिये।

इसमें सन्देह नहीं कि व्यापार से कोई भी देश धनधान्य सम्पन्न होकर शीघ्र ही उन्नत हो जाता है। परन्तु वह कब? जब देश में व्यापारिक सुविधाएं वर्तमान रहें, शिल्प और उद्योग–धन्धों द्वारा अनेक उपयोगी वस्तुएं तैयार हों, जिनसे अन्य देशों का धन प्राप्त होकर लाभ होता रहे परन्तु भारत के लिए ऐसा सुदिन दूर ही दिखाई देता है। इसलिए इससे भी अधिक आशा न करनी चाहिये, अब रही कृषि। पुरातन समय से यह भारत का मुख्य व्यवसाय है, इस समय भारत के कोई साढ़े बाइस करोड़ लोगों की जीविका इसी पर निर्भर है। अन्य व्यवसायों का तो हमें श्रीगणेश करना पड़ेगा जिसमें अनेक कठिनाइयां और बखेड़े हैं परन्तु कृषि के संबंध में यह बात नहीं है। यह तो यहां के अधिकांश लोगों का व्यवसाय ही है, अतएव उसके सुधार में न तो अधिक धन ही की जरूरत है और न इसमें अधिक झंझटों का सामना ही करना पड़ेगा। इसलिए इसके द्वारा उद्योग–धन्धों और कलाकौशलों की उन्नति होने के समय तक देश की दशा बहुत शीघ्र सुधर सकती है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। किसी देश को भी कृषि धनधान्य सम्पन्न कर सकती है, परन्तु यह तभी सम्भव है जब ज़मीन से अधिक से अधिक उपज प्राप्त हो सके।

उदाहरण के लिए आप एमेरिका के संयुक्त राज्य को लीजिये। इसके कुछ प्रान्त कृषि प्रधान ही हैं, परन्तु वहां के लोगों की आमदनी भारतीयों से कहीं अधिक है और उनकी दशा बहुत ही अच्छी है। इसका कारण यही है कि वहां के लोग वैज्ञानिक रीतियों तथा नये आविष्कृत औज़ारों की सहायता से अपनी भूमि से अधिक से अधिक उपज प्राप्त करते हैं। भारत में ऐसा नहीं है। यहां के कृषक पुराने साधनों से बहुत कम अन्न उपजाने में समर्थ होते हैं। यदि ऐसा न होता तो भारतीय कृषक पांच बीघे ज़मीन में उतना ही धान क्यों उपजा सकते जितना स्पेन और इटली के कृषक एक ही बीघे में उपजा लेते हैं। इगलैंड में एक बीघे में जितना गेहूं उपजता है यहां तीन बीघे में उतना उपजता है। अतएव भारतीय कृषकों को उसी वैज्ञानिक ढंग से खेती करने तथा नवीन यन्त्रों के व्यवहार करने की शिक्षा देनी चाहिये जिसकी बदौलत अन्य देश वाले अधिक अन्न उपजाते हैं। इसी प्रकार की शिक्षा से ये अपने व्यवसाय की उन्नति कर अधिक से अधिक अन्न उपजा सकते है और अपनी दशा को सुधार कर देश के अभ्युदय में हाथ बंटा सकते हैं। परन्तु इस प्रकार की शिक्षा का मिलना ही यहां कठिन है। इसमें सन्देह नहीं कि सरकार ने प्रत्येक प्रान्त में कृषि–शिक्षा के लिए एक एक कृषि–कालेज खोल रक्खा है, परन्तु सच पूछिये तो इनमें जिस ढंग की शिक्षा दी जाती है वह बेचारे कृषकों के लिए पूर्ण लाभकारी और सुगमतापूर्वक प्राप्त करने योग्य नहीं है। प्रथमतः इन कालेजों में पढ़ने के लिए शिक्षा की अधिक योग्यता और द्वितीयतः अधिक द्रव्य और समय की आवश्यकता होती है। हमारे कृषकों में इन कालेजों में होनेवाले रसायन, भौतिक, वनस्पति और कीट–पतंग शास्त्र आदि गहन पाठ्य विषयों को समझने और तीन वर्ष तक इन कालेजों में रहकर होने वाले व्यय को सहन करने की शक्ति नहीं है। इन कालेजों में कहीं कहीं लघु–शिक्षा क्रम भी जारी है और इसकी शिक्षा देशी भाषा में दी जाती है। परंतु इसकी प्राप्ति में भी उपर्युक्त कठिनाइयों का सामना किसी न किसी अंश में करना ही पड़ता है। इस पर भी यदि कोई कृषक इन कठिनाइयों को सहकर इन कालेजों में शिक्षा प्राप्त करने का प्रबन्ध करे तो वह शायद ही इस शिक्षा से अपनी कृषि की तरक्की कर सकेगा। कारण उसको जैसी शिक्षा की आवश्यकता है और जिससे वह अपनी

कृषि को सुधार कर अपनी हालत सुधार सकता है वैसी शिक्षा इन कालेजों में नहीं दी जाती। हाँ, इन कालेजों में शिक्षा पाने वाले को वैसी शिक्षा मिल जाती है, जिसके द्वारा वह सरकारी कृषि–विभाग में नौकरी पाने के योग्य हो जाता है।

सच पूछिये तो इन कालेजों में भर्ती होने वाले अधिकांश लोग ही नौकरी की इच्छा से जाते हैं। गत वर्ष एक कृषि–कालेज के कुछ विद्यार्थियों से मैंने पूछा कि भाई, तुम लोग किस उद्देश्य से इसमें भर्ती हुए हो तो प्रत्येक से उत्तर मिला कि "किसी भांति सरकारी नौकरी पाने के लिए" यद्यपि इन कालेजों में प्रति वर्ष कुछ विद्यार्थी भर्ती होते हैं, तथापि इससे यह कदापि न समझना चाहिये कि इतने ही से कृषि–विभाग और कृषि–कालेजों के उद्देश्य पूरे हो जाते हैं। कृषि–विभाग के नये होने से उसमें नौकरी मिलने की आशा लोगों में अधिक रहती है और इसी आशा से वे भर्ती होते हैं परन्तु इससे यह समझना कि लोग कृषि शिक्षा से लाभ उठाने के लिए भर्ती होते हैं, भ्रम है। यदि देश के सौ दो सौ अथवा हज़ार दो हज़ार मनुष्यों को कृषि–विभाग में अच्छी–अच्छी तनख्वाहों पर नौकरियां मिल जायं और यदि वे बड़े आराम और चैन से अपने दिन बितायें तो इससे कृषक वर्ग को अथवा यों कहिये कि देश की जनता का क्या लाभ पहुंच सकता है? खेद के साथ इसका उत्तर देना पड़ता है कि कुछ भी नहीं। जहां तक विदित है, और लेखक भी कृषक–वर्ग का एक अंग होने के कारण जानता और कह सकता है कि कृषि–विभाग और कृषि कालेजों ने देश के कृषकों को कुछ भी लाभ नहीं पहुंचाया है। भविष्य में क्या होगा यह यद्यपि ठीक–ठीक अभी नहीं कहा जा सकता तथापि इनके भूत तथा वर्तमानकाल के कार्यों को देखते हुए यह कहना पड़ता है कि भविष्य की आशा भी सन्तोषजनक नहीं दीख पड़ती। कृषि–विभाग और कृषि–कालेज के उद्देश्य उस समय तक पूरे नहीं हो सकते और उनसे कृषकों को लाभ नहीं पहुंच सकता जब तक वे ऐसी सुगम और लाभकारी कृषि–शिक्षा का, जिससे कृषक–वर्ग अपनी कृषि की वास्तविक उन्नति कर अपनी आर्थिक दशा को उन्नत कर सके, निर्धारण न करें और जब तक ऐसी शिक्षा प्रत्येक कृषक की पहुंच में न लाई जाय।

अब यह विचारना चाहिये कि किस प्रकार की कृषि–शिक्षा से कृषक अपनी उन्नति कर सकते हैं? उस शिक्षा को लोकप्रिय बनाने तथा घर घर उसका प्रचार करने के लिए कौन कौन से उपायों का अवलम्बन करना चाहिये? इसके लिए पहिले हमें यह देखना चाहिये कि किन मनुष्यों को कृषि–शिक्षा की आवश्यकता है। इसके बाद उन लोगों के सुभीते के लिए ही कृषि–शिक्षा का निर्धारण करना चाहिये। उन्हीं लोगों को कृषि–शिक्षा की ज़रूरत है जो शिक्षा प्राप्त कर स्वयं खेत में काम करें अथवा करायें और वैज्ञानिक ढंग से कृषि की उन्नति कर अपनी दशा सुधारें। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसे लोग कृषक ही हैं। इन्हीं के सुभीते देख कर शिक्षा का निर्धारण करना चाहिये। अब देखना चाहिये कि कृषकों के लिए कैसी शिक्षा उपयुक्त हो सकती है

हमारे कृषकों को रसायन या भौतिक शास्त्रों तथा फावड़े चलाने, हल जोतने और बीज बोने के तरीके और समय जानने की आवश्यकता नहीं है। कारण पहिले विषयों की इन्हें उतनी ज़रूरत नहीं और पिछले विषयों में वे स्वयं ही बड़े सिद्धहस्त होते हैं। यहां तक कि इनको कृषि कालेज से निकले हुए किसी भी ग्रेजुएट से इसका अधिक ज्ञान रहता है। हमारे कृषकों को कृषि सम्बन्धी उस वाह्यज्ञान, वैज्ञानिक ढंग और रीतियों से खेती करने और नवीन तथा हलकी मशीनों और औज़ारों से काम लेने की शिक्षा देने की आवश्यकता है, जिससे वे थोड़े व्यय और परिश्रम से अधिक अन्न उपजा कर अपनी आर्थिक दशा सुधारने में समर्थ हों। प्रत्येक प्रान्त के कृषि–विभाग को ऐसी कृषि–शिक्षा का प्रचार करने का प्रबन्ध करना चाहिये। पहिले ही कहा जा चुका है कि अर्थाभाव से हमारे कृषकों या उनके लड़कों के लिए यह सम्भ्व नहीं कि वे दूर के किसी कृषि कालेज में जाकर शिक्षा प्राप्त कर सकें। इसलिए यदि कृषकों की दशा सुधार कर उनके व्यवसाय की उन्नति करनी

हो तो यह आवश्यक है कि कृषि शिक्षा का प्रबन्ध प्रत्येक ग्राम अथवा मुख्य मुख्य ग्रामों में किया जाय। इसके लिए अलग स्कूल खोलने की ज़रूरत नहीं। ग्राम में साधारण शिक्षा के लिए जो पाठशालाएँ रहती हैं, उन्हीं के पाठ्य–विषयों का मुख्य अंग कृषि रक्खी जाय। इन पाठशालाओं में लिखने पढ़ने और हिसाब लगाने के अतिरिक्त विद्यार्थियों को वैज्ञानिक ढंग से खेती करने और कृषि–सम्बधी औज़ारों से काम लेने की शिक्षा भी देनी चाहिये। ऐसी प्रत्येक पाठशाला के साथ एक छोटी फुलवारी और थोड़ा सा खेत भी रहना चाहिये, जहां विद्यार्थियों को उपर्युक्त कृषि–सम्बन्धी शिक्षा का प्रत्यक्ष और व्यावहारिक ज्ञान कराया जाय। इस प्रकार की शिक्षा–पद्धति के जारी हो जाने से बड़ा लाभ होगा। एक तो पढ़ने में बालकों का मन अधिक लगेगा, क्योंकि लिखने पढ़ने के अतिरिक्त उनके मन बहलाव की भी सामग्रियां रहेंगी। दूसरे वे इस प्रकार की शिक्षा से जीवन रूपी नौका को जीवन होड़ रूपी समुद्र में खूबी के साथ चलाने में समर्थ होंगे। यदि विचार करके देखा जाय तो दिखाई देगा कि भारतवर्ष में ही नहीं, वरन् सारे संसार में शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों को पढ़ने लिखने के साथ ही साथ जीवन संग्राम में विजय प्राप्त करने के योग्य बनाना होता है। इस प्रकार के उद्देश्य की पूर्ति उपर्युक्त पद्धति की शिक्षा के निर्धारण मात्र ही से हो सकती है।

उक्त शिक्षापद्धति के जारी करने में एक बड़ी कठिनाई योग्य शिक्षकों के मिलने की है परन्तु इस कठिनाई को दूर करने का एक सहज उपाय ग्रामवासियों को छात्रवृत्तियां देकर, 'गुरु ट्रेनिंग स्कूलों, की तरह कृषि–शिक्षा के ट्रेनिंग स्कूलों, में भेजना है। हर एक प्रान्तिक कृषि–कालेज में ऐसे ट्रेनिंग स्कूलों में भेजना है। हर एक प्रान्तिक कृषि–कालेज में ऐसे ट्रेनिंग का प्रबन्ध कर आवश्यकतानुसार एक वर्ष या उससे अधिक समय तक उन्हें शिक्षा दी जाय। ग्रामों की पाठशालाओं का आधा खर्च शिक्षा विभाग और आधा कृषि विभाग को करना चाहिये। इन पाठशालाओं में जिन विद्यार्थियों की रुचि कृषि–शिक्षा की ओर अधिक दीख पड़े अथवा जो होनहार हों उन्हें कृषि–विभाग की आरे से छावृत्तियां देकर प्रान्तिक कृषि–कालेज में और तत्पश्चात् यदि आवश्यकता हो तो पूसा कालेज में कृषि–सम्बन्धी अनुसन्धान का कार्य सीखने के लिए भेजना चाहिये। कृषि विभाग के ऊँचे–ऊँचे पद भी इन्हीं लोगों को देने चाहिये क्योंकि कृषक होने के कारण ये कृषकों की भलाई में अधिक तत्पर रहेंगे। ऐसे लोगों को, जिनसे कृषि का कुछ सम्बन्ध नहीं, कृषि–विभाग के ऊंचे स्थानों पर नियुक्त करना अनुचित और अहितकर है।

इस लेख से कोई यह न समझ बैठे कि कवेल कृषि–शिक्षा ही से भारतीय किसान खेती की उन्नति कर लेंगे। मैं भी मानता हूं कि कृषि की उन्नति के लिए भारतीय कृषकों को महाजनों के चंगुलों से छुड़ाकर थोड़े सूद पर रुपये देने, उनकी खेती को रौदी दाही* से बचाने, उत्तम बीज तथा कृषि–सम्बन्धी उपयोगी औज़ारों की

उधार देने और समय समय पर उन्हें आर्थिक सहायता देकर उनको प्रोत्साहित करने के प्रबन्ध होने की नितान्त आवश्यकता है, परन्तु मैं यह भी मानने के लिए तैयार हूं कि उत्तम कृषि–शिक्षा के द्वारा भी कृषि का बहुत कुछ सुधार हो सकता है।

★ पशुओं द्वारा कुचलेजाने तथा आग से जलने

भूचाल*

जगन्नाथ खन्ना, बी.एस–सी.इ.इ.

किसी कुम्हार के हमवार और बढ़िया बने हुए चाक को या ऐसे ही किसी लट्टू को यदि हम तेजी से घूमता हुआ देखें तो वह हमें चाल–रहित लट्टू एक स्थान पर खड़ा हुआ सा मालूम होता है। पर यदि हम उसी चाक या लट्टू को बड़े ध्यान से देखें तो वह कुछ हिलता और कांपता हुआ दिखलाई पड़ने लगता है। कभी कभी तो वह बड़े जोर से एकाएक हिलता हुआ नजर आता है– जैसे किसी ने हाथ से उसे हिला दिया हो। उसके इस प्रकार हिलने और कांपने के कई कारण हैं। चाक का धुरा यदि बिलकुल बीच में न हो या उसके भिन्न भिन्न भाग समतोल न हों–कहीं भारी और कहीं हलका हो– अथवा उसके घूमने की चाल में कभी कभी अन्तर आ जाता हो तो ऐसा होने लगता है। इस चाक की तरह ही हमारी पृथ्वी भी अपने धुरे पर सदैव तेजी से घूमती रहती है। हम पृथ्वी के कद के सामने इतने अधिक छोटे हैं कि पृथ्वी की पीठ पर बैठे हुए भी इसे घूमती हुई प्रतीत नहीं कर सकते। पृथ्वी के चारों ओर का सारा भाग समतोल नहीं है, कहीं कहीं कम या ज़ियादह हलका या भारी है। इसके चारों ओर का वज़न, समय समय पर बदलता रहता है। इसका कारण है। सूर्य और चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति के प्रभाव से समुद्र में लहरें उठा करती हैं, उनके साथ पानी का बहुत बड़ा हिस्सा–वज़नदार हिस्सा बार बार एक स्थान से दूसरे स्थान पर चला जाया करता है। जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा के प्रभाव से समुद्र का पानी ऊपर को उठा और नीचे को गिरा करता है उसी प्रकार पृथ्वी के ऊपर की चटानें, सूर्य और चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति के कारण, ऊपर को खिंच जातीं और को चली जाती हैं। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न स्थानों पर और भिन्न भिन्न समय पर वर्षा होने और बर्फ गिरने से पृथ्वी की सम–भारता में फ़र्क़ आ जाता है। वर्षा ऋतु में हमारे भारतवर्ष में, और खास कर आसाम की पहाड़ियों पर पानी बहुत बड़े परिमाण में आ कर एकाएक गिरता है। सर्द देशों में बर्फ़ के तूफ़ान आया करते हैं, जिससे वहाँ एक प्रकार का बड़ा वज़न सा आकर गिर जाता है। इस तरह, पानी के बोझ के कारण, पृथ्वी कुछ कुछ दब जाया करती है। फिर पृथ्वी बिलकुल गोल नहीं है। नारंगी की तरह, उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों पर, कुछ चिपटी है। इन कारणों से पृथ्वी, सदैव, कुछ न कुछ हिला करती है। यह चलन–वलन या हिलाव सूक्ष्म यन्त्रों के द्वारा मालूम किया जा सकता है। यह धीमी कम्पनता कभी कभी भयानक रूप धारण कर लेती हैं, जिससे सारी पृथ्वी हिल जाती है और उसका कोई कोई भाग एकदम ध्वंस हो जाता है। इन्हीं भारी और भयंकर कम्पनों को भूचाल या "भूकम्प" कहते हैं।

इन भूचालों के प्रभाव से पृथ्वी की सतह पर एक प्रकार की लहरों की सी चाल पैदा हो जाती है। यदि हम तालाब के स्थिर पानी की लहरों की ओर दृष्टि डालें तो हमें मालूम होगा कि पानी स्वयं

---

* *सरस्वती*, मई 1918

लहरों के साथ आगे नहीं बढ़ा करता। इसकी सत्यता की जांच आप लहरों के पानी के ऊपर कोई तैरनेवाला छोटा पदार्थ डालकर कर सकते हैं। आप देखिएगा कि यद्यपि लहरें आगे बढ़ती हुई मालूम होती हैं, किन्तु वह पदार्थ, वहीं का वहीं, एक ही स्थान पर ऊपर नीचे उछलता हुआ, रह जाता है, आगे नहीं बढ़ता। इससे ज्ञात होता है कि लहरों के साथ पानी बह कर आगे को नहीं जाता, बल्कि थोड़ी दूर का चक्कर लगा कर एक ही स्थान पर रह जाता है। पानी की इन्हीं लहरों की तरह पृथ्वी–तल पर पृथ्वी की लहरें उठा करती हैं।

पृथ्वी की सतह पर इन लहरों की चाल इतनी तेज़ होती है कि प्रायः पृथ्वी के भीतर से एक प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती है। लहरों के कारण पृथ्वी ऊपर नीचे भी उठती है और आगे–पीछे भी हिलती डुलती है। जब ऊपर नीचे जाती आती है तब पृथ्वी के ऊपर की वायु में बड़े ज़ोर का धक्का लगता है। इससे ढोलक की सी ध्वनि पैदा होती है। कभी कभी यह ध्वनि बहुत दूर तक सुनाई पड़ती है। जहाँ भूकम्प का अन्य कोई भी प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता वहाँ भी यह ध्वनि सुनी गई है। भूकम्प के समय मकानों के हिलने, छतों के फटने और वृक्षों के काँपने या बरतनों इत्यादि की ध्वनि के आगे पृथ्वी की यह ध्वनि अधिकतर छिप जाती है।

इस प्रकार, पृथ्वी की सतह में एकाएक हलचल उत्पन्न हो जाने के कारण भूकम्प होते हैं। कोई कोई भूकम्प पृथ्वी में ज्वाला–मुखी के उभड़ आने से होते हैं। किन्तु जो भूकम्प अधिकतर ज्वालामुखी के पास होते हैं वे ज्वालामुखी के स्फोट के कारण नहीं होते। क्योंकि यह देखा गया है कि जापान में, जहाँ सबसे अधिक भूकम्प हुआ करते हैं, ज्वालामुखी से दूर पर ही प्रायः बड़े बड़े भूकम्प उठते हैं। ज्वालामुखी पर्वतों के पास की ज़मीन प्रायः ज़ोर से हिल जाया करती है। ज्वालामुखी का एकाएक स्फोट इसका कारण है। वास्तव में ये भूकम्प नहीं होते।

देखा गया है कि पृथ्वी के उन भागों पर प्रायः भूकम्प हुआ करते हैं जहाँ पर्वतों की श्रेणी अभी तक लगातार बनती जा रही है। इनमें से सबसे बड़ा भूकम्प उठने वाला पर्वत — भाग योरप के आल्प नाम पर्व्वत से लेकर हमारे हिमालय तक की पर्वत श्रेणी का है। इस भाग में इटली से लेकर चीन के मध्य भाग तक की सारी पृथ्वी आ जाती है। अनुमान किया गया है कि संसार के समस्त भूचालों का पाँचवाँ हिस्सा इस भाग में होता है। इसके बाद भूकम्प आने वाला पृथ्वी का दूसरा भाग बंगाल की खाड़ी से लेकर न्यूजीलैंड के उत्तर तक चला गया है। इसके उत्तर में एक तीसरा भाग भी है जो आसाम के कामाखटका स्थान से लेकर फिलीपाइन–द्वीपपुंज तक चला गया है। इस भाग में जापान भी आ जाता है। इनके सिवा भूकम्प आनेवाले पृथ्वी के तीन भाग अमेरिका में हैं।

किसी समय भारतवर्ष और लंका द्वीप जुड़ा हुआ था। एक भयंकर भूकम्प आने से बीच की पृथ्वी समुद्र से ढक गई और लंका भारतवर्ष से अलग हो कर द्वीप बन गया। इनके बीच की पृथ्वी के चिन्ह अभी तक नज़र आते हैं, जिन्हें अब रामेश्वर का पुल कहते हैं। इसी प्रकार भारतीय महासागर में भारत और मारिशश–द्वीप और मडागास्कर के बीच कई द्वीप थे, जो भूकम्प के कारण नष्ट होकर समुद्र के उदर में चले गये।

अनुमान किया गया है कि इतिहास में सबसे बड़ा भूकम्प, आसाम में, 12 जून 1897 ईसवी को आया था। सौभाग्यवश यह भूकम्प ऐसे स्थान मे आया जहाँ कोई बहुत बड़े नगर नहीं थे। इस भूकम्प का असर एक हजार वर्गमील तक की पृथ्वी पर पहुँचा था और उसके मध्यवर्ती अनेक छोटे छोटे नगर और ग्राम एकदम ध्वंस हो गये थे।

यह भूकम्प खासिया पहाड़ के चारों ओर आया था। यह स्थान पहाड़ी होने के कारण इतना आबाद नहीं है जितना भारत के दूसरे भाग हैं। केवल एक शिलांग ही बड़ा नगर यहाँ है, जो भूकम्प के ख़ास स्थान से बहुत दूर होने पर भी प्रायः बिल्कुल ध्वंस हो गया था। अनुसन्धान किया गया है

कि इस भूकम्प की भयानक गर्जना के कारण पृथ्वी एक मिनिट में दो सौ बार अठारह इंच ऊँची–नीची उछली कूदी थी। इस प्रकार पृथ्वी के ऊपर–नीचे उठने गिरने के कारण बड़े बड़े वृक्ष जड़ से उखड़ कर दूर जा गिरे, मकानों की दीवारें और छतें चकनाचूर होकर एकदम नष्ट हो गईं। पर्वतों पर से बड़े बड़े विशाल पत्थरों के टुकड़े वायु में दस दस फ़ीट ऊँचे उड़ने लगे थे। रेल की पटरियाँ अपने स्थान से आगे बढ़ कर मरोड़ खा गईं और नदियों के कई पुल एकबारगी ध्वंस हो गये। उनके खम्भों पर जमे हुए लोहे के शक्तिशाली धन्ने अपने अपने स्थानों को छोड़ कर नदी में जा गिरे। सड़कों के अधिकतर पुल भी पृथ्वी से उखड़ कर ऊपर उड़ गये। इस प्रकार आसाम के पहाड़ी स्थानों के कितने ही ग्राम और नगर पृथ्वी में मिल कर नष्ट हो गये, जिसके कारण लाखों की संख्या में लोग हताहत हुए और जो बच गये वे अपने घर–बार से वंचित हुए।

इस भूकम्प के बाद पता लगा कि अनेक स्थानों पर पृथ्वी ऊपर को उठ आई है। कहीं कहीं पर पचीस फीट तक पृथ्वी ऊपर उठ गई थी। पृथ्वी के कहीं कहीं पर अधिक और कहीं कहीं पर कम उठ जाने से वह झंझोड़ सी डाली गई और अनेक स्थानों पर बड़े बड़े गड्ढे बन गये, उनमें पानी जमा हो गया और झीलें बन गईं। गारो नामक पर्वत पर एक नदी बहती थी। उसका नाम था रान्थम। उसकी घाटी के एक दो स्थान बहुत ऊपर को उठ गये। इससे बीच का स्थान नीचा हो गया। फलतः नदी के पानी का बहाव बन्द हो गया और वहाँ पर एक बड़ी, आध मील लम्बी, झील बन गई। इसी प्रकार चेद्रांग नामक नदी की सतह के भी कई भाग ऊपर को उठ गये जिससे कई बड़ी बड़ी झीलें बन गईं।

इस भूकम्प के अतिरिक्त और भी अनेक बड़े भयानक भूकम्प, समय समय पर, पृथ्वी के भिन्न भिन्न स्थानों पर हुए हैं। पोर्चुगाल देश के लिस्बन नामक नगर में इसी प्रकार का एक भूकम्प, 1 नवम्बर 1755 ईसवी को, हुआ था। बादल की गर्जना के सदृश भयानक शब्द एकाएक सुनाई पड़ा। इसके बाद पृथ्वी हिली, जिससे नगर का अधिक भाग ध्वंस हो गया। यह बड़ा आबाद नगर था। यहाँ की सड़कें तंग और मकान बुलंद थे। मकानों से गिरने वाले पत्थरों से बचने के लिए नगर निवासी नदी के किनारे, खुले स्थान की ओर, भागे। जब लोगों का बड़ा समूह वहाँ पर जमा हो गया तब भूकम्प की एक तेज लहर आई, जिससे पहले तो नदी का पानी पाताल को चला गया और नदी सूख गई। फिर थोड़े ही समय बाद पचास फ़ीट ऊँची एक लहर आई और किनारे पर एकत्र हुए कोई साठ हजार नगर निवासियों को बहा ले गई। यह नदी बड़ी चौड़ी और गहरी थी। इसके किनारे पर बड़ा मज़बूत और सुन्दर बन्दरगाह था। वह भी पानी में डूब कर लापता हो गया। कहा जाता है कि इन डूबे हुए पदार्थों का चिन्ह तक न मिला। बन्दरगाह का स्थान अथाह गहराई में डूब गया। इस भूकम्प का असर बड़ी दूर दूर तक पहुँचा था। कहते हैं कि स्विट्ज़रलैंड तक इसका असर पहुँचा था। बोहेमिया के कई प्रसिद्ध झरने सूख गये और मराको का एक नगर, दस हज़ार निवासियों के साथ, ध्वंस हो गया तथा स्काटलैंड की झीलों में भयंकर तूफान आ गया। अमेरिका के सान्फ़ान्सिस्को नामक नगर में, 1906 ईसवीं में सबसे अधिक ध्वंसकारी भूकम्प आया था। उससे समस्त नगर नष्ट हो गया। सड़कों के नीचे वहां गैस के नल लगे हुए थे, वे फट गये। इससे आग लग गई और जो कुछ नगर का भाग बचा हुआ था वह भी जल कर राख हो गया। इस भूकम्प का असर सात सौ मील तक पहुंचा था। इसके पूर्व भी इस स्थान पर सात भूकम्प आ चुके थे। किन्तु यह इन सब से भयंकर था। अमेरिका देश धनवान् और उन्नतिशाली है। आज सान्फ़ान्सिस्को में भूकम्प का कोई चिन्ह दिखाई नहीं देता। यही नहीं, बल्कि नगर अधिक सुन्दर और बड़ा बन गया है।

जापान तो भूकम्प का देश ही है। वहाँ हमेशा भूकम्प आया करते हैं। इसी कारण वहाँ के अधिक मकान लकड़ी के हैं। सबसे बड़ा भूकम्प, जापान में, 28 अक्टूबर 1891 ईसवी को आया था। उसके प्रभाव से मध्य जापान के वारी और मीलो नामक दो सूबे बिलकुल ही ध्वंस हो गये। ये सूबे उपजाऊ आबाद और धनवान् हैं। भूकम्प के कारण बड़े बड़े मकान नींव से उखड़ कर दूर जा गिरे, पृथ्वी में स्थान स्थान पर बड़ी बड़ी खाइयाँ बन गईं, रेल की सड़कें टूट टाट गई। और आसपास के पर्वत चटान बन गए एक विचित्र घटना इस भूकम्प में यह हुई कि नदी के किनारे सिकुड़ कर पास पास हो गये। इसी प्रकार और भी कितने ही प्रकार के विचित्र परिवर्तन वहाँ हो गये।

महोबे में पानों की खेती*

मुकुटबिहारी लाल दर, बी. एस–सी.

शताब्दियों से महोबा पानों के लिये उत्तरीय भारत में बहुत मशहूर है। यहां का पान बहुत करारा (brittle) होता है। ज़रा सा मोड़ने से फौरन टूट जाता है। पान देखने में बहुत बड़ा होता है। यहां का पान रेल द्वारा कलकत्ता और पंजाब तक जाता है। इस काम के लिये यहां कई कोठियां हैं, जहां पान इकट्ठे किये और पार्सल बनाकर भेजे जाते हैं। पानों की खेती प्रायः महोबे खास वा उसके आस पास में ही होती है। यहां हम अपने पाठकों की जानकारी के लिये महोबे का थोड़ा सा वर्णन देकर पानों की खेती का हाल लिखेंगे। महोबा, जो कि जिला हमीरपुर (बुंदेलखंड) के उसी नाम के सब डिवीजन का सदर मुक़ाम है, $25^{0}18$ उत्तर अक्षांश और $79^{0}53$ पूर्व देशान्तर में फतहपुर बांदा–सागर सड़क पर है। महोबा होकर जी. आई. पी. रेलवे की झांसी–मानिकपुर लाइन गई है– यह स्थान बहुत पुराना है और विश्वास किया जाता है कि अनेक युगों में इसके अनेक नाम रहे हैं। त्रेता युग में इसका नाम केकपुर था और द्वापर में पटनपुर और कलिकाल में महोबा। यह कहा जाता है कि 857 वि॰ के लगभग प्रसिद्ध चंदेल राजा चन्द्रवर्मा ने एक बड़ा यज्ञ अथवा महोत्सव किया था। इसी से इसका नाम महोबा पड़ा। चन्दवरदाई ने अपने रासो में इस स्थान का नाम महोत्सा अथवा महोत्सानगर लिखा है। अन्य बातों से यह पता लगता है कि सं. 957 वि॰ के लगभग चन्देलों की राजधानी खजुरहा से इस स्थान पर उठ आई थी। परन्तु अब महोबे में थोड़े से खंडहर और तीन चार बड़े बड़े तालाब इस स्थान की पूर्व शोभा, प्राचीन गौरव और चन्देलों के महत्व तथा उदार हृदयता के चिह्न मात्र रह गये हैं। आधुनिक महोबा कोई बड़ा स्थान नहीं है। सन् 1901 में इस नगरी की जनसंख्या केवल 10,074 थी। व्यापार की दृष्टि से यह स्थान जिले भर में सबसे अच्छा है और यह आशा की जाती है कि जब हमीरपुर का जिला उठ कर महोबा चला जायगा तो यह स्थान और भी उन्नति करेगा। महोबे में कई छोटे छोटे तालाबों को छोड़कर चार बड़े बड़े तालाब क्रम से यह हैं– विजयनगर, मदनसागर, कीरतसागर और कल्यानसागर। इन्हीं तालाबों से आबपाशी के लिये नहरें भी निकाली गई हैं। पान के खेत इन्हीं तालाबों या इनसे निकली हुई नहर या नालों के पास हैं।

यह खेत बहुधा ऊँची ढालू ज़मीन पर, जहाँ पानी इकट्ठा न हो सके, होते हैं। पान के लिये बालू मिली हुई (रेतीली) मिट्टी की ज़रूरत होती है। पानों के लिये एक सी गरमी, कुछ स्थायी नमी और बड़ी देखभाल की जरूरत होती है। क्योंकि पान की बेल बहुत नाजुक होती है। गरमियों में खेतों को बराबर तर रखने की ज़रूरत होती है, परन्तु बहुत ज्यादा पानी भी नुक़सान करता है और

---

* *विज्ञान*, अप्रैल 1920

पानी कभी जमा न रहने देना चाहिये। पौधों के लिये धूप अच्छी नहीं, न बहुत छाँह ही अच्छी है। बहुत हवा भी अच्छी नहीं और न बिलकुल कम हवा।

खाद के लिये सरसों का तेल या उसकी खली डाली जाती है। कहीं कहीं जिस नाले से आबपाशी करते हैं उसका पानी सूख जाने के बाद उसकी मिट्टी भी डालते हैं। बंगाल में बारीक पिसा हुआ गोबर भी खाद के तौर पर देते हैं। मध्यप्रदेश में जब पौधा नया होता है तो दूध डालते हैं। यह बहुत अच्छा खाद का काम करता है। अलसी की खली पौधों के लिये हानिकारक है।

पान के खेत दूर से एक नीचे फूस के पौध घर (hot house) अथवा फूस से ढ़के हुए लम्बे तथा नीचे 'हाल' (hall) से प्रतीत होते हैं। परन्तु अन्दर से बहुत सुन्दर और ठंडे मालूम होते हैं, विशेषतः बाहर के ताप की अपेक्षा। पानों की सीधी बेलें क्रम से चढ़ी हुई और पानी से खूब सिंची हुई, आस पास के उजाड़ वन खण्ड में, विशेष कर गरमियों में आंखों को तरावट देने वाली और बहुत रमणीक मालूम होती हैं। एक मुहाल महोबा में 'दरीबा' (अर्थात् पान का दूकान) नाम का है जहां पानों की खेती 50 से 18 बीघा तक में, होती है और अलहदा खेतों की संख्या 55 से 20 तक है, जो न दो बीघे से ज्यादा और न पांच बिसवे[1] से कम होते हैं। खेत चारों ओर से बांस वा चटाई लगाकर सुरक्षित रखे जाते हैं और ऊपरी छत बांस की खपच्चियों की टट्टी बनाई जाती है, जिस पर छितरा छितरा फूल या अरंड के पत्ते डाल दिये जाते हैं। इन खेतों को महोबे में 'बरेजे' कहते हैं और पान वाले 'बरई' कहलाते हैं। बरई लोग सुअरों और अन्य जंगली जानवरों और चोरों से खेतों की रक्षा करने के लिये उन्हीं खेतों में रात दिन बन्द किये पड़े रहते हैं, एक खेत में तीन साल बराबर बोते रहते हैं। फिर एक साल परती छोड़ देते हैं। पौधे बोने के दो तरीके हैं,– (1) पुरानी बेलों में से कलम काटी जाती हैं जो खेतों में लगा दी जाती है। इनके जोड़ों में से अंकुर फूट कर पौधे होकर बढ़ने लगते हैं। एक बेल से कई कलम ली जाती है। कलम तीस बत्तीस अंगुल के फासले पर लम्बी सीधी कतारों में लगाई जाती है। कुछ लोग बीच बीच में मिर्च या पोई भी लगा देते हैं जिसमें खेत में छांह रहने के अतिरिक्त खेत वाले को तरकारी का भी सुभीता रहे। (2) फसल के आखिर में बेल जड़ से फुट डेढ़ फुट छोड़ दी जाती है और यह ज़मीन में लम्बी दबा दी जाती है। कुछ समय बाद जोड़ों की जगह से नई जड़ें फटने लगती हैं। तब पुरानी जड़ काट कर फेंक दी जाती है।

पौधों को बड़ा होने में एक साल लगता है। होली के लगभग पान बोया जाता है और अगली साल उसी समय कलम काटी जाती हैं। कलमों से जब पौधा जम जाता है तो जड़ के समीप के पुराने पान तोड़कर बेच दिये जाते हैं। जब बेल बढ़ने लगती है तो उसका सहारा देने के लिये 'सलइया' (सन का सरकंडा) उसके पास खोंस देते हैं–उसी के सहारे बेल ऊपर को जाती है। बरसात को छोड़कर इसमें बारहों महीने पानी दिया जाता है। इस काम के लिये मिट्टी के बड़े–बड़े घड़े खेत के चारों तरफ रखे रहते हैं। पानी उन नालों से जिनके कि किनारे खेत होते हैं लिया जाता है। इसके अतिरिक्त हर खेत वाले के दो एक कुएँ खेत के समीप नाले की तली (bed) में खुदे रहते हैं जो कि गरमियों में जब नाले सूख जाते हैं काम में लाये जाते हैं। यह कुएं बीस बाईस हाथ गहरे होते हैं।

'पान' (जिसको कि संस्कृत में ताम्बूल और अरबी और फ़ारसी में तम्बोल वा वर्ग तम्बोल और सिंहाली और तामील में नागबल्ली कहते हैं।) का वैज्ञानिक (botanical) पाइपर बीटिल (Piper Betel) है जो कि प्राकृतिक क्रम (Natural orle) पाइपरे सी की एक बेल है। यह एक (perennial dioecious creeper) बारहों महीने होने वाली बेल है और सम्भवतः जावा द्वीप की निवासी है। जैसा कि सब को विदित है हमारे देश में पान खाया जाता है और इसका आजकल सर्वत्र प्रचार है। यहां

बिना पान दिये किसी का सत्कार पूरा नहीं समझा जाता। पूजन, हवन आदि में भी इसकी विशेष आवश्यकता रहती है। लगा हुआ पान हलका उत्तेजक (gentle stimulant and exhilarant) का गुण रखता है। प्राचीन आर्य ग्रन्थकारों की राय है कि पान तड़के, खाना खाने के बाद और सोते वक्त खाना चाहिये। सुश्रुत के अनुसार पान सुगन्धित (aromatic), अफरन दूर करने वाला (carminative), उत्तेजक (stimulant) और तीखा होता (astringent) होता हैं। यह मुख की दुर्गन्ध दूर करता है, सांस को सुगन्धित करता है और स्वर को ठीक करता है। अन्य लेखकों के अनुसार यह कामोद्दीपक (aphrodisiac) भी है। ओषधि के रूप में इसका रस कफ़ के विकार के रोगों में बहुत उपकारी है। सदा सरलता से उपलब्ध होने के कारण पान का पत्ता बहुत सी बातों में घरेलू दवाइयों के रूप में काम आता है। पान के डंठल का (stalk) तेल में डुबो कर बच्चों के पेट फूलने और कब्ज होने पर शफा के रूप में (suppository) प्रयोग किया जाता है। पान के पत्ते सिर दर्द में चांद पर और दूध रोकने के लिये स्तनो पर लगाये जाते हैं। यह दर्द करने वाली सूजी हुई गिलटियों के बैठाने के लिये भी उन पर लगाये जाते हैं। बहुत ज्यादा पान खाने से शेराब के नशे का सा असर होता है। खराब फोड़ों पर पान बांधने से यह अच्छे होने लगते हैं। कोनकन (konkon) में इसका फल शहद में मिला कर खांसी में दिया जाता है। कहा जाता है कि उड़ीसा में इसकी जड़ सन्तानोत्पत्ति रोकने के लिए दी जाती है। ऐंसली महोदय का कहना है कि बच्चों की बदहजमी में पत्तों का अर्क गरम करके दिया जाता है। यही अर्क दूध के साथ हिस्टीरिया में भी दिया जाता है। एक प्रकार के रुई के पौधे की जड़ पानों के अर्क में पीस कर उसकी सहायता से पुराने रासायनिक लोग ओषधि के लिये हीरे की भस्म तैयार करते थे।

हमारे देश में सरकारी अथवा अन्य यूरोपियन डाक्टरों ने इस ओषधि के गुणों की ओर यथार्थ ध्यान नहीं दिया है। परन्तु जावा में इस ओर बहुत कुछ ध्यान आकर्षित हुआ है और वहां के डच वनस्पति शास्त्रवेत्ता और तथा डाक्टरों ने प्रयोगों के बाद यह स्थिर किया है कि उस देश की गन्दी (miarmatic) तथा नम जलवायु में पान चबाने से वास्तव में स्वास्थ्य बढ़ता है। (Netherlands Indian Goverment) जावा की सरकार ने यह हुक्म दे रखा है कि अस्वस्थ मनुष्यों और कैदियों को पान दिये जायँ। उनका विश्वास है कि इससे बीमारी कम हो जाती है। कफ और श्वास सम्बन्धी रोगों में भी यह उपकारी पाया गया है। यूरोप में इसके गुणों की ओर ध्यान बहुत आकर्षित होने का शायद यह कारण हो कि केवल हरी पत्तियाँ ही गुणकारी हैं और सूखने पर उनका उड़नशील तैल (volatile oil) निकल जाता है जिसके साथ ही उसके बहुमूल्य गुण भी चले जाते हैं। परन्तु देग और भपकें (distillation) से इसका उड़नशील तैल (volatile oil) पृथक किया जा सकता है और सम्भव है कि यह औषधि की दृष्टि से गुणकारी और स्थायी (stable) हो। यह तेल जब द्वीप से जरमनी भेजा जाता है और जर्मनों ने इसके गुणों की प्रशंसा भी की है। डीमोक महोदयका कहना है कि डी. एस. कैम्प ने सन् 1885 में पानी के साथ हरी पत्तियों का अर्क (distil) निकालकर दो पीले बसंती रंग के तेल निकाले थे। इनमें से एक भारी और दूसरा हल्का था। दोनों में पान के पत्तों की सी सुगन्ध थी, परन्तु हल्का तेल दूसरे की अपेक्षा अधिक सुगन्धित (aromatic) था। हाल में ही डाक्टर वाट सन् 1892 में लिखते हैं–"पत्तों के ईथरीय घोल (ethereal solution) से एक वानस्पतिक क्षार (alkaloid) अराकीन (arakene) नाम का निकाला गया है। इसी से कुकेन के लवणों (salts) के सदृश लवण (salts) भी बनाये गये हैं। वानस्पतिक क्षार (allsalold) और उसके लवणों (salts) का स्वाद कुछ तीक्ष्ण है। वह थूक (saliva) को बंढाने, हृद पिंड (heart) की क्रिया को मंद करते और रेचक होते हैं।

डाक्टर टोमसन (surgeon Major D.M Thomson, M.D O.I.E. Madras) का कहना है कि

पत्तों का रस वेदनायुक्त चक्षु संबन्धी रोगों में डाला जाता है। डा. घोष Astt. Surgeon T.N. का कहना है कि जब आंख आती है तो इसका ताजा रस आंख धोने के लिये उपयोगी होता है और दिनाधी के लिये भी गुणकारी है। डा. पिकेची (Surgeon D. Picaely, Purnoar) लिखते हैं कि मैंने पान का, आग पर गरम करके और सरसों के तेल में मिलाकर, गले की वेदना प्रभृति रोगों में सफलतापूर्वक उपयोग किया है। डाक्टर थर्मडन (Civil Surgeon G.H. Thorntan B.A. M.B. Monghy) का कहाना है कि पान की पतली जड़ (कुलंजन?) काली मिरच के साथ खिला कर स्त्रियों में बन्धत्व पैदा किया जाता है। यह कहा जाता है कि यह डिम्बाशय का पक्षाघात (Paralysils of the quary) कर के बाद में उनको (atrophy) क्रियाहीन कर देता है। डा. मुकुर जी का कहना है कि बंगला पान कंठनाली उपवाह के लिये बहुत गुणकारी है। नारायण मिश्र लिखते हैं कि इसकी जड़ (कुलंजन?) साधारण तौर से गानेवाले अपना स्वर ठीक रखने के लिये खाते हैं। लाल मोहम्मद (Hospital Assistant Central Prounees लिखते हैं कि पान के पत्ते शरबत के रूप में मसाला मिला कर एक औंस दिन में तीन दफ़े देने से शारीरिक दुर्बलता के लिये गुणकारी होते हैं।

1. बिसवे – एक बिस्वा (एक बीघे का बीसवां भाग)

बालकों का भोजन कैसा होना चाहिये*+

मैरी के. नेफ़

संभव है कि बहुतसे गृहस्थ यह न समझ सकें कि बालकोंके आहारका "गृहस्थ तथा शिक्षकोपयोगी संस्था (League of parents and Teachers)" के उस उद्देश्यसे क्या विशेष सम्बन्ध है जिसके द्वारा हर माता पिता तथा हर शिक्षकका यह कर्तव्य है कि बालकोंपर होनेवाले अनुचित अत्याचारोंको रोका जाय। परन्तु उन्हें स्मरण रहना चाहिये कि अत्याचार भी अनेकों हैं और अनेकों प्रकारसे किये भी जाते हैं। हम मानते हैं कि हमारी इस संस्थाका परम कर्तव्य उन अत्याचारोंको रोकना है जिनके अन्तर्गत मारना पीटना भी है; परन्तु हमारे कर्त्तव्यकी सीमा यहीं तक परिमित नहीं है क्योंकि बालकोंकी प्रकृति और आवश्यकताओंकी अनभिज्ञताकी भी गणनाा अत्याचारमें ही की जाती है। अतः इस छोटेसे प्रबन्धमें हमारा निर्दिष्ट विषय यही होगा।

लूथर बरबंकने "मानुषिक पौधा" नामक अपनी पुस्तकमें बालकोंकी शिक्षण प्रणालीका वर्णन करते हुये यह आश्चर्यजनक परन्तु परमोपयोगी बात लिखी है — "हर बालकके भविष्यत् जीवनपर उस भोजनका जो उसे पहिले छह वर्षोंमें मिलता है बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है और उसके जीवनमें किन किन महत्वपूर्ण घटनाओंकी संभावना है तथा उनका होना कहां तक परिमित है इसका भी बहुत कुछ ज्ञान होना संभव है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि बहुतसे लोग इन विचारोंके पूर्णरूपमें सत्य होनेपर सन्देह करेंगे; परन्तु हमारे विचारमें निम्नलिखित बातोंके माननेमें किसीको आनाकानी न होगी। वे बातें प्रत्येक बालकके शरीरको उसके जीवनके प्रत्येक कार्यमें सुस्वस्थ्य और निरोग बनानेके लिये उपयोगी और आवश्यक है।

(1) उसे सरल, स्वच्छ और पुष्ट आहार दिया जाय।
(2) उसके आहारकी मात्रा काफ़ी हो परन्तु अधिक कभी न हो।
(3) भोजन करनेका समय नियमित हो और प्रत्येक भोजके पश्चात दूसरे भोज तक यथोचित अवकाश हो।

1. अब अगर हम अपने देशके बालकोंके संबंधमें पहिली बातका विचार करें तो हमें मालूम होगा कि कई प्रकारके भोजन जो उन्हें प्रायः दिये जाते हैं उनका निषेध होना चाहिये। हमारे देशमें आमिष भोजनका प्रश्न पाश्चात्य देशोंकी भांति महत्वपूर्ण और उलझनमें डालने वाला नहीं हैं। बहुतसे हिन्दू निरामिषाहारी हैं। हां ! मुसलमान और ईसाइयोंमें इसका प्रचार खूब है परन्तु यह अनुभवसे प्रमाणितहो चुका है कि यदि किसी बालकको उसकी मर्ज़ीपर छोड़ दिया जाय तो वह

---

* *विज्ञान*, मार्च 1921

+ गृहस्थ तथा शिक्षकोपयोगी संस्था (league of parents and teachers) की एक पुस्तक 'माता पिता का कर्तव्य' के आधार पर यह लेख लिखा गया है।

आमिष अहार कभी पसंद न करेगा। हमने स्वयम् देखा है कि अमेरिकामें मातायें प्रायः अपनी सन्तानोंको झिड़क कर ही मांसाहारी बनानेमें सफल होती हैं। अतः किसी अन्य शारीरिक कारणके अभावमें हर गृहस्थका यह परम कर्तव्य होना चाहये कि वह अपनी संतानको निरामिषाहारी बनावे। इसका एक बड़ा कारण यह है कि पशुओंके रगपट्ठोंमें भी हमारीही तरह कुछ न कुछ उच्छिष्ट वस्तुएँ अवश्य मौजूद होती हैं और चूंकि इन पदार्थोंको मेदा सदा हज़म करनेकी चेष्टामें लगा रहता है अतः यदि इन्हें किसी प्रकार बाहर न निकाल दिया जाय तो यह विषके समान अवगुण करने वाले हो जाते हैं। अतः यदि किसी बालकको मांस खिलाया जाय तो उसकी पाचकेन्द्रियको इस उच्छिष्ट पदार्थके हज़म करनेमें अधिक प्रयत्न करना पड़ेगा। इसके उपरान्त मांसाहारके विरुद्ध एक बात और भी है कि निर्जीव पदार्थ होनेके कारण उसका विनाश होना प्रारंभहो जाता है; अतः उसमें ऐसी अवस्थामें वह सारे गुण उस मात्रामें विद्यमान नहीं रह सकते जितने कि उसकी पहिली अवस्थामें थे। परन्तु आमिषाहारके विरुद्ध सबसे बड़ा कारण यह है कि आमिषाहारसे रजोविकारकी वृद्धि होती और इन विकारोंसे तामसी विचार उत्पन्न होते हैं। इसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि संसारकी सभी लड़ाकू जातियाँ मांसाहारी हैं। यदि हम अपनी सभ्यतासे लड़ाईका विलोप करना चाहते हैं तो हमारा कर्तव्य है कि उसकी संभावनाके वाह्य तथा आन्तरिक दोनोंही प्रकारके कारण दूर किये जायँ।

मिर्च और गरम मसाले भी बालकोंको अहारमें नहीं दिये जाने चाहिये। इस विषयमें भारतवर्ष भर अपनी सन्तानोंके प्रति पापका भागी है। क्या आप लोगोंने कभी इस बात पर विचार किया है कि बालकोंको ऐसा मसालेदार भोजन देनेसे क्या हानि होती है। यदि नहीं, तो समझ लीजिये कि इन चीज़ोंके प्रयोगसे मेधामें ही विकार उत्पन्न नहीं होते हैं वरन उनके कारण बच्चोंको बहुधा पैत्तिक (Bilious) रोग हो जाता है और सबसे बड़ी हानि यह होती है कि इनसे तमोगुणी इन्द्रियोंमें विकार पैदा हो जाता है। इस देशकी गर्म जलवायुके साथ–साथ, बाल विवाहकी कुप्रथा, तथा संभोग विषयोंका थोड़ीही अवस्थामें ज्ञान हो जाना और इस पर भी ऐसा भोजन मिलना कि जिससे तमोगुणी वृत्तिमें वृद्धिहो, यह सब बातें मिलकर इस देशमें युवकोंको विषय–लोलुपताकी ओर अधिक झुका देती हैं और इन सब का परिणाम अवश्यही बड़ा भयंकर होता है। हमारे देशवासी गृहस्थोंके समीप यह प्रश्न मार्के का है और इसके निराकरणमें सफल–मनोरथ होनेके लिये बालकों तथा युवाओंको यथोचित आहार देनाही परमोपयोगी प्रमाणित होगा।

2. भारत जैसे दरिद्री देशमें प्रत्येक गृहस्थको अपनी सन्तान पर इतना प्रेम है कि वे स्वयम् उबले हुये चावलों का मांढ़ (पानी) पीकर अपने बाल बच्चोंको चावल खिलानेकी चेष्टा करते हैं। अतः यहां पर इस बातका तो कोई भय नहीं है कि माता पिता अपनी संतानोंको यथावश्यक आहार न दें। हां! अगर भय है तो इस बातका कि वे उन्हें लाड़के कारण बहुत सा ठूँस ठूँसकर खिला देते हैं। जैसे त्यौहारोंके दिनोंमें बालकोंको खूब मिठाई उड़ानेको मिलती है, इसी प्रकार परिवारमें कोई उत्सव होने पर तो उनके लिये दिन रात तरह तरहके षटरस व्यंजन खानेको मिलते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि ये या तो रोगग्रस्त हो जाते हैं या उन्हें कोई ऐसा शारीरिक तथा मानसिक विकार हो जाता है कि वे कई दिनों तक स्कूलमें ठीक तरहसे काम नहीं कर सकते। यह बात मैंने अपने निजी अनुभव से लिखी है और मुझे आशा है कि बहुतसे गृहस्थ इससे सहमत भी होंगे।

परन्तु हमारे विचारमें किसी बच्चेंको क्षणिक सुखके लिये उसे एक दिन अथवा एक सप्ताह तक रोगी बना देना, उसपर कृपा करनेकी जगह उसके साथ बुराई करना है। और यदि इस विषयमें बच्चेकी हठ पूरी करनेके लिये अधिक दुलार हुआ तो उसे सदाके लिए रोगी और निर्बल बनानेके साथ–साथ उसे बिल्कुलही निकम्मा कर देना है। अतः माताओंको इस प्रकारके लाड़ चावसे विशेष

रूपसे सावधान रहना चाहिये और साथही इस पुरानी मसलको ध्यानमें रखना चाहिये कि 'गुड़ देनेसे भी मनुष्य मारा जा सकता है।'

इसके अतिरिक्त अधिक आहार देनेसे तथा जो चीज़ बालकको बहुत अच्छी लगे उसे ज्यादा खिलानेसे बच्चोंको बहुत हानि पहुँचती है। छोटी उमरसे ही बालक अपने माता पिताकी इस आदतसे बुरी शिक्षा ग्रहण करते हैं और समझदार हो जानेपर सांसारिक प्रलोभनोंसे बचने तथा उन्हें दमन करनेकी अपेक्षा शीघ्रही उनमें फँस जाते हैं ! क्योंकि जो स्वभाव उनका भोजनके लिये पड़ जाता है, वही और दूसरे कामोंमें भी बना रहता है।

3. बहुतसे गृहस्थ तीसरी बात पर ज़रा भी ध्यान नहीं देते हैं और अपने बालकोंको दिन भर जो वह चाहें बकरीकी भांति चरने देते हैं। परन्तु यह लाड़ भी बुरा है क्योंकि मेधा आदि पाचकेन्द्रियोंको पचानेका काम भली भांति करनेके लिये विश्राम मिलनेकी बड़ी आवश्यकता है। और यदि दिन भर भोजन करनेसे दिन भर पाचन रस काममें लाया जायगा तो नियमित भोजनके समय अवश्यही यह पाचन रस यथावश्यक मात्रामें न मिल सकेगा। इस कारण भोजन खूब भूक लगनेपर ही खाना चाहिये। इसके लिये आवश्यक है कि, जहाँ तक हो सके नियम समयपर भोजन करना चाहिये और सोने तथा आराम करनेका समय भी नियत होना चाहिये। ऐसा करनेसे बालक सदा स्वस्थ रहते हैं और उनकी शारीरिक तथा मानसिक शक्तियोंका भी पूरा विकास होता है।

धृतराष्ट्र के सौ पुत्र*

जयदेव शर्मा विद्यालंकार

किसी पुरुषके सौ पुत्र होना इतना असम्भव नहीं प्रतीत होता जितना एक माताके 100 पुत्र होना। भारतके प्राचीन इतिहासमें सागरके 60 हज़ार पुत्र थे, वह भी एक मातासे। दक्ष प्रजापतिकी कितनीही कन्याएं थीं। धृतराष्ट्रके सौ पुत्र थे, जिनकी माता भी एक गान्धारी थी। इस प्रकारकी असम्भावनाओंको देख कर प्रायः पाठक कल्पना करेंगे कि कदाचित् भारतमें राजाओंकी बहुतसी स्त्रियाँ होती थीं। एक पुरुषसे बहुतसी स्त्रियोंमें सौ सवा सौ पुत्रोंका हो जाना सम्भव है। पटरानी गान्धारी होगी, जो सामान्यतः सबकी माता कहाती होगी। अस्तु ऐसी कल्पना अन्ततः कल्पना ही है। एक गर्भसे 100 पुत्रोंका पैदा होना यदि असम्भव नहीं तो भी विस्मयजनक जैसे पहले था वैसे ही अब भी है। इस लेखके लिखनेके पूर्वही पाठकोंको हम निश्चय करा देना चाहते हैं कि 100 पुत्र धृतराष्ट्रके गान्धारीके गर्भसे होने सम्भव हैं। विधान इसका कोई विरोध नहीं करता। पर किस प्रकार, यह आगे पढ़नेसे ज्ञातहो जायगा।

प्राकृतिक संसारमें एक मादा जीवसे सैकड़ों अपत्य और एक नर जीवसे सैकड़ों गर्भोंका धारणं देखा गया है। यह कोई छिपी बात नहीं।

क्षुद्र जातिके जीवोंमें चिरकाल तक गर्भ धारण शक्ति नहीं होती। इसीलिए मछली मेंढक आदि क्षुद्र जलचर मादाएं अपने अन्तः गर्भसे सहस्रों डिम्ब बाहर फेंक देती हैं और नर अपने शुक्र कीटोंसे उनको गर्भित कर देता है। पक्षिजातिमें कुछ कम गर्भ रखनेकी शक्ति होती है। यद्यपि नर मादाके मैथुनमें एक संयोगमें ही नर एक बार छोड़े वीर्यमें सहस्त्रों शुक्रकीट और स्त्रीके रजःउत्सर्गमें सहस्रों डिम्ब होते हैं तो भी थोड़ेही परस्पर मिलकर अण्ड़ा बन पाते हैं, शेष सब अनुकूल अवस्था न होनेसे अण्डा रूप नहीं बन पाते। इसी प्रकार उत्तम कोटिके स्तनपायी जानवारोंमें गर्भ चिर काल तक धारण करनेकी शक्ति है। इनमें भी पूर्वोक्त कथनानुसारही सहस्रों शुक्रकीट एवं सहस्रों रजःकीट व्यर्थ जाते हैं और पुत्र एक दो चारही फलते हैं; जैसे शूकरोंके पेट में 9 बच्चे तक भी हो जाते हैं, कुतियाके पेटमें 4,5, पर हाथी, गौ, घोड़ा आदि केवल एक बच्चा जनते हैं। मनुष्योंमें भी एकही बच्चा एक बारमें उत्पन्न होता है। परन्तु कभी कभी 2,3,4,5, बच्चे भी एक साथ एकही गर्भसे उत्पन्न होते पाये गये हैं। अब आश्चर्यजनक बात यही है कि क्या यह संख्या 100 तक भी पहुँच सकती है?

यदि 100 शुक्रकीटोंको 100 रजःकीटों (या डिम्बों) के साथ मिलनेका अवसर मिल जाय और फिर उनके नियमानुकूल अनुषघातक अवस्थामें परिपोषण पानेका अवसर प्राप्त हो तो कोई

---

* *विज्ञान*, अप्रैल 1921

शंका नहीं कि 100 पुत्र पैदा न हो सकेंगे। मेंढकीके पेटसे सैकड़ों रजःकीट या डिम्ब निकलते हैं और नर मेंढक उनको अपने शुक्रकीटोंसे गर्भित करता है और वह पानीकी तहमें ही अण्डाकार रूपमें एक झिल्लीमें लिपटे हुये पड़े रहते हैं। फलतः गर्भ–विज्ञानके नवीन शास्त्रने इस बातको सत्य माना है कि गर्भ शुक्रकीट द्वारा डिम्बमें उपस्थित किये हुये गर्भाधानके परिपोषणका उचित स्थान है। यह प्राणीके पेटमें न होकर बाहर भी सम्भव है।

इसी स्थापनाके अनुसार स्त्रियोंके गर्भमें यदि संयोगवश 100 डिम्ब शुक्रकीटोंसे गर्भ स्थितहो जाने और उनके गर्भाशयमें उचित परिपोषणका अवसर प्राप्त हो तो कोई कारण नहीं कि वे सब गर्भ ठीक पुत्र रूपमें न फल जावें। जब यह सत्य है तो अब यही देखना शेष है कि स्त्रीके गर्भमें 100 रजःकीटों या डिम्बोंका पुरुषके शुक्रकीटोंसे गर्भित हो जाना (फ़र्टिलाइज़ हो जाना) सम्भव है या नहीं। हमें इसमें भी कोई असम्भव बात प्रतीत नहीं होती क्योंकि गर्भाशय तो केवल एक पोषण–स्थान है, गर्भित होना केवल योनि मार्ग या गर्भके मुख्य द्वारमें ही होता है। यदि क्रमसे डिम्ब गर्भित हो कर गर्भ में प्रविष्ट होते जायं तो एक गर्भाशयमें 100 गर्भित डिम्बोंको आ जाना असम्भव नहीं क्योंकि गर्भित होनेके कालमें डिम्ब और शुक्रकीटका परिणाम एक इन्च का 1/200 भाग होता है। गर्भाशयका परिमाण प्रथम अंगुल मात्र होता है। 15 दिनके पश्चात् गर्भाशयमें गर्भित डिम्बका आकार 1/12 इंच होता हैं। तीसरे सप्ताहमें बाजरेके दानेके या लाल चींटीके बराबर होता है। चौथे सप्ताहमें लंबाई 1/3 इंच होती है। 45 दिनके बाद लम्बाई एक इंचहो जाती है और मानवीय आकृति पूर्णहो जाती हे। तीसरे महीनेके बाद उसका आकार साढ़े तीन इंचहो जाता है और भार ढाई औंस हो जाता है। चौथे मासमें आकार 5,6 इंच तक 5 वें मासमें लम्बाई 7,8 इंच तकहो जाती है; भार भी 8 औंस (4 छटांक)। छठे मासमें लम्बाई 10,12 इंच और भार 1 सेर होता है। 7वें मासमें आकार 14 इंच, भार 3 पौण्ड (डेढ़ सेर)। आठवें मासमें लम्बाई 16 इंच और भार 4 पौण्ड (2 सेर)। नवें मासमें लम्बाई 18 से 20 इंच तक और भार (3–4 सेर) और 10 मासके बाद प्रसव कालमें लम्बाई 24 इंच और भार 7 सेर तक होता है।

इस अनुमानसे हम इस परिणाम पर पहुँचे कि मानव गर्भमें 10 मासमें 1 बच्चा पुष्ट होता हुआ 7 सेर हो जाता है, जिसकी लम्बाई दो फुट होती है परन्तु जिस भोज्य सामग्रीको 1 बालक गर्भमें खाता है यदि उसीको एक गर्भमें सोये हुए 100 बच्चे खावें तो स्पष्ट है कि उनका पोषण बहुत न्यून होगा और उनका परिपाक भी बहुत देरमें होगा। हम यह भी देखते हैं कि प्रथम वृद्धिका अनुक्रम बहुत न्यून है परन्तु बादमें वृद्धि बहुत शीघ्र होती है। इससे उचित परिपाकके लिये प्रथम गर्भके जनने और विरूढ़ होनेके लिये चिरकाल लगेगा। अब हम गान्धारीके गर्भकी आलोचना करते हैं।

महाभारतके अनुसार दो वर्षके पश्चात् गान्धारीने शोक विलापसे अपने गर्भको पीटकर नियत प्रसव काल पूर्वही बाहर फेंक दिया। जब वह लोथड़ा सा बाहर आया तो 100 पुत्रोंकी इच्छामें मगन गान्धारी सहसा आश्चर्यसे दंग रह गई। उसी समय व्यासदेव वहाँ उपस्थित होकर बोले तूने यह क्या किया? गान्धारी बोली 'भगवन् कुन्तीके तो पुत्र पैदा भी हो गये और मुझ अभागिनीके दो वर्ष गर्भके बाद भी यह लोथड़ा पैदा हुआ।' इसपर भगवान व्यासने कहा कि मैंने असत्य नहीं कहा था : तुम्हारे गर्भसे 100 पुत्रही होंगे। इसके बाद व्यासदेवने 100 घी के कूँडे मँगवाये, उनको बड़े सुरक्षित स्थानोंपर रखा गया। गर्भसे निकले माँसमय गर्भको शीतल जलके छींटे दिये गये। छींटे देनेकी देर थी कि उस पेशीके आपसे आप सौ भाग हो गये। पर पाठक ध्यान रखें कि वह माँसमयी पेशी जिसको महाभारतकारने अष्ठीला या माँस की गाँठ (माँसग्रन्थि) लिखा है वह माँसकी गाँठ ही नहीं थी परन्तु उसीमें 100 छोटे–छोटे गर्भ इकट्ठे मिले हुए थे। अपरिपक्व दशामें वह उस रूपमें थे

और एक दूसरेसे सटे हुए थे। व्यासदेवने उनमेंसे एक एकको अलग अलग किया और बड़े शास्त्रीय उपचार तथा डाक्टरी अनुयोगके अनुसार सुरक्षित स्थानपर रखे घीके कूँडोमें बड़ी सावधानीसे रखा। व्यासजी यह भी कह गये कि इतने नियत काल बाद इन कूँडोंको खोलना। यह वास्तविक वर्णन है, जो महाभारतमें लिखा गया है। इसमें 101 गर्भोंका पृथक्–पृथक् होना वैशम्पायनने माना है। वह 101 टुकड़े, माँसपेशीको काटकर नहीं किये थे प्रत्युत 101 गर्भ जो परस्पर चिपके हुये थे उनको पानी छिड़क कर अलग किया गया था। वह सब स्वतः छोटे छोटे अंगूठेके पोरुएके बराबर गर्भ थे और संख्यामें वह 101 थेः अर्थात् उनकी लम्बाई लगभग 1 1/4 इंचकी थी। अर्थात् उनका परिपोष अभी उतनाही हुआ था जितना कि डेढ़ दो मासके गर्भका होता है। अब पाठक देख सकते हैं कि मानव गर्भमें 101 गर्भ दो सालमें भी उतना परिपोष पा सके जितना एक गर्भ दो मासमें। यदि गान्धारी इस प्रकार उस गर्भको गिरा नहीं देती और गान्धारीका पेट भी यथासम्भव पूर्ण दशमासिक परिपक्व 100 बालकोंको धार सकता तो उसके पुष्ट होनेके लिए कमसे कम 10 साल लगने चाहिये थे।

परन्तु व्यास जीने अब क्या बुद्धिमत्ताकी। उस सयम बड़ी सुरक्षासे, प्रत्येक गर्भ (गर्भित डिम्ब) को घीसे पूर्ण घड़ेमें रखा और उनको परिपाक किया। मानों अंडोंको सेनेकी उचित विधि ढूंढ निकाली जिससे वह डिम्ब नष्ट होने न पाये। जब ईश्वरकी सृष्टिमें सर्वथा नाजुक अण्डेको तिर्यक्योनि तक अपने पेटके नीचे रख करसे कर बच्चा बना सकती है मानो चूनेके आवरण में लिपटे वीर्य और रजोभागको बच्चा बना लेती हैं, तब क्या व्यास जैसे विद्वान ऋषि उस डिम्ब की उचित रक्षा का प्रबन्ध नहीं कर सकते थे। कर सकते थे और किया भी। उनके परिपोष हो चुकनेपर उनको पुत्र रूपसे बाहर निकाल लिया। संसार भरके इतिहासमें यदि सर्वथा अपरिपक्व मानव गर्भको भी बचा लेनेकी कोई अद्‌भुत चमत्कारिक आयोजनाका आविष्कार किया था तो निःसन्देह आजसे 5000 वर्ष पूर्व व्यास देवने किया था। जिस नवजीवनके विद्या रहस्य यूरोपके विद्वान अब जान पाये हैं और पूरी सफलता अब भी नहीं पा सके हैं उसका मर्म प्राचीन ऋषि 5000 वर्ष पहले जान चुके थे।

पतंगों के रंग–ढंग★

कर्मनारायण बाहूल, डी.फिल.डी.एस.सी.

प्राणि–वर्गमें पतंगोंका+ समुदाय जितना रोचक है, उतना प्रायः और कोई नहीं। गिनती और विचित्रतामें पतंगे सब जीव जंतुओंसे बढ़े हुए हैं। कुल प्राणि–वर्गमें सब प्रकारके जंतुओंकी जातियोंकी संख्या 5 लाखके लगभग है; और इनमेंसे 3–1/2 लाख केवल पतंगेही हैं। संख्यामें, पृथिवीपर, पतंगोंका पहला नंबर है; और सच तो यह है कि इस युगमें पृथिवीपर मनुष्य और पतंगोंका ही राज्य है। यदि मनुष्यमें उच्च कोटिकी बुद्धि न होती, तो पतंगे मनुष्यको भी पृथिवीसे बाहर निकाल भगाते। अब भी मनुष्यके जीवनके साथ पतंगोंका बहुत घनिष्ठ संबंध है।
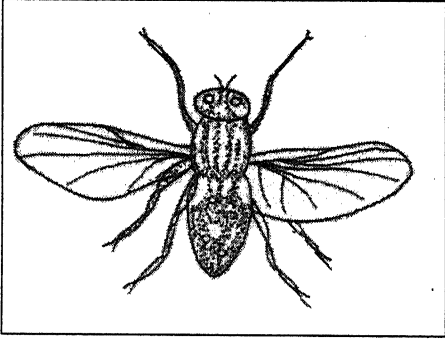
चित्र 1 : घरेलू मक्खी

चित्र 1 में एक घरेलू मक्खी दिखलाई गई है: जिससे हम पतंगोंकी पहचान कर सकते हैं। सब पतंगोंके छः टाँगें होती हैं, और प्रत्येक टाँगमें पांच छः जोड़ होते हैं। जोड़दार छः टाँगोंका होना पतंगोंका पहला लक्षण है। लक्षण यह है कि प्रत्येक पतंगके सिरपर आगे दो लंबे–लंबे बाल लगे रहते हैं; जिनसे वे वस्तुओंको छूकर उनकी जाँच करते हैं और सूंघ भी सकते हैं, इनको स्पर्श–श्रृंग कहते हैं। तीसरा लक्षण यह है कि अंडेसे लेकर बड़े पतंगे तक तीन अवस्थाएँ होती हैं; जिनमेंसे पतंगा गुज़रता है। मक्खीकी ये तीनों अवस्थाएँ चित्र 2 में दिखाई गई हैं।

पतंगोंसे हमें कितनेही काम पड़ते हैं। सब लोग शहद की मक्खियोंका बनाया हुआ शहद खाते हैं, और उनके बनाए हुए मोमका प्रयोग करते हैं। धनी लोग रेशमके कीड़ोंके बनाए हुए रेशमके कपड़े पहनते हैं, और व्यापारी लोग हर साल भारतवर्षसे लगभग 3 1/2 करोड़ रुपएकी पतंगोंकी बनाई हुई लाख बाहर भेजते हैं। यह तो लाभदायक पतंगोंका वर्णन हुआ। अब हानिकारक पतंगोकी कहानी सुनिए, तो मालूम होगा कि प्रति–क्षण मनुष्य और पतंगोंमें कैसा घोर युद्ध होता रहता है।

अपने घरके भंडार–घरकी ओर देखिए, इस सावधानतासे सब वस्तुएँ रक्खी जाती हैं कि पतंगे उन्हें खराब न करें, या खा न जायँ। चीनीको हम ढक कर रखते हैं कि चींटियां न ले जायँ,

---

★ *माधुरी*, 1921

\+ Insects

आटा दाल, गेहूँ आदि सब सामान बंद करके और बचाकर रखते हैं जिससे उनमें 'सुसरी' न लग जाय, और यह पतंगा उन्हें खा न जाय। चना, मोठ, मूँग, चावल, बादाम, पिस्ता वगैरह सब खानेकी चीज़ोंमें घुन लग जाता है, और वे खानेके लायक नहीं रहतीं। गाँवमें लोग अपना–अपना अनाज मिट्टीकी मठोरोंमें बंद करके क्यों रखते हैं? केवल पतंगों ही के डर से। स्पष्ट है कि पतंगे हमसे हमारा भोजन छीनने में सदैव लगे रहते हैं।

मनुष्य की बीमारियों की ओर ध्यान दें, तो पता चलता है कि पतंगे हर साल कितने ही मनुष्यों का सर्वनाश करते हैं, और भिन्न–भिन्न प्रकार के रोग फैलाते हैं। फ़सली बुखार (मलेरिया) से लाखों मनुष्य बीमार होते हैं। और, इस रोग को फैलाने वाला पतंगा मच्छड़ है। प्लेग हिंदुस्थान में कोई पचीस वर्ष हुए आया था, और एक करोड़ से अधिक मनुष्य इस बीमारी से मर चुके हैं। इस रोग को भी एक पतंगा, जिसे पिस्सू कहते हैं, एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य तक पहुंचाता है। घरेलू मक्खियां ही हैज़े के रोग को फैलाती हैं। वे ही बच्चों में अतीसार और आँख का रोग फैलाती हैं। मियादी बुखार (मोहर का तप) का कारण भी ये ही मक्खियाँ हैं। वेस्ट–इंडीज़ में जाकर 'हाथीचक' के रोगियों को देखिए; उनकी वृक्षों की–सी टांगे हैं, और वे सालों बुखार में पड़े रहते हैं। जब बुखार छोड़ता है, तो हाथी की–जैसी मोटी टाँग या बाहु बनाकर। यह रोग भी एक पतंगे के ही द्वारा फैलता है। आफ़्रिका में निद्रा–रोग[1] को फैलाने वाली एक मक्खी होती है; जो इस रोग से लाखों मनुष्यों का संहार करती है। इन बातों से हम अनुमान कर सकते हैं कि छोटे–छोटे पतंगे मनुष्य के जीवन में क्या–क्या हानि कर डालते हैं।

निद्रा रोग की मक्खी

मत्स्य – पतंग
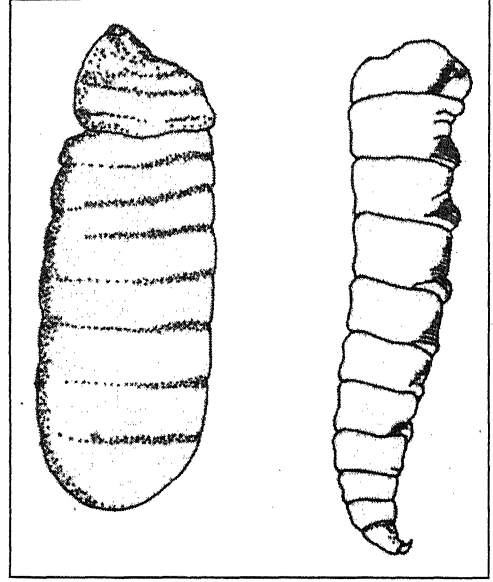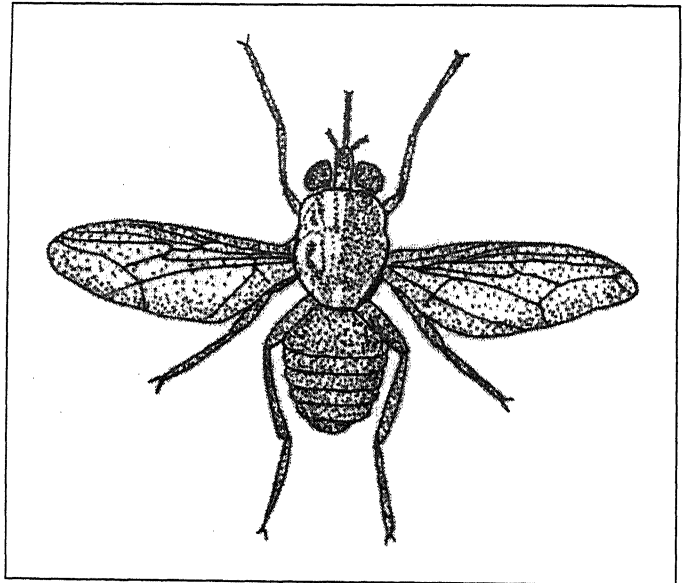
रोगों को छोड़कर आप खेती–बारी की ओर देखिए, और सोचिए कि किसान के खेतों पर ये पतंगे कैसे हाथ साफ़ करते हैं। जब कभी टीड़ी का दल आता है, तो सब वनस्पतियों का सत्यानाश कर जाता है, और लोग कहते हैं कि 'काल' पड़ेगा। कपास का कीड़ा इस देश में हर साल रुई की खेती का दसवाँ भाग नष्ट कर देता है। कभी–कभी तो रुपए में 12 आने भर की रुई खा जाता है। चावल का कीड़ा मीलों के खेतों को थोड़े ही दिनों में चट कर जाता है। इन्हीं पतंगों के मारे हमारे देश में वृक्ष जैसा रुई का बड़ा पौदा नहीं लग सकता, अमेरिका की उत्तम मकई नहीं उपजती, और न फल की खेती और व्यापार ही हो सकता है।

हमारे रोज़ाना इस्तेमाल की चीजों को देखिए, या नित्य के जीवन की कथा सुनिए, तो पता लगे कि पतंगे कहाँ तक मनुष्य पर चोट करते हैं, कहाँ तक हम उनको आहार और करने के लिये काम देते हैं। झींगुर घर में जगह–जगह मौजूद हैं, और मत्स्य–पतंग[2] के साथ मिलकर हमारी पुस्तकों और कागज़ों को चाट जाते हैं। चीटियाँ हमारी शक्कर उठा ले जाती हैं। भिड़ और बर्रे डंक मार कर उड़ जाती हैं। मच्छड़ों के मारे तो बरसात के पीछे, या फ़रवरी के और मार्च महीने में, रात को कल नहीं पड़ती। खटमल और पिस्सू हमारा लहू चूस–चूसकर हैरान करते हैं। 'घरैनी'[3] घर में जगह–जगह मिट्टी का घोंसला बनाती है। कभी–कभी हमारी किताबों पर घोंसला बनाती, या तालों को बंद कर देती हैं। दीमक का तो कहना ही क्या है! मेज कुर्सी, संदूक, दरवाज़े, खिड़कियाँ, पुस्तकें, कपड़ा, जूता सबमें लग जाती, और उन्हें नष्ट कर देती हैं। कपड़ों के घुन का हाल सुनिए। जाड़ा आने पर गरम ऊनी कपड़े संदूक में से देखिएगा कि इन पतंगों ने सब जगह छेद–ही–छेद कर दिए हैं, और कपड़े पहननेके लायक नहीं रहे। बरसातके दिनोंमें लैंप जलाकर पढ़नेको बैठिए, या रातको रोशनीके सामने खाना खाने बैठिए, पतंगोंके मारे जान आफतमें पड़ जाती है; पढ़ना तो बिलकुल ही मुश्किलहो जाता है: और, खाना भी अंधेरेमें ही खाना पड़ता है।

सच बात तो यह है कि पतंगोंने मनुष्यको खूबही छका रक्खा है। उसीका खाना खाते हैं और उसीको तंग करते हैं। मनुष्यका यह केवल ख्यालही ख्याल है कि पृथिवीपर उसका राज्य है। वास्तवमें पृथिवीपर, और मनुष्यपर भी, पतंगेही राज्य करते हैं।
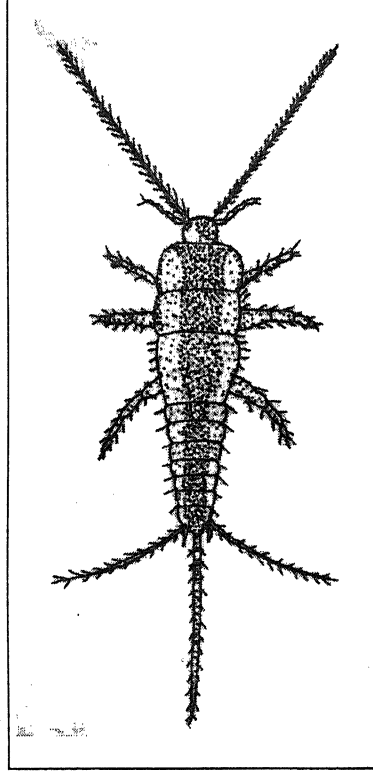
1. (Sleeping Sickness)
2. Silver fish
3. बिलनी

पृथ्वी पर का अमृत दूध*

संतराम, बी. ए.

जगदीश्वर ने मनुष्य के भोजन के लिये जितने पदार्थ संसार में उत्पन्न किए हैं, उन सबमें दूध अद्वितीय है। अपने दिब्य गुणों के कारण यह 'अमृत' कहलाता है। यह नर पर नारायण की विशेष कृपा का फल है। प्रकृति का दिया हुआ अद्‌भुत अहार है। गेहूँ का पौदा उगकर अपने दाने में भोजन की सामग्री उत्पन्न करता है; परंतु मनुष्य के बच्चों के लिये नहीं, बल्कि गेंहूँ के बच्चों के लिये। मछली, अंडे, मुर्गी, भेड़ और बकरी–बकरे उन जीवित जातियों के जीवन के एक भाग के रूप में उत्पन्न होते है, जिनके साथ उनका संबंध है। वह समय अब सदा के लिये बीत गया, जब इनकी उत्पत्ति केवल मनुष्य के उपभोग के लिये ही समझी जाती थी। यदि इस प्रश्न को बिलकुल छोड़ दें, तो भी हम समस्त प्रकृति में देखते हैं कि, एक अपवाद को छोड़कर, सजीव प्राणियों को आमिष और वनस्पति–जनित भोजन पहले–पहल खाए जाने के लिये अस्तित्व में नहीं लाया गया था, बल्कि इसका अस्तित्व इसके अपने लिये अपना जीवन व्यतीत करने के लिये हुआ था। केवल एक ही बार प्रकृति ने आहार बनाया है–वह एक ऐसी वस्तु को अस्तित्व में लाई है जो केवल आहार–सामग्री बनने के लिये ही विद्यमान है।

हमारे लिये यह आशा करना स्वाभाविक है कि प्रकृति का तैयार किया हुआ यह भोजन अन्य सब भोजनों से श्रेष्ठ होगा; इसमें जीवन के लिये आवश्यक प्रत्येक पदार्थ, ठीक प्रयोजनीय परिमाण में, विद्यमान होगा। हम पाते भी ठीक यही बात है। जितने प्रकार के दूध देने वाले जन्तु हैं, उतने ही प्रकार का दूध है। प्रत्येक जन्तु के बच्चे की आवश्यकताएँ भिन्न–भिन्न होती है। वह बच्चा चाहे ह्वेल मछली का हो, चाहे हिरन का हो, और चाहे मनुष्य का हो। ये विभिन्न परिस्थितियों और विभिन्न जल–वायु के देशों में विभिन्न जीवन व्यतीय करते है। उनकी वृद्धि का वेग भिन्न–भिन्न मात्रा में होता है, इसलिये उन जंतुओं को प्रकृति की ओर से मिले हुए दूध में भी उसी के अनुसार विभिन्नता होती है। फिर, वह दूध बच्चे के विकास की विभिन्न अवस्थाओं के प्रयोजनों के अनुसार प्रति सप्ताह और प्रति माह बदलता रहता है।

सब जीवधारियों की आवश्यकताएँ वास्तव में एक ही हैं। सभी प्रकार के दूधों में प्रोटीड, शक्कर, भेद और विभिन्न प्रकार के क्षार होते है। परंतु इन वस्तुओं के परिमाणों में अंतर होता है। अब यहाँ गऊ के दूध पर ही विचार किया जायगा। क्योंकि अधिकतर इसी का उपयोग (इस्तेमाल) किया जाता है यद्यपि प्रत्येक दूध पूर्ण भोजन है, परंतु यह स्मरण रहे कि वह केवल उसी जीव के लिये पूर्ण भोजन है, जिसके लिये बनाया गया है। गऊ का दूध बछड़े के लिये बना है, और उसी के

---

* *माधुरी*, 1922

लिये वह पूर्ण और निर्दोष भोजन है। वह मनुष्य के बालक, या युवा पुरुष, यहाँ तक कि जवान बैल के लिये भी पूर्ण भोजन नहीं है। युवा मनुष्य के लिये गऊ का दूध केवल एक थोड़ी सी बात के कारण ही आपत्ति–जनक है। वह बात यह है कि यह दूध पतला अधिक होता है। इसका अर्थ यह है कि इसमें जल की मात्रा उचित से अधिक होती है। फिर भी कोई दूसरा ऐसा आहार नहीं मिलता, जो युवा मनुष्यों के लिये भी गाय के दूध के समान पूर्ण और निर्दोष भोजन हो। लोग इस दूध के आधार पर जी सकते है, और भारी–से –भारी रोग के बाद, किसी दूसरी वस्तु की सहायता के बिना, केवल इसी 'अमृत' के सेवन से हृष्ट–पुष्ट हो जाते हैं। दूध और उससे बनने वाली दूसरी चीजें – खासकर मलाई–बच्चों के भोजन का प्रधान अंश होनी चाहिए। कोई भी बालक दूध के बिना जीता नहीं रह सकता। और उसकी आवश्यकताएँ बड़े हो जाने पर भी, उतनी जल्दी नहीं बदलतीं, जितनी जल्दी कुछ लोग माने बैठे हैं। दूसरे, तीसरे और चौथे वर्ष में बालक को काफी दूध न देकर अन्य पदार्थ खिलाना बड़ी भारी भूल है।

कुछ लोग उसी खाद्य को पौष्टिक और उपयोगी समझते हैं, जो ठोस हो। वे कहते हैं कि दूध क्या है? वह तो यों ही पानी–सा है, और मूत्र के मार्ग से बाहर निकल जाता है। शरीर में बल लाने और बढ़ाने के लिये कोई ठोस चीज़ खानी चाहिए। परंतु यह उनकी भारी भूल है केवल तरल होने के कारण ही दूध को तुच्छ समझना कहाँ की बुद्धिमत्ता है? देखिए, हम मिसरी की डली पानी में डालते हैं। वह घुलकर अदृश्य हो जाती है परन्तु हम जानते हैं कि मिसरी का नाश या अभाव नहीं हुआ; वह जल में विद्यमान है अब देखिए, दूध भी वास्तव में अनेक चीजों के मूल से बना है उनमें कई पदार्थ मिसरी की डली के सदृश ही ठोस हैं। वे मिसरी की ही भांति दूध में घुले हुए हैं। जब हम दूध पीते हैं, तब वह आमाशय में जाते ही चटपट जमकर ठोस बन जाता हैं। पेट में दूध को चक्का बनाने का काम एक खमीर करता है। जब हम दही जमाते हैं, तब भी वही खमीर उसे ठोस बनाता है। दही इस बात का एक पुष्ट प्रमाण है कि दूध 'ठोस आहार' है।

जब दूध आमाशय में, या बाहर, जमता है, तब उसका दही बन जाता है। दही में दूध की प्रोटीड (अन्न–सार), का बहुत बड़ा भाग और सारा–का सारा मद रहता है। ठोस दही को अलग कर लेने से जो शेष निर्मल जल (जिसे साधारण लोग दूध का पानी और अंगरेज़ी में 'व्हे' कहते है) रह जाता है। उसमें शक्कर, क्षार, और दूध के प्रोटीड का थोड़ा सा भाग होता हैं। इससे यह परिणाम निकलता है कि केवल फाड़े हुए दूध के पानी पर भी जीना संभव है। इससे अनेक ऐसे मनुष्यों के जीवन बचते है, जो किसी भी अन्य पदार्थ का आहार नहीं कर सकते। परंतु कोई भी मनुष्य केवल दही पर नहीं जी सकता। अब विचारणीय यह है कि जीवन के लिये आवश्यक वह कौन–सी वस्तु है, जिसका दही में अभाव है; किंतु वह, दही के निर्मल पानी में–जो दही के मुकाबले में बहुत घटिया समझा जाता है–पाई जाती है। यह विशेष वस्तु दूध का प्रोटीड है, जिसके बिना दूध का पानी कभी जीवन को बनाए न रख सकता। जब हम दूध को औटाते हैं, तब वह धीरे–धीरे कड़ा होने लगता है, और उसके ऊपर एक झिल्ली सी आ जाती हैं। इस झिल्ली को अनेक युवा मनुष्य और बहुत से बच्चे फेंक देते है। परन्तु यह दूध में एक अतीव बहुमूल्य पदार्थ है। दूध की शक्कर एक खास तरह की शक्कर है, जो अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकती। वह ईख की शक्कर से कम मीठी होती है। उसमें एक बड़ा गुण यह है कि उसे कीटाणु, दूसरी शक्करों की तरह, सुगमता से तोड़ नहीं सकते। दूध के क्षारों (Salts) में, जिन पर हड्डियों और दांतों का दार–मदार है, सदैव ये मूल–पदार्थ होते है – पोटाशियम, सोडियम, कॅलशियम, मॅग्नीशियम, लौह, फासफोरस और क्लोरीन। पोटाशियम का परिमाण विशेष–रूप से बहुत अधिक होता है; क्योंकि माँस के बढ़ने के लिये इसका प्रयोजन है।

फिर जितना चूना या कॅलशियम दूध में होता है, उतना, अंडे की ज़रदी को छोड़कर, और किसी भोजन में नहीं होता।

दूध में सब प्रकार के असाधारण पदार्थ होने की बड़ी संभावना रहती है; क्योंकि दूध ही के द्वारा माता का शरीर इन वस्तुओं को बाहर निकालता है। क्रियात्मक–रूप से यह बात बड़े महत्व की है, क्योंकि यह सब प्रकार के दूधों पर चरितार्थ होती है। माता चाहे कोई भी हानिकारक पदार्थ खाती है, वह दूध के द्वारा बच्चे के पेट में जाकर उसे भारी नुकसान पहुँचाती है। सब प्रकार की औषधियाँ भी इसी तरह दूध के रास्ते बच्चे के पेट में चली जाती हैं। इसलिये बालक को औषध देने की सर्वोत्तम विधि यही है कि उसकी माता ही को उस औषध का सेवन कराया जाय।

ये सभी बातें गऊ पर घटित होती हैं। यदि गऊ को खराब चीज़ें खिलाई जायँगी, तो गऊ उन्हें दूध के रास्ते बाहर निकालने की चेष्टा करेगी। हज़ारों बालक प्रति वर्ष गऊ का बाजारू दूध पीकर केवल इसी कारण बीमार होते और मर जाते हैं कि उन गउओं को घोड़ों की लीद आदि हानिकारक चीज़ें खिलाई जाती है।

चिंता और अशांति का भी दूध की रचना पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। माता की क्रोध या चिंता की हालत में बच्चे को दूध पिलाने से बहुत बुरा परिणाम होता है। यही बात गउओं के बारे में भी है। यदि गऊ के दूध को बढ़ाना और स्वादिष्ट बनाना हो, तो उसे हर तरह के डर, अंशाति, दौड़–धूप और मार–पीट से बचाना चाहिए। गउओं को आपस में भिड़ने से, कुत्तों के उनके पीछे दौड़ने से, गवालों के उन पर मार–पीट करने या डराने से, उनके दूध में विकार उत्पन्न हो जाता है। दूध का उत्पन्न करने का काम आंशिक रूप से ज्ञान–तंतु–जाल (नर्वस सिस्टम) के अधीन है। इसलिये यदि मज्जा–तंतु–जाल में गड़बड़ हो जायगी, तो जो दूध उत्पन्न होगा, उसका असल में ज़हरीला हो जाना बहुत संभव है। यही कारण है कि संगीत से गऊ का दूध मीठा और अधिक हो जाता है। शायद भगवान् कृष्णचंद्र इसीलिये बांसुरी बजाया करते थे। हमारे देश में आजकल लोग गो–पालन की विद्या को प्रायः भूल गए हैं। इस समय देश में अच्छी जाति की गउओं का मिलना ही कठिन हो गया है। दुष्ट बालक गउओं को चराते समय उनकी अनेक बुरी–बुरी आदतें डाल देतें है। उन्हे गंदा पानी और जूठा चारा दिया जाता है। उन्हें निर्दयता से पीटते और गालियाँ देते हैं। इस समय सौ में अस्सी गउएँ इसी कारण दुष्ट और मरकही मिलती है।। इसका प्रधान कारण यह है कि हम इस बात को भूल गए हैं कि इन पशुओं पर भी मनुष्य ही के सदृश प्रेम और क्रोध का अच्छा और बुरा प्रभाव पड़ता है।

गऊ के दूध के संबंध में एक बड़ी कठिनाई यह है कि जब वह पेट में जाकर जमता है, तो उसका थक्का इतना घना और मोटा होता है कि बच्चा तो बच्चा, बहुत–से युवा भी उसे सुगमता से पचा नहीं सकते। बछड़े की पाचन–शक्ति हमारी अपेक्षा बहुत अधिक होती है। इसका उपाय यह है कि दूध में थोड़ा सा सोड़ा–वाटर या चूने का पानी मिला दिया जाय। इससे आमाशय में जो चक्का बनता है, वह हलका, ढीला–ढाला और रुई का फाहा–सा हो जाता है।

दूध में जो मेद (Fat) होता है, वह सब मलाई में आ जाता है(परंतु यह समझ लेना कि यह सारा का सारा मेद ही है, भारी भ्रम है। प्रोटीड (अन्न–सार) का एक बड़ा अंश भी मलाई में पड़ा हुआ होता है। इस प्रकार, पूर्ण आहार न होने पर भी मलाई एक बहुत गाढ़ा और उत्कृष्ट भोजन है। कोई भी दूसरी तरह का मेद––चाहे वह भेड़ की चरबी हो, चाहे वनस्पतियों की उपज हो, चाहे कॉड मछली के लीवर (पित्ताशय) का तेल हो–मलाई में पाए जानेवाले दूध के मेद का मुकाबला नहीं कर सकता। यदि सब बच्चों को काफी मलाई, अथवा उत्तम दूध ही मिले, तो बच्चे 'सूखा' और क्षयी आदि अनेक रोगों से इतनी अधिक संख्या में, न मरें। इस अभागे देश में एक समय ऐसा था, जब

दूध और घी की नदियाँ बहा करती थीं। तभी यहाँ के मनुष्य मार्कंडेय–से दीर्घजीवी, भीम–सरीखे बलवान और व्यास–वाल्मीकि–सदृश प्रतिभाशाली होते थे! आज तो जिस बच्चे को आध सेर भी खालिस दूध नित्य मिल जाय, उसे बड़ा भाग्यशाली समझना चाहिए।

मलाई से उतर कर दूसरे दर्जे पर मक्खन है। यह, मलाई की अपेक्षा सस्ता होने पर भी, बहुत महँगा है। इसमें, सौ में बयासी भाग, या मलाई से दुगना, भेद होता है। जितनी आसानी से मक्खन पच जाता है, उतनी आसानी से और कोई दूसरा मेद नहीं पचता। इसलिये इसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। गरम करने से इसमें कुछ परिवर्तन आ जाता है, जिससे यह उतना उपयोगी भी नहीं रहता। मक्खन में केवल सहज ही पच जानेवाले मेद की अधिकता ही नहीं होती; बल्कि एक गुण यह भी है कि अगर इसे बहुत अधिक मात्रा में खाया जाय, तो इसका दो सौ अंशों में एक भी अंश ऐसा न होगा, जो रुधिर तक न पहुँचे।

दूध की एक और उपज है पनीर। इसका उल्लेख न करने से विषय अधूरा ही रह जायगा। यह भी मक्खन के सदृश कीटाणुओं की सहायता से, दूध से बनता है। यह बड़ा ही पौष्टिक होता है। जितना पोषण पनीर से होता है, उतना किसी माँस से भी नहीं होता। इससे शरीर का माँस और रक्त बढ़ता है; मस्तिष्क पुष्ट होता है।

दूध और उनकी उपजों पर अनेक बड़े–बड़े ग्रंथ लिखे जा चुके हैं। उनका लिखा जाना था भी स्वाभाविक। कारण, इससे बढ़कर पूर्ण और निर्दोष भोजन और कोई है ही नहीं। अनुभव से मालूम हुआ है कि दही की छाछ (मट्ठा) पीने–वाले लोगों की आयु दूसरों की अपेक्षा बड़ी होती है।

अब हमें इसका विचार करना है कि हमारे शरीर के मज्जा–तंतु जाल (नर्वस सिस्टम) को दूध के सेवन से क्या लाभ पहुँचता है। मस्तिष्क और मज्जा–तंतुओं को पुष्ट करने के गुण में दूध एक अद्वितीय पदार्थ है। इस दृष्टि से कोई भी दूसरा आहार इसे नहीं पाता। जो चीज़ इस गुण में सबसे अधिक दूध के निकट पहँचती है, वह है अंडे। परंतु इन दोनों का मूल्य आपको तब मालूम होगा, जब आप देखेंगे कि अंडे में जो चीज़ होती है, उससे, ताप और आक्सीजन की क्रिया से, चूजों–ऐसे तुच्छ जीवों का मस्तिष्क बनता है; परंतु दूध वह भोजन है, जो उन सब पशुओं के मस्तिष्क के विकास के लिये तैयार किया गया है, जिनमें उच्चतम कोटि की बुद्धि होती है। सारे शरीर का स्वास्थ्य मस्तिष्क के ऊपर निर्भर करता है। शरीर में इसका विकास सबसे पहले होता है। फिर यह शरीर की वृद्धि में सहायक होता है। इसलिये दूध विशेष–रूप से मस्तिष्क रचना के हितार्थ बनाया गया है। अतएव मस्तिष्क का काम करने वालों, उन्निद्र–रोग से पीड़ितों और अन्य मस्तिष्क रोगियों के लिये दूध और मलाई के समान उपयोगी और कोई भोजन नहीं है। कहें तो कह सकते हैं कि ऐसी अवस्थाओं में दूध ही एक मात्र दवा है।

कुछ लोग समझते है कि दूध बालकों का भोजन है; युवा मनुष्यों को मांस खाना चाहिए। परन्तु जो लोग अपने मस्तिष्क से सर्वोत्तम काम लेना चाहते हैं, अथवा जो अपने को लंबी–लंबी दौड़ों के लिये तैयार करते हैं, वे दूध के गुणों को समझने लगे हैं। सफ़ेद दूध के बराबर और दूसरी कोई भी वस्तु उत्तम लाल रुधिर नहीं उत्पन करती। शरीर की रंगत को लाल करने वाली चीज़ लोहा है और, बच्चे के उपयोग के लिये जैसे पूर्ण निर्दोष रूप में दूध में लोहा होता है, वैसे रूप में वह किसी भी दूसरे भोजन में नहीं मिलता।

जापान में अब तक दूध का सेवन बहुत कम किया जाता था। कारण, वहाँ गऊ, भैंस और भेड़, बकरी आदि दूध देनेवाले पशुओं की बहुत कमी थी। परंतु आधुनिक विज्ञान के अध्ययन से जापानियों को मालूम हो गया है कि दूध के मुकाबले में बाकी सब भोजन घटिया है। अब तक

जापान में दूध बहुत कम मिलता था और इसी कारण वहाँ के अधिवासी भोजन के रूप में इसका उपयोग भी बहुत कम करते थे।

अब जापानी लोगों का शरीर केवल छोटा और ठिंगना ही नहीं होता, बल्कि उनके बहुत छोटे बच्चों की मृत्यु का परिमाण भी बहुत अधिक है। परंतु जो बच्चे माता के दूध पर पलते हैं, उनके संबंध में यह बात नहीं है। जापानी लोग इन खराबियों को दूर और दूध का अधिक सेवन करके, जाति की समष्टि के रूप में, अपनी शक्ति बढ़ाने का यत्न कर रहे हैं। देखिए, दूसरे स्वतंत्र देश अपने बच्चों के कल्याण के उपाय कैसी तत्परता से सोचा करते हैं। भारत के जिन करोड़ों बच्चों को काफी दूध और मक्खन नहीं मिलता, वे बड़े होकर दीर्घजीवी और दृढ़–काय नागरिक कैसे बन सकते है? गोचर भूमियों के जुत जाने से हमारे देश में गौ–वंश का नाश हो गया, और उसके साथ ही हमारी तंदुरुस्ती भी यहाँ से तशरीफ ले गई।

अब एक बात और ध्यान देने योग्य है। जीवधारियों की श्रेणी में जो जीव जितनी ऊँची सीढ़ी पर खड़ा है, जन्म–काल में, उसके बच्चे का जीवन उतना ही माता पर अधिक अवलंबित रहता है। मुर्गी का बच्चा अंडे से निकलते ही फुदकने और दाना चुगने लगता है, फिर गऊ, भैंस और बकरी के बच्चे कुछ दिन दूध पर रहकर थोड़े ही महीनों के बाद घास–पात खाना शुरू कर देते हैं, और एक–दो साल में ही उन्हें माता की उतनी आवश्यकता नहीं रह जाती। परंतु मनुष्य का बच्चा जन्म के समय सबसे अधिक निरुपाय होता है। उसके दूध पीने का समय सबसे अधिक लंबा होता है। वह छः–सात वर्ष की आयु तक भी माता–पिता से जुदा होकर जी नहीं सकता। दूध एक और भी बड़ी बात–मातृत्व–का बाह्य और दृश्य चिन्ह है। इससे यह शिक्षा मिलती है कि जीवन की श्रेणी में जीवधारियों का दर्जा ज्यों–ज्यों ऊँचा होता जाता है, त्यों–त्यों प्रकृति के नियमों से मातृत्व का महत्व और प्रयोजन बढ़ता जाता है और इसी बात पर समस्त जीवित जातियों का भाग्य निर्भर है।

एक अतीव आश्चर्य–जनक सत्य यह है कि दूध जिस तरह मनुष्य के लिये पूर्ण भोजन है, उसी तरह कीटाणुओं का भी यह मन–माना खज़ाना है। दूसरे खाद्य पदार्थों की अवस्था में तो जो एक भोजन में एक प्रकार के कीटाणु बढ़ और फैल सकते है तो दूसरे में दूसरे प्रकार के परंतु दूध एक ऐसी वस्तु है जिसमें सभी प्रकार के जीवाणु रोग–नाशक और क्या रोगोत्पादक–घर बना कर मज़े से संतान–वृद्धि कर सकते हैं। यह दूध में एक भयानक दोष है।

सब प्रकार के दूधों में जीवाणु होते है–एक आध नहीं, झुंड–के–झुंड। यदि दूध शुद्ध है, और सावधानी से तैयार किया गया है, तो उसमें के जीवाणु निर्दोष और हानि न करनेवाले होंगे। यदि दूध उबाला डाला गया है, तो जीवाणु मरे हुए होंगे; परंतु हर सूरत में वे उसमें होंगे अवश्य। हाल में एक बहुत ही आश्चर्य की बात यह मालूम हुई है कि हमारे शरीर में और एक विशेष जाति के जीवाणुओं में एक ही प्रकार की कार्यकारिणी व्यवस्था विद्यमान है। दूध इन जीवाणुओं का स्वाभाविक घर है। इस जाति का जीवाणु दूध की शक्कर पर जीता और उसे लेक्टिक एसिड (दुग्धाम्ल) में बदल देता हैं। दही की खटाई का कारण यही जीवाणु है, यह परिवर्तन कुछ–कुछ आमाशय में उत्पन्न होता है। स्वभाव से ही यह विशेष जीवाणु हमारे शरीर के भीतर रहता है, और उसके लिये बड़ा हितकारी है। जब हम नीरोग होते है, तब यह अनेक प्रकार के रोगोत्पादक जीवाणुओं को हमारे शरीरों में घर बनाने से रोकता है।

उत्तम दूध लेने के लिये यह आवश्यक है कि गउओं को साफ–सुथरा रक्खा जाय, और उन्हें कोई हानिकारक या मैली चीज़ न खिलाई जाय। उन्हे ताज़ी हवा और सूर्य के प्रकाश में रक्खा जाय; जिसमें वे यक्ष्मा के भीषण रोग से बची रहें। दूध को दुहते समय हाथों को साफ करके साफ बरतन में दूध दुहना चाहिए। मैले हाथों से, मैले पात्र में, दूध दुहने से वह स्वच्छ, पवित्र और

निर्दोष नहीं मिल सकता। दुहते समय दुहने वालों को अपने केश और कपड़ों को किसी ऐसे वस्त्रों से ढक लेना चाहिए, जो गरम जल में पहले उबाला हुआ हो। गऊ का भी बड़ी सावधानी से खयाल रखना चाहिए। गरमी के दिनों में दूध को चटपट उबालकर फिर ठंडा करके रख छोड़ना चाहिए। दूध को कभी खुला न रखना चाहिए। वैसे तो कोई भी भोजन खुला न रहने देना चाहिए, किंतु दूध के विषय में तो इस बात का और भी अधिक ध्यान रखना आवश्यक है।

इस समय लोगों की अज्ञानता और असावधानता के कारण दूध नाना प्रकार के यक्ष्मा को फैलाता है। गरमियों में प्रतिवर्ष सहस्रों बालक इसके कारण मृत्यु का ग्रास बनते है। यह सान्निपातिक ज्वर (टाइफ़ाइड), अतिसार, डिफ़थीरिया और स्कार्लट–फ़ीवर आदि रोगों को फैलाता है। गऊ से, दूध के द्वारा, यक्ष्मा मनुष्यों में पहुँचता है, और प्रति–वर्ष भारी नर–संहार करता है। दूसरे, अनेक प्रकार के हानिकारक जीवाणु दूध में घर बना लेते है, और वे, ग्रीष्म में मक्खियों की तरह, अकाल ही में सहस्रों बालकों की जीवन–ज्योति बुझा देते हैं। यह सब बंद हो सकता है, और बंद होना चाहिए। इस का एकमात्रा उपाय यही है कि दूध की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाय, और लोगों में शुद्ध दूध की प्राप्ति के साधनों का ज्ञान फैलाया जाय। आज–कल दूध बेचने का काम अनाड़ी और गंदे हलवाइयों के हाथों में है। ये लोग स्वास्थ्य और स्वच्छता के नियमों से सर्वथा अनभिज्ञ होते है। इनकी दूकान पर जाकर देखिए, आपको दूध की मटकियों में भरी हुई मक्खियाँ तैरती हुई मिलेंगी। ये मक्खियाँ भयानक रोगों के फैलने का एक बड़ा भारी जरिया हैं। आस्ट्रेलिया और अमेरिका आदि उन्नत देशों में दूध बोतलों में बंद बिकता है। उन बोतलों पर मुहर लगी रहती है, ताकि हलवाई उसमें कुछ मिलावट न कर सकें–उसे अपवित्र न कर सकें, इससे वहाँ के बच्चों को और पवित्र दूध मिलता है; वे शुद्ध प्रतिभाशाली और दृढ़काय होकर दीर्घ आयु भोगते हैं। भगवान कृपा करें कि इस दुखिया भारत भूमि में भी फिर उसके अतीत काल की–सी शुद्ध दूध और मक्खन की अधिकता हो; जिससे हम और हमारे वंशज पूर्ण आयु को भोगते हुए सुख से जीवन व्यतीत कर सकें।

देशी ओषधियों की परीक्षा और निर्माण*

महावीर प्रसाद द्विवेदी

कुछ रोग ऐसे हैं जो देश–विशेषों ही में अधिक होते है। गर्मी और सर्दी, नमी औ(र रूक्षता तथा आबोहवा और स्थिति का बहुत कुछ प्रभाव मनुष्य–शरीर पर पड़ता है। जो देश बहुत सर्द हैं वहाँ कुछ रोग ऐसे होते है जो गरम देशों में नहीं पाये जाते। इसी तरह गरम देशों के कुछ रोग सर्द देशों में नहीं होते। इंग्लैंड में सर्दी अधिक रहती है। वहाँ वाले सर्द देश के निवासी हैं पर उन लोगों ने अपना अधिकार ऐसे भी देशों पर जमा लिया है जो बहुत गरम है। ऐसे गरम देशों को भी उन्हें जाना और वहाँ रहना पड़ता है। वहाँ के कुछ विशेष प्रकार के रोगों से पीड़ित होने पर विलायती डाक्टरों से कुछ भी करते–धरते नहीं बनता। क्योंकि उन रोगों के कारण, निदान, लक्षण और चिकित्सा से वे अनभिज्ञ होते है। इस त्रुटि को दूर करने के लिए उन्होंने कहीं कहीं विशेष प्रकार के डाक्टरी कालेज और स्कूल खोले है। वहाँ गरम देशों के रोगों के कारण आदि की जाँच भी होती है और उनकी चिकित्सा–विधि भी सिखाई जाती है।

इस तरह का एक स्कूल कलकत्ते में भी है। उसी के साथ एक परीक्षागार भी है। स्कूल में उष्ण देश जात–श्वेत कुष्ट, काला–अज़र, बेरीबेरी आदि–रोगों का कारण, निदान और चिकित्सा भी सिखाई जाती है और परीक्षागार में नई नई औषधियों के रोगनाशक गुणों की परीक्षा भी होती है। वहाँ रोगियों को रखने और उनका इलाज करने के लिए एक अस्पताल भी है। इस स्कूल, परीक्षागार, औषधि–निर्माणाशाला और अस्पताल की संस्थापना हुए अभी कुछ ही समय हुआ। स्कूल में अन्य विषयों की शिक्षा के सिवा सफाई और तन्दुरुस्ती से सम्बन्ध रखनेवाली बातों की भी शिक्षा दी जाती है, और यह शिक्षा, सुनते हैं उस शिक्षा से किसी तरह कम नहीं जिसकी प्राप्ति के लिए लोग स्वयं विलायत जाते हैं अथवा गवर्नमेंट के द्वारा या उसकी आज्ञा से भेजे जाते है।

इस स्कूल का नाम है स्कूल आव् ट्रापिकल डिजीज़ेज़ (School of Tropical Diseases)। इसमें स्वदेशी औषधियों की भी परीक्षा होती है और वे तैयार भी की जाती हैं। इससे स्पष्ट है कि स्कूल का कम से कम यह विभाग, इस देश की हित–दृष्टि से, बड़े महत्व का है। परन्तु इसकी स्थापना या स्थापना में सहायता करने का श्रेय न तो हमारे वैद्यराजों को है, न हकीम साहबों को, और न यहाँ के धनवान् लक्ष्मीपतियों ही को। इसके संस्थापक अंगरेज़ ही हैं। वे लोग और अंगरेज़ी गवर्नमेंट ही इसका अधिकांश ख़र्च चलाती है। इसे सर लिओनार्ड राजर्स ने खोला है। इसकी इमारत में 141/2 लाख रुपया खर्च हुआ है। इसके परीक्षागार में तीन विद्वान खोज का काम करते हैं। उनकी और उनके सहायक कर्मचारियों की तनख्वाह और दूसरे खर्च वे अंगरेज देते हैं जो जूट, चाय और खानों का व्यवसाय करते हैं। कुछ सहायता गवर्नमेंट आव् इंडिया भी देती है। स्कूल

* *सरस्वती*, जुलाई 1923

में जितने प्रोफ़ेसर (अध्यापक) और अन्य कर्मचारी हैं उनके खर्च का अधिकांश बंगाल की गवर्नमेंट अपने ख़ज़ाने से देती है। इसके सिवा इस स्कूल में कुछ विद्वान् छात्र ऐसे भी रहते हैं, जो भिन्न भिन्न विषयों की खोज और जाँच करते है। उन्हें छात्रवृत्तियाँ मिलती हैं। महाराजा दरभंगा और मित्र नाम के एक महाशय की धर्मपत्नी के द्वारा भी दो छात्रवृत्तियाँ दी जाती है। डेविड यूल नाम के एक धनी अंगरेज़ भी इसकी सहायता करते है।

अभी, हाल में, इस स्कूल की वार्षिक रिपोर्ट निकली है। उसका सम्बन्ध 1922 ईसवी से है। उसके पाठ से सूचित होता है कि यह स्कूल अपना काम सफलतापूर्वक कर रहा है। शिक्षा के साथ ही साथ खोज का काम भी होता है। उष्ण देशों में होनेवाले रोगों के सम्बन्ध की शिक्षा पानेवाले 28 छात्रों में, रिपोर्ट के साल, 19 छात्र पास हुए। सफाई और तन्दुरुस्ती से सम्बन्ध रखने वाले विषयों की शिक्षा प्राप्त करने की ओर लोगों का कम ध्यान है। इसी से इस स्कूल में इस श्रेणी के छात्र बहुत कम भरती हुए है। पर इन विषयों की जो शिक्षा यहाँ दी जाती है वह बहुत उच्च है और विलायत में दी जानेवाली शिक्षा से किसी तरह कम नहीं। जो लोग इस शिक्षा में "पास" होते है उनको डी. पी. एच. (D.P.H.) की पदवी मिलती है।

अब इसमें एक अजायबघर खोलने की भी तजबीज़ हो रही है। उसमें वे सभी चीज़ें रक्खी जायँगी जिनका सम्बन्ध उष्ण देश में होनेवाले रोगों से है।

इस स्कूल की प्रस्तुत रिपोर्ट में इसके एक बड़े ही महत्वशाली विभाग की कुछ बातों का उल्लेख है। उस विभाग का नाम है, फरमाकोलाजी (Pharmacology) अर्थात् औषधि–निर्माण–विद्या। औार विभागों की तरह इस विभाग का भी एक परीक्षागार (Laboratory) जुदा है। पर और विभागों के परीक्षागारों से यह परीक्षागार अधिक महत्व रखता है। इसमें सभी तरह के आवश्यक यन्त्र और अन्यान्य सामग्रियाँ हैं। इसके प्रधानाधिकारी है मेजर चोपड़ा। आप पंजाबी मालूम होते है। डाक्टरी की उच्च शिक्षा पाने और उच्च पदस्थ होने पर भी आपमें स्वदेश–प्रेम की मात्रा बहुत काफी मात्रा में विद्यमान जान पड़ती है। डाक्टरी विद्या में निपुण होने पर भी आप स्वदेशी औषधियों के निर्माण और प्रचार के बड़े पक्षपाती हैं। इस देश की औषधियों के गुण–दोषों की जाँच करने के लिए गवर्नमेंट ने जो कमेटी बनाई थी और जिसका उल्लेख सरस्वती में हो चुका है उसके एक मेम्बर आप भी थे। उस कमेटी के मेम्बर की हैसियत से आपने बहुत काम किया है और अनेक स्वदेशी औषधियों के रोग–नाशक गुणों को आपने कबूल किया है। इस कमिटी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि वैद्यक और यूनानी चिकित्सा अवैज्ञानिक नहीं। अतः गवर्नमेंट को चाहिए कि वह इन चिकित्साओं को भी दाद दे।

स्कूल में जो काम मेजर चोपड़ा के सिपुर्द है उसे तो आप करते ही हैं। साथ ही आप इस देश की जड़ी–बूटियों की परीक्षा भी, वैज्ञानिक ढंग से, करते है। जाँच करने पर जो गुण जिस औषधि में आप पाते है उसमें रोग–विशेष को नाश करने की कितनी शक्ति है, इसकी जाँच भी आप स्कूल के अस्पताल के रोगियों पर करते है। पुनर्नवा नाम की ओषधि की जाँच आपने बड़े मनोनिवेश से की है और उसमें क्या क्या गुण हैं, अर्थात् किन किन रोगों में उसे देने से लाभ होता है, इसका भी प्रामाणिक विवरण प्रकाशित किया है। उनकी इच्छा है कि एक स्कूल अलग खोला जाय। उसमें छात्रों को ओषधि निर्म्माण विद्या की भी शिक्षा दी जाय और प्रत्येक स्वदेशी औषधि की जाँच करके उसके रोग–नाशक गुणों का वर्णन लिखा जाय। फिर ये औषधियाँ काफी मात्रा में तैयार करके सरकारी शफाखानों[1] को दी जायँ। वहाँ उनका उपयोग उन ओषधियों के बदले में किया जाय जो दूसरे देशों से यहां आती है। देखिए, कैसा स्तुत्य विचार है।

आज–कल यह हाल है कि कुचिला, सींगिया, मदार, अण्डी, जामुन की मींगी आदि कौड़ी मोल बिकती और विदेश को जाती हैं। वहां उनसे नाना प्रकार की ओषधियों, तैल इत्यादि तैयार होकर जब वे चीज़ें, इस देश को लौट आती हैं तब सैकड़ों गुने अधिक मूल्य पर बिकती है। यदि ये सब ओषधियां बटी, चूर्ण, स्वरस, कल्क, तेल आदि के रूप में यहीं तैयार होने लगें और वैज्ञानिक ढंग से इनके गुणों का पता लगा कर उनके वर्णन प्रकाशित हो जायं तो डाक्टरों को विश्वास हो जाय कि ये चीज़ें काम की है। अतएव इनका प्रचार बढ़े और देश को करोड़ों रुपये का लाभ हो। परन्तु यह काम इतना बड़ा है कि वर्तमान स्थिति में अकेले डाक्टर चोपड़ा नहीं कर सकते। उन्हें कितने ही सहायक डाक्टर और कर्मचारी चाहिए। इसके लिए धन भी बहुत सा चाहिए। स्वदेशी चिकित्सा के पक्षपातियों में जो लोग धनी हैं और देश–भक्त भी हैं उन्हें चाहिए कि इस देशोपयोगी काम में डाक्टर साहब की सहायता करें।

एशियाटिक सोसायटी आफ बेंगाल की एक शाखा है उसमें रोग–चिकित्सा–विषयक बातों पर विचार किया जाता है। कुछ समय हुआ, सोसायटी की इस शाखा के सभ्यों की एक बैठक हुई थी। उसमें स्वदेशी–ओषधि–निर्म्माण पर एक लेख पढ़ा गया था। इस लेख के लेखक हैं वही पूर्वनिर्दिष्ट मेजर चोपड़ा, एल. एम. एस. और डाक्टर बी. एन. घोष। पढ़े जाने के बाद यह लेख अंगरेज़ी की एक सामयिक पुस्तक (Indian Medical Record) में प्रकाशित हुआ है। इस लेख में लेखक–द्वय ने अपने पूर्वोक्त विचारों को विस्तार–पूर्वक प्रकट किया है। लेख के मुख्य मुख्य अंशों का सार नीचे दिया जाता है–

देशी ओषधियों में बहुत सी ओषधियाँ ऐसी हैं जिनका प्रयोग वैद्य और हकीम सैकड़ों वर्षों से कर रहे हैं और वे अपना गुण भी खूब दिखाती हैं। पर कुछ ओषधियाँ ऐसी भी हैं, जिनके गुणों का वर्णन पुस्तकों में ही पाया जाता है। उनके उन गुणों की परीक्षा उचित रीति से, आज तक, किसी ने नहीं की। इस दशा में समझदार चिकित्सक उनके उन निर्दिष्ट गुणों पर विश्वास नहीं करते। एक उदाहरण लीजिए। चिकित्सा–ग्रन्थों में लिखा है कि अशोक से प्रदररोग, पुनर्नवा से जलोदर और अभ्रक–भस्म से बहुमूत्र रोग जाता रहता है। परन्तु ऐसे कथन को डाक्टर नहीं मान सकते, क्योंकि उनके शास्त्र में जलोदर आदि मुख्य रोग नहीं माने गये; वे तो अन्य रोगों के चिन्ह या लक्षण–मात्र माने गये हैं। इस दशा में जब तक यह बात वैज्ञानिक रीति से नहीं प्रमाणित की जाती कि हृदय, गुर्दे, यकृत आदि पर इन ओषधियों का क्या असर पड़ता है तब तक विज्ञानवेत्ता डाक्टर इनके गुणों के विषय में किये गये दावे को भ्रान्तिरहित नहीं समझ सकते। हम यह नहीं कहते कि प्राचीन वैद्यों और हकीमों के दावे सही नहीं। हम तो केवल इतना ही कहते है कि बिना जाँच और तज़रिबे के हम किसी के कथन–मात्र पर पूरा विश्वास नहीं कर सकते। विश्वास जमाने के लिए प्रमाण दरकार होता है। वह प्रमाण आप डाक्टरों को दीजिए। तभी वे इन ओषधियों के पूर्वोक्त गुणों के कायल हो सकते हैं।

तिब्बी और वैद्यक चिकित्सा के प्राचीन ग्रन्थों में जिन ओषधियों की योजना लिखी है, बहुत सम्भव है, उनकी जाँच योग्यतापूर्वक की गई हो और उनका यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करके तब उनके रोग–नाशक गुणों का निश्चय किया गया हो। क्योंकि प्राचीन वैद्य और हकीम वैज्ञानिक जाँच भी करते थे। पर क्या यह बात सभी ओषधियों के विषय में कही जा सकती है? नहीं, बात ऐसी नहीं। आज–कल तो देश में जितनी जड़ी–बूटियाँ पाई जाती हैं प्रायः सभी में किसी न किसी रोगनाश के गुण बताये जाते है। इस तरह की ख्याति का कारण जनश्रुति के सिवा और कुछ नहीं। किसी ने कोई जड़ी–बूटी देकर किसी रोगी का कोई रोग दूर कर दिया। बस उसने वह समझ लिया कि वह बूटी उस रोग की रामबाण ओषधि है। वह इस बात की जाँच नहीं करता कि उसमें ऐसा कौन सा तत्व है

जिसके कारण उसने उसमें उस रोग के नाश की शक्ति विद्यमान मान ली। नये नये ग्रन्थकारों और टीकाकारों ने इस तरह की सैकड़ों ओषधियों का उल्लेख, अपने अनुभव के बल पर, किया है। उनके उसी उतने अनुभव की बदौलत लोग, आज तक, केवल सुनी सुनाई बातों पर विश्वास करके, अनेक ओषधियों में अनेक रोग–नाशक गुणों की कल्पना करते चले आ रहे हैं। तथापि वे यह नहीं बतला सकते कि क्यों–किस आधार पर–उन्होंने उन रोगों को दूर करने की शक्ति इन ओषधियों में मान ली है। इस तरह की कच्ची कल्पना से वे डाक्टरों को क़ायल नहीं कर सकते। और जब तक वे ऐसा नहीं कर सकते तब तक वे यह आशा भी नहीं कर सकते कि सुशिक्षित डाक्टर और सरकारी दवाखाने, केवल उनके कथन पर विश्वास करके, तिब्बी और आयुर्वेदिक दवायें काम में लावेंगे। उन्हें आप अपनी दवाओं के गुणों के वैज्ञानिक प्रमाण दीजिए। फिर देखिए वे उनका प्रयोग करते है या नहीं।

खुशी की बात है, आज तक अनेक शिक्षा–प्राप्त डाक्टरों और विज्ञानवेत्ताओं ने स्वदेशी ओषधियों के विषय में बहुत कुछ जाँच–पड़ताल की है और कितनी हीं पुस्तकें और लेख भी लिख डाले है। आज से सौ सवा सौ वर्ष पूर्व सर विलियम्स जोन्स ने इस काम का सूत्रपात किया था। उन्होंने कुछ पौधों पर एक पुस्तक लिखी है। उनके बाद 1813 ईसवी में, जान फ्लेमिंग ने एक बड़ी सी सूची प्रकाशित की। उसमें उन्होंने उन पौधों का वर्णन किया जो दवा के काम आते हैं। तदनन्तर शागनेशी, मुहीउद्दीन शेरिफ, डेविड हूपर और डाइमक आदि ने भी कई पुस्तकें इस विषय की लिख कर प्रकाशित कीं। इन पुस्तकों में आयुर्वेदिक और तिब्बी ग्रंथों के आधार पर जड़ी–बूटियों का वर्णन ही नहीं, किन्तु इनमें लेखकों ने अपने अनुभवों और परीक्षाओं का भी वर्णन किया है। इसके सिवा कुछ लोगों ने ओषधीय लताओं–पौधों और बूटियों की परीक्षा, रसायन–शास्त्र में निर्दिष्ट नियमों के अनुसार भी करके, उस परीक्षा का फल प्रकट किया है। अभी, हाल ही में, गवर्नमेंट की आज्ञा से जिस कमेटी ने इस विषय में जाँच–पड़ताल की थी उसने तो बड़े ही महत्व की सामग्री एकत्र कर दी है। अतएव अब तक इस सम्बन्ध में जो काम हो चुका है उससे भविष्यत् में बहुत सहायता मिल सकती है।

तथापि देशी ओषधियों के गुण–धर्म्म का पता लगाने के लिए अभी बहुत समय, बहुत धन और बहुत बड़े आयोजन की आवश्यकता है। पहले तो एक ऐसे परीक्षागार की आवश्यकता है जिसमें सब तरह के शस्त्र, यन्त्र और अन्यान्य सामग्रियाँ हों। फिर इस इतने बड़े काम के लिए और कर्मचारियों के सिवा अनेक रसायन–शास्त्रियों की भी आवश्यकता है। क्योंकि ओषधियों के गुण–धर्म्म की परीक्षा रसायन–शास्त्र के ज्ञाताओं के बिना हो ही नहीं सकती। पग पग पर उनकी आवश्यकता पड़ती है। ओषधि–निर्म्माण के काम के लिए और देशों में जैसे कारख़ाने और परीक्षागार हैं वैसे ही जब तक इस देश में न खोले जायँगे और अनेक रसायन–वेत्ता योग न देंगे तब तक हम अपने काम में कदापि सफल–मनोरथ न होंगे। अभी तो कलकत्ते के स्कूल से सम्बद्ध परीक्षागार में मेजर चोपड़ा की सहायता के लिए केवल एक ही रसायन–शास्त्री है। इस दशा में ओषधि–सम्बन्धी काम नाम लेने योग्य भला कैसे हो सकता है।

किसी ओषधि की परीक्षा के लिए पहले इस बात का पता लगाने की जरूरत है कि उसमें कौन–कौन से रासायनिक द्रव्य हैं। यह बात अच्छे अच्छे यन्त्रों और परीक्षाओं से ही सम्भव है। यह काम सुदक्ष रसायनज्ञ ही कर सकता है। विश्लेषण और पृथक्करण द्वारा द्रव्यों का पता लग जाने पर उनके प्रयोग की परीक्षा आवश्यक होती है। किस रोग में वह कितना काम दे सकती है, इसकी जाँच के लिए बहुत समय, योग्यता और धैर्य्य की ज़रूरत होती है।

तीन मुख्य अभिप्रायों को ध्यान में रख कर देशी ओषधियों की परीक्षा और प्रयोग की आवश्यकता है, यथा–

(1) परीक्षा और प्रयोग के द्वारा इतनी ओषधियाँ निश्चित कर लेना चाहिए जिससे इस देश को उनके लिए और देशों का मुँह न ताकना पड़े। फिर उन ओषधियों को व्याबसायिक ढंग पर खिलाने और पिलाने लायक बना लेना चाहिए।

(2) वैद्य और हकीम जिन रोगों में जो ओषधियाँ देते हैं उनकी जाँच करके यह निश्चय कर लेना चाहिए कि उनमें से कौन कौन ओषधि गुणकारी है और किसके विषय में वैद्यों तथा हकीमों का दावा ठीक नहीं। फिर जो ओषधियाँ परीक्षा में पूरी उतरें उनका प्रचार पश्चिमी देशों के डाक्टरों द्वारा किये जाने की चेष्टा करनी चाहिए।

(3) ओषधियाँ इस तरह तैयार की जायँ कि लागत कम पड़े। सस्ती होने ही से सब लोग उन्हें मोल ले सकेंगे और अधिक आदमियों को उनसे फायदा पहुँच सकेगा।

सैकड़ों जड़ी–बूटियाँ वहाँ ऐसी उत्पन्न होती हैं जिनके गुण–धर्म्मों से पूर्वी और पश्चिमी देशों के डाक्टर अच्छी तरह परिचित हैं। उनमें से कुछ विदेशों को भी भेजी जाती हैं। वहाँ से उनकी दवायें तैयार होकर जब यहाँ आती है तब एक पैसे की चीज़ के डेढ़ दो रुपये देने पड़ते है। यदि ये सब ओषधियाँ यहीं तैयार की जायं तो लाखों रुपये देश के देश ही में रहें और हज़ारों आदिमियों की जीविका का द्वार खुल जाय। फिर सैकड़ों जड़ी–बूटियाँ यहाँ जगह की जगह सूख जाती हैं; कोई उन्हें पूछता भी नहीं। इस तरह देश का अनन्त धन यों हीं नष्ट हो जाता है। कुछ जड़ी–बूटियों और पौधों की उत्पत्ति का उल्लेख, उदाहरण के तौर पर, नीचे दिया जाता है।

शिमला से काश्मीर तक, हिमालय पर्वत पर, अङ्गूरीशफा उत्पन्न होता है। ख़ुरासानी अजवान भी हिमालय पर होती है। इस देश के उष्ण प्रदेशों में इतना कुचला पैदा होता है, जिसकी सीमा नहीं। यह कुचला बड़े काम आता है। कोई दवाखाना ऐसा न होगा जहां इससे बनी हुई औषधियाँ न काम में लाई जाती हों। धतूरा तो सभी कहीं पाया जाता है। मालती सिन्ध में और पेशावर के आसपास, इन्द्रायण सीमाप्रान्त और पंजाब में, और जंगली प्याज़ तो सभी कहीं अधिकता से उगता है। इसी तरह और भी अनन्त ओषधियाँ ऐसी हैं जो जंगलों , पहाड़ों, घाटियों और तराइयों में गाड़ियों पैदा होती और अकारण ही नष्ट जाती हैं। इन सबकी परीक्षा होनी चाहिए और यह देखना चाहिए कि किस मौसम में और कहाँ की कौन चीज़ एकत्र करने से उसके रासायनिक गुण कम नहीं होते। दूसरे देशों में उत्पन्न इन जड़ी–बूटियों की तुलना अपने देश की जड़ी–बूटियों से करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि अपनी देशी ओषधियों में यदि कुछ कमी है तो उसकी पूर्ति किस तरह हो सकती है। किसी विशेष आबोहवा, मौसम और भूमि में उत्पन्न करने से इन बूटियों के गुण–धर्म्म की कमी यदि दूर हो सकती हो तो जाँच और तज़रबे से उसे दूर कर देना चाहिए।

कुछ ओषधियाँ विदेश से ऐसी भी आती हैं जो इस देश में नहीं पाई जातीं। पर उनसे मिलती–जुलती और ओषधियाँ जरूर पाई जाती है। जांच करनेवालों को रासायनिक प्रक्रिया–द्वारा अपनी ओषधियों के गुण–धर्म्म का पता लगाना चाहिए और रसायन–शास्त्र के आधार पर यह निश्चय करना चाहिए कि अमुक ओषधि में अमुक तत्व है। विश्लेषण करके उनकी मात्रा का निर्देश कर देना चाहिए। यदि वैसी ही ओषधियाँ अन्य देशों से यहाँ आती हों तो उनकी जगह अपनी देशी ओषधियों के प्रयोग की सिफारिश करना चाहिए। वैज्ञानिक प्रणाली से गुण–धर्म्म का निश्चय हो जाने पर डाक्टर लोग झख मार कर उनका प्रयोग करेंगे, क्योंकि वे सस्ती पड़ेंगी। जानबूझ कर

कोई अपना रुपया क्यों व्यर्थ बरबाद करेगा? विदेशी दवा जालप (Jalap) में जो गुण हैं, वहीं प्रायः कालादाना में है। जो बात भांर्गी में है वहीं क्वासिया (Quassia) में। चीन और जापान से जो पेपरमिंट तेल आता है वही यहाँ के पुदीने से तैयार किया जा सकता है। परन्तु जब तक वैज्ञानिक ढंग से इन ओषधियों के गुण–धर्म्म का निश्चय करके यह न सिद्ध किया जायगा कि इनके प्रयोग से वही काम होगा जो विदेशी ओषधियों से होता है, तब तक विज्ञान और रसायन–विद्या के कायल डाक्टर किसी की बात, सिर्फ कह देने ही से, कभी माननेवाले नहीं। इसी से परीक्षागार में अर्वाचीन यन्त्रों की सहायता से इनके परीक्षण, पृथक्करण और गुण–धर्म्मनिरूपण की आवश्यकता है। मदारास के डाक्टर कोमन ने बबरी, पुनर्नवा, सेमल, कुर्ची आदि कितनी ही देशज ओषधियों में कुछ विशेष विशेष रोगों को दूर करने के गुण बताये हैं। परन्तु इस तरह उनका सिर्फ बता देना काफी नहीं। रसायनशास्त्र के नियमों से उनमें उन गुणों का होना डाक्टरों के गले उतार देना पड़ेगा। तभी वे इस कथन पर विश्वास करेंगे, अन्यथा नहीं।

जितने डाक्टरी दवाख़ाने हैं और जितने सरकारी अस्पताल हैं सभी में विलायती ही दवायें मिलती और दी जाती हैं। वे बहुत महँगी पड़ती हैं। निज के तौर पर डाक्टरी–पेशा करनेवाले लोग तो दवाओं के दाम में दूकान का किराया, नौकरों की तनख़्वाह, रोशनी वग़ैरह का खर्चा और अपना मुनाफ़ा जोड़ कर उनको और भी महँगा कर देते हैं। उनसे सिर्फ वे ही रोगी फ़ायदा उठा सकते हैं जिनके पास चार पैसे हैं। रहे, खैराती अस्पताल, तो उनको दवाओं के लिए सालाना एक निश्चित रकम मिलती है। उसी के भीतर जो दवायें वे चाहे मँगा सकते है, अधिक नहीं। नतीजा यह होता है कि रोज काम में आने वाली बहुत ही साधारण दवायें भी — मसलन कुनैन, मगनेशिया और अण्डी का तेल भी कभी कभी कम पड़ जाता है। क़ीमती दवाओं की तो बात ही जुदा है। वे तो बहुत ही कम नसीब होती हैं।

इस दशा में देशज जड़ी–बूटियों से इस ढंग से ओषधियां तैयार करना चाहिए जो सस्ती पड़ें। तभी अमीर–गरीब सभी को लाभ पहुँच सकेगा–तभी सब लोग उन्हें खरीद कर सकेंगे। भारतवर्ष के सदृश बुभुक्षित और निर्धन देश के लिए कीमती दवाओं का होना, न होना, दोनों बराबर हैं। दवायें सस्ती तभी हो सकती हैं जब वे अपने ही देश में अपनी ही जड़ी–बूटियों और लता–पत्रादि से तैयार की जायँ और बहुत अधिक मात्रा में तैयार की जायं। अतएव हमें ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि उपयोगी जड़ी–बूटियों को समय पर एकत्र करें, ज़रूरत होने पर अनाज की फसल की तरह उन्हें भी पैदा करें, फिर बड़े–बड़े कारखाने खोल कर उनके कल्क, स्वरस, चूर्ण और बटिकायें आदि तैयार करके उन्हें सस्ते मूल्य पर बेचें। विदेश से आनेवाली ओषधियों के मुकाबले में यदि हमारे यहाँ वैसी ही ओषधियाँ पाई जाती हों तो उनके गुण–धर्म्मों को वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करके उनका विवरण प्रकाशित करना चाहिए। फिर व्यावसायिक ढंग पर उनका निर्माण करके विदेशी ओषधियों के बदले उनके व्यवहार का प्रचार करना चाहिए। इसी तरह धीरे–धीरे सभी उपयोगी जड़ी–बूटियों से ओषधियाँ प्रस्तुत करके विदेशी ओषधियों का उपयोग बन्द कर देना चाहिए। देश में ही दवायें तैयार करने से विदेशियों का मुनाफ़ा, जहाज़ और रेल का खर्च और बहुत अधिक मज़दूरी न देनी पड़ेगी। नतीजा यह होगा कि दवायें सस्ती पड़ेंगी, देश में ओषधि–निर्माण का व्यवसाय बढ़ेगा और यहाँ का लाखों रुपया यहीं रहेगा। अभी तो यह हाल है कि सैकड़ों मन कुचिला, धतूरा, सींगिया और अण्डी के बीज इत्यादि योरप और अमेरिका के व्यवसायी यहाँ से कौड़ी मोल ले जाते है। हज़ारों कोस दूर देशों में जाकर इन्हीं चीजों से बनी हुई ओषधियाँ जब फिर भारत को लौटती हैं तब उनके दाम कोड़ियों के बदले मुहरों में देने पड़ते है।

इस विवेचन से यह बात ध्यान में आ जायगी कि देश में ही ओषधि–निर्माण होने से देश को कितना लाभ पहुँच सकता है। इसकी सिद्धि के लिए अनेक परीक्षागारों, अनेक रसायन–विद्या–विशारदों की सहानुभूति और सहायता, तथा बहुत धन की आवश्यकता है। देशभक्तों और व्यवसायिकों और धनवानों का धर्म है कि वे इस ओर ध्यान दें और मेजर चोपड़ा के हृद्गत विचारों को कार्य्य में परिणत करने की चेष्टा में लगें।

1. शफाखाना

मलेरिया (विषम ज्वर)*

नवलबिहारी मिश्र

मलेरिया–शब्द हम लोगों के लिये नया नहीं है। यद्यपि आयुर्वेद में इस रोग का नाम 'विषम–ज्वर' कहा गया है, पर साधारणतः लोग 'मलेरिया' या 'जूड़ी–बुखार' के नाम ही से परिचित हैं। रोगी की तलाश में परेशान होने के ज़रूरत नहीं, प्रत्येक गांव में दो–एक मलेरिया से पीड़ित अभागे दिखलाई ही पड़ेंगे। उनका पीला चेहरा, कृश शरीर,गढ़ों में धँसी हुई आँखें और बड़ा पेट–यही मलेरिया दैत्य का रूप समझिए। अगर मलेरिया के रोगी का संक्षिप्त रूप वर्णन करने को कहा जाय, तो इतना कहना काफी है कि उक्त रोगी हड्डी, चमड़ा तथा पेट, इन तीन चीजों का एक ढाँचा–भर है।

भारत, और बातों में निर्धन होने पर भी, रोगों के धन में बड़ा धनी है। अन्न की फ़सलों के समान, साल में दो प्रधान फ़सलें मलेरिया की भी होती हैं। फ़सल के समय जो करुणा–दशा देश की हो जाती है, वह किसी से छिपी नहीं हैं। ऐसा अक्सर होता है कि घर–का–घर जूड़ी से बीमार पड़ा है; न तो कोई बीमारों को पानी पिलाने वाला है, और न उनके माल–असबाब की रक्षा करने वाला। माता तेज़ बुखार में बेहोश पड़ी है। शिशु भूक से तड़प रहा है! भोजन का कोई ठिकाना नहीं–यह तक निश्चय नहीं कि आज दोपहर के लिये घर में कुछ है भी या नहीं–फिर पथ्य तो दूर की बात है! दवा के लिये कुछ खर्च करना सबके लिये संभव नहीं। उधर बग़ैर घर का काम किए भी गुजर नहीं। ज़रा तबीयत ठीक जान पड़ी, जरा उठकर बैठने–भर की ताकत हुई कि बस, बेचारा गरीब रोगी किसान रूखा–सूखा खाकर मज़दूरी करने चल दिया। ऐसी दशा में अगर लाखों काल का ग्रास हो जायँ तो आश्चर्य ही क्या है? जो मरने से बच गए, उनमें से बहुतों की बढ़ी हुई तिल्ली उन्हें मृत्यु के राज्य का रास्ता दिखलाने को तैयार रहती है।

इतने भयंकर और देश के दुर्भाग्य–स्वरूप रोग का थोड़ा–बहुत हाल प्रत्येक स्त्री–पुरुष को जानना चाहिए। इस शत्रु ने न–जाने कितने प्रदेश उजाड़ दिए। फिर भी अगर इसका भीतरी हाल जानकर हम इसे निर्मूल करने में असफल रहे, तो हम लोगों के लिये बड़ी लज्जा की बात है। बहुत समय से सभी देशों के विद्वान इस रोग को दूर करने का प्रयत्न करते आ रहे हैं; परंतु अब तक कोई भी ऐसा निश्चित उपाय नहीं जाना गया, जिससे इसकी सालाना फसलें रोकी जायँ। फिर भी नवीन विज्ञान ने बहुत–सी आश्चर्यजनक बातों का पता लगा लिया है। नित्य नई बातें मालूम होती हैं। संभव है, किसी दिन हम लोग इस रोग का भी अंत देख सकें।

हमारे सामने एक ऐसे शत्रु की सेना है, जो प्राचीन काल के राक्षसों की तरह अंतर्द्धान होकर युद्ध करती है। अब तक हम यह जानते ही न थे कि शत्रु के जहरीले तीर किधर से आ रहे हैं, सेना

---

* *माधुरी*, 1923

की संख्या कितनी है, और वह है कहाँ। अब तक जितने यु हुए सबमें हम पराजित होते रहे। पर अब विजय–लक्ष्मी हमारे ऊपर भी प्रसन्न हुई हैं। हमें इतना पता लग गया है कि हमारा शत्रु कौन है, और कहाँ से छिपकर वह अपनी निशाचरी सेना का संचालन करता है। ऐसा तो बहुत ही कम हुआ है कि शत्रु के अचानक आक्रमण करने पर हम मैदान में टिक सके हों। परन्तु जब हमें उसके आक्रमण का ज्ञान पहले से हो गया, तब हम अनेक बार अपनी रक्षा करने में समर्थ हुए हैं। यही नहीं, कुछ देशों से तो हमने शत्रु को निकाल भी दिया है।

यद्यपि मलेरिया–ज्वर के लक्षण साधारणतः सभी पर प्रकट हैं, फिर भी उसका कुछ हाल दे देना असंगत न होगा।

लक्षण

सबसे पहले तो बदन कुछ भारी–सा मालूम होने लगता है। फिर रुक–रुककर सरदी मालूम होती है। जान पड़ता है, पीठ के निचले हिस्से में कहीं पर सरदी शुरू होती है, और बढ़ते–बढ़ते सारे शरीर में फैल जाती है। शरीर–भर की माँस–पेशियों में कँपकँपी पैदा होती है। जान पड़ता है, कँपकँपी जबड़े के नीचे से शुरू होकर सारे शरीर में, विशेषकर हाथ–पैरों में, फैल रही है। कभी–कभी तो कँपकँपी इतनी जोर की होती है कि चारपाई तक हिलने लगती है। धीरे–धीरे रोगी की सूरत में अंतर आने लगता है। चेहरा पीला या नीला, चमड़ा सूखा और ढीला–ढीला सा, उंगलियां सफ़ेद और नाखून नीले हो जाते हैं। आंखों के चारों ओर नीला रंग छा जाता है। साफ पानी–जैसा बहुत–सा पेशाब होता है। शरीर का ताप 98^0 से लेकर 103^0 तक रहता है। यह दशा एक घंटे से लेकर दो घंटे तक रहती है। परंतु गरम देशों में इसके भीतर ही दूसरी अवस्था शुरू होने लगती है।

दूसरी अवस्था में बड़ा ताप मालूम होता है। जान पड़ता है, गरमी अंदर से शुरू होकर शरीर–भर में फैल रही है। शरीर का चमड़ा सूखा, लाल और गरम हो जाता है। नाड़ी जरा हलकी, पर तेज हो जाती है। जो नाड़ियाँ दिखलाई पड़ती है। (जैसे मस्तक के कोनों के पास वाली नाड़ियां), वे जोर से जलती मालूम होती हैं। तिल्ली का भारीपन बढ़ता ही जाता हैं। मूत्र बहुत कम और गहरे रंग का आता है। प्यास बहुत मालूम होती है। रोगी की सोचने–समझने की शक्ति कम हो जाती है। यह अवस्था एक से तीन घंटे तक रहती है। इसके बाद तीसरी अवस्था शुरू होती है। इसमें पसीना निकलता है। अक्सर ऐसा होता है कि इस अवस्था को पहुँचते–पहुँचते रोगी सो जाता है। जागने पर तबीयत कुछ हलकी जान पड़ती है। शरीर का ताप नार्मल जितना साधारणतः रहता है, अर्थात 98^0 के कुछ इधर–उधर अथवा नार्मल से कुछ कम हो जाता है। तिल्ली के ऊपर का बोझ कम मालूम होने लगता है। मूत्र के साथ–साथ कोई गाढ़ा–गाढ़ा, इंटें के रंग का पदार्थ गिरता है। कुछ समय के बाद रोगी प्रायः अच्छा हो जाता है। बहुत लोग तो आक्रमण के बाद अच्छी तरह अपना कामकाज भी कर सकते हैं।

दूसरे, तीसरे या चौथे दिन नियमित रूप और नियमित समय पर फिर–फिर यही हालत हुआ करती है। निश्चित रूप से तो कुछ कहना कठिन है, पर साधारणतः रोज़ आने वाला ज्वर सुबह को, एक दिन का अंतर देकर आने वाला (तिजारी) दोपहर को, और चौथे दिन आने वाला (चौथिया) तीसरे पहर आता है। चौथिया–ज्वर में साधारणतः कंपावस्था सबसे लंबी होती है; परंतु उसका आक्रमण जल्दी ही शांत हो जाता है। नित्य आने वाले ज्वर की कंपावस्था सबसे कम समय तक रहती है, परन्तु आक्रमण का वेग बहुत समय तक रहता है। बहुधा ऐसा देखा गया है कि पहला

आक्रमण कई दिन तक खतम ही नहीं होता। ऐसी दशा में ज्वर को "एकज्वरी" (Remittent fever) कहते हैं।

नव–वयस्कों, वृद्धों और अस्वस्थ शरीरवालों को यह ज्वर अधिक सताता है। साधारण जूड़ी–बुखार के साथ अगर दस्त या खाँसी शुरू हो जाय, अथवा सरदी लग जाने के कारण फेफड़ों पर असर पहुँच जाय, तो रोगी की दशा और भी खराब हो जाती है। साधारणतः खाली मलेरिया से मृत्यु बहुत कम होती हैं। जब ज्वर–जनित त्रिदोष के लक्षण शरीर में देख पड़ने लगते हैं, तब अवश्य ही अवस्था चिंताजनक हो जाती है। मृत्यु–संख्या का हिसाब आगे कहीं दिया जायगा।

मलेरिया–ज्वर सारे संसार में फैला हुआ है। केवल उत्तरीय तथा दक्षिणीय ध्रुव–प्रदेश उससे बचे हैं। पिछले कई साल के निरंतर उद्योग के बाद अब इंगलैंड, उत्तरी फ्रांस, उत्तरी इटली, जर्मनी तथा संयुक्त–राज्य अमेरिका के पूर्वी प्रदेशों से यह रोग विदा हो गया है; किंतु कनाडा, मध्य–अमेरिका, मैक्सिको, दक्षिण–अमेरिका, मध्य–आफ़्रिका, स्पेन, आस्ट्रेलिया, हिमालय की तराई, बंगाल, बर्मा तथा चीन, ये देश अभी तक इस रोग के क्रीड़ा–क्षेत्र हैं।

हिमालय की तराई में तो यह रोग साल रहता है; कभी जाता ही नहीं। जन्म से ही बच्चों के शरीर में व्याप्त रहता है। यही कारण है कि वहाँ के अभागे निवासियों की सूरत बड़ी ही करुणाजनक होती है। उनके बड़े सिर (विशेषकर कान), चिपटी नाक, फूले हुए पेट, सूखे हाथ–पैर और फीका रंग देखते ही उन्हें पहचाना जा सकता है। तिल्ली तो प्रायः सभी की बढ़ी रहती है। जलोदर, अंडवृद्धि और फ़ीलपांव[1] रोग भी बहुतों को हो जाते हैं।

इतिहास

ईसवी सन् की उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक इस बात का बिलकुल पता नहीं था कि यह रोग कैसे होता है। वैद्यक–शास्त्र के अनुसार इस रोग की उत्पत्ति में कोई विशेषता नहीं समझी जाती थी। शरीर का भीतरी व्यतिक्रम एवं दूषित वायु ही इसका मुख्य कारण माना जाता था। प्राचीन पुस्तकों में यह मिलता है कि एक प्रकार के मच्छड़ के काटने से ज्वर होता है। पर वह ज्वर मलेरिया है, इसका कोई प्रमाण नहीं। योरप में भी इसके विषय में बड़े–बड़े विचित्र विचार प्रचलित थे। कुछ लोगों का ख़्याल था कि जो भूमि कभी आबाद न हुई हो, उसके खोदने से यह रोग उत्पन्न होता है। कुछ लोग इसे दैवी कोप का एक अंग मानकर संतुष्ट थे। मलेरिया शब्द इटालियन–भाषा का है। इसका अर्थ है दूषित वायु। साधारण रूप से यह कहा जा सकता है कि पढ़े–लिखे लोग इसका कारण दूषित वायु ही मानते थे।

सन् 1879 ई0 में, सबसे पहले, क्रेब्स–नामक एक वैज्ञानिक ने यह संदेह प्रकट किया कि हो न हो, कोई जीवित प्राणी इस रोग की जड़ है। अलजीरिया (अफ़्रिका) देश के एक सैनिक डॉक्टर–ए0 लैवेरन–ने 1880 ई0 में मनुष्य के रक्त में मलेरिया के रोगाणु देखे। उस समय सबने डॉक्टर साहब की बुद्धि में कुछ दोष बतला कर इस बात को हँसी में उड़ा दिया। 1881 ई0 में मार्चियाफ़ावा और सेली नाम के दो वैज्ञानिकों ने इस प्रश्न को फिर से छेड़ा। उन्होंने रोग के कीटाणुओं को रक्त में तैरते देखा। तब लोगों को कुछ कुछ विश्वास होने लगा, इटली के कुछ डॉक्टर इस रहस्य का पता लगाने पर तुल गए। 1894 ई0 में सब लोगों की सलाह से, यह तय हुआ कि मच्छड़ों के काटने से इसका बहुत कुछ संबंध है। उस समय विद्वानों के तीन मत हो गए–

(1) एक दल का कहना यह था कि जब मच्छड़ मलेरिया के रोगी को काटता है, तब रोगाणु भी रक्त के साथ उसके पेट में चले जाते हैं। वही मच्छड़ जब पानी के निकट बैठता है,

तब उसके मल–मूत्र के साथ वे कीटाणु भी पानी में चले जाते हैं। वह पानी जो कोई पी लेता है, उसे ज्वर हो जाता है।

(2) दूसरे दल का कहना था कि मच्छड़ इधर उधर उड़ते–फिरते ही रहते हैं। हवा में कहीं मलेरिया की कीटाणु उनके पेट में चले जाते हैं। वे ही मच्छड़ जब किसी नीरोग मनुष्य को काटते हैं तो वे कीड़े उसके रक्त में चले जाते हैं।

(3) तीसरा दल पुराने विचार का था। वह कीटाणुओं का होना तो मानता था, पर मच्छड़ का ठेका मानने को तैयार न था। इस दल का कहना था कि दलदलों में ये कीटाणु रहते हैं। ये ही दलदल जब सूखने लगते हैं, तब उनकी हवा मनुष्य के पेट में कीटाणुओं को पहुँचा देती है।

पाठक आगे देखेंगे कि तीनों दलों के कथन में सत्य था। दोष इतना ही था कि तीनों ही इस प्रश्न के भिन्न–भिन्न पहलुओं पर विचार कर रहे थे। इन्हीं तीनों मतों को एक करके कर्नल रॉस ने मलेरिया ज्वर का प्रचलित सि ांत निश्चित किया।

कर्नल रॉस हिंदुस्तान में एक सैनिक डॉक्टर थे। 1895 ई0 की बात है कि सिकंदराबाद में एक सैनिक मलेरिया–ज्वर से पीड़ित हुआ। कर्नल महाशय उसकी चिकित्सा में हैरान थे। कोई उपाय नहीं सूझता था। एक दिन रोगी के कमरे से बाहर निकलते समय उन्होंने देखा, एक अंधेरे कोने में कुछ मच्छर बैठे हैं। उन्हें चट योरपियन विद्वानों का अनिश्चित मत स्मरण हो आया। उसी समय बड़े परिश्रम के साथ एक दर्जन जिंदा मच्छड़ उन्होंने पकड़े। उसके बाद एक बक्स में कुछ कबूतर बंद किए। बक्स में कुछ छेद करके बारीक कपड़े से ढक दिया। उसके बाद वे मच्छड़ उसमें छोड़ दिए। कबूतरों के दाना–पानी का प्रबंध बराबर होता रहा। कई दिन के बाद देखा गया कि उन कबूतरों में से कोई भी नीरोग न था। जब उनके रक्त की परीक्षा की गई, तो उसमें मलेरिया के कीटाणु पाए गए।

कर्नल रॉस के आश्चर्य और हर्ष की कोई सीमा न थी। जिस बात की खोज निरंतर 17–18 वर्ष से हो रही थी, उसे वह आज अनायास ही पा गए। कर्नल रॉस के एक और मित्र डॉक्टर मॉसन थे। रॉस ने अपने अन्वेषण का हाल मित्र को बतलाया। मॉसन को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने कर्नल रॉस से कुछ वैसे मलेरिया–ग्रस्त मच्छड़ माँगे। उन्हें विश्वास तो था ही नहीं। दूर ढूंढ़ने न जाकर पहले–पहल अपने पुत्र पर ही उनका प्रयोग किया। मच्छड़ काटने के तीसरे ही दिन उसे ज्वर आ गया, और कई हफ़्ते बीमार रहकर एक दिन वह चल बसा! बीमारी के दशा में जब उसके रक्त की परीक्षा की गई, तो उसमें मलेरिया के कीटाणु निकले।

अब तो मॉसन को भी रॉस के कथन की सत्यता पर विश्वास हो गया। परंतु यह विश्वास उन्हें बड़ा महँगा पड़ा। इस प्रकार सन् 1898 में इस भयंकर प्रयोग के फल ने डाक्टर रॉस के मत का समर्थन किया। दोनों एक मत हो गए। फिर मॉसन की सहायता से, बहुत परिश्रम के बाद, रॉस ने एक नया तत्त्व और खोज निकाला। उन्होंने देखा, यद्यपि बहुत से मच्छड़ रोगी को काटते और रोग के कीटाणुओं को ग्रहण कर लेते हैं, परंतु उन सभी मच्छड़ों के काटने से नीरोग आदमी रोगी नहीं हो जाता। यह बात ऐसी थी कि उनके सिद्धांत में लोगों को संदेह होने लगता था। अंत को, हजारों प्रयोग करने पर, यह मालूम हुआ कि एक विशेष जाति के मच्छड़ ही में यह शक्ति है कि वह कीटाणु ग्रहण करके उन्हें दूसरे मनुष्य के शरीर में पहुँचा दे। घरेलू मच्छड़ विशेषकर दो जातियों के होते हैं। एक है –क्यूलेक्स (Culex), और दूसरी ऍनाफेलीज (Anopheles)। मॉसन और रॉस ने यह सिद्धांत निकाला कि एनॉफेलीज़ ही रोगी के शरीर से रोग के कीटाणु लेकर उन्हें दूसरे मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट कर सकता है, क्यूलेक्स नहीं। कुछ समय के लिए तो यह बात मान ली गई, पर

थोड़े विरोधियों ने एक दोष और उपस्थित किया। उन्होंने ऍनाफेलीज़–जाति के बहुत से ऐसे मच्छड़ एकत्र किए, जिनके शरीर के अंदर मलेरिया के कीटाणु मौजूद होने पर भी उन सबके काटने से मलेरिया–ज्वर नहीं हुआ। इस बात से वैज्ञानिक–जगत् में एक बार फिर हलचल मच गई। परन्तु थोड़े ही दिनों बाद विद्वानों ने इस समस्या को भी हल कर लिया। बहुत अन्वेषण के बाद यह निश्चय हुआ कि एनॉफेलीज़ जाति की मादा में ही यह गुण या दोष रहता है कि वह रोगी के शरीर से कीटाणु ग्रहण कर दूसरे व्यक्ति के शरीर में पहुंचा दे।

1900 ई0 में लंदन के डॉक्टर सैंबन और डॉक्टर लॉं ने मलेरिया का अनुशीलन आरंभ किया। उन्होंने देखा, यदि मच्छड़ के काटने से ही यह रोग होता है, तो रोगी और नीरोग, दोनों को मच्छड़ के काटने से बचाने पर उनकी रक्षा ज़रूर होगी। इसी विश्वास पर ये दोनों इटालियन विद्वान् साइनर टर्ज़ी के साथ इटली गए। इटली के कैंपैनिया–नामक प्रांत में उन दिनों बड़े ज़ोर का मलेरिया था। इन तीनों महाशयों ने दो इटालियन नौकरों की सहायता से वहाँ कुछ झोपड़ियाँ बनवाईं। झोपड़ियाँ ऐसी थीं कि उनमें प्रकाश तथा वायु तो खूब आ–जा सकता था, परंतु हर एक दरवाज़ा और खिड़की तार की बारीक जालियों से ढकी थीं। इन लोगों ने यह नियम कर लिया था कि अंधेरा होते ही अपनी–अपनी झोपड़ी में जाकर सावधानी से दरवाज़ा बंद कर लिया जाय, और उजियाला होने तक हरगिज़ न खोला जाय। इस तरह इन लोगों ने मच्छड़ का काटना बिलकुल असंभव कर दिया। रात को विशेष सावधानी इसलिये की गई कि मच्छड़ अंधेरे में ही निकलते हैं।

तीसरी जुलाई से लेकर 19 ऑक्टोबर तक ये लोग वहीं रहे। आसपास सैकड़ों मौतें रोज़ होती थीं, परंतु इन पाँचों आदमियों पर कोई असर नहीं हुआ।

प्रायः इसी समय प्रोफेसर सेब्री ने भी रेल के कर्मचारियों के ऊपर एक प्रयोग किया। उन्होंने भिन्न–भिन्न स्थानों के 62 मनुष्य प्रयोग के लिये चुने। 24 आदमियों की रक्षा ऊपर–लिखे उपाय से की गई, और 38 अपने भाग्य के भरोसे छोड़ दिए गए। 24 सुरक्षित आदमियों में से 20 ज्वर से बिलकुल बचे रहें। शेष चार ज्वर–ग्रस्त हुए। पर जाँच करने पर प्रत्येक की थोड़ी–बहुत असावधानी पाई गई। उधर भाग्य के भरोसे छोड़े हुए 38 आदमियों में से 36 आदमी बीमार पड़े।

अब मलेरिया फैलाने वाले मच्छड़ का कुछ हाल सुनिए –

मच्छड

हम पीछे लिख आए हैं कि घरेलू मच्छड़ दो जातियों में विभक्त हैं–क्यूलेक्स, और एनॉफेलीज़। यों तो मच्छड़ सभी बुरे होते हैं, क्योंकि वे हमारा रक्त पी जाते हैं, पर एनॉफेलीज़ जाति के मच्छड़ मलेरिया–वाहन होने के कारण विशेष भय के पात्र हैं। मच्छड़ जितने ही मारे जा सकें, उतना ही कल्याण है। पर एनॉफेलीज़–जाति के मच्छड़ अगर नष्ट किए जा सकें, तो यमराज का एक बड़ा भारी डिपार्टमेंट (विभाग) खाली हो जाय। ऐसी दशा में एनॉफेलीज़–जाति के मच्छड़ों को पहचान लेना बहुत आवश्यक है। अगर कहीं परीक्षा करने पर एनॉफेलीज़–जाति के मच्छड़ दिखलाई पड़ें, तो मलेरिया के प्रकोप की पूर्व–सूचना मिल सकती है, और उसके रोकने का उपाय भी भरसक किया जा सकता है।

चित्र 'क' में एक एनॉफेलीज़ मच्छड़ कई गुना बढ़ाकर दिखाया गया है। 'अ' मच्छड़ है, और 'आ' उसका बच्चा। अंडे से पहले इसी तरह का बच्चा निकलता है। फिर वह रूप बदलकर वही मच्छड़ हो जाता है। आश्चर्य की बात तो यही है कि बच्चे और मच्छड़ के रूप में कोई समता नहीं देख पड़ती। सभी कीड़ों–मकोड़ों में यह विचित्रता पाई जाती है।
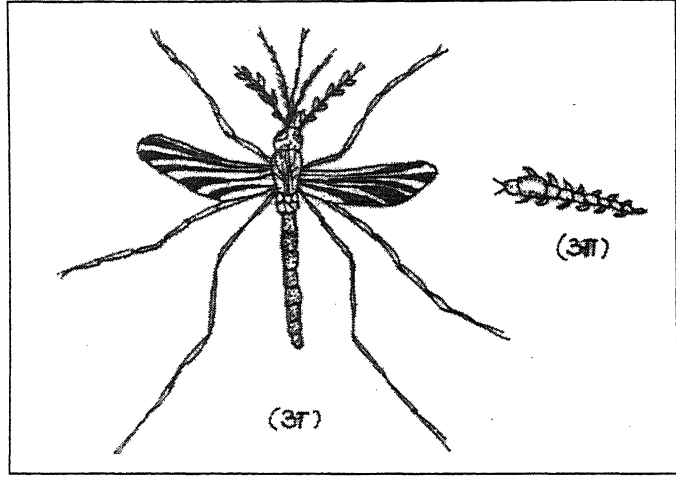
चित्र : क

क्यूलेक्स और एनॉफेलीज़ बहुत–सी बारीकियों में एक दूसरे से भिन्न होते हैं। अतः एक को दूसरे से अलग करना कठिन नहीं है। कुछ स्थूल भेद आगे दिए जाते हैं–

(1) **अंडे** । मच्छड़ों के अंडे मोरियों, छोटे–छोटे बरसाती गढ़ों और तालाबों में पाए जाते हैं। क्यूलेक्स अपने अंडे एकसाथ सटाकर रखता है। देखने में उन कुल अंडों का 'बेड़ा' एक नाव–सा मालूम होता है। एनॉफेलीज़ के अंडे इधर–उधर छिटके होते हैं। उनके रूप में भी कुछ भेद होता है। देखिए चित्र 'ख'। अ क्यूलेक्स के अंडों का बेड़ा। अ त्र क्यूलेक्स का एक अंडा। इ त्र एनॉफेलीज़ के अंडे। ई त्र एनॉफेलीज़ का एक अंडा।
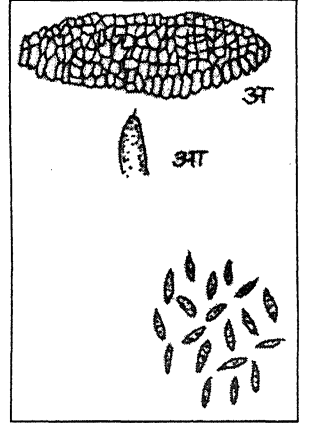
चित्र : ख

(2) **बच्चे** । मच्छड़ के बच्चे का रूप चित्र 'क' के अंतर्गत 'अ' में दिखाया जा चुका है। ये बच्चे पानी में सतह के पास ही तैरते रहते हैं। सतह के पास वे इसलिये रहते हैं कि वहाँ साँस लेने को हवा मिल सकती है। क्यूलेक्स का बच्चा सिर नीचे तथा धड़ ऊपर किए तिरछा पड़ा रहता है। एनॉफेलीज़ का बच्चा पानी की सतह के बराबर आड़ा पड़ा रहता है। देखिए चित्र 'ग'। अत्रक्यूलेक्स का बच्चा। आ त्र एनॉफेलीज़ का बच्चा।

(3) **पंख** । मच्छड़ के पंख अगर आतशी शीशे अथवा अणुवीक्षण–यंत्र* से देखे जायं, तो क्यूलेक्स और एनॉफेलीज पहचाने जा सकते हैं। एनॉफेलीज़ के पंख पर काले–काले धब्बे रहते हैं। देखिए चित्र 'घ'। अक्यूलेक्स का पंख। आएनॉफेलीज़ का पंख।
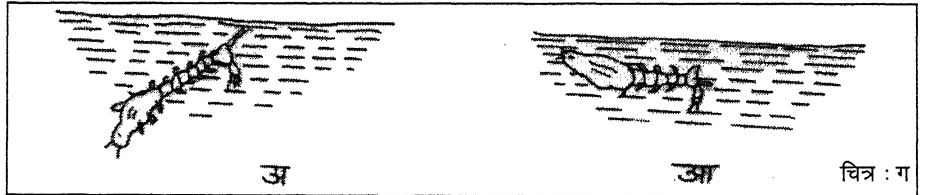
चित्र : ग

(4) **बैठने का ढंग** । दोनों जातियों के बैठने के ढंग में भी बहुत साफ़ भेद है। क्यूलेक्स की कमर झुकी रहती है। बैठने के समय शरीर के दोनों सिरे तो ज़मीन की तरफ रहते हैं, और टेढ़ी कमर ऊपर। एनॉफेलीज़ का शरीर सीधा रहता है। जब वह बैठता है, तब मुंह तो जमीन की ओर होता है, और पिछला सिरा ऊपर की ओर। देखिए चित्र 'ङ'। अ क्यूलेक्स। आ एनॉफेलीज़।

चित्र : घ
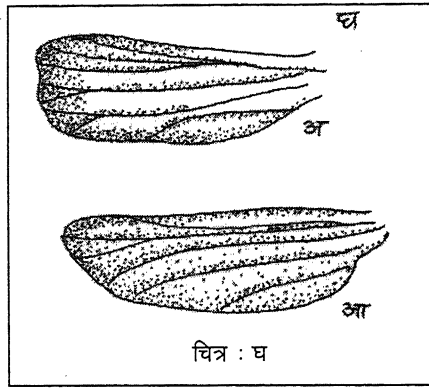
(5) मुंह दोनों जातियों के नर और मादा एक दूसरे से बिलकुल भिन्न मुँह के होते हैं। देखिए चित्र 'ट'। अत्रक्यूलेक्स का नर। आत्रक्यूलैक्स की मादा। इत्रएनॉफेलीज़ का नर। ई एनॉफेलीज की मादा।
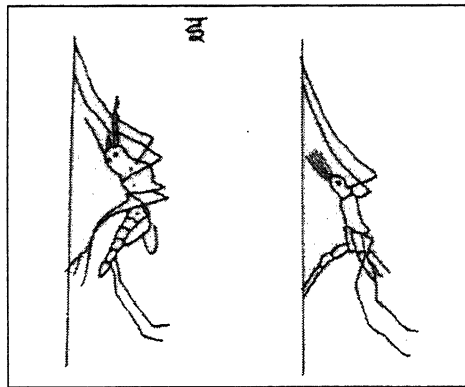
(6) इसके सिवा एनॉफेलीज़ का रंग स्लेट–पत्थर का जैसा होता है, तथा गर्दन के दोनों ओर एक–एक गहरी रेखा होती है। क्यूलेक्स ज़रा सफ़ेदी लिए हुए एक–सा रंग का होता है।

चित्र : ङ.

मलेरिया कीटाणु का जीवन वृत्तांत

यहाँ पर मलेरिया के कीटाणु का जीवन–वृत्तांत दिए बिना बहुत–से पाठकों की समझ में कुछ भी नहीं आवेगा।

जब किसी व्यक्ति को मलेरिया–वाही एनॉफेलीज़–मच्छड़ काटता है, तो उसकी लार के साथ कीटाणु रक्त में पहुँच जाते हैं। जब किसी कीटाणु की मुठभेड़ किसी रक्ताणु** से हो जाती है, तो कीटाणु उसमें घुस जाता है। कीटाणु पहले तो छोटे–छोटे तंतुओं की तरह होते हैं, पर रक्ताणु में पहुँचकर धीरे–धीरे मोटे और गोल होने लगते हैं। यहाँ तक कि कुछ समय के बाद वे सारे रक्ताणु को खाकर उसके बराबर ही हो जाते हैं। पूरे तौर पर बढ़ चुकने के बाद वह कीटाणु धीरे–धीरे छोटे–छोटे खंडों में कटने लगता है। इस तरह प्रत्येक कीटाणु के बहुत–से कीटाणु बन जाते हैं। जब

★ Microscope = अणुवीक्षण यंत्रा

★★ वे रक्ताणु (Boood Carpuseles) प्राणिजीवन के लिए बहुत ही आवश्यक होते हैं। इन पर लाल–लाल हीमोग्लोबीन (Hoemoglobin) नाम का एक पदार्थ होता है। इसमें वायु से ओषजन (Oxygen) गैस सोख लेने की शक्ति होती है।
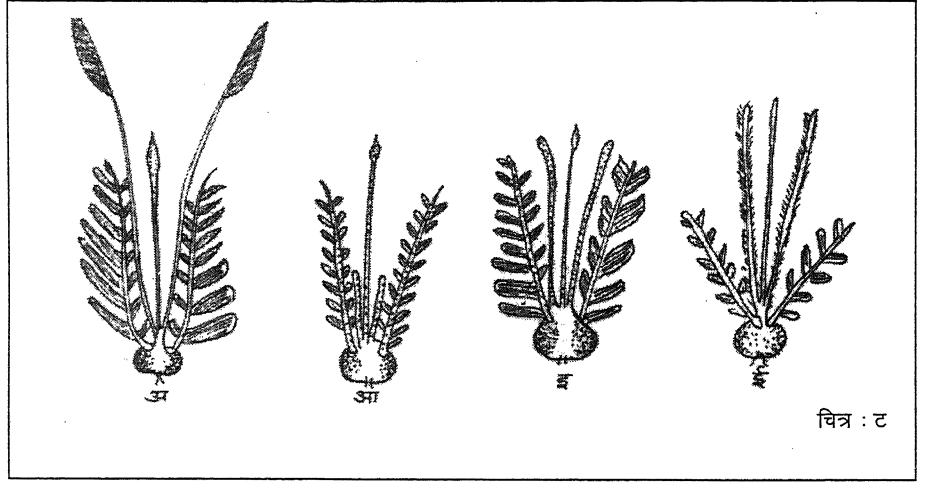
चित्र : ट

बहुत–से टुकड़े हो जाते हैं, तो भीतरी दबाव के कारण रक्ताणु फट जाता है। बहुत–से कीटाणु खंड उसमें से निकलकर इधर–उधर रक्त में तैरने लगते हैं। कुछ समय के बाद इन खंडों के दो रूप देख पड़ने लगते है। कुछ तो गोल रहकर आकार में थोड़ा बढ़ जाते हैं, और कुछ वैसे ही रह कर पतले–पतले तंतु निकालने लगते हैं। जो गोल रहते हैं, उनको मादा कह सकते हैं, और जो तंतु निकालते हैं, उनको नर। जिस प्रकार मनुष्य के वीर्य में गोल सिर और लंबी दुम के वीर्याणु होते हैं। उसी प्रकार के वीर्याणु इन नर कीटाणु खंडों से निकलते हैं। वे ही देखने में तंतु–जैसे जान पड़ते हैं। देखिए चित्र 'च'। अ तिजारी का मलेरिया कीटाणु मनुष्य के रक्ताणु में घुस गया है। आ, इई,
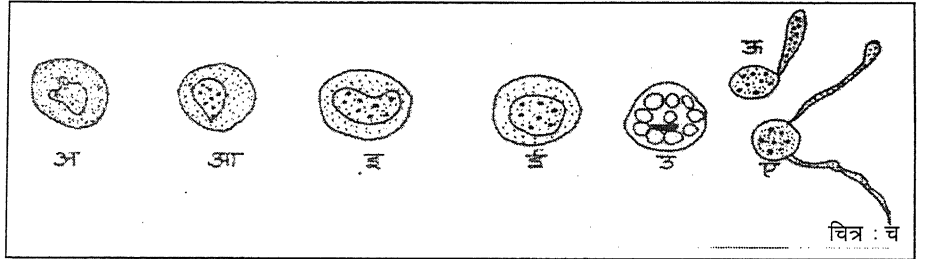
चित्र : च

बढ़कर गोल हो रहा है। उ=कीटाणु टुकड़े हो रहा है। ऊ=मादा कीटाणु–खंड। ए=नर कीटाणु–खंड से वीर्याणु निकल रहे हैं। इसी प्रकार चित्र छ भी समझिए। इसमें चौथिया–ज्वर का वर्णन है।

थोड़े समय के बाद नर और मादा–अंडों का संयोग हो जाता है। वीर्याणु मादा–खंड में प्रवेश कर जाते है। केवल दुम बाहर रह जाती है, जो कुछ समय बाद कट कर गिर जाती है। यहाँ पर मलेरिया के कीटाणु के जीवन वृतांत का पहला भाग समाप्त हो जाता है। अब तक कीटाणु मनुष्य–शरीर के भीतर थे, वे भीतर–ही भीतर सब आश्चर्यजनक परिवर्तन हो रहे थे। परंतु अब मनुष्य शरीर इन शत्रुओं को अधिक आश्रय नहीं दे सकता। अगर ये इसी प्रकार रक्त में पड़े रहें, तो कुछ समय बाद स्वयं नष्ट हो जायें। बहुत से नष्ट हो भी जाते हैं। पर इस समय अगर रोगी को ऐनाफेलीज़ आदि के किसी मादा–मच्छड़ ने काटा, तो ये गोल–गोल दाने, जिनको अंगरेजी में (ookerite) कहते हैं उसके पेट में जा पहुँचते हैं। अगर क्यूलेक्स–जाति के मच्छड़ पेट में गए, तो खैरियत है, पेट में ही पच जाते हैं, पर एनॉफेलीज़–मच्छड़ के पेट में इनका पहुँचना भयानक होता

चित्र : छ
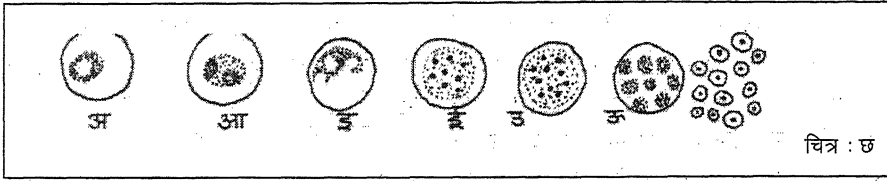
है। यह मच्छड़ मलेरिया का बड़ा सहायक होता है। इसके पेट में जाते ही वे गोल दाने, भीतर–ही–भीतर, छोटे–छोटे भागों में बँटने लगते हैं। साथ ही मच्छड़ के पेट की दीवार को फाड़कर पेट की दीवार और ऊपरी झिलली के बीच में आ जाते हैं। दाने धीरे–धीरे बढ़ते–बढ़ते इतने बढ़ जाते हैं कि स्वयं फट कर झिल्ली को भी फाड़ देते हैं। ऊपर लिखा जा चुका है कि दाने भीतर–ही–भीतर असंख्य टुकड़ों में बट रहे थे। उनमें से प्रत्येक टुकड़ा मलेरिया का कीटाणु हो जाता है। उक्त असंख्य कीटाणु दाने से निकल कर मच्छड के शरीर में इधर–उधर घूमने लगते हैं। और मच्छड़ की राल निकालनेवाली ग्रंथियों में जमा हो जाते हैं। इस अवस्था में यदि एनाफेलीज़ मच्छड़ किसी को काटता है, तो उसकी राल के साथ वे कीटाणु भी मनुष्य के रक्त में पहुंच जाते हैं।

इसके बाद यही मामला फिर दुहराया जाता है। कीटाणु फिर रक्ताणु में घुसकर बढ़ते हैं; फिर नर और मादा के संयोग से दाने बनते हैं; फिर दाने मच्छड़ के पेट में जाते हैं; और फिर वहाँ से असंख्य कीटाणु निकलकर रक्त में प्रवेश करते हैं। देखिए चित्र झ/अ=मच्छड़ के पेट में दाना पड़ा हुआ है। आ=पेट की दीवार पार करके दाना बाहर निकल रहा है। इ=पेट की दीवार पार कर दाना झिल्ली के भीतर आ गया। ई=दाना बढ़ रहा है भीतर असंख्य मलेरिया के कीटाणु भरे हुए हैं। उ=दाना फट गया। कीटाणु निकल–निकलकर मच्छड़ की राल निकालनेवाली ग्रंथियों में प्रवेश कर रहे हैं।

यह सब घटना इतनी अद्‌भुत और पेचीदा है कि प्राणिशास्त्र से अनभिज्ञ आदमी को सहसा इस पर विश्वास नहीं होता। यह तो साफ ही है कि हज़ारों में से कहीं दो–चार दाना मच्छड़ों के पेट में जाते होंगे; पर कठिनता तो यह है कि उन दो–चार से करोड़ों कीटाणु पैदा हो जाते हैं।

चित्र : ज
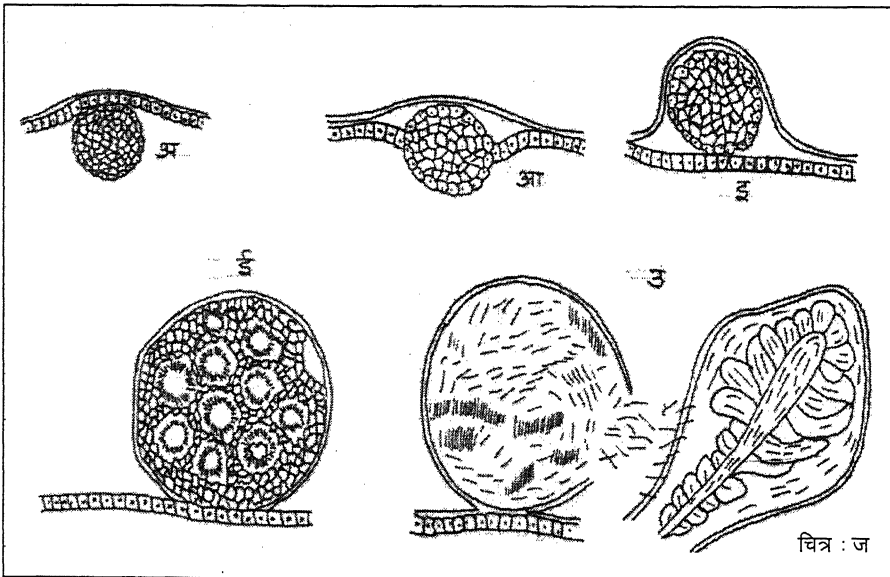
वे यदि मनुष्य के रक्त में रहते, तो उनकी बुद्धि में मनुष्य–रक्त के सफेद रक्ताणुओं के सिवा और कोई अड़चन डालने वाला न होता। इन सफेद रक्ताणुओं (White blood carpuscles) का यही काम होता है कि वे बाहरी जीवाणुओं को खाकर अपना पेट भरें। यदि मनुष्य–रक्त के ये सफेद कीटाणु सबल हुए, तो मलेरिया के जीवाणु हार जाते हैं। पर बहुधा ऐसा नहीं होता। कारण, मलेरिया के जीवाणु इतनी जल्दी–जल्दी बढ़ते हैं कि अपनी अधिक संख्या ही से रक्त के जीवाणुओं को हरा देते हैं। देखिए चित्र 'ठ'। अ त्र रक्त के लाल जीवाणु। इ = बाहरी कीटाणुओं (Bacterea) को रक्त का सफ़ेद जीवाणु भक्षण कर रहा है।

हाँ, कुछ भाग्यवान् ऐसे भी होते हैं, जिनके रक्त के सफेद जीवाणु ऐसे सबल हैं कि मच्छड़ के काटने पर भी उन्हें मलेरिया नहीं होता। इस कहानी को पाठक कोरी कल्पना न समझें। वर्षों से संसार के भिन्न–भिन्न देशों के विद्वान सत्य के अन्वेषण में लगे रहे, और सबका निजी मत यही निकला। हममें से प्रत्येक मनुष्य कोशिश करने पर इस कथन की सत्यता की जाँच, अपनी आँखों से देखकर, कर सकता है।

बहुतेरे पाठक मलेरिया की यह रूखी रामकहानी पढ़ते–पढ़ते ऊब गए होंगें। उनसे मेरा नम्र निवेदन है कि इस विषय को साधारण समझना भूल है। संसार के न–जाने कितने महत्वपूर्ण काम केवल इसी रोग के कारण बिगड़ गए, और बहुत से बरसों तक असफल होते रहे। पनामा–नहर का

चित्र : झ
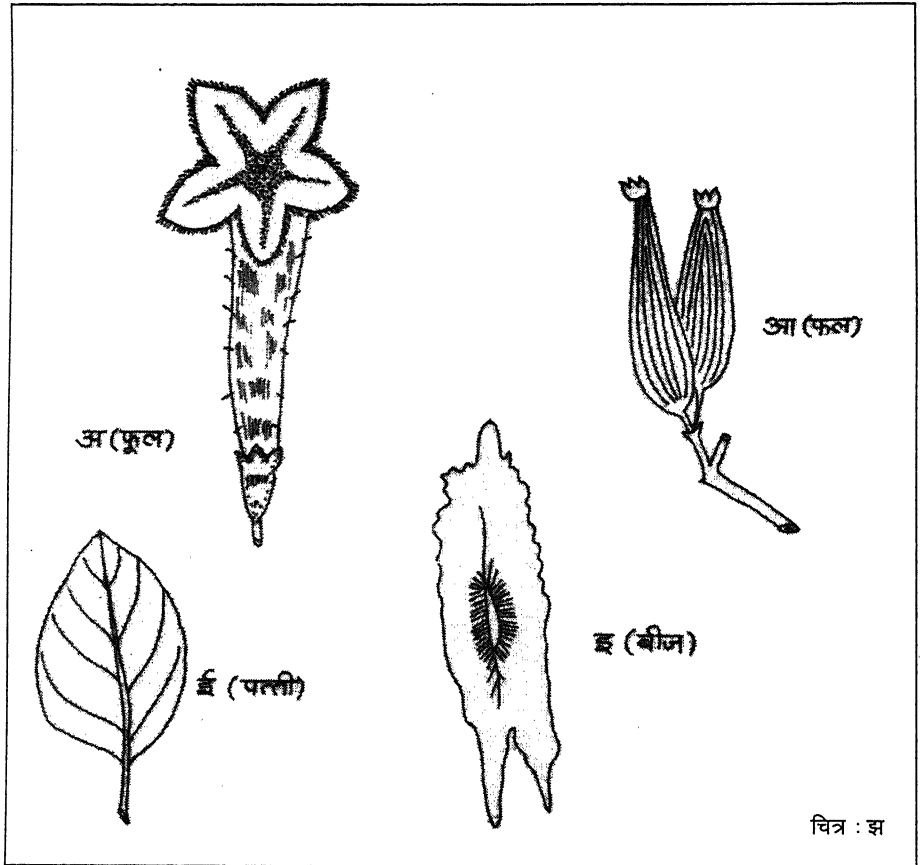
एक उदाहरण ही काफी होगा। गत पचासों वर्षों में कितनी ही बार यह नहर खोदने का प्रयत्न किया गया; पर अधिकतर मच्छड़ों ही के कारण बार–बार काम बंद कर देना पड़ा। अंत को जब अमेरिकन सरकार ने यह काम करने का बीड़ा उठाया, तब पहला आघात मलेरिया फैलाने वाले मच्छड़ों पर ही किया गया। जब तक मच्छड़ पूरी तौर से नष्ट न कर दिए गए, तब तक कुलियों का वहाँ काम करके जीते–जागते लौटना बड़ा सौभाग्य समझा जाता था। परंतु मच्छड़ विध्वंस के बाद बड़ी तेज़ी से नहर का काम चल निकला, और आज उनका उपयोगी परिणाम हमारे सामने है। हमारे देश में मलेरिया को रोकने के उपाय बतलाने की बड़ी जरूरत है। कुछ उपाय संक्षेप में नीचे लिखे जाते हैं। उपाय दो प्रकार के हो सकते हैं। एक तो वे, जिन्हें यदि व्यक्तिगत रूप से किया जाय, तो बचाव हो सकता है। दूसरे वे, जिन्हें सरकार, रजवाड़े तथा जमींदार, प्रजा के हित के लिये, काम में ला सकते हैं।

(1) पहले प्रकार के उपायों में सबसे मोटी बात तो यह है कि मलेरिया–ग्रस्त स्थानों से ही अपने को बचाये रखना चाहिए। जिस स्थान में मलेरिया–ज्वर का प्रकोप हो वहाँ से हट जाना ही रक्षा का सबसे निश्चित उपाय है। पर आम तौर से लोगों की धारणा यह है कि मलेरिया एक बहुत साधारण बीमारी है। अधिकतर प्लेग और हैज़े को छोड़ कर किसी बीमारी में लोग देश–त्याग नहीं पसंद करते।

(2) बंद, अंधेरे और सीलन वाले मकान या कमरे ही मच्छड़ों के प्रिय क्रीड़ा–क्षेत्र हैं। मलेरिया–ग्रस्त मच्छड़ों का होना ऐसे स्थानों में बहुत संभव है। जहाँ तक हो सके, ऐसे मकानों, उनके परोस तथा घर में ऐसे स्थानों से परहेज़ रखना चाहिए। यों तो बंद तथा नम जगहें हर हालत में स्वास्थ्य के लिये बुरी होती हैं, पर मलेरिया की तो उन्हें खान ही समझना चाहिए। बहुधा ऐसा होता है कि घनी बस्ती वाले शहरों में निर्धनों को मजबूरन ऐसे ही स्थानों में रहना पड़ता है। ऐसी दशा में, कमरे खूब सूखे और साफ़ रखने चाहिए। दूसरे–तीसरे दिन गंधक अथवा और किसी चीज़ का तीव्र धुआँ कर देने से मच्छड़ तथा अन्य रोगों के कीटाणु नष्ट हो जायेंगे। दीवारों पर फिनाइल छिड़कना भी लाभप्रद है। लोगों को विश्वास है कि मलेरिया के दिनों में उबाला हुआ पानी पीना बहुत जरूरी है। पर पाठक स्वयं देखेंगे कि सीधे रक्त में जाने ही से मलेरिया के कीटाणु हानि पहुँचा सकते हैं–पेट में नहीं सो जहाँ तक मलेरिया से काम है, वहाँ तक गरम पानी बहुत आवश्यक नहीं है। यह नवीन मत है।

(3) ऊपर जो कुछ लिखा जा चुका, उससे यह प्रकट है कि ये मच्छड़ ही सारे अनर्थ की जड़ हैं। अगर किसी तरह मच्छड़ों का संहार किया जा सके, तो मलेरिया की जड़ ही कट जाय। पीछे हम धुआं, गंधक, फिनाइल इत्यादि मच्छड़ों के मारने की कई तरकीबें लिख आए हैं। प्रयत्न यह करना चाहिए कि उनके अंडे तथा बच्चे ही नष्ट कर दिए जायं। साधारणतः घरों में मोरियां गंदी रहती हैं। परीक्षा करने पर उनमें मच्छड़ों के बच्चे बहुत दिखलाई देंगे। अतः मोरियों को ऐसा बनाना चाहिए कि उनमें पानी एक क्षण भी न ठहर सके। इसके अलावा कभी–कभी फिनाइल डाल देने से बच्चे जिंदा नहीं रह सकते। घर में या परोस में अगर ऐसे गड्ढे हों, जिनमें बरसाती पानी जमा हो जाता हो, तो उन्हें पटवा देना चाहिए। अगर ऐसा संभव न हो, तो उनमें थोड़ा–सा मिट्टी का तेल डाल देने से भी बच्चे मर जायंगे। कारण, मिट्टी का तेल पानी से हलका होता है, और उसे पानी में छोड़ने से तेल की एक पतली तह पानी को ढक लेती है। बच्चों को इस प्रकार सांस लेने के लिये हवा नहीं मिलती, और वे मर जाते हैं।

(4) ऊपर जो उपाय लिखे गए हैं, उनका उद्देश्य मलेरिया को पैदा होने का अवसर ही न देना है। यदि यह संभव न हो सका, यदि जीवन–संग्राम के इस पहले मोर्चे में हमारी हार रही, तो ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि मच्छड़ हमें काटने ही न पावें। इस काम के लिये सबसे अचूक उपाय मसहरी हैं। मसहरी ऐसी होनी चाहिए, जिसके छिद्रो में से वायु तो आ–जा सके, पर मच्छड़ का प्रवेश न हो सके। इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि सोते समय कोई परदा उलट न जाय।

(5) इसके सिवा यदि मकान के दरवाज़ों और खिड़कियों पर पतले तार की जाली लगवा दी जाय, तो मच्छड़ों के आने की संभावना और भी कम हो जाय। वह साधारण स्थिति के लोगों के लिये ज़रा कठिन है। अगर मकान–भर में नहीं, सोने के कमरे में ही लगवा दी जाय, तो भी मलेरिया के नाश में बड़ी सहायता मिल सकती है।

(6) यदि किसी कारण से ऊपर के किसी भी नियम का पालन न हो सके, तो शरीर को अच्छी तरह ढक कर सोना तो हर एक स्थिति के आदमी के लिये सहज है। हाँ, गरमी में ऐसा करना प्रायः असंभव हो जाता है। कहीं–कहीं लोग गरमी और मच्छड़ों से व्याकुल होकर मिट्टी के तेल की या और किसी तीव्र गंध वाली चीज़ की मालिश देह में करके सोते हैं।

(7) डॉक्टरों की राय में मलेरिया–ज्वर के नाश के लिये कुनैन से बढ़कर और कोई दवा नहीं हैं। कुनैन एक प्रकार का क्षार–विष है। इसकी जन्मभूमि दक्षिणी अमेरिका है। सन् 1820 ईसवी में पेलेटियर और कैवेंटाऊ नाम के दो स्पेनी मनुष्यों ने ब्रेजिलवासियों से उसका व्यवहार सीखा। कुनैन सिनकोना–नामक वृक्ष की छाल से बनाई जाती है। सिनकोना तीन तरह का होता है। उनमें पीली छाल–वाला वृक्ष सबसे अच्छा समझा जाता है। चित्र 'झ' में सिनकोना की पत्ती, फूल, फल तथा बीज दिखलाए गए हैं।

कुनैन एक प्रकार का तीव्र विष है, जो खाने के बाद रक्त में मिलकर मलेरिया के जीवाणुओं को मार डालता है।

भारत में सर क्लेमेंट्स् मार्खम नाम के एक महाशय 1861 ई0 में पहले–पहल कुनैन लाए थे। सरकार की ओर से नीलगिरि, मैसूर, सिकिम और दार्जिलिंग में इसकी खेती होती है। वहां की कुनैन केवल भारत और लंका में बेची जाती है। सर्व–साधारण की सुविधा के लिये डाकखानों में, सस्ते मूल्य में, शुद्ध कुनैन मिल सकती है।

कुनैन के यथाविधि सेवन से मलेरिया ज्वर रोका तथा अच्छा किया जा सकता है। इसके सिवा आयुर्वेद, यूनानी, तिब्बी तथा होमियोपैथिक चिकित्सा–शास्त्रों में भी बहुत–सी अमोघ दवाएं हैं। उनका संग्रह करके प्रत्येक गृहस्थ को अपने पास रख छोड़ना चाहिए।

इसके सिवा बहुत–से उपाय ऐसे हैं, जिन्हें गवर्नमेंट, रजवाड़े तथा ज़मींदार जनता के हितार्थ कर सकते हैं। यथा–

(1) सबसे ज़रूरी बात तो यह है कि नए शहर और गांव बसाते समय स्वास्थ्यप्रद स्थान का बहुत खयाल रखना चाहिए। बस्ती ऐसे किसी ऊंचे स्थान पर बसानी चाहिए, जिसमें बरसाती पानी न जमा हो सके। बस्ती घनी होने से एक तो सफाई रखना असंभव हो जाता है, दूसरे सब जगह धूप और प्रकाश नहीं पहुंच सकता।

(2) पुरानी बस्तियों का सुधार करना चाहिए। परोस के गंदे तालाब और बरसाती गढ़े पटवा देने चाहिए।

(3) जिस स्थान में जंगल बहुत होता है, वहां एक तो वृष्टि अधिक होती है, दूसरे वृक्षों और ज़मीन पर पड़ी हुई लताओं और पत्तियों के कारण पानी का बहाव रुका रहता है। जिन

स्थानों में जंगल के कारण नमी अधिक रहती है, वहां उसे यथाशक्ति कम करने का प्रयत्न करना चाहिए। बहुत से विद्वानों का मत है कि यूकेलिप्टस के वृक्षों में नमी सोखने की बड़ी शक्ति होती है। बहुत–से स्थानों में केवल यूकेलिप्टस के वृक्ष लगाने ही से नमी में कमी हुई है।

(4) दलदल मलेरिया का घर है। उसे तो अवश्य हटाना चाहिए।

यद्यपि सरकार की ओर से चिकित्सा का प्रबंध किया गया है, तो भी उसमें बहुत सुधार और वृद्धि की जगह है। पाठक इन उपायों को केवल काग़जी बातें न समझें। इन्हीं उपायों का आश्रय लेने से इंगलैंड, फ्रांस , बेलजियम, पश्चिमी प्रशिया, नार्वे–स्वीडन, पूर्वी संयुक्त–राष्ट्र अमेरिका इत्यादि देश मलेरिया से एकदम मुक्त हो गए हैं। जहां पहले प्रतिवर्ष लाखों मौतें मलेरिया से हुआ करती थीं, वहां अब जूड़ी कैसी होती है, यह लोगों को स्मरण ही नहीं है।

हमारे यहां सैनिटेशन (स्वास्थ्य–रक्षा)–विभाग वर्षों से अपरिमित धन पानी की तरह बहा रहा है। पर अभी तक देश का कोई उपकार उसके हाथों नहीं हुआ। हमारे नवयुवक बंधुओं के लिये यह रोग एक अच्छा कार्य–क्षेत्र दिखला रहा है। लोगों के भ्रांत विचार दूर कर और उन्हें स्वास्थ्य के आवश्यक नियम बताकर हम देश की सच्ची सेवा करने में समर्थ हो सकते हैं।

देहाती पशुविज्ञान*

जयदेव शर्मा विद्यालंकार

मैं घरसे निकल कर एक बार सलकिया (कलकत्ता) की बनारस रोडसे जा रहा था। मार्गमें मैंने पाँच छः देहातियोंको इकट्ठा हुए देखा। मैं भी कौतुक देखनेके लिए खड़ा हो गया। देखा कि उनके बीचमें एक बैल जकड़ा पड़ा है। एक उसकी पूँछको दो टाँगोमें से निकालकर और खींचकर बैठा है। दूसरा उसके पिछले पैर रस्सीसे बाँधकर कसे बैठा है। एक उस बैलके मुँहपर रस्सी कसे सिर पर सवार है। एक बैलकी जीभको बाहर खींचकर उसे कसे हुए है। एक उस्तरेसे जीभ छील रहा है। कुछ देर तक मै देखता रहा। कुछ भी बात मेरी समझमें न आयी। मैंने उनसे पूछा कि 'क्यों भाई, क्या कर रहे हो।'

उनमेंसे एक बोला—"बाबू, इसकी जीभपर कांटा जम आया है; सो नांदमें पानी पर मुंह नहीं देता; इसलिये कांटा साफ करते है।"

मैं सोचने लगा कि यह जीभपर काँटा कैसा। बैलकी जीभ तो खुरदरी होती है फिर और काँटा कैसा। मैने तुरन्त पूछा—"भाई काँटा कैसा।"

"बाबू यह देखो; जीभपर हाथ फेर कर देख लो।" मैंने बिना संकोचके उस बैल की जीभपर हाथ फेरा तो देखा कि जीभ पर चौथाई इंचके लगभग ऊँचे ऊँचे काले बाल ऐसे कड़े रूपमें जमे हैं जैसे बहुत काल तक दाढ़ी बनवानेके बाद ठोड़ी पर पाँच सात दिन हजामत न कराने पर कड़े—कड़े बाल सुईके माफिक निकला करते हैं या जैसा लोहेके तारोंका बना हुआ ब्रुश होता है। मैं देखकर अचम्भेमें रह गया, जीभपर बाल कैसे। पूछने पर मालूम हुआ कि पशुओंको यह रोग हो जाता है उनकी जीभ पर प्रायः बहुतही कड़ा बालोंका जँगल पैदा हो जाता है। मैंने तो यहाँ तक देखा कि उस बैलके गालोंके भीतर अगल बगल और जीभ पर बाल ही बाल उग गये थे।

देहातियोंकी वह चौकड़ी उस बैलका इलाज कर रही थी। एकने कहा कि 'बाबू जब गोरूकी जीभपर रोआँ उठ आता है तब वह नाँदमें मुँह नहीं देता, सानी भूसेको सूँघकर छोड़ देता है। पानी पी पी कर धाँसता है, उसके मसूड़े दर्द करते हैं और सूज जाते हैं; गला बढ़ आता है।

यह सब निदान मैंने उस बैलके शरीर पर प्रकट रूपसे देखा। मै सब क्रिया बड़ी सावधानीसे देखने लगा।

एक आदमीने उस्तरेसे जीभको उसी प्रकार मूँडा जैसे नाई उस्तरेसे दाढ़ी साफ़ करता है। पर वह बाल या सुईयाँ बड़ी कड़ी होती हैं; जल्दी साफ नहीं होतीं। एक प्रकारसे वह तो उस्तरेसे जीभको खुरचता था। खुरचते खुरचते कुछ कुछ रक्त भी निकल आया। इस पर वह बोला कि काँटा जड़से

---

* *विज्ञान*, दिसम्बर 1923

निकाला जा रहा है, इसकी जड़में कील होती है। उसको निकाल देनेसे रोग दूर हो जायगा, नहीं तो फिर काँटे उग आवेंगे।

उस्तरे वालेने जीभके अगले भागको खूब साफ़ किया और शेषको वैसेही रहने दिया। गालके भीतरके बालोंको भी वैसेही रहने दिया; पूछने पर मालूम हुआ कि वह उसको कष्ट नहीं देते है। जीभके अगले काँटे घास आदिसे छूतेही दर्द करते है और बैल मुँह हटा लेता है।

जब वह उस्तरेसे जीभको खूब खुरच चुका तब उसने पिसा हुआ नमक उसकी जीभ पर डाल कर जोरसे अँगूठेसे मसल दिया। खुरचनेसे कुछ कुछ रक्तके बिन्दु जीभ पर आ गये थे। नमक मसलनेसे कुछ और पीड़ा हुई; बैल उस समय तड़पा। परन्तु हितैषी देहाती बैलको अभी क्यों छोड़ते; वह तो पूरी दवा दारू करके हटे।

अब दूसरी चिकित्सा शुरू हुई। एक बोला कि "दो छोटे छोटे लकड़ीके टुकड़े लाओ; उसके तालुके छेद भी बन्द करने है। उनमेंसे पानी दिमागमें चढ़ता है।"

एक देहाती बड़ी पतली सुईके समान दो लकड़ियोंकी सीकें 1–1/2; इँच लम्बी ले आया। दो आदमियोंने बैलका मुँह खोल कर तान लिया और चतुर सियानेने एक एक करके दोनों फाँस बैलके ऊपरके जबड़ेके सख़्त मसूड़ेके पीछे तालूके पासही छोटे छोटे छिद्रोंमें दे दीं और कहा "वह भी हो गया, जब यह लकड़ी फूल जायँगी छेद बन्दहो जायँगे।"

पूछने पर मालूम हुआ कि यह छेद सभी बैलोंके होते है। एकने कहा बाबू यह छेद 'बरमण्ड–तक जाते हैं, इनसे पानी पीते समय पानी नाकमें चढ़ता है और माथेमें पहुँच जाता है।

मै सोचने लगा कि "यह अजब ईश्वरकी रचना है, कि मुखमें एक जीभके अग्र भाग पर ब्रह्माँडसे दो छिद्र ईश्वरने खोले हैं। क्या यही ब्रह्मरन्ध्र तो नहीं है, जो मनुष्य शरीरमें किसी कारणसे लुप्त हो गये है।"

अब तीसरी गलेकी चिकित्सा भी सुनिये। एक आदमी इसी बीचमें एक लोहेकी पत्ती गरम कर लाया। दो आदमियोंने बैल का मँह खोलकर तान लिया। तीसरेने जीभ पकड़ कर बाहर निकाली और चौथे सियानेने लोहेकी गरम पत्तीसे जीभके मूल भागमें दाग़ दिया। अब दाग़ तो दिया पर उतनेसे तो काम पूरा नहीं हुआ जाता था। सियानेने अपने हाथसे लोहेकी पत्ती फैंक कर बैलके गलेमें हाथ डाला और जिस भागको दागा था वहाँका दगा हुआ चमड़ा हाथसे उखाड़ बाहर फेंक दिया। वहां भी कीलके दानेसे उठे हुए थे। वह बैलके गलेमें चुभते थे। भोजन निगलनेके समय कष्ट देते थे।

अब चौथी चिकित्सा भी सुनिये। बैलके निचले जबड़े के अगले दाँत हिलते थे, मसूड़े फूले हुए थे। एक लोहेकी सींख गरम करके लाई गयी। दातोंकी जड़में मसूड़ोंको ढकता हुआ तेलमें भीगा रूईका फाया रखा गया और उस पर गरम सींख रखी गयी। फल यह हुआ कि गरम गरम तेलसे मसूड़ों पर अच्छा सेक हो गया। एक ने बिना रूईके दाँतों पर गरम सलाख छुआना चाहा तो दूसरेने कहा–"अनाड़ी, क्या कभी बगैर तेल वाली रूईके भी सलाख रखी जाती है। बैलके मसूड़ोंमें जखम हो जायगा।"

मैंने उस समय कहा कि यह बे–पढ़ोंकी विद्या है। इस पर दो एक खिलखिला उठे और मैने भी अपना रास्ता लिया।

सर्प विष*

कविराज प्रताप सिंह

प्रति वर्ष भारतवर्षमें पन्द्रहसे बीस हजार तक मृत्यु सर्प विषसे होनेकी रिपोर्ट होती है। किन्तु इस मृत्यु संख्यामें सबही मृत्यु विष धारी सर्पोंके द्वारा नहीं होतीं। इसमें ऐसी मृत्यु भी सम्मिलित कर दी जाती है कि जिनके होनेका कारण ज्ञात नहीं होता; सर्पका विष खाकर मुनष्योंके आत्मघात करनेकी रिपोर्ट अब नहीं आती; किन्तु सर्प विष खिला कर पशुओंको मारा गया है, इसकी रिपोर्ट बहुत आती है। कुछ वैद्य औषधमें प्रयोग करनेके लिए भी सर्प विषका सँग्रह करके अपने पास रखते हैं। सम्भव है कि उसमेंसे कोई मनुष्य आत्महत्या करनेके लिये प्रयोग कर ले। हिन्दू और मुसलमानोंके धर्मग्रन्थोंमें सर्पके द्वारा नर हत्या करनेके अपराधमें दण्ड विधान लिखा हुआ है। साधारणतया सर्प दो प्रकारके होते है–एक सविषद्ध दूसरे निर्विष। सविष सर्पोंकी इस समय भारतवर्षमें 29 जातियाँ विदित हैं। सविष और निर्विष सर्पोंमें यह अन्तर होता है कि सविष सर्पोंके विष ग्रन्थियाँ होती हैं और निर्विषके नहीं होतीं। यह विष ग्रन्थियाँ सविष सर्पोमें उनके ऊपरके जबड़ेमें आँखोंके पीछे इधर उधर होती हैं और एक एक नली द्वारा वह छेदवाले दाँतोंमें लगी रहती हैं। यह दाँत नलीकी शकलके या बीचमें छेद वाले होते हैं। अभी तक ऐसा कोई मार्ग निश्चित नहीं हुआ, जिसके द्वारा सविष सर्प निर्विष सर्पोंसे केवल बाह्रय आकृति देखकर ही पहिचाने जा सकें। बस एक यही उपाय है कि उनके दाँत देखे जायँ। जिनके दाँत बीचसे नली जैसे पोले हैं वह अवश्य ही विषवाले होंगे। वाह्य आकृतिकी पहिचानके लिए जन्तु शास्त्र (Zoology) का अधिक अध्ययन करना उचित है। विष वाले मुख्य मुख्य साँपोंके नाम संक्षेपसे लिखे जाते है। काला साँप (Cobra) : यह भारतवर्षमें सर्वत्र पाया जाता है और हिमालयमें भी आठ हजार फुटकी ऊँचाई तक पाया जाता है। राज सर्प (King Cobra) हिन्दीमें इसको सँकर चोर कहते हैं। यह बंगाल, मदरास, आसाम, बर्मामें अधिक पाया जाता है। इसकी लम्बाई 15 फुट तक होती है। इसकी एक और जाति होती है, जो केवल 4–1/2 फुटही लम्बी होती है। सकनी (Bangarus Fascialtus) नामक सर्प भी इसी जातिका होता है। यह छः फुटसे अधिक लम्बा होता है। बोरा नामक सर्प 4–1/2 फुट लम्बा होता है। फरसा या कायर (Keel Scaled,Viper) नामक सर्प केवल दो फुट लम्बा होता है। केरा (Hypnale nepa) काला नामक सर्प बम्बई प्रान्त और हिमालयमें मिलता है।

सबसे भयंकर विष काले सर्पमें होता हैं। उससे नीचे दूसरी श्रेणीमें बोरा नामक सर्पका विष होता है। शेष सर्प साधारण विषवाले होते है; जिनके काटने से युवा मनुष्यों और बड़े पशुओंकी मृत्यु नहीं होती। सर्पोंके विषोंका स्वरूप उनकी भिन्न भिन्न जातियों के अनुसार बदला हुआ होता है।

---

* *विज्ञान*, फरवरी 1924

यहाँ पर केवल काले सर्पके विषका कुछ वर्णन लिखा जाता है, काले सर्पका ताजा निकाला हुआ विष हल्का अम्बर रंगका द्रव पतली बारनिश जैसा होता है, जिसका अपेक्षिक गुरुत्व (Specific gravity) 1.046 होता है। यह हल्का तथा खट्टे प्रभाव वाला होता है। हवामें रखने पर शीघ्रतासे सूख कर गोन्दके समान पतलीसी पपड़ीके रूपमें जम जाता है; यदि फिर इसको निकाला जाय तो इसके छोटे–छोटे टुकड़े अथवा दानेसे बन जाते है; जिनमें तिक्त गन्ध होती है, और श्लेष्म धरा कला (Mucous membranes) पर लगानेसे उत्तेजना (Irrifation) करता है। सूखा हुआ सर्प विष पानी में घुल जाता है और इस प्रकार यह जलीय घोल तीव्र विष हो जाता है। यह सूखा हुआ विष बिना विकृतिके चिरकाल तक रह सकता है। उबालने पर भी इस विषके प्रभाव में कुछ कमी नहीं होती।

सर्प विषका प्रभाव और लक्षण : शरीरके ऊपर इस विषका प्रभाव भिन्न–भिन्न जातिके सांपोंके काटनेसे भिन्न भिन्न प्रकारसे होता है। इस विषके प्रभावको जाननेके लिए अनेक प्रकारके उपाय किये गये है। सबसे प्रथम लोग जानवरोंको साँपसे कटवाकर उनके लक्षणोंका ज्ञान प्राप्त करते थे। दूसरा उपाय यह था कि सर्प विषको एकत्रित करके उसमेंसे नियत मात्र पिचकारी द्वारा पशुओंके शरीरमें प्रवेश कराकर उनकी दशाओंका ज्ञान प्राप्त करते थे। यह दूसरी विधि अच्छी मानी जाती थी। सर्प विष शरीरमें स्थानीय तथा व्यापक दोनों प्रकारका प्रभाव उत्पन्न करता है। किसी विशेष स्थानके व्रण पर लगानेसे तुरन्तही भयंकर दाह उत्पन्नहो जाता है और तदनन्तर शोथहो जाता है। यदि इसको आँख इत्यादिकी श्लेष्म धरा कलापर लगाया जाय तो उत्तेजना उत्पन्न करता है।

दूरवर्ति प्रभाव : इसका प्रभाव वात संस्थान और रक्त या दोनोंपर एकही बार पड़ता है; यह व्रण द्वारा अथवा आमाशय की श्लेष्म धरा कला द्वारा रक्तमें मिलता है।

दीर्घकालिक प्रभाव : काले साँप और समुद्री साँपोंके विष का प्रभाव विशेष कर वात संस्थान पर ही पड़ता है। हिन्दुस्तानी फणधर साँपोंके विषका प्रभाव विशेषतया रक्त पर पड़ता है। इससे यह सिद्ध होता है कि साँपोंके विषमें दो मुख्य प्रकारके सत्व भिन्न–भिन्न कार्य करने वाले होते हैं, जिनमेंसे पेपटोन (Peptone) नामक विष–सत्व शरीरके धातुओंपर प्रभाव करता है, जिससे शोथ तथा रक्त विकृतिहो जाती है। दूसरा Globulin नामक सत्व वात संस्थानपर प्रभाव करता है, जिससे हृदय और श्वासाशयको लकवा मार जाता है।

वात संस्थान पर प्रभाव : सर्पके काटनेसे कुछ देर पश्चात् घात नाड़ियों पर विष लक्षण प्रकट होते है। काले साँपके काटनेके पश्चात् प्रायः मनुष्यपर 15 मिनटसे आधे घन्टेके अन्दर विषका प्रभाव हो जाता है; यदि किसी कारण से विष न्यून हुआ तो इस समयमें कुछ अधिकता भी हो जाती है। काले सर्पके काटनेके पश्चात् मनुष्यके वात संस्थानपर इस भांतिका प्रभाव आरम्भ होता है कि प्रथम उसको नशासा प्रतीत होता है; फिर पैरोंकी शक्ति नष्ट होने लगती है, जिसके कारण रोगी खड़ा होना चाहे तो गिर पड़ता है। शक्ति नाश होनेकी क्रिया अन्य माँसों पर भी प्रभाव करती है; विशेषकर जीभ और गलेके माँस शीघ्र बेकार हो जाते है, जिससे बोलना और निगलना बन्द हो जाता है। मुखसे लार टपकने लगती हैं; थूकनेकी शक्ति भी नष्टहो जाती है, फिर सारे बदन पर लकवा मार जाता है; श्वास क्रिया मन्द होने लगती है और धीरे–धीरे श्वास घुटकर दम निकल जाता है; किन्तु श्वास क्रिया रुकनेके बाद भी कुछ देर तक हृदयकी गति होती रहती है। सांपके काटनेपर कभी कभी उतक्लेद और वमन सबसे प्रथम दृष्टिगोचर होते है। आंखके तारकोंपर भी कुछ प्रभाव पड़ता है। यदि सर्प विष बड़ी मात्रामें शरीरके अन्दर प्रवेश हो जाय तो 20 से 30 मिनटके अन्दर मनुष्य मर जाता है। वात संस्थान पर इस प्रकारके लक्षण अन्य जातीय साँपोंके काटनेसे भी होते है; किन्तु उनमें विष कम होनेके कारण यह लक्षण चिरकालके बाद दृष्टि पड़ते हैं।

रक्त पर प्रभाव : रक्तका विकृतिके लक्षण सर्प विषकी मात्राके ऊपर निर्भर है। यदि रक्तमें सर्प विष प्रवेश करा दिया जाय तो शीघ्रही श्वासकी गति तीव्रहो जाती है और हाथ पैरोंमें बहुत ऐंठन होकर कभी कभी मनुष्य शीघ्रही मर भी जाता है। साँपका विष जब रक्तमें मिल जाता है तब रक्तका जमाव बन्द हो जाता है और सर्प दंशके स्थानसे बराबर रक्त जारी रहता है। मुख, नासा, नेत्र और कानकी श्लेष्म धरा कलासे भी रक्त प्रवाह होने लगता है। शरीर सूजकर काले काले चिकत्ते पड़ जाते है। काले सर्पका विष भयंकर रक्त पित्त उत्पन करता है और चिरकालके लिए रक्तकी जमनेकी शक्तिको नष्ट कर देता है। रक्तके लाल कणोंसे हीमोग्लोबिन नामक वस्तुको विष नष्टकर देता है किन्तु उसका घातात्मक प्रभाव वात संस्थान परसे कमहो जाता है। वात संस्थानके विष लक्षण समाप्त होने पर भी रक्तपर विषका प्रभाव रहता है, जिससे क्षीण होकर मनुष्य मर जाता है। यदि किसी मनुष्यके शरीरमें सर्प विषसे मरे हुए मनुष्यकां रक्त प्रवेश करा दिया जाय तो वह उसको मार देगा। किन्तु साँपके काटे हए जीवधारी का माँस खानेसे कुछ हानि नहीं होती। परन्तु यदि किसी माताको सर्प काट खाय और फिर उसका बालक उसका दूध पीवे तो बालक मर जाता है।

फणधर (Cobra) सर्पके काटे हुए रोगीके लक्षण : एक कुलीके बाहु पर आधी रातके समय सर्पने काटा। काटनेपर तुरन्तही उसको कटे हुए स्थानपर शूल और दाह प्रतीत होने लगा और यह बढ़ताही गया। 15 मिनटके पश्चात् उसको नशासा प्रतीत होने लगा, किन्तु बातें पूछनेपर प्रश्नोंका उत्तर बराबर देता रहा। नेत्रके तारका नाड़ी और श्वासकी गति स्वाभाविक थी। उसके बादमें पैरोंकी शक्ति नष्ट होने लगी और वह काँपने लगा; तीस मिनटके बाद उसके नीचेका जबड़ा लटक आया और मुखसे झागदार चिकना थूक निकलने लगा। वह उस समय तक साफ बोलता रहा। किन्तु उसके पैरोंका फालिज बढ़ता ही गया। सर्पके काटनेके 40 मिनटके पश्चात् सिरको इधर–उधर पटकने लगा। श्वास और नाड़ीकी गति कुछ अधिक बढ़ गई; किन्तु वैसे वह बराबर होशमें रहा और प्रश्नोंका उत्तर भी देता था; हाथोंमें लकवेका प्रभाव नहीं हुआ था। श्वासकी गति क्रमशः मन्द होती चली गई; काटनेसे एक घन्टा 10 मिनटके पश्चात् श्वास बन्दहो गया परन्तु हृदयकी गति श्वास बन्द होनेसे 1 मिनट बाद तक होती रही।

दूसरा उदाहरण : एक बार एक 40 वर्षकी आयुके मुसल्मानकी हाथकी अंगुलीमें त्लेमससे टपचमत नामक सर्पने काटा। कटे हुए भागको उसी समय बाँध दिया गया। शक्तिप्रद ओषधियोंका प्रयोग आरम्भ कर दिया, हाथ और सारी बाँह बहुत सूज गई, उसी दिन उसके मल द्वार और मूत्र द्वारसे रक्त बहने लगा। दूसरे दिन वह अधिक रोगी प्रतीत होने लगा और रक्त दोनों मार्गोंसे बराबर आता रहा। इसी प्रकार आठ दिन तक बराबर रक्त जारी रहा और नव दिन मर गया।

शव परीक्षा : सर्प विषसे मरे हुए मुरदेके शरीरपर साँपके दाँतोंके चिह्न सावधानीसे देखने चाहिये। यदि वह मिल जायँ तो उस स्थानको तथा उसके आसपासके स्थानको खूब अच्छी तरहसे देख लेना चाहिये। जिस स्थानमें विष प्रवेश हुआ होगा वहाँ रक्तका सीरम (Bloody Serum) निकला दृष्टि पड़े तो अवश्यही सर्पका विष प्रवेश होनेका प्रमाण है; दाँत लगे हुए स्थानके आसपासके धातु कुछ बैंजनी रंगके हो जाते है। आन्तरिक अवयवोंका केवल यही परिवर्तन प्रतीत होता है कि शरीरका रक्त अस्वाभाविकतासे तरल हो जाता है। बृक्क, फुस्फुस और यकृत स्वाभाविक अथवा अधिक रक्त युक्त दिखाई पड़ते हैं।

प्रतिविष और चिकित्सा : इसके कारण अधिक संख्यामें भयंकर मृत्यु होनेसे और इस विषके शीघ्र मारक होनेके कारण लोगोंने इसके प्रतिविष ढूँढनेमें बहुत परिश्रम किया है; इस कारण सर्प विषकी अनेक औषधें प्रचलित हैं, परन्तु उनमेंसे पोटासियम परमैंगनेटके सिवाय और कोई

औषध अधिक फलप्रद सिद्ध नहीं हुई। यह औषधभी वस्तुतः उत्तम प्रतिविष नहीं है। यह जब विषके साथ मिल जाती है तो उस विषको नष्ट कर सकती है, अन्यथा जब सर्प विष रक्तमें प्रविष्ट हो जाय तब यह औषध उसको नाश करनेमें समर्थ नहीं होती। डाक्टर बैडल तथा अन्य विद्वानोंने चिरकाल तक परिश्रम करके यह जाना है कि विषधर सर्प जब किसी वस्तुको काटता है तो उसकी विष ग्रन्थियोंसे निकला हुआ विष उसके शरीर और कटी हुई वस्तु दोनोंके शरीरमें प्रवेश करता है। कटा हुआ जीव उस विषके प्रभावसे मर जाता है; किन्तु सर्प नहीं मरता। इस बात पर विचार करनेसे यह निर्णय हुआ कि सर्पके अन्दर थोड़ा–थोड़ा विष जाते रहनेके कारण उसको क्षमता (Immunity) प्राप्त हो जाती है। यदि मनुष्यके शरीरमें भी सीरमके द्वारा यही क्षमता उत्पन्न कर दी जाय तो उस पर भी सर्प विषका प्रभाव न हो सकेगा। इस कार्यके लिये अधिकतर घोड़ोंके शरीरमें कई बार इन्जेक्शन द्वारा, अल्प मात्रामें सर्प विष प्रवेश कर उनमें विष क्षमता उत्पन्नकी जाती है; तदनन्तर उनके रक्तका सीरम निकाल कर प्रयोग करते हैं उसको ऐंटीवीनीन Antivenene कहते हैं। इसका प्रयोग करनेसे यह अनुभव हुआ है कि Cobra विषधर सर्पके विषसे उक्त विधि द्वारा तैय्यार किया हुआ सीरम दूसरे विष वाले साँपके विषपर प्रभाव नहीं करता है। इस कारण विशेष शोधके पश्चात् यह उपाय निकाला गया है कि 80 प्रतिशत अस्सी हिस्सा कोबरेके विषके सीरमके साथ बीस हिस्सा अन्य विषधारी साँपोंके प्रतिविष सीरम मिलाकर प्रयोग किया जाय। यह प्रयोग अन्य प्रयोगोंकी अपेक्षा उत्तम सिद्ध होनेके कारण अब सरकारी सदर अस्पतालोंमें सर्प विषकी चिकित्साके लिए किया जाता है किन्तु यह भी अति शीघ्र विकृतहो जाता हैं।

स्थानीय चिकित्सा : इसके विषमें किसी दशामें भी स्थानीय चिकित्साकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। सर्प दंशको चूसना, दंशके ऊपर खूब मज़बूत बन्द लगाकर बाँधना, पोटासियम परमैंगनेटके द्रव द्वारा घावको खूब अच्छी तरह धोना या कपड़ा भिगोकर उस पर रख देना, दंशपर चीरा लगाकर घावके खूनको बहने देना–यह उपाय सबसे उत्तम और मुख्य है। यदि लक्षण अधिक उग्रहो जायँ तो कृत्रिम श्वास प्रश्वास क्रिया प्रारम्भ कर दें और बिजलीका प्रयोग करें।

सर्प विषसे पशुओंकी हत्या : जो मनुष्य चमड़ेका काम करते है वह सर्प विषके प्रयोगसे चमड़ेके लिए पशुओंको मारते हैं। भारतवर्षके वैद्य और हकीम ओषधिके लिए सर्प विषको अपने यहाँ रखते है। पशु मारने वाले उनसे चुराकर इस कामके लिए इसका प्रयोग करते हैं। अथवा साँपको एक मिट्टीके घड़ेमें बन्द करके उसमें एक केलेकी फली डाल देते है। फिर उस घड़ेको आगपर गरम करते हैं जिससे दुखी होकर साँप केलेकी फलीको कई बार काटता है। उसी विषको निकाल कर फिर सुखाकर कपड़ेमें लगाकर पशुओंके मल द्वारमें प्रवेश कराते है। कई स्थानपर मरे हुए पशुओंके मल द्वारसे निकाले हुए कपड़ेकी निम्नलिखित विधिसे परीक्षाकर साँपके विषका पता लगा है–कभी कभी ग्रामीण लोग सर्प विषके स्थानमें आकके दूधका भी उक्त विधिसे प्रयोगकर पशुओंकी हत्या करते है।

सर्प विषकी परीक्षा : अल्प मात्रामें सर्प–विषका जलीय घोल अथवा सर्प विष सन्देह वाले कपड़ेका निचोड़, मारक मात्रामें दो मुर्गोंके शरीरमें अथवा दो खरगोशोंके शरीरमें भिन्न भिन्न मात्राओंमें इन्जेकशन द्वारा प्रवेश करा दिया जाय और फिर एन्टीवीनीन सीरमकी समान मात्रासे प्रयोग किया जाय तो मुरगे या खरगोशपर विष का कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा।

आयुर्वेद का प्राचीन इतिहास*

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

संसारमें जितनी चिकित्सा–प्रणाली प्रचलित हैं, उनके इतिहासको देखें तो ज्ञात होता है कि वह सबप्रचलित आयुर्वेदिक–चिकित्सा–प्रणालीकी ऋणी हैं। जिस यूनानी और डाक्टरी पकृतिपर संसारको गर्व है, उनमें अब तक आयुर्वेदकी प्राचीन–पुस्तकोंका अनुवाद मिलता है; जिससे ज्ञात होता है कि वह प्राचीन–कालमें इससे लाभ उठाते रहे। उनकी चिकित्सामें परिवर्तन अवश्य हुए हैं, उनको देखकर यूनानी या डाक्टरी चिकित्सा पर जब विचार करते हैं, तो यही जान पड़ता है कि इनकी चिकित्सा–प्रणाली आयुर्वेदसे नितान्त भिन्न हैं; किन्तु यह बात नहीं है। जब हम संसारकी चिकित्सा प्रणालीके इतिहास और उत्पत्तिको ढूंढ़ते हैं तो सबका श्रोत इसी आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणालीसे निकला हुआ पाया जाता है। इनका जन्म भी हजार बारह सौ वर्षसे अधिकका नहीं मिलता; चीन और मिश्रकी भी चिकित्सा–प्रणाली तीन चार सहस्र वर्षसे अधिककी नहीं सिद्ध होती। डाक्टरी और यूनानी विचारोंका तो कहना ही क्या।

इसके विपरीत जब आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धतिके इतिहासकी खोज करते हैं, तो रूस, मिश्र आदि देशोंमें प्राप्त हस्तलिखित पुस्तकों, शिलालेखों आदिसे, विज्ञोंकी सम्मतिके अनुसार, हम इस परिणामपर पहुंचते हैं, कि यह आयुर्वेदिक चिकित्सा–प्रणाली कमसे कम सात आठ सहस्र वर्षसे कमकी पुरानी नहीं, अधिककी हो तो आश्चर्य नहीं। इससे सिद्ध होता है कि किसी न किसी रूपमें सबकी जन्मदात्री यही सिद्धहो सकती है।

इस पद्धति का जन्म कहाँ हुआ?

आयुर्वेदके इतिहासपर विचार करनेसे पूर्व यह देखना है कि इसका जन्म कहाँ हुआ, और इसके जन्मदाता कौन थे। अब, बड़ी भारी खोजसे यह सिद्धहो रहा है कि भारतवर्ष आर्य पुरुषोंकी पूर्व भूमि नहीं; यदि होती तो आज एक शताब्दीसे भारतके भिन्न भिन्न प्रान्तमें प्राचीन पदार्थोंकी खोज होते रहनेपर भी महाभारतके पूर्वका कोई शिलालेख या प्रस्तरीभूत कोई और चिह्न मिलता, जैसा कि मिश्र आदि और देशोंमें मिलता है। किन्तु, चार पाँच सहस्र वर्षसे अधिकका कोई भी चिन्ह आज तक नहीं देखा गया, जिसको देखकर कहा जा सके कि यह पूर्वस्थ मनुष्योंके होनेका चिह्न है या उनकी पूर्वस्थका द्योतक हैं। दूसरे हमारे प्राचीन धर्म ग्रन्थ वेद, और ब्राह्मण भाग भी आर्य जातिकी उत्पत्तिका स्थान कहीं सुमेरु पर्वत मालाके उत्तरकी ओर सूचित करते हैं। तीसरे आयुर्वेदकी प्राचीन संहितायें भी इसी बातकी साक्षी देती हैं।

---

* *विज्ञान*, अप्रैल 1924

आजसे कुछ समय पूर्व तक यह कोई निश्चय न कर सका कि आर्य पुरुषोंकी पूर्व भूमि कौन सी है। किन्तु इसकी खोज होती रही हैं। हर्षसे कहना पड़ता है कि खोज करने वालोंने रशिया (रूस) के एक विभागमें संस्कृतके कई ऊँट प्राचीन पुस्तक और कितनेही प्राचीन शिलालेख कई स्थानोंसे खोज निकाले हैं और उक्त प्रमाणोंके आधारपर अनुसन्धानके पश्चात् यह सिद्धकर दिखाया है कि आर्य पुरुषोंकी आदि भूमि कोई हो सकती है, तो वह यह है। दूसरे उक्त शिलालेखों और प्राचीन–पुस्तकोंसे भिन्न, मिश्रकी नील नदीके तट बसी हुई कई जातियोंकी बोली, भाषा , रहन–सहन तथा व्यवहार, बहुत कुछ आर्य पुरुषोंकी भाषा, रहन–सहन और व्यवहारसे मिलता जुलता देखा जाता है। और उनकी देशभाषामें अब तक बहुतसे संस्कृतके अपभ्रंश शब्द पाये जाते हैं; जिनको ठीक ठीक बतलाया जा सकता है कि यह अमुक संस्कृत–शब्दोंके अपभ्रंश हैं। कहाँ तक बतलावें खोज करने वालोंका अनुमान है कि यदि खोजकी जाय तो संस्कृत साहित्यके द्वारा इतिहासका बहुत सा मसाला मिल सकता है। इससे भिन्न एक डाक्टर साहबने रशियाकी कुछ आर्य जातिके रक्त–कणोंकी और भारतके आर्य जातिके रक्त कणोंकी परीक्षा करके बतलाया है कि इन दोनों भिन्न देश निवासियोंके रक्त कणोंमें चावल भरका अन्तर नहीं है। इसीके आधारपर उक्त डाक्टर साहबका कथन है, ऐसा विश्वास होता है कि इन दोनों जातिके पूर्व पुरुष एक थे। खैर ! जो हो जैसा जैसा समय व्यतीत होता जाता है आर्य पुरुषोंका एशिया देशके साथ पूर्वमें घनिष्ठ सम्बन्ध होनेके अनेक प्रमाण मिलते जा रहे हैं। ऐसेही प्रमाणोंके आधारपर हम यह बड़े जोरके साथ कह सकते हैं कि आर्य पुरुषोंकी भूमि आर्यावर्त्त नहीं है; प्रत्युत, रूस–देश या उसीके समीपका कोई भाग है जिसको सुमेरु पर्वतका उत्तरीय भाग कहते हैं। आर्य पुरुष किसी समयमें वहींसे आकर इस भारत–भूमिमें आबाद हुए।

इसका प्रबल प्रमाण

आर्य पुरुषोंके दूसरे देशसे यहाँ आकर बसनेका सबसे प्रबल प्रमाण हमको आयुर्वेद–शास्त्रमें मिलता है। हमको उन ग्रन्थोंमें निश्चय रूपसे लिखा मिलता है कि जो ऋषि महर्षि इस चिकित्साके प्रवर्त्तक थे वह इस चिकित्साको स्वर्ग (मेरूके उत्तर देश) से लाये।

इसका आगमन कैसे हुआ?

पूर्वकालके किसी समयमें जब आर्यपुरुषोंका एक समूह फिरता फिरता इस भारत भूमिमें आ निकला तो उन्होंने इस देशको सर्वगुण सम्पन्न, सभ्य समाजसे शून्य देखा, क्योंकि पूर्व कालमें यहाँ कोल, भील आदि दो चार जंगली जातिके अतिरिक्त कोई संगठित सभ्य समाज न था। यह देश उनको अच्छा लगा। यहाँकी जलवायु और परिस्थिति अनुकूल दिखाई दी। सबसे पहले उन्होंने गंगा यमना नदियोंके तटपर निवास किया और अपने निवास स्थलको आर्यावर्त्त (अर्थात् आर्योंके आने जानेकी जगह) नामसे सम्बोधित किया। उस भूमिको ही उन्होंने पवित्र और और श्रेष्ठ भूमि माना और अपने धार्मिक ग्रन्थोंमें इस आर्यावर्त्त भूमिकी सीमा भी निश्चितकर दी। किन्तु, कुछ कालके बाद जैसे जैसे उनकी वृद्धि होती गई आर्यावत्तकी सीमा बढ़ती गयी। धीरे धीरे उनकी इतनी वृद्धि हुई कि वह इस देशके भिन्न भिन्न स्थाानोंमें परिणत हो गये। किन्तु वह यहाँ आजसे कितने समय पूर्व आये, इस बातका अभी तक कोई निश्चय नहीं कर सका।

जब आर्य पुरुषोंका समूह इस देशमें आया तो कुछ काल रहनेके पश्चात् यहाँके देशकाल तथा परिस्थितिके प्रभावसे उनमें कई नई व्याधियोंका प्रादुर्भाव हुआ। प्रति वर्ष धीरे धीरे इन

व्याधियोंका प्रभाव बढ़ता गया। यद्यपि इनके साथ आये हुए अच्छे अच्छे योग्य चिकित्सक थे; किन्तु उनसे इन नई व्याधियोंका समुचित उपाय न हो सका। व्याधियोंका प्रभाव बढ़ता ही गया। प्रतिवर्ष इनसे जनता दुख उठाती रही। अन्तमें जनताने देखा कि हमारे चिकित्सक इन व्याधियोंसे रक्षा करनेमें असमर्थ हैं। प्रतिवर्ष सहस्रों मनुष्योंके प्राण संकटमें पड़ जाते हैं। वह दुखी और खिन्न हृदयहो अपने पूज्य तपोवन ;षियोंके पास जाकर पहुँची; और कहने लगी–हे भगवन् ! हम सब इस देशमें आकर उतने सुखी नहीं हुए जितने अनेक कष्टसाध्य व्याधियोंसे दुखी होते हैं, इन व्याधियोंका निवारण नहीं होता इसका क्या कारण है? यदि हम सबकी यही दशा रही तो जीवन कठिन हो जायगा; इसलिए कृपासिन्धों, हम सबको इन दुखोंसे छुड़ाइये, रक्षा कीजिये, अब सिवा आपके हमारा कोई नहीं। इस तरह जनताकी दुख भरी बातें सुन और उनको अत्यन्त दुखी देख, उन दयालु ;षियोंने समग्र चिकित्सकोंको विधान एकत्र करके इस विषयपर विचार किया। किन्तु वह सबके सब इन नई व्याधियोंको पूर्णतया समझने और चिकित्सा क्रम निर्धारित करनेमें असमर्थ देखे गये। अन्तमें सब इस निश्चय पर पहुँचे कि इनमें कोई भी व्यक्ति इन व्याधियोंको नहीं हटा सकता, न कोई इस विषय का पूर्ण ज्ञाताही हो सकता है। इस समय इन व्याधियोंको जानने वाला कोई व्यक्ति कहीं है, तो वह अपनी प्राचीन भूमिमें राजा इन्द्र है। उनको इन सब व्याधियोंका अच्छी तरह ज्ञान है और वही इनकी ठीक ठीक चिकित्सा बता सकेंगे। इसलिये यदि कोई महात्मा हिमालयके संकट–पूर्ण पथको तय करके उनके पास जावे और उनसे इन व्याधियोंका चिकित्सा क्रम सीखकर आवे, तो निस्तारहो सकता है; अन्यथा नहीं।

इस बातको सुनकर परम दयालु महर्षि भरद्वाज जी जानेके लिए तैयार हुये। उन्होंने कहा कि हम संसारके कल्याणार्थ वहाँ जाकर इन व्याधियोंकी चिकित्सा सीखकर आयँगे, आप सब चिन्ता न करें। वह धैर्य्य देकर चल पड़े, धीरे धीरे हिमालय की पर्व्वत भूमि पार करते हुए सुमेरु पर्व्वत मालाको पार करके, अपनी प्राचीन भूमि देवलोकमें जा पहुँचे। वह लोक बड़ा दिव्य था, हर एक प्रकारका दैवी सुख मिलता था, उस भूमिको देखकर भरद्वाज जी बड़े प्रसन्न हुए। धीरे धीरे चलते हुए, राजा इन्द्रकी राजधानी स्वर्गमें वह जा पहुँचे। जब राजा इन्द्रको ज्ञात हुआ कि हम सबके वयोवृद्ध पूज्य भरद्वाज ;षि आर्यावर्त्तसे आये हैं तो एक माननीय पूर्व पुरुषको आया जान बड़े हर्ष और सत्कारसे उठकर मिला। यथा योग्य सत्कार सेवा पूजाके पश्चात् उनके आगमनका कारण जानना चाहा, जिसको उन्होंने यथावत् कह सुनाया। राजा इन्द्रने बड़ी प्रसन्नताके साथ उनको चिकित्सा शास्त्रके मर्म बताये; और नई नई व्याधियोंके उद्धत होनेपर उनके इलाजका क्रम बताया। भरद्वाज जी को जिन बातोंके जाननेकी आवश्यकता थी वह सब उन्होंने अच्छी तरह समझ ली; जब वह अपनी संतुष्टि अच्छी प्रकार कर चुके तो इन्द्रसे बिदा होकर आर्यावर्त्तमें लौट आये। और यहाँ जाकर उक्त नई विधियोंसे जनता के बहुत कुछ दु:खका निवारण किया।

जिस समय भरद्वाज जी इस देशमें वापस आये, और उनके नूतन चिकित्सा क्रमका पता यहाँके वैद्योंको लगा, तो अनेक ;षि, महर्षि और चिकित्सक अपने अपने स्थानोंसे चलकर उनके आश्रमपर एकत्र हुए। उनमें भिन्न–भिन्न प्रान्तोंसे आये हुये निम्नलिखित प्रसिद्ध व्यक्ति थे। अंगिरा, जमदग्नि, वशिंष्ठ, कश्यप, भृगु, आत्रेय (पुनर्वसु), गौतम, सांख्य, पुलस्त्य, नारद, असित, अगस्त्य, कामदेव, मारकण्डेय, आश्वलायन, पारिक्ष, भिक्षु आत्रेय, दूसरे भारद्वाज, कपिन्जल, विश्वामित्र, अश्वरथ्य, भार्गव च्यवन, अभिजित, गर्ग, साँडिल्य, कौण्डिल्य, वरर्क्षा, देवल, गालव, सांकृत्य वैजवापि, कुशिक, बादरायण (व्यास), वडिश, शरलोम, काप्य, कात्यायन, काँकायन, कैशकेय, धौम्य, मरीचि, कश्यप शर्कराक्ष, हिरण्याक्ष, लौकाक्षि, पैंगि, शौनिक, शाकुनेय, मैत्रेय, मैमतापनि, वैखानस और वाल्य खिल्य आदि। भरद्वाज जी से इन सबने क्रम क्रमसे नूतन चिकित्सा पद्धति

विषयक अनेक सिद्धान्तोंको पूछा और बहुतोंने उनकी सेवामें रहकर चिकित्सा सम्बन्धी क्रमको सीखा। जो विवादास्पद विषय थे उन पर यह सब मिलकर खूब विचार करते रहे, चिकित्साके ऐतिहासिक लेखकोंके लिखे ग्रन्थोंसे पता लगता हैं कि जब भरद्वाज ऋषि आयुर्वेदिक चिकित्साका विशेष प्रचारकर रहे थे, उस समय भिन्न भिन्न चिकित्सकों द्वारा व्यवहृत होने वाली चिकित्सा पद्धति सर्वमान्य सिद्धान्तपर स्थिर न थी; प्रत्युत हर एक चिकित्सक व्याधियोंके कारण भिन्न भिन्न मानकर इच्छानुकूल या परम्परानुकूल चिकित्साका क्रम नि ारित करता था। यह विवाद भरद्वाज जी के पश्चात् भी बहुत काल तक बना रहा। जिसका, भरद्वाज जी के सर्वश्रेष्ठ शिष्य आत्रेयजीके समयमें जाकर निर्णय हुआ। इसका सप्रमाण वर्णन 'त्रिदोष स्थापना' नामक किसी अगले लेखमें करूंगा।

आयुर्वेदकी उत्पत्ति

आयुर्वेदकी प्राचीन संहिताओंमें लिखा है कि सर्वप्रथम इस चिकित्साके आविष्कारक, और प्रवर्त्तक ब्रह्मा जी हुए; जिन्होंने इस चिकित्सामें इतनी उन्नतिकी थी कि इसपर एक लक्ष श्लोकोंमें पूरी होने वाली ब्रह्म नामकी संहिता बनाई और उसको अपने सबसे बड़े पुत्र दक्ष प्रजापतिको पढ़ाई। वह दक्ष प्रजापति भी इस चिकित्साक्रममें, इतने दक्ष हुए कि अपने पिताके लिखे उक्त विस्तृत ग्रन्थको सार रूपसे निकाल दस सहस्र श्लोकोंमें कर दिया। और उसका नाम 'दक्ष प्रजापति संहिता' रखा। इनसे अश्वनी कुमार नामक बड़े प्रताप–शाली व्यक्तिने आयुर्वेद शास्त्रको सीखा। वह भी इस विद्यामें इतने प्रवीणहो गये कि कटा हुआ दक्ष प्रजापतिका सिर जोड़ दिया, राजा चन्द्रदेवको क्षीण हुए यक्ष्मा रोगसे बचा लिया, चक्षुहीन अत्यन्त कामी च्यवन ऋषिपर प्रसन्न होकर उनकी इस योग्यतासे चिकित्साकी कि गई हुई युवावस्था तथा चाक्षुष शक्ति पुनः प्राप्तहो गई। उस देशमें उस समय इनकी इतनी ख्याति बढ़ी कि वहाँका राजा इन्द्र अपनी अवस्थाको स्थिर रखनेकी इच्छासे अश्विनी कुमार जी का शिष्य बन गया और उनसे चिकित्सा क्रम सीखनेकी इच्छा प्रकटकी, उन्होंने सहर्ष स्वीकारकर सब कुछ सिखा दिया। प्राचीन ग्रन्थोंसे पता लगता है कि अश्वनी कुमार जी ने भी अपने नामकी आयुर्वेद संहिता निर्म्माणकी थी।

जीवन की उत्पत्ति*+

गोवर्द्धन लाल

पृथ्वी का जीवन शून्य युग – हम पृथ्वी की आदिम गर्जन तर्जनमय अवस्था का वर्णन कर चुके हैं। हम उसी लेख में यह भी बतला चुके हैं कि आदि समय में पृथ्वी गैसों के मोटे और धूम्रमय स्तर से घिरी हुई थी। उस समय सूर्य की किरणें इस गाढ़ी गैस की बदली को फोड़कर भूपृष्ठ तक नहीं पहुंच सकती थीं। उस समय पृथ्वी पर सदैव रात ही बनी रहती थी, दिन कभी होता ही न था। धीरे–धीरे वर्षा होने लगी; बदली फट गई; आसमान साफ हो गया और भगवान् अंशुमाली की रश्मियों से पृथ्वी प्रोद्भासित हुई। इसी समय पृथ्वी के जीवन–इतिहास में एक अपूर्व घटना हुई। पृथ्वी गर्भवती हो गई। उसने जीवधारियों को जन्म दिया।

जीवन की उत्पत्ति का प्रश्न बहुत नाजुक है – बहुत से वैज्ञानिकों की राय है कि पृथ्वी के इतिहास में ऐसा युग भी अवश्य था, जब पृथ्वी के ऊपर किसी तरह का जीवन विद्यमान न था। वैज्ञानिकों ने यह तय किया है कि आरंभ में पृथ्वी खौलते हुए जल से चौदह हज़ार गुना अधिक गरम थी। ऐसी अवस्था में किसी प्रकार का जीवन संभव नहीं, यह स्वयंसिद्ध है। अतएव पृथ्वी के ठंडे और जीवन के धारण कर सकने के योग्य होने पर ही जीवन की उत्पत्ति हुई होगी।

जीवन की उत्पत्ति कब हुई? – अब प्रश्न यह है कि पृथ्वी के ऊपर जीवन की उत्पत्ति कब, कहां और क्यों कर हुई। प्रश्न बहुत कठिन, टेढ़ा और नाजुक है; क्योंकि यह प्रश्न केवल वैज्ञानिक क्षेत्र का ही नहीं, धार्मिक क्षेत्र के भी अंतर्गत है। परंतु इस लेख में इस विषय पर कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि पूर्व लेख में हम धर्म और विज्ञान के संबंध पर कुछ विस्तारपूर्वक लिख चुके हैं।

पृथ्वी के ऊपर जीवन की उत्पत्ति कब हुई, इसका उत्तर पहले ही दिया जा चुका है, अर्थात् पृथ्वी के ठंडे और जीवन के धारण कर सकने योग्य होने पर ही यहाँ जीवन का आविर्भाव हुआ होगा। जीवन का इतिहास बहुत पुराना है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि शायद प्राचीन गरम और उथले समुद्रों के अंदर ही जीवन का आविर्भाव हो गया होगा। अनुमान किया जाता है कि जीवन का आरंभ करोड़ों वर्ष पहले जरूर हुआ है।

जीवन की उत्पत्ति कहाँ हुई, इस संबंध में वैज्ञानिकों का अनुमान है कि जीवन का आरंभ उत्तरी ध्रुव–प्रदेश में हुआ होगा। उनका कथन है कि पृथ्वी के अन्य स्थानों की अपेक्षा सबसे पहले यही स्थान ठंडा और जीवन धारण कर सकने के योग्य हुआ होगा। उनके इस अनुमान की पुष्टि

---

* *माधुरी*, 1924

\+ विकासवाद और सृष्टि की कथा–शीर्षक लेखमाला (पूर्ण संख्या 26, 28 और 31 में प्रकाशित) का तीसरा लेख

भूगर्भ–शास्त्र से भी होती है। उत्तरी अक्षांश (Latitude) के पचास–साठ डिगरी या इनसे भी बाहर के प्रदेशों में फ़ासिल (Fossil) बहुत पाए जाते हैं, और वहाँ ऐसे जीवों के पाषाणीकृत अवशेष मिलते हैं, जो गरम देशों में ही निवास कर सकते हैं। फ़ॉसिलों के निरीक्षण से यह पता चलता है कि टर्शियरी युग तक उत्तरी ध्रुव–प्रदेश नई–नई श्रेणी के जीवों की उत्पत्ति का केंद्र रहा है। कार्बोनिफ़ेरस युग में यहाँ की आब–हबा गरम, जलार्द्र, और निर्विकार थी। वनस्पतियों के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि सभी प्रकार की वनस्पतियां अपने आदिम, अनुन्नत और अविकसित स्वरूप में यहीं उत्पन्न हुई थीं।

जीवन की उत्पत्ति कैसे हुई? – अब प्रश्न यह है कि संसार में जीवन की उत्पत्ति किस प्रकार हुई? यह प्रश्न अत्यंत ही कठिन है, और विज्ञान इसका अब तक कोई असंदिग्ध उत्तर नहीं दे सका। कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि जीवन का बीज इस संसार में किसी दूसरे ग्रह से आया। लॉर्ड केल्विन के कथनानुसार किसी दूसरे संसार से किसी उल्का के द्वारा इस संसार में जीवन आया। प्रोफ़ेसर अरेनियस के कथनानुसार जीवन के बीज को एक ग्रह से दूसरे ग्रह पर पहुँचने के लिये किसी उल्का की सहायता की आवश्कयता नहीं। वह स्वयं भी एक ग्रह से दूसरे ग्रह पर पहुँच सकता है। परंतु अब यह सिद्धांत वैज्ञनिकों को मान्य नहीं है। इसके सिवा यह अनुमान असल प्रश्न का उत्तर नहीं देता। उसे सिर्फ़ टाल देता है। अधिकांश वैज्ञानिक यह मानते हैं कि इस संसार में जीवन का बीज किसी दूसरे संसार से नहीं आया, वरन् वह यहीं स्वयं, आप से आप, उदित हुआ। पहले के लेखों में संसारों की उत्पत्ति के संबंध में हमने जो कुछ लिखा है, उससे यह साफ विदित होता है कि प्रत्येक आकाशीय पिंड को निर्दिष्ट अवस्थाओं–नीहारिकामय, तप्त–तरल तथा अपेक्षाकृत घनत्व–संपन्न और अंत में ठंडी और ठोस अवस्था– से होकर गुजरना पड़ता है। अतएव यदि दूसरे संसारों में जीवन की उत्पत्ति हो सकती है, तो उसकी उत्पत्ति हमारी इस पृथ्वी पर भी जरूर ही हो सकती है इसलिये इस पृथ्वी पर जीवन किसी अन्य स्थान से नहीं आया; बल्कि वह स्वयं उदय हुआ।

जीवन आप से आप स्वाभाविक रीति से प्रस्फुटित हो सकता है – जीवन की उत्पत्ति कैसे हुई? वैज्ञानिक लोग कहते हैं विकास के द्वारा। उनका कथन है कि *जब सभी वस्तुओं के देखने से हमें यह पता चलता है कि वे विकसित हुई हैं; तब हमें यह मानने में क्या आपत्ति हो सकती है कि जीवन भी विकसित वस्तु है।* जब तक किसी अवस्था–विशेष में यह प्रमाणित न किया जाय कि विकास का नियम वहाँ काम नहीं करता, तब तक हमें यह मानने का पूरा अधिकार है कि विकास का नियम, अन्य स्थानों की तरह, वहाँ भी ज़रूर लागू होता है। चाहे हम विकास का क्रम दिखलाने में–प्रमाण देकर उसे साबित करने में–असमर्थ ही क्यों न हों। किसी ने अब तक यह प्रमाणित नहीं किया कि स्वाभाविक रीति और स्वाभाविक कारणों से आदिम जीवन का प्रस्फुटन असंभव है। रसायन–शास्त्र विद् और प्राणिशास्त्र विद्, दोनों इस बात में सहमत है कि स्वाभाविक रासायनिक रीति से जीवन की उत्पत्ति हो सकती है। अतएव हम इस बात को मानने के लिये विवश हैं कि पृथ्वी के आद्य रासायनिक द्रव्यों से जीवन का स्वभावतः जन्म हुआ है।

जीवन भी विकसित वस्तु है – परंतु यह समझना बड़ी भूल है कि संसार में *इस समय पाए जानेवाले किसी भी जीव–साधारण से–साधारण जीवाणु (Bacteria) – की भी उत्पत्ति सीधे जड़ जगत् से, रासायनिक क्रिया के द्वारा, हुई है।* इस समय पृथ्वी पर पाया जानेवाला साधारण–से साधारण जीवन भी अत्यंत प्राचीन है। वह भी युगों के निरंतर विकास का परिणाम है।इस बात को खूब स्पष्ट रूप से समझने की आवश्यकता है। वास्तव में यही कहना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है कि विकास का प्रारंम्भ–और इसलिये जीवन का आरंभ–खोजना बड़ी भूल है। जीवन का आरंभ

कभी हुआ ही नहीं। विकास–क्रिया के अनुसार धीरे– धीरे जड़ और निर्जीव पदार्थ जीवित और चेतन पदार्थ में परिणत हुआ। अतएव पृथ्वी पर 'प्रथम' जीवधारी का पता लगाने की चेष्टा करना उतना ही निरर्थक है, जितना कि प्रथम मनुष्य–आदम या हौआ–की कल्पना करना। विकास अनादि है। विकास की कोई आद्य सीमा निर्दिष्ट नहीं की जा सकती। विकास और आरंभ में स्वाभाविक विरोध है। अतएव सभी विज्ञानवेत्ता इस बात में सहमत हैं कि सबसे निचले प्रकार का जीवन–जीवन का बीज या (Protoplasm) – भी विकसित वस्तु है।

विकास की अविच्छिन्न क्रिया को सब में व्याप्त देखकर–जीवन को सरलतम स्वरूप से लेकर अत्यंत संगठित और पेचीदे मानव–शरीर के मध्य तक कार्य करते, अति सूक्ष्म और अविभाष्य परिवर्तनों के द्वारा नाना स्वरूपों को धारण करते, देखकर – हम क्योंकर विकास की कोई आद्य सीमा निर्दिष्ट कर सकते हैं? हम यह कैसे कह सकते हैं कि प्रोटोप्लाज्म विकास के बाहर है? यदि है, तो सभी जीवन विकसित वस्तु हैं; और यदि नहीं तो कोई भी जीवन नहीं। आंगिक विकास (Organic evolution) और जीवन के विकास का हाल हम आगे के लेखों में वर्णन करेंगे। यहां पर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आगे के विकास की बात में अब किसी को कोई संदेह नहीं है। कठिनाई केवल जीवन की उत्पत्ति ही में है। विकास–सिद्धांत अब अपना प्राबल्य यहाँ तक स्थापित कर चुका है कि छः दिनों में सृष्टि की रचना किए जाने तथा हर जाति के जीव और वनस्पति के अलग–अलग सृष्ट होने की कथा में विश्वास करनेवाले क्रिस्तान–पादरी भी प्रायः विकास–सिद्धांत को सर्वथा सत्य मानने लग गए है।

जीवन के विकसित होने के हमें नित्य नए प्रमाण मिलते जाते हैं–भिन्न–भिन्न प्रकार के जीवनों के बीच की परिखा[1] संकीर्ण और कहीं–कहीं एकदम भरती भी जा रही है। अनेक प्रकार के जीवन आपस में मिलते हुए चले जा रहे हैं, और इस प्रकार अपनी साधारण उत्पत्ति–एक ही उद्‌गम–स्थान से निकलने– का परिचय देते जा रहे हैं। कीड़ों और माँस–भक्षण करने वाले पौदों की उपलब्धि यह साफ बतला रही है कि वनस्पति–जगत् और प्राणिजगत् के बीच की सीमा भी एकदम स्पष्ट और अनुल्लंघनीय नहीं है। हमारे अपने देश के ही विज्ञानाचार्य प्रो. बोस ने वनस्पति–संसार और प्राणि संसार के जीवन की एकता प्रायः निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दी है। उनकी परीक्षाओं द्वारा, स्वयं उन्हीं के शब्दों में, "निर्जीव और सजीव के बीच अनुयोज्यता का सातत्य पूर्णता के साथ प्रमाणित किया गया है", एवं "प्राणिसर्ग और वनस्पति–सर्ग के बीच की दीवार भी तोड़ डाली गई है, और हम उस एकता का अनुभव करने लग गए है, जिसमें वनस्पति से लेकर उन्नत–से उन्नत जीवधारी आकर मिले है।" एक शब्द में, सभी प्रकार के जीवन एक ही जीवन–वृक्ष की डालें, पत्ते, फल और फूल हैं। परंतु हमें यहाँ इन विषयों पर ठहरने की आवश्यकता नहीं है। वनस्पति–सर्ग और प्राणिसर्ग के विकास का वृत्तांत हम आगे के लेखों में लिखेंगे।

निर्जीव और सजीव – वास्तव में सजीव और निर्जीव–जगत् के बीच का भेद इतना गहरा और स्पष्ट नहीं है, जितना वह समझा जाता है। निर्जीव और सजीव के बीच चाहे कितनी ही बड़ी भिन्नता क्यों न हो, उस भिन्नता को स्पष्ट करना सहज नहीं है। जीवन को अजीवन से और सजीव को निर्जीव से अलग करना उतना आसान नहीं है, जितना वह साधारणतः समझा जाता है।

जीवन क्या है? – जीवन क्या है? उस शारीरिक अवस्था का नाम जीवन है, जिसमें पदार्थ के कण सदा प्रवाहशील रहते है। जीवन का क़ायम रहना इस बात पर निर्भर नहीं कि पदार्थ के कण सदा एक ही अवस्था और एक ही स्थान पर विद्यमान रहें। वास्तव में वह इस पर निर्भर है कि समस्त शरीर एक ही आकार और ढाँचे का बना है, फिर चाहे उसके भीतर पदार्थ के नए कण घुसते और दूसरे कणों से मिलते तथा बाहर निकलते भी रहें। अतएव भोजन को रासायनिक क्रिया द्वारा

पचाकर शरीर में मिला लेना और व्यर्थ तथा सारहीन पदार्थ को निकाल देना जीवन का एक प्रधान लक्षण है। परंतु निर्जीव बिल्लौर या स्फटिक (Crystal) पदार्थ का एक टुकड़ा, जिसमें कई पहलू होते है भी तो इन कामों का संपादन करते हैं। ये बिल्लौर भी सजीव वस्तुओं की तरह भोजन करते हैं, अर्थात् घुले हुए पदार्थ में से विशेष प्रकार के कणों को चुनकर अपने शरीर में मिला लेते है; और शेष पदार्थों को या तो यों ही छोड़ देते हैं, या शीघ्र ही उनका बहिष्कार करते हैं। निर्जीव और सजीव–जगत् के बीच इस अद्‌भुत सादृश्य के ऊपर एक आपत्ति यह की जा सकती है कि सजीव वस्तु भोजन का शोषण अंदर से करती है, परंतु निर्जीव वस्तु बाहर से–अर्थात् इनकी वृद्धि बाहर से पदार्थों के जुड़ने से होती है। निस्संदेह यह बहुत बड़ा और प्रधान भेद है परंतु यह बात भी सजीव और निर्जीव के पूर्ण पृथक्करण में असमर्थ है। मौस. एस. लेडक नाम के एक विज्ञानवेत्ता ने अपनी परीक्षाओं द्वारा यह साबित कर दिया है कि निर्जीव वस्तु भी अंदर से भोजन का शोषण करती है। चीनी और ताँबे के सलफ़ेट द्वारा उसने 1/25 से लेकर 1/12 इंच तक कई कृत्रिम बीज बनाए। फिर उसने इस बीजों को पानी में बो दिया। इस जल में मछली के सरेस, नमक प्रभृति रासायनिक पदार्थ मिले हुए थे। इस रासायनिक मिश्रण के कारण दाना बढ़ने लगा। उसमें कोपल निकली। बीज ने पौदे का आकार धारण किया, और वह पौदे की ही तरह बढ़ने भी लगा। फिर यह भी देखा गया कि जल को स्पर्श कर लेने के बाद डालियों का ऊपर की ओर बढ़ना बंद हो जाता था। वे नीचे की ओर जल ही में फैलने लग जाती थीं, और फैलते–फैलते सिंघाड़े या सेवार की तरह जल पर बिछ जाती थीं। इसमें कोई संदेह नहीं कि बीज, डाली और पत्तियों का यह संयोग पूर्ण रूप से निर्जीव था; परंतु सजीव पौदों से इसका कितना बड़ा सादृश्य है! इस कृत्रिम पौदे की वृद्धि बाहर से पदार्थों के जुड़ने से नहीं, वरन्, वास्तविक पौदों के सदृश, भोजन का शोषण करने से होती थी।

फिर सजीव वस्तुओं की तरह निर्जीव वस्तुएँ भी वंश–वृद्धि–कार्य का संपादन करती हैं। जिस प्रकार 'अमीबा' आदि निकृष्ट दर्जे के जीव आकार के बढ़ जाने पर दो या अधिक खंडों में टूट जाते हैं, प्रत्येक खंड से नए अमीबा की सृष्टि होती है, और ये नए अमीबा भी पूर्ववत् वंश–वृद्धि कार्य का संपादन करते हैं, उसी प्रकार बिल्लौर भी इस नियम का पालन करता हुआ देखा जाता है। पूर्ण आकार प्राप्त कर लेने पर बिल्लौर का बड़ा होना बंद हो जाता है; और उसके बाद यदि इनके ऊपर फिर भी पदार्थ जमा होते हैं, तो ये पुराने बिल्लौर में नहीं मिल पाते, वरन् उनसे नए बिल्लौर की सृष्टि होती है।

देखिए, सजीव वस्तुओं के सब ज़रूरी लक्षण इन निर्जीव बिल्लौरों में भी पाये जाते हैं। सजीव वस्तुओं की तरह वे भी सार–युक्त पदार्थों का शोषण और सार–हीन पदार्थों का त्याग करते हैं, अर्थात् उन्हें यों ही छोड़ देते है। सजीव वस्तुओं की तरह वे भी वंश–वृद्धि कार्य का संपादन करते हैं; सजीव वस्तुओं की तरह वे भी आकार में बढ़ते और बड़े होते हैं। परंतु जिस प्रकार सजीव वस्तुओं की शकल नहीं बदलती, उसी प्रकार ये भी अपने स्वरूप को अक्षुण्ण रखते है।

तब क्या प्रयोगशाला में जीवन बनाया जा सकता है – तब क्या वैज्ञानिक हमें प्रयोगशाला में जीवन बनाकर दिखला सकते हैं? इस बात पर विचार करने के पहले हमें जीवन के बीज या अंकुर प्रोटोप्लाज्म की व्याख्या की ज़रूरत है। साथ ही जीवनों पर एक सरसरी नज़र डाल लेना भी आवश्यक प्रतीत होता है।

प्रोटोप्लाज्म या जीवन–बीज प्रायः एक रंग–हीन लोआबदार तरल पदार्थ है। यह अंडों में पाई जानेवाली सफेद वस्तु के सदृश पदार्थ से बना होता है। इसकी बनावट में प्रधान भाग कार्बन का है; परंतु इसमें अन्य प्रकार की वस्तुओं का भी समावेश पाया जाता है। इसकी रासायनिक बनावट अत्यंत जटिल है। प्रत्येक जीवित गोलक या सेल के अंदर यह पाया जाता है; और शरीर–पोषण,

जनन, ज्ञान–प्राप्ति (Sensation) और शरीर–चालन (Motion) इत्यादि का काम इसी के द्वारा संपादित होता है। इसकी सबसे साधारण और निकृष्टतम अवस्था में, इसमें किसी तरह के अवयव नहीं पाए जाते, और न इसमें किसी विशेष आकार या रूप के चिन्ह ही देखे जाते है। यह देखने में केवल–मात्र लोआबदार पदार्थ के दाने के सदृश मालूम होता है तो भी इसमें जीवन के सभी धर्म और लक्षण पाए जाते हैं; और अंगहीन–अवयव–हीन–होकर भी यह जीवन की सभी मुख्य क्रियाओं का संपादन करता है। इस प्रकार के जीवनांकुर को 'मौनरा' या 'प्रोटिस्टा' कहते हैं।

जीवन के इतिहास में ज़रा आगे, अर्थात् दूसरे दर्जे में, गोलक या सेल का स्थान है। सेल की अवस्था में पहुँचने पर प्रोटोप्लाज्म या जीवन–बीज एक पतली झिल्ली द्वारा घिरा हुआ होता है; और इसके अंदर अब एक अपेक्षाकृत सघन स्थान (Nucleus) दृष्टिगोचर होने लगता है। गोलक या सेल ही के द्वारा सब प्रकार के श्रेष्ठ उन्नत और जटिलतामय जीवन की उत्पत्ति हुई है। देखने से मालूम होता है कि प्रत्येक गोलक या सेल को अपना एक अलग और स्वतंत्र जीवन प्राप्त है। प्रत्येक गोलक के भीतर संख्या–वृद्धि की अद्भुत शक्ति विद्यमान है। हरएक ग़ोलक टूट–टूटकर नए गोलकों की सृष्टि करता है।

संगठित, अर्थात् किंचित् अवयव–युक्त, जीवों में निकृष्टतम अमीबा प्रभृति जीव है। ये इतने छोटे होते हैं कि तेज़ सूक्ष्मदर्शक यंत्र के बिना नज़र नहीं आ सकते। शुष्क तृण को जल में लगाकर और फिर छानकर यदि यह जल रख छोड़ा जाय, तो दो दिन के अंदर उसमें इस तरह के अनेक सूक्ष्मजीव पैदा हो जायंगे, जिनका आकर 1/40000 इंच से अधिक न होगा। इतने छोटे होने पर भी ये जीव जीवन की सभी क्रियाओं को पूर्ण करे हैं। ये जल में इधर–उधर दौड़ते और पौष्टिक पदार्थों को उदरस्थ करके पचा डालते है। भोजन को पकड़ने के लिये ये जिह्वा के सदृश अपने आकार–हीन शरीर के अंश को बढ़ा देते हैं; और यदि भोजन के अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ के साथ इनका संर्घण होता है, तो ये अति शीघ्रता से अपनी जिह्वा को खींच भी लेते हैं। प्रकृति में इनकी संख्या वर्णनातीत है, और शायद विश्व की सफाई का प्रबंध इन्हीं को सौंपा गया है। मृत्यु के पश्चात् सजीव पदार्थों के देह का अंत इन्हीं के द्वारा होता है। इस कार्य का संपादन ये वस्तुओं को सड़ाकर करते हैं। ये ही क्षुद्र जीवाणु वस्तुओं के सड़ने का कारण है। इन्हीं के द्वारा मृतक सजीव पदार्थ पुनः तत्वों की अवस्था में परिणत होते और पुनः सजीव और निर्जीव–जगत् में अपनी लीला आरंभ कर देते हैं। ये जीव भी संख्या–वृद्धि के काम का संपादन बड़ी तेज़ी से करते हैं। ये जीव बीच से टूटकर ही जीवों की सृष्टि करते हैं; और प्रत्येक नया जीव इसी प्रकार पुराने अभिनय का पुनरावर्तन करता है।

शायद सजीव–जगत् की रखवाली का काम भी प्रकृति ने इन्हीं को सौंप दिया है। इन जीवों के बीज वायु में सर्वत्र फैले रहते और सुअवसर पाते ही अपने ध्वंस–कार्य का आरंभ कर देते हैं। इस प्रकार ये प्रकृति को सुयोग्यों के निर्वाचन में सहायता देते हैं। कमजोरों और अस्वस्थों का विनाश करके ये सबल, स्वस्थ, सुयोग्य जीवों और जातियों की सहायता करते हैं। उदाहरणार्थ, जब बहुत समय तक कृत्रिम रूप से उपजाए जाने के कारण, आलू और अंगूर, या रेशम के कीड़ों की नसल कमज़ोर हो जाती है, तब इन जीवों के द्वारा पूरी फसल–की फसल बर्बाद कर दी जाती है। इसी प्रकार हैजे या टाइफॉयड प्रभृति ज्वरों के जीवाणु हमें स्वास्थ्य के नियमों के उल्लंघन का दंड देने तथा उनका पालन करने के लिये विवश करते हैं।

इस प्रारंभिक अवस्था में यह कहना कठिन है कि कौन जीवाणु वनस्पति–वर्ग का है, और कौन प्राणिवर्ग का। शायद इंस अवस्था में प्राणियों और वनस्पतियों का भेद स्थापित ही नहीं हुआ। हक्सली ने एक बार सूक्ष्मदर्शक–यंत्र से देखकर एक जीवाणु को वनस्पति वर्ग का माना था; परंतु

टिंडल ने उसकी गणना प्राणिवर्ग में की। वह यहाँ तक कहने को तैयार थे कि यदि भेंड़ को वनस्पति कहा जा सकता है, तो वह इस जीवाणु को भी वनस्पति कह सकते हैं।

कुछ आगे बढ़कर जीवन वनस्पति–सर्ग और प्राणिसर्ग, इन दो भागों में विभक्त पाया जाता है। इन दोनों प्रकार के जीवनों में बहुत बड़ा सादृश्य है। इन दोनों की उत्पत्ति गोलक या सेल से होती है; और ये गोलक, जैसा कि अभी ऊपर कहा गया है, अपने को सदैव दो खंडों में विभक्त करते रहते हैं। कई गोलकों का संयोग होने पर विकास–क्रिया के द्वारा (हम इसका वर्णन आगे के लेखों में करेंगे) इन मिले हुए गोलकों से अवयव–युक्त जीवन की सृष्टि होती है। यहाँ तक प्राणिसर्ग और वनस्पति–सर्ग में पूर्ण सादृश्य है। पर दोनों में बहुत बड़ा भेद भी है। वह यही कि वनस्पतियाँ अपना निर्वाह निर्जीव पदार्थों से करती हैं; पर प्राणिसंसार का गुज़ारा, प्रत्यक्ष या परोक्ष रीति से, वनस्पति–सर्ग से होता है। प्राणिसर्ग उसी भोजन के द्वारा जीवित रह सकता है, जिसे वनस्पति–सर्ग ने तैयार किया है। वनस्पति–सर्ग ही अपने शरीर की प्रयोगशाला में कार्बन, अम्लजन या उज्जन प्रभृति साधारण तत्वों के द्वारा पौष्टिक पदार्थ तैयार करते है, और हम इन्हीं को खाकर जीवित रहते हैं। क्या हम सीधे कार्बन, अम्लजन[2], या उज्जन[3] प्रभृति तत्वों पर अपना निर्वाह कर सकते हैं? वनस्पति के सदृश सिर्फ मिट्टी, हवा या पानी के भोजन पर हमारा जीवित रहना असंभव है। अतएव समस्त प्राणिसंसार का जीवन वनस्पति संसार पर ही निर्भर है। प्राकृतिक प्रबंध के अनुसार परिश्रम करने और पौष्टिक पदार्थों को बनाने का काम वनस्पति जगत् को सौंपा गया है; और उन्हें भक्षण करना प्राणिजगत् का काम है।

यहाँ पर आप माँसभोजी मनुष्यों और जीवों की ओर इशारा करके कह सकते हैं कि जीवधारियों की शक्ति सदैव वनस्पति–शक्ति ही नहीं है, वरन् वह कभी–कभी अन्य जीवों के माँस–भोजन से भी प्राप्त होती है। परंतु जरा विचार कर देखिए, तो विदित होगा कि दूसरे जीवों से प्राप्त होने वाली शक्ति भी यथार्थ में वनस्पति–शक्ति ही है। मान लीजिए, हम व्याघ्र की तरह माँसभोजी हो गये हैं और सिवा माँस के और किसी तरह का भोजन करते ही नहीं। इसका अर्थ यह हुआ हमारी शारीरिक शक्ति हमें दूसरे जीवों से प्राप्त होती है। परंतु इस हालत में भी यह स्पष्ट है कि उन जीवों ने, जिनका माँस हम भक्षण करते हैं, अपनी शक्ति का संचय तृण, घास, पत्ती, फल इत्यादि खाकर–अर्थात् वनस्पति–सर्ग से ही किया था।

क्या कृत्रिम जीवन बनाया जा सकता है? – यहाँ हमारा वही पुराना प्रश्न फिर उपस्थित होता है। क्या अपनी प्रयोगशाला में वैज्ञानिक हमें जीवन बनाकर दिखा सकते हैं? उक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि जीवन बनाने का सवाल असल में जीवन–बीज या प्रोटोप्लाज़्म बनाने का सवाल है। क्या कृत्रिम रीति से प्रोटोप्लाज़्म तैयार किया जा सकता है? हम साधारण मनुष्य, जो विज्ञान नहीं जानते, इसका उत्तर एकदम 'हाँ' कहकर दे देंगे; क्योंकि हम नित्य–प्रति मरे हुए जीवधारियों के शरीर, कई दिनों के बासी भोजन या अन्य पदार्थो में कीड़ों को पड़ते हुए देखते हैं। परंतु बात इतनी सीधी नहीं है। अभी ऊपर हवा में फैले हुए जीवाणुओं द्वारा मृत पदार्थों के सड़ने की बात हम कह चुके हैं। अतएव अब तक प्राणिशास्त्र–वेत्ताओं का अधिकांश समुदाय यही कहता है कि Omne vivum exovo (संपूर्ण जीवन की उत्पत्ति सजीव पूर्वज के ही द्वारा होती है), अर्थात् निर्जीव से सजीव का बनाया जाना असंभव है। वैज्ञानिकों की परीक्षाओं द्वारा, तथा सड़े हुए जल में जीवाणुओं के जन्म–ग्रहण करने के कारण, कुछ समय तक यह विश्वास बँधा था कि निर्जीव से सजीव का बनाया जाना संभव है। पदार्थों के सड़ने और उनमें जीवन के उत्पन्न होने का कारण जीवाणु है। इस बात को कुछ वैज्ञानिक निर्मूल ठहराते थे। वे अपनी परीक्षाओं द्वारा कृत्रिम रूप से जीवन की सृष्टि को सिद्ध करते थे। 212 डिगरी ताप में (इतना ताप, जितने में पानी उबलने लगता है) सभी प्रकार के

जीवन का विनाश होता है, यह बात सभी को मान्य हैं। इसलिये परीक्षा करने वाले वैज्ञानिकों ने जल में इतनी ही गरमी पहुँचा कर उसे इस प्रकार बंद कर दिया कि किसी तरह कोई जीवाणु उसके अंदर प्रवेश न कर सके। पर इस अवस्था में भी उसमें जीवाणुओं की सृष्टि हो ही गई! फिर भी सब वैज्ञानिक इस परीक्षा के क़ायल नहीं हुए। वे कहते थे कि यद्यपि इतनी गरमी से सूक्ष्मदर्शक–यंत्र द्वारा नजर आने वाले, अर्थात् अपेक्षाकृत बड़े, जीवाणु नष्ट होते हैं, तथापि संभव है कि सूक्ष्म दर्शक–यंत्र से भी न देखे जा सकने वाले, इनसे भी छोटे, जीवाणु मौजूद हों, और वे इतनी गरमी में न नष्ट होते हों। परीक्षाओं द्वारा यही अनुमान सत्य भी निकला। परीक्षाओं द्वारा सिद्ध किया गया है कि इस तरह के जीवाणु भी अवश्य है और उन्हीं के द्वारा बंद जल में जीवन आविर्भाव होता है। परीक्षाओं द्वारा यह भी सिद्ध किया गया है कि यदि इन अतिसूक्ष्म जीवाणुओं से उपर्युक्त मिश्रित जल की रक्षा की जाय, या जल में काफी गरमी पहुँचती रहे, तो वह जल सदैव स्वच्छ और जीवन से शून्य रहेगा।

सारांश यह कि निर्जीव से सजीव के बनाने की परीक्षा अभी तक सफल नहीं हुई। इसके साथ ही यह भी कहना पड़ता है कि जीवन की प्रथम उत्पत्ति के संबंध में विज्ञान हमें कोई साफ जवाब नहीं देता।

निर्जीव से सजीव के पक्ष में दी गई युक्तियाँ – निर्जीव और सजीव के बीच का भेद यद्यपि अभी तक नहीं मिटाया जा सका–यद्यपि निर्जीव और सजीव के बीच की परिखा अभी तक लहरा रहीं हैं – यद्यपि हमें, निम्न श्रेणी के जीवों द्वारा उच्च श्रेणी के जीवों के उत्पन्न होने की तरह, निर्जीव पदार्थ से सजीव वस्तु के उत्पन्न होने के प्रमाण नहीं मिलते–तथापि प्रायः सभी वैज्ञानिक यह मानते हैं कि निर्जीव से ही सजीव का विकास हुआ है। उनके इस अनुमान के जो कारण हैं, उनमें से एक की व्याख्या ऊपर की जा चुकी हैं वैज्ञानिक कहते हैं कि जीवन के आविर्भाव के बाद से तो विकास–नियम के प्राबल्य में विश्वास करना, परंतु इसके पूर्व विकास की क्रिया को अस्वीकार करना, कदापि बुद्धि–संगत नहीं प्रतीत होता है। यह एक प्रकार से प्रकृति की एकरूपता (Uniformity of nature) को अस्वीकार करना है। विज्ञान का अस्तित्व इसी प्राकृतिक एकरूपता के मान लेनें पर निर्भर है। अतएव इस प्राकृतिक एकरूपता को अस्वीकार करना विज्ञान को ही अस्वीकार करना है।

यद्यपि वैज्ञानिक लोग प्रयोगशाला में जीवन को बनाने में असमर्थ हैं, तथापि वे यह मानते हैं कि स्वाभाविक रीति से विकास–क्रिया के द्वारा, संसार के आदि–युगों में निर्जीव पदार्थों से ही जीवन की उत्पत्ति हुई थी। विकास–क्रिया के अविच्छिन्न आधिपत्य तथा प्राकृतिक एकरूपता के उपर्युक्त तर्क के अतिरिक्त वे अपने इस अनुमान के समर्थन में और भी युक्तियाँ देते है। सजीव और निर्जीव, दोनों के रासायनिक विश्लेषण द्वारा वे यह बतलाते हैं कि दोनों की बनावट एक ही वस्तु से हुई है। सजीव, भी ख़ाक ही का पुतला है, एवं वह भी उन्हीं पंचतत्त्वों (यहाँ पर हम साधारण बोलचाल की भाषा में पंचतत्व शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। यों तो आजकल के रसायनज्ञों के प्रायः 80 तत्वों का पता लगाया है) से बना है, जिनसे निर्जीव संसार। तब निर्जीव और सजीव के भेद का क्या कारण है? जब दोनों वस्तुएँ एक ही पदार्थ से बनी हुई हैं, तब भेद की उत्पत्ति निस्संदेह इन वस्तुओं की भिन्न–भिन्न मात्रा तथा भिन्न रीति की मिलावट के कारण ही होती हैं। हम यद्यपि वस्तुओं को मिलाकर जीवन तैयार करके दिखलाने में असमर्थ हैं, तथापि इसे सहज में ही समझ सकते हैं। यह तो हम आसानी के साथ देख सकते हैं कि सिर्फ भिन्न प्रकार की मिलावट के ही कारण एक ही पदार्थ से बहुत तरह की चीज़ें बनती है। एक ही कार्बन से हीरा, ग्रेफ़ाईट (Graphite) सीसे की तरह की धातु, जो पेंसिलों के बनाने में अधिकतर व्यवहृत होती हैं) और कोयला ये तीनों वस्तुएँ बनती है। अतएव मिलावट के हेर–फेर से निर्जीव से सजीव का बनना असंभव नहीं। किसी

समय जीवधारियों द्वारा बनाए जाने वाले पदार्थों का कृत्रिम रूप से प्रयोगशाला में बनाया जाना भी असंभव माना जाता था; परंतु अब माड़ी[4], यूरिया (पेशाब में पाया जाने वाला एक पदार्थ) और अलकोहल (मद्यसार) प्रभृति वस्तुएँ भी प्रयोगशाला में बनाई जा रही है। अतएव यदि वैज्ञानिकों को जीवन बनाकर दिखलाने में असफलता हुई है, तो इससे यह कदापि नहीं प्रमाणित किया जा सकता कि निर्जीव से सजीव का भेद कभी मिट नहीं सकता ,तथा निर्जीव से सजीव का बनना किसी अवस्था में संभव नहीं। कारण, परिवर्तनशील प्रकृति के सभी भेदों, मिलावटों और परिवर्तनों का अनुमान करना असंभव है। विशेषकर जब हम यह स्मरण करते है कि संसार को जन्म लिए करोड़ों अरबों वर्षों से अधिक समय बीत गया, तब हमें यह संभव प्रतीत होता है कि अति प्राचीन समय की प्राकृतिक अवस्था में स्वभावतः निर्जीव से सजीव का जन्म हुआ होगा। हम यदि मान भी लें कि वर्तमान समय में निर्जीव से सजीव नहीं बनाया जा सकता, तथापि क्या यह संभव नहीं है कि करोड़ों वर्ष पहले पृथ्वी की विशेष अवस्था में, उस समय के विशेष ताप–परिमाण, और दबाव की अवस्था तथा उस समय के विशेष प्रकार के वायुमंडल में, स्वभावतः निर्जीव से सजीव का जन्म हुआ है। यद्यपि कुछ सुविख्यात और श्रेष्ठ वैज्ञानिक अभी तक यह विश्वास करते हैं कि प्रयोगशाला में निर्जीव से सजीव की सृष्टि की जा सकती है, तथापि अधिकांश वैज्ञानिकों का मत यही है कि जीवन पृथ्वी की प्राचीन अवस्था का स्वाभाविक फल है, तथा उस अवस्था के व्यतीत हो जाने से पृथ्वी पर निर्जीव से सजीव के बनने का भी ज़माना सदा के लिये चला गया।

आदि–युगों में पृथ्वी की अवस्था आज से एकदम भिन्न और असाधारण थी। समुद्र उष्ण था। ज़मीन की सतह नम और गरम थी। वायु–मंडल भी गाढ़ा और अनेक रासायनिक पदार्थों से भरा हुआ था। बदलियाँ सदैव बनी ही रहती थीं, और हवा में शायद क़ार्बोनिक एसिड की मात्रा अत्यधिक थी। उस समय सुबह, दोपहर, शाम या रात होती ही न थी। अवस्था सदा एक ही तरह की बनी रहती थी। ताप–परिमाण हर घड़ी एक–सा ही रहता था। हवा जटिल और अस्थायी रासायनिक द्रव्यों के मिश्रण से परिपूर्ण थी। उस समय कार्बन, नाइट्रोजन, फासफोरस प्रभृति द्रव्यों के वे जटिल और अस्थायी सम्मिश्रण बनते थे, जिनका वर्तमान अवस्था में बनना असंभव है। उस समय ये पदार्थ जल में भी अत्यधिक परिमाण में घुले हुए होंगे, और किनारे की कीचड़ सदा इन द्रव्यों को सोखती रहती होगी। जीवन–बीज के बनने के लिये उपयुक्त माध्यम का काम इसी कीचड़ ने किया होगा। इसी के मुलायम तल पर प्राचीन जीवन–बीज का जन्म हुआ होगा। ऐसी ही दशा में, वायु–मंडल के कार्बन से बना हुआ, "वैसलीन" की तरह लोआबदार, पदार्थ पृथ्वी में गिरा होगा, और पृथ्वी के ऊपर नत्रजन, फ़्लोरीन, फासफोरस प्रभृति पदार्थों के विभिन्न सम्मिश्रणों के साथ मिला होगा; ये छोटी लोआबदार गोलियाँ या दाने अक्सर छोटे–छोटे खंडों में विभक्त भी जरूर होते रहते होंगे; पदार्थों के स्थायी मिश्रणों के शोषण द्वारा इन लोआबदार गोलियों के अंदर शक्ति का भी संचय हो गया होगा; और इन्हीं शक्तियों के निकलने से इन गोलियों में गतिशीलता भी आ गई होगी। दूसरे शब्दों में, ये गोलियाँ सजीव हो गई होंगी, और उन्हें सिर्फ रासायनिक और भौतिक कारणों से अपने को कई खंडों में विभक्त करने की शक्ति भी प्राप्त हो गई होगी। प्राचीन जीवन की उत्पत्ति जल या जल के निकटस्थ कीचड़ में ही हुई होगी, इसके समर्थन में यह कहा जाता है कि सजीव पदार्थ में पाई जानेवाली सभी वस्तुएँ–कई प्रकार के गैस, गंधक, फासफोरस, सोडियम, पोटाशियम, कैलशियम, मैगनेशियम–घुलने वाली है, और समुद्र के जल में पाई जाती है। इस छोटे–से लेख में विस्तार के साथ इस अनुमान की पुष्टि में दिए गए सभी प्रमाणों और युक्तियों को लिखने के लिये स्थान नहीं है। उन्हें समझने के लिये भौतिक विज्ञान और रसायन–शास्त्र की बहुत अधिक जानकारी की आवश्यकता है। इसलिये हमने इस लेख में केवल विशेषज्ञों के निष्कर्षों का ही

उल्लेख किया है, और वे ही युक्तियाँ दी हैं, जो हम साधारण मनुष्यों की समझ में सुगमता के साथ आ सकती हैं। यह विषय अत्यंत कठिन है; और सभी तर्कों तथा युक्तियों को केवल विशेषज्ञ ही पूरी तरह से समझ सकते है।

प्राचीन जीवन के संबंध में एक बात निवेदन कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। वह यही कि यह अनुमान भू–गर्भ शास्त्र से सिद्ध नहीं प्रमाणित किया जा सकता। वैज्ञानिकों के अनुमान चाहे जितने युक्तिसंगत हों, परंतु भू–गर्भ में पाए जाने वाले फ़ॉसिलों के द्वारा उनके इस अनुमान की पूर्ण पुष्टि होना शायद असंभव ही है; क्योंकि सब प्रारंभिक जीव कोमल शरीर वाले थे; और "फॉसिल" के स्वरूप में ऐसे जीवों के शरीर का सुरक्षित रहना असंभव है। अतएव वर्तमान समय में पाए जाने वाले निकृष्टतम जीवों से ही विकास की लड़ी पूरी की जाती है, और शरीर–विज्ञानवेत्ताओं के अनुमान के सिवा परीक्षा का अन्य कोई साधन हमारे पास मौजूद नहीं है विकासवादियों द्वारा वर्णित आगे की कथा के सदृश हम पृथ्वी के गर्भ में रक्खे हुए इतिहास के द्वारा इन अनुमानों की जांच नहीं कर सकते। केवल अपेक्षाकृत कठिन शरीरवाले जीवों या वनस्पतियों के फॉसिल (पाषाणीकृत अवशेष) ही भू–गर्भ में सुरक्षित रह सके है। कभी–कभी चट्टानों में कोमल शरीरवाले जीवों के चिह्न भी पाए जाते हैं; परन्तु इन चिह्नों का ठीक अर्थ समझना अत्यंत कठिन है। विशेषज्ञ लोग इन चिह्नों के कई अर्थ लगाया करते है; और उनमें बहुत मतभेद हैं। जीवों के कठिन शरीर अथवा सीप या घोंघों इत्यादि से युक्त होने पर तथा वनस्पतियों में काष्ठमय पदार्थ के उत्पन्न हो जाने के बाद से ही प्राचीन जीवन का निर्विवाद परिचय मिलता है। भू–तत्वज्ञों द्वारा निर्णीत समय–विभाग के ऊपर हमें पूर्व–लेख में कुछ लिख चुके है। कैंब्रियन काल – के पूर्व के जीवन के संबंध में हमारी जानकारी बहुत थोड़ी है। जीवन के स्पष्ट चिह्न हमें कैंब्रियन–काल से ही प्राप्त होने लगते हैं। और उस समय जीवन का पता चलने से हमें यह विदित होता है कि वह इस समय बहुत उन्नत हो चुका था। निस्संदेह उस समय तक रीढ़दार (Vertebrate) जीवों की उत्पत्ति नहीं हुई थी। परंतु उस समय भी अनेकों कठिन छिलकों वाले रीढ़–हीन जीव विद्यमान थे। इससे निर्विवाद रूप से यह पता चलता है कि कैंब्रियन–काल के बहुत पहले–शायद करोड़ों वर्ष पहले–पृथ्वी के ऊपर जीवन की उत्पत्ति हुई होगी। कैंब्रियन काल के पहले की भी जो जीवन के एकआध चिन्ह मिलते है, उनसे भी यही पता चलता है कि जीवन अत्यंत प्राचीन है। अमेरिका में कैब्रियन–काल के पूर्व का भी एक जीवधारी पाया गया है, इसका नाम 'बल्टिना' है। परंतु यह जीव भी प्रायः झींगा मछली की तरह एक कठिन छिलके से युक्त है।

कैब्रियन–काल के पहले के जीव कोमल शरीरवाले अर्थात् अस्थि–रहित क्यों थे, इस प्रश्न पर भी वैज्ञानिकों ने विचार किया है। परंतु उसके वर्णन के लिये यहाँ स्थान नहीं है। हमारे लिये इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि प्रारंभिक जीव कोमल शरीरवाले थे। उनके शरीर में हड्डी, या झींगा–मछली की तरह कोई छिलका, अथवा सितुए, घोंघे या कछुए की तरह कोई ढाल या स्तर न होता था। पीछे जीवन–संग्राम के नियम द्वारा जानवरों के शरीर कठिन हुए। जो हो, इन बातों का वर्णन हम आगे करेंगे।

अंतिम समस्या अज्ञेय है – शरीर और आत्मा – यद्यपि उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि जीव और अजीव का भेद उतना गहरा और अमिट नहीं है–अर्थात् निर्जीव से सजीव की उत्पत्ति हो सकती है–तथापि हमें यह स्वीकार ही करना पड़ता है कि हम जीवन के रहस्य को नहीं जानते। निर्जीव पदार्थ किस विशेष मिश्रण, किस विशेष शक्ति और नियम के द्वारा सजीव वस्तु में परिणत होते हैं, इसका कोई उत्तर हम नहीं दे सकते। विशेषकर जब हम मानसिक बातों पर विचार करते हैं, तब हमें नम्रता–पूर्वक अज्ञात के सामने चुपचाप सिर झुकाना पड़ता है। और, कहना पड़ता

है कि "हे वह यथार्थ पदार्थ या शक्ति, (जो समग्र जड़ और निर्जीव के रूप में व्यक्त हो रही है) तुझे हम नहीं जानते।" देह और आत्मा (शरीर और मन) के बीच की खाड़ी को भरना असंभव है। जब हम एक साधारण अमीबा की चेतना और मानसिक शक्ति की तुलना कालिदास और शेक्सपियर की चेतना, ज्ञान और मानसिक शक्ति के साथ करते हैं, तब हमें निरुत्तर होकर यह कहना ही पड़ता है कि हम कुछ नहीं जानते। यद्यपि हम यह जानते हैं कि हमारे प्रत्येक विचार, अनुमान और भावना में कुछ शारीरिक क्रिया अवश्य होती है, यद्यपि हम यह भी जानते हैं कि ऐसी प्रत्येक क्रिया से हमारे शरीर में कुछ परिवर्तन, हमारी रगों में कुछ हरकत अवश्य पैदा होती है, यद्यपि हम यह जानते है कि मस्तिष्क के स्वस्थ और सुचारू रूप से कार्य करते रहने के लिये भोजन की आवश्यकता होती है, यद्यपि हम यह यह भी जानते हैं कि शरीर के रुग्ण या अस्वस्थ होने पर मानसिक क्रियाएँ ठीक तौर से नहीं की जा सकतीं, तथापि इन बातों के द्वारा मन–संबंधी सभी रहस्यों और समस्याओं का उत्तर नहीं प्राप्त होता। हम न तो स्पष्ट रूप से कोई बात कह सकते हैं, और न किसी बात को अस्वीकार ही कर सकते हैं प्रोफेसर हक्सली ने ठीक ही कहा –"यदि कोई यह कहे कि शरीर से स्वतंत्र चेतना या आत्मा का अस्तित्व हो ही नहीं सकता, तो मै उससे अवश्य यह पूछूँगा कि वह इस बात को किस तरह जानता है। इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य आत्मा को शरीर से स्वतंत्र बतलावे, तो मैं उससे भी उसके इस कथन के लिये प्रमाण तलब करूँगा।"

अंतिम प्रश्न की ओर हमारे कैसे भाव होने चाहिए? – तब क्या शरीर की नश्वरता और आत्मा की अमरता, शरीर की अनित्यता और आत्मा की नित्यता में विश्वास करना भूल है? यदि निर्जीव से सजीव की, जड़ से चेतन और सेंद्रिय की, उत्पत्ति हो सकती है, तो क्या, शरीर और आत्मा में, देह और मन में कोई भेद रह जाता है? इन प्रश्नों के विषय में, तथा धर्म और विज्ञान के संबंध में हम पूर्व–लेख में, और कुछ अभी लिख चुके हैं। अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। संक्षेप में, हम इन प्रश्नों को अधिक महत्व नहीं देते। इनका चाहे जो उत्तर हो, हमें उसकी कोई परवा नहीं। हम तो सर्वत्र एकता और नियम को देखकर प्रसन्न होते हैं। जब हम सर्वत्र एक ही को–स्वयं अपने ही को–विद्यमान पाते हैं, जब जड़ और चेतन, सूर्य और ग्रह; पृथ्वी और नीहारिका, ज़र्रा और समुद्र, सब हमारे ही सहारे दंडायमान नज़र आते हैं, तब हम अपने क्षुद्र व्यक्तित्व के मिटने का, विनाश का कोई अफ़सोस नहीं होता। इससे हमारी इज्जत में कुछ भी बट्टा नहीं लगता, हमारी तनिक भी मान–हानि नहीं होती, हमारे सम्मान और प्रतिष्ठा में कुछ भी फ़र्क नहीं आता। उल्टे हम बड़े, बृहत् और अनंत हो जाते हैं। यदि विज्ञान यह साबित करता है कि वृक्ष की हरी–हरी टहनियों में, पशुओं की केलि और क्रीड़ा में, तथा कालिदास के शकुंतला और मेघदूत में एक ही तरह के जीवन का पता चलता है, तो इसमें दुःख की कौन–सी बात है? इससे मनुष्य का गौरव घटने की अपेक्षा उल्टे बहुत बढ़ जाता है। इससे मनुष्य की महान् शक्ति का परिचय मिलता है; यह सिद्ध होता है कि जिस मनुष्य ने अत्यंत ही निकृष्ट अवस्था से धीरे–धीरे वर्तमान अवस्था प्राप्त की है, वह अभी और भी बहुत उन्नति कर सकता है। उसके विकास और उन्नति की कोई सीमा निर्दिष्ट नहीं की जा सकती। मनुष्य अधम और तुच्छ नहीं है। उसमें अनन्त शक्ति निहित है। वह आप अपने भाग्य का विधाता है। यदि विज्ञान के द्वारा नीच से नीच और तुच्छ से तुच्छ वस्तु के साथ भी हमारा संबंध, हमारी बंधुता स्थापित होती है, तो इसम क्या हर्ज है? इसमें अपमान कहाँ है? जाने दो, अपने क्षुद्र व्यक्तित्व और आत्मा के लिये इतनी ममता क्यों? हटाओ, इन बंधनों को दूर करो, और स्वतंत्रता–संपूर्ण संबंध–बंधन– हीनता–की स्फूर्ति–प्रदायक, प्राणदायक मलय–समीर में सहर्ष विचरण करो; और स्वामी राम के शब्दों में कहो–

"ऐ मौत, बेशक उड़ा दे इस जिस्म[5] को। मेरे और एजसाम ही मुझे कुछ कम नहीं है। सिर्फ चांद की किरणें, चांदी की तारें पहनकर चैन से काट सकता हूं। पहाड़ी नदी–नालों के भेस में गीत गाता फिरूँगा। बहरे[6]–मौआज के लिबास में ही लहराता फिरूँगा। मैं ही बादे–खुश–खराम, नसीम–मस्ताना[7]–गाम हूँ। मेरी यह सूरत सैलानी हर वक्त रवानी[8] में रहती है। इस रूप में पहाड़ा से उतरा मुरझाते पौदों को ताज़ा किया, गुलों को हँसाया, बुलबुल को रुलाया, दरवाज़ो को खटखटाया, सोतों को जगाया, किसी के आँसू पोंछे, किसी का घूँघट उड़ाया, इसको छेड़ उसको छेड़, तुझको छेड़, वह गया, वह गया, न कुछ साथ रक्खा, न किसी के हाथ आया।"

---

1. खाई
2. हाइड्रोजन
3. आक्सीजन
4. Starch
5. लसदार चिपचिपा
6. शरीर
7. प्रक्षुब्ध महोदधि
8. अठखेलियां करती हवा
9. गतिशील

चन्द्रमा में मनुष्य*
(वैज्ञानिक कल्पना)

अनुवादक – नवनिद्धि राय एम.ए.

डाक्टर हक्सरने जरा जोरसे कहा, "शीलू, आज मैं तुम्हें अपना एक और आविष्कार दिखलाऊँगा। अभीतक किसीको इसका हाल मालूम नहीं है। यह आविष्कार बड़े महत्वका है। पृथ्वीपर एक नई हलचल इससे पैदाहो जायगी, मानव जीवनपर इनका विचित्र प्रभाव पड़ेगा। मेरा विचार है कि मेरे अन्य अविष्कारोंसे इसका महत्व अधिक होगा। अच्छा आओ, मैं तुम्हें अपना वृहद दूरदर्शक दिखलाऊँ। "क्या आपने दूरदर्शक यंत्रमें कोई नया आविष्कार किया है? साधारण यंत्रोंसे क्या आपने कोई अधिक उन्नत दूरदर्शक बनाया है।"

"हाँ और नहीं, बात साफ़ यह है कि मैने एक बिलकुल नया ही यंत्र बनाया है। दूरदर्शकका स्थान यह यंत्र ले लेगा। इसकी आकारवर्द्धक शक्ति अब तक बने दूरदर्शकोंसे बहुत अधिक है। साथही इसमें चीज़ें बहुत साफ दिखलाई पड़ती हैं। मैंने कई वर्ष दूरदर्शक यंत्रको उन्नत करनेमें लगाये, परन्तु मुझे बहुत कम सफलता प्राप्त हुई। मैंने कई कारखानोंको बड़ी बड़ी रकम देनेका वादा करके यह प्रयत्न किया कि वह मेरे लिए अबतक बने हुए दूरदर्शक यंत्रोंसे अधिक बड़ा और अच्छा यंत्र बनावे। फल कुछ भी न हुआ। रुपया देना पड़ा बहुत और हाथ कुछ भी न लगा। मैं कोई भी महत्वका आविष्कार न कर सका। मैंने निश्चय किया कि इस मामलेको मैं स्वयं अपने हाथमें लूँ। साधारण मार्गको छोड़ कोई नया मार्ग ढूंढ निकालूँ। दूरदर्शक है क्या? एक साधारण आकारवर्द्धक यंत्र। मुझे एक बात सूझी। किसी ग्रह या तारेका प्रतिबिम्ब या छायाचित्र शीशेपर लिया जाय और इस चित्रको फिर जितना चाहे उतना आकारमें बढ़ा लें। मुझे कोई कारण इसके असंभव होनेका नहीं मालूम हुआ।"

शैलेन्द्रकुमार चट्टोपाध्याय (शीलू बाबू) बोल उठे "नहीं साहब, इसमें कुछ असम्भव नहीं जान पड़ता। परन्तु प्रयोग करके देखना चाहिए कि वास्तविक बात कैसी ठहरती है।"

डाक्टर हक्सर बोले, "हाँ, परन्तु कई समस्याएँ उपस्थित हो गईं। 1–प्रत्येक बार आकार बढ़ानेसे प्रकाशमें कमी हो जाती है इसलिए तारे या ग्रहसे प्राप्त प्रकाशको बढ़ा सकनेके लिए कोई तरकीब निकालनी चाहिए। 2–आकार बढ़नेमें प्रकाशकी किरणोंका वक्रीभवन (refraction) होता है जिसके कारण कुछ न कुछ टेढ़ापन और विरूपता चित्रमें आ जाती है। प्रत्येक बार आकार बढ़ानेसे विरूपताकी मात्रा बढ़ती जायगी। विरूपताकी मात्रा न्यूनतम करनेका प्रयत्न जरूरी था, अन्यथा मेरा दूरदर्शक बिलकुल भोंडा ठहरता। 3–भिन्न–भिन्न रंगोंके प्रकाशके लिए वक्रीभवन समान नहीं

---

* *विज्ञान*, अप्रैल 1926

है। इसलिए जब जब और जितनी बार आकार बढ़ाया जायगा उतनाही प्रकाशकी किरणें इन्द्र–धनुषके रंगोंमें अधिक विभक्त हो जायँगी। इसीको रंग–विरूपता (chromaticAberration) कहते हैं। इसे भी दूर करनेकी तरकीब सोचना था। 4–यंत्रके तालों (lense) में जो कुछ कमी होगी या पृथ्वीके वायुमंडलमें जो अशुद्धता होगी वह भी मात्रामें बढ़ जायँगे और चित्रमें अशुद्धता और विरूपता उत्पन्न करेंगे। यह चार कठिनाइयाँ सामने आती हैं।

"इसलिए मैंने निम्नलिखित विधिसे काम लिया। मैंने चन्द्रमाके आकारवर्द्धित चित्रको पहले एक दर्पणपर लिया। इस शीशेको मैंने तेज़ बिजलीकी रोशनीसे प्रकाशमयकर लिया। और तब मैंने पुनः आकारवर्द्धित चित्र इस चित्रसे एक परदेपर डाला, जो स्वयं एक दर्पण था। इस विधिसे प्राप्त बड़ा चित्र उतनाही प्रकाशमय था जितना पहला चित्र। मैंने इस चित्रके थोड़ेसे भागको लेकर परिवर्द्धित किया और एक तीसरे दर्पण पर इस चित्रको डाला, चित्रमें प्रकाश उतनाही बना रहा या जब मैंने चाहा प्रकाशको और भी बढ़ा दिया। इस प्रकार मैंने प्रकाशकी समस्या हलकर दी। व्रकीभवनकी विरूपता तथा रंगकी विरूपताको यथासंभव दूर करने या बहुत कम करनेके लिए मैंने प्रत्येक चित्रके बिलकुल केन्द्रीय भागको ही आकार बढ़ानेके लिए लिया। तुम जानतेहो कि किनारोंकी अपेक्षा चित्रके केन्द्रपर सदा कम विरूपता होती हैं। इस प्रकार अब मैं बिलकुल स्पष्ट चित्र प्राप्त कर लेता हूँ चाहे जितने बार आकारवर्द्धन करके मैंने बड़ा चित्र बनाया हो। तालोंकी कमी दूर करनेके लिए मैंने कारखानोंसे अधिकसे अधिक शुद्ध ताले बनवाये। वायुमंडलमें अशुद्धताके कारण चित्रमें विरूपता न आवे इसलिए मैंने अपना दूरदर्शक बड़े ऊँचे पहाड़की चोटीपर लगाया। मुझे आशातीत सफलता प्राप्त हुई। स्वप्नमें भी मैं यह विश्वास नहीं करता था कि मेरा एक साधारण विचार इतना महत्वपूर्ण फल मुझे दे सकेगा। परन्तु मेरी प्रयोगशालासे यह यंत्र बहुत दूर था इसलिए काम करनेमें बड़ी असुविधा थी। बस मैंने एक और तरकीब ढूँढ़ निकाली। मैंने अपने विद्युद्दर्शक यंत्र (television apparatus) का थोड़ासा संस्कारकर दिया। तुम इस यंत्रको देखही चुके हो। मैंने तुम्हें बतलाया था कि ब्रह्माण्डमें प्रत्येक पदार्थ Radio-active है अर्थात् उसमेंसे निरन्तर आकाशसे तरंगें प्रसारित होती रहती है। मेरा विद्युद्दर्शक यंत्र ऐसे सिद्धान्तपर बना है कि मैं जब चाहूँ इन तरंगोंको यत्रमें प्राप्तकर लूँ। मैं अपने यंत्रको इस प्रकार मिला सकता हूँ कि उसके द्वारा चाहे जिस लम्बाईकी तरंगें प्राप्त कर लूँ। साथही यह भी प्रबंध मेरे यंत्रमें है कि केवल किसी दिशा विशेषसे और एक निश्चित दूरीसे आनेवाली तरंगेंही यंत्रमें प्राप्त की जायँ। वर्धकों (amplifiers) द्वारा मैं इन तरंगों की शक्ति को बढ़ा सकता हूँ और विशेष रीति से तैयार किये गये परिवर्तकों द्वारा मैं इन रेडियों तरंगों को पुनः प्रकाश तरंगों में परिवर्तित कर सकता हूँ और इस प्रकार जिस वस्तु से तरगें आती हैं उसका चित्र भी प्राप्त कर सकता हूँ।

"अभी तक मैं अपने विद्युद्दर्शक यंत्रको केवल पृथ्वीपर की चीज़ें देखनेके लिए काममें लाया करता था। इस यंत्रकी शक्ति बढ़ाते बढ़ाते मैं चीन और अमरीके तककी वस्तु देख सकता हूँ। बारह हजार मील की दूरीकी चीज़ देखना मेरे यंत्र द्वारा बिलकुल साधारण कामहो गया। चन्द्रमा पृथ्वीसे केवल 240 हजार मीलकी दूरी पर है। कितनेही आदमी इतने मील अपने जीवनमें चल चुके होंगे। मैंने सोचा कि क्यों न मैं अपने यंत्रको और भी उन्नत करूँ। क्यों न चन्द्रमापर की चीज़ें देखनेके लिए अपने यंत्रमें कुछ परिवर्तन या परिवर्द्धन करूँ। इस प्रकार मैं उन सब समस्याओंके हल कर सकूँगा जो संसारके ज्योतिषियोंको परेशान किये हुए है।"

शीलू बोले–"क्यों साहब! अपने यंत्रको जरा और अधिक शक्तिशाली बना लिया होता तो अच्छा था। बुध और मंगल ग्रहोंको भी हम लोग देख सकते। यह प्रश्न तय हो जाता कि बुध और मंगलमें भी मनुष्य हैं अथवा केवल जानवर और वृक्षही इन ग्रहों पर आधिपत्य जमाये हुए हैं।

चन्द्रमा तो शीतप्रधान है ही। चन्द्रमामें न वायु है और न जल। जीवन किसी भी रूपमें वहाँ मौजूद नहींहो सकता। दूरदर्शक यंत्र द्वारा मैंने चन्द्रमाको देखा है। चन्द्रमाके तलपर केवल शान्त ज्वालामुखी है। वहाँ किसी प्रकारके जीवधारी नहीं है।"

डाक्टर हक्सर कहकहा भरकर हँस पड़े, बोले "शीलू बाबू! इतना निश्चयात्मक फैसला न कीजिए। संभव है आपने जो कुछ देखा वह ठीक न हो। पहली बात तो यह है कि यह आपके ज्वालामुखी केवल शान्त ज्वालामुखी नहीं है। निस्सन्देह बुध और मंगलमें पृथ्वी जैसे जीवनका अनुमानकर लेना ठीक ही है क्योंकि इन ग्रहोंमें साधारण अवस्था पृथ्वी जैसी ही है। चन्द्रमामें जल या वायुका कुछ भी पता नहीं चलता इसलिए यदि हम जल्दीसे यह निश्चयकर लें कि वहाँ किसी प्रकारका जीवन संभव नहीं तो ठीकही है। जैसे गरम देशोंमें रहने वाले मनुष्य यह कैसे अनुमान कर सकते है कि ध्रुव–प्रदेशमें किसी मनुष्यके लिए रहना सम्भव है। पर एस्किमों ध्रुवके पास तक रहते है। रहते रहते एस्किमोको ध्रुव प्रदेशकी सरदी सहनेकी आदत पड़ गई है। उनका स्वभाव ऐसा ही हो गया है। क्या यह संम्भव नहीं कि चन्द्रमामें भी कोई प्राणी रहते हों, जिनका स्वभाव लाखों वर्षोंमें चन्द्रमामें जीवित रहनेके लिए विकसित हुआ है।"

शीलूने कहा – "मान लीजिए कि चन्द्रमा में जीवन मौजूद है। वहाँ भी किसी प्रकारके प्राणी रहते है। पर एक तो बात आपको माननीही पड़ेगी कि जीवनका विकास वहाँपर पृथ्वीसे बहुत पीछे है, हमारी पृथ्वी पुरानी है इसकी अपेक्षा चन्द्रमा बिलकुल नया है।"

डाक्टर हक्सरने जवाब दिया–"न जाने कैसे यह विचार सर्वसाधारणमें फैल गया है। सत्य इसके बिलकुल विपरीत है। चन्द्रमा पृथ्वीसे अधिक पुराना है। यहाँ मैंने साधारण जनताके विचारानुसार भाषाका प्रयोग किया है। सच पूछिए, चन्द्रमा और पृथ्वी दोनों एकही उम्रके हैं। दोनोंही सूर्यमें से निकले है। नीहारिका–वादके अनुसार पहले सूर्य ज्वलन्त विशाल पिंड था। सब ग्रह उसीमें सम्मिलित थे। उसका विस्तार नेपचूनतक था। यह ज्वलन्त दग्ध पिण्ड ठंडा हुआ और सिकुड़ा। सबसे पहले नेपचून इस पिण्डेसे अलग होकर एक ग्रहके रूपमें बन गया। ज्यों–ज्यों सूर्य पिण्ड ठंडा होता और सिकुड़ता गया उसमेंसे कुछ टुकड़े अलग होते गये। युरेनस, शनि, बुध और मंगल ग्रह क्रमानुसार बनते गये। सबसे अन्तमें पृथ्वी सूर्यसे अलग हुई। उस समय पृथ्वी और चन्द्रमा एक सम्मिलित पिण्डके रूपमें थे। जब पृथ्वी ठण्डी हुई तो उसका एक भाग अलग होकर चन्द्रमा बन गया। इसलिये चन्द्रमा पृथ्वीका लड़का कहा जाता है। जब चन्द्रमा पिण्डसे अलग हुआ था तो वह इस पिण्डका सबसे ठण्डा भाग था। पृथ्वीकी अपेक्षा अधिक ठंडा था ही; साथही आकारमें छोटा होनेके कारण वह पृथ्वीकी अपेक्षा जल्दी ठंडा होता गया। पृथ्वी तो बहुत देरमें प्राणियोंके वासके योग्य हुई होगी, परन्तु चन्द्रमा पृथ्वीसे लाखों वर्ष पहले प्राणियोंके वासके योग्यहो गया होगा। इसलिए हम कह सकते है कि चन्द्रमा हमारी पृथ्वीसे पुराना है। वहाँ जीवनका विकास हमारे यहाँसे लाखों वर्ष पहले आरम्भ हो गया था। वहाँपर शायद विकासकी गति भी तेज रही होगी। यदि चन्द्रमामें भी मनुष्य जैसे बुद्धि वाले जीवधारी पैदा हुए थे तो उन्हें इतनी बुद्धि और ज्ञान संचय करनेका अवसर मिल चुका होगा जिसका हम अभी पृथ्वीपर अनुमान भी नहीं कर सकते।"

शीलूने उत्सुकतासे पूछा——डाक्टर महोदय, क्या आप विश्वास करते है कि चन्द्रमा में भी हमारे ही जैसे स्त्री पुरुष रहते है?"

डा. हक्सर ने सिर हिलाया, कहा–"नहीं शीलू, यह सम्भव नहीं। मैं तो बुद्धि वाले प्राणियोंकी बात कह रहा था मनुष्योंकी नहीं।"

शीलू ने पूछा – "तो आप यह कैसे निश्चय करते हैं कि चन्द्रमामें मनुष्य नहीं?"

डा. हक्सर बोले–"शीलू इस प्रश्नका उत्तर मैं अभी देता हूँ पहले तुम यह समझ लो कि पृथ्वीपर जीवधारियों की उत्पत्ति कैसे हुई। यहाँपर जीवन कैसे आरम्भ हुआ। स्पष्ट है कि जब पृथ्वी ज्वलन्त अवस्थामें थी तो यहाँपर किसी भी प्रकारका जीवन न था। कमसे कम यह अनुमान नहींकर सकते कि उस समय यहाँपर किसी प्रकारका जीवन संभव था। पृथ्वी तल ठंडा हुआ तो धातु बने, और ठंडक होनेपर रासायनिक संयोग हुए, जिनके फलस्वरूप छोटे छोटे ठोस कण बने होंगे और ठंडे होनेपर ठोस पृथ्वी बनी होगी और तब एक सेल वाले अर्थात् बिलकुल आरम्भिक अवस्थामें वृक्ष अमीबाके रूपमें प्रादुर्भूत हुए होंगे। अमीबामें केवल गुरुत्वक्[1] शक्ति रहती है। प्रोटोप्लाज़्म या अमीबाको पिनसे छूते हैं तो वह सिकुड़ता है। जीवनकी यही आरम्भिक अवस्था है। अमीबामें एक और शक्ति होती है। वह भोजनको सोख सकता है और बढ़कर दो टुकड़ोंमें विभक्तहो जाता है। प्रोटोप्लाज्मका यह प्रत्येक कण अब अलग अलग विकसित होकर फिर स्वयं विभक्तहो जाता है। पृथ्वीपर जीवनका इसी प्रकार आरंभ हुआ होगा। यह प्रश्न उठता है कि पृथ्वीके समस्त जीवधारी एक प्रोटोप्लाज़्मके एकही कणसे विकसित हुए हैं या बहुतसे जीवा द्यमके कण एक साथ उत्पन्न हुए थे और उनसे यह सृष्टि चल पड़ी। यह भी सम्भव है कि स्वतः सृष्टि इस समय भी होती जा रही हो। मेरी राय तो यह है कि समस्त जीवधारी पशु और वृक्ष एकही प्रकारके आरंभिक वृक्ष–सेलसे विकसित हुए हैं। वनस्पतियों और प्राणियोंके जीवनमें इतना साम्य है कि मुझे अपना अनुमान बिलकुल ठोस जान पड़ता है।"

शीलू बाबू फूल उठे। मुस्कुराते हुए बोले–"तो फिर चन्द्रमामें भी जीवन इसी प्रकारके सेलसे आरम्भ हुआ होगा। वहाँ भी विकास क्रम पृथ्वीके समान हुआ होगा। और वहाँपर भी मनुष्य बन गये होंगे।"

डा. हक्सरने उत्तर दिया – "तुम्हारा अनुमान संभवतः ठीक है परन्तु जिस निश्चय पर तुम पहुँचे हो वह ठीक न हो। यह तो मैं मानता हूँ कि शायद चन्द्रमापर भी ठीक पृथ्वी जैसे अमीबासे विकास आरंभ हुआ। यह भी संभव है कि वहाँ जीवनका विकास बिलकुल और ही तरहसे आरम्भ हुआ हो। यह भी कल्पनाकर सकते हैं कि पशुओं या वृक्षोंके अतिरिक्त और प्रकारके भी जीव और देहधारी हो सकते हैं। तब भी यही अधिक संभव मालूम होता है कि जीवनका आरम्भ चन्द्रमा तथा पृथ्वीपर एक ही विधिसे हुआ। कारण पृथ्वी और चन्द्रमाकी बनावट एकही थी और उनकी आरंभिक अवस्थाओंमें बड़ा साम्य था।"

शीलू बाबू प्रसन्न होकर बोले – "तो जब आरंभ एकही समान हुआ और अवस्थाएँ भी समान थीं तो फल समान होने चाहिए।"

डाक्टर कुछ तीखेपन से बोले – "शीलू तुम एक बात भूल गये। पृथ्वीपर भी समान अवस्थामें एकही स्थानसे चलकर करोड़ों तरहके वृक्ष और जानवर बन गये है, एक ओर हाथी दूसरी ओर सीपी। चन्द्रमापर भी बिलकुल समान अवस्थामें करोड़ों प्रकारके प्राणी बने होंगे और उनमें आपसमें एक दूसरेसे बड़ी विभिन्नता होगी। इसलिये हम कैसे मान सकते हैं कि मनुष्य जैसा प्राणी चन्द्रमामें भी होगी। ध्यान रहे; चन्द्रमामें एक दिन हमारे 14 दिनोंके बराबर होता है और वहाँ सूर्यकी किरणोंके उत्तापको शांत करनेके लिये वायुमण्डल नहीं है इसलिए चन्द्रमाका तापक्रम दिनमें इतना अधिकहो जाता होगा कि सब चीजें झुलस जाती होंगी। इसके बाद 14 दिन लम्बी रात्रि आती है। तापको सुरक्षित रखनेके लिये वायुमण्डल तो है नहीं इसलिए आकाशमें तापका विकिरण हो जाता है और इतनी शीतहो जाती है कि हम उसका अनुमान भी नहींकर सकते। पृथ्वीसे इतनी भिन्न अवस्था होनेके कारण चन्द्रमामें बिलकुल और ही तरहके प्राणी और वृक्ष विकसित हुए होंगे।

"चन्द्रमा पर गुरुत्वाकर्षण–शक्ति पृथ्वी से बहुत कम है इसलिए भी विकास क्रमपर विशेष प्रकारका प्रभाव पड़ा होगा। चन्द्रमा तलपर आकर्षण पृथ्वी के आकर्षणका छठा भाग है। डेढ़ सौ पौण्ड भार वाला मनुष्य चन्द्रमापर जाकर केवल 25 पौंड भारमें रह जायगा। यदि अब भी जानवर और वृक्ष चन्द्रमा पर विद्यमान् है तो वह यहाँके वृक्षों और जानवरोंसे अवश्य भिन्न होंगे। मुझे विश्वास है कि निम्न श्रेणीके जानवरोंमें अस्थिपंजर नहीं होता होगा। परन्तु अन्य श्रेणीके जानवरोंमें अस्थिपंजर होता होगा परन्तु वह सब दिशाओंमें एक समान फैला होगा। कुछ वृक्ष और जानवर एकही स्थानपर स्थित होंगे और चल फिर न सकते होंगे तथा कुछमें गति होगी अर्थात् एक स्थानसे दूसरे स्थानको हट सकते होंगे। उनकी इन्द्रियोंमें यह शक्ति अवश्य होगी कि वह अपने भोजनको पकड़कर हज़मकर सकें। मैं यह नहीं कह सकता कि वह साँस लेते है या नही। हमारी पृथ्वीपर वृक्ष जब साँस लेते हैं तो कर्बनद्विओषिद[2] को अपने अन्दर लेकर कार्बन और ओषजन[3] में विभक्तकर लेते हैं। हमारे यहाँके जानवर वायुमें ओषजन अन्दर ले लेते हैं और और साँसके साथ बाहर कार्बन–द्विओषिद निकाल देते हैं। संभव है कि चन्द्रमामें बिलकुल भिन्न प्रकारकी सृष्टि हो। यहाँपर किसी और रासायनिक संयोगसे प्राणियोंके अन्दर शक्तिका उत्पादन होता हो।"

शीलूने पूछा–"चन्द्रमामें लिंगभेद किस प्रकार है। क्या वहाँपर भी स्त्री–पुरुष होते है?"

डाक्टर हक्सरने जवाब दिया – "इस प्रश्नका उत्तर समझनेके लिये पहले यह देखना चहिए कि पृथ्वीपर लिंगका विकास किस तरह हुआ। निम्नातिनिम्न श्रेणीके प्राणियों और वृक्षोंमें लिंग भेद नहीं है। उनमें स्त्री या पुरुष भेदकी आवश्यकताही नहीं। उसमें प्रजननकी क्रिया अत्यन्त सरल है। वह पहले बढ़ते जाते है और तब दो या अधिक भागोंमें विभक्त होकर नये सेल बना देते है। विकासकी दूसरी श्रेणीमें दो जीवित एक सेलवाले प्राणी संयुक्त होकर अपने परस्पर संयोगसे एक नया एक सेलवाला प्राणी उत्पन्न करते हैं। यहाँ अभीतक लिंगका विकास नहीं हुआ है। दोनों सेल समान है, दोनोंके संयोग मात्रसे सृष्टि होती है पर इसके बाद लिंग भेद आरम्भ होता है। पुल्लिंग और स्त्रीलिंगमें विकास होने लगता है और नई सेल उत्पन्न होने लगती है। उसमें शुक्र सेल और अण्डज सेल दोनों अलग अलग उत्पन्न होने लगते है। कहीं कहीं पुरुष और स्त्री भिन्न व्यक्ति होते हैं या दोनों एक ही व्यक्तिके दो भाग होते है। जैसे फूलनेवाले पौधोंमें। अब इसके बाद सृष्टिकी दूसरी श्रेणियोंका विकास होता है।

"हम लोगोंको यह कितना असम्भव मालूम पड़ता है कि सृष्टिमें लिंगका विकास इतने धीरे हुआ। यह समझमें मुश्किलसे आता है कि बिना स्त्री–पुरुषके संयोगके ही अण्डा कैसे बढ़ने लगता है परन्तु इस समय भी ऐसे प्राणी मौजूद है जिनमें बिना ऐसे संयोगके ही अण्डे बढ़ने लगते हैं। एक प्रकारकी ऐसी मछली है जो पहले अण्डे दे देती है। तब नर उन अण्डोंमें शुक्रका संयोगकर देता है। इसलिये सृष्टिके विकास क्रममें नरका मादाके साथ रहना बहुत बादमें आया होगा। विकास क्रममें एक सीढ़ी और आगे ऐसे प्राणी विकसित हुए होंगे जिनमें स्त्रीपुरुष संयोगके बाद अण्ड़े दिये जाते होंगे और फिर बहुत दिनोंके विकासके बाद वह जीवधारी उत्पन्न हुए होंगे जिनम बच्चा निकलनेके कई महीने पहले, संयोग होता है।

अब अनुमान कीजिये कि चन्द्रमामें लिंगभेदका विकास कैसे हुआ। यह मान सकते है कि वह जीवधारी जो विकासके आरंभिक अवस्थामें ही लिंगहीन होंगे अर्थात् उनमें लिंगभेदका विकास न हुआ होगा। पर लिंग संयोगसे विकासमें तथा सृष्टिमें अत्यन्त सुविधा हो जाती है। इसलिए किसी न किसी रूपमें लिंगका विकास चन्द्रमामें भी अवश्य हुआ होगा। परन्तु यह बात मुझे बहुत सम्भव मालूम होती है कि चन्द्रमामें दो से अधिक लिंग विकसित हुए हों। मेरे अनुमानमें यह भी आता है कि शायद चन्द्रमामें तीन या तीनसे अधिक जन्मदाताओंके परस्पर संयोगके बाद ही एक बच्चा उत्पन्न

होता हो वा अंडा एक माँ के शरीरसे निकलकर दूसरेके शरीरमें जाता हो या कई शरीरोंमें भिन्न–भिन्न अवस्थाओं तक विकसित होता हुआ एक साथ कई जन्मदाता अर्थात् कई माता–पिताके शरीरमें से होता हुआ विकास की उस अवस्था पर पहुँचता हो जब बच्चेका जन्म होता हो पर यह सब मेरा अनुमान ही है। शायद चन्द्रमामें प्रजननकी क्रिया किसी ऐसी विचित्र विधिसे होता हो जिसका हमें पृथ्वीपर ज्ञान तक नहीं है। संभव है कि अब वहाँ कुछ रासायनिक संयोगसे ही प्रजननका कार्य होने लगा हो या होनेको ही हो।

परन्तु मैं तो कल्पनाके संसारमें विचरने लगा। जरा मेरी प्रयोगशालामें चलो। दो ही चार मिनटमें मैं तुम्हें कुछ सच्ची घटनाएँ दिखलाऊँगा। चलो मेरे यंत्रसे चन्द्रमाको देखो और मैं तुम्हें दो चार अपने गुप्त रहस्य भी बतलाऊँगा। मैंने एक ऐसी युक्तिकी कल्पनाकी है जो सफल हो गई तो मेरे अन्य सब आविष्कार इसके सामने बिलकुल साधारण सिद्ध होंगे।"

शीलू विद्युद्दर्शक यंत्र के परदे के सामने बैठ तो गये पर उनके मुँहपर अविश्वास का भाव विचित्र था। डा. हक्सर अपने यंत्रको ठीक करने लगे। शीलू शान्तिसे देखते रहे, पर यकायक विस्मय और अह्लावसे उछल पड़े। परदेपर ऐसा चित्र दिखलाई पड़ा जिसकी कल्पना भी करना इनके लिएं असम्भव था।

डाक्टर हक्सर बतलाने लगे, "देखो यह चन्द्रमाके तलका बहुत छोटासा अंश है। यह इतना साफ नहीं है। इस चित्रमें कुछ धुंधलापन है। कारण यह है कितनेही हजार गुना आकार बर्धक शक्तिका प्रयोग करके चित्र दिखलाया गया है। परन्तु इससे आपको चन्द्रमाकी अवस्थाका तथा चन्द्रमाकी चीजोंका बहुतही स्पष्ट ज्ञान हो सकता है

शीलू विस्मय भरी आवाज़से बोल उठे –"कैसे विचित्र वृक्ष है! क्यों साहब! यह हरे तो बिलकुल है ही नहीं। यह तो इन्द्रधनुषके सभी रंगोंसे रंजित है। कुछ लाल है। कुछ नीले, कुछ कासनी। कहीं नारंगी, हरा और पीला तीनों रंग एकही वृक्षमें मौजूद है। कोई जादू तो आपने नहीं कर दिया? क्या कोई मदारी का खेल है? और देखिए तो इनकी शक्ल ! ऐसे वृक्ष हमारी पृथ्वीपर तो होते नहीं। सम्भव है समुद्रके अन्दर जो वृक्ष होते है वह कुछ इनके समान हों। देखिए वह सुनहला पौधा! वह तो मूँगेके गुच्छे जैसा मालूम होता है। इनमेंसे कुछ तो पौधे क्या है केवल जड़ मात्र है। और वह क्या चीज़ें है जो फुदक रही है। देखिए वह घूमती फिरती है और कितना ऊँचा उछल जाती है। क्या यह कोई जन्तु है?"

डाक्टर हक्सर मुस्कुराते हुए बोले–"या तो वह कोई जानवर है या चलते फिरते वृक्ष।"

शीलूने कहा – "यह तो बड़े विचित्र है और एक और विचित्र बात यह है कि यह सब उलटे है। मानों चन्द्रमासे यह टंगे हुए है और बहुत जल्द वहाँसे अलग गिरने वाले है।"

डाक्टर हक्सरने कहा – "एक बात मेरी समझमें नहीं आती। इन प्राणियोंमें मस्तिष्क है या नहीं। इनमें बुद्धिका विकास हुआ है या नहीं। प्रश्न है कि इनमें मेधा–शक्ति है या नहीं। अब हम लोग तो मस्तिष्क और बुद्धिवाले वृक्षोंकी कल्पनाकर नहीं सकते परन्तु सृष्टि क्रममें यह कोई असम्भव बात भी नहीं है। मेरा विश्वास है कि चन्द्रतलसे लगे हुए जीवधारी वृक्षोंमें जीवन अवश्य है। छोटे–छोटे पौधोंसे बड़े आकार तक मैंने इन्हे बढ़ते देखा है। इनका विकास केवल धातुकी तरहका नहीं है परन्तु इनमें वास्तविक वृद्धि होती रहती है, जैसे पौधोंमें। परन्तु इनमेंसे कुछ बड़े ही विचित्र हैं, जब तक छोटे रहते है इधर उधर घूम सकते हैं। परन्तु एक सीमा तक बढ़कर यह एक ही स्थान पर स्थिर हो जाते हैं, जंगल से स्थावर हो जाते हैं। पृथ्वी पर दो चार ऐसे प्राणी है जैसे मडूसा, (medusae) एक प्रकार की मछली। आरम्भिक अवस्था में यह मछली तैरती रहती है परन्तु इसके

अण्डे जड़ पकड़ लेते हैं और बढ़कर कई भागों में विभक्त हो जाते हैं जिनमें से प्रत्येक एक मछली बन जाता है।

शीलू बोले – "इन प्राणियोंमें बुद्धि कभी नहीं हो सकती। देखिए कैसे इधर उधरसे लुढ़क रहे है।"

डा. हक्सरने अब अपने यंत्रको चन्द्रमाके दूसरे भागकी ओर लगाया। अब परदेके ऊपर एक विचित्र यंत्रका चित्र दिखलाई पड़ा।

डा. हक्सर बोले – "देखो शीलू! यह क्या है? यह अवश्य कोई विचित्र प्रकारकी मशीन है और चन्द्रमा निवासी यदि ऐसी मशीनें बना सकते हैं तो अवश्य उनमें बुद्धि होगी, उनकी शक्लें चाहे जितनी विचित्र क्यों न हों। पर यह मशीन है किस कामके लिए। हमारी पृथ्वीपर तो इस प्रकारकी कोई मशीन नहीं है। यह भी निश्चित रीतिसे नहीं कह सकते कि यह धातुकी बनी है। शायद यह किसी ऐसी चीज़की बनी है जिसका हमें ज्ञान तक नहीं। चन्द्रमा निवासियोंकी मशीन इतनी विकसित इस समय होगी जितनी हमारी मशीनें लाखों वर्ष बाद होंगी। वह लोग विकास क्रममें लाखों वर्ष हमसे आगे हैं। इसलिए उनके जैसे यंत्र हम लाखों वर्ष बाद बना सकेंगे। और कौन मनुष्य अभीसे लाखों वर्षो आगेकी बात बतला सकता है? भला सोचो तो एक हजार वर्षोंमें कैसे कैसे आविष्कार भूमंडलपर होंगे और तब इस बातकी कल्पना करो कि एक लाख वर्षोंमें कैसे आविष्कार होंगे। एक बात निश्चित है कि चन्द्रमा पर बुद्धि वाले प्राणी अवश्य विद्यमान है। संभव है कि मशीन इसलिये बनाई गई हो कि चान्द्र दिनों सूर्यका ताप संचितकर लिया जाय और रात्रिमें इसी तापसे काम लिया जाय। इस प्रकार चान्द्रतल प्राणियोंके निवास योग्य बना लिया गया हो। मैं छानबीनमें लगा हूँ। मुझे विश्वास है कि थोड़ेही समयमें इस यंत्रका विस्तृत वृत्तान्त जान लूँगा।"

शीलूने पूछा, "कैसे?"

डा. हक्सरने कहा – " मैं चन्द्रमा निवासी बुद्धिवाले इन प्राणियोंसे बातचीत करनेका प्रयत्नकर रहा हूँ।"

शीलू ने पूछा–"क्या रेडियो द्वारा?"

डा. हक्सरने उत्तर दिया – "नहीं, अभी नहीं। इसपर पीछे विचार करूँगा। अभी तो मैं यहाँसे चन्द्रमातक एक गाड़ी भेजने वाला हूँ जिसमें चन्द्रमा निवासियोंके लिये पृथ्वीसे खबरें भेजूँगा।"

चकित होकर शीलू बोले–"गाड़ीमें खबरें। क्या चन्द्रमा–निवासियोंकी भाषा जानते है? या आपका विश्वास है कि वह हिन्दी या संस्कृत समझ लेगें?"

शीलूके शब्दोंमें व्यंग्य था। डाक्टरने शान्त भावसे उत्तर दिया, "न मैं उनकी भाषा जानता हूँ और न वह मेरी। मैं ऐसी भाषाका प्रयोग करूँगा जो समस्त ब्रहाण्डमें प्रचलित है। मैं कुछ चित्र भेजूँगा जिनम सब वस्तुएँ अपने असली रंगोंमें चित्रित होंगी। शायदही कोई ऐसे जंगली मनुष्य संसारमें हों जो चित्रोंको कुछ न कुछ समझ न सकते हों"।

शीलू बोल उठे, "परन्तु इन चन्द्रमानिवासियों के आंखें तो नहीं मालूम पड़तीं। जब देख ही न सकेगें चित्रोंको तो समझेंगे क्या?"

अब भी डाक्टरने शान्त भावसे उत्तर दिया, "इन चित्रोंके अतिरिक्त मैं मनुष्य, स्त्री, बच्चे, जानवरों, वृक्षों, यंत्रों इत्यादि भिन्न भिन्न प्राणियों और वस्तुओंके नमूने भेजूँगा। संभवतः हमारे चन्द्रमा निवासी मित्र बदलेमें चन्द्रमाकी वस्तुओंके नमूने भेजेंगे। उनके यंत्र प्राप्त करके या उनके रासायनिक यौगिकोंका विश्लेषण करके हम कितना वैज्ञानिक उन्नतिकर सकेंगे। दो चार वर्षोमें ही हम लोगोंको इतना ज्ञान प्राप्त हो जायगा जिसे चन्द्रमा निवासियोंने हजारों वर्षोंमें संचित किया है। मेरी तो बुद्धि अभीसे चौंधियाई जाती है। परन्तु मुझे डर है कि मेरी बुद्धि अभी इतनी विकसित नहीं

है कि मैं उनकी मशीनोंका हाल समझ सकूँ। अपनी परिमित बुद्धिके कारण शायद मैं पर्याप्त लाभ न उठा सकूँ। यदि भास्कराचार्यको विद्युत्की मोटर या बिना तारके खबरें भेजने वाला रेडियों यंत्र मिल जाता तो वह उनकी पूँछ–नाक क्या समझ पाते। डायनेमोको चलता हुआ वह देखते तो क्या समझते कि गतिका कारण कहाँ है। मान लो चान्द्रिया ने मेरे पास ऐसी मशीन भेज दी जो आणविक शक्तिसे चलती है तो मेरे लिए उसका समझना उतनाही कठिन होगा जितना भास्कराचार्यके लिए मोटरका हाल।"

शैलेन्द्र कुमार चट्टोपाध्याय व्यंग्यपूर्ण हँसी हँसकर बोले–"मेरी राय है कि आप अपने सब नमूने किसी मछलियोंके स्कूलमें भेज दीजिए। यह भी आपके नमूनोंको उतनाही समझ सकेंगे जितना चन्द्रमानिवासी सज्जन जिनकी बुद्धिके सम्बन्धमें अपने बड़े बड़े कल्पनाके पुल बांधे है। हाँ आपके मन्तव्यमें एक ज़रासी कमी और है।"

"वह क्या?"

शीलूने कहा–"अपनी गाड़ी और नमूने आप चन्द्रमा तक भेजेंगे कैसे?"

इन शब्दोंके साथ शीलू जोररो हँस पड़े। उनका विश्वास था कि अब डाक्टर निरुत्तर हो जायंगे।

परन्तु डाक्टर हक्सरने मुस्कुराते हुए शान्त भावसे उत्तर दिया – "ठीक! चन्द्रमा तक गाड़ी भेजना कोई आसान काम नहीं है। मैं अपने जीवनमें कितनीही कठिन समस्याएँ हलकर चुका हूँ और मुझे विश्वास है कि मै इसे भी हलकर लूँगा। वस्तुतः मैं इस प्रश्नको भी हलकर चुका हूँ परन्तु फिर कभी इसका हाल बतलाऊँगा।"

---

1. सिकुड़ना
2. Carbon Dioxide CO_2
3. Oxygen

मधु–मक्खियों का राजा*

श्रीराम शर्मा

मधु–मक्खी परिश्रम, कर्तव्यपरायणता, आज्ञापालन और संघटन की मूर्ति है। संसार का शिक्षित तथा सभ्य समाज मधु–मक्खी से सेवा भाव, शासन–पद्धति और अखंड ब्रह्मचर्य की शिक्षा ले सकता है। संसार में यदि राज्य शासन–प्रणाली कहीं लोक–प्रिय और आदर्श–स्वरूप है, तो मधु–मक्खी के छत्ते में। रानी–मक्खी के सिवा बाकी सब मक्खियाँ बौद्ध भिक्षुओं की भांति ब्रह्मचर्य–पालन करने का व्रत करती हैं। ये उस प्रण को अंत तक निभाती हैं, और कर्तव्य पर अपना जीवन होम कर देती हैं। रानी और प्रजा का पारस्परिक व्यवहार देखिए। प्रजावर्ग प्रतिक्षण अपने उपनिवेश–छत्ते के लिये मर मिटने को उद्यत है, और रानी की समृद्धि के लिये शहद एकत्र करने में सर्वदा तल्लीन रहता है। और, रानी? ऐसा आदर्श शासक संसार में कहीं भी न मिलेगा। यद्यपि शहद की संपूर्ण राशि उसी की है, और यदि वह सब सामग्री को स्वयं ही व्यय कर दे, तो भी उसकी प्रजा कुछ न कहेगी; पर रानी अपनी प्यारी प्रजा के पसीने और खून की कमाई का वही भाग लेती है, जितना उसे पेट भरने के लिये प्रतिदिन चाहिए। वह निरंकुश है; पर वह निरंकुशता धार्मिक और नैतिक है। छत्ते–उपनिवेश में न कोई क्रांतिकारी है, और न राज विद्रोही। वहाँ पर न पुलिस का राज्य है, और न नरम और गरम का वादविवाद। तुलनात्मक राजनीति के अध्यापकों और जिज्ञासुओं ने न मालूम इस शासन–प्रणाली को क्यों छोड़ दिया। हाँ, तो छत्ता एक छोटा पूरा राज्य है। छत्ते में तीन वर्ग हैं। छत्ते में रानी–मक्खी, काम करने वाली मक्खियाँ और निखट्टू नर रहते हैं, जो कुछ कार्य नहीं करते और जो घृणा की दृष्टि से देखे जाते हैं। शहद की मक्खियों पर अनेक पुस्तकें हैं। अमेरिका और इंगलैंड से अनेक पत्र–पत्रिकाएँ शहद की मक्खी के पालने और शहद के व्यापार पर निकलती हैं। भारतवर्ष से कदाचित कोई भी पत्र इस विषय पर नहीं निकलता। हाँ, दो–एक किताबें तो हिन्दी में इस विषय पर देखी गई हैं। पहाड़ी प्रान्तों में शहद की मक्खी को लोग पालते भी हैं। शहद की मक्खी कई प्रकार की होती है। इस लेख में मैं शहद की मक्खी के भेद और उनके पालने के ढँग और शहद के व्यापार पर नहीं लिखता। इसमें तो केवल एक ऐसे व्यक्ति का सूक्ष्म वर्णन है, जो हज़ारों मक्खियों को अपने शरीर पर बैठा लेता है, अपने टोप में मधु–मक्खियाँ भर कर उसको अपने सिर पर रख लेता है, और वे उसको तनिक भी नहीं काटतीं। कितनी कट्टर और कैसी ही भयंकर मधु–मक्खियाँ हों, उस व्यक्ति से कुछ नहीं कहतीं। उनके छत्ते में वह हाथ डाल सकता है। वह उनको अपनी मुट्ठी में रख लेता है। नाक, कान और आँख तक पर बैठा लेता है। इसीलिये उसको शहद की मक्खियों का राजा कहते हैं। उसका नाम ई.आर. रूट है। संयुक्त–राज्य, अमेरिका में उसे 'मधु–मक्खियों का राजा' कहते हैं। वह कोई जादू–टोना नहीं करता। उसका मूल मंत्र

* *माधुरी,* 1926

है–"मधु–मक्खियों को अपनी सदभावनाओं का निश्चय करा दो और फिर उनसे बिल्ली के बच्चों की भांति खेल लो।" रूट साहब ने पंद्रह वर्ष तक ओहियो–युनिवर्सिटी में शहद की मक्खियों और शहद पर व्याख्यान दिए हैं, और अध्यापन का कार्य किया है। वह"ग्लीनिंग्ज इन बी–कलचर" पत्रिका के संपादक भी हैं। कहा जाता है, रूट महाशय ने सैकड़ों मक्खियों से हाथ धोए हैं। प्रायः वह मधु–मक्खियों को उठाकर अपने मुँह में रख लेते हैं, और मक्खियां उनके डंक नहीं मारतीं। लोगों ने जब रूट साहब की यह ख्याति सुनी, तो उन्होंने सहसा उस पर विश्वास न किया, और कहा कि रूट की मधु–मक्खियाँ विशेष ढंग से पाली गई होंगी। लोगों ने रूट को चैलेंज किया और एक मक्खी पालनेवाले ने अपनी कट्टर मधु–मक्खियों पर प्रयोग करने को कहा। रूट कटिबद्ध हो गए। जनता के सम्मुख उन्होंने उस व्यक्ति की मधु–मक्खियों को उठाया, उठाकर टोप में और हाथों पर रक्खा। पर उन मधु–मक्खियों में से किसी ने उन्हें नहीं काटा। एक बार रूट ने घोषणा की कि किवानिसे नामक समिति को वह एक बार मधु–मक्खी द्वारा काटे जाने पर एक डालर देंगे। एक व्यक्ति अत्यंत कट्टर और ज़हरीली मधु–मक्खियों का झुंड लाया। रूट ने सबको पालतू बना लिया, उन्हें छुआ और उसे एक भी डालर नहीं देना पड़ा। रूट जब चाहते हैं, तब मधु–मक्खियों को उड़ा देते हैं, और हाथ का इशारा देकर उनको बुला लेते हैं। यह कोई रहस्य नहीं है। रूट का कहना है कि वह रानी–मक्खी को संदूक में ही रखते हैं, इसलिये अन्य मधु–मक्खियाँ दूर नहीं उड़तीं। जब वे लौटती प्रतीत होती हैं, तब वह हाथ का इशारा देते हैं। मधु–मक्खियाँ हाथ के इशारे के कारण नहीं लौटतीं, वरन् इसलिये कि रानी उनके साथ नहीं होती। फिर भी पाँच हज़ार मक्खियों को पालना, बुलाना और अपने शरीर और टोप में बिना डंक खाए हुए रखना बड़ा ही आश्चर्यजनक है। यह ऐसा कार्य है, जिसको प्रत्येक व्यक्ति नहीं कर सकता।

दूसरी विशेष बात रूट का मधु–मक्खियों का खिलाना है। वह उनको एक लाइन में खड़ा कर लेते और उनसे मीठा रस चटाते हैं। वे लगभग पाँच छटाँक रस को पंद्रह मिनट में चाट जाती हैं। उनके भोजन के उपरांत वह उन्हें नचाते हैं। जीवन–भर में केवल एक ही बार मधु–मक्खियों ने उन्हें काटा था। एक बार वह क्लीवलैंड में भाषण दे रहे थे। नियमानुकूल उन्होंने उपस्थित जनता में से किसी से टोप माँगा। उन्होंने अपने टोप का इसलिये उपयोग नहीं किया कि लोग यह न समझें कि उनके टोप में कुछ विशेष बात होगी। ज्यों ही उन्होंने उस टोप को अपने सिर पर रक्खा कि सैकड़ों डंक उनकी खोपड़ी में घुस गए। डंक मारने का कारण यह था कि उस टोप से तेल की गंध आती थी, और वह मैला था। रूट का कहना है कि रानी–मक्खी का स्वभाव स्त्रियों से किन्हीं अंशों तक बहुत मिलता जुलता है। दो रानी–मक्खियाँ साथ–साथ एक ही छत्ते में शांति–पूर्वक नहीं रह सकतीं। यह संभव है कि रानी और उसकी पुत्री कुछ सप्ताह तक शांतिपूर्वक एकसाथ रह लें। जब दो रानी–मक्खियाँ आपस में लड़ती हैं, तब वे एक दूसरे को केवल डंक ही नहीं मारतीं, वरन् स्त्रियों की भाँति एक दूसरे के बाल भी नोचती हैं।

रानी–मक्खी की शान मध्यकालीन इतिहास के शासकों तथा भारतीय देशी नरेशों की सी होती हैं। उसके चारों ओर, छत्ते में, मुसाहबों और दरबारियों की भाँति मक्खियाँ सेवा के लिये रहती हैं। ये रानी की परिचारिकाएं होती हैं। एक रानी मक्खी एक दिन में तीन सौ से तीन हज़ार तक अंडे देती है, और एक रानी एक लाख मक्खियों की माता हो सकती है। रूट का कहना है कि मधु–मुक्खियाँ फूलों से मधु नहीं लातीं। वे एक प्रकार का रस लाती हैं, जिसमें पानी मिला होता है। उसको लिए हुए वे कुछ देर उड़ती रहती हैं, फिर उसको छत्ते के छिद्रों में जमा कर देती हैं। मध्याह्न के उपरांत वे अपने पंखों से हवा करती हैं, जिससे रस का पानी भाप बनकर उड़ जाता है, और उनके शरीर की गरमी से मधु पक जाता है। तब वे आवश्यकतानुसार उस छेद को बंद कर देती हैं। आध–सेर फूलों का रस लाने के लिये लगभग बीस हज़ार मधु–मक्खियों की आवश्यकता होती है।

हिंदी में वैद्यक–शास्त्र*

वैद्य गोपीनाथ

बहुत काल से हम लोग हिन्दी–भाषा को राष्ट्र–भाषा के उच्चासन पर प्रतिष्ठित करने का उद्योग कर रहे हैं। हिन्दी–साहित्य सम्मेलन, नागरी–प्रचारिणी सभा और अन्य अनेक संस्थाएं तथा पुस्तक प्रचारक व्यावसायिक व्यक्ति और कंपनियाँ इस क्षेत्र में सराहनीय उद्योग कर रही हैं; परंतु देश के दुर्भाग्य–वश, अधिकांश प्रकाशकों का ध्यान देश की आवश्यकताओं की ओर नहीं, अपितु मनोरंजन की ओर विशेष आकर्षित हो रहा है। उपन्यास, नाटक, गल्प और प्रहसन आदि मनोरंजन सामग्री की ही श्रीवृद्धि हो रही है। परंतु क्या अन्य प्रांतवासियों की रुचि को आकर्षित करने के लिये यह सामग्री यथेष्ट हो सकती है? क्या बंगला, गुजराती और मराठी जनता हिंदी–नाटकों को पढ़ने के लिये हिंदी की ओर झुक सकती है? माना कि राष्ट्र–भाषा को राष्ट्र–भाषा होने के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति को पढ़ना चाहिए, परंतु सिद्धांत को समझकर कार्य में प्रवृत्त होनेवाले लोग कितने होते हैं? अधिकांश जनता तो अपने व्यक्तिगत लाभ की ओर ही ध्यान रखती है और संसार में उन्हीं वस्तुओं का अधिक प्रचार होता है जिनसे व्यक्तियों का अधिक से–अधिक स्वार्थ सिद्ध होता हो। बंगला–भाषा को राष्ट्र–भाषा बनाने का यत्न नहीं किया गया तथापि हिंदी–भाषा–भाषियों में बंगला–भाषा सीखने की रुचि कुछ कम नहीं है। क्यों? इसीलिये कि उस भाषा में प्रायः हर प्रकार की रुचि के लोगों के लिये उपयुक्त साहित्य विद्यमान है। अतएव हिंदी के हित–चिंतकों का ध्यान भी शीघ्र–से–शीघ्र इस ओर आकर्षित होना चाहिए।

जिन विषयों के ज्ञान से जन–साधारण का अधिक से अधिक हित–साधन हो सकता है, जिनसे भूखे भारत की भूख भग सकती है, उन विषयों के साहित्य से हिंदी का भंडार परिपूर्ण करना चाहिए।

संप्रति भारत की वह अवस्था नहीं है कि केवल काव्य–रस पान के लिये जनता हिंदी की ओर खिंची चली आए। हिन्दी को राष्ट्र–भाषा बनाने के लिये उसे राष्ट्रोपयोगी बनाना ही पड़ेगा। राष्ट्र में काव्य–रसिकों की संख्या ही कितनी है, इस बात पर ध्यान न देते हुए चाहे जितना सुरीला स्वर–संयोग कीजिए, वह असमय का राग कहलाएगा।

यदि सचमुच हिंदी–प्रकाशक हिंदी–हित के लिये कुछ करना चाहते हैं, तो उन्हें जन–साधारण की आवश्यकताओं का विचार करके अत्यंत शीघ्र अपने कार्य–क्रम को बदल देना चाहिए। नाटक, गल्प, काव्यादि की अपेक्षा कृषि, वाणिज्य, वैद्यक, वयन–शास्त्र, वस्त्र–रंजन–(रँगरेज़ी) विद्या प्रभृति विषयों से संबंध रखनेवाले साहित्य की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए।

आजकल जनता की रुचि दिनोदिन वैद्यक की ओर विशेष रूप से बढ़ रही है। परंतु खेद का

---

* *माधुरी*, 1926

विषय है कि हिंदी में वैद्यक–शास्त्र–संबंधी साहित्य की दशा अत्यंत निराशा–जनक है। यही कारण है कि वैद्यक–शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिये लोगों का झुकाव बंग–भाषा की ओर बढ़ता जाता है। संस्कृत–ज्ञान के लिये भी लोग प्रयत्न अवश्य करते हैं, परंतु ऐसी भाषाओं में सफलता प्राप्त करना अत्यंत कठिन है। यही कारण है कि जो लोग संस्कृत या बंगला नहीं सीख सकते, एक–दो छोटी–मोटी हिंदी–पुस्तकों में वैद्यक–शास्त्र की इतिश्री समझ बैठते हैं। परिणामतः अनाड़ी वैद्यों की संख्या बढ़ना स्वाभाविक ही है। अतएव हिंदी में वैद्यक–संबंधी पुस्तकों की कमी केवल साहित्यिक अपूर्णता को ही प्रकट नहीं करती, अपितु जन–साधारण के स्वास्थ्य और जीवन को भी संकट में डाले हुए है।

हिंदी में वैद्यक–संबंधी मूल–ग्रंथों में तो 'नूतनामृतसागर', शिवनाथ–सागर, वैद्यक, शिक्षा', 'चिकित्सा चंद्रोदय' आदि दो–चार गिनी–चुनी पुस्तकों के अतिरिक्त शून्य ही दृष्टि–गोचर होता है। यदि खोज की जाय तो शायद काय–चिकित्सा–संबंधी कुछ छोटी–छोटी पुस्तकें और ट्रैक्टटों के नाम और भी मिल जायें, परंतु शल्य, शालक्य, अगदतंत्र, कौमारभृत्य, स्वस्थवृत्त आदि अन्य विषयों की ओर तो सफाया ही नज़र आता है। शल्य शालक्य में केवल 'जर्राही–प्रकाश' का ही नामोल्लेख किया जा सकता है। यदि श्रीमान् डा. त्रिलोकीनाथ जी–कृत 'हमारे शरीर की रचना'* न होती, तो शरीर–शास्त्र में भी किसी पुस्तक का नाम न ले सकते।

उपर्युक्त ग्रंथों में भी 'अमृत–सागर' को मौलिक ग्रंथ नहीं कह सकते। प्रथम यह ग्रंथ जयपुरी–भाषा में लिखा गया था, उसी का परिवर्द्धित हिंदी–अनुवाद'नूतन अमृत–सागर' के नाम से प्रसिद्ध है।

यह ग्रंथ चाहे मौलिक हो या अनुवाद, परंतु इसमें संदेह नहीं कि इससे हिंदी–भाषा–भाषियों का बहुत हित साधन हुआ है।

संपूर्ण ग्रंथ चार खंडों में विभक्त है–(1) उत्पत्ति–खंड, (2) विचार–खंड, (3) निदान–खंड और (4) चिकित्सा–खंड। इसमें काय–चिकित्सा संबंधी प्रायः सभी विषयों का थोड़ा–बहुत वर्णन आ गया है। औषध–निर्माण–विधि और निघंटु यद्यपि संक्षिप्त हैं तथापि अत्यंत उपयोगी है। ग्रंथ की भाषा भी अत्यंत सरल और सुपाच्य है। क्रम कुछ–कुछ 'भाव–प्रकाश' से मिलता–जुलता ही है।

'वैद्यक–शिक्षा' और 'चिकित्सा–चंद्रोदय' यद्यपि लगभग एक ही शैली के ग्रंथ हैं किन्तु चिकित्सा चन्द्रोदय का विस्तार बहुत अधिक है। इसमें विषय भी बहुत अधिक हैं, और अद्यावधि प्रकाशित हिंदी के वैद्यक–ग्रंथों में शायद यही सबसे बड़ा ग्रंथ है। 'वैद्यक–शिक्षा' केवल भारतीय आयुर्वेद के आधार पर लिखी गई है और 'चिकित्सा–चंद्रोदय' में यूनानी से भी बहुत कुछ सहायता ली गई है। हाँ, 'वैद्यक–शिक्षा' का क्रम और संगठन वस्तुतः बहुत उत्तम है।

ये दोनों पुस्तकें जनसाधारण के लिये अवश्य ही बहुत उपयोगी हैं, परंतु हिंदी में श्रीमान् डॉ0 गुलाम–जीलानी महोदय–कृत "घर का डॉक्टर"–जैसी एक भी पुस्तक नहीं है कि जिसमें विभिन्न चिकित्सा–पद्धतियों पर तुलनात्मक विचार किया गया हो। थोड़े ही समय में इसकी कई आवृत्तियाँ हो चुकी हैं। इसी से पुस्तक का गौरव भली भांति प्रकट होता है। हिंदी में भी एक ऐसी पुस्तक की अत्यंत आवश्यकता है और आशा है कि कोई विद्वान् वैद्य शीघ्र ही इस कमी को पूरा करने का प्रयत्न करेंगे।

यह तो रही मूल–ग्रंथों की बात। अब अनुवादित ग्रंथों की गाथा सुनिए। हिंदी में 'तिब्बे अकबर', 'इलाजुल–गुरबा' आदि कुछ गिने–चुने यूनानी–ग्रंथों को छोड़कर प्रायः संस्कृत–ग्रंथों के

---

*1922 में प्रकाशित

ही अनुवाद दीख पड़ते हैं और चरक, सुश्रुत, भैषज्य–रत्नावली, चक्रदत्त प्रभृति प्रायः सभी प्राचीन और अर्वाचीन ग्रंथों के अनुवाद पाए जाते हैं। परंतु इनमें से अधिकांश अनुवादों में अर्थ का अनर्थ किया गया है। अतएव हिंदी–हितैषियों और आयुर्वेद–प्रेमियों का परम कर्तव्य है कि आयुर्वेद के भिन्न–भिन्न विषयों पर पृथक–पृथक उच्च कोटि के ग्रंथ लिखाने का प्रयत्न करें। प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रंथों का परिमार्जित एवं अत्यंत सरल हिन्दी में शुद्धअनुवाद होना भी परमावश्यक है, केवल संस्कृत ही नहीं फ़ारसी, अरबी, अंगरेज़ी आदि भाषाओं के ग्रंथों के अनुवादों से भी आयुर्वेदीय साहित्य को परिपूर्ण करना चाहिए। विशेषतः स्वास्थ्य–रक्षा संबंधी साहित्य की ओर तो हमारा ध्यान अत्यंत शीघ्र आकर्षित होना चाहिए। कतिपय संस्कृताभिमानियों की धारणा है कि हिंदी–भाषा में आयुर्वेदीय संस्कृत–ग्रंथों का अनुवाद होने से महान अनर्थ हो जाएगा, विद्या अनधिकारियों के हाथ में आ जायगी। परंतु 'आयुर्वैदिक ऐंड यूनानी तिब्बी कॉलेज' देहली ने हिंदी–भाषा द्वारा आयुर्वेदीय शिक्षा प्रदान कर इस विचार को सर्वथा निर्मूल सिद्ध कर दिया है। अतएव इस विषय में विशेष कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। हाँ, यह अवश्य मानना पड़ेगा कि जब तक अच्छे अनुवाद न होंगे, तब तक हिन्दी द्वारा शिक्षा देना कठिन अवश्य है और इस कठिनता को देहली–कॉलेज के संचालक भी अनुभव कर रहे हैं। परंतु अनुवाद होना कुछ असंभव नहीं है, जब अन्यान्य गंभीर से गंभीर विषयों की पुस्तकें हिंदी में लिखी जा सकती हैं, तो कोई कारण नहीं कि आयुर्वेदीय ग्रंथों के लिये हिंदी अयोग्य समझी जाय।

हिन्दी में वैद्यक–शास्त्र की पुस्तकें न होने से यह भी एक बड़ा अनर्थ हो रहा है कि दिन–प्रतिदिन अनाड़ी वैद्यों की संख्या बढ़ती जा रही है, क्योंकि सर्वसाधारण के लिये संस्कृत–ज्ञान प्राप्त करना सुलभ नहीं हैं और चिकित्सा–व्यवसाय की ओर जनता की रुचि बढ़ती जा रही है, परिणामतः लोग कुछ नुस्खे याद करके ही इस कार्य में प्रवृत्त हो जाते हैं और उनका उल्टा–सीधा प्रयोग करके जनता का स्वास्थ्य एवं धन का अपहरण कर रहे हैं। परंतु इसमें उन बेचारों का कुछ अधिक दोष नहीं, आयुर्वेदीय ज्ञान का मार्ग ही इतना संकीर्ण हो गया है कि उसमें बहुत ही अल्पसंख्यक मनुष्यों का प्रवेश हो सकता है। आयुर्वेद की अवनति का भी यह एक प्रधान कारण है, उसकी उन्नति के लिये बहुत ही थोड़े मस्तिष्क कार्य कर सकते हैं। यदि सरल हिंदी–अनुवाद प्राप्त हो सकें, तो बहुसंख्यक अयोग्य वैद्य योग्य बनकर जनता के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकेंगे, एवं आयुर्वेद भी उन्नत दशा को प्राप्त हो सकेगा। योग्य वैद्यों की संख्या–वृद्धि होने से जहाँ वह आयुर्वेदोन्नति के उपाय सोच सकेंगे, वहाँ जनता को भी उन पर अधिक विश्वास होगा और देश का विदेशीय औषधों में व्यय होने वाला बहुत–सा धन बच सकेगा। निष्कर्ष चाहे जिस दृष्टि से विचार किया जाय, हिंदी–भाषा में उच्च कोटि के आयुर्वेदीय साहित्य की अत्यंत आवश्यकता है और इस विषय पर 'हिन्दी–साहित्य–सम्मेलन' को भी अवश्य ध्यान देना चाहिए, क्योंकि इससे केवल वैद्य–समाज का ही नहीं, अपितु समस्त देश के लाभ होने की आशा है।

मुफ़्तखोरों की प्रकृति और रचना★

प्रतापसिंह नेगी एम.एस.सी.

मुफ़्तखोर (parsite) शब्दके विस्तीर्ण अर्थके भीतर वे सब प्राणी आ जाते हैं जो दूसरे जीवधारियोंके शरीरमें रहते हैं, और उन्हींके शरीरसे भोजन पाते हैं। यह परिभाषा केवल वनस्पतियों और जन्तुओंके भीतर रहने वालेही मुफ़्तखोरोंको संयुक्त नहीं करती बल्कि उनको भी संयुक्त करती है जो वनस्पतियों और जन्तुओंके ऊपरी भाग पर रहते हैं। किसी वृक्षके भीतर या किसी फलके गूदेमें रहने वाला कीड़ेका बच्चा (larva) किसी भाँति मनुष्यकी अंतड़ियोंमें रहने वाले सूत कीड़े (thread worm) से कम मुफ़्तखोर नहीं कहा जा सकता और भौंरा जो कि जंगलके वृक्षोंकी पत्तियोंको नष्टकर देता है वह भी उसी श्रेणीका मुफ़्तखोर है जिस श्रेणीके मुफ़्तखोर मनुष्य और अन्य जन्तुओंके शरीरपर रहने वाले जूएँ होते हैं। इस अर्थके अनुसार मुफ़्तखोरीका जीवन इस संसारमें अति व्यापक अद्‌भुत वस्तु या घटना (phenomenon) है।

प्राचीन कालमें मुफ़्तखोर शब्द कुछ विशेष रूपोंही के लिये प्रयोग किया जाता था। इसका स्वाभाविक फल यह हुआ कि मुफ़्तखोरी सबसे पृथक अद्‌भुत वस्तु समझी जाने लगी और उसका सम्बन्ध किसी भी अन्य प्रकारके जीवनसे न समझा जाने लगा। परन्तु अब यह सम्मति मिथ्या समझी जाती है और जब हम इस विषय पर ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करते हैं तो यह बड़े महत्वकी बात समझी जाती है। केवल आँतके अन्दर कीड़े (intestinal worm) और उनसे मिलते जुलते दूसरे प्राणीही मुफ़्तखोरोंकी श्रेणीमें नहीं रखे जाने चाहिये बल्कि बहुतसे उन जन्तुओंकी गणना भी इसी श्रेणीमें होनी चाहिये जो कि अहारकी प्रकृतिके सिवाय कभी कभी बिलकुल अन्य बातोंमें स्वतंत्र जीवधारियों (free living animals) से इस पूर्ण रीतिसे मिलते जुलते हैं कि इसी धोख़ेमें वे स्वतंत्र जीवनकी रीति व्यतीत करने वाले समझे गये हैं। क्या यह मुफ़्तखोरीकी विशेष प्रकृतिके साधारण रायके अनुकूल है कि किसी एक जीवको उपरोक्त व्याख्याके अनुसार मुफ़्तखोर मानना ही चाहिये, केवल इसही कारण कि बजाय सूखी हुई लकड़ीके वह एक जीवित टहनीका अहार करता है या बजाय सूखी पत्तियोंके वह हरी पत्तियोंको खाता है और अन्य स्वतंत्र जीवधारियोंसे स्पष्टतया पहचाना जाना चाहिये? क्या इन अन्तरोंके गुण और आशय उन अंतरोंके गुण और आशयोंसे कम गूढ़ नहीं मालूम होते जिनसे एक और माँसहारी जन्तुओंमें ओर दूसरी ओर ग्रासाहारी जंतुओंमें भेद मालूम होता है।

यहाँपर जो प्रश्न उठा है वह बिना उत्तरही के रह जाता है कारण कि हम मुफ़्तखोरीके विचारको यहाँपर बहुतही संकीर्णकर देना चाहते हैं और बिलकुल उन्हीं जन्तुओं पर सीमित कर

★ *विज्ञान*, अप्रैल 1926

देना चाहते हैं जो दूसरे जन्तुओं पर मुफ़्तखोरीका जीवन व्यतीत करते हैं और इस लेखके लिये ऐसा ही करना हमारे लिये उचित होगा।

इस सीमाके भीतर मुफ़्तखोरोंका समूह साधारण दृष्टिसे पहिले विस्तीर्ण विचार की अपेक्षा बहुत छोटा मालूम पड़ता है, और प्राचीन कालमें तो जब कि लोगोंका यह विचार था कि मुफ़्तखोर सर्वदा मुफ़्तखोर ही रहते हैं केवल इसही कारण कि वे स्वतंत्र जीवन नहीं व्यतीतकर सकते, इससे भी अधिक छोटा मालूम पड़ता था।

आधुनिक अनुसन्धानोंसे मालूम हुआ है कि सबसे अधिक मुफ़्तखोरोंके जीवनमें भी उदाहरणार्थ आँत वाले कीड़े, बहुधा अवस्थायें (stages) पाई जाती हैं जब कि वे स्वतंत्रतासे पानीमें या सीली भूमि पर रहते हैं और सूत कीड़ोंमें भी बहुत सी जातियाँ हैं, उदाहाराणर्थ रैहबदीतिस (Rahbaditis) जो कि समय समय पर ही मुफ़्तखोर होते हैं, और उनके शरीरकी पूरी रचना यदि शीघ्र नहीं तो कमसे कम उतने ही समय में दूध माँस आदि वस्तुओंमें भी हो सकती है जितने कि किसी जीवधारीके भीतर। एक दूसरे सूत कीड़े असकारिस निगरों मिनोसा (ascaris nigrovenos) में हमें उस प्राणीका दृष्टिान्त मिलता है जिसका जीवन–काण्ड दो बारी बारीसे आने वाली पीढ़ियों (alternate generations) का बना हुआ होता है और ये दोनों पीढ़ियाँ जननेके योग्य होती हैं (sexually mature), इनके शरीरकी बनावट और जीनेकी रीति एक दूसरेसे इतनी भिन्न होती है कि उनके वंशीय सम्बन्ध मालूम होनेसे पूर्व वे दोनों भिन्न भिन्न वंशोंमें रखे गये थे। एक इस प्रकारके दृष्टान्तोंसे यह अभिप्राय निकलता है कि ऐसे कुछ जन्तु जैसे कि अनेक मक्खियोंके बच्चे इत्यादि अधिकतर मृतक सड़े गले माँस पर पलती हैं परन्तु कभी कभी जीवित जन्तुसे भी अपने क्षुधाकी तृप्ति करती है किसी प्रकार भी मुफ्तखोरी श्रेणीसे पृथक नहीं किये जा सकते। यदि इस प्रकारकी मुफ़्तखोरीका दूसरे जन्तुओंकी निरन्तर मुफ्तखोरीसे पृथक किया जाना अनिवार्य हो तो इसको सामयिक मुफ़्तखोरी कह सकते हैं। आधुनिक समयमें भी झूठा मुफ़्तखोर (pseudo parasite) शब्दका प्रयोग इस प्रकारके दृष्टान्तोंके लिये किया गया है परन्तु इस शब्दका प्रयोग केवल ऐसीही वस्तुओंके लिये किया जाना चाहिये जैसे कि बाल वनस्पति व्यूह तन्तु (Vegetable tissue) इत्यादि जो कि यथार्थमें मुफ़्तखोर नहीं है परन्तु भूलसे मुफ़्तखोर समझे गये हैं और वर्णन भी किए गये हैं, और मेरी समझसे मेढक, साँप और मकड़ियाँ भी झूठेही मुफ़्तखोर समझे जाने चाहिये। इन जन्तुओंको बहुतसे ग्रन्थकारोंने मुनष्यके पाक यंत्र (alimentary canal) में वर्षों तक जीवित रहते बतलाया है, यद्यपि यह सत्य है कि इस प्रकारके जीव दूध पिलाने वाले जीवों (mammals) के शरीरकी सीली गर्मी छः घंटेसे अधिक नहीं सह सकते।

उपरोक्त बातोंसे मालूम होगा कि मुफ़्तखोरी और स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने वाले जीवधारियोंके बीचमें कोई सीमा निश्चित नहींकी जा सकती और सामयिक मुफ़्तखोरी भी इसी बातकी पुष्टि करती है।

केवल इन्हीं दृष्टान्तोंमें, स्वतंत्र और मुफ़्तखोर रहनेकी रीतियोंमें अवस्थान्तर नहीं पाया जाता। बहुतसे जन्तु जैसे जोंक उसही समय तक मुफ़्तखोर रहते हैं जब तक कि उनको आहार दूसरे ऐसे जीवसे मिलता रहे जो कि उनसे बड़ा और बलवान हो और जब वे अपनी बराबरके या अपनेसे छोटे जीवोंका शिकार करने लगते है तो माँसहारी बन जाते है।। मुफ़्तखोर सदाही उस जीवसे छोटा और कमजोर होता है जिससे वह अपना आहार प्राप्त करता है। उसको परास्त न कर पानेके कारण मुफ़्तखोर अपने मेज़बानको लूटनेसे ही संतुष्ट रहता है और उसके माँस और रसोंसे अपना आहार प्राप्त करता है।

इस प्रकार मुफ़्तखोरी और स्वंतत्र जीवनका आपसमें दो स्पष्ट रीतियोंसे सम्बन्ध है और ये दोनों रीतियाँ स्वयं मुफ़्तखोरीकी ही विशेषताओंसे सम्बद्ध है। इन दो रीतियों में से एक तो भोजनकी प्रकृति है, और दूसरी रीति मुफ़्तखोरीका उस जीवसे सम्बन्ध है जो उसको आहार देता है। यदि इस बातपर ध्यानपूर्वक विचार किया जाय कि मुफ़्तखोरका कद और उसकी रचना उसके जीवन प्रणालीके अनुसार होती है तो यह सुनकर आश्चर्य न होगा कि जीवधारी संसारके भिन्न समूहोंमें मुफ़्तखोर बननेकी शक्ति एकसी नहीं होती। उदाहरणार्थ रीढ़की हड्डी वाले जन्तुओंमें जोकि अधिकतर बलवान और बड़े कदके होते हैं बहुत थोड़े जन्तु मुफ़्तखोरीका जीवन बिताते हैं, परन्तु (arthropoda) (जन्तुओंका वह समूह जिसमें झींगा, मच्छली, जूएँ और बिच्छू इत्यादि रखे गये है) में और कीड़ों (worms) में जो कि तुलनामें इनसे बहुत छोटे कदके और कमजोर होते हैं, वंशके वंश ऐसे पाये जाते हैं कि जिनके सबही प्राणी या बहुसंख्यक मुफ़्तखोरीका जीवन व्यतीत करते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इन दो समूहों में मुफ़्तखोरोंकी संख्या शेष सारे जीवधारियोंके मुफ़्तखोरोंकी संख्यासे अधिक होती है। मनुष्य जातिके मुफ़्तखोर और अन्य उच्चश्रेणीके रीढ़की हड्डी वाले जानवरोंके मुफ़्तखोर तो केवल इन्हीं दो समूहोंके होते हैं।

मुफ़्तखोर समाजके नाना प्रकारके प्राणियोंके जीवनकी तुलना करते हुए हम केवल उनकी बनावटही में बहुतसे मर्मभेदी अन्तर नहीं पाते परन्तु मुफ़्तखोरीकी प्रकृति और श्रेणीमें भी अन्तर पातेहैं। एक ओर तो वे मुफ़्तखोर हैं जो कभी कभी ही अपने मेज़बानको ढूँढा करते हैं और केवल उतनेही समय तक अपने मेज़बानके पास रहते हैं जब तक कि उन्हें अपना खाना लेनेमें समय लगता है और ज्योंही उनका यह कार्य समाप्तहो जाता है त्योंही जुदा हो जाते है और शायद इसके बाद दूसरे मेज़बानको ढूँढते है। दूसरी ओर कुछ मुफ़्तखोरी ऐसे होते है जो कि बहुत सा समय ही नहीं बल्कि अपने जीवनका एक पूरा भाग अपने मेज़बानके शरीरके भीतर बिताते है और इस प्रकार मेज़बान उनका निवासस्थान और आहार प्राप्तिका मूल स्थान भी बन जाता है। यह अन्तर कदाचित "अस्थायी" और "स्थायी" शब्दोंसे अच्छी तरह विदित होगा परन्तु यहाँपर यह कह देना उचित होगा कि जैसे मुफ़्तखोरीके जीवन और स्वतंत्र जीवनमें स्पष्ट सीमा निश्चित नहींकी जा सकती उसी प्रकार इन दो प्रकारकी मुफ़्तखोरियोंमें भी स्पष्ट सीमा निश्चित नहींकी जा सकती। परन्तु तो भी ये दो शब्द प्रयुक्त किये जा सकते हैं क्योंकि इनसे मुफ़्तखोरीकी दो श्रेणियोंका बोध होता है जोकि साधारणतः एक दूसरेसे भिन्न या पृथक हैं।

प्राचीन कालके जीवशास्त्र भी इस अन्तरको मानते थे परन्तु भेद इतना ही था कि वे लोग "अस्थायी" मुफ़्तखोरी केवल उसकी मुफ़्तखोरीको नहीं कहते थे जो "स्थायी" न हो बल्कि उस मुफ़्तखोरीको भी "अस्थायी" ही कहते थे जो जीवनपर्य्यन्त न रहे। परन्तु उस समय यह बात मालूम न थी कि सबसे अधिक मुफ़्तखोर भी (जैसे आँत वाले कीड़े) अपने जीवन कालके एक भागमें स्वतंत्र रहते हैं और इसी कारण उस समयमें इन दो प्रकारकी मुफ़्तखोरियोंमें जो अन्तर माना जाता था वह इस अन्तरसे बिलकुल भिन्न था जो वर्तमान समयमें माना जाता है और इस लेखमें बतलाया गया है। उन मुफ़्तखोरियोंके अतिरिक्त जो कि जीवन भर मुफ़्तखोरही रहते हैं ऐसे भी मुफ़्तखोर पाये जाते है जो कि थोड़े या बहुत काल तक स्वतंत्र जीवन व्यतीत करते है, या तो युवा अवस्था (adult condition) में जैसे कि (inhneumonflies and gad flies तथा (larvae) या बचपनमें जैसे सूत कीड़े।

इसलिये स्थायी मुफ़्तखोरीके दो रूप होते है। (1) "स्थिर", जीवन पर्य्यन्त रहने वाली मुफ़्तखोरी (2) "सामयिक" (periodic) जबकि मुफ्तखोर जीव अपने जीवन कालके एकही

भागमें मुफ़्तखोर होता है और इसलिये अपने जीवनके अन्य भागोंमें उसको स्वतंत्र जीवन बिताना पड़ता है।

ऊपर बतलाई गई नाना प्रकारकी मुफ़्तखोरियोंमें दिलचस्पी और गौरवता होती है जो कि सिर्फ़ उनके आपसके सम्बन्ध और जीवन निर्वाह करनेके ढंगोंपर ही निर्भर नहीं है, परन्तु वे इस कारण भी मनभावने हैं कि उनका प्रभाव शरीरकी बनावट बदलनेमें भी पड़ता है। इसी कारण किसी भी प्रकारके मुफ़्तखोरकी सूरतकी परीक्षा करने पर हम थोड़ी बहुत निश्चयतासे बतला सकते हैं कि वह अमुक मुफ़्तखोरीका जीवन व्यतीत करता होगा। अस्थायी मुफ़्तखोरोंमें अपने मेजबानको छोड़नेसे लिये और उसके पास आनेके लिये अवश्यही ज़रिये होने चाहिये। और उनके पास चलने फिरनेकी इन्द्रियाँ और ज्ञान इन्द्रियाँ होनी चाहिये। और यह देखा भी जाता है कि अस्थायी मुफ़्तखोरोंके हमेशाही बलवान हाथ पैर होते हैं (जैसे खटमल) और कभी 2 उन पर पंख भी पाये जाते हैं जैसे midges और दूसरी मक्खियोंमें या उनपर तैरनेके लिये अंग होते हैं जैसे मछलीकी जूँए (fish louse) में। इन अंगोंकी उपस्थिति आवश्यक कर्मोंको अधिक मिश्रित बना देती है और कभी 2 तो इतना अधिक मिश्रित बना देती है कि अस्थायी मुफ़्तखोर जिस समय अपने मेज़बानसे पृथक रहते हैं उस वक्त उनको पहिचानना कठिन हो जाता है, और केवल उनके आहारकी प्रकृति और आहार प्राप्तिके ढंगोंसे हम उनको मुफ़्तखोर कह सकते हैं, वे अपनी आहारकी प्राप्ति किसी जीवके मृतक शरीरसे नहीं करते बल्कि जीते जागते जीवके शरीरसे करते हैं।

चलने फिरनेकी शक्ति कम हो जानेके साथही मुफ़्तखोरोंको अपने मेज़बानको छोड़ना कठिनहो जाता है और इस प्रकार अस्थायी मुफ़्तखोर स्थाई बन जाता है और पहिले जिस मेज़बानके पास समय समयपर थोड़ेसे ही कालके लिये आया करता था वह अब हमेशाके लिये उसका आश्रय स्थान बन जाता है और मुफ़्तखोर फिर उसको विरलेही समयपर छोड़ता है वा उसको छोड़कर दूसरे मेज़बानके पास कदाचितही जाता है। स्थायी मुफ़्तखोरोंमें से बहुतसे ऐसे हैं जिनमें चलने फिरनेकी शक्ति होती है। उदाहरणार्थ पिस्सू (flea) और कभी 2 अपने मेज़बानको छोड़कर दूसरेको ढूँढा भी करते है जहाँ उनको अधिक भयरहित स्थान मिल सके या अधिक भोजन मिल सके। इस प्रकारके स्थायी मुफ़्तखोरोंमें और अस्थायी मुफ़्तखोरोंमें बहुत समानता होती है, इनमें समानता केवल जीवन निर्वाहकी रीतिमें नहीं होती बल्कि बनावटमें भी होती है और विशेषकर उनके चलने फिरनेके अंगोंकी रचनामें। स्थायी मुफ़्तखोरोंके अधिकांश दृष्टान्तोंमें चलने फिरनेकी शक्ति घट जाती है और कभी कभी तो इस शक्तिका बिलकुलही लोप हो जाता है और इसका फल यह होता है कि मुफ़्तखोर महीनों तक या वर्षों तक एकही मेज़बानमें रह जाता है। इसके दृष्टान्त थैली कीड़ों (bladder worms) में और मादामें पाये जाते है जो कि अपने सिरोंको मछलीके पुट्ठोंमें डाले रहते है। चलने फिरनेकी इंद्रियोंके अकारथ होनेके अतिरिक्त ज्ञानेन्द्रियाँ भी अकारथहो जाती हैं और विशेषतया चक्षु जिनकी रचनाकी वृद्धि पुट्ठीय चालकी विचित्रता और शक्तिके साथ साथ होती है, और उनकी क्षीणताके साथ साथ बहुधा क्षीण भी हो जाती है। शरीरका सुन्दर आकार और उसकी खंडना (segmentation) वर्तमान चलने फिरनेकी न्यूनावश्यकताकी समतुल्यतामें बहुधा लोप हो जाती है।

वास्तवमें आँतके कीड़ोंको जो कि सबके सब स्थायी मुफ़्तखोर होते हैं देखनेसे ही स्पष्ट मालूम होता है कि जितनाही अधिक सुस्त मुफ़्तखोरका जीवन होता है उतनाही साधारण और अविभक्त उसके शरीरका आकार भी हो जाता है।

इसके अलावा शरीरकी बाहरी बनावटका सादा होना स्थायी मुफ़्तखोरका कोई विशेष

अनूठापन नहीं है जैसे कि स्वतंत्र जीवोंमें पंख और तैरनेके पैरोंका होना अनूठापन नहीं है। स्वतंत्र जीवोंमें हमें अनेक दृष्टान्त मिलते हैं जिनमें शरीरका एक सा आकार होता है और विशेषतया उन जन्तुओंमें जिनमें चलने फिरनेकी शक्ति कम होती है और जो इस बातमें कुछ कुछ स्थायी मुफ़्तखोरोंके सदृश होते है। केवल थोड़ेसे कीड़ों (caterpillar) को और दूसरे कीड़े मकोड़ोंके बच्चों (larveae) को बतला देना काफी होगा जिनमें बहुतेरे आँतके कीड़ोंके समान स्थायी जीवन व्यतीत करते हैं, उदाहरणार्थ (ickneumon) मक्खियाँ या तो कभी कभी या हमेशाही मुफ़्तखोर होती हैं। इन अभावसूचक (negative) लक्षणोंके अतिरिक्त स्थाई मुफ़्तखोरे बहुधा भावसूचक (posutuve) लक्षणोंसे भी पहिचाने जा सकते हैं जैसे कि उनके शरीरपर आँकड़ों (hooks) का और चूसनीयों (suckers) का विद्यमान होना जिनसे वे अपने मेज़बानके शरीरपर चिपक सकते हैं। इस प्रकारके अंग केवल स्थायी मुफ़्तखोरोंमें ही नहीं पाये जाते बल्कि अस्थायी मुफ़्तखोरोंमें भी पाये जाते हैं और कभी कभी स्वतंत्र रहने वाले जीवोंमें भी पाये जाते हैं। परन्तु इनमें वे इतने प्रत्यक्ष या इतने नित्य नहीं होते। जितनाही किसी मुफ़्तखोरमें चलने फिरनेकी शक्ति क्षीण हैं उतनाही कठिन उसका दूसरे जीवोंके पास जाना भी हो जाता है इसलिये उसके पास उन अंगोंका होना अत्यावशक है जिनसे वह बुरेसे बुरे संयोगमें भी अपने स्थानपर डटा रह सके। इन चिपकनेकी इंन्द्रियोंकी लक्षणोंकी भिन्नता मेज़बानके शरीरके उस झागकी बनावटके अनुसार होती है जिसमें मुफ़्तखोर वास करता है। यह इंन्द्रियाँ साधारणतः उनमें अधिक बलवान और बड़ी होती हैं जो बाहरी चर्मपर मुफ़्तखोरी करते हैं उनके अपेक्षा जो मेज़बानके शरीरके भीतर रहते हैं और भीतरी मुफ़्तखोरोंमें से चिपकनेकी इन्द्रियाँ उन मुफ़्तखोरोंमें अधिक बड़ी होती है जोकि पाक यंत्रमें रहते हैं क्योंकि उनको उसके द्रव्योंकी दाब (pressure) का सामना करना पड़ता है। परन्तु बहुतसे आँतीय कीड़ोंमें आँकड़े या अन्य चिपकनेकी इंन्द्रियाँ नहीं होती हैं परन्तु इनके बदले इनमें बहुधा कोई दूसरा प्रबन्ध होता है। सूत कीड़ोंमें जिनका वर्णन हम नीचे करेंगे शरीरका आकार और उसकी लम्बाई आँतके द्रव्योंकी दाबको तोडनेके लिये उतनेही युक्त मालूम होते हैं जितना कि आंतके भीतोंपर उनकी पकड़को दृढ़ करना। और Trichocephalus का तो चाबुककी डोरीके सदृश अग्रभाग mucous memberane में वस्तुतः धँसा हुआ रहता है।

इस दृष्टान्तमें शरीरका आकार एक प्रकारसे चिपकावकी इन्द्रियोंकी अनुपस्थितिका काम देता है और जब ये चिपकावकी इन्द्रियाँ उपस्थित रहती हैं तो उनकी बनावटमें और क्रमसे स्थापनामें बड़ा अन्तर होता है क्योंकि इनकी बनावट और इनका स्थापन मुफ़्तखोरोंकी आवश्यकतानुसार होता है। कभी कभी जैसे flukes tremiorchis ranarum में पुट्ठेदार चूसनियाँ होती हैं जो कि उदकगति दाब hydraulic pressure से काम करती हैं। आँकड़े और चाँगुल बसूं में भी कभी कभी चिपकावकी इन्द्रियाँ होती हैं। ये नीचे पड़े हुए व्यूहतंतुके छेदनेके काममें आती हैं या अनेक उभारोंके पकड़नेके काम में आती हैं। टीनियाँ सोलियम Taenia solium में और दूसरे फीता कीड़ों tapeworms में इन आँकड़ोंके पेंदी भाग मुफ़्तखोरके व्यूहतंतुओंके भीतर धँसे हुए रहते हैं या जैसे जूएँमें और अधिकांश Arthropoda मुफ़्तखोरोंमें वे हाथ पैरोंके अग्रभागपर लगे हुये रहते है। अनेक प्रकारके बहुधा पाये जाने वाले मोटे बाल bristle और ऊपरी खालके बढ़ाव चिपकावकी इन्द्रियोंकी श्रेणीमें शामिल किये जा सकते हैं। ये शरीरके आस पासके भागोंके साथ सटनेसे केवल मुफ़्तखोरकी रोक शक्तिको ही नहीं बढ़ाते बल्कि अपनी सजावट के अनुसार उसको अपने स्थानसे इधर उधर हटनेसे भी रोकते हैं। इस प्रकारकी सीटी seetae के वर्तमान होनेके कारण नर द्विमुखी विलाहारज़िया हिमाटोबियम Distomum Billahrzia haematobium न केवल मनुष्य की वृहत् शिरा vena cava में

अपने स्थानपर ही रह सकता है बल्कि कभी कभी वह रक्तकी धारके विरुद्ध भी मूत्राशय और मलद्वारकी शिरा ग्रंथियों venous plexuses में बढ़ जाता है और इस प्रकार मादाको जोकि उसके साथ जुड़ी हुई रहती है घसीटता हुआ अँडे देनेके लिये उपयुक्त स्थानपर ले जाता है।

बहुधा एकही मुफ़्तखोरमें कई प्रकारकी चिपकनेकी इन्द्रियाँ पाई जाती हैं उदाहरणार्थ taeniasolium जिसकी चर्चा हम ऊपरकर आये हैं, आँकड़ोंके अतिरिक्त जो कि सिरकी चोटीपर क्रमसे एक वृत्तमें लगे रहते हैं चार चूसनियाँ भी पाई जाती है। इनसे और आँकड़ोंसे मुफ़्तखोर इतनी मज़बूतीसे चिपट जाता है कि उसको अपने स्थानसे अलग करना बहुत कठिनहो जाता है। इन चार चूसनियोंकी ओर सिरपर उनके स्थानकी तुलना, जो कि एकही पिछली चूसनी औपटेमि और किसकी दो चूसनीयोंके साथ करनेपर हमें ज्ञात होगा कि मुफ़्तखोरोंमें जितने बड़े अन्तर चिपकनेकी इन्द्रियोंके प्रबंधमें होते है उतनेही बड़े अन्तर उनकी बनावटमें भी होते हैं।

मैं आशा करता हूँ कि अबतक स्पष्ट ज्ञात हो गया होगा कि स्थायी मुफ़्तखोर बाहरी आकार और शास्त्रबंधीमें अस्थायी मुफ़्तखोरोंकी अपेक्षा साधारण स्वतंत्र जीवोंकी आकृति और शास्त्रबन्धीसे बहुत भिन्न है। इन दो प्रकारके मुफ़्तखोरोंमें सचमुच कितना अन्तर है यह उन मुफ़्तखोरोंमें स्पष्ट रूपमें देखा जाता है जोकि अपने जीवन कालके एक भागमें स्वतंत्र होते है, और दूसरे भागमें मुफ़्तखोर होते है। स्वतंत्रवस्था मुफ़्तखोरीकी अवस्थासे बिलकुल भिन्नहो सकती है विशेषकर उन जीवोंमें जिनमें मुफ़्तखोर जीवनकी सुख चैनकी दशा और स्वतंत्रवस्थाकी सुख चैनकी दशामें विशेष भिन्नता होती है। घोड़ेके उदरमें रहने वाले गैस्ट्रसके बच्चे (larva of gastrus) के सब लक्षण स्थायी मुफ़्तखोरके से होते हैं। इस अवस्थामें उनका शरीर बेलनाकार होता है जिसपर न तो चक्षु होते हैं न अन्य ज्ञान इन्द्रियाँ होती हैं और चलने फिरनेकी इन्द्रियोंके बदले मुँहके दोनों ओर मज़बूत आँकड़े होते हैं और शरीरके धरातलपर बहुतसी नाना प्रकारके कदकी सीटी होती है। परन्तु स्वतंत्र युवावस्थामें उसके शरीर आकार बिलकुल भिन्न होता है। इस अवस्थामें उसका शरीर खंडित (segmented) होता है और उसपर चक्षु, सीगें (tentacles), पैर और पँख विद्यमान होते हैं। भला बतलाइये कौन विश्वासकर सकता था कि ये दोनों जीव एकही प्राणीकी रचनामें केवल दो अवस्थायें है। यदि निरूपणोंसे न मालूम किया गया होता कि इस कीड़े सदृश बच्चेकी उत्पत्ति (gastrus) मक्खीके अंडेसे होती है।

परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह अनोखा अन्तर मुफ़्तखोरकी आवश्यकताओंसे उतना घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं रखता जितना कि उन अन्तरोंसे जो स्वर्थजीवनकी रीति और स्वतंत्र जीवनकी रीतिमें होते है। इस प्रकार हम पूर्वोक्त यथार्थताको समझ सकते है कि गैस्ट्रसके समान अन्य कीड़े भी काया पलटते है (metamorphose) और वास्तवमें इनके छोटे बच्चे मुफ़्तखोर नहीं होते परन्तु सिर्फ मुफ़्तखोरोंकी भाँति स्थायी जीवन व्यातीत करते है।

इसके प्रतिकूल ऐसे सामयिक मुफ़्तखोरे भी पाये जाते हैं जिनकी बनावट जीवन कालकी दोनों अवस्थाओंमें एकसी रहती है। ऐसे दृष्टान्त हमें गौरडीसी (gordiaccae) में मिलते हैं। ये बचपनकी अवस्थाओंमें घोंघों और कीड़े मकोड़े (insects) की शरीरकंदरामें रहते है और युवावस्थामें बिना भोजनके या तो जलमें या सीली भूमिपर रहते है। परन्तु इस दृष्टान्तमें स्वतंत्र और मुफ़्तखोरके प्रकट रूपमें विशेष अंतर नहीं होगा। दोनों अवस्थाओंमें प्राणी स्थायी जीवन व्यतीत करता है और केवल अपने रहनेका स्थान बदलता है।

हम ऊपर बतला चुके है कि मुफ़्तखोरोंके लक्षण जातीय विशेषताओंका काम नहीं दे सकते और यह बात मुफ़्तखोरीके कुछ उन दृष्टान्तोंसे स्पष्टतया सिद्धहो जाती है जिनके लिये वान बेंडन

(Van Benden) ने सबसे पहिले सहभोजनीकाई (commensialism) शब्दका प्रयोग किया। इस शब्दके अर्थके भीतर वे प्राणी आते हैं जो कि बड़े जानवरोंके शरीरके भीतर मुफ़्तखोरोंकी भाँति रहते है और उनके शरीरकी बनावट भी उन्हींके समान होती है तथापि वे सच्चे मुफ़्तखोर नहीं होते क्योंकि वे मुफ़्तखोरकी भाँति अपने मेजबानके रसों और व्यूहतंतुओंका आहार नहीं करते परन्तु या तो उनके आहारमें से भाग लेते हैं या अपने मेज़बानके शरीरके मलका आहार करते हैं। यद्यपि सहभोजनीकाई (commensialism) के जलवासी छोटे जीवोंमें अनेक दृष्टान्त हैं परन्तु मनुष्यमें और घरेलू जानवारोंमें इसके कोई दृष्टान्त नहीं पाये जाते। यहाँपर यह बतला देना अच्छा होगा कि आधुनिक जीवशास्त्रज्ञोंके मतानुसार सहभोजनीकाई (commensialims) शब्द उन मुफ़्तखोरोंके लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता जोकि अपने मेज़बानके व्यूहतंतुओंके बदले आन्तरिक निरर्थक शोधित द्रव्यों (internal excretory products) पर निर्वाह करते हैं। यदि यह ठीक ठीक साबित हो जाता कि कुछ आँतके कीड़े जैसे कि घोड़ेंकी आँतमें रहने वाला (oxyuris curvula) निश्चयही अपने मेज़बानके अनपच भोजनका अहार करता है तो इस कथनकी थोड़ी बहुत सीमा निश्चित करनेकी आवश्यकता पड़ती। परन्तु साथही यह भी मालूमहो जाता कि सहभोजनीकाई (commensialism) और सच्ची मुफ़्तखोरी बहुत सी बीच की अवस्थओं से उसी प्रकार एक दूसरे से जुड़ी हुई है जैसे कि स्वतंत्र और मुफ़्तखोरी के जीवन जुड़े हुए हैं।

ताऊन या मरी*

श्रीमती हुक्मादेवी जी छात्रा

कृमिजन्य अर्थात् विषैले छूत वाले रोगों में प्लेग का आसन सबसे ऊँचा है। इसका इतिहास आगे चल कर बताया जायगा, परन्तु गत 20–25 वर्षों से तो यह संहारक रोग भारतवर्ष को जन–शून्य करने की बहुत बड़ी चेष्टा कर रहा है। यद्यपि यह रोग पहले भी इस देश में कई बार हो चुका है, तथापि सर्व–साधारण मनुष्य इसका नाम भी नहीं जानते थे। इसी कारण इसके आते ही जन–समुदाय में भाँति–भाँति के तर्क–वितर्क उठे। कोई कहता था यह ईश्वर का कोप है, कोई कहता यह तो सरकार ने प्रजा के प्राण–नाश करने के अर्थ नवीन रोग भेजा है और कोई कहता था यह देवताओं का कोप है, इसकी शान्ति के लिए यज्ञ करना चाहिए और बलि आदि देनी चाहिए। इन्हीं अनेक प्रकार की शकाओं के वशीभूत होकर जन–साधारण ने अपनी–अपनी रुचि के अनुसार कार्य किया और कितने ही स्थानों में तो लड़ाई–झगड़े, और बड़े–बड़े बखेड़े भी हो गए। इसका फल वही हुआ जो उपद्रवों का होता है। यह सब हो चुकने के पश्चात् जब गम्भीर दृष्टि से विचार किया गया तो यह सिद्ध हुआ कि यह एक भयंकर प्राणनाशक छूत का रोग है। खोज करने से इसका पता चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि आयुर्वैदिक ग्रन्थों और पुराणों में भी पाया गया। मुसलमानी समय के तुज़क जाँहगीरी ग्रन्थ में भी इसके प्रकोप होने का वर्णन मिला।

ईसा के 430 वर्ष पूर्व सबसे प्रथम यह रोग एथेन्स नगर में हुआ था। वहाँ से चल कर मिश्र देश में पहुँचा। छठीं शताब्दी में मिश्र से यूरोप में पहुँचा। सन् 1667 ई0 में इसने इंग्लैण्ड पर आक्रमण किया। इसके पश्चात् सन् 1840 ई. में यह कुस्तुन्तुनिया में जा पहुँचा। सन् 1345 ई. में यह भयानक प्राणनाशक रोग हमारे भारतवर्ष में भी आ विराजा था और इस प्रकार 1560 ई. के लगभग इसका प्रकोप पवित्र तीर्थ काशी में हुआ। सन् 1618 ई. में जहाँगीर के समय में काशी और आगरे में इसने खूब धूम मचाई। रामायण के लेखक गोस्वामी तुलसीदास जी के समय में भी यह काशी नगर में विराजमान था। सन् 1814 ई. में इसका दौरा कच्छ तथा 1825 में कुमायूँ प्रान्त में पहुँच गया। फिर सन् 1837 से 1884 तक हाँसी तथा हिसार का दौरा करता हुआ अपने दलबल सहित सन् 1896 ई. में बम्बई जैसे विशाल नगर में आकर इसने डेरा जमा लिया।

उस समय से आज पर्यन्त इसने भारतवर्ष का पीछा नहीं छोड़ा और न वर्ष दो वर्ष का अवकाश ही दिया। बराबर भारतीयों के प्राणों की आहुति ले रहा है। ऊपर के इतिहास से यह भ्रम दूर हो सकता है कि यह रोग नया है और सरकार का ही फैलाया हुआ है। यह जन–संहारक रोग हमारा पुराना शत्रु है और वर्तमान भारत को नष्ट करने पर इसने कमर कस ली है।

---

* *चांद*, अप्रैल 1929

यह लिखा ही जा चुका है कि सन् 1896 ई0 में यह रोग बम्बई नगर में फैला। इसके होने का कारण यह बतलाया जाता है कि सन् 1895 ई0 के अक्तूबर मास में बहुत से सामान से लदा हुआ एक तिजारती ज़हाज़ हांगकांग से बम्बई आया। उस ज़हाज़ का कुछ सामान यहाँ पर उतारा गया। उसी सामान के गट्ठों में प्लेग के कई चूहे मरे हुए निकले। इसका कुछ ज्ञान न होने के कारण मनुष्यों ने उन चूहों को साधारण जान कर इधर-उधर फेंक दिया। बस, उनका असावधानी से इधर-उधर फेंकना ही इस महा भंयकर रोग के फैलने का कारण हुआ। जब वहाँ पर यह रोग फैला तो मनुष्यों ने बड़ी व्याकुलता से अन्य स्थानों को भागना प्रारम्भ किया। फल यह हुआ कि ये मनुष्य जहाँ-जहाँ गए वहाँ-वहाँ रोग फैलता गया। पहले तो रेल के न होने से मनुष्यों को यात्रा करने में बहुत समय लगता था। इस कारण रोग के फैलने में भी बड़ा समय लगा। परन्तु वर्तमान समय में रेल जैसी शीघ्रगामी सवारी होने के कारण इसके फैलने में कुछ भी समय नहीं लगा। आज बम्बई में आया तो कल पूना पहुँचा, वहाँ पहुँच कर परसों कलकत्ते की यात्रा की और इसी प्रकार सम्पूर्ण देश में फैल गया। सन् 1896 ई0 से सन् 1908 ई. तक 60 लाख के लगभग मनुष्य इस भंयकर शत्रु के गाल में चले गये। सन् 1904-7 का प्लेग बड़े ही भयानक रूप में प्रकट हुआ था। मनुष्यों के शव लकड़ियों की भाँति ठेलों में भर-भर कर फेंके गए, चारों ओर हृदय चीरने वाला गगन-भेदी हाहाकार होता था। झोंपड़े, महल, मुहल्ले, गाँव और नगर के नगर जन-शून्य श्मशान हो गए।

विशेष विद्वानों ने खोज करके यह पता लगाया है कि उत्तरीय अफ़रीका के लिबिया नामक प्रदेश में 40-45 इन्च नीचे भूमि में एक प्रकार के विषैले कृमि पाए जाते है। यह आकार में इतने छोटे होते हैं कि साधारण दृष्टि से मनुष्य उनको देख नहीं सकता अर्थात् ये सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र खुर्दबीन द्वारा ही देखे जाते हैं। खूबी यह है कि इतने सूक्ष्म होने पर भी वह ऐसे दुखदायी होते हैं!

यह कृमि चूहों से बहुत प्रेम करते हैं; वैसे तो वह बन्दर, गिलहरी आदि जीवों से भी मित्रता रखते हैं, परन्तु चूहों से उनका विशेष प्रेम है। चूहे भी ज़मीन के भीतर घर बना कर रहते हैं और वह भी, अतः यह कीड़े चूहों के साथ मिल जाते हैं। तत्पश्चात् ये विषैले कृमि उनके शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। फिर वही चूहे प्लेगी चूहे बनकर बाहर आते हैं और कीड़ों के विषैले प्रभाव से तुरन्त मर जाते हैं। उनके शरीर से निकल कर वह कृमि मनुष्यों के शरीर में चले जाते हैं और उनको अपने चुंगल में फँसा लेते हैं।

इस कारण प्लेग के कृमि ही इसके प्रधान कारण माने जाते हैं। इधर चूहों से गृहस्थी का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। जहाँ गृहस्थ रहते हैं वहाँ अन्न भी अवश्य होता है और अन्न-राशि में चूहे अवश्य रहते हैं। प्लेग के चूहे जहाँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचते हैं, बस प्लेग भी उनके साथ उसी स्थान पर पहुँच जाता है। इस प्रकार यह रोग एक घर में होते ही शीघ्र ही आस-पास के घरों को आक्रान्त कर लेता है।

इन कृमियों का आकार ऐसा होता है, जैसे दो सरसों के बीच में लगा हुआ एक पतला डोरा। यह आकार सूक्ष्म-दर्शक-यन्त्र द्वारा भली प्रकार देखा जा सकता है। यह कृमि इतने सूक्ष्म होते हैं कि एक बाल की जड़ में कई कृमि रह सकते हैं। एक भले-चंगे स्वस्थ मनुष्य के प्राण-नाश करने के लिए एक कृमि पर्याप्त होता है। जब कोई मनुष्य प्लेग से रोगाक्रान्त होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो उसके शव में एक कृमि से एक हज़ार तक उत्पन्न हो जाते हैं। इतनी अधिक संख्या में इनका विस्तार हो सकता है।

कुछ वर्ष पूर्व इनकी जन्मभूमि मिश्र, श्याम और लिबिया आदि देश माने जाते थे, परन्तु हमारे दुर्भाग्य से अब भारतवर्ष ही इनकी जन्मभूमि बन गई है। इनकी प्रकृति है कि ये कीचड़ वाले, सीले,

ठण्डे स्थानों, घृणित एवं अपवित्र पदार्थों से अधिक प्रेम करते हैं। इस कारण ऐसे स्थानों में पहुँच कर इनकी बराबर वृद्धि होती जाती है। ऐसे स्थानों में तो यह बड़े बलिष्ठ हो जाते हैं, परन्तु गरम स्थानों में गर्मी से व्याकुल होकर शीघ्र ही मर जाते हैं। जब किसी मनुष्य को यह रोग होता है तो पहले प्लेग–ग्रन्थि प्लेग की गाँठ में एक ही दो कृमि होते हैं, फिर धीरे–धीरे एक ही दो दिन के अन्दर असंख्य हो जाते हैं।

एक विज्ञान–वेत्ता डॉक्टर महोदय ने इनकी वृद्धि के निरीक्षण का यह उपाय बतलाया है कि एक गिलास में थोड़ा सा शोरवा लेकर कुछ गिनती के प्लेग–कृमि उसमें छोड़ दो और ऊपर से थोड़ा घी उसी गिलास में डाल दो। दूसरे दिन देखने से अगणित कृमि उसमें फिरते हुए दिखाई पड़ेंगे। यह ऊपर लिखा ही जा चुका है कि यह कृमि चूहों को बहुत पसन्द करते हैं; चूहे इनको इतने पसन्द हैं कि यदि एक चूहे के रक्त में एक कृमि पहुँच जाय तो उससे बढ़ कर एक सौ तक हो जाते हैं।

जब किसी चूहे के शरीर में एक भी कृमि पहुँचता है तो रक्त में विष फैलने के कारण वह मर जाता है, किन्तु उसके मरने से प्लेग–कृमि के जीवन की कुछ हानि नहीं होती, वरन् एक से सहस्रों की उत्पत्ति हो जाती है, और वही कृमि अन्य चूहों के शरीर में प्रवेश कर परम्परागत विष फैलाते हुए, मनुष्य–समाज को नष्ट–भ्रष्ट करने में समर्थ होते हैं। जिस मनुष्य का रक्त विशेष प्रकार का होता है और इन कृमियों को रुचिकर नहीं होता, भाग्य की प्रबलता से उसको मुक्ति मिल जाती है, वह इस रोग का ग्रास नहीं बनता। अन्यथा इनके शरीर में प्रविष्ट होते ही मनुष्य का सारा रक्त प्लेग–विष से दूषित हो जाता है। इस रोग के मनुष्य–शरीर में प्रवेश करने के दो कारण माने गए हैं–

(1) **आन्तरिक कारण** : जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है, कृमि चाहे किसी प्रकार से मनुष्य के शरीर में पहुँचें, परन्तु उनके पहुँचते ही वह रोगी हो जाता है, और प्लेग के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इसके अतिरिक्त प्लेग–रोगी की साँस, उसकी पीब, वस्त्र तथा छुए हुए अन्य सामानों द्वारा भी प्लेग का विष स्वस्थ मनुष्य के शरी में पहुँच कर उसे रोगाक्रान्त कर देता है।

(2) **वाह्य कारण** : बहुत समय तक बिना वस्त्र पहने या नँगे पाँव फिरना, अन्नराशि के निकट रहना, प्लेग के मरे चूहे को हाथ से उठा कर फेंकना, प्लेग–रोगी के समीप रहना, उसे स्पर्श करना, जिस घर में प्लेग हो चुका हो उसमें रहना, इस रोग से मरे मनुष्य का शव उठाना, अधिक समय तक भूखा रहना, गन्दे या सील वाले घर में रहना, और अन्यान्य इस रोग को फैलाने वाले प्रत्यक्ष कारण हैं।

घरों के अन्दर चूहों का मरना इस रोग की सूचना है। इस कारण चूहों को मरते देख अवश्य ही घर छोड़ देना चाहिए, अन्यथा इस रोग के पन्जे में फँसे बिना मनुष्य रह नहीं सकता। जब यह रोग बहुत भीषणता के साथ फैलता है तो चारों ओर बड़ा कोलाहल मच जाता है और कितने ही कोमल हृदय के भोले–भाले मनुष्य तो भयभीत होकर ही रोगी हो जाते हैं। सन् 1904 और 1907 में जब भयानक प्लेग का प्रकोप हुआ था तो कितने ही मनुष्यों की इस प्रकार भयातुर होकर ही मृत्यु हो गई थी। यह मैंने स्वयं देखा था।

इस रोग के लक्षणों को पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं।

(1) साधारण नियम यह है कि विषैले कृमियों के शरीर में प्रवेश करने के उपरान्त दो दिन से सात दिन तक और किसी–किसी रोगी को दो–तीन सप्ताह तक कोई मुख्य लक्षण प्रगट नहीं होते। परन्तु जब रोग की प्रबलता होती है, तो दो–तीन दिन क्या, 2–4 घंटों में ही दशा भंयकर हो जाती है।

(2) इस श्रेणी में हाथ, पैर और मस्तक में पीड़ा होती है और इतना कष्ट होता है कि रोगी सहन नहीं कर सकता। जिस स्थान पर प्लेग की गाँठ (गिल्टी) निकलने वाली होती है, वहाँ पर कुछ–कुछ पीड़ा जान पड़ती है। रोगी के चित्त में एक प्रकार की व्याकुलता, ज्वराक्रान्त होने पर अरुचि, शरीर में शिथिलता, इन्द्रियों में निर्बलता तथा सारे शरीर और हृदय में एक प्रकार की पीड़ा होने लगती है। कभी तो दस्त होते हैं और कभी वमन। दो दिन तक यह लक्षण रहने के उपरान्त फिर गले, बगल या जाँघ में गिल्टी निकल आती है। कभी–कभी उपरोक्त लक्षणों से प्रकट होने के पूर्व ही ज्वर 103–104 डिगरी तक बढ़ जाता है और कभी–कभी लक्षण प्रकट होने के पीछे बढ़ता है। नाड़ी का स्पन्दन अधिक होने लगता है; मल उदर में सूख कर गाँठ बाँध लेता है। प्यास अधिक लगती है, मूर्च्छा आती है, नेत्र लाल हो जाते हैं; कोई–कोई रोगी तो ज्वर चढ़ते ही अचेत हो जाते हैं, परन्तु प्रायः धीरे–धीरे संज्ञा–हीन होते हैं। ज्वर ऐसी भंयकरता से आता है मानों शरीर को भस्म कर देगा और रात–दिन एक सा ही बना रहता है।

(3) बगल, जांघ तथा गले में, जहाँ पर भी गिल्टी निकलती है, गिल्टी उभड़ आती है और उसमें दर्द उत्पन्न हो जाता है। गिल्टी देखने में बत्तख के अंडे की तरह, गोले आकार की या चिपटी, स्पर्श करने में गर्म, तनी हुई एवं लाल रंग की होती है। इस श्रेणी में किसी–किसी रोगी को काले दस्त, लाल रंग का मूत्र और रुधिर का वमन भी होता है। यदि उपरोक्त सभी लक्षण प्रकट हो जायँ तो रोग असाध्य समझना चाहिए। किसी–किसी रोगी को प्रचण्ड ज्वर चढ़ कर गिल्टी निकलने पर 2–4 घंटे में ही मृत्यु हो जाती है। इस श्रेणी में ज्वर प्रायः 105–106 डिगरी तक रहता है, नाड़ी शीघ्रता से स्पन्दन करती है, हृदय की गति अनियमित, शीघ्र तथा निर्बल हो जाती है। रोगी अचेत पड़ा रहता है। या बहुत बुलाया जाय तो केवल हाँ–हाँ कर देता है। नेत्र रक्त वर्ण के हो जाते हैं। मुखमण्डल भयानक प्रतीत होता है, जीभ बाहर निकलने से काँपती रहती है। यह सब लक्षण होने पर जिस प्रकार का प्लेग–ज्वर होता है, वैसा ही परिणाम होता है, अर्थात् यदि "न्यूमानिक प्लेग" होता है तो फेफड़े में शोथ, "ब्यूबानिक प्लेग" होता है तो गाँठों का निकलना, "कॉलरिक प्लेग" हुआ तो वमन, विरेचन आदि विसूचिका के लक्षण भली भांति प्रकट हो जाते हैं। किसी–किसी रोगी को श्रेणी–क्रम से लक्षण प्रकट नहीं होते। गाँठ निकलने भी नहीं पाती, रोगी प्रारम्भ से ही अचेत होता और शीघ्र ही मर जाता है। किसी किसी रोगी को सुना है, भयंकर ज्वर होकर गाँठ प्रकट हुई और घंटे दो घंटे में ही बेचारा काल के गाल में चला गया।

(4) यदि रोगी बचने वाला होता है, तो उस श्रेणी में आरोग्य होने के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं, मुख पर प्रकाश और नेत्रों के सन्मुख उजाला हो जाता है। ज्वर घट जाता है, गिल्टी या तो बैठ जाती है या पक जाने पर उसमें पीब पड़ जाती है, जो कई महीने में अच्छी होती है। भोजन में रुचि होने लगती है, मल पीले रंग का और कुछ पतला होता है, मुख का रंग बदल जाता है, शरीर में स्वस्थता का अनुभव होता है, केवल दुर्बलता प्रतीत होती हैं तत्पश्चात् धीरे–धीरे स्वास्थ्य–लाभ हो जाता है। कोई–कोई रोगी प्लेग के पन्जे से तो छूट जाता है, परन्तु बाद को दुर्बलता में ही चल बसता है।

(1) ब्यूबानिक प्लेगः जब किसी मनुष्य को यह प्लेग होने वाला होता है तो कण्ठ, जाँघ या बग़लों में गिल्टी निकल आती है। किसी–किसी रोगी के मुख के भीतर भी गिल्टी निकलती देखी गई है। यदि इस

प्रकार का प्लेग और लक्षणों से मिला हुआ हो तो सौ में से तीस–पैतीस रोगियों के आरोग्य होने की आशा हो सकती है।

(2) कॉलरिक प्लेग : जब किसी रोगी को यह प्लेग होता है तो विसूचिका अर्थात् हैज़े के लक्षण होते हैं। यदि केवल यही प्लेग हो तो काला–पीला रुधिर का वमन, मल पतला, काले रंग का दुर्गन्धपूर्ण होता है और हिचकियाँ आती हैं। यदि इसके साथ ऊपर कहा हुआ गिल्टी वाला प्लेग भी हो तो दोनों के मिश्रित लक्षण होते हैं। इस प्लेग का प्रकोप होने पर सौ रोगियों में से बीस–पचीस के बचने की सम्भावना है।

एक प्रकार का भयंकर शूल करने वाला प्लेग भी होता है। इसका प्रकोप होने पर रोगी के हृदय में पसलियों के चारों ओर बड़ा भारी कष्टदायक शूल होता है। उसके कारण तत्क्षण मृत्यु हो जाती है। इसका प्रकोप होने पर सौ में से पन्द्रह–सोलह रोगियों के निरोग होने का अनुमान हो सकता है।

(3) न्यूमानिक प्लेग : जब किसी मनुष्य को यह प्लेग होने वाला होता है तो फेफड़ों में सूजन होकर न्यूमोनिया (सन्निपात ज्वर) के सब लक्षण प्रकट होते हैं। इससे रुग्ण होने वाले सौ में से दस–पन्द्रह रोगियों के बचने का अनुमान किया जाता है।

(4) कार्डिक प्लेग : जब किसी मनुष्य पर इसका प्रकोप होता है तो उसके मस्तक में विकार उत्पन्न हो जाता है, तदनन्तर उन्माद के लक्षण प्रकट होते हैं। रोगी कुछ–कुछ बकता रहता है, और भयंकर ख़र्राटे लेकर सोता भी रहता है एवं परिचारकों को खूब भयभीत करता है। इसके चंगुल में फँसने पर सौ में से दस–पन्द्रह या बीस रोगियों के बचने का अनुमान किया जाता है।

(5) सेप्टिसामिक अर्थात् सड़ने वाला प्लेग : इसका प्रकोप होने पर रोगी की गिल्टियाँ और सारा शरीर भीतर ही भीतर सड़ जाता है। यहाँ तक भयंकर दशा हो जाती है कि किसी किसी रोगी में शरीर के जीवितावस्था में ही कृमि उत्पन्न हो जाते हैं। मृत्यु होने पर ऐसे रोगी के शव में असंख्य प्लेग–कृमि होते हैं, क्योंकि लिखा जा चुका है कि यह कृमि दुर्गन्ध में अधिक उत्पन्न होते हैं। निरोग मनुष्य जब ऐसे रोगी के शव को स्पर्श करते हैं, तो उसका भाप लगने से ही वह रोगी हो जाते हैं और इसी प्रकार इसका भयंकर परिणाम फैलने लगता है। इसके चंगुल में फँसने पर कठिनाई से सौ में से चार–पांच रोगियों के आरोग्य होने का अनुमान किया जाता है।

(6) भयकारक प्लेग : जब किसी स्थान पर प्लेग बहुत अधिक फैला रहता है तो इधर–उधर का हाहाकार सुन कर दुर्बल हृदय के मनुष्य भयभीत होकर प्लेग से रुग्ण हो जाते हैं और उपरोक्त भेदों में से किसी एक के लक्षण उनके शरीर में प्रकट होते हैं तथा व्यर्थ में ही अमूल्य जीवन नष्ट हो जाता है। भय दूर करके यदि उचित चिकित्सा की जाय तो इससे सौ में से अस्सी नब्बे तक रोगियों के अच्छे होने की सम्भावना की जाती है।

इनके अतिरिक्त और भी कितने ही प्रकार के प्लेग होते हैं। जिसमें जिस रोग के लक्षण मुख्यतया प्रकट हों, उसको उसी प्रकार का प्लेग कहते हैं। जैसे टाइफॉइड प्लेग इत्यादि।

(7) रोग की अविधि : प्लेग की कोई नियत अवधि नहीं है। हाँ, वैसे 2 दिन से 7 दिन तक रोग रहता है। कोई–कोई रोगी दो–दो, चार–चार दिन पड़े रहते हैं। परन्तु कोई दो–दो, चार–चार घण्टे में ही चल देते हैं। कारण यह है कि जितनी भयंकरता से रोग प्रकट होता है, रोगी उतना ही शीघ्र मर जाता है। चिकित्सा करने वाला ठीक निदान भी नहीं कर सकता और रोगी मृत्यु के मुख में चला जाता है।

रोग का परिणाम : यह सर्व–साधारण में भी प्रसिद्ध है कि यह रोग बड़ा भयानक है और इसका परिणाम प्रायः बुरा होता है। परन्तु यदि इसके साथ कोई अन्य रोग सम्मिलित न हुआ हो। दुर्बलता अधिक न हो, गाँठ पक गई हो, ज्वर कम हो, हृदय में विकृति उत्पन्न न हुई हो, तो आरोग्य होने की आशा रहती है।

यदि गाँठें गले, मुख या कनपटी पर निकलें, विसूचिका के चिन्ह दृष्टि पड़े, रोगी अचेत हो, ज्वर 104 से 106–107 डिग्री तक बढ़ जाय, तो परिणाम अच्छा नहीं होता। यदि गले या मुख के भीतर की गिल्टी में शोध हो जाय तो अवश्य मृत्यु हो जाती है। बगल और जाँघ की गिल्टियाँ प्रायः अच्छी भी हो जाती हैं। सड़ने वाला प्लेग बड़ा भयानक एवं मारक होता है और फेफड़े में सूजन उत्पन्न करने वाला तो अत्यन्त कष्टदायक और मृत्युकारक ही हैं। सारांश यह है कि जितने भेद ऊपर लिखे गए हैं, यह लगभग सभी दुखदायी और मारक हैं, केवल एक भय से उत्पन्न होने वाला सुख साध्य है।

रोग का निदान : प्रारम्भ में जब कोई रुग्ण होता है तो प्रायः निदान करने में भ्रम हो जाता है और इस रोग को चिकित्सक काला ज्वर समझ लेता है, परन्तु यह स्मरण रखना उचित है कि इसमें और काले ज्वर में यह भेद है। इसमें त्वचा पर किसी प्रकार के दाने नहीं निकलते, बल्कि बगल, गले या जाँघ में गिल्टी प्रगट होती है और उसमें सूजन होती है। रोग प्रकट होने पर 24 घण्टे से लगाकर 3 दिन के अन्दर प्राणी की मृत्यु हो जाती है। काले ज्वर में यह लक्षण नहीं होते।

प्लेग से बचने के उपाय : जब घरों में चूहे मरने लगें और प्लेग आरम्भ हो जाय तो यह उचित है कि उस स्थान को छोड़कर, दूसरे स्वस्थ स्थान या बाग अथवा जंगल में निवास करें। यदि ऐसा न कर सकें तो इस बात का पूर्ण ध्यान रक्खें कि जिस घर में रहें वह ऐसा हो जहाँ सूर्य का प्रकाश और शुद्ध वायु भली भाँति पहुँच सके। यदि घर पक्का हो तो उसको चूने से, यदि कच्चा हो तो मिट्टी, गोबर आदि से खूब अच्छी तरह पुतवा दें।

पाख़ाने आदि भली प्रकार शुद्ध रक्खें और उनमें कृमि–वारक औषधियों से मिला जी डलवा दिया करें। अंग्रेजी औषधियों में कारबोलिक एसिड़ या परमैगनेट ऑफ़ पोटाश पानी में मिला कर प्रयोग करें और देशी औषधियों में हीराकसीस आदि का प्रयोग करें। सूर्यास्त होने पर साधारण खिड़कियाँ खुली रखकर दरवाज़े बन्द कर दें। यदि किसी मकान की भूमि गीली हो तो उस पर अग्नि जलावे या चूना फैला दें। गन्धक, गूगुल, धूप, लोहबान और नीम के पत्ते मिलाकर इसका चूर्ण अग्नि पर डालें, इसके धुएँ से वायु शुद्ध होती है। यदि सम्भव हो तो कलई के अन्दर थोड़ा संखिया डालकर दीवारों को पुतवा दें। घर के आस–पास कूड़ा–करकट बिलकुल जमा न होने दें। कोई वस्तु जो बाहर से आवे उसे धूप में रखकर या गर्म करके शुद्ध होने पर प्रयोग करें। खान–पान तथा अन्य व्यवहार में आने वाली अन्य वस्तुएँ, जहाँ प्लेग हो रहा हो वहाँ से कदापि न मंगावें। सदैव ऊपर और हवादार स्थान में रहें और सोएँ। हमारे पूर्वज ऋषि–महर्षि छुआछूत के रोगों को बहुत अच्छी तरह समझते थे। इसी कारण उन्होंने ऐसे अमूल्य उपदेश अपने अनुपम आयुर्वेदिक ग्रन्थों में लिखे हैं, जिन पर आचरण करने से मनुष्य का कल्याण हो सकता हैं। उन्हीं आयुर्वेद के उपदेशों का थोड़ा–सा वर्णन इस स्थान पर उपयोगी समझ कर किया गया है। नंगे पाँव से बाहर न जाएँ। जब घर में आवें तो जूता चौखट से बाहर ही उतार दें। बाहर के कपड़े उतार कर दूसरे वस्त्र पहिन कर खाना पीना करें। शरीर की शुद्धि का खूब ध्यान रक्खें। नित्य गर्म जल से स्नान करें, शरीर में तेल मर्दन करें। और पाँव के तलुओं में अवश्य तेल लगावें। वस्त्र धुले हुए (शुद्ध और ऋतु के अनुसार) ऊनी या रेशमी पहिनें। इधर–उधर गन्दे स्थानों में न फिरें और अपने बालकों को भी न जाने दें।

भूमि पर न सोवें। आटा, दाल आदि और अन्य भोजन की सामग्री सुरक्षित और ढक कर रक्खें। भोजन गर्म, घृत–युक्त, सुपाच्य और ताजा खावें, बासी वस्तुएँ कदापि न खावें। सदैव नियत समय पर खावें। उपवास न करें। दूध चाय आदि जो कुछ पीवें, गरमा–गरम पीवें। कुएँ का ताजा जल या उबाला हुआ जल कपूर या फिटकिरी डाल कर शुद्ध करके पीवें, बहुत ठण्डी, वातकारक या अजीर्ण करने वाली वस्तु न खावें। यदि घर के अन्दर चूहे मरे हुए मिलें तो उन्हें चिमटे से उठाकर एक हाँडी में बन्द करके गाँव या मोहल्ले से बाहर ले जाकर जला दें। जहाँ से चूहे उठावें उस स्थान को कृमिनाशक घोल से धो दें या उस पर अग्नि जला दें। मदिरा हानिकारक है, बिना चिकित्सक की आज्ञा के इसका व्यवहार न करें। शोक, चिन्ता तथा भय से दूर रहें। बन, उपवन और सुन्दर मनोहर वाटिकाओं में भ्रमण करें। दिन में न सोवें, परन्तु रात्रि में भली प्रकार निद्रा लें। सदा प्रसन्न रहें और अन्य इष्ट–मित्र तथा पारिवारिक जनों को भी प्रसन्न रक्खें। मृत्यु के समाचार सुन कर भय न करें। कपूर या नेपथलीन का टुकड़ा प्लेग के दिनों में अपने पास अवश्य ही रक्खें। बड़ी सावधानी के साथ अनुभवी विद्वान डाक्टर को शीघ्रातिशीघ्र चिकित्सा करावें, शिथिलता कदापि न करें।

कविता और विज्ञान*

हरिवंशजी+

आजकल विज्ञान का युग है। जिधर देखो, उधर विज्ञान की चर्चा है। विज्ञान ने संसार में एक क्रांति–सी मचा रक्खी है। विद्या की कोई ऐसी शाखा नहीं, जिसे इसने प्रभावित न किया हो। सभी लोग इस बात का ध्यान रखते हैं कि कोई बात ऐसी न हो जाय, जो विज्ञान की कसौटी पर सच्ची न उतरे। इतिहासकार इतिहास लिखते हैं, तो वे वैज्ञानिक रीति पर लिखें, तत्त्ववेत्ता यदि कुछ खोज करते हैं, तो वे वैज्ञानिक रीति का अनुसरण करें; कारीगर यदि कोई काम करते हैं, तो वे वैज्ञानिक रीति की शरण लें। केवल इतना ही नहीं, विज्ञान ने परमात्मा को भी सुख की नींद न सोने दिया। इतनी बड़ी सृष्टि की रचना में छः दिन तक अकेले अनवरत परिश्रम करने के बाद ईश्वर यह समझ कर सोया था कि अब क़यामत के दिन उठूँगा; पर डार्विन ने यह साबित कर दिखाया कि परमात्मा हर क्षण अब भी सारे विश्व को बना रहा है, और सदा बनाता रहेगा। कहने का तात्पर्य यह कि विज्ञान ने धर्मों को भी अपनी कसौटी पर जा कसा, और असत्य कहकर दूर हटा दिया। बहुत–से धर्मों ने अपना दिवाला बोल दिया। अभी थोड़े ही दिनों की बात है, इंगलैंड के प्रसिद्ध विद्वान् डा. जॉर्ज गैलोवे ने अपनी पुस्तक "(Faith and Reason in Religion) में लिखा है–"

The attempt to give a rational proof of the finality of christian religion will always fail. "अर्थात्–ईसाई मत की सत्यता का तर्कपूर्ण प्रमाण देने का प्रयन्त सदा असफल रहेगा।" उन्होंनें श्रद्धा (Faith) की शरण ली है; पर विज्ञान में श्रद्धा का कोई स्थान ही नहीं। जहाँ इन सबसे इसकी मुठभेड़ हुई, वहाँ कविता से इसकी मुठभेड़ हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं। आज हम इस बात पर विचार करेंगे कि विज्ञान का कविता से क्या संबंध है? विज्ञान का कविता पर प्रभाव होगा, अथवा वे दोनों स्वतंत्रता से अलग–अलग बढ़ते रहेंगे, इत्यादि?

संसार में सभी मनुष्यों के शरीर में एक सिर, एक हृदय और दो हाथ होते हैं, और प्रायः सभी मनुष्यों में उनकी तीन क्रियाएँ उपस्थित रहती हैं। इन्हीं तीनों के द्वारा मनुष्य अपनी तीन दशाओं (moods) को जन्म देता है। वे दशाएं ये हैं–तर्कात्मक अथवा ज्ञानात्मक (Scientific mood), भावात्मक (Emotional mood), और क्रियात्मक (Practical mood)। ज्ञानात्मक दशा का स्थान सिर या मस्तिष्क है, भावात्मक दशा का स्थान हृदय और क्रियात्मक दशा का स्थान हाथ। कविता एक प्रकार का उद्‌गार है, जिसे मनुष्य भावात्मक दशा की प्रधानता के समय जन्म देता है। तर्कात्मक अथवा ज्ञानात्मक दशा की प्रधानता में विज्ञान का उदय होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अपने–अपने आरंभ से ही विज्ञान और कविता अलग–अलग हो जाते हैं। विज्ञान और कविता

---

* *सुधा*, जुलाई 1929

+ सुप्रसिद्ध कवि हरिवंशराय बच्चन

का जन्म–स्थान ही भिन्न नहीं है, परन्तु जिन दशाओं में उनका जन्म होता है, वे भी भिन्न हैं। पर यहीं पर यह नहीं कहा जा सकता कि वे एक दूसरे से अप्रभावित रहेंगे, अथवा आगे चलकर एक दूसरे से मिल जायँगे, या एक दूसरे को मिटा देंगे।

दर्शन–शास्त्र ने हमें यह बतलाया है कि संसार की सारी वस्तुएँ एक दूसरे से संबंध रखती हैं। कोई भी वस्तु किसी की विरोधात्मक नहीं है, चाहे हमें देखने में ऐसा ही प्रतीत क्यों न होता हो। सारे संसार को एक वस्तु मानकर ही दर्शन–शास्त्र आगे बढ़ता है। वह किसी एक वस्तु को अलग करके उस पर विचार नहीं करता; क्योंकि प्रत्येक वस्तु का सबंध संसार की हरएक वस्तु के साथ है। किसी एक वस्तु की सत्यता जानने के लिये सारे संसार की सत्ता जानने की आवश्यकता होती है। यह केवल वस्तुमय संसार (World of Facts) के लिये ही सत्य नहीं, वरन् विचारों के संसार (World of Ideas) की भी यही दशा है। हमारा प्रत्येक विचार हमारे और विचारों से संबंध रखता है और हमारे और विचार संसार के अन्य मनुष्यों के विचारों से संबद्ध हैं। केवल इतना ही नहीं, हमारा विचार उन विचारों से भी संबंध रखता है, जो आनेवाले मनुष्यों में रहेंगे। संसार की वस्तुओं का पारस्परिक संबंध हम केवल दर्शन–शास्त्र से ही नहीं जानते। विज्ञान ने स्वयं यह बात सिद्ध कर दिखलाई है। डार्विन ने यह बात सिद्ध कर दी है कि बिल्ली के परिवार के एक जानवर के कारण हमारे बाग़ों में एक विशेष जाति के फूल फूलते हैं। यदि ये जानवर न हों, तो वे फूल न फूलें। उन्होनें यह भी दिखलाया कि किस प्रकार से बरसाती केंचुए संसार में रोटी का प्रश्न हल कर देते हैं। इस संबद्ध को दिखलाने में कवियों ने भी चूक नहीं की। फ़्रैंसिस टांपसन ने लिखा है–

All things by immortal power
Near or far,
Hiddenly
To each other linked are,
That thou canst not stir a flower
without troubling of a Star.

अर्थात्–"समस्त वस्तुएँ चाहे वे दूर–दूर हों, चाहे पास–पास, एक अनंत शक्ति के द्वारा गुप्त रीति से एक दूसरे से लगाव रखती हैं। तुम बिना एक सितारे को प्रभावित किए हुए एक फूल को भी नहीं तोड़ सकते।" इन बातों को ध्यान में रखते हुए यह कभी नहीं कहा जा सकता कि सिर और हृदय, जो इतने पास–पास हैं, उनकी क्रियाएँ परस्पर विरोधात्मक हैं। परंतु साथ–ही–साथ हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि इस संबंध के कारण हम विज्ञान और कविता के भेद (विरोध नहीं) को न भूलें, जैसा कि हमने स्वयं देखा है कि उनमें भेद आरंभ से ही उपस्थित होने लगता है। वास्तव में, हमें सितारे और फूल का संबंध इतना आश्चर्यजनक इसलिये प्रतीत होता है; क्योंकि हम सितारे और फूलों में जो भेद है, उसे भली भाँति जानते हैं। इसलिये हम पहले यही दिखलाने का प्रयन्त करेंगे कि विज्ञान और कविता में कितना भेद है।

विज्ञान और कविता में बड़ा भेद है। यही कारण है कि बहुत–से विद्वानों को भी यह भेद विरोध–सा प्रतीत हुआ है। अँगरेज़ी के प्रसिद्ध कवि कूलरिज़ ने अपनी पुस्तक Biographia Literaria में लिखा है–

Poetry is the antithesis of Science, having for its ultimate object pleasure not truth.

अर्थात्–"कविता और विज्ञान परस्पर विरोधात्मक हैं। कविता का अंतिम उद्देश्य आनंद–दायक बनना है, सत्य की खोज नहीं।"

अंगरेजी के एक दूसरे विद्वान् लेहंट ने लिखा है–

Poetry begins where matter of fact or of Science ceases to be merely such.

अर्थात्–"जहाँ विज्ञान का अंत होता है, वहाँ कविता का आरंभ।"

कहने का तात्पर्य यह कि विज्ञान और कविता में कोई साधर्म नहीं। इस विरोध का अनुभव केवल ऐसे कवियों अथवा लेखकों को ही नहीं प्रतीत हुआ, परंतु बहुत–से वैज्ञानिकों की भी यही सम्मति है। उन्नीसवीं शताब्दी के सबसे बड़े वैज्ञानिक अर्नस्ट हेकिल ने अपनी किताब Riddle of the universe में लिखा है–

Emotion has nothing what-so-ever to do with the attainment of truth.

अर्थात्–"सत्यता की खोज में भावात्मक विचारों का कोई स्थान नहीं।"

हेकिल ने अपनी इसी पुस्तक में कई जगह पर अवैज्ञानिक तथा असत्य बातों को काव्य–कल्पना "Poetic Fancy" कहकर उन पर आक्षेप किया है। क्या इससे साफ पता नहीं चलता कि हेकिल विज्ञान और कविता को परस्पर कितना विरोधात्मक समझता है? परंतु इन कथनों में बहुत कुछ सत्यता है। इनमें अत्युक्ति हो सकती है; पर असत्यता नहीं, जैसा आगे दिखलाया जायगा।

पहली बात जो कविता और विज्ञान को अलग करती है, वह यह है कि उनका विस्तार किन क्षेत्रों में है। सारे वैज्ञानिकों का यह मत है कि विज्ञान का क्षेत्र ' यथार्थता का संसार' (World of fact) है। टामसन ने लिखा है–

As a first characteristic of the scientific mood we would want a passion for fact..."First make sure of the fact" is the fundamental precept in science.

अर्थात् "वैज्ञानिक स्वभाव का पहला चिन्ह यह है कि उसमें यथार्थता के जानने की अभिलाषा हो। यथार्थता का विश्वास हो जाना विज्ञान की पहली सीढ़ी है।"

इस ' यथार्थता के संसार' के विपरीत एक कल्पना का संसार है। कविता का क्षेत्र ' कल्पना का संसार' ही है। अंगरेज़ी के प्रसिद्ध कवि मेथ्यू आरनल्ड अपने "The study of poetry" शीर्षक लेख में कविता के क्षेत्र के विषय में इस प्रकार लिखते हैं–

"For poetry the idea is every thing, the rest is a world of illusion, of divine illusion. Poetry attaches its emotion to the ideas;the idea is the fact".

अर्थात्–"कविता के लिये कल्पना ही सब कुछ है; उसके लिये कल्पना–शून्य संसार केवल एक दैवी भ्रम है। कविता अपने भावात्मक विचारों को लेकर कल्पना के संसार में प्रवेश करती है। कल्पना ही उसके लिये यथार्थता है।"

आरनल्ड ने केवल इतना ही नहीं बतलाया कि कविता का क्षेत्र, 'कल्पना का संसार है', वरन् यह भी बतलाया कि कविता किस विचार को लेकर इस क्षेत्र में प्रवेश करती है। अब यदि हम इसी प्रकार यह देखना चाहें कि विज्ञान किन विचारों को लेकर यथार्थता के संसार में प्रवेश करता है, तो हमें इस भेद के साथ एक और भेद भी मालूम हो जायगा। विज्ञान अपने तर्कात्मक विचारों को लेकर यथार्थता के संसार में प्रवेश करता है। विज्ञान के लिये केवल इतना ही आवश्यक नहीं कि वह किसी वस्तु के अस्तित्व को समझ कर ही चुप बैठ रहे; वरन् उस अस्तित्व की सत्यता की खोज करना भी उसका काम है। यह काम बिना तर्क के नहीं किया जा सकता। विज्ञान का कार्य इस प्रकार कठिन हो जाता है। कविता के लिये जब कल्पना ही सब कुछ है, तब पहली ही कल्पना में, जिस बात का बोध होता है, वही सत्य हो जाती है। शेक्सपियर की निम्नलिखित पंक्तियाँ कविता के इस कार्य को भली भांति प्रदर्शित करती हैं–

As imagnation bodies forth.
The forms of things unknown, the poet's pen.
Turns them to shapes, and gives to airy nothing
A local habitation and a name.

अर्थात्–"जैसे–जैसे कल्पना अज्ञात चित्रों के रूप में परिणत होती है, वैसे–ही वैसे कवि की लेखनी उन वायुकाय और अकाय वस्तुओं को एक निश्चित नाम और स्थान दे देती है।"

सारांश यह है कि कविता भावात्मक विचारों को लेकर कल्पना के संसार में प्रवेश करती है और विज्ञान तर्कात्मक विचारों को लेकर यथार्थता के संसार में प्रवेश करता है। इस प्रकार हमको यह मालूम हो जाता है कि कविता और विज्ञान में केवल अंतर्गत विषय (Matter) का ही भेद नहीं, परंतु विधि (Manner) का भी भेद है। इन्हीं दो भेदों से ज्ञात हो जायगा कि कविता और विज्ञान एक दूसरे से कितनी दूर हैं; परंतु यदि हम इस बात का ध्यान रक्खें कि वे दोनों एक ही मनुष्य–प्रकृति की दो अवस्थाएँ हैं, तो एक बार वे फिर एक पास मालूम होती हैं। संभव है, ऐसे ही किसी विचार से प्रेरित होकर अंगरेज़ी के प्रसिद्ध कवि शेली ने यह कहा हो–

Science...is the Sister of Poetry.

अर्थात्–"कविता विज्ञान की बहन है।" इस कथन में कितनी सत्यता है, इस पर हम बाद को विचार करेंगे। अभी हम यह दिखाना चाहते हैं कि मनुष्य की प्रकृति अथवा उसके व्यक्तित्व से विज्ञान और कविता का क्या संबंध है। यहाँ हम एक ही मनुष्य में कविता और विज्ञान का संबंध न देखकर कवि और उसकी कविता और वैज्ञानिक तथा विज्ञान का संबंध देखने का प्रयत्न करेंगे। कारण, हम इस विवादास्पद विषय को कि क्या एक ही मनुष्य एक अच्छा वैज्ञानिक और एक अच्छा कवि भी हो सकता है, नहीं उठाना चाहते। यदि ऐसा संभव है भी, तो भावात्मक विचारों की प्रधानता में वह एक मनुष्य है, और तर्कात्मक विचारों की प्रधानता में दूसरा। और, यदि हम उनकी दो अवस्थाओं में उन्हें दो भिन्न मनुष्य कहें, तो कोई अत्युक्ति न होगी।

हमने ऊपर लिखा है, 'कवि और उसकी कविता' और 'वैज्ञानिक तथा विज्ञान'। हमने 'वैज्ञानिक और उसका विज्ञान' नहीं लिखा। एक प्रकार से हमें इसी स्थान पर कविता और विज्ञान का मनुष्य के व्यक्तित्व से क्या संबधं है, यह मालूम हो जाता है। वास्तव में हम 'वैज्ञानिक और उसका विज्ञान' नहीं लिख सकते। कोई कवि अपनी कविता से अलग नहीं किया जा सकता। परंतु एक वैज्ञानिक अपने वैज्ञानिक फलों (Scientific conclusions) से बिलकुल अलग रहता है। यदि ऐसा नहीं करता, तो वह वैज्ञानिक नहीं। वैज्ञानिक का कर्तव्य है कि वह अपने सिद्धांतों से अपने व्यक्तित्व को अलग रक्खे। उसे कोई अधिकार नहीं कि अपनी दलीलों में अपना व्यक्तित्व दिखावे। यदि ऐसा करता है, तो उसकी दलील अच्छी नहीं समझी जायगी। और, कवि के लिये जहाँ यह बात असंभव है कि वह अपने व्यक्तिव को अपनी कविता से अलग रक्खे वहाँ उसके लिये यह कोई त्रुटि की बात भी नहीं समझी जाती। प्रोफ़ेसर कार्ल पियरसन ने लिखा है–

The scientific man has above all things to strive at self elimination. Being unbiased by personal feeling is characteristic of what may be termed the scientific frame of mind.

अर्थात्–"वैज्ञानिक का सबसे पहला कर्तव्य यह है कि वह अपने व्यक्तित्व को भूल जाय। व्यक्तिगत विचारों अथवा भावनाओं से अप्रभावित रहना वैज्ञानिक बुद्धि का मुख्य चिन्ह है।"

प्रोफेसर टामसन ने भी एक स्थान पर लिखा है– "The validity of a scientific conclusion..depends on the elimination of the subjective element".

अर्थात्–"किसी भी वैज्ञानिक फल की सत्यता व्यक्तित्व की शून्यता पर निर्भर है।"

जब कि वैज्ञानिक ने किसी बात की सत्यता को सिद्ध कर दिया, तो फिर इस बात की आवश्यकता नहीं कि तुम उस सत्य को जानने के लिये उस वैज्ञानिक को भी जानो। उस वैज्ञानिक का सत्य उससे बिल्कुल अलग रहता है। वह सत्य संसार का हो जाता है, उस वैज्ञानिक का नहीं रह जाता। वह मनुष्य–बुद्धि द्वारा संपादित सत्य समझा जाता है, किसी व्यक्ति–विशेष द्वारा नहीं। परंतु शेक्सपियर की कविता पर सदा शेक्सपियर की छाप रहेगी। व्यक्तित्व का ध्यान रखना ही कविता का जीवन है। यहाँ तक कि बहुत–से अंगरेज़ी के विद्वानों का कथन है–' कवि ही उसकी कविता है, या कविता ही कवि है' (the poet is his poetry or his poetry is the poet)। कविता स्वभाव से ही पुरुष–प्रधान (subjective) और वस्तु प्रधान (objective) में विभाजित की जाती है। नाटक–संबंधिनी कविता प्रायः वस्तु–प्रधान कही जाती है, और ऐसी कविता में कवि से यह आशा की जाती है कि वह अपने व्यक्तिव को अलग रखेगा, अपने काव्य में संसार का ऐसा चित्र खींचेगा, जैसा किसी दर्पण में प्रतिबिंबित होता है। ऐसा शेक्सपियर ने लिखा है; पर शेक्सपियर के प्रायः सभी समालोचकों का कथन है कि स्वयं शेक्सपियर, जो नाटकीय कविता का सम्राट कहा जाता है, इस दोष से मुक्त नहीं था। पर सत्य में इसे दोष नहीं कहना चाहिए। उसका जहाँ एक कर्तव्य यह है कि वह दर्पण के समान निष्पक्ष–भाव से संसार का चित्र खींचे, वहाँ उसका यह भी धर्म है कि वह उस चित्र पर इतना प्रकाश डाले कि उसके चित्र साफ–साफ दिखाई पड़ने लगें। प्रसिद्ध अंगरेज़ी समालोचक हडसन का यह कथन हमारी बात की पुष्टि करता है। वह लिखता है–

The word which the dramatist calls into being, with all its men & women, actions & passions, motives & struggles, successes & failures, is a world of his own creation-a world when the last word about the objectivity in art has been said, he alone is responsible. Now because it is a world of his own creation, it must of necessity be the projection of his own personality.

अर्थात्–"जिस संसार को उनके पुरुषों और स्त्रियों, घटनाओं और विचारों, उद्देश्यों और संघर्षों तथा सफलता और असफलताओं के साथ नाटककार चित्रित करता है, वह उसी की रचना का संसार है। वह एक ऐसा संसार है, जिसके लिये, जब कि कला में वस्तुप्रधानता के लिये अंतिम शब्द कह लिया जाय, केवल वही उत्तरदायी है। अब चूंकि यह उसी की रचना का संसार है, इसीलिये इसको अवश्य ही उसके व्यक्तित्व का विस्तार कहना चाहिए।" इस प्रकार की पुरुष–प्रधानता को हम गुप्त पुरुष–प्रधानता कह सकते हैं। परंतु वर्ड्सवर्थ एक कदम आगे बढ़ जाता है, जब वह कहता है कि प्रत्येक कवि को अपने ही विषय में कविता करनी चाहिए; क्योंकि मनुष्य अपनी स्मृतियों और अनुभवों का चित्र खींचने में अधिक सफल हो सकता है। और, जिन्होंने उसके काव्य को पढ़ा है, वे जानते होंगे कि उसके काव्य का अधिकांश भाग उसी के जीवन के विषय में है। और, सारे महान् कवि, जब वे औरों के विषय में भी लिखते हैं, तो अपना ही अधिक परिचय देते हैं। हम शेली की कविता, जो उसने "Sky Lark" के विषय में लिखी है, उससे शेली के विषय में अधिक जानते हैं, अथवा "Sky Lark" के विषय में? हमारा तो यह विचार है कि हम शेली के विषय में ही अधिक जानते हैं। इस प्रकार तीसरी बात, जो कि कविता और विज्ञान को अलग करती है, कर्ता और कर्म का संबंध है। कविता पुरुष–प्रधान होती है, और विज्ञान वस्तु–प्रधान होता है। हमने विज्ञान की वस्तु–प्रधानता के विषय में अधिक नहीं लिखा। इसका अधिक संबंध वैज्ञानिक सत्य से है। इस कारण हम उसको उसी के साथ दिखलावेंगे।

विज्ञान का लक्ष्य सत्य की प्राप्ति है। वह सत्य ऐसा होना चाहिए, जो संसार में सभी सामान्य बुद्धि रखने वालों के लिये सत्य सिद्ध हो सके। हम यहाँ उनकी चर्चा नहीं करते, जिनकी बुद्धि

खराब है, अथवा जो उन्हें समझने के लिये सर्वथा अयोग्य है। हम यहाँ फिर काल पियरसन का एक वाक्य उद्धृत करना चाहते हैं। वह कहते हैं–

"A scientist "is to provide an argument which is as true for each individual mind as for his own."

अर्थात्–"एक वैज्ञानिक को ऐसे प्रमाण देने की आवश्यकता है, जो प्रत्येक व्यक्ति के लिये वैसे ही सत्य प्रतीत हों, जैसे स्वयं उसके लिये।"

दूसरे प्रसिद्ध वैज्ञानिक फैंडे ने वैज्ञानिकों के विषय में लिखा है–

"Truth should be his primary object"

अर्थात्–"वैज्ञानिक का मुख्य उद्देश्य सचाई की खोज ही होना चाहिए।" जो सत्य सभी के लिये सत्य हो सकता है, वह किसी एक का ही सत्य नहीं हो सकता। इसीलिये पहले भी हम कई वैज्ञानिकों की सम्मतियाँ इस विषय में प्रकट कर चुके हैं कि उन्हें वस्तु–प्रधानता पर ही ध्यान रखकर अपने व्यक्तित्व को अपने प्रयोगों से दूर रखना चाहिए। लेकिन कवि जिस सचाई का प्रकाश करता है, वह केवल उसी के लिये है। यह आवश्यक नहीं कि दूसरे लोग भी उसी सचाई को देख सकें, यद्यपि कवि का प्रयत्न सदा यह होता है कि और लोग भी उसी सचाई को देख सकें। यदि संसार के सभी कवियों ने संसार को वस्तु–प्रधानता की सचाई (Objective truth) के दृष्टि–बिंदु से देखा होता, तो साहित्य की न तो वृद्धि हो सकती थी, और न उसमें सरसता ही रह सकती थी। यदि ऐसा होता, तो कविता का आशय ही जाता रहता; क्योंकि माधुर्य कविता का एक विशेष गुण है। हम कविता में केवल एक प्रकार का सत्य नहीं चाहते, वरन् बहुत प्रकार के सत्य चाहते हैं। हम केवल वर्ड्सवर्थ के समान कवि नहीं चाहते, जो प्रकृति को आनंद देनेवाली, दयावान्, न्यायी और अनेक सुंदर भावों से विभूषित देखते हैं। हम टेनीसन–जैसे कवियों को भी चाहते हैं, जो प्रकृति को भावों और विचारों से शून्य और क्रूर समझें, जो यह देखें कि प्रकृति में किस प्रकार जीवन के लिये संघर्ष है, किस प्रकार बली पशु निर्बलों को नाश करते हैं। हम केवल मिल्टन के समान कवियों को ही नहीं चाहते हैं, जिन्हें संसार की दशा संतोषजनक दिखलाई देती है। हम शेली–जैसे कवियों को भी चाहते हैं, जो संसार से असतुष्ट हों, उसे सर्वथा अपूर्ण समझें। अब इन कवियों की रचनाओं पर यदि हम यह विचार करने बैठें कि प्रकृति क्रूर है अथवा दयालु, संसार की दशा संतोषप्रद है अथवा असंतोषप्रद तो हमारी भूल ही होगी। हम केवल इतना कह सकते हैं कि एक के लिये प्रकृति क्रूर है और दूसरे के लिये दयालु। एक के लिये संसार की दशा संतोषप्रद है, दूसरे के लिये असंतोषजनक। हम किसी को झूठा नहीं कह सकते। जिसने जैसा देखा, वैसा उसने दिखलाने का प्रयत्न किया। एक कवि को सर्वापेक्ष बनने की आवश्यकता नहीं, परंतु उसे सच्चा स्वापेक्ष (Right Earnest) होना चाहिए। विज्ञान की महत्ता 'सत्य की एकता' में है। कविता का महत्ता 'सत्य के बाहुल्य' में। मेकाले ने तो और कविता की सचाई को 'पागल की सचाई' कहा है। और, अंगरेज़ी के प्रसिद्ध समालोचक लैंबार्न का तो कथन है कि कविता को हमें किसी प्रकार के सत्य का ध्यान ही न दिलाना चाहिए। आपका कथन है–

" The poet speaks in music which goes straight to the heart without translation by the intellect"!

अर्थात्–"कवि की संगीतमय रचना बिना बुद्धि का संपर्क किए ही हृदय में घर कर लेती है।"

सत्य का विचार तभी हो सकता है, जब बुद्धि से संपर्क हो। इस कारण कविता में सचाई है या नहीं, इस पर विचार ही नहीं होने पाता। इसका कारण यदि ढूँढा जाय, तो केवल यही मिलेगा कि वैज्ञानिक अपने सत्य का खोजनेवाला है, पर कवि अपने सत्य का जन्मदाता है। वैज्ञानिक कोई सत्य

बनाता नहीं। वे पहले से वर्तमान रहते हैं। वह उन्हें ढूँढ निकालता है। पर कवि अपने सत्य को बनाता है। वैज्ञानिक के सत्य की परीक्षा हो सकती है। पर कवि के सत्य के लिये पहले से वर्तमान कोई सत्य नहीं, जिसके साथ तुलना कर उसको असत्य दिखलाया जाय।

इसी के अंतर्गत दो भेद और आते हैं। वैज्ञानिक सत्य के विषय में यह कहा जाता है कि वह ऐसा होना चाहिए, जिसकी परीक्षा की जा सके, और जो दूसरों तक पहुँचाया जा सके। (Science consists only of verifiable &communicable) काव्य–संबंधी सत्य न तो ऐसा ही है, जिसकी परीक्षा हो सके, और न ऐसा ही कि दूसरों तक पहुँचाया जा सके। कविता का उद्देश्य तो यह अवश्य है कि दूसरे लोग भी उसके सत्य का अनुभव करें। पर यह अनुभव उन्हीं को प्राप्त हो सकता है, जो अपने हृदय को कवि के हृदय के समान बना लें। इसकी परीक्षा करने पर इसकी सचाई उन्हीं को ज्ञात हो सकती है, जो कवि के स्थानापन्न होकर उसकी परीक्षा करें या हम यों कह सकते हैं, किसी कवि के सत्य की परीक्षा के लिये परीक्षक स्वयं कवि बन जाय, तभी वह उसे देख सकेगा। यदि कोई व्यक्ति प्रकृति के उपदेश सुनना चाहता है, तो उसे अवश्य ही वर्ड्सवर्थ हो जानना चाहिए। यदि कोई यह देखना चाहता है कि राम परब्रह्म परमेश्वर हैं, तो उसे चाहिए कि वह तुलसीदास की आँखों से देखे। अंगरेज़ी में एक प्रसिद्ध कहावत है–"A Milton is required to understand a Milton."

अर्थात्–"मिल्टन के काव्य को मिल्टन ही समझ सकता है।" यद्यपि यह कहावत मिल्टन की कविता के लिये कही जाती है, पर जिस अर्थ में मैंने इसे लिया है, वह भी सर्वथा सत्य ही है। इस प्रकार मिल्टन का सत्य केवल मिल्टन ही समझ सकता है, अथवा वह पुरुष, जिसके भाव मिल्टन के समान हों, जो अपने को मिल्टन के स्थान में रख सके। केवल इसी प्रकार कविता का सत्य दूसरे तक पहुँचाया जा सकता है। अथवा यों न कहकर हम यह कह सकते हैं कि कविता का सत्य किसी के पास जाता नहीं, वरन् इस प्रकार लोग कविता के सत्य के पास जा सकते हैं। एक बार ब्राउनिंग की किसी पुस्तक के लोकप्रिय न होने पर किसी ने उन पर कुछ आक्षेप किया। इस पर ब्राउनिंग ने कहा–

"Intelligence by itself is scarcely the thing with respect to a new book-as Wordsworth says : You must like it before it be worth of your liking."

अर्थात्–"आप–से–आप किसी नई रचना का प्रिय बनना असंभव बात है–जैसा वर्ड्सवर्थ ने कहा है कि तुम्हें इसे पंसद करने योग्य होने से पूर्व पसंद करना चाहिए।" क्या यह एक प्रकार से माने हुओं को मनाने के समान नहीं है? क्या कोई वैज्ञानिक भी ऐसा कह सकता है कि "पहले तुम हमारे सिद्धांतों की सत्यता को मान लो तब तुम्हें हमारा सिद्धांत सत्य प्रतीत होगा?" ऐसा करनेवाला तो, हम समझते हैं, वैज्ञानिकों में बड़ा उपहासास्पद समझा जायगा। पर कवि इसी बात को घमंड के साथ कहता है। इस प्रकार वैज्ञानिक सत्य दूसरों तक पहुँचाया जा सकता है; पर कविता का सत्य दूसरों तक पहुँचाया नहीं जा सकता। हाँ, लोग उसके पास पहुँच सकते हैं; पर केवल कवि के समान होकर। दूसरी बात यह है कि कविता का सत्य हर कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। इसका सत्य केवल कवि के लिये सत्य होता है, या यह कवि के समान हृदयवालों के लिये।

यहां पर यह आशंका उत्पन्न हो सकती हैं कि क्या कारण है कि कवियों के सत्य को अधिक लोग जानते हैं, और वैज्ञानिकों के सत्य को कम लोग? इसका कारण यह है कि विज्ञान में संकेत–भाषा (Symbolic language) का प्रयोग होता है और कविता में चित्र–भाषा (Concrete language) का। संकेतों को देखकर कोई यह नहीं बता सकता कि ये किसके स्थान पर आए हैं; पर चित्र को देखकर सभी लोग यह बता सकते हैं कि यह किसका चित्र है। एक वनस्पति–शास्त्र का ज्ञाता किसी फूल के सभी भागों का विश्लेषण करके सबके नाम और काम को भले ही बता दे,

पर उसमें न तो फूलों की सुगंध प्रतीत होगी, न उनका रंग दिखाई देगा, और न उनके सौंदर्य की झलक ही आवेगी। पर वही सब बातें कविता संभव कर दिखलाती है। अँगरेज़ी के विख्यात कवि शेली ने "Ode to the West Wind" – नामक एक कविता लिखी है। यदि इस "West wind" का वैज्ञानिक वर्णन किसी औबज़रवेटीर की रिपोर्ट में देखा जाय, तो कुछ–कुछ इस प्रकार का होगा–

समय – 16.30

थर्मामीटर – 109.4 °

दिशा (Weather Cock)-W.

चाल – 8 m. p. h.

परंतु इस वर्णन को पढ़कर हम "West wind" का वैसा अनुभव नहीं कर सकते, जैसा कि उक्त कवि की रचना को पढ़कर कर सकते हैं। विज्ञान का उद्देश्य पारिभाषिक होता है, और कविता का वर्णनात्मक। यद्यपि यह बात सर्वथा सत्य है कि परिभाषा ही हमें किसी वस्तु की सत्यता का अंतिम प्रमाण देती है, पर वर्णन के बिना साधारण मनुष्य केवल परिभाषा से उसे नहीं समझ सकता। बिल्ली को हम अच्छी तरह जानते हैं; पर बिल्ली की वैज्ञानिक परिभाषा से यदि हम बिल्ली को जानना चाहें, तो हमें बड़ी ही कठिनता होगी। कविता का संबंध इस प्रकार जहाँ साधारण–से–साधारण मनुष्यों से है, वहाँ विज्ञान के समझनेवालों की सीमा बड़ी संकुचित है।

अब हम कविता और विज्ञान के विषय पर आते हैं। विज्ञान केवल ज्ञेय संसार को ही अपना विषय बनाता है। जो वस्तुएँ नहीं जानी जा सकतीं, उनको वह अपने से दूर रखता है। परन्तु कविता का विषय अज्ञेय संसार ही है। तर्क केवल उन्हीं वस्तुओं तक सीमित रहता है, जो वस्तुएँ जानी जा सकती हैं। परंतु इस विशाल विश्व में बहुत–से ऐसे पदार्थ हैं, जो अज्ञेय हैं–उनके विषय में कोई बात निश्चयात्मक रीति से नहीं कही जा सकती। कविता अज्ञेय संसार में प्रवेश नहीं करती, जिस प्रकार विज्ञान अज्ञेय संसार में प्रवेश नहीं करता। कविता के लिये कल्पना की आवश्यकता है, यह हम पहले दिखा चुके हैं। और कल्पना उन्हीं वस्तुओं के संबंध में की जा सकती है, जिनके विषय में कुछ ज्ञान न हो, अथवा जिनमें कोई गुप्त रहस्य हो। अंगरेज़ी में यह प्रसिद्ध कहावत है–

"Ignorance is the mother of imagination."

अर्थात्–" अज्ञान ही कल्पना की जननी है।" हम कल्पना उन्हीं वस्तुओं के लिये कर सकते हैं, जिनके विषय में हम अज्ञानी हैं। हम एक त्रिकोण के विषय में कल्पना नहीं कर सकते। जब कविता हमारे निकटवर्ती वस्तुओं के विषय में कुछ बात बतलाती है, तो हमारी कल्पना एक स्थान पर बैठकर अपने पंख फड़–फड़ाया करती है; पर जब कविता हमें अज्ञात देशों और अपरिचित स्थानों की ओर ले जाती है, तभी हमारी कल्पना को पूर्ण शक्ति से उड़ने का अवसर मिलता है। लैंबोर्न ने अपनी पुस्तक " Rudiments of Criticism" में लिखा है–

"The very essence of poetry is exactly what can not be intellectually conceived or expressed."

अर्थात्–"वे ही वस्तुएं, जो बुद्धि से न जानी जा सकती हैं, और न बताई जा सकती हैं, कविता का प्राणस्वरूप हैं।" यह बात प्रायः कही जाती है कि बालक स्वभाव से ही कवि है, तथा उसमें सब मनुष्यों से अधिक कल्पना–शक्ति होती है। पर उसका कारण क्या है? कारण यही है कि वे स्वभाव से ही अज्ञानी होते हैं, और इस कारण उनमें कल्पना और कवित्व–शक्ति होती है। मेकाले अपने कथन में सर्वथा सत्य था, जब कि उसने लिखा था–

"He who... aspires to be a great poet must first become a little child."

अर्थात्–"वह, जो कि एक बड़ा कवि होना चाहता है, उसे चाहिए कि वह पहले अपने स्वभाव को एक छोटे बच्चे के समान बना ले।" मैंने भी एक बार एक बच्चे की कविता देखकर अपने एक विद्वान् मित्र से कहा कि "देखिए, जब यह बच्चा अभी से ऐसी सुंदर कविता बनाता है, तो बड़ा होने पर इसकी कविता कितनी अच्छी होगी!" मेरे मित्र ने उत्तर दिया – "बड़े होने पर वह ऐसी कविता भी न कर सकेगा ।" अवश्य ही मेरे मित्र के कथन में बहुत कुछ सत्य था। कविता के विषय में यह कहा जाता है कि इसे बुद्धि से कोई काम नहीं। क्या यही बात विज्ञान के विषय में भी कही जा सकती है?

ये थोड़े–से भेद हमने कविता और विज्ञान के विषय में दिखलाए हैं! इन सबका सारांश हम एक वाक्य में इस प्रकार कह सकते हैं कि भावात्मक विचारों से उद्दीप्त कल्पना कविता कहलाती है, और तर्कात्मक विचारों से कल्पना का उद्दीप्त होना विज्ञान कहलाता है।

इन भेदों को दृष्टि में रखते हुए यदि कविता और विज्ञान को विरोधात्मक कहा जाय, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। अनेकों विद्वानों का मत है कि विज्ञान की वृद्धि के साथ कविता का ह्रास होगा। परंतु विश्व के पारस्परिक संबंध का ध्यान हमें ऐसी भविष्यवाणियों से सहमत नहीं होने देता। हम आगे यह दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि किस प्रकार विज्ञान और कविता एक दूसरे के सहायक हैं।

विज्ञान में प्रमेय (Hypothesis) की बड़ी भारी महत्ता है। बिना इसके वैज्ञानिक किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सकता। यह प्रमेय एक प्रकार की कल्पना ही है। इस कल्पना के लिये प्रत्येक वैज्ञानिक अपनी भावात्मक दशा का सदा ;णी रहेगा। यह एक सहायता है, जो कविता विज्ञान को देती है। कैम्बल ने शेली का जीवन–चरित्र लिखते हुए लिखा है कि शेली ने अपनी कविताओं में बहुत–सी ऐसी बातों की कल्पना की है, जिन्हें बाद को विज्ञान ने अनेक प्रयोगों के पश्चात् सिद्ध किया है। परंतु कभी–कभी विज्ञान ऐसी–ऐसी सचाइयों की खोज कर बैठता है, जिनका ध्यान भी इसने कभी नहीं किया था! इस समय एक प्रकार का आश्चर्य उत्पन्न होता है, और इस आश्चर्य में जो दशा मनुष्य की होती है, वह भावात्मक विचारों की प्रधानता की दशा से अधिक भिन्न नहीं है। कभी वैज्ञानिक रीतियों द्वारा प्राप्त सचाई इतनी बड़ी होती है कि मनुष्य अपनी तर्कात्मक बुद्धि को उसके सामने तुच्छातितुच्छ समझने लगता है। प्रकृति के गुणों के सामने वह एक मूर्ख–सा ही प्रतीत होता है। अपनी चतुर–से–चतुर बुद्धि भी अज्ञान–सी ही प्रतीत होती है। यह अज्ञान वही है, जिससे कविता का जन्म होता है। इस प्रकार कविता कल्पनाएँ देकर विज्ञान को ऊपर उठाती है और जब विज्ञान आगे नहीं बढ़ सकता, तब कविता उसे फिर अपनी गोद में उठा लेती है। डॉ. टामसन ने भी यही बात लिखी है–

"In its higher reaches Science often becomes artistic"

अर्थात्–"विज्ञान जब अपने अंतिम शिखर पर पहुँचता है, तब काव्यमय (कलामय) हो जाता है।" शेली ने अपने "Defence of poetry" शीर्षक लेख में लिखा है–

"It (Poetry) is atonce the centre and circumference of knowledge; it is that which comprehens all science and that to which all sciences must be referred...it is that from which all (systems of thought) spring."

अर्थात्–" कविता ही विद्या का आदि और अंत है। यह वह वस्तु है, जिसके अंतर्गत सभी विज्ञान है, जिससे सभी विज्ञानों का प्रादुर्भाव हुआ है, और इसी से सब प्रकार के विचारों का विस्तार होता है।" शेली को इतना और जोड़ देना चाहिए था कि "जिसमें सब विचार और सब विज्ञान अंत में लय हो जाते हैं।" पर यह वर्ड्सवर्थ के हिस्से की बात थी। वर्ड्सवर्थ लिखता है–

"Poetry is the breath and finer spirit of all knowledge; it is the impassioned expression which is in the countenance of all sciences."

अर्थात्–"कविता समस्त विद्याओं का प्राण है और वह उत्तेजनात्मक प्रकाश है, जो समस्त विज्ञानों के समय रहा करता है।" जब तर्क अपनी अंतिम सीमा तक पहुंच जाता है, तब वह उत्तेजना में परिणत हो जाता है। वह वही उत्तेजना है, जिसे वर्ड्सवर्थ ने कविता कहा है।

आचार–शास्त्र के ज्ञाता (Ethiest) एक संपूर्ण संसार (Perfect world) में विश्वास करते हैं। उनका विश्वास है कि वहाँ पर सभी विचार सुंदर, सत्य और अच्छे होंगे। सौंदर्य और सचाई का कोई विरोध न होगा। अब यदि हम सौंदर्य और सचाई को कविता तथा विज्ञान का उद्देश्य मान लें, तो यह कह सकते हैं कि पूर्ण संसार में जो कविता होगी, वही विज्ञान होगा, और जो विज्ञान होगा, वही कविता होगी। मैथ्यू आरनल्ड ने लिखा है–

" Without poetry our science will appear incomplete."

अर्थात्–"बिना कविता के विज्ञान अपूर्ण रहेगा।"

यदि उनका यह कथन सत्य हो, तो हम यह कह सकते हैं कि संपूर्ण संसार में यह अपूर्णता न रहेगी। और, आदर्श संसार में ये दोनों शेली के कथनानुसार बहन–भाई के समान रहेंगे।

चौपायों की ओर से प्रार्थना–पत्र*

चिरंजीलाल माथुर बी.ए., एल. टी.

श्रीमान् मनुष्य महाशय !

यदि कोई जीवधारी श्रीमान् कहलाने के योग्य है तो आप हैं। बने हुए तो आप साढ़े तीन हाथ के ही हैं परन्तु आप में कार्य–कुशलता इतनी बढ़ी हुई है कि समस्त जीवधारी आपके सामने हार मान गये हैं और पृथ्वी माता आपके समस्त रत्न आपको अर्पण कर चुकी है। आपकी बुद्धि के बल से जल, वायु, अग्नि इत्यादि आपके चरण सेवक हो गये हैं। जल इसीलिए बरसता है कि आपके खेतों में अन्न उपजावे, वायु इसलिए चलती है कि आपकी चक्की चलावे या जहाज़ चलावे। नदी इसलिए बहती है कि कहीं खेतों को सींचे और कहीं आपके लिए बिजली पैदा करे। समुद्र इस वास्ते है कि आपके बड़े बड़े जहाज़ों को छाती पर लादे रहे। पहाड़ इस वास्ते हैं कि आपके मकान बनाने को पत्थर दें, लकड़ी दें और कभी कभी जवाहिरात भी नजर[1] करें। सूरज दिन में रोशनी के लिए हाजिर रहता है। रात को चन्द्रमा मशाल लिए खड़ा रहता है। बिजली तो ऐसी गुलाम हो गई है कि आपके दरबार हाल के रौनक देने से लेकर झाडू बहारू तक का काम करती है। अभिप्राय यह है कि जो कुछ है आपही की सेवा के लिए है। हम चौपाये भी आपही की सेवा करते रहे हैं। हमने जो आपकी प्रशंसा में कहा है यह कोरी खुशामद नहीं है, बिलकुल सत्य है।

हम आपके पुराने सेवक हैं। जब रेल नहीं थी तो हम ही आपको अपनी पीठ पर बिठा कर एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाते थे या आपकी गाड़ी खींचते थे और अब भी हमें कोई इन्कार नहीं है। मगर अब हमको बाहर गाँव वाले ही अधिकतर काम में लाते हैं। हमारी प्रार्थना यह है कि अब आपको नौकर बहुत मिल गये हैं। हमको अब पचपन साला में निकाल कर पेन्शन दे दी जावे। हमारी वजूहात निम्नलिखित हैं:–

हे "अशरफुल मख़लूकात" (गो यह पदवी आपने स्वयं ले ली है परन्तु हमको तो आपसे काम निकालना है इसलिये जो पदवी आपको प्रसन्न करे वही लगा देंगे) ध्यान देकर हमारी बात सुनिये – हम आपसे पेन्शन इसलिए नहीं माँगते कि आपका हर्ज करके हम आराम करें बल्कि जब हमने देख लिया है कि अब हमारे बगैर आपका काम चल सकता है तो प्रार्थना की है वरन् आप जानते ही हैं हमने आपकी सेवा जब भी की थी जब आप बुद्धि में हमसे कुछ थोड़े ही अच्छे थे। अब हम आपका ध्यान इस ओर दिलाते हैं कि हमारा क्या क्या काम किस तरह हमारे बगैर हो सकता है।

---

* *विज्ञान*, सितम्बर 1932

1 सवारी – इस सेवा से आप हमें छुट्टी बड़ी आसानी से दे सकते हैं क्योंकि बाइसिकल आपने बना ली है और मोटरें ऐसी ऐसी बना ली हैं कि कई आदमियों को शीघ्रता से एक जगह से दूसरी जगह ले जावें। बड़े फासले के लिए रेल है और जमीन पर चलने की क्या अब तो आपने परंदों[2] की तरह उड़ने के लिए हवाई जहाज़ भी बना लिए हैं।

2. माल घसीटना – इस काम के लिए भी लारी मोटरें रेलगाड़ी अच्छी तरह काम में आ रही हैं। जहाँ नहीं चलती हैं वहाँ और चला दो और हमको छुट्टी दे दो। देखो हममें से बहुत सों की तो नाकें कट गई हैं, बहुत सों के मुंह छिप गये हैं।जरा तो हमारे ऊपर रहम[3] खाओं।

3. खेती के लिए – स्टीम (भाप) के जरिये से चलने वाले हल बन गये हैं। कूओं में से एन्जिन के जरिए से पानी खिंच आता है। दाना छांटने की मशीनें बन गई हैं। जब खेती के तमाम कामों की मशीनें बन गई हैं तो हम लोगों को छुट्टी क्यों नहीं दे देते।

4. शान के लिए – वाह रे आपकी शान! हमारी तो जी पर बीतती है और आपकी शान! परन्तु शान के लिए भी बड़ी–बड़ी खूबसूरत मोटरें बन गईं हैं। हवाई जहाज़ हैं और कोई चीज बना सकते हो।

5. फौज के लिए – अव्वल तो आपको चाहिए कि आप आपस में लड़ें भिड़ें नहीं कि जिससे फौज की जरूरत ही न रहे। आप आपस में लड़ कर अपनी अशरफुलमख़लूकाती[4] को बट्टा लगाते हैं। खैर अगर आपको हमारे जैसा बने बगैर परता ही नहीं है तो भले ही लड़ें परन्तु अब फौज में हमारी क्या जरूरत है – मशीन ही तोपें खेंच लेती हैं – टेंक हैं फौजी मोटरें हैं–और फिर अब तो आप चील की तरह हवा में उड़ कर भी तो बम्ब व गैस फेंक देते हैं। फिर भला फौज के कामों के लिए हमें क्यों दुख देते हो।

6. दूध दही के लिए – आप में से कुछ शायद यह कहेंगे कि इनको छुट्टी नहीं देनी चाहिए क्योंकि इनमें से कुछ सवारी के अतिरिक्त दूध भी देते हैं और दूध से घी निकलता है कि जिससे इतनी खाने पीने की चीजें बनती हैं – इन महाशयों से हमारी यही प्रार्थना है कि दूध के बिना तो आप के खाने का काम बहुत अच्छी तरह से चल सकता है। वास्तव में दूध बच्चों का खाना है, बड़ों का नहीं है और स्तनों में दूध बच्चों के लिए ईश्वर पैदा करता है न कि आपके लिए। फिर आप में से बहुत से बड़े परहेजगार बनते हैं, क्या परहेजगारी[5] के यह ही माने है कि हमारा खून पीवें? दूध एक तरह का खून ही है–हमारे जिस्म में बनता है यह आपके शाक या फल में तो शामिल है नहीं, हम चौपायों को भी हँसी आती है जब आपके कई महात्मा कहते हैं कि "हमने अन्न छोड़ दिया है केवल दूध पीते हैं"। अजी साहब अन्न छोड़ कर खून पिया तो आप तो उलटे पिशाची भोजन करते हैं। खैर कुछ भी हो हमारे कहने का मतलब यह है कि आप बिना दूध अच्छी तरह गुजर कर सकते हैं। अगर यह भी माना जावे कि दूध सात्विक भोजन है तो महाराज हुआ करो, हमें क्यों तंग करते हो, अपनी स्त्रियों का पीओ। रहा आपके घी का तो महाराज जी अब तो वनस्पति का आप लोगों ने बना लिया है। अब हमारे खून में से घी निकालने की क्या जरूरत है। वनस्पति का घी वास्तव में सात्विक है उससे अपना हलुवा पूरी, पकौड़ी बनाएं और हत्या से बचिए।

कुछ महाशय आपमें से यह भी कहते हैं कि यदि हम जानवरों को पालना छोड़ देंगे तो हमारी प्रकृति का कोमल भाग नष्ट हो जावेगा–यह कहना दो तरह से व्यर्थ है – प्रथम तो आप लोग बजाय

कोमल भाग के क्लिष्ट भाग को हमारे लिये रिजर्व किए हुए हैं। क्या कोमलता के यही माने हैं कि आप हमारे गले में फाँस डाल कर खूँटें से बाँध दें, पैरों को पछाड़ी से जकड़ दें या बेड़ी डाल दें, नथनों को छेद दें। नाक में सूराख कर दें, गर्दन में तीक्ष्ण नोंक चुभा दें। जब चाहे तब खाने को दें, जब चाहे तब पानी दें। कँधे पर जूड़ा रख दें, पीठ पर सवार हो जावें। लकड़ी से हाँके–अगर यही कोमलता है तो कृपा कीजिये, हम बाज आये इस कोमलता से। इस कोमलता को आप अपनी मनुष्य जाति के लिए रख छोड़िये और हमको छुट्टी दीजिये।

दूसरी तरह से आपकी कोमलता की वजह यों गलत है कि आप कोमलता जानते ही नहीं। जब आप अपनी मनुष्य जाति में ही कोमलता नहीं बर्तते तो हमसे क्या ख़ाक बर्तेंगे। यदि आप में कोमलता होती तो क्यों अदालतों में कतल के, मार पीट के, लड़ाई–दंगों के, लूट मार के, भगा ले जाने के, मुकद्दमे होते–कौन नहीं जानता है कि आप लोगों ने अपनी जाति ही के मारने के लिए क्या क्या उपाय किये हैं और कर रहे हैं। लोहे का ज्ञान हुआ तो इसलिए कि उससे नोकदार हथियार बना कर भाई को बींधें। बारूद का इल्म[6] जाना तो दूर से ही मार दें। गैसों को मालूम किया तो इसलिए कि भाई को हवा के जरिये से नष्ट कर दें, हवा में उड़ना सीखा तो इसलिए कि भाइयों के ऊपर हवा में से ही बम्ब डाल दें। यह तो आप की करतूत है और फिर आप दम भरते हैं कोमलता का। जब आप अपनी मनुष्य जाति ही के साथ ऐसा बरताव रखते हैं तो हम आप से क्या आशा रख सकते हैं।

अब हमने हर तरह से आप की बिनती कर ली है। हमारे बिना कैसे काम चल सकता है यह भी बता दिया। हमारे साथ अत्याचार का भी हाल सुना दिया। अब भी अगर आप हमारी प्रार्थना न सुनेंगे तो आप याद रखिये, हम हिन्दुस्तानियों की तरह निहत्थे नहीं हैं। हम सींगों से, सुमों[7] से, दांतों से आप की खबर ले डालेंगे। हम केवल रेलवे के नौकरों की तरह से स्ट्राइक[8] ही नहीं करेंगे वरन तुम लोगों को कुचल डालेंगे। यह तो हमारी भलमनसी है जो कुछ कहते नहीं हैं, नहीं तो हम में से एक भी फिर जावे तो तुम्हारी जाति के सैकड़ों के दाँत खट्टे कर दें। हम हज़ारों वर्षों से भलमनसी का बर्ताव कर रहे हैं, परन्तु आप नहीं मानते हैं। अब यह अन्तिम प्रार्थना है इसको अल्टीमेटम समझे। यदि अब भी आप लोगों ने हमको आजाद नहीं किया तो हमको भलमाँसी छोड़ कर आप जैसा बनना पड़ेगा।

एक और काम में भी आप लोगों में से कुछ हम को लाते हैं। वह पहिले इस वजह से नहीं कहा कि वह इतना घृणित है कि अगर आपको उसके करने में शर्म नहीं आती पर हमको तो कहने में भी लज्जा आती है। वह यह है कि हमसे कुछ का दूध खाकर, खेती में काम लेकर उनका मांस भी खाने को आप तैय्यार हो जाते हैं।जब सैकड़ों हज़ारों चीजें खाने की हैं और आपने बना ली हैं तो हमको इस काम में लाना मनुष्यता है या नहीं आप स्वयं सोच सकते हैं। हमारे खयाल से तो ऐसा करना शेर भेड़ियों की नकल करना है। परन्तु नक़ल करने में तो महाश्य जी आप बड़े प्रवीण हैं कोई जीवधारी सिवाय बंदर के कि जो डार्विन मत के अनुसार आपका पुरुषा है, ऐसा नक्काल नहीं है जैसा मनुष्य। कुछ पक्षियों को रंग बिरंग पंख वाला देखा तो आपने भी रंग बिरंगे कपड़े पहिन लिये। परंदों को हवा में उड़ते बहुत दिनों से देख रहा था आखिर आप भी उड़ने लग गया। मछलियों की नकल तो पानी में तैरने की बहुत पहिले कर चुका था। माँसहारी जीवधारियों के तेज दाँत व नख होते हैं तो उनकी नकल करके आपने भी काँटे छुरी बना लिए और उनसे खाने लगा। शेर के नखों की बएन ही नक़ल करके एक हथियार बाघनख ही बना लिया। गधे घोड़े के सुम देख कर आपने भी जूतियों में हील लगा ली और नाल भी आदमियों की नाल बंदी होती है।

उकाब[9] की तेज आँखें देखकर आपने दूरबीन बना ली। बये का घोंसला देखकर आपने भी दुमंजले मकान बना लिए। शहर की मक्खियों का छत्ता देखकर सिपाहियों के बेरेक्स[10] बना लिए। यहाँ तक कि बतख की तरह डुबकी भी लगाने लगे। गरजे कि हर जानवर की नकल कर डाली। अगर सृष्टि की रचना से पहिले ईश्वर को यह मालूम होता कि आप ऐसे तमाम जानवरों की नक़ल कर लेंगे तो ईश्वर या तो केवल आपही आपको बनाता या आप को बिल्कुल नहीं बनाता।

---

1. भेंट
2. नुकसान
3. पक्षियों
4. दया
5. शरीफियत
6. संयम
7. ज्ञान, विद्या
8. खरीं
9. हड़ताल
10. एक विशालकाय पक्षी जो भेड़–बकरी तक उठा ले जाता है
11. बैरक : सिपाहियों के रहने की कोठरियाँ

खाद★

नन्दकिशोर शर्मा

हर एक किसान इस बात को अच्छी तरह से जानता है कि खेती के लिए ज़मीन, बैल, खाद की खास जरूरत है। बिला[1] इन तीन चीज़ों के खेती का काम नहीं चल सकता। खाद का सवाल इस समय एक जटिल रूप धारण किये हुए है। खाद सदहा किस्म की हैं और इनकी कमी भी नहीं है, लेकिन सवाल यह है कि खाद ऐसी होनी चाहिए जो सबको नसीब हो सके। हमारे देश के किसानों की गरीबी खास तौर से मशहूर है, पर[2] ऐसी कोई खाद होना चाहिये जो गरीब से गरीब किसान को भी मिल सके और साथ के साथ वह खाद ऐसी हो जो कि सब फसलों पर पूरा पूरा फायदा दे सके। बुन्देलखण्ड प्रान्त के लिए यह विषय महत्व का है–कारण यहाँ की जनता खास तौर से गरीब, अनपढ़ व पुराने ढर्रे की है–दूसरे यहाँ की रहन–सहन ऐसी है कि जिसके लिए खास तौर से ध्यान की जरूरत है। नहरों के आने से पहिले व मँहगी का जमाना शुरू होने से पहिले बुन्देलखण्ड में खाद की जरूरत नहीं पड़ती थी और जहाँ जिस चीज़ की जरूरत नहीं होती वहाँ लोग अनभिज्ञ रहते हैं। कारण यह है कि बुन्देलखण्ड में जमीन की कोई कमी नहीं और आबादी मुक़ाबलन् और जगहों से बहुत कम। स्वाभाविक तौर से पशुओं का पालन पोषण बहुत होता था। ऐसी हालत में लोगों में जमीन की माँग बहुत न थी, जिस खेत में एक दफ़े फसल ली, बाद को उसे परती छोड़ देते थे। जानवर इधर–उधर चरते फिरते थे–जमीन को परती पड़े रहने से आराम मिलता था – जानवरों के चरने फिरने से उनका मलमूत्र वहीं गिरता था बल्कि मरने पर उनकी हड्डियाँ भी वहीं रहती थीं, पर यह सब साधन ऐसे होते थे कि जमीन की उपाजू[3] शक्ति कम नहीं होने पाती थी। लेकिन यह समय अब स्वप्नवत् हो गया। नहरों व मँहगी के कारण अधिकांश जमीन काश्त में आ गई और आ रही है। अकालों के कारण जानवरों में बहुत कमी हो गई, हड्डी के रोजगार के कारण दूर दूर से हड्डी बिन कर रेल में भर कर कहीं की कहीं चली जा रही है। ऐसी हालत में खाद की क्या शकल हो सकती है किसी से छिपी नहीं है। कुछ भी शकल हो बिला खाद के काम नहीं चलता। अगर ज़मीन से अच्छी पैदावार हासिल होना ज़रूरी है तो खाद का भी पूरी तौर से प्रबन्ध करना भी अति आवश्यक है–वह तो सब कोई अच्छी तरह से जानते हैं कि गोबर सबसे उत्तम खाद है। इस में खाद की सब चीज़ें पूरी तौर से मौजूद हैं। लेकिन गोबर सब खाद के काम में नहीं आ सकता। बिला ईधन के मनुष्य मात्र का काम नहीं चल सकता। जलाने की लकड़ी वगैरः की कमी ऐसी है कि लोगों को लकड़ी मिल ही नहीं सकती–पस सिर्फ गोबर बचता है जिससे कि वह लोग ईधन का काम ले सकते हैं–पस सारा गोबर कण्डों के काम में आता है। लोग उपदेश चाहे

★ *विज्ञान*, जून 1932

जैसा देते फिरें कि गोबर के कंडे न बनाओ बल्कि खाद के काम में लाओ लेकिन यह मौजूदा अवस्था में असम्भव है कि लोग ऐसा करें– सवाल अब यह है कि इस कमी को किस तरह से पूरा किया जा सकता है। इसके दूर करने के निम्नलिखित उपाय है:–

(1) हरी खाद

(2) कम्पीया[4] खाद

(3) वैज्ञानिक खाद

माली हालात का ध्यान रखते हुए अभी बहुत दिनों तक वैज्ञानिक खाद का व्यवहार भारत वासियों के लिए बहुत दूर है। पस सबसे सस्ता नुस्खा हरी खाद और कम्पीया खाद ही इस जरूरत को दूर कर सकती हैं। अब हम दोनों खादों का थोड़े से शब्दों में ब्यान करते हैं ताकि सबकी समझ में आ जावे।

हरी खाद : इस खाद से यह मतलब है कि ज़मीन पर ऐसी फसल बोवें जो कि बहुत जल्दी उग आती है। उसमें पत्ते अधिक होते हों और छीमीदार हो और जो जल्द सड़ गल जाती हो। खेती के पण्डितों ने यह सिद्ध कर दिया है कि छीमीदार पौधों में ईश्वर ने ऐसी शक्ति प्रदान की है कि वह अपने पत्तों द्वारा हवा में से नोषजन[5] लेकर अपनी जड़ों से ज़मीन में जमा कर दे। पौधों की ख़ास खूराक नोषजन है और खेतों में खाद देने से यही मतलब होता है कि नोषजन पौधों को ज़मीन से अपनी जड़ों द्वारा मिल सके। हवा में नोषजन का हिस्सा बहुत है– पस ऐसे छीमीदार पौधे बोने से ज़मीन की पैदावार की शक्ति कम नहीं होती बल्कि बढ़ती है और अगर ऐसे पौधे इस मतलब से बोये जांय कि वह ज्यों के त्यों ज़मीन में जोत डाले जांय तो फिर क्या कहना है सोने को सुहागा मिलना है। नोषजन तो उन पौधों ने अपनी जड़ में जमा कर रक्खा है ही और अन्य आवश्यक खाद के अंश उन पौधों के जुत जाने से ज़मीन में पहुँच जायेंगे। इस में सब से अधिक ह्यूमस[6] की बढ़ती हो जायगी। ह्यूमस एक ऐसी चीज है कि जिससे ज़मीन की ताकत बहुत बढ़ती है और नमी कायम रखने की ख़ास कुव्वत[7] आ जाती है। इस किस्म के पौदे तो बहुत हैं जो इस काम में लाये जा सकते हैं– सरकारी फ़ार्मों पर जो तजरबे[8] हुए हैं उन से साबित हुआ है कि सनई इस काम के लिए सब से उत्तम है–यानी यह सब से जल्दी तो जमती और पनपती है और फिर जुत जाने पर सबसे जल्दी सड़कर जमीन में मिल जाती है। जोतने के मतलब से बोये जाने के लिए खूब घनी तौर से बोनी चाहिये–इसके बोने का सहल तरीका यह है कि जिस दिन पहिला पानी बरसे उसी दिन खूब घनी तौर से इसका बीज खेत में छिड़क देना चाहिये और फिर देशी हल से हलकी जुताई कर देनी चाहिये, और अगर ज़मीन खालिस पडवा[9] हो तो ऊपर से हलका पटेला दे देना चाहिये। ध्यान इस बात का रहे कि न तो बीज ही गहरा जाय और न पटेला से भरपूर जोर से दब जाय। बस इतना अमल काफी है। बाद में बीज अपने आप जमेगा और चूंकि यह बारिश के दिन होते हैं आगे पीछे पानी बरसता ही है पस पौधे अपने आप सरसब्ज[10] होंगे। बीज की मिकदार[11] एक एकड़ के लिये सवा मन से डेढ़ मन होनी चाहिये। बीज बोने के बाद 45 दिन से लेकर 55 दिन के अन्दर तक इस फसल को खेत में जोत डालना चाहिये। जोतने से पहिले फसल पर पाटा या हैंगा लगा देना जरूरी होगा ताकि फसल लेट जाय और बाद में अंगरेज़ी हल यानी मिट्टी उलटने वाले हल से खेत जोत डालना चाहिये। मिट्टी उलटने वाले हल वह होते हैं जिसमें एक तरह का पंखा सा लगा होता है जिससे जो कूंड़ में से मिट्टी आती है वही वहाँ की वहीं पलट जाती है याने ऊपर की मिट्टी नीचे, नीचे की मिट्टी ऊपर आ जाती है। इस क़िस्म के हल सब सरकारी फार्मों पर मौजूद हैं जहाँ पर जा कर हर कोई इसको देख सकता है, वह इसका काम सीख सकता है। जोतने में इसका ध्यान रखना चाहिये कि खेत के बीचोबीच में पहिली कूंड़ बनानी

चाहिये और फिर इसी कूंड़ पर दाँये बायें कूंड़ बनाते चला जाना चाहिये और अगर इतफ़ाक़ से कहीं सन के पौधे हल से जमीन में चले जाने से रह जाँय तो फड़वों द्वारा इनको ज़मीन में अच्छी तरह से दफ़न कर देना चाहिये। मतलब यह है कि खूबी व पूरा फायदा इसी में है कि सब पौधे पूरी तौर से जमीन में दब जाँय। यह अमल हो जाने के बाद खेत को यों ही 1 या डेढ़ माह के लिए छोड़ देना चाहिये। बाद में फिर अपनी मामूली जुताई करते रहना चाहिये और खेत को रबी बोने के लिए तय्यार कर लेना चाहिये। ऐसे तय्यार किए हुए खेत में जो गेहूँ बोया जाता है उसमें कम से कम पांच मन फी एकड़ गेहूँ और आठ मन फी एकड़ भूसा मुकाबिलन दूसरे खेतों के जिन में यह अमल नहीं किया जाता है अधिक पैदा होता है और अगर पूसा गेहूँ नम्बर 4 या पूसा गेहूं नम्बर 12 बोया जाता है तो उस से आठ मन फी एकड़ गेहूं और 12 मन फी एकड़ भूसा अधिक पैदा होता है – पर अब इस को पढ़ने वाले अपने आप सोच लें कि किस में उनको अधिक लाभ है।

दूसरा सहल तरीक़ा खाद की कमी पूरी करने का कम्पीया खाद है। इसका ब्योरा भी ध्यान से सुनिये।

कम्पीया खाद यह है जो कि सब घास कूड़ा करकट खर राख व वह सब चीज़ें जो मनुष्य के काम की नहीं हैं किसी एक गड्ढे में जमा कर के सड़ा ली जांय। यह खाद भी एक आला[12] दर्जे की चीज़ है और बिला किसी कौड़ी पैसे के सिर्फ थोड़ी सी मेहनत से हासिल हो जाती है और ज़मीन की पैदावार में बढ़ती करने में खास मदद देती है। ऐसा कौन सा किसान है जिसके यहाँ कूड़ा करकट, खर पतवार वगैरः न होता हो जिनको कि वह एक फ़जूल नाकार आमद चीज़ समझ कर इधर उधर न फेंक देता हो। असलियत यह है कि अगर लोगों को यह मालूम हो जाय कि इन चीज़ों से भी एक आला दर्जे की खाद तय्यार हो जाती है तो शायद वह ऐसा न करें। बरसात के दिनों में बहुत सी घास वगैरः चारों तरफ़ उगती हैं और लोग इस घास वगैरः को जहाँ पर इसकी जरूरत महसूस नहीं होती है वहाँ से उखाड़ कर किसी ओने कोने पर जमा कर दिया करते हैं तो जो कुछ घास पतवार वगैरः खेत से निकलता है उसको खेतों के मेंड पर डाल देते हैं। यह सब घास फूस वगैरः बहुत अच्छा खाद बन सकता है अगर लोग तनिक सी तकलीफ़ उठा लें। मौसम पतझड़ में इफ़रात[13] से पत्ते चारों तरफ फैले रहते हैं। यह भी काम में आ सकते हैं। बरसात के दिनों में गोबर कंडे बनाने के काम में बहुत कम आता है। लोग अकसर गोबर को इन दिनों कहीं अलग जगह पर फेंकते रहते हैं जो कि बाद में खाद के काम में लाया जाता है। ऐसे गोबर की खाद की हैसियत मुश्किल से दसवाँ हिस्सा रहती है–पर इन सब बातों को सोच कर एक सहल उपाय कम्पीया खाद तय्यार करने का यह है कि किसी अलग जगह पर एक गड्ढा चार या पाँच गज़ लम्बा और ढाई या तीन गज़ चौड़ा और तीन या चार गज़ गहरा खोदो – खुदाई ऐसी हो कि नीचे की तरफ ढाल हो यानी गड्ढे का ऊपरी खुला अगर पाँच गज़ लम्बा और तीन गज़ चौड़ा होवे तो नीचे की सतह करीब साढ़े तीन गज़ लम्बी और दो गज चौड़ी रहे और अगर हो सके तो इसके ऊपर बहुत मामूली छप्पर डाल दो और फिर जो कुछ घास पत्ती कूड़ा करकट राख वगैरः फ़िजूल चीज कहीं भी मिले उसे इस गड्ढे में डालते रहो। ध्यान सिर्फ इस बात का रहे कि जो कुछ डाला जाय वह उस गड्ढे में फैला दिया जाया करे। आहिस्ता–आहिस्ता यह गड्ढा भर जायगा। भर जाने पर इसके ऊपर करीब एक फुट मिट्टी से दाब दो। करीब चार महीने में यह सब सड़ गल कर एक आला दर्जे की खाद बन जायगी। पाँच गज़ लम्बे और तीन गज़ चौड़े गड्ढे में चार माह में करीब छै सौ मन बढ़िया खाद तय्यार हो जायेगी। पच्चीस बीघा के किसान को ऐसे दो गड्ढे रखने चाहिऐ ताकि जब एक गड्ढा ढका रहे तो दूसरे में घास फूस खर पतवार गोबर वगैरः जमा होता रहे। पस अब आप साहब खुद सोच लें कि इससे भी सहल और कम कीमत नुसखा खाद

की कमी दूर करने के लिए क्या हो सकता है। दूसरी तरकीब और है लेकिन वह इस से कठिन है। मगर इससे कई गुनी अच्छी खाद तय्यार होती है। उसे भी ज़रा गौर से सोच लें। गो हड्डी के रोज़गार खुल जाने से चारों तरफ की हड्डी बिन बिना कर रेलों में लद कर तिजारती जगहों पर चली जाती है फिर भी ऐसे ज़मींदार व किसान जो कि इसके फायदों से जानकार हो जायँगें शायद आगे के लिए अपने अपने खेतों व ज़मींदारियों से हड्डियों का बाहर जाना रोक दें। हड्डी एक बेश– क़ीमत खाद है और उन देशों में जहां कि कृषि विद्या काफी उन्नति कर रही है वहाँ हड्डी की खाद का काफी व्यवहार होता है और बढ़ता ही चला जा रहा है और जो लोग इसके फ़ायदे को नहीं जानते वे थोड़े से पैसों के लालच में अपने अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मार रहे हैं। हड्डी एक ऐसी चीज़ है कि बहुत देर में गलती सड़ती है और इसी लिये तुरतफुरत खाद के काम में नहीं लाई जा सकती है। अन्य देशों में खाद के काम में लाने से पहिले इस पर कई अमल[11] होते हैं और फिर यह खाद के लायक तय्यार हो जाती है। उन अमलों का करना अपने यहाँ मौजूदा हालत में महा कठिन बल्कि असम्भव सा है। इसका सब से सहज उपाय कि हड्डी खाद के लायक हो जाय हम बयान करते हैं। जो लोग इस साधन को काम में ला सकते हैं उनको चाहिये कि इसे व्यवहार में लावें।

एक गड्ढे में जितनी हड्डी मिल सके उसके नाप के लायक़ खोदना चाहिये। शुरू में दो गज़ लम्बा दो गज़ चौड़ा दो गज़ गहरा काफी होगा। साथ ही साथ तीन खूंटे बबूल या और किसी मजबूत लकड़ी के नुकीले तय्यार करना चाहिये। यह खूंटे करीब ढाई गज़ लम्बे हों। इस गड्ढे को भीतर से अच्छी तरह से लीप देना चाहिये। फिर इसमें पहिले क़रीब आठ अंगुल की तह अरहर की पत्ती व उसकी लकड़ी की राख की देनी चाहिये और उस पर हड्डी के टुकड़ों की तरक़ीब आठ दस अंगुल की। बाद में फिर वही राख और फिर हड्डी। इसी तरह से राख व हड्डी की तह से इस गड्ढे को भर देना चाहिये। जब यह गड्ढा भर जाय तो उसमें यह तीन खूंटे ठोंक देने चाहिये। रोज़ाना गाय बैल भैंस बकरी वगैरः जानवरों का मूत्र एक खूंटे को उखाड़ कर जो गोल छेद है उसमें डालते रहना चाहिये इसी तरह से रोज़ाना जो कुछ मूत्र मिल सका करे उसे खूंटे निकाले और डाल दिया। यह अमल तीन चार माह तक करते रहना चाहिये। बाद में गड्ढे के ऊपर मिट्टी डाल कर मुँह बंद कर देना चाहिये और चार पाँच माह इसी तरह से छोड़ देना चाहिये। यह हड्डियाँ गल कर सब राख हो जायेंगी और फिर वह एक आला दर्जे कीं खाद तैयार हो जायेगी—यानी ऐसा होगा कि किसी हालत में 10 या 11 मन से कम इसकी क़ीमत न होगी। और ऐसी खाद गेहूँ के लिये एक एकड़ भूमि के लिये दो मन क़ाफी है। और अगर खेत की अच्छी तरह से काश्त हुई है, बीज अच्छा है, सिंचाई का भी प्रबन्ध ठीक है तो फिर ऐसे खेत की पैदावार क़रीब क़रीब बिला खाद के खेत के दुचन्द होती है। पस समझदार लोग इसकी तरफ ध्यान देकर लाभ उठावें।

तीसरा तरीक़ा खाद की कमी दूर करने का वैज्ञानिक खादों के द्वारा है। मौजूदा हालत में हमारे किसानों की हालत ऐसी नहीं है कि यह लोग आम तौर से इन खादों को काम में ला सकें।

---

1. बिना
2. लेकिन
3. उपजाऊ
4. कम्पोस्ट
5. नाइट्रोजन
6. खाद–मिट्टी
7. शक्ति
8. अनुभव
9. भूमि की एक किस्म
10. हरे–भरे
11. मात्रा
12. उत्तम
13. अधिकता
14. कार्य रूप में परिणत करना

पंजाब का सर्वप्रथम वैज्ञानिक*

सद्‌गोपाल, एम. एस–सी.

आजकलके भारतीय विश्वविद्यालयोंसे प्रतिवर्ष सहस्रों विद्यार्थी विज्ञानमें उच्चतम शिक्षा प्राप्त करके निकलते हैं। अकेले पंजाब–विश्वविद्यालयसे प्रतिवर्ष केवल रसायनशास्त्रके बीसियों स्नातक पास हो जाते हैं। जिन प्रयोगशालाओं में यह लोग शिक्षा प्राप्त करते हैं, वहाँ सब प्रकारकी सुविधाओंके होते हुए भी यह बहुसंख्यक स्नातक देशकी आर्थिक उन्नतिके लिए किसी प्रकारका भी कार्य नहीं कर सके हैं। आज हम जिन महानुभावके जीवनका वर्णन करेंगे, उनका विस्तृत कार्य आजकलके निरर्थक रिसर्चसे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। एक साधारण शिक्षाप्राप्त नवयुवक केवल अपनी अद्वितीय मेधा और अध्यवसायके जोरसे, और सब प्रकारकी सुविधाओंके सर्वथा अभाव होते हुए भी, किस प्रकार पंजाबमें सर्वप्रथम वैज्ञानिकका पद प्राप्तकर सका, यह इस लेखसे विदितहो सकेगा।

पंजाबके प्रसिद्ध ऐतिहासिक तथा व्यापारिक नगर अमृतसरके स्टेशनसे उतरतेही एक सड़क नगरके बाहरकी ओर खालसा–कालेजको जाती है। इसी सड़कपर थोड़ी दूर जानेपर इस्लामाबाद नामक एक छोटीसी बस्तीमें हमारे चरितनायक ला० शम्भुनाथ जी की सिंह–फैक्टरीकी ऊँची–ऊँची चिमनियोंमें से धुआँ निकलता दिखाई पड़ता है।

ला. शम्भुनाथजी का जन्म बटाला–निवासी ला० पूर्णचन्द कपूरके कुलमें अमृतसरके समीप किला सोभा सिंह नामक स्थानपर हुआ था। जरा सयाने होने पर उन्हें स्थानीय स्कूलमें पढ़नेके लिए भेज दिया गया। इस स्कूलसे इस होनहार बालकने एंग्लो–वर्नाक्यूलर मिडलकी परीक्षा पासकी। बाल्यावस्थासे ही उसका मन पुस्तक पढ़नेमें नहीं लगता था। वह प्रायः साधारण रासायनिक प्रयोग और पुरजोंके अभ्यासमें ही लगा रहता था, इसीलिए उसकी नियमबद्ध शिक्षा यहींपर समाप्त हो गई।

इस होनहार बच्चेकी आयुका तेरहवाँ वर्ष था, जब उसे ध्यान हुआ कि सोनेकी परीक्षाके लिए किसी सुगम उपायका अनुसन्धान होना चाहिए। स्कूलमें उसे विज्ञानकी कितनी शिक्षा मिली होगी, इसका अनुमान आजकलके मिडल श्रेणीके विद्यार्थियोंके ज्ञानसे किया जा सकता है। इस बालकको वैज्ञानिक अनुसन्धानकी प्रबल इच्छा थी, इसीलिए उसने सोनेकी परीक्षाके साधनोंपर विचार करना प्रारम्भकर दिया। माता–पिता बालककी इन क्रियाओंको सर्वथा निरर्थक और धनका अपव्यय समझते थे। वे प्रायः उसे झिड़का करते थे कि तुम अपने जीवनको खराबकर रहे हो। अन्तमें इन बाधाओंसे तंग आकर शम्भुनाथ जीको अठारह वर्षकी आयुमें एक दिन घरसे निकलना पड़ा। उसके सामने दो मार्ग थे। प्रथम मार्ग था माता–पिताके आज्ञानुसार स्कूलमें चले जाना; और दूसरे मार्गके

---

* *विशाल भारत*, सितम्बर 1932

अनुसार स्कूली निरर्थक पढ़ाईसे दूर रहकर अपनी वैज्ञानिक क्रियाओंको सफल बनाना। दूसरा मार्ग था अत्यन्त कण्टकाकीर्ण, पर हमारे दृढ़व्रती बालक वैज्ञानिकने इसी मार्गका अवलम्बन अपने लिए श्रेयस्कर समझा।

घरसे निकलते समय शम्भुनाथ जीके पास केवल आठ आने पैसे थे। स्थानीय डिस्ट्रिक्ट आफिसमें उन्हें 10 रु. मासिकपर लेखकका काम मिल गया। इस पद पर वे लगातार छै वर्षों तक कार्य करते रहे। अपनी आयका अधिकांश वे वैज्ञानिक क्रियाओंके लिए ही व्यय करते थे। एक बार उन्होंने वेतनवृद्धिके लिए उच्च अधिकारियोंसे प्रार्थनाकी। वहाँसे असन्तोषजनक उत्तर मिलनेपर उन्होंने नौकरी छोड़कर अपनी बुद्धिसे जीवन–निर्वाह करनेका निश्चयकर लिया।

अमृतसरमें उन दिनों "मूस" नामक एक धातुका मिश्रण (alloy) विकास करता था। इसमें ताँबा, सोना तथा चाँदीका सम्मिश्रण था। ला. शम्भुनाथने इसे खरीदकर कापर नाइट्रेट और गन्धकके प्रभावसे हल करके हीरा कसीस निकालकर बेचना प्रारम्भ कर दिया। यह उनके वैज्ञानिक अनुसन्धानका प्रथम सफल प्रदर्शन था। इस क्रियासे जो सोना तथा चाँदी अलग होते थे उन्हें भी बेचकर वे इस व्यापारको खूब बढ़ाने लगे। अमृतसरके हरि सिंह नामक एक सज्जनने उनसे बहुतसा सामान खरीदा, जिससे उन्हें पर्याप्त लाभ पहुँचा।

उन्हीं दिनों अमृतसरमें एक विशेष प्रकारकी धातुके बर्तनोंका अधिक प्रचार था। ला. शम्भुनाथने टूटे–फूटे बर्तनोंको खरीदकर उनमेंसे भी कापर नाइट्रेट और गन्धकके तेजाबकी सम्मिलित क्रियासे हीराकसीस और जिंक सल्फेट बनाना प्रारम्भकर दिया।

अपने वैज्ञानिक अनुभवके क्षेत्रोंको विस्तृत करनेके लिए व्यय करनेमें वे सदैव निस्संकोच रहते थे। इसी कारण अनेक बार उनका जीवन–निर्वाह कठिन हो जाता था। ऐसे कई अवसरों पर उनकी धर्मपत्नीने अपने आभूषण बेचकर परिवारका पालन किया। अन्तमें उनके सतत उद्योगसे सोनेकी परीक्षाके लिए, अर्शामीदस[1] के प्रसिद्ध वैज्ञानिक सिद्धान्तके अनुसार तराजू, बनानेमें सफलता प्राप्तहो गई। इसे उन्होंने गोल्ड टेस्टिंग बैलेंस (Gold testing balance) के नामसे 1890 में पेटेंट कराकर बेचना प्रारम्भ किया। तराजू इतना सूक्ष्म बना कि थोड़ीसी भी मिलावटकी परीक्षा बड़ी सुगमतासे हो सकती है। इस 'गोल्ड टेस्टिंग बैलेंस' के बनानेका अधिकार ला. नत्थूराम ओसवालने 8000 रु. में उनसे खरीदकर उनकी आर्थिक समस्याको सुलझानेमें बड़ी सहायताकी। इस सफलतासे प्रेरित होकर वे फिर वैज्ञानिक अनुसन्धानमें तल्लीन हो गये। शोरेके तेजाबको बनानेके लिए वे पोटाशियम–नाइट्रेट (कलमी सोरा) और गन्धकके तेजाबकी क्रियाका संशोधन करने लगे। इस विधिसे तेजाब तो बन जाता था, किन्तु बर्तन भी टूट जाता था। यह एक बड़ी समस्या खड़ीहो गई। तब उन्होंने शीशे और इनामेलके बर्तनोंका भी व्यवहार किया, किन्तु सफलता न हो सकी। अन्तमें उन्हें यह सूझा कि ताँबेके बर्तनके अन्दर सोनेकी पतली चादर लगाकर देखा जाये। इस उद्देश्यके लिए तीस तोला सोना खरीदकर बर्तन बनाया गया, और तेजाब बनाना प्रारम्भ किया। जब तेजाब बना, तो उसमें सोना भी धुलना प्रारम्भ हो गया। तीस तोलेमें से केवल छै तोला सोना बाकी मिल सका। नवयुवक शम्भुनाथको यह आर्थिक धक्का भी निराश न कर सका। अन्तमें आगरेके पत्थरसे सब सामान बनाकर शोरेका तेजाब बनाना प्रारम्भकर दिया। गत महायुद्धके कारण इस तेजाबकी माँग बहुत बढ़ गई, और ला. शम्भुनाथ जी का व्यापार भी खूब चमक उठा। तेजाबके साथ ही उन्होंने कई प्रकारकी धातुओंके भस्म तथा लवण (Oxides and Salts) भी बनाने प्रारम्भ किये।

काम इतना बढ़ गया था कि उन्हें नगरसे बाहर वर्तमान स्थानपर आना पड़ा। यहाँ आकर उन्होंने तेजाबके कारखानेके साथ ही जिस्तके रंग, जिन्हें पिगमेंट (pigment) कहा जाता है, बनाने

शुरू कर दिये। इस कामको करनेमें उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया और सिरदर्द होने लगा। अन्ततोगत्वा इसी कारणसे रक्त विषाक्त (lead poisoning) हो गया, और सन् 1924 में इस साधारण शिक्षाप्राप्त, किन्तु सफल वैज्ञानिकका स्वर्गवास हो गया।

रासायनिक प्रयोगोंके अतिरिक्त उन्हें जादूके खेल (Magical Tricks) और शतरंजका भी बहुत शौक था। धार्मिक ग्रन्थोंका स्वाध्याय वे नित्यप्रति किया करते थे और प्रायः आर्यसमाजके सुप्रसिद्ध विद्वान धर्मवीर पं. लेखराम जीके साथ जाकर विधर्मियोंसे शास्त्रार्थ करते थे।

ला. शम्भुनाथ जीके चार पुत्र हैं। उनके नाम क्रमशः ला. बोधराज जी, ला. सोमराज जी, ला. मुलखराज जी और ला. हंसराज जी है। पिताके योग्य पुत्रोंने कार्यको भली भाँति संभालकर इतना उन्नत किया है कि अब एक नया कारखाना बहुत विस्तृत रूपमें बनाना पड़ा है। इस समय गन्धक, नमक तथा शोरेके तेजाबके सिवा निम्नलिखित पदार्थ भी विशुद्ध विषयमें बनाये जा रहे हैः–

1. कॉपर सल्फेट (Copper sulphate)
2. फ़ेरस सल्फेट (Ferrous Sulphate)
3. एपसम साल्ट (Epsom Salt)
4. टिटकरी (Alum)
5. ग्लाबर साल्ट (Glowber salt)
6. फिनाइल इत्यादि

इस समय यह कारखाना उपर्युक्त बस्तुएँ बनाकर देशकी बड़ी भारी माँगको पूरा कर रहा है। इसे अधिक उन्नत बनानेके लिए इसमें आधुनिक विज्ञानके अनुसार परिवर्तन होना आवश्यक है।

---

1. Archemedes

भारत में मानव विकास*

त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन

विज्ञानविद् ज्योतिषियोंका मत है कि, पचास खर्ब वर्ष पूर्व ग्रह–उपग्रहों–सहित सूर्यका एकही पिण्ड था। उस वक्त सूर्य और भी अधिक गर्म था। पृथिवी तथा मंगल आदि ग्रहोंकी निर्मापक सामग्री भी वाष्प रूपमें होनेके कारण सूर्यपिण्ड उस समय बहुत दूर तक फैला हुआ था। यद्यपि उस समय सूर्य आजसे बहुत अधिक बड़ा था; तथापि इसके कारण सारा आकाश आच्छादित न था। रातको दिखाई पड़ने वाले अगणित तारोंमें भी करोड़ों तारे उस समयके सूर्यके बराबर हैं; किन्तु क्या उनसे आकाश आच्छादितहो गया है? यह तारे तो आकाशमें वैसे ही हैं, जैसे विशाल समुद्रमें तैरता एक जहाज़। सूर्यके पासवाले भागके अतिरिक्त उस समय भी आजकी ही तरह सारा आकाश अत्यन्त शीतल था। किसी समय आकाशके किसी दूर वाले भागसे एक विशाल तारा सूर्यकी ओर अग्रसर होने लगा। जैसे–जैसे वह सूर्यके अधिक समीप होने लगा, वैसे–वैसे सूर्यके वाष्पसमुद्रमें ज्वार–भाटा उठने लगा। समीपतम स्थान पर पहुँचनेके समय यह ज्वार–भाटा करोड़ों मील लम्बी सूर्यकी पूँछ बन गया। जब सूर्यसे वह तारा दूर जाने लगा, तब, जिस प्रकार ज्वारके वेगमें कितना ही फेन समुद्रसे बाहर आ जाता है, वैसे ही वाष्पमय सूर्यका कुछ अंश अपने प्रधान पिण्डसे अलग फेंक दिया गया। यह फेंका हुआ भाग अब सूर्यपिण्डके चारों ओर घूमने लगा। यही सौर–मण्डलका ग्रह हुआ। करोड़ों वर्षोंके अन्तर पर कितनेही ऐसे तारे सूर्यके समीप पहुँचे; और, इस प्रकार अनेक सौर–ग्रहोंकी सृष्टि हुई। दो अरब वर्ष पूर्व उक्त प्रकारसे ही पृथिवी सूर्य–पिण्डसे अलग हुई (वैसे ही किसी आकाशीय ताराके कारण पृथिवीका एक भाग अलग होकर चन्द्रमाके रूपमें हो गया)।

पृथिवी पिण्डकी उष्णता निकल–निकलकर अब अपने चारों ओरके शीतल आकाशमें फैलने लगी। धीरे–धीरे ऊपरी भाग पर पपड़ी (पर्पटी) पड़ने लगी, जिसकी चारों ओर उष्णतासे बने वायु–मण्डल और मेघ–मण्डल मंडराने लगे। कभी–कभी वर्षा भी होती थी; किन्तु उस तप्त पपड़ी पर वह विलीन हो जाती थी। बीच–बीचमें पृथिवी थर्रा उठती थी और पपड़ी टूट–फूटकर ऊँची नीची भूमि तैयार करती थी। जब पृथिवीका तापमान कुछ कम हुआ, तब वर्षाका जल उन खण्डोंमें ठहरने लगा। यही आदिकालीन समुद्र हुआ; जो खारा न था। यह पपड़ी वाले पत्थरही आज स्फटिक आदि स्तररहित चट्टानें हैं। पीछे (किन्तु, जीवकल्पसे पूर्व) आस–पासके नँगे पहाड़ोंसे घुलकर जो तह–पर–तह कीचड़ जमने लगी, वही आजकल अजीव संस्तर पाषाण है। प्रथम समुद्रका जल बहुत गर्म था। जब लाखों वर्ष बाद पृथिवीका ऊपरी भाग कुछ और ठण्ढा[1] हो गया, तब उसमें केंचुए जैसे अस्थि–रहित जीव पैदा होने लगे। जीवका विशेष गुण है भीतरसे वृद्धि तथा प्रसव।

---

* *गंगा पुरातत्वांक*, जनवरी 1933

भूगर्भशास्त्री पृथिवीपर जीवकी उत्पत्ति हुए 30 करोड वर्ष मानते हैं, जिसे जीवकल्प कहा जाता है और इससे पहलेके समयको अजीव कल्प (Azoic)। धीरे–धीरे तापमान भी कम होने लगा। मृत जीवों तथा धुलकर आयी कीचड़के सम्मिश्रणसे अब और अधिक विकसित जीवोंका खाद्य तैयार होने लगा, जिससे केंकड़ा आदिकी तरह जन्तुओं तथा निम्न श्रेणीके वनस्पतियोंकी सृष्टि हुई। जब हम इस 30 करोड़ वर्ष पूर्व आरम्भ हुए पुराण जीवकल्पसे चलकर 20 करोड़ वर्ष पूर्व आरम्भ हुए मध्य जीवकल्पमें आते हैं, तब पृथिवीपर गोधा और मगरकी जातिके विकराल सरीसृप दिखायी पड़ते हैं। पृथिवीके गर्भसे सौ सौ फीट लम्बी प्रस्तरीभूत इनकी हड्डियाँ मिली हैं। उसी समय पृथिवीके दलदलमें करीर जैसे पत्तेरहित विशाल वृक्ष पैदा हुए, जिनको ही आज हम कोयलेके रूपमें पाते हैं।

सरीसृपोंके कालके अन्तमें पृथिवीके जलवायुमें कुछ इस प्रकारका भयंकर परिवर्तन हुआ कि उनकी अधिकांश जातियाँ नष्ट हो गयीं। लेकिन उस समय वृक्ष समुद्रके पास वाली शुष्क भूमिमें भी पैदा होने लगे थे। उधर जल, स्थल दोनोंमें निवास करने वाले प्राणियोंसे एक ओर लोमधारी, स्तनधारी जन्तु और दूसरी ओर पक्षी उत्पन्न होने लगे थे।

वनस्पतियोंमें विकास होते होते जैसे–जैसे भूमिके नीचेसे जल ग्रहणकर हरे–भरे रहने वाले वृक्ष जलके तटसे दूर तक फैलते जा रहे थे, और जैसे–जैसे प्राणियोंके शरीरपर शीत उष्णके सहनके लिये विशेष लोम, पँख आदि निकलते आ रहे थे, वैसे–ही–वैसे भूचालोंसे समुद्रके गर्भकी ऊपर उठ आयी, मृत्तिकासे युक्त भूमि पर वह जलसे दूर–दूर फैलते गये।

वैज्ञानिकोंका कहना है कि, इन्हीं लोमधारी, सस्तन प्राणियोंमें कुछ अपने शत्रुओंसे बचनेके लिये वृक्षोंपर चढ़नेका यत्न करने लगे। सैकड़ों पीढ़ियोंके सतत अभ्याससे उनके हाथ–पैर वृक्षों पर चढ़नेके उपयोगी हो गये। इस प्रकार वृक्षारोपणमें पटु वानरोंकी सृष्टि हुई।

हम सरीसृपोंके युगसे नवजीव कल्पमें होते नवजीवकी उषा (Eocene) युगमें प्रवेश कर चुके अल्प–नवजीव–उषाके समय भारतमें विन्ध्याचलसे दक्षिणवाला भाग ही समुद्रतलके बाहर था। हिमालय, तिब्बत और सारा उत्तरी भारत उस समय समुद्रके गर्भमें निमग्न था। मध्य– नवजीव–उषा युग (miocene) में प्रचण्ड भूचालोंका ताँता बँध गया, जिसके फलस्वरूप हिमालय पृथिवीके गर्भसे ऊपर उठ आया। समुद्र–गर्भसे निकलनेके कारण हिमालयकी ऊँची चोटियों तक पर आजकल सामुद्रिक जन्तुओंकी प्रस्तरीभूत आस्थियाँ मिलती हैं।

भूचालने सीधी तौरसे भूमिको नीचेसे ऊपर नहीं उठाया था, इसीलिये अजीवकल्पसे समुद्रके गर्भमें तह–पर–तह जमी मिट्टी सीधे एकके ऊपर एक न होकर आँड़े–बेड़े गयी। यही कारण है, जो हम पहाड़ोंमें पत्थरोंकी तहोंको अस्त–व्यस्त पाते है। हिमालयसे वर्षाका जल अब समुद्रकी ओर बहने लगा। यही जल–मार्ग नदियाँ बनीं। लाखों वर्षों तक नदियाँ अपने साथ अपार मृत्तिका–राशिको समुद्रमें पाटती रहीं। उधर इतस्ततः होने वाले भूचालोंने भी समुद्रकी स्थिति पर प्रभाव डाला। इस प्रकार गंगा आदि नदियोंने लाखों वर्षोंके परिश्रमके बाद उत्तरी भारतके मैदानको समुद्रासुरके जालसे बाहर निकाला।

जिस समय उत्तरी भारतका मैदान बनाया जा रहा था उसी समय हिमालयके निम्न भाग सिवालिक (सपादलक्ष) में नाना जन्तुओंकी वृद्धि हो रही थी। इसमें गोरीला आदि कितनेही आजकल वहाँ न मिलनेवाले प्राणी भी थे, जिनकी प्रस्तरीभूत हड्डियाँ (Fossil) आज भी वहाँ मिलती हैं। नवजीगेण युगके इस भागको प्राणियोंकी अधिकताके कारण, बहु–नवजीवोषा कहते हैं, जो कि प्रायः तीस लाख वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ था। इसके अन्तिम भाग या आजसे 4–5 लाख वर्ष पूर्व सिवालिकमें ऐसे वनमानुष थे, जिनकी अस्थियोंसे पता लगता है कि वह मानवताकी ओर

अग्रसर हो रहे थे। तीन–चार लाख वर्ष पूर्व, अतिशय नवजीवोषा युगमें, हिमालयका नीचे वाला भांगर प्रदेश बन रहा था। उसमें मिली प्रस्तरीभूत अस्थियोंसे पता लगता है कि, वहाँ कितनेही इस प्रकारके घोड़े, गाय, गैंड़े, दरियाई घोड़े आदि रहते थे, जिनकी जाति वहाँ लुप्त हो गयी। इसी समय सिवालिकमें मनुष्य और वनमानुषके बीचकी स्थितिके प्राणी रहते थे। यह वही समय था, जिस समय कि, जावाका नर–वानर (Pithecanthropus erectus) निवास करता था।

दो लाख चालीस हजार वर्ष पूर्व पृथिवी पर एक भंयकर हिमप्रलय उपस्थित हुआ। इसके कारणके लिये वैज्ञानिक कई अनुमान लगाते हैं। कोई कहते हैं, इसी समय सौरमण्डलसे बाहरका कोई तारा पृथिवीके समीपसे हो कर गुजरा, जिसके कारण पृथिवीकी भ्रमणधुरी तिरछी हो गयी, जिससे ;तुओंमें फर्क पड़ गया (अथवा सौरजगत्‌ही घूमते–घूमते आकाशके किसी अत्यधिक शीतल प्रदेशमें पहुँच गया)। अन्य वस्तुओंसे जलमें यह विशेषता है कि जहाँ अन्य वस्तुएँ सर्दीकी अधिकताके कारण सिकुड़ने लगती हैं, वहाँ जल अतिशय सर्दीके कारण जमता जरूर है; किन्तु उससे वह सिकुड़नेकी जगह फैलने लगता है। यदि आज पृथिवीके सारे समुद्र जम जायँ, तो उनका जल बर्फ बनकर, पृथिवीपर सब जगह सैकड़ों हाथ मोटा होकर, फैल जाय। उस समय पृथिवीकी भ्रमण–धुरीके तिरछी हो जानेसे सर्दीकी अधिकता हो गयी और उत्तरी गोलार्द्धमें जहाँ बर्फकी टोपी उत्तरी ध्रुवसे बढ़ती समस्त उत्तरी यूरोप; और, न्यूयार्क तक उत्तरी अमेरिका, बारहों मासके लिये हिमसे ढक गये, वहाँ दक्षिणी गोलार्द्धमें टस्मानिया, न्यूजीलैंड आदिकी भी वही दशा हुई। भारतमें हिमालयकी हिमानियाँ (ग्लेसियर) जो आज दस हजार फीटसे नीचे कहीं नहीं हैं, पोठवार (कश्मीर) में दो हजार फीट (समुद्र तल से ऊपर) तक चली आयीं। उस समय कलकत्तेमें लंदन जैसी सर्दी पड़ने लगी थी। कारण कुछ भी हो, इस हिमयुगने सारे भूमण्डलपर अपनी अचल छाप छोड़ी है।

प्रथम हिम–युग हजारों वर्षों तक रहा। फिर दूसरा हिम–युग आया। एक लाख वर्ष पूर्व तीसरा हिम–युग और पचास हजार वर्ष पूर्व चौथा हिम–युग आया। इन हिम युगोंने पृथिवीके प्राणी जगत्‌में घोर उथल–पुथल उत्पन्नकी। कई प्राणि–जातियाँ, इसके कारण, पृथिवी तलसे सदाके लिये विलुप्तहो गयीं। जिन्होंने आत्मरक्षाके लिये शरीर और मनका पूरा उपयोग किया, वह साधन–सम्पन्न बनकर अपने अस्तित्वको कायम रखनेमें सफल हुईं। कोई एक लाख वर्ष पूर्व, अन्तिम हिमयुगसे बहुत पूर्व, यूरोपमें एक प्रकारकी मनुष्य–जातिका पता लगता है, जिसे हाइडेलबर्गीय मनुष्य कहते हैं। वैसे गोरीला और बबून भी डंडे या पत्थर फेंककर मारते देखे जाते हैं; किन्तु हाइडेलबर्गीय मनुष्य तोड़–फोड़ कर तेज बनाये ऊबड़ खाबड़ पत्थरके हथियारोंका प्रयोग किया करता था। पचास हजार वर्ष पूर्व चतुर्थ हिमयुगके समय, यूरोपमें नियाण्डर्थल मनुष्य–जातिका पता लगता है। सर्दीकी अधिकताके कारण इसे पहाड़ोंकी प्राकृतिक गुफाओंमें शरण लेनी पड़ी थी। यह पत्थर और लकड़ीके हथियारोंका प्रयोग करता था। सर्दीसे बचनेके लिये जहाँ वह आगका प्रयोग जान गया था वहाँ मारे हुए जानवरोंकी खालोंको भी लपेटता था। इसके शरीरकी बनावटसे मालूम होता है कि अभी यह वाणीका प्रयोग करना बिल्कुल ही नहीं, अथवा अत्यल्प, जानता था। अभी इसे धर्म, देवता आदिकी कल्पना नहीं हुई थी। हाँ, उस समय लँगूरोंकी भाँति सबसे अधिक शक्तिशाली मनुष्य सभी स्त्रियों (माँ, बेटी, बहन तक) का स्वामी होता था। पुत्र युवावस्था तक पहुँचते–पहुँचते या तो कुटुम्ब–पति द्वारा मार डाला जाता था अन्यथा उसे जान बचाकर अपने जैसे भगोड़ोंकी जमायत[1] में शामिलहो जाना पड़ता था। कुटुम्बपतिकी शक्ति जैसेही क्षीण होने लगती थी, वैसेही उसका काम तमामकर दूसरा बलशाली पुरुष उसकी जगह ले लेता था। इसी कारणसे उस समय कुटुम्बपति चालीस वर्षसे अधिक शायदही जी पाता था।

जिस समय यूरोपमें नियांडर्थल मनुष्य गुफाओंमें निवास करता था, उसी समय दक्षिणी

भारतके कड़पा, गुन्तूर, कर्नूल आदिकी गुफाओंमें मनुष्य वास करता था। दोनोंकी स्थितिमें फर्क यह था कि जहाँ चतुर्थ हिमयुगके कारण यूरोपमें असह्य सर्दी पड़ रही थी, वहाँ दक्षिण भारतमें सह्य सर्दी पड़ती थी। चालीस हजार वर्ष पूर्वसे पचीस हजार वर्ष पूर्व तक धीरे धीरे यूरोपसे हिमकी कठोरता जाती रही; भारतमें भी इसका प्रभाव उसीके अनुसार हुआ।

पचीस हजार वर्ष पूर्व यूरोपके स्पेन आदि देशोंमें मनुष्योंकी एक जाति बसती थी, जिसे क्रोमेग्नन कहते हैं। नियांडर्थल मनुष्य उस समय भी मौजूद था; तो भी दोनोंका रक्तसे मिश्रण न होना शायद नियांडर्थलकी कुरूपता और वीभत्सताके कारण हो। क्रोमेग्नन मनुष्य शिकारी था। एक प्रकारके छोटे घोड़े उसके प्रधान खाद्य थे जिनके लाखों कंकाल सोलुत्रा आदि स्थानोंमें मिले हैं। स्पेनकी गुफाओंमें इनके बनाये अनेक चित्र भी मिले हैं। ये चित्र बहुत ही अँधेरी जगहमें हैं, जिससे पता लगता है कि ये दीपकका प्रयोग करना जान गये थे। यह मुर्देको दबाया करते थे। मिट्टीके खिलौने बना लेते थे; किन्तु बर्तन बनानेका ज्ञान न था। इससे अनुमान होता है कि, अभी माँस आदि भोजन पकाकर ये खाना नहीं जानते थे। जिस समय क्रोमेग्नन जाति दक्षिण पश्चिमीय यूरोपमें वास करती थी, उसी समय मिर्जापुरके सिंगनपुर तथा दूसरे देशोंमें भी आदमी निवास करते थे। इन्होंने भी अपनी गुफाओंमें अनेक चित्र और छिले पाषाणोंका हथियार छोड़ा है। दोनोंके चित्रोंमें जंगली जानवरों तथा शिकारके दृश्यही मिलते हैं जिनसे मालूम होता है, अभी इन्हें देवताओं और धर्मकी कल्पना नहीं हुई थी। शायद अभी यह भाषाको विकसित न कर सके थे। भाषाके बिना परम्परा और पुरानी कथाओंको एक पीढ़ीसे दूसरी पीढ़ीमें कैसे पहुँचाया जा सकता है? परम्परा और कथाएँ ही तो देवताओं और धर्मकी सृष्टि करती हैं।

बारह हजार वर्ष पूर्व मनुष्योंमें एक नयी प्रगति दिखायी पड़ती है। अब मनुष्य छिले पत्थरोंके हथियारके स्थानपर घिसकर चिकने किये पत्थरोंके हथियारोंका बर्ताव करता था। इसी कारण इस युगको नव–पाषाण (neolithic) युग कहते हैं। इस युगके साथ भूरे रंगकी इबेरियन जाति (द्रविड़–जाति, जिसकी कि, एक शाखा कही जाती है) इस युगमें अगुआ है। कहते हैं, इस जातिका मूल स्थान वही प्रदेश था, जहाँ आज भूमध्यसागर है। चतुर्थ हिमयुगसे पूर्व यह प्रदेश बहुतही हरा, दो विशाल झीलोंका सुन्दर देश था। हिमके अधिक पिघलनेसे अटलांटिक महासागर जलतल भूमध्य–प्रदेशके तलसे बहुत ऊँचा होता गया। पानीने अपनी शक्ति लगाकर जिब्राल्टरके जल विभाजकको काट दिया। अब अटलांटिकका जल भूमध्यकी द्रोणीमें पड़ने लगा। जैसे–जैसे समय बीतता गया, जलमार्गकी वृद्धिके साथ जल भी अधिक मात्रामें आने लगा। यह जलप्लावन प्रायः ई. पू. 13000–8000 वर्षों तक होता रहा। भूमध्य–वासी भूरी–जाति तबतक अपनी भाषा को किसी हद तक विकसित कर चुकी थी। उसकी सन्तान जब इस प्रकार अशरणहो उत्तर, दक्षिण और पूर्व की ओर भागने लगी, तब अपने साथ इस जलप्लावनकी कथाको भी लेती गयी। इस जातिने यूरोपमें जाकर क्रोमेग्नन का स्थान ग्रहण किया। सुमेरियन, सिन्धु–उपत्यका (मोहन्जोदारों) के निवासी तथा प्राचीन मिश्री भी सम्भवतः इन्हींकी सन्तान थे। चिकने पाषाणके अस्त्रोंके अतिरिक्त इसने धनुष वाणका भी आविष्कार किया। पहले, जब (ई. पू. 40000 से पूर्व) धातु का पता न लगा था, तब चकमक पत्थर को रगड़कर तेज किये टुकड़े ही वाण के फर के स्थान पर प्रयुक्त किये जाते थे। शिकार में लगातार पहुँच जाने वाले कुत्तोंको इसने पहले–पहल पालतू जानवर बनाया। पीछे गाय, भेंड़ आदिको भी पालतू बनाया। जानवरोंके खानेके लिये घास काटकर जहाँ रख दी जाती थी वहाँ भूमिके सरस होने पर उन्होंने लम्बी–लम्बी घासोंको उगते देखा। इस प्रकार पहले चारेके लियेही कृषिका आरम्भ हुआ। पीछे, अनाजकी उपयोगिताको जाननेपर उसकी खेती भी आरम्भ हुई। खेतीके फन्देमें पड़नेके साथ–साथ मनुष्य वन–वन बिहरने वाले स्वच्छन्द प्राणीके

स्थान पर खूँटेपर बंधे पशुकी तरह एक जगह बस गया। अब पशुपालन कृषक–जीवनका एक गौण अंग रह गया। अपने शत्रुओं (कृषकों और पशु–पालकों, दोनों) से रक्षा पानेके लिये वह ग्राम (झुंड) बनाकर रहने लगा। शत्रुकी संख्याकी वृद्धिके साथ जहाँ अपनी संख्या बढ़ाकर वह नगर बसाने लगा, वहाँ पारस्परिक लड़ाइयोंमें वीर और अधिक समझदार नेताओंका प्रभाव बढ़ते–बढ़ते राजाका पद कायम हुआ। सूसा (ईरान) के ध्वंसावशेषके प्राचीनतम स्तरमें शिकारी–कृषक–जीवन का चिन्ह मिला है। अब तकके निकले ध्वंसावशेषोंको देखकर विद्वानोंका कहना है कि, पहला ग्राम मेसोपोटामियामें बसा था और उसी समय वहीं कृषि भी आरब्ध हुई थी। यह समय ई. पू. 10 हजारके करीब होगा।

बहुत पुराने समयमें, जब अभी उत्तरी–भारतके सहित हिमालय समुद्रके गर्भमें था, दक्षिणी भारत अफ्रीका और लंकाके आगे तक फैले महाद्वीपका एक भाग था। इस बातका प्रमाण उनके पाषाणों और पुराण–जीवधारियोंकी प्रस्तरीभूत अस्थियोंकी समानतासे मिलता है। चतुर्थ हिमयुगके बाद जिन मनुष्य–जातियोंका हम भारतमें निवास पाते हैं, उनमें सबसे पुरानी दो जातियाँ हैं–एक हब्शी जैसी (nigroid) दूसरी प्राग्द्राविड़ीय (बेद्दा, मुंडा आस्ट्रेलियन आदि)। आदि चन्नल्लूर (मद्रास) में मिली खोपड़ीकी कपाल–संस्थितियाँ बेद्दा लोगों जैसी हैं। चित्रोंके सादृश्य आदिके देखनेसे सिंगनपुरके चित्रकार भी उक्त आस्ट्रेलियन आदि जातियोंसे सम्बन्ध रखते मालूम होते हैं। नव–पाषाणकाल (10,000 ई. पू. से पहले) यही दो जातियाँ भारतमें बसी मालूम होती हैं। नवपाषाणयुगमें भूमध्यदेशीय भूरी जातिका मालूम होता है, स्पेन, मिश्र, मेसोपोटामिया, ईरान और भारतसे चीन तक दौर–दौरा था। चिकने पाषाणके हथियारोंके अतिरिक्त इसी जाति द्वारा सूर्य–नाग–पूजा तथा स्वस्तिकका चारों ओर प्रचार हुआ था। पाँच हजार वर्ष पूर्व यहीं सिन्धु उपत्यकाके मोहन्जोदारों तथा हरप्पा जैसे नगरोंमें रहा करती थी। विद्वानोंका कहना है कि यही वह असुर–जाति थी, जिससे 2000 ई. पू. में भारत पर हमला करने वाले आर्योंका संघर्ष हुआ; और आजकलकी द्रविड़ तथा उत्तरीय भारतकी भर आदि जातियाँ उसी की सन्तानें हैं। मालूम होता है भूमध्य देशीय भूरी–जाति[2], जलप्लावनके समय बहुत अधिक संख्यामें भारतमें नहीं आयी थीं; इसीलिये उसपर बहुत शीघ्र मुँडा और हब्शी रंगकी छाप पड़ गयी। तभी तो असुरजातिको सुचतुर नागरिक मानते हुए भी आगन्तुक आर्योंने "चिपटी नाकवाली" तथा कृष्णकाय कहा। इस द्रविड़जातिके सुसभ्य होनेका पता तो इससे भी लगता है, जो उसने छोटानागपुरके प्रागद्राविड़ीय ओरावोंको उनकी भाषाके स्थानपर अपनी भाषा बोलनेको बाध्य किया; जैसा कि पीछे प्रागद्राविड़ीय भीलों एवं द्राविड़ भरोंको आर्य भाषा भाषी बनाकर आर्योंने किया। पाँच हजार वर्ष पूर्व द्रविड़–सभ्यता कहाँ तक उन्नत थी, यह मोहन्जोदारो और हरप्पाके सम्बन्धमें अन्यत्र प्रकाशित लेखोंसे मालूम होगा। जिस समय दक्षिणी यूरोपमें बास्क लोगोंके पूर्वज, क्रेटमें वहाँके सभ्य निवासी मिश्रमें प्राचीन मिश्री, मेसोपोटामियामें सुमेरीय लोग निवास करते थे; और अन्तिम तीन जातियाँ उस समयकी दुनियामें सबसे अधिक सभ्य जातियाँ थीं, उसी समय मध्य एशियासे काले सागरके उत्तरी तट तक शिकार और पशुचारण करती एक जाति निवास करती थी, जिसे ऐतिहासिक लोग आर्यके नामसे पुकारते हैं। यूरोप निवासी अमेरिका, अफ्रीका , और आस्ट्रेलिया आदिकी गोरी जातियाँ; ईरानी, अफगान तथा उत्तरी भारतके निवासी इन्हीं आर्योंकी सन्ताने हैं। इस आर्य जातिकी उत्पत्ति कैसे हुई, इसमें कई मत है। कोई–कोई मानते हैं कि प्राचीन गोरी 'आर्य' भूरी, 'सुमेरीय–द्रविड़ आदि' पीली 'मंगोल' काली 'हब्शी' और दाक्षिणात्य 'बेद्दा, मुँग आदि' सभी मनुष्य जातियाँ एकही मनुष्य जोड़ेकी सन्तानें हैं; और लाखों वर्षों तक भिन्न–भिन्न जलवायुओं एवं भिन्न–भिन्न परिस्थितियोंमें रहनेके कारण उनमें इतना फर्कहो गया। उनके मतसे मनुष्य–सृष्टि पृथ्वीके एक स्थान पर हुई थी; किन्तु अधिकांश विद्वान् चारों–पाँचों मनुष्य जातियोंके मूल पुरुषोंको अलग अलग मानते हैं।

पाँच हजार वर्ष पूर्वके आर्य किस अवस्थामें थे, इसका कुछ पता हमें भारतीय आर्योंके पुरातन ग्रन्थ वेद, ईरानी आर्योंके पुरातन ग्रन्थ अवस्ता और सभी आर्योंके समान कथानकोंसे कुछ-कुछ मिलता है। गायों, भेड़ोंके अतिरिक्त ये लोग घोड़ोंको भी पाला करते थे। घोड़ोंका पालन यह प्रथम सवारीके लिये न करके दही-दूधके लिये करते थे, जैसे कि दक्षिण-पूर्वी रूसके लोग आज भी अधिकतर कूमिसके लिये उन्हें पालते हैं। सहस्राब्दियों तक चरवाहोंका जीवन बिताकर ई. पू. 2500 में इनका एक दल हिरात (उत्तरी अफगानिस्तान) के आस-पासके प्रदेशमें आ गया। दूसरा दल अपना कुछ भाग पामीरसे उत्तर पश्चिमके प्रदेशमें (जहाँ कि, पुराने तुखारी आर्य बसते थे) छोड़कर रूसके रास्ते पश्चिमकी ओर बढ़ता गया। संख्या-वृद्धिके साथ उन्हें नये चारागाहोंकी खोजमें और भी आगे बढ़ना पड़ा। हिरातमें रहते हुए, मालूम होता है, आर्योंमें फूट पड़कर उनके दो दल हो गये थे। एककी सन्तान वैदिक आर्य थी और दूसरेकी ईरानी आर्य। ई0 पू0 2000 के करीब वैदिक आर्योंकी एक शाखा ईरानके रास्ते मेसोपोटामिया पहुँची और वहाँ सभ्य सुमेरीय जातिको परास्तकर उसने अपना अधिकार जमाया। यह मित्तन्नी (आर्य)-जाति, जिसने सभ्य दुनियामें सर्वप्रथम घोड़ेका प्रवेश कराया, ईरानी आर्योंके अन्तर्गत न होकर वैदिक आर्योंकी शाखा थी, यह मित्तन्नी (Mittani) राजा मत्ति-उ अज़ा और सेमेटिक जातिके हित्ताइत (Hittita) राजा सुन्बि-लु-लि उमाके बोग़ज़कोई (boghaz-kvi), (मेसोपोटामिया), से प्राप्त अभिलेखसे मालूम होता है, जिसमें ईरानी आर्योंके असम्मत इन्द्र आदि वैदिक देवताओंका सम्मानपूर्वक नाम आया है। जान पड़ता है, जिस समय मित्तन्नी आर्य मेसोपोटामियाकी ओर गये, उसके बादही ईरानी आर्योंके पूर्वज भी पश्चिमकी ओर चल पड़े।

भारतीय आर्य जब सुवास्तु (स्वात, अफगानिस्तान) की उपत्यकामें पहुँचे, तभीसे सिन्धु उपत्यकाकी सभ्य जातिसे उनका मुकाबिला शुरू हुआ। इन्हीं दोनों जातियोंका संघर्ष हमारे वेद और पुराने साहित्यमें देवासुर-संग्रामके नामसे प्रसिद्ध है। असुर (द्राविड़) यद्यपि अधिक चतुर और सभ्य थे; तो भी हजारों वर्षोंसे नागरिक जीवन बिताते हुए वह अधिक व्यसनी तथा सैनिक प्रकृतिसे हीनहो गये थे। यहीं कारण था कि, वह अपने सैकड़ों किलेबन्द नगरों और शिक्षित सैनिकोंके होते हुए भी, अशिक्षित किन्तु लड़ाकू, आर्यों द्वारा पराजित हुए। इतिहास में खानाबदोश असभ्य जातियाँ अक्सर विजयी होते देखी गयी हैं।

विजयी होकर अब आर्य पराजित द्राविड़ोंके संसर्गमें आकर धीरे-धीरे सभ्य बननेके साथ अपने सरल और परिश्रमी जीवनको त्यागकर उनके आराम-पसन्द जीवनको अपनाने लगे। असुरोंके पुरोहितोंकी नकलपर इन्होंने भी अपनेमें ब्राह्मण पुरोहितोंकी सृष्टिकी। युद्धके बाद जब दोनों जातियाँ सिन्धु उपत्यकामें बस गयीं, तब विजेता और पराजितके झगड़ेने एक दूसराही रूप धारण किया। आर्योंने कृष्ण योनि (काली जाति)[3] चिपटी नासिकावाली या निर्णास, खर्वकाय आदि कहकर पराजितोंसे घृणा करनी शुरूकी। आजकलके अमेरिकाके गोरों और हब्शियोंकी भाँति उन्होंने वर्ण (रंग) का प्रश्न उठाकर अनार्योंसे व्याह-शादीकी कड़ी मनाहीकर दी। तो भी इसका मतलब यह नहीं कि, आर्य अपने रक्तको शुद्ध रख सके। यह होना सम्भव ही कैसे था, जब कि, उनके घरोंमें अनार्य दासोंका प्रवेश निरबाध होता था और उनके आस-पास अनार्योंकी बस्तियाँ अधिक थीं। मोहन्जोदारोकी खोदाईमें लोहेका कहीं पता नहीं है। आर्योंके पुराने साहित्यमें भी लौह और आयस शब्द ताँबे और लोहे, दोनोंके लिये प्रयुक्त हुए हैं; इसीलिये केवल लोहेके लिये कृष्ण-आयस और केवल ताँबेके लिये ताम्र-लौह शब्दोंको गढ़ना पड़ा। लोहेका अविष्कार ई. पू. 1000 ई के आस-पास हुआ था। उससे पूर्व ताँबे और पीतलके ही हथियार सिन्धु, मेसोपोटामिया, मिश्र, क्रेत, सभी जगह व्यवहृत होते थे। आर्योंके आनेसे पूर्वही सिन्धु उपत्यकाके लोग एक प्रकारकी चित्रलिपिका

व्यवहार करते थे। उसके बादकी किसी लिपि (जो सम्भवतः हालमें सम्भलपुर जिलेके गाँग–पुरमें मिली शिला–लिपि–सी थी) से आर्योंने अपनी ब्राह्मी–लिपि तैयारकी। भारतमें आनेसे पूर्वही भय और वीर–पूजाने आर्योंके लिये अनेक देवी–देवता पैदाकर दिये थे, सिन्धु उपत्यकाके संसर्गने उनमें कई अनार्य–देवोंकी वृद्धिकी।

हम पहले कह आये हैं कि, अति पुरातनकालमें भारतमें हब्शी और आस्ट्रिक या दाक्षिणात्य प्राग्द्राविड़ीय (मुँडा आदि) जातियाँ वास करती थीं। फिर 7,8 हजार वर्ष पूर्व अल्पसंख्यक, किन्तु सुसभ्य, भूरी द्राविड़ जाति आयी। अब आर्योंके आनेसे एक चौथी जातिका समागम हुआ। इनमें आर्य गौर वर्ण, दीर्घकाय, तुंगनास (ऊँची नाक वाले), अभिनील नेत्र तथा भूरे बालों वाले थे। बाकी तीन जातियाँ बहुत कुछ आपसमें मिल गयी थीं। वह कृष्णकाय, चिपटी नासिकावाली, खर्बदेह, होती थीं। इसके अतिरिक्त उनमेंसे किन्हीं–किन्हींमें अँगूठिया बाल, स्थूल ओष्ठ तथा आगे निकला मुँह–यह हब्शी शरीर–लक्षण भी मिलता था, यद्यपि हब्शी रुधिरकी प्रचुरता न होनेके कारण वह अधिक न दिखाई पड़ता था।

मानव तत्त्वके पण्डितोंने भिन्न–भिन्न जातियोंकी शरीराकृतिकी परीक्षाकर उनमें अनेक भेदक लक्षण या अभिव्यन्जन (Index) पाये हैं। इनमें जो अधिक स्थिर रहता है, उसे व्यवस्थित अभिव्यन्जन कहते हैं; जो नहीं, उसे अव्यवस्थित अभिव्यंजन कहते हैं। (1) लम्बाई (कद), (2) कपाल–संस्थिति और (3) नासिका–संस्थिति ये तीन व्यवस्थित अभिव्यन्जन कहे जाते हैं। इनमें भी पहलेसे दूसरा और दूसरेसे तीसरा अधिक प्रामाणिक है। अव्यवस्थित अभिव्यन्जन हैं शरीर, आँखों और बालोंके रंग तथा आँखों और बालोंके आकार–प्रकार आदि। आर्य–अनार्यके अव्यवस्थित व्यन्जनोंके बारेमें हम पहले कुछ कह चुके हैं। यहाँ उनके व्यवस्थित व्यन्जनोंके बारेमें कुछ अधिक लिखनेकी आवश्यकता है। कपाल–संस्थितिसे मतलब कपालकी लम्बाईको 100 मानकर उसकी चौड़ाईका परिमाण मालूम करना। नासिका–संस्थितिमें भी नाककी लम्बाईको सौ मानकर नथुनोंपर नाककी चौड़ाईका अनुपात लगाया जाता है। लम्बाई नापते वक्त भौंके नीचे नाकके दबे हुए भागसे आरम्भकर नासाग्र तक नापना चाहिये। ठीक परिणामपर पहुँचनेके लिये यह आवश्यक है कि, एक जातिके रक्त–सम्बन्धियोंके सौ–डेढ़ सौ व्यक्तियोंको बिना किसी चुनावके लिया जाय।

नापसे मालूम हुआ है कि, भूमण्डलके आर्योंकी लम्बाई प्रायः 1610 मिलीमीटर (5 फीट 4.4 इंच) से नीचे नहीं होती। कपाल संस्थिति 71°3 और नासिका–संस्थिति 75 से ऊपर नहीं जाती। अनार्योंका कद 1540 मिलीमीटर (5 फीट 1. 6 इंच) तक छोटा तथा कपाल और नाककी संस्थितियाँ क्रमशः 75.9 और 70 से कम नहीं होतीं। आया 'में कपाल–संस्थितिमें गोल सिर भी पाया जाता है, जैसे भारतमें गुजरातियों और मराठोंके सिर तथा दक्षिणी यूरोपकी कुछ जातियोंके सिर; इसलिये बाकी दो बातोंका भी खयाल रखना चाहिये।

विभिन्न स्थानोंके आर्योंके निश्चित कायमान इस प्रकार पाये गये हैं–

कपाल नासिका

	लम्बाई (मिलीमीटर)	कपाल	नासिका
सिन्धु–अफगान	1642 से 1683 तक	80 से 82.8	67.0 से 74.3
सिन्धु–ईरानी	1642–1683	80–82.8	67.8–73.3
ईरान–भूमध्यदेशीय	1633–1745	76.2–79.8	59.6–73.3
अर्मेनियम–पामीर	1660–1708	84.1–89.5	62.6–72
जार्जियन	1646–1658	82.5–84.2	57.6–64.5

उत्तरी भारत के आर्यों के कुछ कायमान देखिये

	लम्बाई	कपाल	नासिका
राजपूत (राजपुताना)	1748	72.4	71.6
पंजाबी	1684	74.2	70.2
सिक्ख	1709	72.7	68.8

इसकी तुलना भारत की कुछ आर्य–भिन्न जातियों से कीजिए

	लम्बाई	कपाल	नासिका
वेद्दा (सीलोन)	1571	75.1	84.18
मुंडा	1589	74.5	89.9
तामिल	1636	75.66	76.67
द्रविड़–हिन्दू	1623	75.2	82.37

हिमालय, बंगाल और आसाम के भारतीयों में काफी मंगोल–रुधिर है। यहां कुछ मंगोल जातियों के अभिव्यंजन देखिऐ–

	लम्बाई	कपाल	नासिका
बुर्यत् (साइबेरिया)	1631	84.5	72.5
लदाखी (कश्मीर)	1634	76.76	75.54
लिप्चा (दार्जिलिंग)	1570	79.9	67.2
जापानी	1585	77.65	72.94

वैदिक आर्योंके बाद भी, सिकन्दरके समय हजारा यूनानी, सीथियन (मग–शक), जाट, गूर्जर, आभीर आदि आर्य–जातियाँ भारतमें आती गयीं और उत्तर–भारतीय आर्योंमें मिलती गयीं। द्रविड़ तथा दूसरी अनार्य–जातियाँ या तो विजेताओंके आज्ञाकारी और दास बनती गयीं अथवा मध्यकी पहाड़ियों और दक्षिणकी ओर हटती गयीं। इन जातियोंके समागमसे रक्त–सम्मिश्रण होना अनिवार्य था। फर्क इतना जरूर रहा कि, पंजाब और राजपुतानेसे हम जितनाही अधिक पूर्वकी ओर बढ़ते हैं, उतनीही हम आर्य–रक्तकी मात्राको कम होते देखते हैं; और द्रविड़–रक्तकी मात्राको बढ़ते देखते हैं। बिहारकी सीमा पारकर बंगाल और आसाममें फिर उत्तरसे आयो मंगोल जातिका रक्त–सम्मिश्रण होने लगता है। यह रक्त–सम्मिश्रण सभी जातियोंमें एक–सा नहीं है। उदाहरणार्थ पूर्वीय संयुक्तप्रान्त और बिहारकी अहीर–जातिको ले लीजिये। उनमें और जातियोंकी अपेक्षा आप अधिक गोरे रंग और भूरे बालोंको पायँगे। व्यवस्थित अभिव्यन्जनों (लम्बाई, कपाल और नासिकाके मानों) को भी देखनेसे आपको मालूम होगा कि उन प्रदेशोंमें यही एक जाति है, जिसमें सबसे अधिक आर्य–रुधिर है।

उपसंहार

वैज्ञानिकोंने जो मनुष्यके विकासको मत्स्य, मण्डूक, सरीसृप, पक्षी और स्तनधारी आदि क्रमसे माना है, वह विशेषतः दो बातोंके आधारपर है। जीव–कल्पके पाषाणोंकी तहोंमें हम उसी क्रमसे उन्हें पाते हैं। यह पाषाण समकालीन घटनाओंके इतिहास ग्रन्थ हैं, जिनका एक–एक स्तर उस ग्रन्थका एक–एक पन्ना है। फर्क इतना ही है कि, बीच–बीचमें आनेवाले हजारों प्रचण्ड भूकम्पोंने इस

ग्रन्थके पन्नोंको तोड़–फोड़ डाला है। अमेरिकाकी पश्चिमी रियासतोंके कुछ स्थानोंकी भाँति पृथ्वीपर कहीं–कहीं करोड़ों वर्षोंके पाषाण स्तर अक्षुण्ण मिलते हैं। वहाँ ऊँट, घोड़े आदिकी भिन्न–भिन्न कालकी हड्डियाँ इस विकास–सिद्धान्तकी अच्छी पुष्टि करती हैं। प्रस्तरीभूत हड्डियोंके बाद दूसरा प्रमाण स्वयं प्राणियोंकी आरम्भिक गर्भ आदि अवस्थाओंमें मिलता है। मेंढक चूंकि मछलीसे विकसित हुआ है; इसलिये उसको मेंढकके रूपमें आनेसे पूर्व मछलीका रूप धारण करना पड़ता है। उस वक्त उसकी आकृतिही मछलीकी तरह नहीं होती है, बल्कि वह मछलीकी ही भाँति, फटे गलेसे, पानीके भीतर भी साँस ले सकता है। अपनी वर्तमान अवस्था तक पहुँचनेके लिये मनुष्य–जातिको जिन–जिन मंजिलोंको पार करना पड़ा, अब भी प्रत्येक मनुष्यको गर्भाशय और शैशवमें उन सभी अवस्थाओंसे गुजरना पड़ता है। गर्भमें वह, आरम्भिक अवस्थामें, मछलीकी तरह रहता और अन्यान्य अवस्थाओंसे गुजरते 4–5 मासकी अवस्थामें वह सपुच्छ वानर–सा रहता है। प्रसवके समय वनमानुषकी भाँति उसके हाथ बड़े–बड़े होते हैं। शैशवमें वह कितने ही विकसित वानरोंकी भाँति चतुष्पद और द्विपद, दोनोंकी तरह चलता है; और, शायद सोचता भी है। यहाँ तक कि, तीन चार वर्षकी अवस्थामें कितनीही शारीरिक और मानसिक क्रियाओंमें पचास हजार वर्ष पूर्वके अपने चालीस वर्ष बूढ़े पूर्वजोंकी अवस्थाकी आवृत्ति करता है। ज्योतिषियोंका कहना है कि, आजसे दस खर्ब वर्ष बाद पृथ्वी क्रमशः ठंडी होते–होते इतनी सर्दहो जायगी कि, भूमध्यरेखा का ताप–मान ध्रुवके समान ठंडाहो जायगा। कितनीही बातोंमें जैसे हमने अपने पूर्वजोंसे प्रगतिकी है, उसी तरह करके आजसे दस हजार वर्ष बाद आनेवाली हमारी सन्तान 10 ही वर्षकी उम्रमें हमारे चालीस वर्षके पण्डितोंकी तरह सोचने लगेगी और भूतकालके अनुभवोंसे फायदा उठावेगी।

पृथिवी जब ठंडी तथा प्राणि–वनस्पति–शून्यहो जायगी, उस समय यदि फिर किसी महान् आकाशीय पिण्डने आकर पृथिवी या सौरमण्डलमें भयंकर आग लगा दी, तो उक्त घटनाचक्र फिर आरम्भहो जायगा।

महत्वके कुछ कालोंकी सूची इस प्रकार है–

2 अरब वर्ष पूर्व पृथिवीकी उत्पत्ति। 30 करोड़ वर्ष पूर्व प्राणीकी उत्पत्ति। 2 करोड़ पूर्व विकराल सरीसृपोंकी उत्पत्ति। 30 लाख पूर्व सिवालिकके जन्तु। 4–5 लाख पूर्व सिवालिकका नर–वानर। 3–4 लाख पूर्व जावाका नर–वानर; हिमालयकी तराईके भाँगरकी उत्पत्ति। 3 लाख पूर्व (?) प्रथम हिमयुग। 2 लाख पूर्व (?) द्वितीय हिमयुग। 1$^1/2$ लाख पूर्व हाइडेलबर्गीय मनुष्य। 1 लाख पूर्व तृतीय हिमयुग। 50 हजार पूर्व चतुर्थ हिमयुग; नियाण्डर्थल और कड़पा तथा कर्नूलके मनुष्य। 40000–25000 पूर्व चतुर्थ हिमयुगका दबना। 30000–25000 पूर्व दक्षिणी यूरोपमें क्रोमेग्नन् मनुष्य; सिंगनपुर मिर्जापुरमें प्राग्द्राबिड़ीय (?) मनुष्य; वास्तविक मनुष्यके इतिहासका आरम्भ। ई. पू. 13000–8000, जल–प्लावन, भूमध्य सागरका निर्माण। ई. पू. 1000–8000 सूर्य–नाग पूजा और स्वस्तिक–चिन्हके अनुयायियोंका यूरोप, भारत , चीन, अमेरिका फैलना। ई० पू० 10000 नवपाषाणयुग, पशुपालन, कृषि और मिट्टीके बर्तनोंका आरम्भ; ग्राम बसाना, सभ्यताका आरम्भ। ई० पू० 70000 (?) धनुर्वाणका आविष्कार। ई. पू. 4,000 ताँबेका आविष्कार। ई. पू. 3,000 मोहन्जोदारोंकी सभ्यता। ई. पू. 2500 पीतलका आविष्कार; हिरातमें आर्योंका आना। ई० पू० 2000 सुवास्तुमें आधी मित्तन्नी आर्योंका मेसोपोटामिया पहुँचना; आर्योंके नेतृत्वका आरम्भ। ई. पू. 1,500 आर्योंका सिन्धु उपत्यकापर अधिकार; आर्योंका युनान (ग्रीस) पर अधिकार। ई. पू. 1,000 लोहेका आविष्कार। ई. पू. 563–483 गौतम बुद्ध, (बुद्धिवादके आचार्य) ई. पू. 530 सिन्धु प्रदेशपर ईरानियोंका अधिकार। ई. पू. 323 यूनानी आर्योंका भारतमें आना। ई. पू. 200 चीनमें कागजका आविष्कार। ई. पू. 100 ई. 200 शक, मग आदिका भारतमें आना।

---

1. समूह 2. देखिए ऋग्वेद (2/20/7)

विटैमिन*

सच्चिदानन्द, एम.एम–सी.

सहस्रों वर्ष पूर्व, जब पृथ्वीके अनेकों देश अज्ञानके गहरे गर्तमें पड़े हुए थे, भारतवर्ष सभ्यताके सर्वोच्च शिखरपर आसीन रह चुका है। उस समय कला, विज्ञान, धर्म आदि सभी बातोंमें यहाँ के निवासियोंने पूर्णता प्राप्तकर ली थी। जीवन के प्रत्येक विषय–भोजन, रहन–सहन आदि में उनकी योग्यताका लोहा सभीको मानना पड़ता है। साथ ही वैद्यकशास्त्र और शरीर–विज्ञानमें भी हमारे पूर्वज पूर्ण ज्ञान रखते थे। वनमें रहकर वर्षोंके अनन्त परिश्रमके उपरान्त हमारे ;षियोंने जिन जड़ी–बूटियोंका पता लगाया, वे आजकलकी वैज्ञानिक रीतिसे तैयारकी गई अनेक औषधियोंसे कहीं अच्छी, लाभकारी और सस्ती हैं। पाकशास्त्रमें भी उनका ज्ञान कुछ कम न था। भोजन पकानेकी भिन्न–भिन्न रीतियाँ जो उन्हें ज्ञात थीं, आज तक किसी देशके निवासीको न सूझीं । उनके भोजनकी प्रत्येक वस्तु और उसके बनानेकी विधि वैज्ञानिक रीतिके आधारपर थी। आज अपनेको सर्वश्रेष्ठ कहने वाली जातियाँ अब तक भी जंगलियोंकी भाँति उबले माँस तथा मदिरापर ही अधिकतर निर्भर रहती हैं।

गत वर्षोंमें पाश्चात्य देशोंके कुछ वैज्ञानिकोंने खाद्य–पदार्थोंमें जो खोजकी है, उसने यह स्पष्टकर दिया है कि हमारा पाकशास्त्र वैज्ञानिक दृष्टिसे कितना पूर्ण है।

आज विटैमिन नामक पदार्थके अन्वेषणने समस्त संसारका ध्यान अपनी ओर आकृष्टकर लिया है। वैज्ञानिकोंका कहना है कि सभी खाद्य पदार्थोंमें विटैमिनकी उपस्थिति आवश्यक है। अब तक उन लोगोंका ऐसा विचार था कि केवल तेल पदार्थ (Fats), कार्बोहाइड्रेट्स (Carbohydrates), प्रोटीन्स (Proteins) आदिही मनुष्यके जीवन और स्वास्थ्यके लिए यथेष्ट भोज्य पदार्थ हैं, और भोजनके किसी श्रेष्ठ पदार्थ का होना उसके ताप की शक्ति (Caloric value) पर निर्भर है;परन्तु अब वैज्ञानिक इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि इन वस्तुओंके अतिरिक्त कुछ अज्ञात पदार्थ भी हैं, जिनकी बहुत सूक्ष्म मात्रा शरीरकी उन्नतिके लिए अत्यन्त आवश्यक है ।

इन आवश्यक तथा अज्ञात पदार्थोंका नाम विटैमिन है। सन् 1913 में फंक (Funk) नामक एक वैज्ञानिकने चावलके ऊपरके चमकदार भाग (Rice polishing) में एक नेत्रजनका पदार्थ (nitrogenous substance) पाया। यह पदार्थ बेरी–बेरी (Beri-Beri) नामके रोगका निवारण करता था, और यह गुणोंमें अमीन्स (amines) से समानता रखता था । उसने यह विश्वासकर लिया कि वह भी एक अमीन था, जो जीवनके लिए अत्यन्त आवश्यक था, और इस प्रकार उसका नाम

* *विशाल भारत*, मार्च 1933

विटैमिन (Vitamine) पड़ा। विटैमिन दो शब्दोंके संयोगसे बना है VitalÛamine अर्थात् वह अमीन, जो जीवनके लिए अत्यावश्यक है।

उसके पश्चात् अन्य अन्वेषणोंसे यह ज्ञात हुआ कि जीवनके लिए इसी प्रकारके अनेक आवश्यक पदार्थ और भी हैं, परन्तु उनमें अमीन्सके–से गुण नहीं हैं, अतः सन् 1920 में ड्रमंड (Drummond) ने इस पदार्थका नाम विटैमिन (Vitaminse) रखा, और इसकी भिन्न जातियोंको विटैमिन "ए", विटैमिन "बी", विटैमिन "सी", विटैमिन "डी", और विटैमिन "ई" आदिके नामसे विभूषित किया । विटैमिनकी उपस्थिति भोजनके विभिन्न पदार्थोंमें अनेक वैज्ञानिकोंने प्रयोगों द्वारा सिद्धकी है।

जापान, अमेरिका तथा अन्य देशोंके वैज्ञानिक अन्वेषणोंमें लगे हुए हैं। हालमें कुछ लोगोंने यह समझ लिया था कि विटैमिन "डी" Sterol तथा Ergestrol नामक ऐलकोहल (alcohol) से बनता है, पर अब यह विचार भी गलत प्रमाणित हो गया है, और यह सि) हो गया है कि विटैमिन बहुत सूक्ष्म और शक्तिवान पदार्थ हैं, और इनकी बहुत थोड़ीसी मात्रा किसी वस्तुमें मिलाकर उस वस्तुमें भी अपने गुण पैदा कर देती है। उनकी वैज्ञानिक रचना (constitution) अभी नहीं ज्ञात हुई है।

आजकलके वैज्ञानिकोंने रासायनिक व्याख्या (chemical analysis) तथा सिन्थेसिस (synthesis) में बहुत उन्नतिकी है। इसी आधारपर नकली दूध विभिन्न मात्रामें दूधके अंग (constituents) मिलाकर बनाया गया, परन्तु अन्तमें पता चला कि इसकी रचना सौ फीसदी ठीक होने पर भी शरीरके बढ़ाने इत्यादिके जो प्रधान गुण स्वाभाविक दूधमें होता है, वह इसमें बिलकुल लापता है। इस आवश्यक पदार्थको ही विटैमिनका नाम दिया गया है, और यह एक प्रकारसे ऐसा ही है, जैसी मनुष्यकी आत्मा, जिसकी उपस्थितिको तो सब जानते हैं, परन्तु यह है क्या वस्तु, यह ज्ञात नहीं।

अब हम प्रत्येक प्रकारके विटैमिनका सविस्तार वर्णन करते हैं।

विटैमिन 'ए'

सन् 1843 में पेकेल्हारिंग (Peckelharing) ने मालूम किया कि यदि चूहेके बच्चोंको खानेमें रोटी, कैसीन (casein) अंडेकी ज़र्दी, सुअरकी चर्बी इत्यादि सब पदार्थ दिये जायँ, जो उसके भोजनमें पाये जाते हैं, परन्तु केवल दूधके स्थानमें पानी दिया जाय, तो चूहे थोड़े दिनोंमें मर जाते हैं। ऐसे ही अन्य प्रयोगोंसे यह ज्ञात हुआ है कि दूधमें कोई अज्ञात पदार्थ बहुत थोड़ी मात्रामें है, जो पोषणके लिए अत्यन्त आवश्यक है। बादमें डचके वैज्ञानिकोंने और सन् 1906 में होपकिन्स (Hopkins) ने यह बात मालूमकी कि नकली खाद्य–पदार्थ बिना थोड़ेसे दूध या कुछ सागोंके शरीरकी उन्नति नहीं करते। सन् 1912में उसने यह सिद्ध किया कि यह पदार्थ मक्खनमें भी पाया जाता है।

अज्ञात रचना (Unknown constitution) के पदार्थोंका नाम विटैमिन 'ए' हैं, और यह अनेक भोजनके पदार्थोंमें पाये जाते हैं।

(1) यह प्रत्येक अवस्थामें शरीरकी वृद्धिके लिए आवश्यक है। यद्यपि भोजनमें इसके न होनेसे कोई विशेष रोग नहीं होता, परन्तु फिर भी शरीरकी वृंद्धि बन्द हो जाती है। प्रयोगों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि शरीरके अन्दरके पहलेके विटैमिनकी उपस्थितिसे कुछ काल तक शरीर वृद्धि होती रहती है, परन्तु उसके समाप्तहो जानेपर वृद्धि बन्दहो जाती है, शरीर हलका होने

लगता है; फिर उसकी अवस्था बिगड़ती जाती है । यदि रोगीकी अवस्था बहुत बिगड़नेसे पहले फिर कुछ दूध, मक्खन या मछलीका तेल (Cod-liver oil) तथा अन्य पदार्थ, जिसमें विटैमिन 'ए' हो, खिलाये जायँ, तो शरीर फिर उन्नति करने लगता है।

(2) भोजनमें विटैमिन 'ए' के न होनेसे जब शरीरकी वृद्धि रुक जाती है, तब अनेक प्रकारकी बीमारियों (छूत आदि) के कीटाणु शरीरपर शीघ्र असरकर लेते हैं।

(3) अनेक जानवरोंपर विटैमिन 'ए' रहित भोजनका प्रयोग करनेपर यह भी ज्ञात हुआ कि उनमें एक विशेष प्रकारकी आँखकी बीमारीहो जाती है, जिसको रतौंधी कहते हैं, और आँखें दुखने भी लगती हैं। रतौंधी एक प्रकार की छूतकी बीमारी है, जो वास्तवमें भोजनमें एक विशेष पदार्थकी न्यूनतासे ही होती है, क्योंकि जानवरके भोजनमें विटैमिन 'ए' की न्यूनतासे ही इस रोगके कीटाणु शीघ्र अपना प्रभाव डालते हैं। यह रोग असाध्य होनेके पूर्व, जानवरको विटैमिन 'ए' रखने वाले पदार्थ खिलानेसे रोग नष्टहो जाता है ।

(4) भोजनमें इसके न होनेपर शरीरमें सूजन, संग्रहिणी तथा अन्य ऐसे रोग हो जाते हैं।

(5) जनन तथा स्तन–पानके समयमें स्त्रियोंको इसकी विशेष आवश्यकता होती है। यही कारण है कि अपने देशमें ऐसे समयमें जच्चाको मेवा आदि पागकर खानेको दी जाती है।

(6) भोजनमें अधिक मात्रामें विटैमिन 'ए' खानेसे वह शरीरमें आगेके लिए जमा होता जाता है, और अनेक रोगोंके कीटाणुओंसे सुरक्षित रहनेके लिए शरीरकी शक्तिको बढ़ाता है।

विटैमिन 'ए' कुछ पशुओं और वनस्पतिके तेल–पदार्थोंमें पाया जाता है; जैसे–मछलीके तेलमें। निम्न–पदार्थोंमें भी वह अधिकतासे पाया जाता है–दूध, मक्खन, मलाई, मछलीका तेल, मुर्गीके अंडे तथा अनेक हरे सागोंमें; जैसे–नीबू, नारंगी, टमाटर, मूली, मटर, अमरूद, गाजर, सलाद, गेहूँ इत्यादि।

विटैमिन 'बी'

इस विटैमिनपर फंकने प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त अंडमानके — जहाँ भारतवर्षसे देश–निकाला पाने वाले कैदी रखे जाते हैं — एक डाक्टरको वहाँके कैदियों तथा कबूतरोंमें एकही प्रकारके एक विशेष रोगके लक्षण प्रतीत हुए। खोज करनेपर उसको ज्ञात हुआ कि भोजनमें मनुष्योंको जो चावल दिया जाता है, वही वहाँके कबूतरोंके दानेके रूपमें दिया जाता है। यह चावल बिना पालिश[1] का था।

डाक्टर साहबने कबूतरोंको कुछ दिन चावलकी भूसी (Rice polishing) खानेको दी। इसपर यह देखा गया कि कबूतरकी पहलेकी बीमारी दूरहो गई । फिर मनुष्योंको खानेको पालिशदार चावलही दिया जाने लगा, और उनकी भी बीमारी, जो बेरी–बेरी थी, दूर हो गई। चावलके हीरे[2] में विटैमिन 'बी' होता है, इसीलिए विटैमिन उस पदार्थका नाम रखा गया, जो बेरी–बेरी नामक रोगको दूर करता है, और इसीसे इसको। Anti-neurotic भी कहते हैं।

अधिक खोज करने पर ज्ञात हुआ कि विटैमिन 'बी' कम–से–कम तीन–तीन भिन्न पदार्थों का सम्मिश्रण है। इनको विटैमिन 'बी1', विटैमिन 'बी2', विटैमिन 'बी3' कहते हैं, अतः ऊपर वर्णित विटैमिन का नाम विटैमिन 'बी3', रखा गया।

यह शरीर की स्वाभाविक वृद्धि के लिए प्रत्येक अवस्था में अत्यन्त आवश्यक है। भोजन में इसके न होने से बेरी–बेरी रोग हो जाता है। इसमें पहले बदहज़मी होती है, फिर आँतों की पाचनशक्ति कम हो जाती है, और अन्त में बेरी–बेरी रोग होता है।

विटैमिन 'बी2'

इसके भोजनमें न होनेसे शरीरकी वृद्धि रुक जाती है, भूख मारी जाती है, निर्बलता बढ़ जाती है, और बदहज़मी तथा अन्य प्रकारके पाचनशक्ति–सम्बन्धी आँतोंके रोग पैदा हो जाते हैं। इसके शरीरमें न होनेसे तथा शरीरके निर्बल हो जानेसे अनेक रोगोंके कीटाणु शरीरपर शीघ्र असर करते हैं। यह पैलेगरा नामक रोगको रोकता है, और शरीरकी स्वाभाविक खुराकके लिए हर अवस्थाके मनुष्योंके लिए आवश्यक है।

विटैमिन 'बी3'

यह गुणोंमें विटैमिन 'ए1' और 'बी2' से बहुत कुछ मिलता है। यह विटैमिन शरीरमें ऐसी मात्रामें जमा नहीं किया जा सकता कि कुछ दिनों इसे भोजनमें बिना खाये काम चल जाय। यह सरलतासे नष्ट नहीं होता। यह अधिकतासे चावलके हीरेमें होता है। इसके अतिरिक्त दूध, मलाई, अखरोट, अंडे, सलाद, मक्का, प्याज, नारंगीके रस,, मटर, टिमाटर, नीबूके रस, गाजर तथा ताजी गोभीमें भी पाया जाता है।

विटैमिन 'सी'

भोजनमें विटैमिन 'सी' के होनेसे खाज (Scurvy) नामक रोग नहीं होता, इससे इसे ऐंटी–स्कोर्ब्युटिक (Anti-scrobutic) भी कहते हैं। यदि पशुओंको केवल अनाज खानेको दिया जाय, तो खाज तथा इसी प्रकारके रोग उत्पन्नहो जाते हैं। भोजनमें इसके न होनेसे अन्य रोग भी हो जाते हैं; जैसे–जोड़ोंमें कर्रापन तथा दर्द, मसूड़ों और दाँतोंमें दर्द, उनका हिलना तथा उनसे रक्त निकलना और अन्य हड्डीके रोग। गठिया भी बहुत–कुछ भोजनमें इसकी न्यूनतासे ही होती है, और शरीरमें इसके न होनेसे अन्य रोगोंके कीटाणु शीघ्र प्रभाव डालने लगते हैं।

यह शरीरमें जमा नहीं किया जा सकता, और अत्यन्त शीघ्र नष्ट भी हो जाता है। यह समस्त हरे सागों तथा ताजे फलोंमें अधिकतासे पाया जाता है; जैसे–टमाटर, सलाद, कच्चा प्याज, नारंगीका रस, नीबूके रस, शलजम, केला, सेब, अँगूर, गोभी, गाजर तथा भीगे चनोंमें अधिकतासे पाया जाता है।

दूध तथा माँसमें यह थोड़ी मात्रामें पाया जाता है। सूखे बीज, अनाज, मटर, दाल इत्यादि अनेक पदार्थोंमें साधारण अवस्थामें यह नहीं होता है, परन्तु यदि ये चीज़ें कुछ घंटे पानीमें भिगो दी जायँ, तो यह गुण इनमे उत्पन्न हो जाता है। अपने देशमें भीगे चने खानेका बहुत रिवाज है, इसी प्रकार दाल भी पकानेसे पहले भिगोई जाती है। दोनोंही तरीकोंसे विटामिन 'सी' उत्पन्नहो जाता है, और इस प्रकारका बनाया भोजन खाना अत्यन्त लाभकारी होता है।

विटैमिन डी

सबसे प्रथम एडवर्ड मैलनवीने इसका आविष्कार किया। यह विटैमिन 'ए' से इतनी समानता रखता हैं कि बहुत काल तक दोनोंमें कोई अन्तरही न समझा गया। विटैमिन 'डी' शरीरकी ही वृद्धिपर नहीं, वरन् शरीरकी हड्डियोंकी बनावटपर भी प्रभाव डालता है। भोजनमें इसके न होनेसे रिकेट (Ricket) नामकी बीमारी उत्पन्नहो जाती है, और इसीसे इस पदार्थको Antirachitie विटैमिन भी कहते हैं।

इसकी कमीका प्रभाव सब प्रकारकी अंगहीनतामें, यहाँ तक कि अत्यन्त कुरूपता तकमें पाया

जाता है; जैसे–टेढ़ा–मेंढ़ा सिर, कम चौड़ी छाती और टेढ़े–मेढ़े हाथ–पैरका रह जाना।

इसके उपरान्त यह भी पता लगा कि भोजन में विटैमिन 'डी' के न होनेसे बढ़ते हुए बालकोंकी हड्डियोंकी वृद्धि रुक जाती है, या समुचित रूपसे नहीं हो पाती है। दूध और मछलीका तेल खिलानेसे या तेलकी मालिश करनेसे यह रोग नहीं होता।

इसके थोड़े दिन बाद यह ज्ञात हुआ कि इसकी न्यूनता का बढ़ते हुए दाँतोंमें आब (enamel) और डेन्टीन (dentine) के बनने पर बड़ा हानिकारक प्रभाव पड़ता है। यह भी पता चला है कि इस विटैमिनकी न्यूनता शरीरको धूप देनेसे भी पूरीहो जाती है। यही प्रभाव अल्ट्रा वॉयलेट (ultra violet) की किरणोंमें होता है। भोजनमें इसका अभाव होनेसे साँसकी छूतकी बीमारियाँ भी पैदा हो जाती हैं। यह दूध, मक्खन, सलाद, सरसोंके तेल, नीबूके अर्क, गोले[3] के तेल आदिमें बहुत होता है। जैतूनके तेल, कोलेस्ट्रोल (cholestrol) तथा कुछ अन्य पदार्थोंको जो एन्टीरैकिटिक (antirachitic) गुण नहीं रखते सूर्यकी किरणोंमें (जिसमें अल्ट्रा वॉयलेटकी किरणें भी होती हैं रखनेसे यह गुण उत्पन्न हो जाता है।

अपने देशमें, सरसोंका तेल धूपमें मलनेसे जो लाभ होता है, वह सब जानते हैं। यह लाभ शरीरमें विटैमिन 'डी' की उत्पत्तिहो जानेके कारण होता है। मनुष्यों तथा पशुओंकी खालमें कोलेस्ट्रोल या अन्य इसी प्रकारके तेल–पदार्थ होते हैं, उन पर धूपसे ही विटैमिन 'डी' बनता है, और वह सारे शरीरमें फैल जाता है। इसी आधारपर अनेक अन्वेषण हुए, और यह समझा जाने लगा कि कोलेस्ट्रोल तथा अर्गेस्ट्रोल ऐसे पदार्थोंसे विटैमिन 'डी' बनाया जा सकता है। परन्तु अब यह धारणा भी निर्मूल सिद्ध हुई, और अभी तक विटैमिनकी रचना नहीं ज्ञात हुई है।

स्विट्ज़रलैण्डमें तपेदिकके रोगियोंका सूर्य–किरणों द्वारा उपचार जो आजकल किया जाने लगा है, वह भी कदाचित् विटैमिन 'डी' के अधिक मात्रामें शरीरमें उत्पन्न करनेके आधार पर है।

विटैमिन 'ई'

भोजनमें विटैमिन 'ई' के न होनेसे स्त्रियोंको बन्ध्या रोग हो जाता है। भोजन–विषयक अन्वेषण होनेपर यह पता चला कि स्त्रियोंको तथा स्तन पान करानेके लिए विशेष प्रकारके भोजनकी आवश्यकता होती है, क्योंकि माताके भोजन परही बच्चेका पैदा होना तथा बढ़ना आदि पूर्णतया निर्भर है, और माताको ऐसे पदार्थ अधिक मात्रामें दिये जाने चाहिए, जिससे उनका स्वास्थ्य ठीक रहे ।

एच. एम. ईवन्सने अपने साथियोंके साथ यह आविष्कार किया है कि गर्भ न रहनेका कारण भोजन–विशेषकी न्यूनता भी होती है, अतएव भोजनमें इसका होना अत्यावश्यक है।

यह मक्खन, खमीर, हरे फल, मेवा, तेल, प्याज, सलाद, बिनौले आदिमें अधिकतासे पाया जाता है। उपर्युक्त विटैमिनका पूर्ण ज्ञान प्राप्तकर लेनेपर यह स्पष्टहो जाता है कि भोजनकी समस्यामें इसकी कितनी बड़ी आवश्यकता है।

आजकल बाजारमें अनेक प्रकारके नकली खाद्य–पदार्थोंका (जैसे वनस्पति घी, कोकोजेम आदि, जिनमें विटैमिन्सका सर्वथा अभाव है) बहुत प्रचारहो रहा है, अतएव ऐसी वस्तुओंका प्रयोग नहीं करना चाहिए। मशीनका चावल तथा बहुत महीन आटा भी खाना ठीक नहीं।

---

1. धान का छिल्का छुडाने के बाद चावल के दाने के ऊपर की चमकदार झिल्ली।
2. इसी पालिश को हीरा भी कहते हैं।
3. नारियल

कीटाहारी पौधा*

ब्रह्मानन्द सिंह

इस विश्वमें प्रकृति द्वारा कुछ नियम निर्धारित पाये जाते हैं। इन नियमोंका पालन अनन्त कालसे, सुचारु रूपसे, होता आता है, तथापि नियमके साथ-साथ कहीं-कहीं उसकी प्रतिकूलताका होना भी असम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ यदि स्वाभाविकतया मनुष्यके दो पैर होते हैं, तो कहीं-कहीं एक पैर वाला मनुष्य भी जन्म लिया पाया गया है।

पौधा अपनी जड़के द्वारा मिट्टीसे आवश्यक वस्तुओंको खींच लेता है। दिनमें वह हवासे कारबन डायक्साइड (carbon dioxide) लेकर सूर्यके प्रकाशमें अपनी पत्तियोंपर खाद्य पदार्थ तैयार करता है। सूर्यके प्रकाशका उपयोग वह क्लोरोफिल (chlorophyl) की सहायतासे करता है। इसका रंग हरा होता है; और, यही वृक्षोंके हरापनका कारण भी होता है। इस खाद्य पदार्थकी पाचन-क्रियाको फोटोसिन्थेसिस (photosynthesis) कहते हैं। परन्तु रात्रिमें उन पत्तियों द्वारा पौधा साँस लेता है। वह हवासे आक्सिजन (oxygen) गैस लेता है; और कारबन डायक्साइड इत्यादि बाहर फेंकता है। आक्सिजन गैस पौधमें कार्य करनेकी स्फूर्ति लानेके लिये आवश्यक है।

कुछ पौधे ऐसे होते हैं, जो दूसरोंपर ही अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। उन्हें पराय-भोजी (parasite) कहते हैं । जो पूर्णतया पराय-भोजी होते हैं, उनकी पत्तियाँ हरी नहीं होतीं; क्योंकि उन्हें अपनी खाद्य सामग्री तैयार करने और क्लोरोफिलकी आवश्यकता नहीं होती। परन्तु कुछ अपूर्ण पराय-भोजी (Partial parasite) होते हैं। इनकी पत्तियाँ हरी होती हैं; और ये अपनी खाद्य सामग्रीका कुछ हिस्सा स्वयं भी तैयारकर लेते हैं। ये अपने खाद्यदातासे अलगकर दिये जानेपर भी जीवित रह सकते हैं। पराय-भोजी पौधोंमें भी दो श्रेणियाँ हैं। कुछ तो दूसरे पौधोंसे जड़ द्वारा बना-बनाया खाद्य पदार्थ खींच लेते हैं। दूसरे कीट-भोजी होते हैं, ये कीड़ोंको मारकर पचा डालते हैं; और, उससे अपने कामकी वस्तु ले लेते हैं । अतएव साधारणतया कीड़ोंको फँसानेके लिये कौशलका होना आवश्यक होता है। विशेषतः पत्तियोंकी बनावटही कुछ निराले ढंगकी होती है।

1. बटरवर्ट (Pingincula) यह पौधा प्रायः उत्तरी शीतोष्ण कटिबन्धमें पाया जाता है। उत्तरी अमेरिकामें, उत्तरी तन्द्राओं (Tundras) से लेकर दक्षिणकी ओर न्यूफाउण्डलैण्ड, न्यूयार्क मेनेसोय तथा ब्रिटिश कोलम्बिया तक पाया जाता है। विशेषतः दलदल और पहाड़ी हिस्सोंमें इसकी उत्पत्ति होती है। इसकी पत्तियोंपर गिल्टियाँ होती हैं, जिनसे लस्सेदार रस निकलता है। पत्तियोंकी किनारी मुड़ी रहती है। छोटे-छोटे कीड़े, वहाँ पुहँचतेही, उसके रस द्वारा पत्तियोंपर सट और पकड़ लिये जाते हैं। वर्षा होनेपर वे बहकर किनारोंपर पहुँच जाते हैं ।

* *गंगा*, मई 1933

किनारोंके मुड़े रहनेके कारण वे हट नहीं सकते; और, साथही पत्तियाँ मुड़कर सिमट जाती हैं। इस प्रकार वे पूर्णतया पकड़ लिये जाते हैं। इसके बाद पत्तियों द्वारा पाचक रस निकलता है, जो उन कीड़ोंको मारकर पचा डालता है। इससे वह पौधा अपने कामका खाद्य पदार्थ ले लेता है।

2. ड्रासेरा (Sundew or Drozera)–इसकी पत्तियोंपर निराले रंगकी गिल्टियाँ होती हैं। इनमें डण्ठल लगे रहते हैं(और डण्ठलोंके दूसरे छोरोंपर गोल–गोल गिल्टियाँ होती हैं। संयोगवश कीड़ेके वहाँ पहुँचनेके साथ ही वे डण्टीदार गिल्टियाँ चारों ओरसे उसपर झुक पड़ती हैं; और, इस प्रकार निःसहाय होकर वह पकड़ लिया जाता है। इसके बाद उन गिल्टियोंसे पाचक रस निकलता हैं, जो उस कीड़ेको मारकर पचा डालता है।
3 अट्रीकुलेरिया (Utricularia Bladderwort) – इसकी 200 जातियाँ उष्ण तथा शीतोष्ण कटिबन्धोंमें पायी जाती हैं। इनमेंसे 20 जातियाँ उत्तरी अमेरिकामें और कुछ ब्रिटिश द्वीपके गड्ढों और खन्दकोंमें पायी जाती हैं। इसकी उत्पत्ति जलके अन्दर होती है। इस पर जड़ और शाखएँ साफ–साफ पृथक रूपसे, नहीं पायी जातीं। केवल डण्टियोंके ऊपर छोटे–छोटे पीले फूल पानीकी सतहसे ऊपर उठे रहते हैं। कीड़ोंको फँसानेके लिये पत्तियाँ थैलोंके समान बनी रहती हैं। इनकी बनावट इस तरहकी होती है कि, कीड़े बाहरसे भीतर जा सकते हैं; परन्तु पुनः भीतरसे बाहर नहीं आ सकते। थैलोंकी सतह पर शाखायुक्त रोवें रहते हैं। कीड़ोंको भरकर गल जानेके बाद इन्हीं रोवों द्वारा इनका रस ग्रहणकर लिया जाता है।
4. वेनसका कीट–जाल (Venus fly trap) – यह पौधा विशेषतः कैरोलिना (ब्तवसपद) में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ चौड़ी होती हैं । ये पत्तियाँ मध्य रेशा (mid-rib) पर आसानीसे मुड़ सकती हैं। हर एक पत्तीके ऊपर तीन रोवें रहते है। कीड़ोंके बैठनेके साथ ही ये पत्त्यिाँ मध्य रेशोंके आधारपर मुड़ जाती हैं और कीड़े पकड़ लिये जाते हैं!
5. सुराहीदार पौधे (Pitcher-plant)–ये दो प्रकारके होते हैं । एक नेपेन्थस (Nepenthes) है और दूसरा सैरेशिना (Sarracina)। नेपेन्थसकी 60 जातियाँ हैं; और ये विशेषतः ईस्ट इंडीजमें पायी जाती हैं। इनकी बनावट सुराहीकी तरह होती है तथा मुँहपर ढक्कन सा लगा रहता है। मुँहके पास, किनारोंपर, कभी–कभी मधु भी पाया जाता है, जो कीड़ोंको आकर्षित करनेके काममें आता है। अन्दर, नीचे जल रहता है, जो बैक्टीरिया – (एक प्रकारके बहुत छोटे–छोटे कीड़ों) से भरा रहता है। कीड़ा जब जलमें डूब जाता है, तब एक प्रकारका पाचक रस (Pepsin) निकलकर उसे पचा डालता है। उन्हें मारकर पचा डालनेका कार्य, कुछ हिस्सोंमें, जल–स्थित बैक्टीरियों द्वारा भी होता है।

सैरेशिनामें पाचक रसका आविर्भाव नहीं होता। वे फँसाये हुए कीड़े जल–स्थित बैक्टीरियों द्वाराही मारकर पचा डाले जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि, माँसाहारी जानवरोंकी तरह उद्भिज्ज संसारमें भी माँसाहारी पौधे पाये जाते हैं! यद्यपि जानवरोंकी तरह ये अपने शिकारकी खोजमें हिल नहीं सकते; तथापि जगन्नियंता परमेश्वरने, इनकी जीवन–रक्षाके हेतु, शिकारोंको ही इन तक पहुँचानेका उपायकर रखा है!

आहार*

प्रो. फूलदेवसहाय वर्मा, एम. एस–सी., आई. आई. एस–सी.

आहार का प्रयोजन

25 वर्षकी अवस्था तक मनुष्यके शरीरकी वृद्धि होती है। उसके पश्चात् शरीरकी वृद्धि प्रायः समाप्तहो जाती है। शरीरको वृद्धिके साथ–साथ, और सारे जीवनमें, शरीरको सतत कार्य करनेकी आवश्यकता रहती है। हृदयकी धड़कन सदा होती रहती है। वायु फेफड़ेमें प्रवेश करती और इसके साथ आक्सिजन नामक गैस प्रवेश करती हैं, जिसके बिना मनुष्यका जीवित रहना सम्भव नहीं। मुख और नाकके द्वारा शरीरकी दूषित वायु सदा निकलती रहती है। आमाशयमें भोजन किये हुए पदार्थ परिपक्व होते हैं और शरीरके प्रत्येक भाग में रक्तका संचालन होता रहता है। इससे शरीरकी वृद्धि क्षतिकी पूर्ति और कार्य करनेमें शक्ति प्राप्त होती है। इन सारे कार्यों और शरीरके अवयवों तथा इन्द्रियोंके संचालनसे शरीर बराबर क्षय होता रहता है, जिससे शरीर असंख्य कोषोंके जीर्वोद्धारकी आवश्यकता होती है। अतः आहारका सर्वोपरि उदेश्य शरीर वृद्धि और जीर्णोद्धारके लिए सामग्री प्रस्तुत करना है। शरीरके संचालनके लिए शक्ति या बलकी आवश्यकता होती है। आहारका दूसरा उद्देश्य इस शक्ति या बलकी उत्पत्तिके लिये सामान प्रस्तुत करना है। ऐसी शक्तिकी उत्पत्तिमें ताप भी उत्पन्न होता है, जो शरीरको आस–पासकी वायुसे अधिक उष्ण रखता है। आहारके और भी उद्देश्यहो सकते हैं; पर प्रधान उक्त दो ही हैं। इन दोनोंका तात्पर्य प्रायः एकही, जीवन–शक्तिकी पूर्ण प्राप्ति है।

शरीरके निर्माण, उसकी वृद्धि, क्षत भागोंके जीर्णोद्धार, शरीरमें कार्य करनेकी शक्ति और स्वास्थ्यके लिये चार पदार्थ आवश्यक हैं – वायु, सूर्य–प्रकाश, जल और आहार। इन चारोंके साथ व्यायाम और निद्राको भी जोड़ा जा सकता है। इस निबन्धमें केवल आहार परही विचार किया जायगा।

मनुष्यके आहारमें निम्न पदार्थोंका रहना आवश्यक है–

(1) प्रोटीन

(2) खनिज लवण,

(3) तैल और घी (वसा),

(4) कार्बोहाइड्रेट

(5) विटामिन।

---

* *गंगा*, जनवरी 1934

प्रोटीन

प्रोटीन एक विशेष प्रकारके कार्बनिक पदार्थ हैं। ये सजीव पदार्थों–उद्भिज्ज और जान्तवमें ही बनते और उनसे प्राप्त होते हैं। जीवनके लिये ये अत्यावश्यक हैं । इनमें नाइट्रोजन तत्व उपस्थित रहता है, जो शरीरके असंख्य कोषोंके निर्माणमें लगता है। शरीरकी वृद्धि और कोषोंके जीर्णोद्धारमें इसकी बड़ी आवश्यकता होती है। शरीरकी कार्यशीलताको उत्तेजित करनेके अतिरिक्त शरीरकी बनावटका यह एक प्रधान साधन है। सारे सजीव पदार्थों, प्राणियों और वनस्पतियोंमें, जिन्हें हम लोग भोजन करते हैं, यह प्रस्तुत रहता है। जो प्रोटीन जीव–जन्तुओंमें उपस्थित रहता है, उसे 'प्राणी प्रोटीन' कहते हैं; और, जो वनस्पतियोंमें रहता है, उसे 'उद्भिज्ज़ प्रोटीन'। ये दोनों प्रोटीन भिन्न –भिन्न प्रकारके होते हैं । मनुष्यके शरीरका प्रोटीन इन दोनों प्रोटीनोंसे भिन्न होता है। जब हम लोग इन प्रोटीनोंका भोजन करते हैं, तब ये शरीरमें प्रविष्ट होनेपर आँतोंमें विच्छेदित होते हैं और कुछ ऐसे रूपमें परिवर्तित होते हैं, जो शरीरके कोषोंके निर्माणमें लग जाते; और, जो ऐसे नहीं व्यय होते, वे या तो मलके अथवा मूत्रके रूपमें शरीरसे बाहर निकल जाते अथवा अन्य पदार्थोंके साथ मिलकर शक्ति उत्पन्न करनेमें व्ययहो जाते हैं । हमारे कुछ भोज्य पदार्थोंके प्रोटीन ऐसे रूपमें होते हैं, जो सरलता और शीघ्रतासे शरीरके साथ सम्मिलितहो जाते हैं और कुछ ऐसे नहीं होते । जो प्रोटीन शीघ्रतासे हमारे शरीरसे मिल जाते हैं, वे मनुष्य शरीरके लिये अधिक उपयुक्त होते और अन्य न्यून उपयुक्त या अनुपयुक्त होते हैं । यह आवश्यक है कि, मनुष्यके शरीरके वृद्धिकालमें पर्याप्त मात्रामें उपयुक्त प्रोटीन प्राप्त हो, नहीं तो शरीरकी आवश्यक वृद्धि नहीं होगी।

दूध, दही, मट्ठे, अंडे, माँस, मछली, हरी पत्तीदार भाजियों–पालक, मेथी, लेट्यूस–और खानेवाले पौधोंके नव पल्लवोंमें उपयुक्त प्रोटीन विद्यमान रहता है। गेहूँके आटे, जौके आटे, मडुए, बिना छँटे चावल, मटर, सेम, बादाम, अखरोट, गाजर, चुकन्दर और अन्यान्य तरकारियोंमें कुछ उपयुक्तयपर अधिकांश न्यून उपयुक्त, प्रोटीन रहते हैं। छँटे चावल, सफेद आटे और मकईमें अनुपयुक्त प्रोटीन रहता है । शक्कर, घी, चरबी और तिल, सरसों, अलसी, गड़ी और चीनिया–बादाम इत्यादिके वानस्पतिक तेलोंमें प्रोटीन बिलकुल नहीं होता।

मनुष्यके, विशेषतः बच्चोंके, आहारमें पर्याप्त प्रोटीन रहना चाहिये, नहीं तो शरीरकी आवश्यक वृद्धि नहीं होगी। उनके आहारमें प्रचुर मात्रामें दूध और दूधके सामान, अंडे या माँस और हरी पत्तीदार तरकारियाँ होनी चाहिए।

खनिज लवण

शरीरके निर्माणमें खनिज लवणोंका दूसरा स्थान है। ये चूना, फास्फेट, गन्धक और लवण सदृश पदार्थ हैं। सारे शरीरका 25 वाँ भाग इन खनिज लवणोंसे बना है। अस्थियों और दाँतोंमें इनका विशेष अंश है। माँस और माँसके तन्तुओं, रक्त और शरीरके अन्य द्रव–रसोंमें भी ये प्रस्तुत रहते हैं। ये बड़े आवश्यक पदार्थ हैं। ये रक्तके तन्तुओं और शरीरके रसोंको आम्लिक होनेसे बचाते हैं। यदि रक्त आम्लिकहो जाय, तो अनेक रोग शरीरको आक्रान्त करते हैं। इनकी उपस्थितिसे पेशियों अपना कार्य करनेमें सुविधा होती है। यदि इनकी मात्रा समुचित न हो, तो पाचक इन्द्रियोंका कार्य शिथिल हो जाता है और मनुष्य अधिक दिन तक स्वस्थ नहीं रह सकता है। शरीरमें प्रायः बीस विभिन्न तत्त्व विद्यामान हैं। इनमें कालसियम, पोटासियम, सोडियम, लोहा, मैगनीसियम, मैंगनीज, यशद, ताम्र, लिथियम, बेरियम, फास्फरस, ताम्र, फासफोरस गन्धक, क्लोरीन, आयोडीन, सिलिकन और फ्लोरीन मुख्य हैं । इनमें पहले 10 क्षार–जनक हैं और शेष 6 अम्ल–जनक तत्त्व हैं। क्षारजनक

तत्त्वोंमें कालसियम, लौह और मैगनीसियम अधिक महत्त्वके हैं और शरीर में उनका अंश अपेक्षाकृत अधिक है। अम्ल–जनक तत्त्वोंमें फास्फरस, गन्धक और क्लोरीन प्रधान हैं। समुचित आहारमें इन सब तत्त्वोंका, उचित मात्रामें रहना आवश्यक है। दूधही एक ऐसा पदार्थ है, जिसमें ये सारे तत्त्व विद्यमान रहते हैं । दूधके अतिरिक्त दूसरा कोई ऐसा एक पदार्थ नहीं है जिसमें ये सबके सब तत्त्व उपस्थित हों। हरी पत्तीदार तरकारियों, कन्दों और मूलोंमें क्षार–जनक तत्त्व अपेक्षाकृत अधिक हैं और अम्ल–जनक तत्त्व कम । माँस, बादाम और अन्य दाल वाले अनाजोंमें अम्ल–जनक तत्त्व अधिक होते हैं और क्षार–जनक कम। इन तत्वोंकी प्राप्तिके लिये आवश्यक है कि, पौधोकी हरी पत्तियाँ अधिक खायी जायँ। गेहूँ, चावल इत्यादि अनाजोंके दानोंके बाह्य आच्छादनोंमें ही खनिज लवण अधिक रहते हैं। इन आच्छादनोंको हटा देनेसे सफेद आटे और छँटे चावलमें इनकी मात्रा कमहो जाती है। इन लवणोंकी न्यूनतासे दाँतों और हड्डियोंकी बनावट ठीक–ठीक नहीं होती और फेफड़े, हृदय और वृक्क (Kidney) ही अपना कार्य सुचारु रूपसे, करते हैं । आहारके खनिज तत्त्वोंमें कालसिमय सबसे अधिक महत्व का है। हड्डियों और दाँतोंकी बनावटमें, हृदयके सुचारू रूपसे कार्य करनेमें, शरीर कहीं कट जाय, तो रक्तको जमाकर, बहानेसे बचानेके लिये, भोजनके कुछ अंशोंको समुचित रीतिसे परिपक्व होनेके लिये कालसियमकी आवश्यकता होती है। कुछ खाद्य पदार्थोंमें कालसियम होता और कुछमें नहीं होता है। इसकी न्यूनतासे शरीरकी दुर्बलता, अस्थियोंकी मृदुलता और दाँतोंका शीघ्र क्षय होता है। गेहूँ, चावल, मडुआ, मक्का, आलू, मूली, गाजर, चुकन्दर, शक्कर, साबूदाना और माँसमें पर्याप्त कालसियम नहीं होता। दूध, मट्ठे, अंडेके पीत भाग, बादाम, दाल और सब प्रकारके फल और हरी पत्तीदार तरकारियोंमें पर्याप्त कालसियम होता है। यदि हमारे भोजनमें ये पदार्थ रहें, तो पर्याप्त कालसियम प्राप्त होगा। कालसियमकी दृष्टिसे दूध सबसे अधिक महत्त्वका भोजन है। बच्चोंके लिये डेढ़ पाव दूध में प्रतिदिनके लिये पर्याप्त कालसियम रहता है। बच्चों और स्त्रियोंके लिये अन्य मनुष्योंसे अधिक कालसियमकी आवश्यकता होती है।

अस्थियों और दाँतोंमें कालसियम फास्फेटके रूपमें फास्फरस रहता है। शरीरके प्रत्येक कोषमें फास्फरस रहता है। शरीरकी वृद्धि और कोषोंके बहुलीकरणके लिये फ़ास्फरस अत्यावश्यक है। रक्तका भी यह एक आवश्यक अंश है। दूध, मट्ठे, अंडे, दाल, बादाम, गेहूँ, जौ, पालक, मूली, ककड़ी, गाजर, फूलगोभी, माँस और मछलीमें फास्फरस पर्याप्त मात्रामें रहता है। फास्फरस और कालसियमके अभावमें दाँतों और अस्थियोंकी वृद्धि पूर्ण रूपसे नहीं होती। अतः हमारे भोजनमें कालसियम और फास्फरस पर्याप्त मात्रमें रहना चाहिये। रक्तमें लोहा रहता है। रक्तके लाल होनेका कारण लोहाही है। ग्क्तके द्वाराही आक्सीजन फेफड़ेसे शरीरके प्रत्येक भागमें जाता है। रक्तमें लोहेका अंश न्यून होनेसे आक्सीजन, पर्याप्त मात्रमें, शरीरके प्रत्येक भागमें, नहीं जाता, जिससे निर्बलता, थकावट, पाण्डुता इत्यादिके रोग होते हैं। मांस, अंडा, दाल, अनाजके दाने, पालक, प्याज, मूली, मकोई, तरबूज, ककड़ी, टोमाटो इत्यादि में लौहके अंश विद्यमान हैं। अनेक कार्योंके लिये शरीरमें नमककी आवश्यकता होती है। इससे रक्त उचित संङ्घटनका रहता, तन्तुओंमें जल उचित मात्रामें रहता और शरीरके विभिन्न अंग अपना कार्य समुचित रूपसे करते हैं। निरामिष भोजनमें नमककी मात्र अल्प होती है। माँसमें नमक पर्याप्त रहता है। अतः मांसाहारियोंको अलगसे नमक खानेकी आवश्यकता नहीं होती; पर जो निरामिषभोजी हैं, उनके आहारमें नमक अवश्य रहना चाहिये। सब खनिज लवण जलमें कुछ न कुछ घुलते हैं। अतः तरकारियोंको उबालकर उनका जल फेंकना बड़ी भूल है। उस जलको तरकारियोंके साथ मिलाकर पकाना और खाना चाहिये। खनिज लवणोंके अभावमें दुर्बलता, अस्थियोंकी वृद्धिकी रुकावट, उनकी मृदुलता, मन्दाग्नि (पाचन–शक्ति का ह्रास),

पेचिश, रक्तकी अम्लता इत्यादि होते हैं। खनिज लवणोंको शरीरके तन्तुओंके साथ पूर्ण रूपसे सम्मिलित होनेके लिये विटामिनकी आवश्यकता होती है।

वसा

चरबी वाले पदार्थ शरीरमें ताप और शक्ति उत्पन्न करते हैं। प्रोटीन या कार्बोहाइड्रेटसे जितना ताप उत्पन्न होता है, उससे प्रायः दुगुना ताप चरबी वाले पदार्थोंसे उत्पन्न होता है। भावी भोजनके लिये भी शरीरमें चरबी संग्रहीत रहती है। यह चमड़ेके नीचे एकत्र होती है, जहाँ कम्बलके सदृश आच्छादन बनकर शरीर तापको नष्ट होनेसे बचाती है। इससे तन्तु सुदृढ़ होते और शरीरके ढाँचे भरते हैं। उद्भिज्ज–तैलों और जन्तुओंकी चरबियों, दोनोंसे ही ताप उत्पन्न होता है; पर चरबियाँ शीघ्रतासे पच जाती हैं। इसका कारण यह है कि इन चरबियोंमें विटामिन होता है, जो उद्भिज्ज–तैलोंमें बिलकुल नहीं होता। दूध, मक्खन और बहुधा घीमें विटामिन होता है। अतः इनका अवश्य सेवन करना चाहिये। जो माँस भक्षण करते हों, उन्हें अँडे, माँस, मछली और मछलियोंके तैलोंका व्यवहार करना चाहिये। जो माँस नहीं खाते हों और जिन्हें घी, मक्खन तथा दूध न मिल सकता हो, उन्हें पालक, मेथीके सदृश हरी पत्तीदार तरकारियाँ, टोमाटो, और गाजर के सदृश रंगीन हरी तरकारियाँ खानी चाहिये ।

चरबीसे शरीरमें शक्ति आती और विटामिनकी प्राप्ति होती है। तन्तु इससे सुदृढ़ होते और शरीरका ताप सुरक्षित रहता है। इससे शरीरके ढाँचे भरते हैं, जिससे शारीरिक सौन्दर्यकी वृद्धि होती है। यह आँत और आमाशयको चोटसे बचाता है। शरीरको कालसियमसे सम्मिलित करनेमें सहायता भी करता है। यदि आहारमें पर्याप्त वसा न हो, तो हाथों और पैरोंमें जलके इकट्ठे होनेसे सूजन होती है, जिसे शोथ रोग कहते हैं। शरीरको रोगोंके कीटाणुओंसे सुरक्षित रखनेमें भी यह सहायता करती है। शैशवावस्था और बचपनमें वसाकी अधिक आवश्यकता होती है। पीछे इसकी उतनी अधिक आवश्यकता नहीं होती। आहार आवश्यकतासे अधिक होनेसे मन्दाग्नि एवम् मलावरोध होता और अस्वस्थ स्थूलता आती है। वसाके समुचित दहनके लिये विटामिन 'ए' और 'बी' तथा कार्बोहाइड्रेट और आयोडीनकी आवश्यकता होती है।

कार्बोहाइड्रेट

इससे भी शरीरका ताप उत्पन्न होता है। स्टार्च और शर्करा इसके अन्तर्गत आते हैं। स्टार्च चावल, गेहूँ, जौ, साबूदाना इत्यादिसे प्राप्त होता है। शर्करा चीनी, गुड़ और मधु से प्राप्त होती है। माँसमें बहुत अल्प कार्बोहाइड्रेट रहता है। दूधमें दुग्ध शर्कराके रूप में, प्रायः 5 प्रतिशत तक शर्करा रहती है। अधिकांश स्टार्च और शर्करा उद्भिज्ज उद्गमोंसे प्राप्त होती है। निम्नलिखित पदार्थोंमें कार्बोहाइड्रेट विद्यमान है। ऊपरसे नीचेके वर्गोंमें इसकी मात्रा क्रमशः न्यून होती जाती है

(1) श्वेत और धुँधला शक्कर, गुड़ और मधु,
(2) साबूदाना और अरारोटके आटे,
(3) अनाजके दाने, चावल मक्का, मडुआ, जौ, गेहूँ, बाजरा इत्यादि,
(4) सूखे हुए फल,
(5) चना और अन्य दालोंके अनाज,
(6) अखरोट, बादाम, फलोंके बीज, मटर, और सेम,
(7) आलू, लहसुन, मूली, प्याज इत्यादि मूल वाली तरकारियाँ,

(8) ताजे फल,

(9) हरी पत्तीदार तरकारियाँ।

कार्बोहाइड्रेटोंके लिये यह आवश्यक है कि, खाद्य पदार्थोंका चुनाव ऐसा हो कि, न तो उसमें शर्करा और गुड़के सदृश कार्बोहाइड्रेटोंका बाहुल्यही हो और न तो फलों और तरकारियोंके सदृश पदार्थोंमें कार्बोहाइड्रेटोंकी इतनी न्यूनताहो कि उनको इतनी अत्यधिक मात्रामें खाना पड़े कि, आमाशय और आँतें उन्हें स्वीकृत करनेमें समर्थ ही न हों! ऐसे पदार्थोंका खाना भी वर्जित है, जिसमें आवश्यकतासे अधिक प्रोटीन विद्यमान हो; अतः हमारे भोजनमें उपयुक्त कार्बोहाइड्रेटोंमें सबमेंसे थोड़ा–थोड़ा रहना चाहिये, ताकि सब मिलकर पर्याप्त कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज लवण और विटामिन प्रदानकर सकें।

अनाजोंका अधिकांश स्टार्च होता है। इनमें थोड़े अंशमें प्रोटीन, चरबी और खनिज लवण होते हैं। ताप और शक्ति उत्पन्न करनेकी दृष्टिसे सभी अनाज प्रायः बराबर हैं। फलोंमें शर्कराका अंश अपेक्षाकृत अधिक रहता है। हमारे भोजनमें कार्बोहाइड्रेट सबसे सस्ते पदार्थ हैं। ताप और शक्ति उत्पन्न करनेके अतिरिक्त इनसे प्रोटीन और वसाके उपयुक्त प्रयोगमें भी शरीरको सहायता प्राप्त होती है। हमारे भोजनमें कार्बोहाइड्रेटोंकी मात्रा अधिक होनेसे इनका बहुत कुछ अंश आँतोंमें रहकर सड़ता और उससे क्षोभजनक अम्ल और गैसें बनती हैं, जिनसे खट्टी डकारें आतीं तथा मन्दाग्नि, संग्रहणी, दस्त इत्यादि रोग होते हैं।

विटामिन

यह निर्विवाद सिद्धहो चुका है कि, मनुष्यके आहारमें विटामिन नामक पदार्थका रहना अत्यावश्यक है। इसके अभावमें शरीरकी वृद्धि रुक जाती, सन्तानोत्पत्तिकी शक्ति नष्टहो जाती, अनेक रोग होते और अन्तमें वृद्धावस्था और मृत्यु शीघ्रहो जाती है। अब तक प्रायः 6 प्रकारके विटामिनोंका, निश्चित रूपसे, पता लगा है। इसके अतिरिक्त 3 और विटामिनोंकी उपस्थितिके विषयमें घोषणाहो चुकी है: पर निश्चित रूपसे अभी उनके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता। इन विटामिनोंको विटामिन 'ए', विटामिन 'बी', विटामिन 'सी', विटामिन 'डी', विटामिन 'ई', और विटामिन 'जी' कहते हैं।

विटामिन 'ए'

यह वसामें विलेय होता है। इसके अतिरिक्त ईथर, अलकोहल और कुछ–कुछ पानीमें घुलता है। साधारणतः पकानेसे यह विशेष नष्ट नहीं होता; पर यदि पकाना देर तक हो और पकानेके समय सामग्री वायुमें खुली रहे, तो विटामिन 'ए' बहुत कुछ नष्टहो जाता है। आहारमें यदि इसकी मात्रा आवश्यकतासे अधिकहो, तो यह भविष्यके लिये सञ्चित रहता है। मनुष्यके शरीरमें यह स्वयम् उत्पन्न नहीं होता। पौधोंकी हरी पत्तियोंपर सूर्य–प्रकाशके द्वारा यह उत्पन्न होता है। शरीरकी वृद्धि और जीर्णोद्धारके लिये यह विटामिन अत्यावश्यक है। इससे रक्त, उपयुक्त दशामें रहता तथा रक्त–तन्तुओं और रगोंमें जलका सञ्चय नहीं होता। संक्रामक रोगोंसे सुरक्षित रखनेके लिये इसकी विशेष आवश्यकता होती है। इस विटामिनके अभावमें शरीरकी वृद्धि रुक जाती, आँखोंकी सूजन, अन्धापन, रात्रिको अन्धापन, सरदी, फेफड़ेकी सूजन, क्षयी, आँतोंकी सूजन, संग्रहणी, दस्त, जलोदर, पथरी इत्यादि रोग होते हैं।

काडलिवर तैल, मछलीके तैल, अंडे, मक्खन, घी, दूध, हरी पत्तीदार तरकारियों–पालक,

पातगोभी, शलजम पत्तियाँ, चुकन्दर पत्त्यिाँ, मूली पत्तियाँ इत्यादि गोभी, गाजर, शकरकन्द, टोमाटो, अँकुरे हुए दानोंमें इसका विशेष अंश रहता है। काडलिवर तैलसे एक कार्बनिक यौगिक निकाला गया है, जिसका सूत्र C_{12} H_{42} $(OH)_2$ है। ऐसा समझा जाता है कि यही यौगिक विटामिन 'ए' हैं।

विटामिन 'बी'

यह जलमें शीघ्रतासे घुल जाता है। यह कुछ–कुछ अलकोहलमें भी घुलता है। यह प्रोटीनके साथ संयुक्त पाया जाता है। गर्मीसे यह शीघ्र नष्ट नहीं होता। आम्लिक विलयनमें यह अधिक स्थायी होता है। टीनमें भरकर रखनेसे बहुत कुछ नष्टहो जाता है। यदि भोज्य पदार्थका उबाला हुआ जल फेंक दिया जाय तो इसका बहुत कुछ अंश नष्टहो जाता है। पौधों में यह मिट्टी और वायु से आता है। अतः साधारणतः यह पौधों के फलों और मूलों में ही अधिक पाया जाता है। हरी पत्तियों में भी यह पाया जाता है। शरीर निर्माण और जीर्णोद्धारके लिए तथा स्वास्थ्यके लिए यह आवश्यक है। इसकी न्यूनतासे बेरी बेरी नामक रोगके लक्षण प्रकट होते हैं। ईस्ट, अंडा, टोमाटो, पालक, शलजम, मूली पत्तियाँ अनाजके पूरे दाने, गेहूँ, जौ, मक्का सेम, मटर, चना, अखरोट, बादाम, बाजरा, प्याज, आदिमें इसकी मात्रा विशेष रहती है।

विटामिन सी

विटामिनसी रोगोंसे सुरक्षित रखनेके लिए अत्यावश्यक है। और अल्कोहल में शीघ्र ही घुल जाता है। पकाने से प्रायः सारा अंश नष्ट हो जाता है। सुखाने और टीन में रखने से भी यह बहुत कुछ नष्ट हो जाता है। इस विटामिन की प्राप्ति के लिए कच्चे, बिना पकाए हुए फलों और तरकारियों का नित्य सेवन आवश्यक है। शरीरके रक्तको शुद्ध और समुचित संघटनका रखनेके लिये, अन्य विटामिनोंको शरीरके निर्माणमें विशेष दाँतों और अस्थियोंके निर्माणमें, सहायता प्रदानके लिये, शरीर की आँतोंको स्वस्थ दशामें रखने और शरीरको रोगके कीटाणुओंसे सुरक्षित रखनेमे सहायताके लिये विटामिन 'सी'–की आवश्यकता होती है।

यह ताजी हरी पत्तियों और ताजे फलोंमें विशेष रूपसे विद्यमान रहता है। अँकुरे हुए अनाजों, मटर चना इत्यादिमें इसकी विशेष मात्रा रहती है। ताजे नीबू, नारंगी, टोमाटो और इनके रसों कच्चे गाजर, शलजम–पत्तियाँ, कच्चे आलू, तथा नारंगीके छिलकोंमें यह विशेष पाया जाता है।

विटामिन 'डी'

यह वसामें विलेय होता है। यह केवल जान्तव पदार्थों, दूध, मक्खन, घी, अंडे और मछली तैलोंमें ही पाया जाता है। काडलिवर तैलमें इसकी मात्रा विशेष रहती है। वानस्पतिक तैलोंमें यह नहीं होता; पर यदि इन तेलोंको छिछले पात्रमें सूर्य–प्रकाशमें रखा जाय, तो उनमें यह आ जाता है । मनुष्यके चमड़ेपर सूर्य प्रकाशकी क्रियासे भी यह उत्पन्न होता है । यदि शरीरमें तैल मर्दनकर कुछ समयके लिये सूर्य प्रकाशमें खड़े रहें, तो शरीरमें इसकी पर्याप्त मात्रा उत्पन्नहो जाती है। ऐसा समझा जाता है कि, चमड़ेमें एर्गोस्टेरोल (Ergosterol) नामक एक पदार्थ है, जो सूर्य प्रकाशके द्वारा विटामिन 'डी' में परिवर्तित हो जाता है। इसके अभावमें बच्चोंकी हड्डियाँ कोमल और टेढी हो जाती हैं। वे कुबड़े हो जाते हैं। युवा मनुष्योंमें हड्डियोंके कोमल होने का रोग (Osteomalachia) हो जाता है। यह रोग पर्दानशीन स्त्रियोंमें बहुत अधिक पाया जाता है। इस विटामिनकी न्यूनतासे बच्चै चन्चल,

क्रोधी और जिद्दी हो जाते हैं। उन्हें निद्रा कम आती और उनके पुट्ठे और गाँठे ढीली पड़ जातीं तथा हड्डियाँ कोमल हो जाती हैं। ऐसे बच्चे जल्दी खड़े नहीं होते और न जल्दी चलते–फिरते ही हैं। उन्हें कब्ज हो जाता और पेट निकल आता है। इसकी न्यूनतासे दाँत अच्छे नहीं होते और शीघ्र नष्ट भी हो जाते हैं।

विटामिन 'ई'

यह भी वसामें विलेय होता है। इसके अभावमें सन्तानोत्पत्तिको शक्ति नष्टहो जाती है। सन्तानोत्पत्तिके लिये यह अत्यावश्यक है। यह पौधों और जन्तुओंमें बहुत विस्तृत पाया गया है। सन्तानोत्पत्तिके लिये इसकी, अत्यल्प मात्रामें, आवश्यकता होती है।

विटामिन 'जी'

शरीरकी वृद्धि और परिपुष्टिके लिये सभी अवस्थाओंमें इस विटामिनकी आवश्यकता होती है। इसकी न्यूनतासे पाचन–शक्तिका ह्रास होता, स्नायु–शिथिलता और बहुधा चर्म रोग होते, संक्रामक रोगोंसे बचनेकी शक्तिका ह्रास होता, बच्चोंकी वृद्धि रुक जाती, वृद्धावस्था शीघ्र आ जाती और मनुष्य अल्पायुहो जाते हैं। कुछ डाक्टरोंके मतानुसार इसके अभावसे पैलाग्रा नामक रोग भी होता है। यह विटामिन दूधमें विशेष रूपसे विद्यमान रहता है। अन्य खाद्य पदार्थोंके सम्बन्धमें अधिक अन्वेषण नहीं हुए हैं, पर इस विषयमें जो कुछ हुए हैं, उनसे पता लगता है कि, यह अँडे, माँस, हरी और पीली तरकारियोंमें भी पर्याप्त मात्रामें है। दूधके उबालनेसे यह नष्ट नहीं होता।

सारांश

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उससे हम निम्न–लिखित सिद्धान्त पर पहुँचते हैं – हमारे नित्यके आहारमें दूध या दूधके सामानका रहना आवश्यक है। यदि दूध पर्याप्त मात्रामें रहे तो अँडा, माँस और मछली खानेकी बिल्कुल आवश्यकता नहीं। आटा, चावल और दाल तो साधारणतः हमारे आहारमें रहते ही हैं। सफ़ेद आटे और छंटे हुए चावल एक खानेसे बहुत उपयोगी अंश, विटामिन और खनिज, नष्ट हो जाते हैं। चोकरके साथ आटा और बिना छँटा हुआ चावल सबसे उत्तम है। नींबू, नारंगी, टोमाटो, मूली, प्याज, गाजर और हरी मिर्चका सेवन नित्य करना चाहिए। अंकुरे हुए चने या मटरमें आवश्यक विटामिन होते हैं। पकाये भोजनोंमें हरी तरकारियाँ अवश्य रहनी चाहिए। खनिज लवण और विटामिनकी दृष्टिसे पालक मेथी, पातगोभी अच्छी है। पकाते समय इन तरकारियोंके उबाले जलको फेंकना नहीं चाहिए। आहारमें कुछ सामयिक ताजे फल नासपाती, सेब, आम, अमरूद, बेर, ककड़ी, तरबूजका रहन स्वास्थ्यकी दृष्टिसे अच्छा है। मिष्ठान्नोंका यथासम्भव कम सेवन करना चाहिए। टीनमें सुरक्षित पदार्थों, विशेषतः फलोंके सेवनसे विशेष कोई लाभ नहीं होता। अतः जहाँ तक सम्भवहो टीनमें सुरक्षित पदार्थोंका सेवन नहीं करना चाहिए।

फलों की रक्षा और व्यवसाय*

बालगोविन्द प्रसाद श्रीवास्तव

आर्थिक दृष्टिसे फल–व्यवसायका महत्त्व बहुत बड़ा है; पर खेदकी बात है कि, हमारा ध्यान इस ओर नहीं हैं। पहलेके लगाये हुए बागीचे द्वारा जो फल सालमें प्राप्तहो जाता हैं, उसी को बेचकर हम सन्तुष्टहो जाते हैं; न तो उससे अधिक पैदावार बढ़ानेका ही प्रबन्ध करते हैं और न उनकी रक्षाका ही। शायद कोई भी ऐसा फल नहीं, जो हमारे देशमें कहीं–न कहीं पैदा न होता हो। माना कि, हम सब प्रकारके फलोंकी खेती नहीं कर सकते; पर जिसकी कर सकते हैं, उसकी ओर भी तो ध्यान नहीं देते। यदि अंगूर, अंजीर, सेब और अखरोटकी खेती करना कष्टकर और असाध्य हो, तो आम, कटहल, अनार, अमरूद, नीबू, नारंगी और जामुनकी खेती तो आसानीसे कर सकते हैं? पर करे कौन? दस रुपयेकी नौकरीके लिये चार वर्ष तक उम्मेदवारी करना हमारे लिये आसान है; किन्तु दस वृक्ष लगाकर चार पैसे पैदा करना अत्यन्त कठिन है। हमारे देशमें आम एक ऐसा फल है, जो संसारके अनेक देशोंमें नहीं पाया जाता। तो भी हमने आज तक इस अपूर्वतासे कोई लाभ नहीं उठाया और न निकट भविष्यमें उठानेकी उम्मीदही है। यह इसलिये कि, हम लोग फलोंकी रक्षा करना नहीं जानते। इस कलामें विदेशी बड़े निपुण हैं। फलही क्या, मछली, मांस दूध, शाक–भाजी और कितनेही अन्यान्य पदार्थ ऐसे हैं, जिनका रोजगार विदेशी बड़े कौशलसे करते है। वैज्ञानिक तरीकोंसे उन्हें वायु–शून्य बर्तनोंमें भरकर गैर–मुल्कोंको भेजा जाता है। चीजें सालों तक नहीं बिगड़तीं। हम स्वयं नित्य ही ऐसी चीजोंका उपयोग किया करते हैं। यदि हम इस कलामें सिद्धहस्त होते, तो आमके ही व्यवसाय द्वारा कितना धन कमा लेते? पर हो कैसे? हम लोग तो रुपयोंसे कौड़ियाँ बनाना जानते हैं, कौड़ियोंसे रुपया बनाना तो विदेशियोंका ही काम है।

अमेरिका वालोंने इस विषयमें कमालकर दिखाया है। एकही फलकी कई किस्में पैदा करना और उन्हें वैज्ञानिक रीतिसे वर्षोंतक सुरक्षित रखना उनके बायें हाथका खेल है। इस कामके लिये एक दो नहीं, हजारों कारखाने चलते हैं, जिनमें लाखों मनुष्य प्रतिदिन काम करते हैं।

व्यवसायकी दृष्टिसे भारतवासियोंके लिये यह एक सुन्दर कार्य है। आम एक ऐसा फल है, जिसकी चाह भारतमें ही नहीं; अब विदेशों भी होने लगी है। यदि इस ओर ध्यान न दिया गया, तो वह दिन दूर नहीं, जब कि, विदेशसे आमोंका चालान भारतमें आने लगेगा और इसके लिये करोड़ों रुपये यहाँसे बाहर जाने लगेंगे।

फल पकनेके बाद स्वाभाविक रीतिसे वह दो–चार दिनोंसे अधिक नहीं टिक सकता; क्योंकि किराया या खमीर (Ferment) पैदा करने वाले कीड़े फलोंके भीतर प्रवेशकर उन्हें पचा डालते हैं।

---

* *गंगा*, फरवरी 1934

इसलिये फल शीघ्रही सड़कर खराब हो जाता है। यदि इन कीटाणुओंको नष्ट करके फलोंको वायु–शून्य बर्तनमें रख दें, तो वे नष्ट न होगें; और उनका स्वाद, गन्ध, रंग, आकृति प्रायः ताजे फलके मुताबिक ही रहेंगे। रक्षाके उपयुक्त वे ही फल होते है, जो ज्यादा कच्चे, ज्यादा पक्के, दाग लगे या पचके हुए न हों। फलोंमें जब रंगत आने लगे, तभी उन्हें तोड़कर काममें लाया जाना चाहिये। फल–रक्षाकी विधिपर ये बातें ध्यानमें रखनी चाहिये–पहले फलका छिलका अलग–अलग करना चाहिये, फिर उसको साफ ठंडे पानीमें अच्छी तरहसे धोना चाहिये। फल यदि बड़ा हो, तो उसके दो भाग करके भीतरकी गुठली निकाल डालनी चाहिये; क्योंकि फलको सिझाते वक्त गुठलीसे एक प्रकारका तिक्त रस निकलकर फलके स्वादको नष्टकर देता है। इसलिये साधारण तौर पर गुठलीको निकाल देनाही अच्छा है। इसमें बड़े फल डिब्बोंमें आसानीसे भरे जा सकते हैं। इसके बाद कच्चे–पक्के सब फलोंको टीनके डिब्बोंमें भरकर प्रायः मुँह तक उनमें शर्बत भर देना चाहिये। शर्बतके बदले जल भरनेसे भी काम चल सकता है; किन्तु फलका स्वाद कुछ बिगड़ जाता है। अतएव शर्बतका उपयोग करना ही उचित है। जलके साथ चीनी मिलाकर शर्बत तैयारकर लेना चाहिये। शर्बतका परिमाण अपने–अपने स्वादपर निर्भर है। किस फलमें कितनी शक्कर देनी चाहिये, यह परीक्षा करके स्थिरकर लेना चाहिये।

फल और शर्बत भर देनेके बाद टीनके डिब्बोंके मुँह पर ढक्कन लगाकर उन्हें झाल[1] देना चाहिये। फिर डिब्बोंको गरम जलकी कड़ाहीमें, छेदको ऊपर रख कर, डुबो देना चाहिये। छेद अत्यन्त छोटा होनेके कारण बाहरका जल भीतर और भीतरका शर्बत बाहर नहीं आ–जा सकेगा। इसी प्रकार छोटे डिब्बोंको 4–5 मिनट और बड़ोंको 7–8 मिनट तक डुबाये रखनेसे उनके भीतरकी वायु उत्ताप पाकर छेदके द्वारा बाहर निकल जायगी। इसके बाद गरम जलसे निकालकर तुरतही इनके छेदोंको डाटसे बन्दकर देना चाहिये। देर करनेसे काम बिगड़ जायगा; क्योंकि अत्यन्त गरम दशामें डिब्बोंके भीतरकी खाली जगह जलीय भापसे भरी रहती है और उसमें वायु बिलकुल नहीं रहती। देर करनेसे भाप ठंडाहो जाता है और उसके स्थानमें वायु प्रवेशकर जाती हैं। यह वायु बादमें फलोंको खराबकर देती है। वास्तवमें इस वायुको निकाल देनेके लियेही यह क्रियाकी गयी थी।

छेद बन्द कर देनेके बाद डिब्बोंको फिर खौलते हुए जलके कड़ाहमें डुबोकर उनके फलोंको सिझाना चाहिये। यह क्रिया फलोंके भीतर वाले कीटाणुओंको मार डालनेके लियेकी जाती है। कितनी बार कितना उत्ताप देनेसे फलके कीटाणु मर जाते हैं, यह बात ठीक–ठीक नहीं कही जा सकती; क्योंकि भिन्न–भिन्न प्रकारके फलोंमें भिन्न–भिन्न प्रकारके कीटाणु होते हैं। परन्तु अंदाजसे यह कहा जा सकता है कि 20–30 मिनट तक खौलते हुए जल (100^{0}) के उत्तापमें सिझानेसे प्रायः सब फलोंके कीटाणु मर जाते हैं। पर यह सिझाना फलोंकी अवस्थापर भी निर्भर है। जैसे कच्चे फल पक्के फलकी अपेक्षा ज्यादा देर तक और खूब पके फल भी थोड़ी देर तक और सिझाना चाहिये। डिब्बोंमें भरते समय फलोंका श्रेणी–विभागकर लेना चाहिये; क्योंकि अलग–अलग प्रकारके फलोंको अलग–अलग समयकी आवश्यकता होती है। सिझानेका समय, उत्तापकी मात्रा, मीठेका परिमाण इत्यादि बातें फलों की अवस्थापर निर्भर हैं। इन बातोंके लिये कोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता।

निर्दिष्ट समयमें फलोंके सीझ जानेपर डिब्बोंको गरम जलमें से निकालकर ठंडे जलके कड़ाहमें डुबो देना चाहिये, क्योंकि अगर तुरन्तही डिब्बे ठंडे न किये जाँय, तो उनके भीतर जो उत्तापके द्वारा सिझानेका काम चलता रहता है, वह बहुत देर तक चलता रहेगा और इससे फल ज्यादा सीझकर बिलकुल खराब हो जायँगे। 5–7 मिनट तक ठंडे जलमें डुबाये रखनेके बाद डिब्बे

ठंडेहो जायँगे; फिर उनको ठंडे जलसे निकालकर जिधरकी तरफ मुँह झाला गया हो, उधर नीचा करके खड़ाकर देना चाहिये। उस समय विशेष दृष्टिसे देख लेना चाहिये कि, डिब्बोंमें से किसी ओरसे भीतरका शर्बत चू तो नहीं रहा है? यदि किसी डिब्बेमें कुछ सन्देह हो, तो उसी समय उसे ठीक कर देनेके लिये अलगकर देना चाहिये। हर तरहसे सन्तुष्टहो जानेके बाद डिब्बोंपर लेबिल लगाकर सन्दूकोंमें भर देना चाहिये। डिब्बोंकी संख्या सन्दूकके आकारपर निर्भर है।

फलोंकी रक्षाके निमित्त मुख्य काम ये हैं—

(1) फलका छिलका अलग करना और गुठली निकालना (Peeling)

(2) श्रेणी–विभाग करना (Sorting)

(3) डिब्बोंमें भरना (Canning)

(4) डिब्बोंमें शक्करका शर्बत भरना (Syruping)

(5) हवा बाहर करनेके लिये खौलते हुए जलके कड़ाहमें डुबाना (Airtighting)

(6) ढक्कन लगाना (Capping)

(7) छोटा छेद बन्द करना (Soldering)

(8) सिझाना (Cooking)

(9) ठंडे जलके कड़ाहमें डुबाना (Cooling)

(10) झले हुए मुँहको नीच रखकर खड़ा करना

(11) लेबिल लगाना (Labelling)

(12) लकड़ीकी सन्दूकोंमें बन्द करना (Casing)

विदेशी इन कामोंके लिये अनेक प्रकारकी बोतलें और डिब्बे काममें लाते हैं। परीक्षार्थियोंको मँगाकर उनका उपयोग करना चाहिये और देशमें उसी प्रकारके बर्त्तनोंको तैयार कराकर काममें लाना चाहिये। फलोंकी रक्षाविधिपर ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह इस विषयका दिग्दर्शन मात्र है। इस व्यवसायको करनेके लिये यदि हम तैयार होकर इस विषयकी ओर भली भाँति ध्यान दें, तो इससे भी अच्छी तरकीबें निकाल सकते हैं। विदेशियोंका खयाल है कि, भारतवर्षमें इतना आम पैदा होता है कि फल रक्षाके हजारों कारखाने भली भाँति चल सकते हैं।

पर भारतवर्षमें आज तक इस विषयपर ध्यान नहीं दिया गया। जैसा कि समाचारपत्रोंसे मालूम हो रहा है कि, थोड़ेही समयमें विलायत आमके फलको नाना प्रकारसे तैयार करके भारतवर्षमें भेजने लग जायगा। इसी साल इतना आम फला था कि, इस प्रकारके कारखानों द्वारा लाखों रुपया पैदा किया जा सकता था; पर इस विज्ञानका अभाव होनेके कारण सारा फल एक महीनेमें पच खप गया। हमारे देशमें नवयुवक यूनिवर्सिटियोंमें केवल डिग्रीही प्राप्त करनेके लिये विज्ञान पढ़ते हैं। यदि पढ़े–लिखे नवयुवकोंका ध्यान इस ओर जाता, तो यह काम इतने दिनों तक अछूता न रहता। इस कामके लिये विशेष धनकी भी आवश्यकता नहीं है, कलाका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये भी कहीं जाना नहीं है। मामूली परिश्रम और लगनसे इस विषयका अच्छा ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। आशा है, देश के शिक्षित नवयुवक इस विषयकी ओर शीघ्र ध्यान देंगे।

डाक्टर वामनराव कोकटनूर*

श्यामनारायण कपूर, बी.एस–सी.

आप दक्षिण भारत के अथणीं ग्राम के रहने वाले हैं। आपको आरम्भिक शिक्षा अपने गाँव में ही दी गयी। ग्रामीण शिक्षा समाप्त कर लेने पर आप पूना के न्यू हाई स्कूल में भेजे गये। स्कूल में भर्ती हो जाने के कुछ ही दिनों के बाद अपनी कुशाग्र बुद्धि के कारण आप अध्यापकों के प्रिय पात्र बन गये। आपने संस्कृत का भी अध्ययन किया। हाई स्कूल की परीक्षा में आप सर्व–प्रथम उत्तीर्ण हुए। कालेज में जाकर आपने अपने कोर्स के अलावा, आरोग्यशास्त्र, व्यायामशास्त्र, मानसशास्त्र और पाकशास्त्र आदि का भी अध्ययन भली भाँति किया।

फर्ग्यूसन कालेज में विद्यार्थी रहते हुए भी आपने एक कूकर का आविष्कार किया। यह कूकर कुछ ही दिनों में सर्व–प्रिय बन गया। आपने इसे पेटेंट करा दिया। कूकर के इस्तेमाल के तरीके समझाने के लिये आपने एक 'कूकर गाइड' नामक पुस्तक भी लिख डाली।

1911 ई. में आपने विलसन कालेज से बी.एस–सी. की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद आप "रानाडे इकनामिक इंस्टीट्यूट" में प्रो. डी.वी. लिमेथ साहब के साथ वैज्ञानिक शोध का काम करने लगे। इस संस्था में आपने 6 मास तक काम किया।

अमेरिका–प्रवासी भारतीय सरदार गोविन्द सिंह ने स्वावलम्बी भारतीय छात्रों को अमेरिका में अध्ययन करने के लिये कुछ छात्र–वृत्तियाँ देने की सूचना प्रकाशित करायी थी। उनमें एक छात्रवृत्ति प्राप्त करने का मौका आपको मिल गया। शीघ्र ही आप 1500 रुपए संग्रह करके अमेरिका के लिये रवाना हो गये।

न्यूयार्क पहुँच कर आप फौरन केलीफोर्निया के लिये रवाना हुए। जिस समय आपने केलीफोर्निया में पैर रखा, उस समय आपकी टेंट में सिर्फ 5 डालर की छोटी–सी रकम थी।

जिस छात्र–वृत्ति के बल पर आपने अमेरिका की यात्रा की थी, उस छात्र–वृत्ति का नाम "आलू छात्रवृत्ति" था। सरदार साहब अमेरिका में आलू की खेती करते थे। सरदार साहब को आलू की खेती में पूर्ण लाभ होने की पूरी आशा थी; और, आपने उसी आशा पर 12 भारतीय छात्रों को छात्रवृत्तियाँ देने का संकल्प किया था।

दुर्भाग्यवश आलू की पैदावार में टोटा आया, और सरदार साहब छात्रों के सिर्फ रहने मात्र का एक टूटा–फूटा मकान और खाने के लिये आलू ही दे सके। भारतीय छात्र आलू पर ही सोचा करते थे। आपसे तकलीफ बरदाश्त न हो सकी; और, आपने छात्र–वृत्ति से इस्तीफा दे देने का निश्चय कर लिया।

---

* *गंगा*, मई 1934

छात्र–वृत्ति में जो रुपये आपको मिले थे, उसे आपने सुरक्षित रखा था। स्वदेश से भी कुछ रुपये मँगाये। इस तरह आपके पास तीन मास के खर्च का प्रबन्ध हो गया था; पर आपने इस रकम से कौड़ी तक नहीं उठायी, बल्कि मजदूरी करके अपने भोजन तथा पढ़ने–लिखने का खर्च चलाने लगे। वहाँ खेतों पर मजदूरी में तो काफी पैसे मिल जाते थे; पर अमेरिकन मजदूरों के साथ काम करना खेल नहीं था। खैर, आप स्वस्थ तथा हट्टे–कट्टे मनुष्य थे; इसलिये आपने दो ही तीन मासों में काफी रुपये जमा कर लिये। अब आपकी पढ़ाई का मार्ग और भी सरल हो गया।

जो सिक्ख सरदार सज्जन आपको छात्रवृत्ति देते थे, मतवैभिन्य के कारण आपने उन्हें छात्रवृत्ति न लेने की सूचना दे दी; और, अपने निजी धन–संग्रह के बल पर मिलेसोटा यूनिवर्सिटी में अपना नाम लिखा लिया। वहाँ के भारतीय विद्यार्थियों ने आपका सारा हाल सुनकर आपकी सहायता करने का निश्चय किया।

सौभाग्यवश उन दिनों अमेरिका में फल और अनाज का भाव सस्ता था। आप मजे में थोड़े पैसे में ही दिन काटने लगे। जिस घर में आपका निवास था, उसकी गृहस्वामिनी भी आपके मौके–बेमौके भोजन तथा वस्त्रादि का प्रबन्ध कर दिया करती थी। इन सब कठिनाइयों के बीच रहकर आपने उद्योग–धन्धों में बी.एस–सी. की परीक्षा पास की।

आपकी हार्दिक अभिलाषा थी कि, मैं फल–संवर्धन–सम्बन्धी व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करूँ। इस कारण आपने कितने ही कारखाने में लिखा–पढ़ी की; पर किसी ने आपके ऊपर खयाल नहीं किया। अन्त में एक फटी सी गन्दी कमीज पहन, कुछ मजदूरों के साथ हो, आप कारखाने वालों के सामने दाखिल हुए। मजे में आपको काम मिल गया। हफ्ते भर आपने कारखाने में, एक स्थान के माल को दूसरे स्थान पर पहुँचाने का काम करके, 7 डालर प्राप्त किये। अधिक परिश्रम पड़ने के कारण आपने काम से इस्तीफा दे दिया; और, साथ ही विश्वविद्यालय से भी। अब आपने केलीफोर्निया विश्वविद्यालय में नाम लिखाया; और, फल–संवर्धन–विज्ञान का अध्ययन शुरू कर दिया।

आपकी योग्यता और उद्यमी स्वभाव से कालेज के सभी प्रोफेसर आप पर खुश हो गये। उन प्रोफेसरों के प्रयत्न से आपको 15 डालर की एक छात्र–वृत्ति भी प्राप्त हुई। पर विश्वविद्यालय में अध्ययन करने पर भी आप मनोवांछित व्यावहारिक ज्ञान न प्राप्त कर सके; अतः आपने पुनः कारखानों में काम करना चाहा। अन्त में आप फल–संवर्द्धन–व्यवसाय के सबसे बड़े व्यक्ति "केलीफोर्निया फ्रुट केजर्स एसोशियेशन" के प्रेसिडेंट मि. वेंटले से मिले; और, अपना कार्यक्रम दिखलाया। वेंटले महाशय ने आपको कारखाने के अन्दर जाने की आज्ञा दे दी।

इतमिनान से कारखाने का प्रदर्शन हो जाने पर मि. वेंटले ने आप से वेतन की बात पूछी। आपने जवाब दिया—मैं किसी भी वेतन पर काम कर सकता हूँ। आपकी बहाली हो गयी। उस समय कारखाने में एक भी प्रयोगशाला नहीं थी। मि. वेंटले से अनुरोध करने पर एक कमरे का प्रबन्ध हो गया। आपने अपने पास से वैज्ञानिक तराजू, अणु–वीक्षण–यन्त्र तथा और भी सामानों का प्रबन्ध कर लिया। इस तरह कारखाने में अब आप फल–संवर्धन–विज्ञान तथा कार्य–प्रणाली का अध्ययन करने लगे। कारखाने के मजदूर अशिक्षित थे; इसलिये आपकी प्रयोगशाला देखकर उन लोगों को बड़ा ताज्जुब होता था। कारखाने के मैनेजर ने आज तक कीटाणु नाम की कोई चीज नहीं देखी थी। यद्यपि वहाँ का फल–संवर्धन–व्यवसाय काफी आगे बढ़ चुका था; फिर भी लोग यह बिलकुल नहीं जानते थे कि, फलों के ठीक रहने तथा बिगड़ने में कीटाणुओं का कितना हाथ रहता है। फलों के बिगड़ने या ठीक रहने के कारणों के बतलाने पर वहाँ वालों में आपको काफी प्रतिष्ठा मिली। आपको लोग "भारतीय जादूगर" कहने लगे।

इसके अलावा आपने "चावल की मिठाई" का आविष्कार करके भी वहाँ काफी प्रतिष्ठा प्राप्त की। और भी आपने इस व्यवसाय में अनेक विधियों का आविष्कार किया। फल के पक जाने पर उसकी आभा नष्ट न होने की विधियों का आविष्कार किया। आपका यह सब आविष्कार यूरोपीय देशों में भी खूब पसन्द किया गया। इससे आप बहुत उत्साहित हुए और केलीफोर्निया में पैदा होने वाले फलों को पकाकर तैयार किया। इसमें भी आपको काफी सफलता मिली।

फल–संवर्धन–व्यवसाय में आपका काफी नाम हो गया। कई सौ डालर जमा हो गये। आपके फल संवर्धन–सम्बन्धी नियमों को विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने खूब पसन्द किया; और आपको एम.एस–सी. की उपाधि से विभूषित किया। "अमेरिकन राष्ट्रीय वैज्ञानिक परिषद्" ने आपको अपना सदस्य चुन लिया। विश्वविद्यालय ने भी आपको अपना फेलो मनोनीत किया। इस फेलोशिप में आपको 500 डालर मासिक मिलने लगे। इस तरह अब आपकी सारी आर्थिक कठिनाइयाँ दूर हो गयीं। कुछ दिनों के बाद आपको अमेरिकन नागरिक के सारे अधिकार प्राप्त हो गये।

1914 ई. में आपको विश्वविद्यालय में अन्वेषक की जगह पर नियुक्त किया गया। छात्रों को पढ़ाने और वैज्ञानिक शोध में आपको काफी पैसे मिलने लगे। कुछ दिनों में विशेष रूप से आपने शोधक का कार्य किया; और, काफी सफलता भी मिली।

बाद में आपने अपनी खोजों को प्रकाशित कराया और, उस पर खुश होकर विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने आपको पी.एच–डी. की उपाधि से विभूषित किया। अब आपकी गणना अमेरिका के प्रमुख वैज्ञानिकों में होने लगी।

महायुद्ध के समय आपको सरकार ने युद्ध–सम्बन्धी रासायनिक विभाग में बहाल कर लिया। इस विभाग में आपने योग्यता–पूर्वक काम किया। युद्ध समाप्त होने पर आपको मर्थासन कम्पनी ने अपने यहाँ बुला लिया।

उन दिनों हवाई जहाजों के पंखों पर पालिश करने के लिये जो वार्निश व्यवहार की जाती थी, वह ज्वाला–ग्राही थी। इससे आग को वह बहुत जल्दी पकड़ लेती थी। कितने ही पाश्चात्य वैज्ञानिक अदाह्य वार्निश का आविष्कार करने में लगे हुए थे; पर सफलता न मिल रहीं थी। सर्वप्रथम आपने ही अदाह्य वार्निश का अविष्कार किया। यह वार्निश अदाह्य होने के साथ "जलाभेद" भी थी। इसके अलावा इसमें यह गुण भी था कि, जिस स्थान पर यह वार्निश लगा दी जाय, वहाँ हवा भी नहीं प्रवेश कर सकती। इस आविष्कार से आपका अमेरिका और यूरोप में पूरा सम्मान हुआ।

युद्ध आरम्भ होने के पूर्व अमेरिका वालों को बेनजोइक एसिड जर्मनी से ही मँगाना पड़ता था। युद्ध आरम्भ हो जाने पर जर्मनी से माल मँगाना बन्द कर दिया गया। यह एसिड खाने–पीने की चीजों का, बहुत दिनों तक सुरक्षित रखने के काम में लाया जाता था। युद्ध के समय में इसकी और भी आवश्यकता आ पड़ी। शीघ्र ही इस एसिड को तैयार करने का भार आपको सौंपा गया। आपने इसमें सफलता प्राप्त की। इस एसिड को तैयार करने के बाद आप उस कारखाने के युद्ध–विभाग के रिसर्च डिपार्टमेंट में काम करने लगे। युद्ध का अन्त हो जाने पर कारखाने का शोधक विभाग बन्द हो गया; और, आप नेशनल एनीलिन कम्पनी के रिसर्च विभाग में बुला लिये गये।

उन दिनों "इंडाथ्रीन" नामक पक्का सुर्ख रंग केवल जर्मनी ही तैयार करता था। आपने इस रंग को तैयार करने के लिये बहुत से प्रयोग किये; और, शीघ्र ही पक्का सुर्ख रंग बनाने की एक विधि ढूँढ़ निकाली। यह जर्मनी की अपेक्षा अधिक टिकाऊ निकला तथा अधिक सस्ता भी। इस रंग में बहुत मुनाफा होते देख कम्पनी ने इसे अपने नाम से पेटेंट कराना चाहा; पर आपने इनकार कर दिया; और, शीघ्र कम्पनी को त्यागपत्र भी दे दिया। 1926 ई. में आप स्वतन्त्र रूप से कंसल्टिंग केमिस्ट का काम करने लगे। इसमें आपको धन और यश, दोनों ही प्राप्त हुए।

आपने साबुन मे ग्लिसरीन निकालने की विधि में भी सुधार किया। आज से 75 वर्ष पूर्व एक फ्रेंच वैज्ञानिक ने साबुन का आविष्कार किया था। तब से बराबर बिना ग्लिसरीन निकाले ही साबुन काम में लाया जाता था, जिससे ग्लिसरीन जैसी उपयोगी वस्तु बिलकुल नष्ट हो जाती थी। आज से 25 वर्ष पूर्व ग्लिसरीन निकालने की विधि का आविष्कार हुआ था; पर उससे बड़ी–बड़ी कम्पनियाँ ही काम कर सकती थीं। आपने जिस विधि का आविष्कार किया है, उससे 1 पाउंड साबुन से भी ग्लिसरीन निकाली जा सकती है।

धांध्रा अल्कली वर्क्स के लिये एक रसायनज्ञ मैनेजर की जरूरत पड़ी; और, आप 1930 ई. की 24 अक्टूबर को स्वदेश आकर इस कारखाने में काम करने लगे। भारत में काफी मात्रा में सोडा तैयार करने वाली यह पहली कम्पनी है। आपने "कोपरन केमिकल वर्क्स" की भी स्थापना की है। इसकी बनायी हुई दाँत साफ करने की क्रीम बड़ी लोकप्रिय है। इसके अलावा इसने कितनी और भी उपयोगी चीजें तैयार की हैं।

अमेरिका के प्रमुख प्रतिष्ठित व्यक्तियों का परिचय देने वाली पुस्तकें, जैसे "अमेरिकन मेन आफ साइंस" तथा "हूज हू आफ दी ईस्ट" जैसी पुस्तकों में आपके महत्त्वपूर्ण आविष्कारों का विवरण दिया गया है। इसके अलावा कितनी ही प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्थाओं के आप फेलो भी हैं।

आप बड़े ही मिलनसार हैं। आपकी धर्म–पत्नी एक अमेरिकन महिला हैं। इनका नाम है—मिसेज हेलेन उर्फ ताराबाई कोकटनूर। विदेशी होते हुए भी श्रीमती ताराबाई भारतीय प्रश्नों और राजनीतिक समस्याओं से विशेष सहानुभूति रखती हैं। आपके दो बच्चे हैं। भगवान् आप जैसे महापुरुष का भला करे, जिससे भारत का भला हो।

भारतीय एडीसन डॉक्टर शंकर बिसे*

श्यामनारायण कपूर

डॉ. शंकर बिसे के आविष्कारों के सम्बन्ध में संक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आपकी बहुमुखी आविष्कारिणी प्रतिभा से प्रभावित होकर और आपके क्रान्तिकारी आविष्कारों को देखकर पाश्चात्य संसार ने आपको 'भारतीय एडीसन' का नाम दिया है। आपके आविष्कार केवल मौलिक ही नहीं हैं, वरन् ऐसे हैं जिनको योरपीय और अमेरिकन आविष्कारक असंभव मान कर छोड़ चुके थे। आपके आविष्कारों पर भारतवर्ष गर्व करता है और यह गर्व सर्वथा स्तुत्य भी है। आपकी सफलता का महत्व इसलिए और भी बढ़ जाता है कि वह विदेशों में प्राप्त की गयी है। आपको विदेश में रहकर आविष्कार सम्बन्धी कार्यों में लगे रहने के साथ ही अपने परिवार का भी भरण–पोषण करना पड़ता था। भारतीय होने के कारण उन दिनों आपको इंग्लैण्ड में पद–पद पर अनेक कठिनाइयों और विघ्न–बाधाओं का सामना करना पड़ता था। आपका अधिकांश समय आविष्कार के लिए समुचित धन संग्रह करने में ही लग जाता था।

आपकी टाइप ढालने की मशीनें संसार की चिर स्थायी सम्पत्ति हैं और सदैव आपका नाम अमर बनाये रखेंगी। आपकी मशीनों से काम बहुत जल्दी और बहुत ही सस्ते में हो जाता है। बिसो टाइप की सहायता से मुद्रक लोग कम लागत पर अपनी जरूरत के टाइप स्वयं तैयार कर लेंगे। इस प्रकार उन्हें 50 से 75 प्रतिशत तक की बचत होगी। मशीनों की रचना भी बहुत ही सरल है। वे बहुत मजबूत और टिकाऊ भी हैं। अमेरिका की प्रसिद्ध लाइनो टाइप ढालने वाली मशीनों के आविष्कारक श्री डब्ल्यू. एफरमैन ने उनके सम्बन्ध में कहा था–

"जिस समस्या को सुलझाने के लिए टाइप–यंत्रों के आविष्कर्ता वर्षों से स्वप्न देख रहे थे, श्री बिसे ने उस समस्या को हल कर लिया है। सिंगल टाइप ढालने के लिए उन्होंने परम उपयोगी, टिकाऊ और विश्वव्यापी ढाँचे का आविष्कार करने में सफलता पायी है। ढाँचे को काम में लाने वाली मशीन टाइप ढालने वाली मशीनों के क्षेत्र में एक नवीन और उन्नत चीज होगी और सफलतापूर्वक बाजार के दूसरे टाइप–कास्टरों का मुकाबिला करेगी। यह उस आदर्श की प्रतिमा बन कर रहेगी, जिसे पाने के लिए अनेक वैज्ञानिक प्रयत्न करते रहे हैं। टाइप ढालने के व्यापार–सम्बन्धी कई समस्याओं को हल करने में समर्थ होने के कारण इस मशीन का व्यापारी–संसार में खूब स्वागत होगा।"

बिसे की बहुमुखी आविष्कारिणी प्रतिभा केवल टाइप ढालने की मशीनों ही का आविष्कार करके नहीं रह गयी वरन् उसके द्वारा उन्होंने रसायनिक और विद्युत सम्बन्धी आविष्कारों में भी उतनी ही सफलता प्राप्त की है जितनी यांत्रिक आविष्कारों में। अमेरिका पहुँच कर उन्होंने 'रोला'

---

* *वीणा*, सितम्बर 1934

नामक एक वाशिंग कम्पाउंड का आविष्कार किया और 'ओटोमिडीन' उनका प्रधान रसायनिक आविष्कार है।

ओटोमिडीन

'ओटोमिडीन' अत्यन्त शक्तिशाली कृमिनाशक होते हुए भी पूर्णतया हानिरहित और विष–शून्य है। कृमिनाशक होने के साथ ही साथ यह दवा शरीर के स्नायुओं को पुष्ट बनाती है और मानव–शरीर के अनेक रोगों में फायदा पहुँचाती है। संसर्गजन्यरोग, यकृत, दोषी–बुखार और पेट के दर्दों में इसका परिणाम तुरन्त ही दिखाई देता है। मलेरिया आदि बुखारों में यह कुनैन से भी बढ़कर गुणकारी है। देह की सूजन, पेट का दर्द तथा आँतों की गड़बड़ी को दूर करके यह दवा भूख को बढ़ाती है। इसके अतिरिक्त शरीर में आयोडीन (Iodine) के अभाव से होने वाले समस्त रोग, रक्त–दोष, गरमी तथा मूत्राशय के रोगों और पुरानी खाँसी आदि की तो यह रामबाण दवा है। भीतरी उपचार के साथ ही साथ यह दवा बाह्य उपचार में भी परम उपयोगी सिद्ध हुई है। त्वचा रोग, फोड़ा–फुन्सी, सूजन, दाह, खुजली, बवासीर, मच्छर काटे की जलन आदि के लिए आपने ओटोमिडीन का मलहम तैयार किया है। दाँत की बीमारी तथा उनमें खून या पीव आने या दुर्गन्ध उठने, दाँत टूटने से दर्द होने और पायोरिया से बचने तथा दाँतों को मजबूत बनाने के हेतु भी ओटोमिडीन की कुल्ली करना अत्यन्त गुणकारी सिद्ध हुआ है। नाक–कान के दर्द और स्त्रियों के रोगें के लिए भी यह दवा अमूल्य प्रमाणित हुई है। हाल ही में अमेरिका में इस औषधि की उपयोगिता की जाँच की गयी थी। इक्कीस प्रकार के रोगों से पीड़ित 18,186 रोगियों को यह दवा दी गयी थी, जिनमें 17,507 रोगियों अर्थात् 96 प्रतिशत को लाभ पहुँचा।

इस औषधि के आविष्कार से आपकी गणना संसार के प्रतिष्ठित रसायनिकों में होने लगी है। इसके पूर्व किसी भी दवा को इतनी अधिक सफलता नहीं मिली थी, एक बार तो इसने स्वयं डॉक्टर बिसे महोदय की प्राण रक्षा की थी।

डा. बिसे ने कई विद्युत–यन्त्र भी बनाये हैं। एक यन्त्र ऐसा बनाया है जिसकी सहायता से वायु–मण्डल में उपस्थित विभिन्न गैसों का विश्लेषण किया जा सकता है। एक दूसरे यन्त्र से सीधे सूर्य के प्रकाश से विद्युत–शक्ति प्राप्त की जा सकती है। कल्पना और विधि की दृष्टि से ये दोनों आविष्कार बिलकुल मौलिक हैं। ये दोनों आविष्कार प्रायोगिक हैं। 1906 में जब आप इंग्लैंड में थे तब आपने तार द्वारा फोटो भेजने की एक सरल क्रिया का आविष्कार किया था, परन्तु अर्थाभाव के कारण आप उस विधि को व्यावहारिक रूप न दे सके।

जिस समय आप इंग्लैण्ड में थे, उस समय कतिपय युद्ध–प्रिय सज्जनों ने आपसे अनुरोध किया कि आप चलने वाली बन्दूकों (Auomatic guns) की समस्या को हल करने का काम अपने हाथ में लें। इसके लिए आपको बड़ी–बड़ी रकमें देने का भी लालच दिया गया परन्तु आपने अत्यन्त नम्रतापूर्वक इस अनुरोध को अस्वीकार कर दिया और कहा आविष्कारिणी प्रतिभा एक दैवी सम्पत्ति है। जिसका सदुपयोग रचनात्मक वस्तुओं के निर्माण में होना चाहिए। मानव प्राणियों के संहार में इसका उपयोग नहीं होना चाहिए।

अमेरिका में सम्मान

डॉ. बिसे महोदय आज कल सपरिवार अमेरिका ही में रहते हैं और अमेरिका के प्रतिष्ठित नागरिक हैं। 29 अप्रैल 1927 को न्यूयार्क में आपकी स्वर्ण–जयन्ती (50वीं वर्ष गांठ) बड़े समारोहपूर्वक

मनायी गयी थी। एक भारतीय का अमेरिका में इस प्रकार सम्मान प्राप्त करने का यह पहला ही अवसर था। कई भारतीय (अमेरिकन) और अमेरिकन सस्थाओं ने आपको अभिनन्दन–पत्र भेंट किये और आपके सम्मान में एक प्रीतिभोज भी दिया; जिसमें अमेरिका के प्रतिष्ठित वैज्ञानिक सम्मिलित हुए थे। उस समय अमेरिका के प्रसिद्ध विज्ञान संबंधी लेखक तथा 'न्यूयार्क अमेरिकन' के विज्ञान विभाग के सम्पादक ने आपकी प्रशंसा में जो भाषण दिया था उसका एक अंश यहां उद्धृत किया जाता है। इसमें आटोमिडीन ही का विशेष रूप में उल्लेख है–

"डॉ. बिसे प्रथम श्रेणी के वैज्ञानिक हैं। आपके सभी आविष्कार मानव–समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। आप अत्यन्त उच्चश्रेणी के दार्शनिक भी हैं। आपका सबसे अधिक नवीन और महत्वपूर्ण आविष्कार आटोमिडीन है। इस के आविष्कार के द्वारा श्री बिसे ने औषधि–विज्ञान में क्रांति उत्पन्न कर दी है और समस्त मानव–समाज का अमूल्य उपकार किया है। अतः समस्त संसार इस आविष्कार के लिए आपका चिर;णी रहेगा और इतिहास में आपका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा।"

अमेरिका में अत्यन्त प्रतिष्ठित और सर्वश्रेष्ठ अमेरिकन विद्वानों का परिचय देने के लिए प्रति वर्ष एक पुस्तक प्रकाशित की जाती है। यह पुस्तक वहाँ 'लाल पुस्तक' के नाम से विख्यात है। इसके प्रकाशकों का कथन है कि इस पुस्तक में किसी भी व्यक्ति का परिचय देने के लिए किसी से कुछ भी रुपया नहीं लिया जाता।

डॉ. तारकनाथ दास के बाद जो अब अमेरिका के नागरिक मान लिए गये हैं, डॉ. बिसे ही एक ऐसे भारतीय हैं जिनका परिचय इस पुस्तक में दिया गया है। यह पुस्तक अमेरिका में बहुत प्रामाणिक समझी जाती है और सम्मान की दृष्टि से देखते हैं।

अनेक प्रसिद्ध जर्मन विद्वानों ने आपकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है और आपकी गणना उन इने–गिने सर्व श्रेष्ठ विद्वानों में की है जिनके कार्यों पर सभ्यता का भविष्य निर्भर है। सितम्बर 1930 में ब्रूकलिन ईगिल (Brooklyn) ने आपकी प्रशंसा में एक लेख प्रकाशित किया था। उसमें उपर्युक्त कथन का प्रतिपादन किया गया था। डॉ. बिसे की सफलता न तो आपकी शिक्षा–दीक्षा ही पर निर्भर है और न आपके माता–पिता ही पर। अपने महत्वपूर्ण आविष्कारों में सफलता प्राप्त करने का सब श्रेय आपके परिश्रम और अध्यवसाय ही को है। आप स्वयं अपनी सफलता का कारण वैज्ञानिक पुस्तकों का अध्ययन और तीक्ष्ण निरीक्षण (keen observation) बतलाते हैं।

एक बार बातचीत करते हुए आपने कहा था कि मेरे पिता डिस्ट्रिक्ट जज थे। वे चाहते थे कि मैं कानून का अध्ययन करूँ, परन्तु मैं विज्ञान का अध्ययन करने के लिए उत्सुक था। अतः मैंने स्वयं अपने ही प्रयत्नों से विज्ञान का अध्ययन आरम्भ किया। उन्हीं दिनों इंग्लैण्ड की एक प्रतियोगिता में मुझे 15 पौण्ड का पुरस्कार मिला। इसमें योरप के 18 अन्य विद्वान् भी शामिल हुए थे। इसी धन से मैंने इंग्लैण्ड में अध्ययन आरम्भ किया।

साहित्य–प्रेम

1894–96 में बम्बई में रहते हुए अपने वैज्ञानिक खोज सम्बन्धी कार्य के लिए 'बम्बई–वैज्ञानिक क्लब' का संगठन किया। आपने इस क्लब की मुख पत्रिका 'विविध कला–प्रकाश' का सम्पादन किया। विज्ञान से आपका स्वाभाविक प्रेम था। यह बात आपके उपर्युक्त कथन से ही स्पष्ट हो जाती है। पढ़ने–लिखने और सरकारी काम से जो कुछ समय बचता था उसे आप इस क्लब के संचालन और वैज्ञानिक लेख लिखने में लगाया करते थे। उन दिनों आपने आध्यात्म, विज्ञान और कला–कौशल

सम्बन्धी अनेक लेख भारतीय, ब्रिटिश और अमेरिकन पत्र–पत्रिकाओं में लिखे। आपका यह साहित्य–प्रेम पूर्ववत् बना हुआ है। अब भी आप समय–समय पर बराबर सुन्दर लेख लिखा करते हैं। इस समय आप स्वप्न–विज्ञान के सम्बन्ध में एक उत्कृष्ट ग्रंथ की रचना करने में संलग्न हैं। उच्च श्रेणी के वैज्ञानिक होते हुए भी आप स्वप्नों की सत्यता में विश्वास करते हैं। आपका कथन है कि प्रत्येक स्वप्न का अपना निजी अर्थ होता है, जो समय आने पर अवश्य सत्य प्रमाणित होता है। आपका विश्वास है कि स्वप्नलोक में हमें जो घटनाएँ दिखायी देती हैं, उनसे भविष्य में घटित होने वाली अनेक घटनाओं का पूर्वाभास मिल जाता है। आप जितने भी स्वप्न देखते हैं बराबर नोट कर लिया करते हैं। आपका कहना है कि इन स्वप्नों द्वारा आपको 20 वर्ष पूर्व ही भारतवर्ष में महात्मा गान्धी के नेतृत्व में स्वराज्य–संग्राम आरम्भ होने का पूर्वाभास मिल गया था। यह स्वप्न वास्तव में बहुत ही रोचक है। डॉ. बिसे ने स्वयं 1930 के राष्ट्रीय सप्ताह (13 अप्रैल) के अवसर पर सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र 'मराठा' में इस सम्बन्ध में एक लेख प्रकाशित कराया था।

आपका कथन है कि स्वप्न–विज्ञान भी अन्य विज्ञानों ही की भाँति एक सुसम्बद्ध विज्ञान है। इसकी सहायता से स्वप्नों में दृष्टिगोचर होने वाली बातें बतलायी जा सकती हैं।

× × × ×

पचास वर्ष पूर्व जब डॉक्टर बिसे पूना के स्कूल में विद्यार्थी थे, उस समय आपने अपने अध्यापक से कहा था कि 'भविष्य में मैं एक प्रतिष्ठित वैज्ञानिक बनूँगा।' बिसे महोदय के यह अध्यापक भी विज्ञान में बड़ी रुचि रखते थे और अमेरिका से वैज्ञानिक पत्रिकाएँ मंगाया करते थे। बिसे की अभिरुचि देखकर अध्यापक महाशय इन्हें पत्रिकाएँ पढ़ने को दिया करते थे और समय–समय पर प्रोत्साहित भी करते थे। उन दिनों टाम्स अल्वा एडीसन के आविष्कारों की बड़ी धूम थी। प्रत्येक वैज्ञानिक पत्र–पत्रिका में उनके सम्बन्ध में कुछ न कुछ जरूर ही प्रकाशित हुआ करता था। इन वर्णनों को पढ़कर विद्यार्थी शंकर की उच्च आकांक्षाएँ और भी अधिक बलवती होती जाती थीं। उन दिनों बालक शंकर की अवस्था केवल 14 वर्ष की थी। बालक शंकर ने मन ही मन निश्चय किया कि एक दिन बड़ा होकर मैं भी एडीसन बनूंगा और इस महान् वैज्ञानिक से हाथ मिलाकर इसका परिचय प्राप्त करूँगा। यह बात आपने अपने अध्यापक से भी बतला दी थी।

आपकी यह आकांक्षा 23 दिसम्बर 1930 को पूरी हुई। स्वयं एडीसन ने डॉ. बिसे से अपनी प्रयोगशाला में भेंट की। भेंट के अवसर पर डॉ. बिसे ने एडीसन को भारतीय शिल्प के उदाहरण–स्वरूप मीनाकारी से युक्ति चाँदी की तश्तरी भेंट की। एडीसन ने भी आपको अपने हस्ताक्षर किया हुआ फोटो भेंट किया। उस समय एडीसन ने आपसे कहा था–

"भारतवर्ष को छोड़ अमेरिका आकर आपने बड़ी बुद्धिमानी का काम किया। भारत में विज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त संकुचित है।"

धार्मिक विचार

महान वैज्ञानिक होते हुए भी डॉ. शंकर बिसे अब सांसारिक विषय–वासनाओं को त्याग कर ज्ञान और व्यापार से सम्बन्ध–विच्छेद कर, सब समय आध्यात्मिक क्रियाओं में लगाना चाहते हैं। आपका कथन है कि प्राचीन हिन्दू सिद्धान्तों की आज्ञानुसार 65 वर्ष की अवस्था में प्रत्येक मनुष्य को सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर गृहस्थ आश्रम परित्याग कर अपने परलोक को सुधारने के लिए वाणप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करके अपना सब समय ईश्वर आराधन, और मनुष्य–सेवा में लगाना चाहिए। इन हिन्दू आदर्शों के अनुसार मुझे जंगलों और पर्वतों में जाकर तपस्या करना चाहिए,

परन्तु मैं जंगलों और पर्वतों में जाने से सहमत नहीं हूँ, मैं अपने जीवन के शेष दिनों को मानव–सेवा में लगाऊँगा।

शंकर विषे की गणना जब आप भारत में थे कतिपय ज्योतिषियों और सामुद्रिकों ने 40 वर्ष पूर्व भविष्यवाणी की थी कि आपकी गणना संसार के महान् पुरुषों में होगी। आपके दार्शनिक विचार बहुत ही परिपक्व होंगे, और आप 'जीव' के प्रश्न पर महत्वपूर्ण सिद्धान्त निर्माण करेंगे। इस समय ज्योतिषियों की भविष्यवाणी सत्य घटित हो रही है। विगत महायुद्ध के आरम्भ से ही आप अपना संपूर्ण समय विभिन्न धर्मों और दर्शनों के अध्ययन तथा निरीक्षण में व्यतीत कर रहे हैं। इन धर्मों के आधारभूत सिद्धांतों को पूर्णतयः समझकर आप 'जीवन की समस्या' पर एक नवीन सिद्धान्त निर्माण करना चाहते हैं। आपकी यह हार्दिक अभिलाषा है कि यह नवीन सिद्धान्त छल, कपट, दम्भ आदि धर्म्माचार्यों के नाम से पुकारे जाने वाले ढोंगों और ढकोसलों से स्वतंत्र हों। इतना ही नहीं आप उस सिद्धान्त को लोकप्रिय, रुचिकर और वर्तमान विचारों तथा समय के अनुकूल बनाने के भी पक्षपाती हैं।

इस समय आपकी आयु 70 वर्ष के लगभग है। आप शीघ्र ही अपना विज्ञान सम्बन्धी व्यापार–कार्य समाप्त कर देंगे और गार्हस्थ जीवन भी त्याग देना चाहते हैं। आप स्वच्छन्दतापूर्वक संसार में भ्रमण कर समस्त मानव–समाज को भारत का आध्यात्मिक सन्देश पहुंचाना चाहते हैं। वैसे भी आपने अपने जीवन में धन–संग्रह और सांसारिक यश–वैभव की आकांक्षा कभी नहीं की। विदेशों में रहते हुए भी आप बराबर भारत की हित–चिंता में लगे रहते हैं।

आपको अपने स्वप्नों में महात्मा गाँधी के कार्यों का पूर्वाभास मिल गया था, उस सम्बन्ध में आपने एक स्थल पर लिखा था–

"जो कुछ मैंने स्वप्नों में देखा है, उससे मेरा पूर्ण विश्वास हो गया है कि महात्मा गांधी इस संसार में तीन उद्देश्यों (Missions) को लेकर अवतीर्ण हुए हैं। आपका सर्व प्रथम उद्देश्य शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा विदेशियों के चंगुल से मातृभूमि का उद्धार करना है। दूसरा उद्देश्य विदेशियों के चंगुल में फँसे हुए संसार के समस्त राष्ट्रों के हाथ में एक ऐसा शान्तिमय किन्तु शक्तिशाली अस्त्र देना है, जिससे संसार में साम्राज्यवाद सदैव के लिए नष्ट किया जा सके। आपका तीसरा उद्देश्य ईसामसीह के महान सिद्धान्त 'तू किसी की हत्या नहीं करेगा' (Thourshalt not kill) और अपने पड़ोसी शत्रु से और प्रेम कर (Love thy neighbourAnd enemie) का प्रचार करना तथा कार्य रूप में परिणत करना और कराना है। मुझे आशा है कि यदि मेरे देशवासी, सभ्य संसार के समस्त लोग विशेषतः ईसाई धर्मावलम्बी एक होकर अपने हृदयों में महात्मा गान्धी का साथ देंगे तो वे अपने महान् कार्यों में कभी असफल न होंगे। विगत महायुद्ध के परिणामों ने समस्त संसार को हिंसामय संग्रामों की निरर्थकता और भयंकरता भली भाँति दिखला दी है। अब लोग सत्य की शक्ति (Might of Right) और विश्व शान्ति की महत्ता तथा आवश्यकता का अनुभव करने लगे हैं। वास्तव में इन सब बातों के लिए महात्मा गान्धी ही हमारे आधुनिक मसीहा हैं और समस्त संसार के सहयोग और श्रद्धा के योग्य हैं। 'भारत की स्वाधीनता चिरजीवी हो, महात्मा गांधी–मेरे स्वप्नलोक के महात्मा–चिरजीवी हों!'

आत्म–कथा

अपने इष्ट–मित्रों के अत्यन्त आग्रह पर डॉ. बिसे ने अपने विगत 50 वर्षों के असाधारण और आकर्षक अनुभवों को संकलित करके पुस्तकाकार प्रकाशित करने का निश्चय किया है। इस ग्रन्थ

में आप अपने जीवन में की गयी महत्वपूर्ण वैज्ञानिक खोजों और आविष्कारों के सविस्तार विवरण देने के साथ ही साथ अपने स्वप्न–विज्ञान, योग, आध्यात्म, टेलीपैथी आदि से सम्बन्ध रखने वाले विचारों और खोजों का भी समावेश करेंगे।

विश्व–मन्दिर की योजना

अपने आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए डॉ. बिसे ने अमेरिका में एक विश्व–मन्दिर की स्थापना का आयोजन किया है। आप चाहते हैं कि इस मन्दिर में संसार के सभी धर्म और मजहबों के मानने वाले एकत्र होकर ईश्वर–आराधन करें। डॉ. बिसे का विचार है कि सभी धर्म अपने–अपने समय में अच्छे थे, परन्तु अब निश्चेष्ट, गतिहीन और कुण्ठित हो गये हैं। अब एक नवीन सार्वलौकिक विश्व–धर्म के आविर्भाव का समय आ गया है। यह धर्म प्राचीन धर्मों के मूल और सनातन सत्यों पर वैज्ञानिक रीति से निर्मित होगा और आधुनिक समय तथा परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल होगा। इसकी सहायता से संसार के समस्त धार्मिक और सामाजिक झगड़े–बखेड़े तथा कुरीतियाँ स्वयं दूर हो जायँगी।

इस उद्देश्य से डॉ. बिसे ने जिस विश्व–मन्दिर की आयोजना की है वह पृथ्वी ही के समान गोलाकार होगा। इसके नीचे का एक भाग जमीन के नीचे बनेगा, इस भाग में एक गोलाकार कुण्ड या जलाशय होगा। जलाशय के चारों ओर ध्यान करने और समाधि लेने के लिए कमरे होंगे। मन्दिर का शिखर आकाश के सदृश अर्ध गोलाकार स्फटिक का बना होगा। और नक्कासीदार काँच के टुकड़ों से आच्छादित होगा। इन काँच के टुकड़ों में होकर दिन में सूर्य का प्रकाश जायगा और रात में रोशनी होने पर मन्दिर में जगमगाहट उत्पन्न होगी। आने–जाने के मार्ग भी गोल होंगे। इसमें एक बृहत पुस्तकालय का भी आयोजन किया गया है। पुस्तकालय के सामने की गैलरी इतनी अधिक चौड़ी होगी कि उसमें लिखने–पढ़ने और दावतों आदि के लिए पर्याप्त संख्या में मेजें सजायी जा सकेंगी। दूसरी मंजिल में भी ऐसी एक गैलरी होगी जो बच्चों और तरुणों के उपयोग के लिए बनायी जायगी। इस गैलरी में संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुषों, समाजसेवियों और धार्मिक नेताओं के चित्र होंगे। इन चित्रों के लगाने में किसी भी धर्म, सम्प्रदाय अथवा राष्ट्र को विशेष महत्व अथवा अधिकार नहीं दिया जायगा। संसार में 6 प्रमुख धर्म हैं–हिन्दू, बौद्ध, और कन्फ्यूशियन पूर्वी गोलार्ध में, यहूदी, ईसाई और इसलाम पश्चिमी गोलार्ध में। ये सब समाज के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक थे। ये छहों धर्म सूर्य की 6 किरणों के समान हैं। जिस भाँति सूर्य की किरणें मिल कर श्वेत रंग का प्रकाश उत्पन्न करती हैं उसी भाँति ये छहो धर्म मिल कर विश्वधर्म (Universal Religion) उत्पन्न करते हैं।

इस विश्वमन्दिर में छः फाटक होंगे जो एक दूसरे से बराबर की दूरी पर स्थित होंगे। इन सबमें एक तोरण होगा और प्रत्येक फाटक एक धर्म का द्योतक होगा।

कमल प्रवाहहीन जल–कुण्ड में उत्पन्न होता है हमारे वर्तमान धर्म इसी निश्चेष्ट जल के समान प्रवाह–हीन क्षीण–पुण्य और परिभ्रष्ट हैं। इन निश्चेष्ट धर्मों में कमल ही के समान ही एक विश्व–धर्म उत्पन्न होगा। कमल की पंखुड़ियाँ 6 धर्मों की द्योतक हैं। ये 6 पंखुड़ियाँ सूर्य के 6 रंगों की रश्मियों के ही के समान रंगों से प्रकाशित हैं। इन पंखुड़ियों के बीच में केन्द्रीय–विश्व–तीर्थस्थान स्थिति होगा। इस स्थान से विभिन्न धर्मों के धर्माचार्य उपदेश और व्याख्यान आदि दे सकेंगे।

विश्व–मन्दिर के चारों ओर 6 उद्यानगृह बने होंगे। प्रत्येक गृह तीन मंजिल का होगा। विश्वमन्दिर व्यास 120 फीट होगा। इसमें लगभग 2000 बैठ सकेंगे। वास्तव में यह मन्दिर एक

असाम्प्रदायिक व्यायामशाला के समान होगा, जिसमें धार्मिक व्याख्यानों और उपदेशों के अतिरिक्त मनुष्य–समाज के कल्याण सम्बन्धी भाषण भी दिये जा सकेंगे।

विश्व–मन्दिर से पहले विश्व–मन्दिर सरीखे उद्देश्यों को लेकर बहाय (Bohoy) मन्दिर की स्थापना की गयी थी। यह मन्दिर सब धर्मों में एकता की स्थापना चाहता था परन्तु उनके व्यक्तिगत महत्व की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देता था। विश्व–मन्दिर इस मन्दिर से भी एक श्रेणी आगे बढ़ा होगा। यह सभी धर्मों को समान बतलाता हुआ सभी धर्मावलम्बियों की उनके प्रति विभिन्न धर्मों के श्रद्धा और विश्वास का आदर करेगा और उनको दूसरे धर्मों के प्रति आदर–भाव रखने का उपदेश देगा। इसीलिए इस मन्दिर को सभी धर्मों का 'विश्व–मंदिर' कहा गया है। मैक्समूलर ने कहा भी था कि जो व्यक्ति केवल एक ही धर्म जानता है, वह एक भी धर्म नहीं जानता।'

इस विश्व–मन्दिर की लागत लगभग 10 लाख डालर होगी। यह सब धन उदार धन–कुबेर अमेरिकनों ही से मिल जाने की आशा की जाती है।

डॉ. अल्बर्ट आइनस्टाइन*

श्रीमती राजकुमारी मिश्रा 'रमा'

प्रोफेसर अल्बर्ट आइनस्टाइन को नये ओवरकोट की आवश्यकता है; पर प्रोफेसर को नये वस्त्रों की आवश्यकता मालूम नहीं होती, "यह जो मैं पहने हुआ हूँ यह ओवरकोट अच्छा है।"प्रोफेसर ने कहा। परन्तु मिसेस आइनस्टाइन इस प्रकार मान जाँय यह कैसे हो? वे तो नये कोट के लिये हठ पकड़े हुए थीं। आखिर प्रोफेसर को स्वीकार करना पड़ा।

प्रोफेसर आइनस्टाइन नयी–नयी वस्तुओं का शोध करते हैं। इनका मन आकाश–पाताल में खूब ही उड़ा करता है। प्रकृति के तत्त्वों पर प्रोफेसर साहब अच्छा अधिकार जमाये हुए हैं; पर इनके ऊपर इनकी चतुर पत्नी का ही अधिकार है।

ओवरकोट तैयार होकर आया। यह सुन्दर कपड़े का सिला हुआ है। मिसेस आइनस्टाइन इस बात का खास खयाल रखती हैं कि प्रोफेसर साहब की पोशाक सुन्दर और मजबूत हो। इतना ध्यान मिसेस आइनस्टाइन न रखें तो विनोदी प्रोफेसर की लोग हँसी करने लग जायँ। आइनस्टाइन स्वयम् विचित्र पोशाक में रहते हैं। वे रहते तो इसी दुनिया में हैं; परन्तु उनका मन प्रकृति की विशाल सृष्टि में ही विचरण करता रहता है। इस दुनिया के साथ प्रोफेसर साहब का कुछ सम्बन्ध नहीं है। दुनिया के व्यवहारों में प्रोफेसर साहब को जरा भी आनन्द नहीं आता। रुपया पैसा तो छूते ही नहीं। किसी भी वस्तु के भावों की उन्हें बिल्कुल खबर नहीं है। बैंक का खाता मिसेस आइनस्टाइन के नाम से है।

खान–पान के विषय में भी प्रोफेसर साहब कुछ विशेष शौक नहीं रखते हैं। चाय–काफी आदि पीते हैं। पाइप भी कभी पी लेते हैं। इनका जीवन शान्तिमय है।

स्वभाव से ही प्रोफेसर आइनस्टाइन शान्त व्यक्ति हैं। परन्तु अनजान व्यक्ति या अखबार वाले इनके प्राइवेट जीवन की बात जानें यह इन्हें पसन्द नहीं। 'ये सब अपनी कुतूहल वृत्ति को सन्तुष्ट करने के ही लिये मुझे कष्ट देते हैं।" ऐसा ये समझते हैं।' यह लोग मेरे विषय में जानने के लिए कोशिश करते हैं; मैं चाहता हूँ, यह लोग मुझे न सतायें, मुझे निश्चिन्त मेरा काम करने दें।" यही इनकी इच्छा है।

प्रोफेसर आइनस्टाइन को किसी बात से चिढ़ है तो शीघ्रता से। विशाल सृष्टि में, आसमान में, ग्रहों और ताराओं के उस पार भी ये मस्तिष्क को दौड़ाते रहते हैं। आज या कल क्या होगा इसकी इन्हें चिन्ता नहीं। इनके सामने कोई प्रोग्राम रखना बिलकुल व्यर्थ है। इनसे कुछ भी काम करवाना हो तो इन्हें कहकर सीधे कार्य–स्थल पर ले जाने में ही कुशल है।

बर्लिनवाले अपने मकान के ऊपरी भाग में वह एक अच्छे कलाकार की तरह उत्साहपूर्वक काम करते रहते हैं। इस रूम में इनका सादा फरनीचर रखा है। न्यूटन, फेरे, मैक्सवेल् जैसे

---

* *गंगा, चरितांक*, फरवरी 1935

वैज्ञानिकों की तस्वीरें टँगी हैं। इनके अभ्यास रूम में पुस्तकालय नहीं है। ये अपने मस्तिष्क को ही पुस्तकालय समझते हैं। अपने रूम में बैठकर ही ये दूर–दूर की दृष्टि फेंकते हैं। इनका मन आकाश को भी बेधकर बड़ी दूर की गणना करता है, स्वप्न–सृष्टि की रचना करता है। इनके मुख पर सुर्खी आ जाती है। नाड़ी गर्म होकर चलने लगती है। परन्तु ये कामों में दीवाने नहीं बन जाते।

विज्ञान क्षेत्र के बाहर यदि कहीं इनका मन लगता है, तो अपनी यहूदी–जाति में। फिर भी संकुचित राष्ट्रवाद इन्हें पसन्द नहीं, इनकी ऐसी इच्छा है कि प्रत्येक देश के यहूदी एकत्र होकर एक विशाल संयुक्त यहूदी समाज बने।

प्रोफेसर आइनस्टाइन वैज्ञानिक हैं, पर साथ ही साथ आदर्शवादी भी हैं। समस्त मानव–समाज के ये शुभचिन्तक हैं।

वैज्ञानिक विषय के अतिरिक्त संगीत–विद्या में भी प्रोफेसर साहब का मन रमता है। ये 'वायोलिन', अच्छा बजाते हैं और बेक, रेडीन, मोजाट अैर बीथोविन की चीजें फीडल पर भी छेड़ सकते हैं। शिल्पकला भी इन्हें पसंद है। शिल्पकला को ये जमा हुआ संगीत समझते हैं। नौका–विहार में भी इन्हें आनन्द आता है। नौका में बैठ कर छोटे–बच्चे की तरह ये खुश हो जाते हैं।

प्रोफेसर आइनस्टाइन के नवीन विचारों से समस्त संसार जगमगा उठा है। परन्तु स्वयं ये अपने घर–गृहस्थी के सम्बन्ध में पुराने विचार के हैं। इनका विचार है कि स्त्रियों का घर में ही स्थान है। इनका प्रथम विवाह प्रकृति विज्ञान (Physics) में प्रवीण एक कन्या के साथ हुआ था; परन्तु इन्हें थोड़े ही समय में यह ज्ञान हुआ कि दो बुद्धिमान् व्यक्तियों की गृहस्थी में दो मत नहीं हो सकते। दूसरी पत्नी से भी प्रोफेसर साहब को हर तरह से सन्तोष है।

मिसेस आइनस्टाइन अपने जगद्विख्यात पति के लिये गर्व करती हैं। वाह्य जगत् से सदा उनका रक्षण करती हैं। कभी–कभी वे मजाक में कहती हैं कि आइनस्टाइन तो घर में मेहमान जैसे हैं, ये रहते तो इस दुनिया में हैं, पर इनका मन सदा आकाश–पाताल का चक्कर काटता रहता है।

आइनस्टाइन के विचार इतने गंभीर होते हैं कि, अन्य विद्वानों को समझाने के लिए बड़ी–बड़ी पुस्तकें लिखनी पड़ती हैं।

कृषि और युद्ध*

रतनलाल, बी.एस–सी.

कृषि और युद्ध ये दोनों साधारणतः एक दूसरे के विपरीत प्रतीत होते हैं, परन्तु एक रसायनज्ञ की दृष्टि में इन दोनों में बहुत ही समानता है। कई सहस्रों वर्ष पूर्व, धन की असमानता और व्यापार की उन्नति, जो वास्तव में किसी देश की कृषि पर निर्भर है, इन्होंने मनुष्य के हृदय में युद्ध जैसे भयानक कर्म की नींव डाली। इसके पश्चात् ज्यों–ज्यों मनुष्य कृषि की आवश्यकता और मूल्य समझने लगा त्यों–त्यों उसके हृदय में डाह या ईर्ष्या के कारण युद्ध के विचार और दृढ़ होते गये। रसायन की उत्पत्ति से तो युद्ध और कृषि का सम्बन्ध अत्यन्त अटूट हो गया और एक ही नहीं अनेक प्रकार से इनमें समानता प्रकट होने लगी। दोनों की रसायनिक विधियाँ एक दूसरे से बहुत मेलती–जुलती हैं और ये दोनों ही रसायन की उन्नति तथा दक्षता पर निर्भर हैं। यहाँ तक कि आधुनिक समय के अनुसार तो ये रसायन रूपी एक ही पिता के दो बच्चे कहलाते हैं।

शान्ति के समय जिन मैदानों में खूब खेती होती है और प्रति दिन हजारों मन अनाज तथा वनस्पति पैदा होती है, युद्ध–काल में उन्हीं मैदानों में खेती के स्थान पर विस्फोटक इत्यादि खूब जोर–शोर से बनाये जाते हैं, क्योंकि आधुनिक युद्ध में सैनिकों को विस्फोटक की उतनी ही आवश्यकता पड़ती है जितनी खाद्य पदार्थों की। विस्फोटक इत्यादि बनाने के लिए केवल तीन वस्तुओं की आवश्यकता होती है।

1. रुई–जो कृषि से ही उत्पन्न होती है,
2. सोडियम नाइट्रेट–जो कृषि के लिए एक आवश्यक खाद्य है, और
3. शराब–जो स्टार्च से बनाया जाता है।

ये तीनों ही पदार्थ कृषि से मिल सकते हैं। साथ ही साथ इन कच्चे पदार्थों से विस्फोटकों की बनावट तक के सब काम रसायन ही से सिद्ध होते हैं। अतएव कृषि और युद्ध रसायन के द्वारा एक दूसरे से बहुत कुछ सम्बन्ध रखते हैं।

लगभग सौ वर्ष पहले से चीली शोरा (Chili Salt peter) संसार की कृषि–कुशलता का एक प्रधान कारण रहा है। सन् 1830 में जस्टस वौन लाइबिग ने यह सिद्ध किया था कि पौदे पृथ्वी से केवल तीन पदार्थ लेते हैं – 1. नाइट्रोजन 2. पोटासियम और 3. फासफोरस। इन्हीं तीन पदार्थों से उनकी उत्पत्ति में वृद्धि होती है। तभी से चीली शोरा, जो सारे दक्षिणी अमेरिका के रेगिस्तान में फैला हुआ है, जगत् को स्फीतकारकों के रूप में नाइट्रोजन देता रहा है। परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि यही शोरा, कृषि के साथ–साथ, समस्त संसार को युद्ध के समय में भयानक विस्फोटक बनाने की सामग्री जुटाता है।

---

*वीणा, फरवरी 1936

सन् 1898 में इंगलैंड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर विलियम क्रुक ने "ब्रिटिश असोसियशन फार दी एडवांसमेंट ऑफ साइन्स" के सामने भाषण देते हुए यह कहा था कि यदि नाइट्रोजन–यौगिक किसी और विधि से न बनाये गये तो थोड़े ही समय में चीली शोरे की खान शून्य हो जायगी और स्फीतकारकों के न होने से उपज पर बड़ा धक्का पहुँचेगा, जिससे सारा संसार भूखों मर जायगा। सर विलियम क्रुक उस समय यह भी कह सकते थे कि यदि नाइट्रोजन–यौगिक बनाने का कोई दूसरा उपाय न सोचा गया तो आधुनिक युद्ध की अमानुषिक भयंकरता भी संसार से सदैव के लिए गायब हो जायगी, क्योंकि चीली शोरा विस्फोटकों का भी एक आवश्यक अंग है। हम यह नहीं कह सकते कि इन दोनों में से किस कारण ने रसायनज्ञों का मस्तिष्क इस काम की ओर लगाया, परन्तु वे लोग इस समस्या को हल करने में लीन अवश्य हो गये। सर विलियम क्रुक ने चीली शोरे की खान का सन् 1921 में शून्य होना ठहराया था। उनकी भविष्यवाणी तो असत्य निकली। कारण, अभी चीली शोरे की खान सारे संसार को कम से कम सौ वर्ष तक नाइट्रेट दे सकती है, परन्तु इस बात पर विचार करते हुए हम यह अवश्य कह सकते हैं कि सर विलियम की भविष्यवाणी के अनुसार संसार तो भूखों न मरता। हाँ, सन् 1914 का महायुद्ध अवश्य रुक जाता। इस प्रकार कृषि और उपज की उन्नति के रूप में सर विलियम क्रुक ने युद्ध की भयानक सामग्री इकट्ठा करने की नींव डाली।

सर विलियम क्रुक की दूरदर्शिता ने सारे संसार के रसायनज्ञों की दृष्टि इस समस्या को हल करने की ओर खींच ली। वायुमंडल में नाइट्रोजन 4/5 भाग में विद्यमान है, और इसी नाइट्रोजन को किसी लाभदयक पदार्थ में पलटने की तैयारियाँ होने लगीं। यह देखा गया कि वायुमंडल में विद्युत–गर्जन से वायु की थोड़ी सी नाइट्रोजन और आक्सीजन मिल कर नाइट्रोजन आक्साइड बन जाती है और वर्षा के जल में घुल कर पृथ्वी पर आ जाती है, जिससे खेती को बड़ा लाभ पहुँचता है। अतएव इसे सिद्धांत मानकर रसायनज्ञों ने पूरे परिश्रम से इस ओर काम करना आरम्भ कर दिया। नाइट्रोजन तो वायुमंडल से बड़ी सुगमता से मिल सकता था, क्योंकि पृथ्वी के प्रत्येक वर्गमील पर वायुमंडल में लगभग दो करोड़ टन नाइट्रोजन वायु के रूप में विद्यमान है। कठिनता यह थी कि नाइट्रोजन एक बहुत ही निष्क्रिय गैस है और सुगमता से यौगिक नहीं बनाती। दूसरे नाइट्रोजन के अणु हर समय परमाणुओं में विघटित होते रहते हैं। इस विघटन के साथ बहुत शक्ति निकलती है। यह वही शक्ति है जिसके कारण नाइट्रोजन–यौगिक इतने अमूल्य विस्फोटक गिने जाते हैं। परन्तु इन सब अड़चनों के होने पर भी युद्ध और कृषि की माँग पूरी करनी ही पड़ी।

सन् 1902 में अमेरिका के दो रसायनज्ञों ब्राडले तथा लोवेजोज (BradleyAnd Lovejoj) ने नियागरा फाल (Niagra Falls) के वायुमंडल की नाइट्रोजन को विद्युत–शक्ति के द्वारा काम में लाने के लिए उपकरण इकट्ठा किया। परन्तु इस विधि से नाइट्रिक–अम्ल की प्राप्ति बहुत कम रही और विद्युत–शक्ति बहुत व्यय हुई। एक वर्ष उपरान्त बर्कलैंड (Birkeland) ने इस विधि में जल–शक्ति (Water Power) का प्रयोग करके व्यापारिक रूप देना चाहा, परन्तु कुछ विशेष सफलता न प्राप्त हुई। कारण यह था कि इस प्रकार जितनी शक्ति व्यय होती है, उसका केवल सौंवा भाग ही वास्तव में नाइट्रिक अम्ल बनने के काम आता है और शेष सब व्यर्थ नष्ट होता है।

इसमें कुछ संदेह नहीं कि ये लोग कुछ लाभदायक बात तो न सिद्ध कर सके, परन्तु रसायनज्ञों के लिए काफी मार्ग खुल गया और सन् 1908 में एक नयी विधि जिसे साइन–अमाइड–विधि (Cyanamide Process) कहते हैं, आविष्कृत हुई। इस विधि के अनुसार एक विशेष पदार्थ जिसे कैलसियम साइन–अमाइड कहते हैं और जो चूना, कोयला तथा वायुमंडल के नाइट्रोजन से बड़ी सुगमता से बनाया जा सकता है, भाप के साथ गरम करने से अमोनिया गैस

निकालता है। इस गैस को चाहें तो किसी अम्ल में घोलकर अमोनियम स्फीतकारकों के रूप में काम में ला सकते हैं, अथवा इसे नाइट्रिक अम्ल में आक्सीकृत करके संसार भर के विस्फोटक, रंग और अनेक लाभदायक पदार्थ बनाये जा सकते हैं। सन् 1914 के युद्ध में यह विधि बहुत उपयोग में लायी जाती थी, परन्तु आजकल एक और विधि जिसे हाबर विधि (Haber Process) कहते हैं, अधिकतर नाइट्रोजन–निग्रहण में इस्तेमाल की जाती है।

यह विधि जर्मनी के एक यहूदी प्रोफेसर हर्स हाबर (Hertz Hober) की आविष्कृत की हुई है और यु में इसी के कारण जर्मनी बहुत समय तक विस्फोटक तैयार करता रहा। इस विधि के अनुसार अपद्रव्यों से शुद्ध नाइट्रोजन और हाइड्रोजन गैसों के मिश्रण को कुछ विशेष प्रकार के प्रवर्तकों की विद्यमानता में 400–500 डिगरी सेंटीग्रेड तापक्रम पर गरम करने से अमोनिया गैस बनायी जाती है। इस प्रकार इन प्रवर्तकों की सहायता से अमोनिया की प्राप्ति भी बहुत बढ़ जाती है। नाइट्रोजन–निग्रहण के लिए जो चार विधियाँ प्रयोग में लायी गयी हैं, उनमें हाबर विधि ही सब से लाभदायक और सफल सिद्ध हुई है। उसका कारण यह है कि इसमें साइन–अमाइड–विधि से एक चौथाई और शक्ति विधि से एक सोलहवां भाग विद्युत–शक्ति का होता है। युद्ध के दिनों में यह विधि केवल जर्मनी ही में प्रयोग में आती थी, परन्तु आजकल कई कारणों से सारे संसार में इस विधि का उपयोग होता है।

रसायनज्ञों के परिश्रम ने मनुष्य जाति के लिए एक बड़ी समस्या हल कर दी, क्योंकि संश्लेषिक अमोनिया से बड़े–बड़े लाभदायक स्फीतकारक बनाये जा सकते हैं, साथ ही उसको नाइट्रिक अम्ल में आक्सीकृत करके उससे युद्ध स्थल के लिए बड़े–बड़े अमूल्य विस्फोटक इत्यादि भी बनाये जा सकते हैं। इस प्रकार कृषि और युद्ध की आवश्यकताएँ थोड़े ही समय में एक बड़े औद्योगिक रूप में पलट गयीं और नाइट्रोजन–निग्रहण जो पहले शांति के समय में केवल कृषि की उन्नति के काम आता था, आज युद्ध के समय में अत्यन्त ही आवश्यक हो गया है।

नाइट्रोजन–निग्रहण का एक और उद्गम विटुमिनी कोयला भी है। इसके स्रवण (distillaton) से प्रदीपक गैसों के साथ–साथ कोलतार और अमोनिया भी निकलता है। कोलतार से बड़े–बड़े विस्फोटक जैसे पिकरिक एसिड और टी.एन.टी (T.N.T.) इत्यादि बनाये जाते हैं। अमोनिया से अमूल्य स्फीतकारक, जिसे अमोनियम सल्फेट कहते हैं, बनता है। अतएव हम हर एक स्थान पर देखते हैं कि कृषि और युद्ध दोनों साथ ही साथ रहते हैं। इसी कारण आधुनिक समय के अनुकूल किसी देश की सभ्यता उस देश के नाइट्रोजन की खपत पर निर्भर हैं। क्योंकि विस्फोटक न केवल युद्ध ही में लाभदायक सिद्ध होते हैं वरन् शांति के समय में भी देश की उन्नति के लिऐ अनेक प्रकार से अनिवार्य हैं। आज कल अमेरिका में प्रति वर्ष लगभग 500000,000000 पौंड विस्फोटक केवल खान खोदने, शिला तोड़ने, सड़कें बनाने और खेती के लिए धरती साफ करने में खर्च होता है।

केवल नाइट्रोजन–यौगिक ही नहीं बल्कि और बहुत से ऐसे पदार्थ हैं जो कृषि और युद्ध दोनों में बहुत उपयोगी हैं। पोटास भी एक ऐसा ही अमूल्य पदार्थ है जो हर समय खूब काम में आता है। यह उन मैदानों के लिए जिनकी उर्वरता नष्ट हो जाती है, बहुत ही लाभदायक स्फीतकारक है। जिन खेतों की धरती उपजाऊ नहीं रहती उनमें अनाज बोने के साथ पोटास डाल देने से वह फिर हरी–भरी हो जाती है। साथ ही साथ साबुन, काँच और दियासलाई बनाने में भी इसका उपयोग होता है। परंतु पोटास की आवश्यकता युद्ध में भी कम नहीं पड़ती। यु के दिनों में यह गन साइट्स, पैरिसकोप, रेंज फाइन्डर, बाईनौकुलर इत्यादि बनाने में इस्तेमाल किया जाता है। एक बार कृषि इसके अभाव से काम भी चला ले, परन्तु युद्ध का काम इसके बगैर नहीं चल सकता। सन् 1914

के महायुद्ध छिड़ते ही अमेरिका में पोटास का मूल्य रात भर में 40 डालर फी टन से 400 डालर फी टन हो गया था।

यह बात हुई अकार्बनिक (Inorganic) पदार्थों के सम्बन्ध में, अब जरा कार्बनिक (Organic) पदार्थों की ओर भी ध्यान दीजिए। कार्बन और हाइड्रोजन के संयोग से एक यौगिक बनता है जिसे इथिलीन (Ethylene) गैस कहते हैं। युद्ध के दिनों में इससे एक अत्यंत ही विषैली गैस जिसे मस्टर्ड गैस (Mustard gas) कहते हैं बनायी जाती थी। इथिलीन को वायु के साथ मिश्रित करके एक विस्फोटक भी बनाया जा सकता है। परन्तु आजकल यह गैस फल और अनाज पकाने के काम आती है। जिन फलों और अनाजों के दानों को साधारणतः सूर्य की किरणों में पकने पर कई सप्ताह लग जाते हैं, वे इसकी सहायता से कुछ ही घण्टों में पकाये जा सकते हैं।

न केवल यही बल्कि कृषि की प्रत्येक वस्तु युद्ध के लिए अमूल्य है। यहाँ तक कि कृषि का साधारण से साधारण पदार्थ जैसे दूध, जो हजारों गायों, भैसों इत्यादि के पालने और बड़े–बड़े चरागाहों के बनाने से मिलता है, केवल पीने के ही काम में नहीं आता वरन् युद्ध में भी आवश्यक सिद्ध हुआ है। इससे घी और मक्खन निकाल देने के पश्चात् एक विशेष पदार्थ रह जाता है, जिसे केसीन (Casein) कहते हैं। यह एक कोलायड है जो दूध में अर्ध–विलयन (Semi solution) के रूप में रहता है और बड़ी सुगमता से किसी अम्ल के द्वारा स्कंधित किया जा सकता है। कुछ समय पहले यह केवल "चीज" (Cheese) बनाने के काम आता था। परन्तु रसायन की उन्नति के साथ–साथ यह भी अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुआ है। केसीन ओर फौरमेल्डीहाइड के संयोग से एक अमूल्य यौगिक बनता है जिसे बैकेलाइट (Bakelite) कहते हैं। यह देखने में सींग जैसा होता है और बड़ा मजबूत, चिकना तथा अदाह्य भी होता है। आजकल इससे छतरियों आदि की मूठें, बिल्यर्ड की गेंदें, चाकू, इत्यादि अनेक प्रकार की वस्तुएँ बनायी जाती हैं। केसीन से भी क्रीम और हेयर लोशन इत्यादि बनाये जाते हैं। परन्तु रसायनज्ञों ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि केसीन–ग्लू (Casein glue) युद्ध के लिए एक अमूल्य रत्न है। सारे संसार भर की गोंदों में केवल एक केसीन ग्लू ही ऐसा पदार्थ हे जो हवाईजहाज बनाने के लिए प्लाइवुड (Plywood) के तख्ते जोड़ने के काम आता है।

यह कहा जाता है कि प्रति वर्ष सारे संसार की कुल उपज का एक पाँचवा भाग केवल टिड्डी, कीड़े और फंगाई इत्यादि से नष्ट हो जाता है। किन्तु इस ओर भी रसायन ने कुछ कम सेवा नहीं की है। जिस स्थान पर रसायन ने युद्ध के लिए बड़ी–बड़ी विषैली गैसें बनायी हैं, वहाँ पर रसायनज्ञों ने इनको नष्ट करने के लिए भी अनेक प्रकार के विष आविष्कृत किये हैं। इस्पात के यंत्र, कौनक्रीट के लिए सीमेन्ट, मोटर–इंजन इत्यादि के लिए पेट्रोल, मशीनों के लिए तेल, घर बनाने के लिए ईंट, पृथ्वी को उपजाऊ बनाने के लिए बड़े–बड़े विस्फोटक तथा स्फीतकारक ये सब रसायन ही से बनते हैं। यहाँ तक कि कौओं और चिड़ियों आदि को खेतों से उड़ाने के काम के लिए भी किसान अपनी बंदूक के लोहे से लेकर गोली और बारूद तक के लिए रसायन का ;णी है।

लोगों का कहना है कि रसायन शास्त्र ने युद्ध को भयंकर बनाने में बहुत सहायता पहुँचाई है और ऐसे अमानुषिक तथा विस्फोटक आविष्कार किये जिससे युद्ध–स्थल बिलकुल भयंकर हो गया। यह बात सत्य है परन्तु हमको यह न भूल जाना चाहिए कि रसायन–शास्त्र ही से शांति के समय में कृषि तथा व्यापार को अमूल्य लाभ पहुँचता है। रसायन शास्त्र ही संसार भर के रोग–पीड़ित व्यक्तियों की सेवा करता है और अनेक प्रकार से शान्ति पहुँचाता है। यदि किसी विज्ञान से हम लाभ न उठाकर उसका अनुचित प्रयोग कर युद्ध को भयंकर या अमानुषिक बना दें तो यह उस विज्ञान का दोष नहीं है।

जूते की पालिश*

श्यामनारायण कपूर, बी.एस–सी.

जूतों की पालिश की तैयारी में आम तौर पर तीन प्रकार की चीजों की जरूरत होती है। मोम (Waxes), घोलक (solvents), जिन्हें 'तेल' के नाम से भी पुकारते हैं और रंग। मोम चमड़े की रक्षा के साथ ही साथ उस पर पालिश भी करता है, तेल के मिश्रण से पालिश में जूते पर लगाये जाने योग्य स्निग्धता (Viscosity) आ जाती हैं। जूतों की पालिश बनाने में आमतौर पर तारपीन और ह्वाइट स्पिरिट (white spirit) सरीखे घोलक काम में लाये जाते हैं। पालिश बनाने की विधि देने के पूर्व संक्षेप में इनमें से प्रत्येक पर अलग–अलग विचार किया जायगा।

मोम

मोम कई प्रकार के होते हैं। प्राकृतिक मोमों में कार्नूबा वेक्स (Carnuba wax) जूते की पालिश बनाने में सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। इस मोम में अन्य मोमों की अपेक्षा चमड़े पर सबसे अधिक चमक पैदा करने की क्षमता होती है। अस्तु अधिकांश पालिशों में इसका व्यवहार अनिवार्य है। कार्नूबा के बाद क्रमशः कन्डेलिला (Candelilla), लाख का मोम (Shellac wax), शहद की मक्खी का मोम (Bees wax), ओजोकेराइट (Ozokerite) और पाराफीन वेक्स का नम्बर आता है। चमक पैदा करने के साथ ही साथ कार्नूबा मोम और कई बातों में दूसरे प्रकार के मोमों से आगे बढ़ी–चढ़ी है। इसकी झिल्ली (Film) या तह, पतली, सख्त और लचकदार (elastic) होती है। पालिश की तह लग जाने के बाद ब्रुश से रगड़ने पर उस पर ब्रुश के निशान भी नहीं बनते। इसके विपरीत जापान वेक्स और मधुमक्खी के मोम की पालिश चिपकदार होती है और उस पर गर्द जम जाती है। वास्तव में अधिकांश पालिशों में पाराफीन वेक्स का आधिक्य होता है।

जूते की पालिश का सम और एकरस (Homogeneous) होना परमावश्यक है। उसे उँगलियों पर दबाने से द्रव पदार्थ न बहने लगना चाहिये। इसके साथ ही उसमें यत्र–तत्र ठोस कण भी न पाये जाने चाहिये। पालिश चमड़े की रक्षा के साथ ही उसे चमकदार भी बना देती है। अस्तु जिस पालिश के लगाने से जितनी अधिक चमक आती है वह उतनी ही अच्छी समझी जाती है। चमक के साथ ही साथ वह चमड़े को मुलायम और लचकदार भी बना देती है। चमक के लिये अधिकतर कार्नूबा, केण्डेलिला और लाख के मोम व्यवहार में लाये जाते हैं। मानटेन (Montan) श्रेणी के मोम की पालिश में उतनी चमक नहीं होती। परन्तु कई एक कारणों से कार्नूबा वेक्स को अकेले व्यवहार में नहीं लाया जा सकता। इसके साथ कुछ मुलायम मोमों का मिश्रण बहुत आवश्यक हो जाता है। क्रूड मानटेन वेक्स (Crude montan wax) अधिकतर इसी उद्देश्य से काम में लायी जाती है। आम

* *विज्ञान*, जून 1936

तौर पर सस्ती होने की वजह से पाराफीन वेक्स से ही काम लिया जाता है और अधिकांश सस्ती पालिशों में कार्नूबा के बजाय ज्यादातर पाराफीन और साधारण मानटेन मोमों का मिश्रण व्यवहार में लाये जाते हैं। विशुद्ध और साफ की हुई मानटेन वेक्स भी काम में लायी जा सकती है। इससे पालिश को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचती।

घोलक

आम तौर पर तारपीन और पेट्रोलियम श्रेणी के घोलक जैसे ह्वाइट स्प्रिट व्यवहार में लाये जाते हैं। कहीं–कहीं असली और नकली तारपीन का–जिसे ह्वाइट स्प्रिट भी कहते हैं–मिश्रण भी व्यवहार में लाया जाता है। इनमें से कौन कितना व्यवहार में लाया जावे इसका निर्णय अधिकतर दोनों के मूल्य के आधार पर किया जाता है। तारपीन का तेल पूरी तौर पर उड़ता नहीं, अधिकाँश तेल के उड़ जाने के बाद एक हलकी सी झिल्ली बाकी रह जाती है। इसके विपरीत डेकालिन और ह्वाइट स्प्रिट नामक घोलक पूर्णतया उड़ जाते हैं।

पालिश को पतला करने के लिये कितना घोलक मिलाना चाहिये यह अधिकतर मोमों की घोलक को सोख लेने की क्षमता पर निर्भर होता है। घोलकों के घनत्व का भी इसमें काफी हाथ होता है। तारपीन के तेल की अपेक्षा 10 प्रतिशत कम ह्वाइट स्प्रिट से काम चल जाता है। पालिश को पतला बनाने के लिये घोलक का व्यवहार अनुभव पर भी निर्भर होता है। घोलक मिलाने पर पालिश लेई सी हो जानी चाहिये। ठण्डी हो जाने पर यह कुछ सख्त हो जायगी परन्तु उँगलियों से दबाने और रगड़ने पर यह फिर वही गाढ़ा लेई सा रूप धारण कर लेगी। बनाते समय ठण्डा करके इस बात की जाँच कर लेना चाहिये। कुछ पालिश घोलक मिलाने के बाद फौरन ही बर्तनों में भरी जा सकती हैं और कुछ घोलक मिला देने के बाद कुछ देर तक चलाते रहना अनिवार्य है। यह बात अधिकतर कार्नूबा और मानटेन मोम की उपस्थिति पर निर्भर होती है।

रंग

पालिश बनाने के लिये तेलों में घुल सकने वाले रंग व्यवहार में लाये जाते हैं। काली पालिशों के लिये आम तौर पर निग्रोसीन (Nigrosene) रंग व्यवहार में लाये जाते हैं। बादामी और दूसरे रंगों की पालिश के लिये एज़ो रंग (azo dyes) उपयुक्त समझे जाते हैं। रंग की मात्रा मोमों के स्वाभाविक रंग पर निर्भर होती है। हलके रंग की मोमों की पालिश में 4–5 प्रतिशत तक रंग पड़ जाता है, और साधारण गहरे रंग वाली मोमों में 2–3 प्रतिशत से ही काम चल जाता है। बादामी और गहरे लाल रंग की पालिशों के लिये गहरे रंग की साधारण (Crude) मानटेन वेक्स व्यवहार में लाना जरूरी है।

मोमों का गलाना

मोमों को गलाने के लिये लोहे की मामूली कढ़ाइयाँ उपयुक्त हैं। गलाते समय उन्हें लोहे की कलछी से चलाते रहना चाहिये। इन दोनों के अलावा एक थर्मामीटर भी बहुत जरूरी है। यह 150^0 सेन्टिग्रेड तक का ताप मापने में समर्थ होना चाहिये।

मोमों को गलाने में काफी होशियारी की जरूरत है। मोमों के विभिन्न मिश्रणों को गलाते समय विभिन्न ढंगों से काम लेना पड़ता है। अगर कार्नूबा वेक्स की मात्रा अधिक है तो उसके छोटे–छोटे टुकड़े करके उसे पहले गला लेना चाहिये। आँच लगाने के साथ ही साथ मोम को चलाना शुरू कर देना चाहिये। इसके अच्छी तरह गल जाने के बाद थोड़ी–थोड़ी देर में क्रमशः साधारण मानटेन

वेक्स, दूसरे प्रकार के मोम और पाराफीन मोम छोड़ना चाहिये। दूसरो भाग छोड़ने से पूर्व पहिले भाग को अच्छी तरह से गल जाने का मौका देना चाहिये। कढ़ाई में पकाते वक्त इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि आग की लपट बर्तन के उस भाग को न स्पर्श करें जो मोम की सतह से ऊँचा है। आँच बहुत तेज न होने पावे। अक्सर मोमों को तेज़ आँच से बचाने के लिये कढ़ाई के पेंदे के चारों ओर शुरू ही से पाराफीन वेक्स के बड़े–बड़े टुकड़े रख दिये जाते हैं। इस बात का ध्यान रक्खा जाय कि ताप–क्रम 95^0–105^0 से अधिक न होने पावे। बहुत से लोग काले रंग की मोम गलाते समय पाराफीन वेक्स या ओजोकेराइट छोड़ने के पहिले ही मिला लेना उचित समझते हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से रंग अच्छा आता है। दूसरे लोग रंग को सब मोमों के अच्छी तरह गल जाने के बाद ही छोड़ते हैं। रंग छोड़ने के बाद मोम को भूलकर भी अधिक आँच न दी जाय। काले रंग के अलावा और रंगों के लिये तो ऐसा करना नितान्त अनिवार्य है। अच्छा तो यही है कि मोमें गल जाने के बाद उन्हें ठण्डा होने दिया जाय और घोलक मिलाकर पतला करने के पूर्व उनमें रंग मिलाया जाय।

घोलक मिलाना

मोम गल जाने के बाद कढ़ाई को आँच से उतारकर अलग रख लेना चाहिये और ठण्डा होने देना चाहिये। घोलक ठण्डा होना चाहिये, और उसे मोम के बीचो–बीच पतली धार से छोड़ा जाय। घोलक डालते समय मोम को खूब अच्छी तरह से चलाते रहना बहुत जरूरी है। चलाते समय इस बात का ध्यान रक्खा जावे कि मोम कढ़ाई में इधर–उधर कहीं लगा न रह जावे। सारा घोलक छोड़ चुकने के बाद भी मोम को कुछ मिनट तक और चलाते रहना चाहिये। अगर कई एक घोलक व्यवहार में लाने हों तो उन्हें एक–एक करके छोड़ा जाय। जो घोलक सबसे जल्दी उड़ जाने वाला हो उसे सबसे बाद में छोड़ा जाय और जो सबसे देर में उड़ता हो उसे पहिले।

पतले करने के बाद कुछ क्रीमों (Creams) को फौरन ही बर्तनों में भरकर बन्द कर देना अनिवार्य होता है और कुछ को थोड़ी देर तक और चलाते रहने के बाद भरा जाता है। परन्तु दोनों ही प्रकार की पालिशों में तापक्रम को सम्हालना बहुत जरूरी है। पहली तरह की क्रीम को ठीक भरने के तापक्रम पर ही पतला करना चाहिये। पतला करने के बाद फिर गरम करना या निश्चित तापक्रम से अधिक ठण्डा होने देने दोनों ही बातों से पालिश के खराब हो जाने का अन्देशा रहता है।

काली, सफेद और रंगीन पालिश बनाने की विधि करीब–करीब एक ही सी है। कुछ हद तक बादामी और सुर्ख रंग की पालिश तैयार करना काली पालिश की अपेक्षा अधिक सरल है। इन सब क्रीमों के बनाने में एक बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिये कि मोमों को कभी किसी भी दशा में ताँबे के बर्तन में न गलाया जाय। तांबे के बर्तन में गलाने से कभी अच्छा रंग नहीं आवेगा। रंग क्रीम को पतला करने के पूर्व ही मोम में मिला दिया जाता है। रंग मिलाने के बाद गली हुई मोमों को अच्छी तरह चलाना जरूरी है। इस बात का ध्यान रक्खा जाय कि मिश्रित मोम अलग न हो जाँय। जब तक तापक्रम उतरकर बर्तनों में भरने के तापक्रम पर न आ जाय तब तक चलाते रहना चाहिये। कभी–कभी बर्तनों में भर देने पर भी क्रीम सन्तोषजनक नहीं बनती। ऐसी हालत में उसे गरम करके फिर से चलाकर भरना चाहिये। क्रीम को ठीक तापक्रम पर बर्तनों में न भरने से बर्तन के ढक्कन पर अन्दर की ओर घोलक की बूँदें उड़कर इकट्ठा हो जाती हैं। ये बूँदें क्रीम पर गिरकर उसे बिगाड़ देती हैं। इसके विपरीत उसे अगर कुछ अधिक समय तक खुली हवा में रहने दिया जाय तो क्रीम के लगाने पर जूते में अच्छी चमक न आवेगी और पालिश चिटकने का भी अन्देशा हो जाता है। नीचे जूते की क्रीम बनाने के कुछ नुस्खे लिखे जाते हैं। इन्हें बरसों के अनुभव के बाद तैयार किया गया

है। इनमें क्रीम को भरने का जो तापक्रम लिखा गया है उसमें थोड़ा बहुत अन्तर पड़ सकता है। ठीक–ठीक तापक्रम का निश्चय अपने आप प्रयोग करके मालूम किया जा सकता है।

1. काली चमकदार क्रीम–(भरने का तापक्रम 40^0–44^0 सेन्टिग्रेड)।

क्रूड मानटेन वेक्स	30
कार्नूबा वेक्स	5
लाख का मोम (शुद्ध)	7
पाराफीन मोम	75
निग्रोसीन (काला रंग)	12
तारपीन	200
ह्वाइट स्प्रिट	50

2. चमकदार द्वितीय श्रेणी की क्रीम (भरने का तापक्रम 35^0–36^0)

कार्नूबा वेक्स	9
क्रूड मानटेन वेक्स	2
साफ मानटेन वेक्स	5
पाराफीन वेक्स	5
रंग	15
तारपीन	24
ह्वाइट स्प्रिट	10

इसे पतले करने के बाद कुछ देर तक और चलाते रहना चाहिये और फिर उपरोक्त तापक्रम पर बर्तन में भर लेना चाहिये।

3. हलके रंग की क्रीम–

पाराफीन वेक्स (बढ़िया)	15
कारनूबा वेक्स (साफ)	6
मानटेन वेक्स (साफ)	4
ओजोकेराइट (पीला)	1
तारपीन का तेल	74

पीले रंग की क्रीम के लिये–

सूडान पीला सीआर (Sudan yellow cr) 0.25 प्रतिशत मिलाना चाहिये।

नारंगी रंग की क्रीम के लिये उपरोक्त क्रीम में सूडान पीला (सी.आर) 0.15 और सूडान आरेंज (आर) 0.10 मिलाना चाहिये।

4. काली बढ़िया क्रीम (भरने का तापक्रम 46^0–48^0)

कारनूबा वेक्स	33.5
क्रूड मानटेन वेक्स	25
ओज़ोकेराइट (मुलायम)	6
मानटेन वेक्स (विशुद्ध)	5
पाराफीन वेक्स (50^0–52^0)	85
निग्रोसीन बेज (काला रंग)	14
तानपीन का तेल	360

इनके अलावा दो और नुसखे नीचे दिये जाते हैं। इनके बनाने की विधि उपरोक्त विधि से कुछ भिन्न है अस्तु उसका अलग उल्लेख कर दिया जायगा।

काली पालीश नं.	1
मधुमक्खी का मोम	2 1/2 पौं.
कारनूबा वेक्स	1 1/4 पौं.
कास्टिक सोडा का	2 प्रतिशत घोल
या 40 बामें घोल	8 औं.
तारपीन का तेल	6 पैन्ट
निग्रोसीन (काला रंग)	1 3/4 पौं.
पानी 1 गेलन	(10. पौं.)

विधि

मोमों को काट–काट कर गरम करके पिघलाओ, मोमों के गल जाने के बाद कास्टिक सोडा का घोल छोड़ कर चलाते रहो। जब मोम का साबुन–सा बन जाय और एक सा हो जाय तो रंग को तारपीन में घोलकर मोम के साबुन में मिला दो। रंग मिलाते समय इस बात का ध्यान रक्खा जाय कि मोम बहुत ठण्डी न हो जाय, गुनगुनी बनी रहे। अन्त में पानी को खूब गरम करके धीरे–धीरे उपरोक्त मिश्रण को धीरे–धीरे डालकर मिला दो। मिलाने के बाद जब क्रीम शहद की तरह गाढ़ी हो जाय और ठण्डी हो चले तो उसे काँच या टिन के बर्तन में भर दो।

बादामी

उपरोक्त विधि से बादामी रंग की पालिश भी तैयार की जा सकती है। निग्रोसीन की जगह पर बिसमार्क ब्राउन (Bismark brown) रंग मिलाना होगा। यह रंग तारपीन के तेल के बजाय पानी में घोलकर मिलाया जाय।

काली पालिश नं.	2
मधुमक्खी का मोम	4 औंस (लगभग 2 छटाँक)
कारनूबा वेक्स	1 1/2 औंस
सेरिस्तिन	1/2 औंस
तान पीन का तेल	15 औंस
पीला साबुन	1 1/2 औंस
रंग (तेल में घुल सकने वाला)	आवश्यकतानुसार पानी

विधि

साबुन के छोटे–छोटे टुकड़े कर कम से कम पानी में घोल लो। घोल बनाने के लिये जरूरत पर साबुन और पानी को गरम किया जा सकता है। एक दूसरे साफ तामचीनी के बर्तन में मोमों को गला लो और बर्तन को आग से दूर ले जाकर तारपीन का तेल मिला दो (तारपीन का तेल, कभी भी बर्तन को आग पर रखकर न छोड़ना चाहिये। इस तेल को आग से दूर रखना ही उचित है)। अच्छी तरह मिल जाने के बाद निग्रोसीन मिला दो। जब तक ठण्डा न हो जाय बराबर अच्छी तरह चलाते रहो। क्रीम को गाढ़ा या पतले रखने के हिसाब से तारपीन का तेल छोड़ना चाहिये। दुर्गन्ध को कम करने के लिये बरगोमट या किसी और सुगन्ध की कुछ बूँदें मिलायी जा सकती हैं। इस विधि से बादामी पालिश भी बनायी जा सकती है। हाँ निग्रोसीन के बजाय बिसमार्क ब्राउन रंग डालना होगा। यह पानी में घुल जाता है। निग्रोसीन केवल तेल में घुलता है, पानी में नहीं।

फलों का विश्वकर्मा मिचूरिन*

ब्रजमोहन वर्मा

"बदमाश! पाजी! लुटेरी! डाकू!"—

बुड्ढा मिचूरिन एक हाथमें अपने डंडे पर भार दिये और दूसरेसे मालियों वाली कैंचीसे वृक्षोंकी मरी हुई पत्तियाँ काटता हुआ अपने बागमें घूमता फिरता है, और फलोंमें चोंच मारने वाली चिड़ियोंकी ओर देख–देखकर बड़बड़ाता हुआ बकता जाता है—"कम्बख्त, सारे फल काटे डाल रही हैं। घबराओ नहीं, थोड़ेही दिनोंमें ऐसी गर्मी पड़ेगी कि तुम सब झुलसकर रह जाओगी।" थोड़ी देर बाद जब वह भोजन करने जायगा, तब स्वयं इन 'पाजी, लुटेरी' चिड़ियोंके चुगनेके लिए दाना देगा। साठ वर्षसे यह बुड्ढा इसी तरह—जाड़ा, गर्मी, बरसात—अपने बागमें कामकर रहा है, और उसने अपने कार्यसे वनस्पति–जगतके अनेकों नियमोंको उलट–पलटकर धर दिया है—प्रकृतिकी पुरानी प्रणालीमें क्रान्ति उपस्थितकर दी है।

मिचूरिन रूसमें कॉजलोवके छोटेसे कसबेमें रहता है। शक्ल–सूरतमें रूखा, कपड़े–लत्ते ढीले–ढाले और बाबा आदमके ज़मानेके, बातचीतमें चिड़चिड़ा और दीन–दुनियाकी खबरसे बेखबर। इसीलिए सारा गाँव उसे साठ वर्षसे सनकी कहता आता है; लेकिन आज इस सनकीका शुमार संसारके महान विज्ञानवेत्ताओंमें है।

साइबेरिया और उत्तरी रूसमें भयंकर सर्दी पड़ती है। कॉजलोवमें ही जाड़ेमें थर्मामीटरका पारा शून्यसे 40° डिग्री नीचे जा पहुँचता है! ऐसी सर्दीमें पेड़–पौधेही नहीं उगते, फिर फल कहाँसे पैदाहो सकते हैं? सिर्फ शाहबलूत, भोजपत्र, ऐश आदि कुछ सख्तजान पेड़ही वहाँ जिन्दा रह सकते हैं। इसके विपरीत दक्षिणी रूसके क्रीमिया प्रान्तकी आबहवा शीतोष्ण और भूमध्यसागर जैसी है, और भूमध्यसागरके तटवर्ती स्थान फलों की उत्पत्ति के लिए सारे संसारमें प्रसिद्ध हैं। अबसे साठ वर्ष पहले मिचूरिनको यह धुन सवार हुई कि साइबेरिया और उत्तरी रूसमें भी भूमध्यसागर–जैसे फल पैदा किये जायँ।

मिचूरिनने इस सिद्धान्तपर प्रयोग शुरू किये कि यदि अपेक्षाकृत गर्म स्थानोंके पेड़ोंको धीरे–धीरे सर्द स्थानोंकी आबहवाका आदी बनाया जाय, तो उत्तरी रूसमें भी फल पैदाहो सकते हैं। उसने देश–विदेशसे बीज और कलमें मँगाईं, और उन्हें तरह–तरहकी हिफाज़तसे कॉज़लोवमें पैदा करनेकी कोशिशकी। वर्षोंके अथक परिश्रमपर भी परिणाम सन्तोषजनक न हो सका। तब उसने दूसरा उपाय करनेकी ठानी।

उसने दक्षिणी फलोंके पौधोंकी क़लमें उत्तरके शीत–सहिष्णु पेड़ोंपर लगाईं। उसने सोचा कि इस मिश्रणसे जो दुनस्ले पौधे पैदा होंगे, उनमें उत्तरी वृक्षोंकी शीतका सामना करनेकी शक्ति और

---

* *विशाल भारत*, जुलाई 1936

दक्षिणी वृक्षोंका फल देनेका गुण होगा। इस सिद्धान्तपर प्रयोग करते–करते और भी दस वर्ष निकल गये; पर सफलता न मिली।

अभी तक वह फलोंके पौधोंकी कलमें उन्हींसे मिलते–जुलते पेड़ोंपर बाँधता था। अब उसने इन पौधोकी क़लमें धुर उत्तरके ऐसे पौधों पर बाँधी, जो जातिमें और भौगोलिक स्थितिमें उनसे एकदम भिन्न और दूरके थे। उदाहरणके लिए, वह नाशपातीकी क़लम ठेठ उत्तरके 'ऐश' (Ash) वृक्षपर बाँधने लगा। इस प्रकारके हज़ारों प्रयोग करके अन्तमें उसने सफलता प्राप्तकी, और सैकड़ों नये फल देने वाले वृक्ष पैदाकर दिये।

आइवन मिचूरिनका जन्म मध्य रूसमें 1854 में हुआ था। बापकी मृत्युपर उसे पढ़ना छोड़कर पेटकी चिन्ता करनी पड़ी। वह सन् 1875 में, इक्कीस वर्षकी उम्रमें, कॉज़लोव आया और वहाँ रियाज़न–यूराल रेलवेमें साढ़े बारह रुबल (लगभग 25 रु.) महीनेपर क्लर्कहो गया। कॉज़लोव मास्कोसे लगभग 350 मील दूर एक बहुत छोटा क़सबा है। छोटी जगह होनेसे ही इस छोटी तनख्वाहपर किसी तरह गुज़र होना मुमकिनहो सका था। कॉज़लोवमें एक बिना पढ़ी–लिखी देहाती लड़कीसे विवाह करके वह बस गया। उसने तीन रुपये महीनेपर ज़मीनका एक छोटा टुकड़ा भाड़ेपर लिया और उसमें बाग़वानी करने लगा। दिनका आधा हिस्सा तो वह रेलके दफ्तरमें हिसाब–किताबके रजिस्टर उलटनेमें व्यय करता और बाकी हिस्सा—दिन छिपे तक—अपने पेड़–पौधोंके साथ काटता था। मुश्किल यह थी कि बाग़वानी ऐसी चीज़ है, जो दिन छिपनेके बाद नहीं हो सकती।

कुछ वर्ष बाद इत्तिफ़ाक़से रेलवेका एक इन्स्पेक्टर कॉज़लोव आया। उसे मालूम हुआ कि मिचूरिन शरीफ़ खान्दानका है। उसने कहा कि दफ्तरका काम मिचूरिनके लिए ठीक नहीं है। इसलिए उसने मिचूरिनको घड़ियोंकी मरम्मतका काम दिया। रेलवे–लाइन–भरकी बिगड़ी हुई घड़ियाँ उसके पास मरम्मतके लिए आने लगीं। इस परिवर्तनसे मिचूरिनको बड़ा फायदा हुआ। एक तो उसकी तनख्वाह बढ़ गई, ओर दूसरी सबसे बड़ी बात यह हुई कि उसे दफ्तर जानेसे छुट्टी मिल गई। अब वह सारा दिन अपने बागमें लगाने लगा, क्योंकि घड़ी–मरम्मतका काम तो वह दिन छिपनेके बाद भी कर लेता था।

वह अपने पेड़–पौधोंमें इतना व्यस्त रहता था कि उसे दुनियाकी किसी बातसे मतलब ही न था, इसीलिए गाँव वाले उसे सनकी कहा करते थे; लेकिन उसकी सनकसे किसीका कोई नुकसान न था, इसलिए किसीने उससे छेड़–छाड़ भी नहीं की। फिर हर गाँवमें एक–न–एक सनकी तो होता ही है।

सन् 1888 में मिचूरिनने कहीं–न–कहींसे कुछ बन्दोबस्त करके गाँवके छोरपर छै एकड़ जमीन खरीदी और अपने पुराने बागके पेड़–पौधोंको एक–एक करके ऐसी हिफाज़तसे ले जाकर, जैसे कोई नाजुक काँचकी चीज़ ले जाता हो, इस नई ज़मीनमें लगाया। यह नई ज़मीन अच्छी थी, फिर भी उसके विदेशी पेड़ उसमें न फले–फूले। वह बरस, दो बरस, चार बरस तक किसी पौधेको पाल–पोसकर बड़ा करता, उसकी आशाएँ उज्ज्वलहो उठतीं; लेकिन सहसा, बिना किसी प्रत्यक्ष कारणके, पेड़ मर जाता। मिचूरिन भग्न हृदय होकर उसे उखाड़ फेंकता और उसकी जगह कोई दूसरा पौधा रोप देता। इस तरह वह वर्षोंतक असफलतासे लड़ता रहा है।

मिचूरिनने बाग़वानी और वनस्पतिशास्त्रपर जितनी पुस्तकें मिल सकीं, पढ़ डालीं। अब उसने पैसे जोड़ना शुरू किया, और इसके लिए सारे शहरकी घड़ियोंकी मरम्मतकर डाली। कुछ पैसा जमा करके मिचूरिनने एक लम्बी यात्राकी। उसने इस यात्रामें मध्य और उत्तरी रूसके प्रत्येक प्रसिद्ध

बाग़को देखा; लेकिन इस यात्रासे उसे अपने प्रयोगोंमें कोई मदद न मिली। उसे सिर्फ इतनाही मालूम हुआ कि समूचे रूसमें एक भी बाग़ वैज्ञानिक ढंगसे नहीं चलाया जाता है।

यह यात्राही मिचूरिनके जीवनकी पहली और अन्तिम यात्रा थी। इसके बाद वह कभी कॉज़लोवसे बाहर नहीं गया। उसने अपनी स्त्रीकी सहायतासे एक नई प्रयोगशाला शुरूकी। वह उस रहस्यको ढूँढ़ निकालना चाहता था, जिससे वृक्षोंपर कठोरसे कठोर आबहवाका कोई असर न पड़े। सुबहसे शाम तक यह बाग़वान अपने झबरीले कुत्तोंसे घिरा बाग़में काम किया कता था। कुत्ते उसने इसलिए रख छोड़े थे कि वे लूट–मार करने वाले लड़कोंसे फलोंकी हिफाज़त करें।

मिचूरिनने अपने प्रयोगोंके आधारपर बाग़वानीपर दो–चार लेख भी लिखे; लेकिन वे सब वापस आये। उसने बाग़वानीके एक वैज्ञानिक पत्र 'रूसी बाग़ीचे' में छपनेके लिए एक लेख भेजा, तो सम्पादक महोदयने उसपर यह लिखकर लौटा दिया–"हम केवल सच्ची बातेंही छापते हैं।" मतलब यह कि मिचूरिनने जो–कुछ लिखा था, वह सम्पादक महोदयकी समझमें झूठी खुराफात थी।

अब मिचूरिनका धैर्य जाता रहा। वह जानता था कि वह ठीक मार्गपर कार्य रहा है, फिर भी शहर वालोंकी दृष्टिमें वह सनकी था और विज्ञानकी दृष्टिमें झूठा।

अन्तमें उसने ज़ारके कृषि–मन्त्रीको एक लम्बी रिपोर्ट लिखी, जिसमें उसने अपने प्रयोगोंका हवाला देकर यह बताया कि यदि उसे सरकारी सहायता मिले, तो वह इन प्रयोगोंके लिए एक वैज्ञानिक बाग़का संगठनकर सकता है। यह रिपोर्ट उसने सन् 1905 में भेजी थी; लेकिन जवाब नदारद।

उसने संयुक्त–राज्य अमेरिकाके कृषि–विभागको भी एक पत्र लिखा था, जिसका उसे उत्तर मिला। अमेरिका वालोंने लिखा कि वे उसके तमाम पेड़–पौधे और चीजें खरीदनेको तैयार हैं। यदि मिचूरिन अमेरिका आवे, तो वे लोग उसका स्वागत करेंगे। वे उसे लम्बी तनख्वाह देकर अपने प्रयोग–उद्यानका अध्यक्ष भी बनानेके लिए तैयार हैं।

इस उत्तरपर मिचूरिनको बड़ा हर्ष हुआ। इसलिए नहीं कि वह अमेरिका जाकर नाम और पैसा पैदा करेगा–क्योंकि कॉज़लोव छोड़नेका विचारही कभी उसके दिमागमें नहीं आया–बल्कि इसलिए कि दुनियामें कम–से–कम एकने तो उसके कामकी कद्रकी। अफ़सोस इस बातका था कि उसके क़द्रदान उससे कई हज़ार मील दूर थे।

फिर भी वह ज़ारके कृषि–विभागसे उत्तर पानेकी आशा लगाये रहा। अंतमें उसे तीन वर्ष बाद उत्तर मिला–वह इस रूपमें कि ज़ारके कृषि–विभागका एक अफ़सर, बढ़िया वर्दीमें लैस, सेंटकी खुशबूसे मुअत्तर, मिचूरिनके टूटे झोंपड़ेपर आ मौजूद हुआ। मिचूरिनके ढीले–ढाले मैले कपड़े देखकर शाही अफ़सरने उस पर अपना रोब गाँठना शुरू किया–"तुम अमेरिका जाओगे? मुल्क छोड़ोगे? हम तुम्हें कहीं भी जानेकी मनाही करते हैं।"

इसपर मिचूरिन भी बिगड़ उठा–"मैं कोई मुजरिम नहीं हूँ। मैं तुम्हारी धौंस नहीं सह सकता।"–यह कहकर वह कमरेके बाहर चला गया।

जब अफ़सर साहबका दिमाग़ कुछ ठंडा हुआ, तो उन्होंने कहा कि कृषि–मन्त्री मिचूरिनका बाग़ लेनेको तैयार हैं; लेकिन उसे कृषि–विभागके कड़े नियन्त्रणमें रहकर काम करना पड़ेगा।

मिचूरिनने किसीके नियन्त्रणमें काम करनेसे इनकारकर दिया। अफ़सर साहब जैसे आये थे, वैसे ही तशरीफ ले गये। मिचूरिन फिर अपने बागमें थाले गोड़नेमें लग गया।

सन् 1914 का यूरोपियन युद्ध आरम्भ हुआ, लेकिन मिचूरिनको उसकी खोज–खब़रकी फुर्सत कहाँ। वह तो गर्म स्थानोंके पौधों और रूसी शीतके युद्धमें उलझा हुआ था।

रूसकी महान् क्रान्ति हुई; मगर मिचूरिनको उसका पता नहीं, क्योंकि वह वनस्पति–जगतमें क्रान्ति पैदा करनेमें लगा था। उसे क्रान्तिका पता तब लगा जब लोगोंने उससे आकर बताया कि नई क्रान्तिकारी सरकार उसके बग़ीचेकी ज़मीन लेकर उसको आलू–गोभीके खेत बनाना चाहती है। इसपर मिचूरिनने जल्दी–जल्दी अपना पुराना कोट पहना, हाथमें लाठी उठाई और दो कुत्तोंको साथ लेकर क्रान्तिकारी अधिकारियोंसे मिलनेको पहुँचा।

"मैं तुम्हारे साथ काम करनेको तैयार हूँ; लेकिन मेरे बग़ीचोको आलूका खेत न बनाओ। मेरी जिन्दगी भरकी मेहनत चौपट न करो।"— वह किसी तरह दलील सुनता ही न था। आखिरकार अधिकारियोंने दया करके बूढ़े सनकीकी बात मान ली और उसके खेत बच गये।

अक्टूबर की लाल क्रान्ति के बाद रूस का ग्रह युद्ध हुआ। ज़ार–पक्ष के सेनापतियों ने विदेशियों की सहायता से लेनिन की फ़ौज से युद्ध छेड़ दिया। ज़ार–पक्ष के सेनापति मैननटोव ने अपनी कज्जाक फ़ौज के साथ कॉजलोव पर हमला किया। दूर पर बन्दूकों और मशीनगनों के चलने की आवाज़ आ रही थी, और मिचूरिन अपने बाग़ में बेलचा लिये हुए क्यारियाँ सवाँरता फिरता था। भला उसे ज़ार की सफेद या लेनिन की लाल फौजों से क्या मतलब? शाम के क़रीब कज्जाक फौज का एक तोपखाना मिचूरिन के बाग़ के दरवाज़े पर आकर रुका। उसे अपनी सारी ज़िन्दगी की मेहनत तोपों और फौजी बूटों से कुचली जाती नज़र आने लगी। उसने दौड़कर फाटक बन्द किया। सिपाही उसे धक्का देकर भीतर घुसना चाहते थे; लेकिन वह फाटक से जी–जान से चिपटकर लेट गया और बच्चों की तरह चीख–चीखकर रोने लगा—"मेरी ज़िन्दगी–भर की कमाई नष्ट हो जायगी। मर जाऊँगा, पर अपने पेड़ों को बरबाद न करने दूँगा।"

इतने में घोड़े पर सवार एक अर्दली आ पहुँचा, और उसने कहा कि सेनापति ने शहर में एक दूसरा स्थान देखा है, जो सैनिक दृष्टि से ज्यादा सुरक्षित है, तोपखाना वहीं जाकर डेरा डाले। कज्जाक सिपाही धूल उड़ाते हुए चले गये, और मिचूरिन के क़ीमती भंडार की रक्षा हुई।

धीरे–धीरे ट्राट्स्की की लाल सेना ने ज़ार–पक्ष वालों को मारकर नेस्तनाबूद कर दिया, और मास्को के क्रेमलिन में बोल्शेविक सत्ता जमकर बैठ गई। अब लेनिन को देश के पुनर्निमाण की फिक्र हुई। सन् 1921 में मास्को से एक रूसी वैज्ञानिक वावीलोव अमेरिका में लूथर बरबैंक के बाग देखने कैलीफोर्निया गया। लूथर बरबैंक के वैज्ञानिक ढंग से चलाये जाने वाले बाग़ को देखकर वह अत्यन्त प्रभावित हुआ, और उसने जितना समय उन्हें देखने के लिए निश्चित किया था, उससे कहीं ज्यादा लगाया। जब वह कैलीफोर्निया के बाग़ का निरीक्षण कर रहा था, तब बाग के अध्यक्ष ने उससे पूछा—"हाँ, यह बताइये कि मिचूरिन कैसा है? उसका स्वास्थ्य तो ठीक है? उसके प्रयोग कैसे चल रहे हैं?"

वावीलोव इसका क्या उत्तर दे? उसने कहा—"कौन मिचूरिन?"

"आइवन मिचूरिन,"—अध्यक्ष ने कहा—"वनस्पतिशास्त्र का महान रूसी वैज्ञानिक।"

वावीलोव को कहना पड़ा—"मैंने तो कभी मिचूरिन का नाम भी नहीं सुना।"

"ऐं, मिचूरिन का नाम भी नहीं सुना! फलों के विश्वकर्मा मिचूरिन का नाम भी नहीं सुना! यह जो सामने पेड़ दीखता है, यह मिचूरिन का ही है। यह रसभरी की झाड़ी एकदम नई किस्म की है, जिसे मिचूरिन ने कॉज़लोव में पैदा किया है। इस ज़रिस्क को उसने एक जंगली झाड़ी से विकसित किया है। वह पेड़ खुद मिचूरिन का उगाया हुआ है। आपने मिचूरिन का नाम भी नहीं सुना!"

वावीलोवने मास्कोको रिपोर्ट भेजी। क्रेमलिनमें बैठे हुए लेनिनने कॉज़लोवके बोल्शेविक अधिकारियोंके नाम तारों और हुक्मोंका ताँता बाँध दिया—" मिचूरिन जितनी ज़मीन चाहे, फौरन दो, मिचूरिन जितना पैसा माँगे, फौरन दो; मिचूरिनको जिन औजारोंकी ज़रूरत हो, फौरन मँगाओ;

मिचूरिनको जितने मज़दूर चाहने पड़ें, तुरन्त इकट्ठे करो; मिचूरिन ने जो–कुछ भी लिखा हो, उसे प्रकाशित करो।"

इस तरह आखिरकार मिचूरिनको अपने कामकी दाद मिली। लेकिन कब? सैंतालीस वर्षके निरन्तर परिश्रमके बाद! अड़सठ वर्षकी उम्रमें!

लेकिन अब उसे दूसरी मुसीबतोंका सामना करना पड़ा। अब ढेरके ढेर लोग उसके यहाँ आने लगे। कोई उसे सलाम करता, कोई उसे देखकर मुस्कराता और कोई–कोई तो उसके बागमें बैठकर गाना गाता। लोग उससे तरह–तरहके सवाल करते। लेकिन उसका नवयुवक सहकारी यकोवलेव बड़ा चतुर है। वह इन सबसे मिचूरिनकी रक्षा करता रहता है, और मिचूरिन अपने सहकारी यकोवलेवको देखकर कभी–कभी मुस्कराता है, क्योंकि थोड़ेही दिन पहले–लड़कपनमें–यही यकोवलेव मिचूरिनके बाग़के फल लूटने वाले लड़कोंमें सबसे बड़ा डाकू था।

जब मिचूरिन सत्तर वर्षका हुआ, तो बोल्शेविक सरकारकी आज्ञासे उसकी सत्तरवीं जयन्ती बड़े धूम–धामसे मनाई गई। कॉज़लोवके थियेटरमें जयन्ती–उत्सवका प्रबन्ध किया गया। रूस–भरकी वैज्ञानिक संस्थाओंने उसका अभिनन्दन करनेके लिए अपने–अपने डेपूटेशन भेजे। शहर–भर सजाया गया। सारे शहरमें चहल–पहल थी, गाँव–भरका हर आदमी इस उत्सवमें भाग ले रहा था। कॉज़लोवमें सिर्फ एक व्यक्ति ऐसा था, जिसे इस उत्सवकी खबर न थी, और वह था मिचूरिन! उत्सवका दिन मिचूरिनके जीवनमें एक मुसीबत का दिन था।

जब उत्सवका समय आया, तो कुछ कार्यकर्ता उसके पास पहुँचे और कहने लगे–'यहाँके थियेटरमें कुछ किसान इकट्ठे हुए हैं, वे आपसे कुछ प्रश्न पूछना चाहते हैं। ज़रा थियेटरतक चले चलिये।"

मिचूरिनने कहा–"अच्छा।"

इस पर वे बोले–"मोटर बाहर तैयार है।"

मिचूरिन बिगड़ उठा–"भाड़में जाओ तुम और तुम्हारी मोटर। क्या मेरे पैर टूट गये हैं, जो मैं मोटर पर जाऊँ।"

मोटर खाली लौट गई। मिचूरिन अपना डंडा उठाकर बड़बड़ाता हुआ चला–"क़िसान! सवाल पूछेंगे! गधे हैं, गधे!"

जब वह थियेटरके नज़दीक पहुँचा तो देखता है कि वर्दी पहने हुए लाल सेनाके सिपाहियोंकी लम्बी कतार लगी है। जब वह उस क़तारसे होकर गुज़रने लगा, तो दोनों तरफके सिपाही बड़ी इज्जतसे उसे लगे फौजी सलाम बजाने। अब मिचूरिन परेशान था। समझमें न आया कि बात क्या है, और वह इन सलामोंका जवाब टोप उतारकर दे, या इन्हींकी तरह फौजी सलाम ठोंककर, या इनसे खड़ा होकर बातें करे। खैर, साथ वालोंने उसे धकियाते–पिछियाते हुए ले जाकर थियेटरके मंचपर एक मेज़के ऊपर जा बैठाया। अब चारों तरफसे तालियाँ बजने लगीं, अभिनन्दन–पत्र पढ़े जाने लगे, उसकी प्रशंसा में क़सीदे और स्पीचें होने लगीं। मिचूरिनके होश–हवास ग़ायब हो गये। बेचारा बौखलाया हुआ मेज़पर बुत बना बैठा रहा। यहाँ तक कि जब साम्यवादियोंका इंटरनेशनल गीत गाया जाने लगा, तब भी उसे टोप उतारने की सुधि न रही। उत्सव खत्म होनेपर उसने इतना ही कहा–"मुझे बड़ा बेहूदा चकमा दिया – यह जयन्ती। देखूँगा, अब दुबारा मुझे कैसे चकमा देते हैं।" और अपने घर लौट आया।

मिचूरिन उत्तरी रूसके बर्फिस्तानमें रसभरी, नाशपाती, अंगूर, मकोय, आडू आदि रसीले फल पैदा करता है। इन वृक्षोंकी उत्पत्ति काफी जटिल है। एकही पेड़की क़लम एकके बाद एक करके न–जाने कितने वृक्षोंपर लगानेके बाद इस शीतमें फल देनेके योग्य बनी है। मिचूरिन अभी

तक कॉज़लोवमें नीबू नहीं पैदा कर पाया है। वह कहता है कि अगर वह पचीस वर्ष और जिन्दा रहे, तो कॉज़लोवमें नीबू भी पैदा कर देगा।

उसके बाग़में खूबानी पैदा होती है, उसके उपजानेमें एक अमेरिकन वैज्ञानिकका हाथ है। यह अमेरिकन वैज्ञानिक अमेरिकासे चलकर धूलभरे कॉज़लोवमें आता था। लोग आश्चर्य करते कि कॉज़लोवमें कौन–सा ऐसा आकर्षण धरा है, जिसके लिए कोई अमेरिकन यात्री वहाँ आये? वह मिचूरिनके यहाँ जाता और अपनी नोट–बुकोंको तारीखों, संख्याओं और ड्राइंगोंसे भर डालता था। वापस जाते समय उसके सूटकेसमें फल, टहनियाँ और पत्तियाँ भरी होती थीं। अन्तिम बार वह मंगोलियाकी यात्रा करके कॉज़लोव आया था। उसने मंगोलियाके एक मठमें चीनी खूबानीके कुछ पुराने दरख्त उगे हुए देखे। उसे यह पता था कि मामूली खूबानीके बीजसे कॉज़लोवमें खूबानी नहीं उगाई जा सकी। मठमें इन पेड़ोंको देखकर उसे ख्याल आया कि चूँकि यह पेड़ सैकड़ों वर्षसे मंगोलियामें उग रहे हैं, और मंगोलियाकी आबहवा भी कम सर्द नहीं है, अतः ये शीतमें रहनेके आदी हो चुके हैं। यदि ये पेड़ या इनके बीज कॉज़लोव और अन्य सर्द जगहोंमें लगाये जायँ, तो उग सकते हैं। लेकिन ये पेड़ प्राप्त कैसे हों? मठ एक धार्मिक पवित्र स्थान है। उसके पेड़ोंपर हाथ लगानेकी सख्त मुमानियत है। जब अमेरिकनको माँगेसे या दामोंपर वे पेड़ न मिल सके, तब उसने एक चाल चली। चीनमें—विशेषकर मंगोलिया में—कई वर्षसे सैनिक सरदारोंका दौरदौरा है ही। अतः अमेरिकनने लम्बी रिश्वत देकर एक चीनी कर्नलको मिलाया। कर्नलने एक दिन अपनी सेनाके साथ मठपर हमला करनेका अभिनय किया। जिस समय चीनी फौजके झूठे हमलेसे घबराकर मठवाले इधर–उधर भाग रहे थे, उसी गड़बड़ीमें अमेरिकनके कज्जाक शरीर–रक्षकोंने मठका बाग़ लूट लिया। अमेरिकनने उन वृक्षोंके बीज मिचूरिनको भेंट किये। अब कॉज़लोव और साइबेरियामें खूबानी पैदा होने लगी!

मिचूरिनकी बदौलत पश्चिमी साइबेरियामें बादाम पैदा होने लगा। यह उत्तरी अमेरिकन बादाम और मंगोलियन बादामके मिश्रणसे उत्पन्न होता है। उसके 'उत्तरी सौन्दर्य' नामक मीठे और रसीले अंगूर इरकुटस्ककी बर्फमें पैदा होते हैं।

मिचूरिन 'एक्टीनीडिया' नामक फल भी पैदा करता है। यह फल चीनके जंगली हिस्सेमें खुदरो होता है; लेकिन ऐसे उजाड़खण्डमें होता है, जहाँ लोगोंकी पहुँच नहीं, इसीलिए यह बहुत दुर्लभ है, और आज तक कभी किसीने इसे उगाया भी नहीं। बवेरियाका एक बादशाह इसका बड़ा शौकीन था। कहते हैं कि जब कोई दूसरा बादशाह उसके यहाँ आता और वह अपने शाही मेहमानके प्रति बड़ा सम्मान प्रदर्शित करना चाहता, तो वह मेहमानके सामने सोनेकी रक़ाबीमें एक्टीनीडियाके दो–तीन फल रखकर पेश करता। जहाँ यह फल होता है, वहाँके निवासी अंगुलियोंसे मसलकर इसका रस निचोड़ते हैं और उसे रोटीपर मक्खनकी तरह चुपड़कर खाते हैं। इसकी शक्ल भिंडी जैसी, खुशबू अनन्नाससे मिलती हुई और स्वाद संसारके सभी फलोंसे निराला—कुछ तीखा और मीठा होता है। यह ऐसा रसीला होता है कि जीभके नीचे रखतेही घुल जाता है। मिचूरिन तीस वर्षके अनवरत परिश्रमके बाद इस फलको पैदा करनेमें सफल हुआ। इसके लिए उसे 40,000 विभिन्न वृक्षोंपर इसकी कलम बाँधकर प्रयोग करने पड़े थे।

अब मिचूरिन बयासी वर्षका हो चुका है। अब उसे कानसे कुछ ऊँचा सुनाई देता है; लेकिन फिर भी उसकी नज़र तेज है। किसी पेड़में किसी नई पत्ती या नये फूलका निकलना फौरन देख लेता है और अपनी नोट–बुकमें लिख लेता है। अब भी वह सुबहसे दोपहर तक बाग़में काम करता है, दोपहरको भोजन करके घंटा–भर आराम करता है, और फिर सूर्यास्त तक बागमें रहता है।

उसका कमरा हमेशा अस्तव्यस्त रहता है। मेज़पर और आल्मारियोंमें इधर–उधर बीज, पत्तियाँ, टहनियाँ, क़लमें आदि बिखरी रहती हैं, और दीवारोंपर तरह–तरहकी घड़ियाँ–जेबी, हाथकी और दीवारकी–टँगी रहती हैं। उसका रहने–सहनेका सारा खर्च बोल्शेविक सरकार करती है, इसलिए मिचूरिनको पैसेके लिए अब घड़ियोंकी मरम्मत नहीं करनी पड़ती। इसलिए अब वह मन बहलावके लिए लोगोंसे माँग–माँगकर उनकी घड़ियोंकी मुफ्ती मरम्मत किया करता है।

मिचूरिनने रूसके बर्फिस्तान और कड़ी ज़मीनमें भूमध्यसागरके रसीले फल पैदा किये हैं। क्या गंगा–जमुनाके उपजाऊ मैदानोंमें चमनके अंगूर, काश्मीरके सेब, ईरानके सरदे और काबुलके बादाम नहीं पैदाहो सकते? कोई कहता है–"हो सकते हैं, हो सकते हैं।" कैसे? "मिचूरिन–जैसी लगनसे, मिचूरिन–जैसे परिश्रम से।"

डॉ. सरयू प्रसाद तिवारी*+

सदाशिवराव ठाकुर

जब सन् 1865 में डॉक्टर साहब का जन्म हुआ था तब इनके परिवार की स्थिति शोचनीय थी। इनके पिता पं. सुकरूराम जी ने कठिन परिश्रम किया किन्तु अपने पूर्वजों की स्थिति को नहीं पा सके। ये रीवा–राज्य की काशी और प्रयागराज कोठी के सुपरिन्टेन्डेन्ट थे तथा अनेक तरह का, जैसे सोना, चाँदी, कपड़ा, घी आदि का व्यापार भी करते थे। इन्हें व्यापार में कुछ लाभ नहीं हुआ क्योंकि गरीबों के प्रति इनकी असीम कृपा सदैव रहती थी। इन्होंने अपने जीवन में कभी किसी को नकारा नहीं किया। जो कुछ रुपया इनके पास अपने पिता के समय था उसमें से कुछ व्यापार में लगाने से तथा कुछ कर्ज देने के कारण डूब गया। अन्त में इन पर कई हजार का क़र्ज भी हो गया था।

इन्होंने अपने दोनों पुत्रों का अध्ययन रीवा में शुरू कराया। जब डॉ. साहब अंग्रेजी की 6वीं क्लास में पढ़ते थे तब इनकी प्रतिभा को देख कर पं. हेतराम जी ने, जो रीवा राज्य के दीवान थे, इन्हें स्कॉलरशिप देकर इन्दौर मेडिकल स्कूल में डॉक्टरी पढ़ने के लिए भेजा। इनके पहले रीवा से कोई भी विद्यार्थी बाहर नहीं गया था। अतएव पं. सुकरूराम जी ने भी बड़ी कठिनाई से इन्हें भेजने की आज्ञा दी। जब ये सन् 1882 में मेडिकल स्कूल में पढ़ने के लिए आये उस समय इनकी अंग्रेजी उतनी अच्छी नहीं थी जितनी एक विद्यार्थी को भरती होने के समय चाहिए। अंग्रेजी में कमजोर होने के कारण इन्हें भर्ती नहीं किया गया किन्तु ये निरुत्साहित नहीं हुए। सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब ने इन्हें एक माह के बाद परीक्षा में बैठने की इजाजत दे दी। डॉक्टर साहब ने इस एक माह में सतत् परिश्रम करके, तथा नाइट स्कूल में भरती होकर, अपनी अंग्रेजी सुधार ली। प्रवेशिका–परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये किन्तु सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब ने एक शर्त रखी थी कि यदि छःमाही परीक्षा में उत्तीर्ण न हुए तो वापस अपने गाँव को भेज दिये जावोगे। छःमाही की परीक्षा में डॉक्टर साहब अपने क्लास में प्रथम आये और इसी तरह सदैव अपने क्लास में प्रथम आते रहे। इन्हें स्टेट से स्कॉलरशिप 8 रु़ माहवार मिलता था जिसमें से 2 रु. माहवार ये अपनी माता को प्रेमवश भेजा करते थे। ये प्रति दिन अस्पताल के कार्यों से निवृत्त होकर पलासिया नाले पर जाते थे। वहाँ स्नान आदि करके स्वयं अपना भोजन बनाते थे। यदि कभी भोजन बनाने के लिए ईंधन नही रहता था तो जंगल में से लकड़ी, कंडा आदि बीन कर अपना भोजन तैयार करते थे। बाद में पलासिया को अपनी 'तपोभूमि' कह कर सम्बोधित किया करते थे। इन्होंने चार वर्ष मेडिकल स्कूल में इसी तरह निकाले और सन्

---

* **वीणा, अक्टूबर 1936**

+ डॉ. तिवारी पर 'वीणा' का विशेषांक प्रकाशित हुआ था, उसी से यह कविता तथा लेख उद्धृत है।

1876 में यहाँ की अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये। ये अपने क्लास में अधिक परिश्रमी विद्यार्थी थे। जब अन्य विद्यार्थी आमोद–प्रमोद में लवलीन रहते थे तब भी आप डिसेक्शन[1] रूम में काम करते पाये जाते थे।

चॅरीटेबल हास्पिटल के सुपरिन्टेन्डेन्ट किगन साहब ने अपने एक पत्र में इंग्लैण्ड से लिखा है–

-----"I always considered you one of the very best and industrious of my pupils and I know that your career would be a brilliant one if ever you got a fair chance of showing your a bilities and you see I have not been mistaken in my prognosis."

मेडिकल की परीक्षा पास करने के बाद ये एक वर्ष तक हाउस सरजन रहे और बाद में रीवा चले गये।

ये सन् 1887 में मनीगवाँ डिस्पेन्सरी में नियुक्त किये गये और वहाँ पाँच वर्ष रहे।

जिस समय ये मनीगवाँ गये थे उस समय डिस्पेन्सरी की हालत बहुत खराब थी। इन्होंने उसमें कई प्रकार से सुधार किये। जहाँ पहले बीमारों की संख्या बिलकुल कम रहती थी वहाँ इनके समय में सैकड़ों बीमार आने लगे क्योंकि मरीजों की देख–रेख तथा दवाई आदि का प्रबन्ध ठीक करते थे। इनका मधुर भाषण भी मरीजों की बहुत कुछ पीड़ा दूर कर देता था। श्री गोल्डस्मिथ, सरजन मेजर ने अपने सर्टीफिकेट में सन् 1889 में लिखा है। "Sarjuprasad though he has been only a comparatively short time in theAgency has already earned a most praise-worthy reputation. He came to a dispensary where hardly any work had been done and in the course of a very few months, people were flocking to him for treatment by thousands. I have never seen so large attendace at a village dispensary as he can show, his work is also done with economically and well. He is modest and unassusing, kind and painstaking with his patients and puts all his heart and energies into his work."

जब सतना डिस्पेन्सरी में सीनियर ग्रेड की जगह खाली हुई तब अन्य सीनियर डॉक्टरों को छोड़ कर डॉ. साहब को ही मौका दिया गया क्योंकि इनकी कार्य–कुशलता का परिचय एक छोटे गाँव की डिस्पेन्सरी दे चुकी थी। सतना में ये सन् 1899 तक रहे। सन् 1897 में अकाल के कार्य (Famine work) में इनके कठिन परिश्रम से ही सतना डिस्पेन्सरी में बड़े आपरेशन के लिए भी सुविधाएँ हो गयीं। यहाँ से इनका परिचय अनेक राजा महाराजाओं से हो गया और इनके पास इलाज कराने के हेतु सी.पी., बघेलखंड, बुन्देलखंड, यू.पी. आदि स्थानों से मरीज आने लगे।

उसी समय कर्नल गीमलेट बघेलखंड एजन्सी में एजन्सी सरजन थे। बाद में ये इन्दौर में असिस्टेन्ट मेडिकल आफिसर हो गये। कर्नल गीमलेट साहब की हार्दिक इच्छा थी कि डॉक्टर साहब को रीवा से इन्दौर बुलाया जाय क्योंकि वे इनके काम से पूर्ण परिचित और सन्तुष्ट थे। कर्नल गीमलेट साहब ने रीवा महाराज को एक पत्र इन्हें इन्दौर (Foreign service) में भेजने के लिए लिखा। महाराज ने भी इनके भविष्य को देखते हुए किसी प्रकार की आपत्ति नही की और इन्दौर जाने की आज्ञा दे दी।

इन्दौर आने पर ये चॅरीटेबल हास्पिटल में 'सीनियर सब असिस्टंट सर्जन' नियुक्त किये गये। ये महाराजा होलकर मेडिकल स्कूल में Anatomy भी पढ़ाते थे। यहाँ से इनका कार्य–क्षेत्र अधिक विस्तृत हो गया। ये केवल डॉक्टर ही नहीं बल्कि सार्वजनिक कार्यकर्ता का कार्य करते हुए डॉक्टर का जीवन व्यतीत करने लगे। ये महाराजा शिवाजीराव होलकर बहादुर के खास डॉक्टर (Personal physician) थे। महाराजा ने उन्हें स्टेट की नौकरी में लाने के लिए अनेक बार प्रयत्न किया, किंतु डॉक्टर साहब ने सदैव यही निवेदन किया कि सरकार की सेवा में किसी भी प्रकार की कमी नहीं

होगी। महाराज शिवाजीराव इनसे सदा प्रसन्न रहते थे और इन्हें अनेक बार पुरस्कार भी दिये। मेडिकल स्कूल में इनका शिक्षक के रूप में कार्य इतना आकर्षक होता था कि विद्यार्थी लोगों का ध्यान स्वभावतः विषय की ओर आकृष्ट हो जाता था। सर जेम्स राबर्ट्स साहब ने लिखा है—

...As a anatomist and teacher he has done most excellet work and his name will be remembered by the generation of students at the King Edward Hospital Medical School not only for his teaching but also for noble example of devotion to duty that he has shown them."

प्रायः डॉक्टर साहब अपने विद्यार्थियों को तीन बातों अर्थात् Skill, Industry and Character पर दृढ़ रहने का उपदेश दिया करते थे।

सन् 1910 में ये 'रायसाहब' की उपाधि से भारत सरकार द्वारा विभूषित किये गये। भारत में सबसे प्रथम यही व्यक्ति थे जिन्हें सन् 1914 में भारत सरकार ने सब असिस्टेंट सर्जन से असिस्टंट सर्जन का ओहदा दिया। मनुष्य को अपने परिश्रम का फल अवश्य मिलता है। डॉक्टर साहब की सेवाओं का फल यह हुआ कि भारत सरकार ने सन् 1918 में इन्हें 'रायबहादुर' के पद से विभूषित किया। इसके बाद कुछ वर्षों तक किंग एडवर्ड हास्पिटल में रहकर सन् 1921 में इन्हें महाराजा तुकोजीराव होलकर बहादुर के साथ विलायत जाने का अवसर मिला। ये महाराजा तुकोजीराव जी को विलायत जाने का वचन दे चुके थे किंतु अस्पताल में सरकार ने छुट्टी नहीं दी। उस समय इनके सामने प्रश्न यह था कि वचनानुसार कर्तव्य—पालन किया जाय अथवा नहीं। किंग एडवर्ड हास्पिटल में त्याग—पत्र देकर ये महाराजा तुकोजीव राव होलकर बहादुर के साथ खास डॉक्टर अर्थात् Personal physician होकर विलायत गये और अपना वचन पूरा किया। जब ये विलायत से वापस लौटे तो होलकर स्टेट के स्टेट सर्जन बनाये गये।

इनने महाराजा तुकोजीराव अस्पताल में मरीजों के लिए अनेक सुविधाएँ कर दीं। ये धनी और गरीब का समान दृष्टि से इलाज करते थे। गाँव की जनता के लाभ के लिए इन्होंने होलकर—स्टेट में प्रत्येक दस मील के अन्दर मेडिकल हेल्प[3] मिलने की योजना कर दी थी। इन्होंने प्रजा से रुपया माँग कर अनेक वार्डस् महाराजा तुकोजीराव अस्पताल में बनवाये और देहातों में भी कुछ रुपया जनता से दान में लेकर और कुछ स्टेट से मिला कर अनेक औषधालय भी खुलवा दिये। इनकी सेवाएँ होलकर—सरकार द्वारा भी सम्मानित की गयीं और मुन्तजिम—ए—खास—बहादुर के पद से विभूषित किये गये। कठिन परिश्रम तथा स्टेट सर्जन के कार्यों के उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य का असर इनके स्वास्थ्य पर पड़ा। सन् 1925 में इनका स्वास्थ्य अधिक खराब हो गया था। बम्बई में इनके पेट का आपरेशन किया गया और इनकी जांघ का चर्म निकालकर पेट में लगाया गया। आपरेशन के बाद इनकी हालत कुछ खराब थी, उस समय इन्हें एक आश्चर्यजनक स्वप्न दिखायी दिया। स्वप्न में एक देवी की सफेद मूर्ति तथा अलौकिक प्रकाश दृष्टिगोचर हुआ। देवी इनको पानी पीने का आदेश करती हुई अन्तरध्यान हो गयी। डॉक्टर साहब के जीवन में यह एक अलौकिक घटना थी। इस आपरेशन के बाद इनका स्वास्थ्य खराब रहने लगा। अतएव इन्होंने रिटायर होना ही उचित समझा। कई बार रिटायर होने का प्रस्ताव पेश कर चुके किन्तु स्टेट ने मंजूर नहीं किया। अन्त में जब स्वास्थ्य अधिक खराब होने लगा तो सन् 1931 में रिटायर हो गये। इन्हें, स्टेट से मुसाहिब—ए—खास बहादुर की पदवी भी प्रदान की गयी।

यह तो मैं पहले ही बता चुका हूँ कि डॉ. साहब का कार्य—क्षेत्र इन्दौर से अधिक विस्तृत हो गया था। इन्होंने जिस उत्साह और प्रेम से मेडिकल डिपार्टमेंट की सेवा की उसी तरह हिंदी—साहित्य की भी। इन्होंने हिंदी—साहित्य के प्रचारार्थ मध्यभारत—हिन्दी—साहित्य—समिति की स्थापना करवायी।

यह तो निर्विवाद है कि मध्यभारत–हिंदी–साहित्य–समिति के जन्मदाता और संरक्षक डॉ. साहब ही थे। इन्होंने अंन्य महाराजाओं तथा धनवानों से हिंदी–साहित्य–समिति के भवन–निर्माणार्थ रुपया एकत्र किया और समय–समय पर अपने पास से भी दान दिया। यह बात इन्दौर की जनता से छिपी नहीं है।

इन्होंने Medical LicentiatesAssociation की स्थापना डॉक्टर रामचन्द्रीयर के साथ की थी और स्वयं जनरल सेक्रेटरी तथा प्रेसीडेन्ट रहकर इसके कार्य को आगे बढ़ाया। अन्त में सन् 1933 में सर्व सम्मति से इसके पेट्रन चुने गये। ये इन्दौर के अनेक सार्वजनिक संस्थाओं के प्रेसिडेंट थे जैसे ब्रह्मचर्याश्रम, लेडी औडवार गर्ल्स स्कूल, महावीर मन्दिर, स्वदेशी संघ, हरिजन–सेवक संघ आदि।

इस प्रकार मानव–सेवा करते हुए ता. 16 आक्टोबर सन् 1935 में इनका स्वर्गवास हो गया। इनके जीवन का उद्देश्य गरीबों की सहायता करना, पीड़ितों की रक्षा करना तथा रोग–ग्रसित जानों को यथा–संभव रोग–मुक्त करना ही था।

---

1. चीडफाड़
2. कायविज्ञान
3. नैपुण्य परिश्रम तथा चरित्र
4. चिकित्सा सहायता

भोजन है या विष?*

डाक्टर उमाशंकर प्रसाद, एम.बी.बी.एस.

कुछ ही दिन हुए अमेरिका के विश्व–प्रसिद्ध मेयो क्लिनिक अस्पताल में एक मनुष्य एक विचित्र रोग की चिकित्सा के लिये आया। उसका कहना था कि नित्य प्रातःकाल 7 बजे उसे इतनी गाढ़ी नींद आती है कि चाहे वह किसी भी कार्य में व्यस्त रहे, वह उस समय लुढ़क कर खर्राटे लेने लगता है। उस समय चाहे वह व्यवसाय–सम्बन्धी आवश्यक बातों पर आफिस की कुरसी पर बैठा विचार कर रहा हो, या चाहे भीड़ में सड़क पर अपनी मोटर ही चला रहा हो, अपनी नींद को वह नहीं रोक सकता।

उक्त अस्पताल के डाक्टर वाल्टर को इस विचित्र रोग ग्रसित मनुष्य को मुक्त करने में सफलता पाने के लिए बहुत जांच पड़ताल करनी पड़ी। अंत में इस रोग के कारण का पता उन्हें मिल ही गया। मुख्य कारण तो बीमारी से भी अधिक अनोखा था। आप सोचते होंगे कि कोई बहुत ही बड़ा कारण मिला होगा, पर आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि एकमात्र कारण एक प्याला और उसमें पड़ा दूध था, जिसे वह मरीज रोज सबेरे पीता था। डाक्टर की राय के अनुसार जब मरीज ने दूध का सेवन अपने नित्य के कहवा के साथ छोड़ दिया तब वह अपने विचित्र रोग से मुक्त हो गया।

इसी प्रकार की हजारों घटनाएँ डाक्टरों को देखनी पड़ती हैं। इस विचित्र अवस्था को अंग्रेजी में 'एलर्जी' कहते हैं। और हम इसे 'अति संक्षोभ्यता' कह सकते हैं। वही वस्तुएँ जो साधारण मनुष्यों के लिये नित्य के प्रयोग की खाने, सूँघने या शरीर में लगाने की हैं, और साधारणतः उन्हें कुछ भी हानि नहीं पहुंचाती हैं, ऐसे मनुष्यों के लिये जो उक्त रोग के पंजे में हैं, साक्षात् काल हैं।

यदि किसी मनुष्य को अंडे खाने से शरीर पर लाल ददोरे उभड़ आयें, बिल्ली या घोड़े के समीप जाने से छींक पर छींक आने लगे, किसी विशेष पुष्प को सूंघने से दमे का दौरा होने लगे, तब उसे चाहिये कि वह शीघ्र ही डाक्टर की राय लें न कि उसे हंसी में उड़ा दे।

दमा से पीड़ित कितने ही मरीज कहते हैं कि अरहर की दाल खाने से दमे का दौरा उमड़ आता है। कुछ मांस खाने वाले व्यक्ति यदि घोंघा खा लें तो उन्हें पेचिश होने लगती है। दूसरे लोग घोंघा बड़ी रुचि से खा और पचा सकते हैं।

लखनऊ मेडिकल कालेज के फेफड़े–रोग के विभाग में एक सज्जन आये। देखने से वे पूर्णतया स्वस्थ थे। हम लोगों ने सोचा कि अपने साथ किसी रोगी को लाये हैं पर जब टिकट पर उन्होंने अपना ही नाम लिखाया तब कुछ आश्चर्य हुआ। सबसे अधिक आश्चर्य तो तब हुआ जब

---

* *विज्ञान*, जनवरी 1937

उन्होंने अपनी तकलीफ बयान की। उनका कहना था कि जब कभी वे रेलगाड़ी पर जाते हैं और गाड़ी कानपुर स्टेशन से गुजरती थी, तब उन्हें दमें का दौरा होने लगता है। यदि उन्हें कभी कानपुर उतरना पड़ता है तब तो और आफत हो जाती है और शीघ्र ही कानपुर छोड़ देना पड़ता है। उन्होंने अपने अनुभव से सीख लिया था कि कानपुर ही उनके दमा का कारण था। इस बात में उनको इतना विश्वास था कि वह चक्कर लगाकर लंबे मार्ग से अपने स्थान पर जाते थे, और कानपुर से नहीं गुजरते थे, क्योंकि अपने सर पर दमे का कष्ट नहीं बुलाना चाहते थे। मेडिकल कालेज के प्रोफेसर ने समझाया कि उक्त सज्जन के शरीर पर चमड़े के कणों का विचित्र प्रभाव पड़ता है। बाद में विशेष जांच से उन्होंने यही बात सिद्ध भी की। इस विचित्र रोग का कारण उन्होंने इस प्रकार समझाया कि कानपुर में चमड़े का व्यवसाय अधिक होने के कारण वहां की हवा में नये–नये चमड़े के कण भरे पड़े रहते हैं। जब कभी वह रोगी अभाग्य से कानपुर पहुंचता था, उसे चमड़े के कण से दूषित वायु में सांस लेनी पड़ती थी। तब ये कण फेफड़े के भीतर तक पहुंचते जाते थे और नाक तथा फेफड़े की श्लेष्मि कला पर हानिकारक प्रभाव डालते थे। फलस्वरूप उन्हें दमें का दौरा होता था।

ऐसी ही रोचक और विचित्र घटना एक लड़की की है। उसका प्रेमी जब–जब उसके पास आकर बातचीत करता था तब–तब थोड़ी देर में लड़की की सूरत बिगड़ जाती थी। बेचारी की आंखों की पलकें ऐसे सूज जाती थीं मानों किसी कीड़े ने काट लिया हो। अंत में इससे बचने के लिए दोनों डाक्टर के पास पहुंचे। तब बहुत जांच करने के बाद डाक्टर को पता चला कि प्रेमी अपने कोट में जो पुष्प लगाकर आया करता था उसी से आंखों में सूजन हो जाती थी। कारण यह था कि उस पुष्प के पराग को उस लड़की की आंखें बरदाश्त न कर सकती थीं। उस पुष्प को फेंक देने से ही कष्ट का निवारण हो गया।

एक डाक्टरी पुस्तक में इसी प्रकार की दूसरी घटना दी हुई है। इस मरीज के असली शहद के खाने से पेट में दर्द होने लगता था। यहां भी कारण फूल का पराग ही था, जो मधु मक्खियों के पैरों में मधु एकत्रित करते समय लग जाया करता था और शहद में भी कुछ अंश में आ जाता था।

एक नानी की घटना कम मजेदार नहीं है। नानी जब अपने 6 वर्ष के नाती को जलपान के बाद दुलार से चूमती थी, तो बच्चे के सारे शरीर पर बड़े–बड़े चकत्ते उभड़ आते थे और बड़ी खुजली होती थी। जांच करने से पता लगा कि बच्चे के शरीर पर अंडे का बड़ा असर होता था और उससे चकत्ते उभड़ आते थे। नानी जलपान में अंडे खाती थी पर रूमाल से मुंह भली भांति न पोंछती, जिससे कुछ अंडे का झूठा मुंह पर लगा रह जाता था। चुम्मा लेते समय बच्चे के मुंह पर भी अंडा लगता था और बेचारे को नानी के प्यार की बड़ी महंगी कीमत देनी पड़ती थी।

इसी प्रकार के कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं। दीवाल पर लगने वाले विशेष कागज़, झरबेर, रबड़, चावल, खजूर, टमाटर, मांस, गुलाब के फूल, लकड़ी का चूरा, कोहड़ा, इत्यादि ऐसी कितनी ही वस्तुएं हैं जो विशेष व्यक्तियों में ऊपर के विचित्र लक्षण पैदा करती हैं।

मेरे एक सम्बन्धी जब कभी कच्चे कोंहड़े की तरकारी खाते हैं तब उनके मसूड़े फूल आते हैं।

ऐसे रोगियों के रोग के कारण पता लगाना अक्सर कठिन होता है। डाक्टर को जासूसी करनी पड़ती है। इन दिनों "खरोचने की विधि" के प्रयोग से विशेष वस्तु के ढूढ़ने में बड़ी सहायता मिलती है। कुछ मनुष्य तो कई वस्तुओं को नहीं सहन कर सकते हैं।

कुछ दिन हुये एक मनुष्य ने लिफाफा चपकाते समय पास में पानी न रहने से जीभ से चाट कर पत्र बन्द किया। कुछ देर में ही वह सिर से पैर तक काँपने लगा, सिर पर बड़ा पसीना छूटने लगा, सांस लेने में कष्ट होने लगा और अन्त में मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। 15 मिनट बाद होश हुआ और थोड़ी देर में चंगा हो गया। दूसरी बार वही व्यक्ति नये जूते का पारसल खोलकर एक पैर

में जूता पहनने लगा। दूसरे पैर में जूता पहनने की बारी भी नहीं आई थी कि उसे बेहोशी का दौरा हुआ। पहला जूता पैर से निकालते भर में वह मूर्च्छित हो गया। इन विचित्र दौरों का कारण क्या था? उसके चिकित्सक ने अतिसंक्षोभ्यता को ही इस कष्ट का कारण होना स्थिर किया। इस बात को निश्चयपूर्वक जाँच करने के लिये डाक्टर ने दो–दो इंच की दूरी पर छोटे–छोटे खरोंच सुइयों से बनाये। यह खरोंच इतना हल्का था कि रक्त न निकल पाया, परन्तु चमड़ा छिल गया। फिर जिन वस्तुओं पर डाक्टर को शंका थी कि उनके व्यौहार से मरीज़ की ऐसी दशा होती है, और उनको चूर करके और शुद्ध जल में घोल कर या रगड कर एक–एक खंरोच पर एक–एक वस्तु रगड़ दी। फिर खंरोचों को रुई से ढक कर उन पर पट्टियां बांध दीं। जिससे न उनमें गन्दगी पहुंचे, न एक खरोंच का घोल किसी प्रसार दूसरे खरोंच में लगे। एक खरोंच पर कोई वस्तु नहीं लगाई जाती है। इस रीति से अनेकों वस्तुओं की जांच की जाती है, जैसे चमड़ा, ऊन, दाल, टमाटर, अंडा इत्यादि। केवल ढक दिया जाता है। यदि आधे घंटे तक में पट्टी खोलने पर उस खरोंच के चारों ओर एक इंच तक गुलाबी रंग का चकत्ता चर्म पर नहीं उभड़ आता है तो इसका अर्थ यह होता है कि इन वस्तुओं के प्रयोग उसे हानिकारक नहीं हैं। जिस वस्तु से आध घंटे के भीतर खरोंच के चारों ओर लाल चकत्ता उभड़ आता है उस वस्तु के लिये वह व्यक्ति अतिसंक्षोभ्य है और उस वस्तु के व्यवहार करने से पूर्व वर्णित कोई लक्षण दिखलाई देने लगता है।

उपरोक्त मनुष्य की जब डाक्टर ने खरोंच विधि से जांच की तब गोंद को छोड़ अन्य वस्तुओं से कोई हानि न हुई, पर गोंद को खरोंच पर लगाते ही उसे दमे का दौरा होने लगा और खरोंच के चारों ओर शीघ्र ही बड़ा चकत्ता बन गया। लिफाफा चपकाते समय और जूता पहनते समय उसे दमा का दौरा हुआ था। उसका कारण यही था कि लिफाफे और जूतों में गोंद लगा था।

खरोंच–विधि से भी अच्छी एक दूसरी विधि अब प्रयुक्त हो रही है। जिस वस्तु पर संदेह होता है उसे ब्यौहार में लाने के कुछ पहले और फिर आधे घंटे बाद उस मनुष्य का एक दो बूंद रक्त शरीर से निकाल लिया जाता है और उस पर खुर्दबीन[1] लगाकर श्वेत रक्ताणु गिने जाते हैं। यदि वह विशेष खाद्य पदार्थ ही उसके कष्ट का कारण होगा तो आध घंटे बाद के रक्त में श्वेत रक्ताणुओं की संख्या बहुत कम हो जायेगी।

सबसे अनोखी बात तो यह है कि लाभदायक भोज्य पदार्थ ही सबसे अधिक बखेड़े के कारण हैं। इन वस्तुओं में सर्वप्रथम नम्बर अंडे का है। यह शरीर में जाकर क्या करता है, जिससे इस प्रकार का दौरा होता है? इस प्रश्न का उत्तर देना विशेषज्ञ के लिए भी कठिन होगा।

अभी से शरीर के इस विचित्र परिवर्तन के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकी है। यही कारण है कि इसको समझाने के प्रयत्न में कई सिद्धान्त बने हैं। प्रत्येक सिद्धान्त से केवल कुछ ही बातें समझ पड़ती हैं, कोई भी सिद्धान्त अभी तक सब बातें नहीं समझा सकता। एक मत के अवलम्बी दूसरे मत का खण्डन कर लेते हैं। इससे प्रत्यक्ष है कि अभी बहुत सी बातें कल्पना पर ही निर्मित हैं।

अधिकांश वैज्ञानिकों द्वारा अनुमोदित मत यह है कि रक्त–धारा में जब कोई नवीन प्रकार की प्रोटीन वस्तुयें पहुंचती हैं तब ऊपर बतलाये गये लक्षण उत्पन्न होते हैं। प्रकृति ने शरीर में इस प्रकार के प्रोटीन वस्तुओं को परास्त करने के लिये छोटे–छोटे पदार्थ बनाये हैं जिनका पता अभी ठीक–ठाक नहीं लगा है। जिस प्रकार किसी देश पर शत्रुओं का आक्रमण होने पर उस देश की सेना रक्षा के लिए एकत्रित हो जाती है ठीक उसी प्रकार शरीर की ये वस्तुयें नवीन बाहरी प्रोटीन आदि पर आक्रमण करके उनका नाश करने का प्रयत्न करती हैं। यदि इस प्रकार का बाहरी प्रोटीन इतनी अधिक मात्रा में यकायक शरीर में प्रवेश कर जाता है कि शरीर की रक्षक शक्ति उसे नहीं सम्हाल

सकती, बल्कि स्वयं विनाश हो जाती हैं, तब बचे हुए बाहरी प्रोटीन विजयी शत्रु की भांति शरीर में जो उत्पात करते हैं वे ही सब विशेष लक्षण रूप में हमें दिखलाई पड़ते हैं। ऐसे मनुष्य का स्वास्थ्य भी उस समय बिगड़ जाता है। कुछ समय बाद शरीर में पुनः इन वस्तुओं से लड़ने वाली वस्तुयें पैदा होती हैं, जो धीरे–धीरे इन वाह्य वस्तुओं से लड़ने वाली वस्तुयें पैदा होती हैं, जो धीरे–धीरे इन वाह्य शत्रुओं को निकाल बाहर कर उस मनुष्य को चंगा कर देती हैं।

इस मत को प्रमाणित करने के लिये नीचे दी गई घटना यथेष्ट है। एक रोगी की तात्कालिक चिकित्सा के लिये दूसरे मनुष्य का रक्त उसके शरीर में डाला गया, जिससे रोगी का प्राण बच गया। कुछ देर बाद रोगी को बराबर छींक पर छींक आने लगीं। जाँच से पता लगा कि जिस मनुष्य का रक्त रोगी में डाला गया था वह मुर्गी के पर के समीप जाते ही छींकने लगता था। उस मनुष्य के रक्त को रोगी के शरीर में डालने से कुछ काल के लिये वही लक्षण रोगी के शरीर में भी आ गया। रोगी के तकिये में मुर्गी का पर भरा हुआ था, जिससे वह खूब गरम और मुलायम रहे। फलस्वरूप कुछ काल तक रोगी जब कभी परदार तकिये के पास जाता तब वह छींकने लगता।

इसी प्रकार एक स्त्री को भेड़ के पास आते ही दमा का दौरा होता था। अभाग्य से एक रोग के लिये उसकें पेट में बड़ा नस्तर लगाना पड़ा था। पेट के भीतर के अंगों को सीने के लिये ताँत का प्रयोग करना पड़ा। यह भेड़ की अँतड़ियों का बना हुआ था। स्त्री को दमा और छींक का दौरा शुरू हो गया। जांच करने पर भूल मालूम हुई, पर पेट के भीतर से टांका फिर आपरेशन करके नहीं निकाला जा सका। दस दिन बाद तांत नियमानुसार गलकर गायब हो गयी और साथ ही स्त्री भी दमें तथा छींकने से मुक्त हुई।

कुछ सौन्दर्य–वृद्धि की वस्तुयें भी ऐसी ही होती हैं। गालों पर लगाने का पाउडर, ओंठ लाल करने का रंग, बाल के तेल, इत्र, साबुन आदि भी कितने मनुष्यों में ऐसे ही विशेष लक्षण उत्पन्न करते हैं। कभी–कभी फैशन प्रिय स्त्रियाँ शाम को घबड़ाई हुई डाक्टर के पास आती हैं कि दावत, या सिनेमा में जाने के लिये शृंगार करने के बाद उनकी आंख और ओंठ ऐसे सूज आये या बदन में इतनी खुजली होने लगी कि बाहर जाना तो दूर रहा, कष्ट सहना भी असम्भव हो गया। पूछने से पता लगता है कि उस दिन उन्होंने एक नये तेल या पाउडर का प्रयोग किया था। इन वस्तुओं के बनाने में ऐसी वस्तुयें भी पड़ती हैं जैसे आरिस की जड़, या चर्बी जिसे कुछ मनुष्य नहीं सह सकते हैं।

एक उच्च पदाधिकारी की पत्नी को दमा की बीमारी हो गई। बहुत रुपया खर्च करके वह विदेशों में भी घूमी कि शायद कहीं की आबहवा उसके अनुकूल हो और दमा छूटे। पर बेचारी क्या जानती थी कि उसका भोला भाला शृंगारदान ही उसके कष्ट की जड़ था। डाक्टर की राय से उक्त महिला जब अपने पाउडर को बदल कर दूसरा पाउडर प्रयोग करने लगी तब वह चंगी हो गई।

इसी प्रकार दूसरी महिला को दमा से बचने के लिये समुद्र तट पर रहने की सलाह दी गई। दिन भर तो वह चंगी होकर घूमती थी पर रात को उसको मुलायम और गरम गद्दे और तकियों में भी दमा से चैन नहीं पड़ता था। अंत में उसके बुद्धिमान डाक्टर ने राय दी कि तकिये में भरा पर और ऊनी कम्बल ही सब बखेड़ों की जड़ है। यह बात ठीक निकली, क्योंकि उसके बाद समुद्र–तट की आवश्यकता रोगी को न पड़ी।

एक टाइप करने वाली लड़की ऐनक साज़ की दुकान से चुनकर नये सुन्दर फ्रेम वाला चश्मा लगाकर निकली। थोड़ी दूर जाने पर उसने देखा कि सड़क पर चलने वाले स्त्री–पुरुष उसकी ओर घूर रहे हैं, मानों उसके मुँह में कोई विचित्रता है। जब वह मकान पहुंची और अपनी चंचलता शांत करने को दर्पण के सामने गई तब अपने गालों को देख कर उसे बड़ा अचम्भा हुआ। दोनों गाल

स्याह हो गये थे। इसका कारण फ्रेम था जिसके बनाने में कोई ऐसी वस्तु प्रयुक्त हुई थी जिससे उपरोक्त लक्षण उत्पन्न हुआ था। उसी प्रकार एक बाँसुरी बजाने वाले ने जब एक नई लकड़ी की बाँसुरी बजायी तो उसके ओंठ सूज आये।

इन सभी विचित्र लक्षणों का कारण एक ही जान पड़ता है। इस रोग में शरीर के भीतर क्या परिवर्तन होता है इसका पता अभी ठीक–ठीक नहीं लगा है। परन्तु वैज्ञानिक इसके पीछे पड़े हैं और इसमें संशय नहीं है कि इसका रहस्य शीघ्र ही खुल जायगा।

1. Micoscope, सूक्ष्मदर्शी

जपान में मोतियों की खेती*

नलिनी सेन

आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा जापान में मोतियों का उत्पन्न करना वैसे ही सम्भव हो गया है, जैसे हम लोग धान–बाजरा बोते हैं। यह न समझिए कि जापानी लोग ये मोती त्रिम ढंग से बनाते हैं और ये नकली मोती हैं। ये मोती वैसे ही वास्तविक और मूल्यवान् होते हैं जैसे कि प्रा तिक मोती होते हैं। यदि दोनों में अन्तर है तो केवल इतना ही कि एक प्र ति उत्पन्न करती है और दूसरा मनुष्य का हाथ।

जापान के ये मोती 'मिकीमोटो' के मोती कहलाते हैं। यह नाम इसलिए पड़ा कि इस प्रकार वैज्ञानिक ढंग से मोती उत्पन्न करने की विद्या का वहाँ इसी नाम के एक व्यक्ति ने आविष्कार किया है। उन महाशय का पूरा नाम श्रीयुत कोकिची मिकीमोटो है। गोकाशो की खाड़ी से लेकर पैलाओ द्वीप तक फैले हुए उनके आठ बड़े–बड़े समुद्री खेत हैं, जिनमें ये मोती उत्पन्न किये जाते हैं। इन खेतों का क्षेत्रफल लगभग 41,000 एकड़ है। इन खेतों से किस प्रकार मोती उत्पन्न किये जाते हैं, यह कार्य एक सरस और रूप के ही समान चित्ताकर्षक है।

यहाँ यह बताने की आवश्यकता है कि एक कथा प्रचलित है कि जब पानी बरसता है तब वर्षा की यदि कोई बूँद सीप के मुँह में चली जाती है तो वही मोती बन जाती है। यद्यपि यह बात सत्य नहीं है तथापि यह सत्य कथा की ओर इशारा करती है। वास्तविकता यह है कि जब कोई भी विजातीय द्रव्य सीप के मुँह में चला जाता है तब उसके भीतर एक प्रकार का दर्द या जलन पैदा होती है और उसके शरीर से एक प्रकार का तरल पदार्थ निकलकर उस विजातीय द्रव्य को ढँक लेता है। सख्त होने पर वही मोती बन जाता है। श्रीयुत मिकीमोटो ने इस आकस्मिक घटना को एक क्रमबद्ध नियमित वैज्ञानिक रूप देकर सीपी से मोती उत्पन्न करना सर्वथा मनुष्य के वश की बात बना दिया है। इस प्रकार जो मोती उत्पन्न होते हैं वे प्रा तिक मोतियों से किसी बात में हीन नहीं होते हैं। इतना ही नहीं, उनमें और भी कतिपय विशेषतायें आ जाती हैं।

मिकीमोटो के इन खेतों में जो मोती पाले जाते हैं वे जब चार वर्ष के हो जाते हैं तब वे आधुनिक चीर–फाड़ के सिद्धान्तों के अनुसार बड़े कौशल से चीरे जाते हैं और उनमें जलन पैदा करने वाले छोटे–छोटे विजातीय द्रव्य के कण प्रविष्ट कर दिये जाते हैं। यह क्रिया हो जाने के पश्चात् सीपें तार के पिंजड़ों में रख कर समुद्र में डाल दी जाती हैं ताकि शत्रुओं से उनकी रक्षा हो सके। ये पिंजड़े समुद्र के पानी के अन्दर खड़े किये गये लकड़ी के खम्भों के सहारे रक्खे जाते हैं। ऐसा इसलिए किया जाता है कि यदि आवश्यकता हो या किसी प्रकार का खतरा हो तो वे तुरन्त स्थानान्तरित कर दिये जाँय।

---

* *सरस्वती*, अप्रैल 1937

पानी के भीतर लोहे के पिंजड़ों में सुरक्षित सीप अपने अन्दर प्रविष्ट किये गये विजातीय द्रव्य का दमन करने के लिए एक प्रकार का तरल पदार्थ अपने शरीर के भीतर से निकालते हैं और उसको उस द्रव्य के ऊपर परतों में लपेटते चले जाते हैं। इस प्रकार सीप के हृदय में मोती बनने का जो कार्य आरम्भ होता है वह सर्वथा वैसा ही होता है जैसा कि प्रा तिक अवस्था में हुआ करता है। प्रतिवर्ष एक बार ये सीपें परीक्षा के लिए पानी की सतह पर लाई जाती हैं, उनकी खोलों की सफाई की जाती है और घास या कीड़े आदि जो उन पर उग कर उनकी बाढ़ को रोक सकते हैं वे खुरच कर हटा दिये जाते हैं।

इस वर्णन से यह न समझिए कि यह कार्य बड़ा सरल होता है। इस प्रकार सीप उत्पन्न करने वालों को जिन कठिनाइयों और जोखिमों का सामना करना पड़ता है उनकी गिनती नहीं है। बहुत–सी ऐसी आपदायें भी आती रहती हैं जिनको वश में करना मनुष्य की शक्ति के बाहर हो जाता है। कभी–कभी समुद्र में भयंकर तूफान आते हैं, जो खेत के खेत बहा ले जाते हैं। कभी–कभी शीतकाल में, पानी की सतह के भीतर ऐसी ठंड दौड़ जाती है कि सीपों का जीवित रखना असम्भव हो जाता है। इन खेतों पर कार्य करने वालों को ऐसे ही न जाने कितनी मुसीबतों का रोज़ सामना करना पड़ता रहता है।

इस अवस्था में सात वर्ष रहने के पश्चात् यदि सीपें जीवित रहती हैं तो उनके पेट से मोती निकल सकते हैं। परिस्थिति के अनुसार ये मोती उज्ज्वल और चमकदार या मलिन और भद्दे भी हो सकते हैं। ये बहुमूल्य भी हो सकते हैं और निकम्मे भी। कभी–कभी ऐसा भी होता है कि किसी सीप से मोती निकलते ही नहीं। उत्पादकों को इन सब बातों के लिए तैयार रहना पड़ता है।

इन सात वर्षों के समय में समस्त प्रकार की सावधानी बर्तने पर भी लगभग 20 प्रतिशत सीपें मर जाती हैं। जब अन्तिम बार सीपें चीरी जाती हैं तब प्रायः देखने में आता है कि लगभग 20 प्रतिशत में मोती बने ही नहीं। शेष में से जब मोती निकाल लिये जाते हैं तब मोतियों की जो कड़ी परीक्षा की जाती है उसमें सिर्फ 4 या 5 प्रतिशत खरे उतरते हैं।

जापान की मिकीमोटो प्रयोगशालाओं में व्यापार के लिए केवल वे ही मोती चुने जाते हैं जो अत्यन्त उच्च कोटि के और सुन्दर होते हैं। शेष रद्दी कर दिये जाते हैं। परन्तु प्रा तिक रूप से जो मोती उत्पन्न होते हैं वे जैसे एक ही आकार के नहीं होते, वैसे ही ये मोती भी छोटे–बड़े विभिन्न आकारों के होते हैं। इस तरह इन खेतों से उत्पन्न मोतियों से माला बनाने के लिए एक खास आकार और चमक के मोती चुनने का कार्य उतना ही कठिन होता है जितना कि प्रा तिक मोतियों से चुनाव करते समय हो सकता है।

मालायें बनाने के लिए अच्छे और एक से मोतियों का चुनाव मिकीमोटो के कारखाने में जापानी लड़कियाँ अपनी कुशल अँगुलियों के द्वारा करती हैं। कारखाने में कार्य करने के अतिरिक्त बहुत–सी लड़कियां गोताखोर भी होती हैं। वे पानी के भीतर मर्दों की अपेक्षा अधिक समय तक रह सकती हैं।

मिकीमोटो के मोतियों की ख्याति संसार में दिन पर दिन बढ़ती जा रही है और जापान का यह व्यवसाय अत्यन्त अर्थ–प्रदायक और महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है।

डा. नेहरू और उनका चमत्कारिक इलेक्ट्रोकल्चर*

हरिहर प्रसाद मिश्र, एम.ए., एल.एल.बी.

डाक्टर श्रीधर नेहरू, एल.एल.डी., आई.सी.एम., भारतके उन विज्ञानवेत्ताओंमें से हैं, जिन्होंने कुदरती बिजलीका वनस्पतियों, पशुओं और मनुष्योंपर प्रयोग करके आज सारे संसारको दिखला दिया है कि प्रकृति जिस डालमें चार फल लगाती थी, उसमें बिजलीसे आप सोलह फल पैदा कर सकते हैं – वह भी अपने इच्छानुसार जल्दी या देरमें। जिस पशुकी मूक वेदनाको अब तक लाइलाज समझकर विधाताकी इच्छापर छोड़ देते थे, उसे थोड़ेही प्रयत्नसे भला–चंगाकर सकते हैं। यही नही, वरन् दूध देने वाले जानवरोंको दूध भी बढ़ा सकते हैं, मनुष्योंकी जीवन–परिधि भी बढ़ सकती है, उनकी तरह तरहकी बीमारियोंको – जैसे नींदका न आना, थोड़े ही समयमें, बिना ज्यादा पैसा खर्च किए बिना, एक सीधे–सादे इलाजसे आरामकर सकते हैं।

संसारके सभी उन्नत देशोंमें आज लगभग 200 केन्द्र डाक्टर नेहरूके बताए हुए तरीकोंपर कामकर रहे हैं; पर अभाग्वश हमारेही देशवासी और विशेषकर हिन्दी–भाषी उनसे अपरिचितही हैं। इसके दो मुख्य कारण हैं; एक तो डाकटर नेहरू अपना विज्ञापन नहीं चाहते, दूसरा उनके पास अमेरिका, इंगलैंड, जर्मनी, इटली आदि देशोंसे लेखोंकी इतनी मांग रहती है और हर एक विलायती डाकसे उनके पास इतने ज्यादा पत्र सलाह लेनेके लिए आते हैं कि उन्हें समय बिल्कुल नहीं मिलता। डाक्टर नेहरू स्वयं मातृभाषाके बड़े पक्षपाती हैं। उनके सभी वक्तव्य हिन्दीमें ही होते हैं, जो केवल 'ग्राम–सुधार' नामक पत्रमें प्रकाशित होते हैं। पाठकोंको यह जानकर हर्ष होगा कि अमेरिका ओर यूरोपमें 'ग्राम–सुधार' की अनेकों कापियाँ जाती हैं, जिन्हें विदेशी या तो भारतीय विद्यार्थियोंसे पढ़वाते हैं, या ब्रिटिश इम्बैसीमें जाकर किसी हिन्दी जानने वाले कर्मचारीसे अनुवाद कराते हैं। एक बार डाक्टर नेहरू से पूछा – "अगर किसी विदेशमें, जहाँ 'ग्राम–सुधार' जाता है, हिन्दी जाननेवाले विद्यार्थी न हों और इम्बैसीके कर्मचारी भी हिन्दीसे अनभिज्ञ हों, तो वहाँके लोग क्या करेंगे?"

डाक्टर नेहरूने फौरन उत्तर दिया – "अगर विदेशी लोग हमारे तजरुबोंसे फायदा उठाना चाहते हैं, तो उन्हें लाज़िम है कि हमारी भाषा सीखें। हमीं उनके फायदेकी बात बतलायें और वह भी उनकी ज़बानमें! यह कहाँका न्याय है?"

हिन्दीके लिए यह कम गौरवकी बात नहीं। अगर हमारे विज्ञानके सभी महारथी डाक्टर नेहरूका अनुकरण करने लगें, तो हिन्दीका माथा भी रशियन, फ्रेंच और जर्मनकी भाँति ऊँचाहो सकता है।

डाक्टर नेहरूने भारतकी गरीबीका नग्न चित्र देखा है। पूरे छै महीने ज़िलेके गाँव–गाँवमें दौरा करते हैं। वे जानते हैं कि हमारे किसानोंके पास इतना पैसा नहीं है कि वे कीमती फरटिलाइजर

---

* *विशाल भारत*, मई 1937

या बड़ी–बड़ी मशीनें और कीमती खाद इस्तेमाल कर सकें। उन्हें तो कम खर्च और बालानशीन चीज चाहिए, तभी उनकी उदर–पूर्तीहो सकती है, तभी ग्राम–सुधारहो सकता है। डाक्टर नेहरू कागजी घोड़ों और लेक्चरबाजीको अच्छा नहीं समझते। वे कहते हैं कि लेक्चरबाजी नई सभ्यताका एक रोग है। वे प्रत्यक्षमें विश्वास रखते हैं और कुछ प्रत्यक्षही कर दिखाते हैं।

उनका विश्वास है कि हमारी ग्रामीण जनताकी दशा तब तक नहीं सुधर सकती, जब तक हमारे किसान कोई सहकारी उद्योग–धन्धा करके अपनी आमदनी ना बढ़ावें। सभी विदेशीमें खेती करने वाले लोग फल–फूलकी खेती, तरकारियोंकी काश्त, मुर्गीके अण्डोंकी तजारत, गाय–बकारीका रोज़गार, या ऐसाही कोई और काम जरूर करते हैं, जिसकी वजहसे अगर खेतीमें किसी साल कुछ नुकसान भी हो जाय, तो वे भूखों नहीं मरते। बागवानी और तरकारियोंकी खेती हमारे किसानोंके लिए बड़ी उपयुक्त है। 50–60 वर्ष पहले तक हर एक खाता–पीता किसान अपनी जिन्दगीमें दो–एक फलदार दरख्त लगाना अपना फर्ज़ समझता था। जानवरोंकी अच्छी नसल पैदा करनेके लिए लोग अपने पुरखोंके नामपर साँड़ छोड़ा करते थे, पर आजकल ये बातें बन्द सी हो गई है। जिसपर ज़मीनकी पैदावार कमहो चली है। मीलोंके ऊसर नजर आने लगे हैं। फलोंमें बाज़ जगहका नाम बिकता है जैसे नाकपुरका संतरा, सहारनपुरका लुकाट। हमारे किसान इस प्रतियोगितामें कैसे सफी हों, इसी उद्देश्यको सामने रखते हुए डाक्टर नेहरूने बड़ी खोजबीनके बाद कुदरती बिजलीका प्रयोग निकाला है, जिसे अंग्रेजीमें इलेक्ट्रोकल्चर कहते हैं। इसका सिद्धांत वृक्ष, और मनुष्यपर एक–सा ही लागू होता है। यह तो सभी जानते हैं और जिस तरह हमारे शरीरका खून रगों द्वारा हर एक हिस्सेके छिद्रों तक पहुँचकर उनमें हरकत पैदा करता है, इसी तरह पेड़ोंमें भी होता है। पेड़में जो पानी और गैस पहुँचती है वह उसके प्रत्येक भागमें ऐसे छोटे छिद्रों तक ले जाई जाती है, जिससे उनमें हरकत पैदा होती है। उनकी हरकतसे वृक्षोंके शरीरमें बिजलीका संचार होता है। अगर इन हरकत करते हुए छिद्रोंपर बाहरी बिजलीकी ताकत और बढ़ेगी और शरीर अधिक बलिष्ट हो जाएगा।

"Wherever there is cellular activity there is electrical energy developed and conversely, wherever electrical energy is applied celluar activity is increased and better growth obtained."

वनस्पति

वनस्पतिकी उन्नतिके लिए डाक्टर नेहरू तीन तरीके बतलाते हैं — (1) बीज में बिजली लगाना, (2) पौधे या क्यारीमें जाली लगाना, (3) बिजलीका पानी देना, जिसे अगस्कर साहबके नामपर 'अगस्करायज़ेशन' भी कहते हैं। मान लीजिए कि आपको एक पपीतेका बीज बोना है, तो पहले बीजको किसी धातुकी तश्तरीपर रखकर अगर आपके पास मोटर है, तो डायनमोंसे उसे सम्बन्धित करके 2000 वोल्टसे एक मिनट तक 'स्पार्क' कीजिए और फिर हाथमें रबरका दस्ताना पहनकर बिना हाथसे छुए हुए उसे बो दीजिए। गाँव वालोंके लिए जहाँ न मोटर है और न बिजली, सबसे सहल तरीका यह है कि सब लोग मिलकर किसी कबाड़ीके यहाँसे किसी पुरानी मोटरका मैगनेट खरीद लें। यह अक्सर 12 आनेसे लेकर 10 रु. तक अच्छा मिल जाता है। एक मैगनेट एक छोटे गाँवके लिए काफी है। उसमें बढ़ईसे, चलानेके लिए एक दस्ता लगवा लेना चाहिए। मैगनेटका एक तार धातुकी तश्तरीमें, जिसमें बीजमें बिजली आ जायगी। एक दूसरा तरीका यह भी है कि एक मिट्टीके घड़े में पानी भरकर बीज उसमें डाल दीजिए और मैगनेटका एक तार घड़ेके अन्दर पानीमें

डालकर तीन–चार मिनट चलाइये। फिर बीजको उसीमें पड़े रखनेके बाद निकालकर बिना हाथसे छुये बो दीजिए।

पौधोंके लिए जालीका प्रयोग बहुत लाभदायक साबित हुआ है। जाली पीतलकी नहीं, बल्कि लोहेकी मामूली पाँच या छै आने गज़ वाली इस्तेमालकी जाती है, जिसका जाल करब एक इंच चौड़ा होता है। पौधोंकी जड़ व तनेकी मोटाईके हिसाबसे 10 इंच लम्बे और 6 इंच चौड़े टुकड़ेकर लीजिए और सिर्फ एक टुकड़ा पौधेकी जड़पर चारों ओरसे चिपटाकर इस तरहसे लगाइये कि करीब इंच जाली मिट्टीसे ऊपर रहे और बाकी हिस्सा जड़के साथ नीचे रहे। अगर किसी शाखपर आपको ज्यादा फल या फूल लगाना है, तो उसपर जालीकी एक जैकेट–सी पहना दीजिए। बस, उसपर बहुतसे कल्ले निकल आवेंगे। अगर बीज क्यारीमें बोना है, तो पहले 6 इंज मिट्टी खोदकर किनारेकी हिस्सा मिट्टीसे ऊपर रहे। उसपर दो तीन इंच गहरी मिट्टी फैला दीजिए, फिर जाली इस तरहसे बिछाइये कि उसके चारों ओर किनारेकी हिस्सा मिट्टीसे ऊपर रहे। उसपर दो तीन इंच गहरी मिट्टी फैला दीजिए। बिजलीका पानी डाक्टर नेहरूका रामबाण है। जैसे ऊपर बताया जा चुका है, थोड़ी ही देरमें आप मैगनेट द्वारा बहुतसा पानी बना सकते हैं। वही पानी पौधेमें देना चाहिए। देखा गया है कि बिजलीका पानी साधारण पानीसे 50 गुना अधिक लाभदायक होता है। एक लोटा बिजलीका पानी मामूली पानीसे 50 गुना असर रखता है। जिन जगहोंमें पानीकी कमी है, वहाँ बिजलीका थोड़ा पानी उसके अभावकी पूर्तिकर सकता है। आँधी आनेपर तजरुबा करके देखा गया है कि जिन पेड़ोंमें बिजलीका पानी दिया गया था, उनके फल बहुत कम तादातमें गिरे। कारण यह था कि बिजलीके पानीसे सिंचे हुए पेड़ोंके फल हवाके झोंकेका रंग गहराहो जाता है, पत्ते ज्यादा बड़े होते हैं और आम तौरपर पेड़ जल्दी बढ़ता और मजबूतहो जाता है।

पशु

पशुओंको ज्यादा बलिष्ठ बनानेके लिए डाक्टर नेहरूकी तीन तरकीबें मुख्य हैं। पहली यह है कि उनका चारा सुबहकी निकलती हुई सूर्य–रश्मियोंके सामने रखा जाय, जिससे हानिकारक कीटाणु नष्टहो जायँ और उनमें किरणोंके समावेशसे बलकारक गुण पैदाहो जायँ। दूसरी, उनको बिजलीका पानी पिलाया जाय। तीसरी, उनके गलेमें बिजलीके तारसे कभी–कभी स्पार्किंग किया जाय। बिजलीका पानी सानीमें मिलनेसे उसको पाचक बना देता है। उससे नहलानेसे जानवर स्वस्थ रहते हैं। गलेपर मैगनेटका तार लगाकर हैंडिल चलानेसे बिजलीकी जो चिनकारियाँ पशुके शरीरमें प्रवेश करती हैं, उनसे उसके सारे शरीरमें स्फूर्तिसी आ जाती है। जानवरोंके घावोंपर बिजलीका पानी डालनेसे घाव जल्दी भर जाते हैं; लेकिन स्पार्किंग जरूर करना चाहिए। गलेपर जो गिल्टी (Thyroid Glands) होती है, उसका शरीरके बाकी अवयवोंसे सीधा सम्बन्ध होता है, इसीलिए गलेपर स्पार्किंग किया जाता है। इसका पाचन–शक्तिपर बड़ा असर पड़ता है।

मनुष्यों पर

भोजन सामग्रीको प्रातः सूर्यकी रश्मियोंके सामने रखने, बिजलीका पानी पीने तथा गलेपर स्पार्किंग करनेके अलावा सबसे ज्यादा फायदा नींद न आने वालोंको डाक्टर नेहरूकी एक साधारणसी तरकीबसे हुआ है। वह है चारपाईके पावोंके नीचे मोटरके टायरके टुकड़े रखना। किसी पुराने टायरमें से चारपाईके पायेकी चौड़ाईके अनुसार चार टुकड़े काट लीजिए और एक–एक टुकड़ा चारपाईके हर एक पायेके नीचे रख दीजिये, इससे रातमें बहुत गहरी नींद आती है और तन्दुरुस्तीपर भी इसका

अच्छा असर पड़ता है। जिन लोगोंको नींदकी पुरानी शिकायत हो, डाक्टर नेहरू एक माला पहनने को देते हैं, जिससे नींद खूब आती है; लेकिन हर एक केसमें पहले उनकी राय ले लेना जरूरी है। उनके पास अनेक देशोंसे चिट्ठियाँ आती हैं, उनका उत्तर जल्दसे जल्द दिया जाता है। डाक्टर नेहरूकी अध्यक्षतामें मैनपुरीमें 'इलेक्ट्रोकलचर और फ्रूट ग्रोअर्स एसोसियेशन' कायम हुआ है, जिसके द्वाराही सब काम सम्पादित होता है। इसके मेम्बर कई देशोंमें फैले हुए हैं और वे अपने-अपने तजुर्बे बराबर भेजते हैं, जो किताबोंकी शकलमें छापे जाते हैं। अभी तक करीब 200 ऐसी किताबें छप चुकी हैं। मेम्बरोंको यह सब किताबें मुफ्त मिलती हैं। और अपने बागके बारेमें और बिजलीके इलाजके बारेमें सलाह मुफ्त मिली है। जिलेसे बाहर वालोंसे सिर्फ 25 लाइफ मेम्बर यानी अजीवन सदस्य बननेके लिये जाते हैं। इलेक्ट्रोकलचरके तजरुबे बड़े मनोरंजक हैं। सबसे ज्यादा अचम्भेकी बात यह है कि ऊसरमें भी ऊपर लिखे हुए तरीकोंसे बाग लगाया जा सकता है। मैनपुरीके जिलेमें नगलाहरमें चौधरी सियारामने उनका इस्तेमाल किया और आज करीब-करीब सभी तरहके फलदार दरख्त वहाँ हरे-भरे नजर आते हैं, जो ऊसरमें ख्वाबमें भी नहीं दिखलाई पड़ते। पपीता, शहतूत, आम, संतरा, लुकाट, फालसा, रबर, कहवा आदि तरह-तरहके दरख्तोंपर तजरुबे कामयाबीके साथ बहुतसे मुल्कोंमें किये जा चुके हैं। अभी हालमें मि. जोज अन्तोनिया सालबेरियाने सेंट्रल अमेरिकासे लिखा है कि डाक्टर नेहरूके तरीकोंको कुछही दिनों इस्तेमाल करनेके बाद कहवेके वे पौधे, जो बहुत कमजोर नंजर आते थे, एकदम बदल-से गये, उनमें नये-नये कल्ले फूटने और वे इतनी जल्दी बढ़ने लगे कि आप यकीन न करेंगे। फिर उन्होंने नारंगियोंपर तजरुबा किया। उनमें बहुत ज्यादा फल आ गये, हालांकि वे पौधे पूरी ऊँचाईको भी नहीं पहुँच पाये थे। मि. जोज अब आने कहवाके बड़े खेतोंपर दनका तजरुबा करना चाहते हैं, क्योंकि उनका विचार है कि ये तरीके मुश्किल नहीं हैं, तरह-तरहकी खादपर किया करते थे।

मुर्गियोंकी बीमारियोंपर बिजलीके पानीका कैसा अच्छा असर होता है, यह अमेरिकाके 'Reedley Exparent' नामक अखबारकी एक रिपोर्टसे अच्छी तरहसे जाहिर होता है। वह यह है; जान पर्ल रांचमें डाक्टर नेहरूने एक मुर्गीका इलाज किया जो बहुत दिनोंसे बीमार थी। उन्होंने एक प्याला बिजलीका पानी लेकर उसके गलेमें डाल दिया। वह बगैर किसी तकलीफके उस पानी को पी गई, क्योंकि मालूम होता था कि वह उसे अच्छा लगा। थोड़ी देर बाद मिसेज़ पर्लने देखा कि मुर्गीकी चोटीका गोश्त पीलेसे एकदम लाल रंगका हो गया, और वह अन्य मुर्गियोंकी तरह फिरसे चुगने लगी। उसको पहचानना भी मुश्किल हो गया।

हाथी जैसे डीलडौलके जानवरपर भी तजरुबे किये गये हैं। एक राजाके हाथीकी आँख बिलकुल बेकरहो गई थी। उसपर बड़े-बड़े प्लास्टर लगाए जा चुके थे और बहुतेरी दवाइयाँ हो चुकी थी; लेकिन किसीसे कुछ फायदा नहीं हुआ। हाथीकी वह आँख बंदही रहती थी। डाक्टर नेहरूने पहले कपड़ेको बिजलीके पानीमें भिगोकर उसकी आँख धुलवाई, फिर धार बाँधकर उसपर वही पानी डाला गया। इससे हाथीको बहुत आराम मिला और थोड़ी देरमें उसने आँख खोल दी; लेकिन आँखका धोना इसी तरहसे जारी रखा गया, और वह भला-चंगा हो गया। एक दूसरे हाथीके सिरपर एक बहुत बड़ा आबला[1] पड़ गया था, जिसका कारण महावत दिमागकी खुश्की बतलाता था। उसपर बिजलीके तारसे स्पार्किंग किया गया और वह बहुत जल्दी फूटकर अच्छा हो गया। घोड़ा, बकरी, गाय, बैल, ऊँट आदि जानवरोंपर उनकी तरह-तरहकी बीमारियोंमें बिजलीके तरीके इस्तेमाल किये गये और उससे बहुत जल्द फायदा हुआ। एक खास बात और है। दूध देने वाले जानवरोंको बिजलीका पानी पिलानेसे देखा गया है कि उनका दूध सवाया[2] हो जाता है। कलकत्तेमें उस दूधका बना घी 'बिजली मार्का घी' के नामसे बिकता है और उसके दाम भी अच्छे मिलते हैं।

करीब 12,000 आदमियोंपर तरह–तरहकी बीमारियोंमें यह तरकीबें आजमाई जा चुकी है। रेडियमके मुकाबलेमें भी कुदरती बिजली ज्यादा फायदेमंद साबित हुई हैं। अभी हालकी बात है कि जिला फरूखाबादकी एक ठकुरानी जिसकी उमर 35 वर्ष की थी, अपने बच्चेकी मौतके बादसे पागलहो गई थी। वह न खाती थी और न पीती थी — सिवा चीखने–चिल्लानेके उसे दूसरा काम न था। वह डाक्टर नेहरूके पास लाई गई और उसका इलाज शुरू किया गया। उसकी चारपाईके पावोंके नीचे रबरके टुकड़े रखे गये, सूर्य की किरणोंके सामने रखी हुई भोजन–सामग्रीमें बना हुआ भोजन खिलाया गया, बिजलीका ही पानी पीने व नहानेको दिया गया और उसकी थायराइड गलांड्सपर स्पार्किंग किया गया। 24 घंटे अन्दर उसका चिल्लाना बन्दहो गया, उसे नींद आ गई और वह तबीयतसे खाने–पीने लगी। कुछ दिन बाद वह बिलकुल भली चंगीहो गई।

एक दूसरा केस लीजिए। एक महाजन मंदीकी वजहसे सब कुछ विभूति[3] खो बैठा और पागल हो गया। वह बहुत चिल्लाता था। जब वह पकड़कर डाक्टर नेहरूके पास लाया गया, तो वह उसकी गर्दनपर पीछेकी तरफ स्पार्किंग किया। फौरनही उसका चिल्लाना बंदहो गया और कुछ दिन बाद वह बिलकुल अच्छा हो गया।

लखनऊके शीशमहलके नवाब सादिक अली खाँको नींद न आनेकी शिकायत थी। बिजलीके पानी पीने, रबरके टुकड़े चारपाईके नीचे रखने ओर एक खास तरहकी माला पहननेसे उसकी यह शिकायत दूर हो गई।

हर एक मर्ज़के लिए इतना सस्ता नुस्खा मिलना मुश्किल है। आशा है कि पाठक लाभ उठायेंगे।

---

1. छाला
2. सवा गुना 1.25
3. लक्ष्मी ऐश्वर्य

मक्खी*

प्रो. केशव अनन्त पटवर्धन, एम.एस–सी.

जितनी मक्खियाँ हम घरों में देखते हैं वे सब एक ही तरह की नहीं होती हैं, वे कई तरह की हैं। घर में मिलने वाली मक्खियाँ दो–तीन खास किस्म की होती हैं। सादी मक्खी जो कि साधारणत: भूरे से रंग की होती है और इसे घरेलू मक्खी (Musca domestica) कहते हैं। दूसरी ब्लू बॉटल (Blue Bottles) जो जरा नीले रंग की होती है और चाहे हमेशा न दिखे लेकिन जब कभी हम मिठाई या फल खाने बैठते हैं तो यह अवश्य ही दिखायी देती है।

इन सब प्रकार की मक्ख्यिों की हरकतें और आदतें ही इतनी खराब हैं कि इन्हें कोई भी नहीं चाहता। ये न तो काटती हैं और न ही कोई डंक मारती हैं। तब्र भी हमें इनसे बर्र वगैरह से भी ज्यादा नफरत करनी चाहिए, क्योंकि जब यह गरीब और सीधी सादी दिखने वाली मक्खी इधर से उधर फुदकती फिरती है तब यह समझना चाहिए कि यह जहाँ–जहाँ जाती है। सब से भद्दी और भयानक हरकत जो इसमें होती है वह यह है कि जितनी खराब से खराब और गन्दी से गन्दी चीजें होंगी उन पर यह अवश्य बैठेगी और वहाँ से अपने पैरों पर, पंखों पर, मुँह पर तथा अपने बालादार बदन के हर एक हिस्से पर लाखों कीटाणु (Germs) लायगी। जब यही मक्खियाँ अपने रसोइघरों में फुदकती फिरती हैं तब ये कीटाणुओं को हमारे दूध पर, खाने के पदार्थों पर, बर्तनों पर और कमरे की हर एक चीज पर फैलाती जाती हैं।

ऐसी कोई भी मक्खी तुम्हें नहीं मिल सकती जिसके शरीर के किसी न किसी भाग पर तुम्हें हानिकारक जन्तु न मिल सके। यह सिर्फ गन्दी–गन्दी जगहों में ही नहीं घूमती, परन्तु गन्दी से गन्दी चीजें खाती है। इन चीजों के साथ यह हजारों जन्तुओं को भी खा लेती है। इन्हें यह हजम नहीं कर सकती और ये जंतु इसके पेट के पहले हिस्से में जमा रहते हैं। बाद में जब ये किसी खाने की चीज पर बैठती है तब उस चीज को नरम करने के लिए (जिससे उसे आसानी से खा सके) उस पर कै करती है और इस कै के साथ वह पेट के अन्दर के जन्तु भी उस चीज पर डाल देती है। इस तरह से खाने की वह चीज भी इन कीटाणुओं की वृद्धि स्थल बन जाती है।

इन कमबख्तों से बीमारों के कमरे भी नहीं बचे हैं। और यह बात और भी ज्यादा हानिकारक है, क्योंकि ये दुष्ट मक्ख्यिाँ बीमारी के सूख्म कीटाणुओं को एक जगह से दूसरी जगह और एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य तक पहुँचाती फिरती है। यह बहुत विश्वसनीय प्रमाणों से साबित किया गया है कि मोतीझरा (Thyphoid), महामारी या हैजा (Cholera), संग्रहणी (Dysentry), बालकों को दस्त होना (Infantile diarrhoea) और यहाँ तक कि तपेदिक या क्षय (Tuberculosis) भी मक्खियों ही की वजह से फैलता है। इसी कारण हम यह बहुत आवश्यक समझते हैं कि प्रत्येक

---

* *वीणा*, अक्टूबर 1938

मनुष्य का यह कर्तव्य होना चाहिए कि जिस तरह उससे बन पड़े वह इनकी बृद्धि को कम करने का प्रयत्न करे। एक या दो आदमियों का यह काम नहीं है। इस विषय का विचार बड़े–बड़े शहरों की स्वास्थ्य रक्षा के लिए नियुक्त अधिकारियों व संस्थाएँ, जैसे म्युनिसिपालिटीज आदि को करना चाहिए। अमेरिका के बड़े–बड़े वैज्ञानिकों का यह मत है कि मक्ख्यिाँ जिन महीनों में ज्यादा होती हैं। (June, July, August, September and October) उन महीनों में बालकों की मृत्यु प्रायः मक्ख्यिों ही के द्वारा होती है।

यह मालूम किया गया है कि हर एक मक्खी के बदन पर करीब–करीब (6500000 पैंसठ लाख) जन्तु होते हैं और इनमें से ज्यादतर इसके छह पैरों पर ही पाये जाते हैं।

शरीर की बनावट

आँखें : हम नहीं समझते कि मक्खी से ज्यादा जिद्दी कोई और जानवर हो सकता है। अगर कहीं वो आपके हाथ या मुँह पर बैठे तो कितना ही आप उसे हटायें पर बार–बार ठीक उसी जगह पर आकर बैठेगी। ये यहाँ तक हमें तंग करती है कि हमको इसकी लतमारी पर बहुत गुस्सा आता है। पर हम क्या करें। इन्हें आसानी से मार भी तो नहीं सकते। आप किसी एक मक्खी की तरफ ध्यान से देखें तो इसका कारण आपको बहुत आसानी से मालूम हो जायगा। इसके बदन के हिसाब से इसकी आँखें बहुत ही अधिक बड़ी होती हैं। इसक़ा चेहरा असल में एक छोटी सी लकीर के बराबर दोनों आँखों के बीच होता है और इसके सिर का बाकी हिस्सा इसकी बड़ी–बड़ी आँखों से ही घिरा रहता है। मक्खी की ये बड़ी–बड़ी आँखें चार–चार हजार छोटी–छोटी खिड़कियों की बनी हुई होती हैं। हर एक खिड़की में अलग–अलग काँच (lense) होता है। इससे यह फायदा है कि मक्खियाँ अपने सिर को बगैर हिलाए चारों तरफ देख सकती हैं। इसी वजह से इसे मारने के हमारे प्रयत्न व्यर्थ जाते हैं। ये आँखें मक्खियों को दिन में इधर–उधर उड़ने और फुदकने में मदद करती है। इसके अलावा तीन सादी आँखें इसके सिर के ऊपर की तरफ होती हैं। ये आँखें धुँधली या थोड़ी रोशनी में इसके काम आती हैं।

गरदन : गोल नारंगी जैसा सिर इसके बदन से धागे की सी पतली गरदन से जुड़ा हुआ होता है। यह अपने सिर और मुँह को साफ (इसके हिसाब से) रखने की कोशिश हमेशा करती रहती है। जिस तरह बिल्ली अपने अगले पैरों से आना मुँह साफ करती है वैसे ही अगर किसी मक्खी को आप फुरसत से बैठी हुई देखेंगे तो आपको यह दिखाई देगा कि वह अपने अगले पैरों से, जिन पर कई ब्रश सरीखी चीजें बनी हुई होती हैं, अपने चेहरे को, आँखों को और पंखों को, अक्सर साफ करती रहती है। और इस समय हम यह आसानी से देख सकते हैं कि यह अपने सिर को जो बहुत ही पतली गरदन से जुड़ा हुआ होता है, बड़ी आसानी से हर तरफ घुमा सकती है।

पैर : और सब कीड़ों के समान इसके भी छह पैर होते हैं और अगर हम एक बड़ा लेंस लेकर इसके पैरों के नीचे के भाग को देखें तो हमें इस बात का आश्चर्य कभी न होगा कि मक्ख्यिाँ चिकने से चिकने काँच पर कैसे चल सकती हैं और फिसलती क्यों नहीं है। मक्खी के हर एक पैर के नीचे दो–दो गद्दियाँ लगी होती हैं और इन गद्दियों के ऊपर झुके हुए बाल लगे होते हैं। ये बाल असल में पोली नलियाँ हैं जिनमें गोंद सरीखी एक चीज भरी होती है। जब मक्खी चलती है तो हर एक कदम पर अपने पैरों को चिपकाती हुई चलती है। यही कारण है कि यह चिकनी से चिकनी चीज पर बगैर फिसले असानी से चल सकती है।

जबान : इसकी जबान बड़ी विचित्र होती है। यह लम्बी होती है और इसके सिरे पर एक तिकोनी गद्दी सी बनी होती है। इस अद्‌भुत जबान से यह करीब–करीब हर एक चीज से कुछ न कुछ खाना

चूस लेती है। यहाँ तक कि दरवाजों का वारनिस, काँच के और अपने बदन के ऊपर का पानी भी इससे नहीं बचा है। इसकी जबसान में एक और ताकत है। यदि कोई ठोस चीज इसके सामने आ जाय, जैसे शकर की डली आदि, तो यह इसे अपनी जबान से इधन–उधर लुढ़काती फिरती है। इसी समय मक्खी अपनी जबान से एक पतली चीज निकाल कर उस डले पर डालती जाती है और इसी से वह ठोस शकर की डली में शकर घुलती जाती है। फिर मक्खी को इस शरबत के चूसने में कुछ भी दिक्कत नहीं होती।

पंख : घरेलू मक्खियाँ और इसकी जाति के सब कीड़े (Insects) इस बात से पहचाने जाते हैं कि इन सब के सिर्फ दो पंख होते हैं। पिछले पंखों की जगह दो छोटे–छोटे ठूँठों जैसी चीजें होती हैं। यदि वास्तव में ये ठूँठ इसको उड़ने के असली काम में नहीं आते, तो भी यदि ये निकाल दिये जायँ तो मक्खी बिलकुल उड़ नहीं सकती। कोई एक मक्खी जब मजे से उड़ती रहती है तब एक सेकण्ड में पाँच फीट के हिसाब से उड़ती है। परन्तु जब वह तेज भागती है तब वह एक सेकण्ड में पैंतीस फिट के हिसाब से उड़ती है और इस समय यह अपने पंखों को एक सेकण्ड में 675 बार हिलाती है। यह पंखों का इतनी दफा हिलाती है कि उनका हिलना गिनने से नहीं मालूम होता। इसके मालूम करने की एक और सरल युक्ति है। कुछ समय तक, अपने पंखों से, उड़ते समय मक्खी जो आवाज करती है उसे सुनिए और फिर किसी हारमोनियम या पियानों को लेकर उसके किस सुर से यह आवाज मिलती है यह देखिये। इसी तरह देखने से मालूम किया गया है कि यह आवाज पियानो के (6) सुर से मिलती है और यह सुर 675 मर्तबा[1] परदे के हिलने से पैदा होता है।

जीवनी : इसकी जीवनी के विषय में लिखने के लिए सब से पहले हम यह बतलाना उचित समझते हैं कि यदि कोई स्कूल–मास्टर या अन्य व्यक्ति (मनुष्य) इसके जीवन के इतिहास की सब हालतें देखना चाहे तो वह कमरे में बैठे–बैठे ही बड़ी आसानी से देख सकता है।

अनुभव (Experiment) : एक बड़ा चौड़े मुँह का बर्तन लो और उसके अन्दर घोड़े की ताजी लीद, या तेलियों के यहाँ जो खली मिलती है वह रेंडी के बीज की खली रखे और अगर हो सके तो थोड़ी–सी जिंदा मक्खियाँ इस बर्तन में छोड़ कर इसके मुँह पर कपड़े की जाली बाँध दो या इसे वैसे ही खुले मुँह पड़ा रहने दो। या इस लीद या खली पर थोड़ा पानी छिड़क दो। जब यह सड़ने लगेगी तब मक्खियाँ इस लीद या खली में अण्डे देंगी। यह हर हालत में ख्याल रखना जरूरी है कि यह लीद या खली वाला बर्तन इसी हालत में कम से कम 15 या बीस दिन रखना होगा और इससे बड़ी बुरी बास[2] आयगी, इसलिए इसे कमरे से कहीं दूर रखना चाहिए। नहीं तो इस दुर्गन्ध के मारे कमरे में बैठना मुश्किल हो जायगा। इस तरह जो अण्डे लीद या रेडी की खली में दिये जायँगे उनमें से लारवे निकलेंगे ओर इन लारवों से फिर प्यूपे बन कर उनसे फिर मक्खियाँ निकलेंगी। यह सब बातें कब और किस तरह होती हैं यह हम अब देखेंगे।

मक्खियाँ अपने अण्डे अस्तबलों की सड़ती हुई लीद में या कचरा मिले हुए मैले में या सड़ती हुई पत्तियों आदि में देती हैं। जिस किसी चीज में इनके अण्डे बच्चे पल सकते हैं उस चीज में ये अण्डे देती है, और चूँकि ऊपर लिखी हुई चीजें खाकर इनके बच्चे जिंदा रह सकते हैं इसलिए इन्हीं चीजों में ज्यादातर इनके अण्डे या बच्चे पाये जा सकते हैं। भिन्न–भिन्न प्रकार की मक्खियाँ भिन्न–भिन्न तादात में अण्डे देती है। (Musca corvina) 20 से 30 तक अण्डे देती है। (Musca domestica) या घरेलू मक्खी 100 से 150 तक और ब्लू बॉटल्स (Lucilia and calliphora) 500 से 600 तक अण्डे देती हैं। अण्डे बहुधा सफेद ही होते हैं और वे बहुत छोटे होते हैं। अण्डे एक खास ठहरी हुई जगह से फटते हैं और इनमें से लारवे निकलते हैं। अण्डे 24 घंटे से ज्यादा

प्रायः कभी नहीं रहने पाते क्योंकि इतने समय में ही ये फूट जाते हैं और इनमें से लारवे निकल आते हैं। मक्खियों के लारवों को मेगट (Maggot) कहना उचित है।

ये मेगट्स जब अंडों से निकलते हैं तब वे लीद, मैला या सड़ती हुई पत्तियाँ या जिस चीज में पैदा होते हैं उसमें घुसते हैं और बिलकुल नीचे चले जाते हैं। यहाँ इनको तरी (गीलापन) ज्यादा मिलती है। जीवन की इस हालत में इन्हें गीलेपन या तरी की आवश्यकता होती है क्योंकि इसके बगैर यह मेगट (लारवे) जिंदा नहीं रह सकते। इन चीजों पर अपना निर्वाह कर ये अपने जीवन-क्रम का कुछ हिस्सा इसी गीली सड़ती हुई जगह में व्यतीत करते हैं, और बाद में धीरे-धीरे गीली जगह से निकल कर ऊपर की तरफ आने लगते हैं। यहाँ इन्हें सूखी जगह मिलती है जिसकी इन्हें अब आवश्यकता मालूम होने लगती है। यहाँ पर कि वे सख्त भूरे बीजों की तरह क्रायसेलिड (प्यूपा) में अपनी शक्ल बदल सकें और जिसकी कबची के अन्दर मक्खी बन कर तैयार हो सके। मक्खी अपने जीवन की इस हालत में यानी प्यूपे की हालत में न कुछ खाती है, न कुछ पीती है, न इसे साँस लेने की आवश्यकता होती है और न उसे उजाले तथा हवा की जरूरत होती है। यह प्यूपा एक पत्थर के टुकड़े की तरह न तो हिलता है और न ही इसमें और किसी तरह की हलचल पायी जाती है। परन्तु यह जानदार चीज है। हमें ऊपर से इसमें कुछ भी फर्क नहीं मालूम होता तो भी इसके बाहर की कवची (छिलके) के अन्दर बराबर मक्खी के बनने की क्रिया जारी रहती है। अगर हम किसी से कहें कि इसी मेगट् से ही मक्खी बनती है, तो हमारा कोई भी विश्वास न करेगा क्योंकि मेगट् की बनावट में और मक्खी की बनावट में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। यह अन्तर इसी प्यूपे की कवची (छिलके) के अन्दर धीरे-धीरे कम होता जाता है यहाँ तक कि कुछ दिनों के बाद यह कवची (छिलका) एक किनारे टूटती है और इसका एक हिस्सा किसी एक डिब्बे के ढक्कन की तरह अलग हो जाता है और इसमें से जैसे कोई जादूगर अपनी जादू की टोकरी में से कोई खरगोश या और कोई जानवर निकाल कर दिखला देता है, उसी तरह घरों में रहने वाली मक्खी निकलती हुई दिखलायी देती है। फर्क इतना ही है कि बजाय जादूगर के यहाँ प्रकृति (Nature) है। जो आस्तिक लोग हैं उनके लिए परमेश्वर हैं। यह मक्खी प्यूपे के अन्दर से निकलने के कुछ ही दिनों बाद प्रजनन (Reproduction) के लायक हो जाती है। विलायत में और अन्य ठंडे देशों में मक्खी के जीवन-चरित्र का इतिहास तीन सप्ताहों में यानी 20 से 21 दिनों में पूरा हो जाता है, परन्तु गर्म देशों में इसको 12 से 15 दिन से अधिक नहीं लगते हैं।

जिस तरह मनुष्य या कोई कुत्ता पहले छोटा होता है और फिर धीरे-धीरे बढ़ कर पूरी बाढ़ का आदमी या कुत्ता बन जाता है, इस तरह की क्रिया मक्ख्यिों में नहीं होती। जितनी बड़ी मक्खी प्यूपे से निकलते समय होती है उतनी ही बड़ी वह जन्म भर रहती है। उससे तिल बराबर भी नहीं बढ़ती घटती। इससे यह समझ लेना चाहिये कि मक्खी जितनी बड़ी बननेवाली हो वह प्यूपे के अन्दर ही बढ़ जाती है और जब एक दफा वह प्यूपे से बाहर निकल आयी कि फिर उसकी शकल या सूरत में, आकार में और बनावट में किसी तरह की तबदीली नहीं होती।

प्यूपे से निकली हुई पूरी बाढ़ वाली मक्खी, ज्यादातर ऐसी जगह पायी जाती है जहाँ उसे खाना मिल सके और चूँकि इसके खाने के लायक चीजें इसे ज्यादतर गंदी जगह में मिलती हैं, इसीलिए मक्खियाँ ऐसी गंदी जगहों में पायी जाती है।

वसंत ऋतु के समय में, जब हवा में थोड़ी सी गर्मी आ जाती हैं तब मक्खियाँ बढ़नी शुरू होती हैं और इसके बाद यह दिन-दिन बढ़ती ही जाती है, यहाँ तक कि सारी गर्मी और बरसात भर यह बहुत ही हमें तंग करती रहती है। हेमन्त ऋतु के अन्त में ये कम होने लगती हैं। जिस वर्ष में

जाड़ा बहुत पड़ता है, उस वर्ष के जाड़े के दिनों में यह समझना चाहिए कि हमें मक्ख्याँ बहुत कम दिखेंगी।

जाड़े के दिनों में मक्खियों को क्या होता जाता है और वे कहाँ चली जाती हैं? यह एक बड़ा भारी प्रश्न है। इन दिनों में, यानी जाड़े के दिनों में, यह या तो मेगट्की हालत में, या प्यूपे की हालत में पड़ी–पड़ी अपने दिन व्यतीत करती हैं। यदि इन हालतों में से किसी हालत में न हुई तो पूरी बढ़ी हुई मक्खियाँ किसी न किसी ढकी हुई जगह में यानी कचरे के ढेरों पर या खाद, गोबर या लीद के ढेरों पर जहाँ उनका हवा और सर्दी से बचाव हो सके, सारी सर्दी भर अण्डे देती हैं। इसलिए इन दिनों में हमें मक्खियाँ इधर–उधर घूमती हुई ज्यादा नहीं दिखायी देतीं।

हम ऊपर लिख ही चुके हैं कि मक्खियाँ बड़ी हानिकारक होती हैं और वे किस रीति से हमें हानि पहुँचाती हैं इसका भी विवरण हम ऊपर पूरी तरह से कर चुके हैं। यह सिद्धांत अब सब वैज्ञानिकों ने मान लिए हैं कि मक्खियों के ही द्वारा बड़ी–बड़ी बीमारियाँ जैसे मोतीझरा, हैजा, डिसेंट्री, डायरिया और क्षय फैलती है। इस कारण प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि जितना उससे हो सके उतना इस बात का प्रयत्न करें कि मक्खियों की वृद्धि जहाँ तक हो सके, कम करें।

यदि हम मक्खियों के विषय में कुछ विचार करना चाहें तो दो तरह से कर सकते हैं :

(1) पूरी बढ़ी हुई मक्खियों को बस्ती के पास से निकाल देना या निकलवा देना चाहिए और जहाँ तक हो सके उन्हें नष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिए।

(2) दूसरी बात यह कि जहाँ तक हो सके इनकी पैदाइश को रोकना यानी इन्हें ऐसा अवसर ही न देना कि ये अण्डे दे सकें। यदि ये अण्डे ही न देने पावेंगी तो नयी मक्खियाँ पैदा ही न होंगी। इस तरह से आप इनकी तादात कम हो जायगी।

ऊपर लिखे हुए दो विचारों के विषय में प्रयत्नवादी और युक्तिवादी मनुष्यों ने अपने–अपने अनुभवों से जो बातें निर्धारित की हैं उनका विचार हम करेंगे जिससे इस छोटे लेख के पढ़नेवालों को, इनमें से जो कोई युक्ति अच्छी मालूम हो, उसका अवलम्बन करके अपने–अपने गाँवों या कस्बों में मक्ख्यों की वृद्धि न होने देने का प्रयत्न करें या कर सकें।

1. पूरी बढ़ी हुई मक्ख्यों को बस्ती से निकाल देना या उन्हें मार डालना :

(क) जहाँ तक हो सके अपने खाने और पीने की सब चीजें लोहे की जाली से या कपड़े की जाली से ढँकी रहना चाहिए जिसमें मक्ख्याँ उसके ऊपर बैठ कर उसे खराब न कर सकें; इसी तरह से अपने–अपने मकानों के चारों तरफ की जगह जितनी साफ रखी जाय रखनी चाहिए। मकानों के बाहर खिड़कियों में थूकना, नाक छिनकना या खकार डालना ये बड़ी ही गंदी और नुकसान पहुँचाने वाली हरकत है। ये जो कि बहुत मामूली बातें हैं तथापि इनसे जो हानि अपने बाल–बच्चों की पहुँचती है वह बड़ी भारी है और इसीलिए सब बातें विचार करने योग्य हैं।

(ख) यदि मकान या बंगले के किसी कमरे में मक्खियाँ अधिक हो गयीं हों तो वे : 1. चिड़ियों के पंख उस कमरे में जलाने से भगायी जा सकती है। 2. एक चांय के चम्मच भर 'पायरेथ्रम का पावडर' (Pyrethrum powder) जलाने से भगायी जा सकती हैं। 3. या 'क्रिसोल' (cresol) कमरे में गर्म करने से भगायी जा सकती है। अब ये चीजें किसी एक खास कमरे में से मक्ख्याँ भगाने के लिए कितनी जलानी चाहिये, यह उस कमरे की लम्बाई–चौड़ाई पर निर्भर है।

(ग) किसी कमरे से, रसोई घर से, बीमारों की खोलियों से या अन्य किसी बन्द जगह से मक्खियों को भगा देने का यह उपाय है कि उन जगहों की हवा में ऐसी चीजों का संचार कर देना चाहिए कि जिन चीजों के प्रभाव से मक्खियाँ या तो उसी जगह से मर जायँ या उस जगह को एकदम छोड़ कर भाग जायँ। ऐसी दो चीजें आजकल फौजीखाने के डेरों और अस्पतालों में काम में

लायी जा रही हैं। ये दोनों दवाइयाँ कैसे बनायी जाती हैं यह बात अभी फौजी अधिकारियों ने गुप्त रखी है लेकिन यदि किसी व्यक्ति को इनकी आवश्यकता हो तो उसे यह चीजें 'आर्मी मेडिकल कोर' (Army Medical Corps) से मिल सकती हैं। ये दोनों दवाइयाँ न तो जहरीली हैं और न पैट्रोल सरीखी आप ही आप जलने वाली ही हैं। ये बिना किसी डर के कमरों में रख कर कमरों में लायी जा सकती हैं। इनमें से पहली दवाई का नाम 'लेफ्रॉय सॉल्यूशन' (Lefroy solution) है। इस दवाई के एक से डेढ भाग फीसदी पानी में मिला कर इस पानी को किसी कमरे की हवा में उड़ा देने से उस कमरे में जितनी मक्खियाँ होंगी वे सब मर कर या बेहोश होकर ज़मीन पर गिर जावेंगी। इन मरी हुई मक्खियों को जल्दी से झाड़ कर बटोर डालना चाहिए। नहीं तो यह डर रहता है कि कहीं वे मक्खियाँ बेहोश ही होकर गिरी हों तो फिर होश में आकर उड़ने न लग जायँ।

दूसरी दवाई का नाम "ए.डी.ओ. सोल्यूशन" (A.D.O. Solution) है। यह दवाई पानी में मिलाकर काम में नहीं लायी जाती, परन्तु पहली दवाई की की तरह पानी में बगैर मिलाए ही काम में लायी जाती है। इस दवाई का असर जहाँ–जहाँ पहुँचता है वहाँ मक्ख्यिाँ मर ही जाती हैं। इस दूसरी दवाई के काम में लाने में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जब यह दवाई किसी कमरे में काम में लायी जाय तब उस कमरे में यदि कोई खाने का सामान या दूध रखा हो तो उसे ढँक देना चाहिए, नहीं तो दवाई की बास उसमें आने लगती है।

(घ) जब कभी मक्ख्यिाँ घरों में या कहीं बहुत ज्यादा हो जायँ तब उन्हें मारने और कम करने के लिए एक और भी सस्ती युक्ति है। छोटी–छोटी कटोरियाँ लेकर उनमें "फॉरमेलिन" (Formalin) और दूध मिलाकर रख दिया जाय या कपड़े के टुकड़ों को "फॉरमेलिन" (Formalin) में भिगो कर कमरों में जगह–जगह रात ही में या बड़े सबेरे रख दिए जावें। इस समय मक्खियाँ घूमने–फिरने लगती हैं और जब ये देखेंगी कि कमरे में दूध के कटोरे रखे हैं तो वे फौरन उन पर लपकेंगी और इस जहरीले दूध को पीएँगी और थोड़ी ही देर में उनके जीवन का अन्त हो जायगा।

कटोरियों में रोटी के टुकड़ों के साथ रखने की दवाई इस रीति से बनायी जाती है — फॉरमेलिन (Formalin 40 प्रतिशत) 5 C.C या 1 चम्मच 1 पानी (Water) 200 C.C. या डेढ पिंट।

(ङ) मकानों के बाहर की तरफ यानी बगीचों में, आँगनों में या सहनों में से यदि मक्खियों को भगाना हो तो सबसे अच्छी युक्ति है कि दीवालों पर, पेड़ों के तनों पर, मकानों की छतों पर और जहाँ–जहाँ मक्खियाँ बैठती हों वहाँ विषैली (जहरीली) दवाइयाँ छिड़क दी जावें। ये दवाइयाँ फौजी 'कैम्पों' पड़ावों में अधिक उपयोगी हैं और ऐसी जगहों में इनका उपयोग करना भी अति सरल है। इन विषैली दवाइयों में कपड़े के टुकड़े भिगो कर जगह–जगह पेंड़ों की शाखाओं में टाँग देने से उन जगहों की सब मक्खियाँ मार डालना या उन्हें वहाँ से भगा देना बहुत आसान (सरल) हो जाता है। इन दवाइयों को बस्ती में काम में लाना धोखे का काम है। क्योंकि बच्चों के हाथों आदि में यदि ये दवाइयाँ लग जावें तो उनके जीवन को हानि पहुँचने का भय है।

ऊपर लिखी हुई दवाइयाँ नीचे लिखी हुई रीति से बनायी जाती है :

ट्रीकल (Tricale) 100 ग्राम 10 पाउंड

आरसेनाइट (Arsenite of soda or potash) 20 ग्राम या 2 पाउंड

पानी (Water) 1 लीटर या 10 गेलंस

(च) एक और युक्ति, लेफ्रॉय साहब ने अपने "The House fly Peril" नामक लेख में, मक्खियों को जाल में फँसाने की बतलायी है। यह हर एक मनुष्य अपने रसाई–घर में और अन्य कमरों में बड़ी आसानी से बना कर रख सकता है। एक कोबरा–पॉलिश की बोतल लो और उसमें

नीचे लिखी हुई दवाई बना कर उससे 3/4 बोतल भर दो। फारमेलिन 40 P.C. या 3 चम्मच बड़ा। चूने का पानी में शकर का शरबत, बाकी।

इसके बाद एक गोल मोटे ब्लॉटिंग (स्याहीचट) का टुकड़ा लो, और ब्लॉटिंग की एक लम्बी पट्टी भी काट लो, यह इतनी चौड़ी होनी चाहिए कि बोतल के मुँह में घुस सके। फिर उस गोल टुकड़े के बीच में चाकू से उस ब्लॉटिंग की पट्टी की चौड़ाई के बराबर दो चीरें कर लो और उस पट्टी को इन चीरों में से होते हुए इस तरह से डालो कि उस पट्टी के सिरे नीचे की ओर मिल जायँ और वह गोल टुकड़ा छाले की तरह ऊपर अटका रहे। (इस ब्लॉटिंग के छाते की शकल बरसात में जो छात्तियाँ पैदा होती हैं ओर जिन्हें अकसर कुकुरमुत्ते भी कहते हैं)। अब इस छत्ती को लेकर इसकी डंडी (यानी उस ब्लॉटिंग की पट्टी के सिरे) को उस बोतल में जिसमें दवाई भरी हुई है रखदो और इस छत्ती वाली बोतल को जहाँ मक्खियाँ अधिक हों वहाँ रख दो। ब्लॉटिंग की पट्टी के सिरे बोतल के अन्दर की दवाई में डूबे रहने के कारण ऊपर वाले गोल टुकड़े को बराबर गीला रखते हैं। और मक्खियाँ जब इसके ऊपर शकर के शरबत के लिए आती हैं तब वे इस विषैले शरबत को पीते ही मर जाती हैं और गिर पड़ती हैं। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद जब मरी हुई मक्ख्यिाँ बहुत हो जायँ तो उन्हें उठा कर फेंक देना चाहिए।

(छ) मक्खियों को जाल में फँसाने के लिए खास तरह के कागज भी बनाये जाते हैं। इन्हें Fly paper कहते हैं। इन्हें बनाना बहुत सरल है। दो हिस्से रत्न (Resin) और एक हिस्सा तिल्ली का तेल लेकर इसे खूब उबालो। जब इसकी अच्छी चासनी (खूब चिपकने वाली) बन जावे तब इसे कागजों के टुकड़ों के ऊपर फैला दो। बाद में यह कागज जहाँ मक्खियाँ अधिक हों, वहाँ रख दो। जैसे ही मक्ख्यिाँ इस पर बैठीं वैसे ही इनके पैर इसमें चिपक जाते हैं और फिर वे वहाँ से भाग नहीं सकतीं। इस रीति से मक्ख्यिाँ कम की जा सकती हैं। इससे भी सरल युक्ति यह है कि इस तेल और राल के टुकड़े भिगो कर जगह-जगह टाँग दो। मक्ख्यिाँ लटकती हुई चीजों पर बैठने की बड़ी शौकीन होती हैं; वे इन रस्सियों पर बैठते ही चिपक जावेंगी। शाम होते ही इन रस्सियों को निकाल कर जला दो या गाड़ दो। यह सब से सरल युक्ति है और इसका अवलंबन गरीब से भी गरीब मनुष्य कर सकता है। खास कर इस वजह से कि इसके बनाने के लिए न तो ऐसी चीजों की आवश्यकता ही पड़ती है कि जो किसी को मालूम न हो और न इसमें अधिक व्यय की ही आवश्यकता है।

(ज) मक्ख्यिों को पकड़ने के अनेक प्रकार के फन्दे हैं। इनके बनाने की रीति लेफ्रॉय साहब ने अपनी "Measures for avoidance and extermination of Flies" नामक किताब में अच्छी तरह से बतलायी है। इसके विषय में हम यहाँ पर इसलिए नहीं लिखना चाहते कि ये युक्तियाँ साधारण श्रेणी के मनुष्यों के काबू के बाहर हैं। यदि किसी व्यक्ति को इसके विषय में जानने की आवश्यकता हो तो उसे ऊपर लिखी या बतलायी हुई किताब पढ़ने की सलाह देंगे।

(2) अब हम दूसरी बात यानी मक्ख्यिों की उत्पत्ति को रोकने के विषय में विचार करेंगे।

(क) घोड़ों की लीद और गाय-भैंसों का गोबर हमेशा सूखा डालना चाहिए या ज़मीन में गाड़ देना चाहिए। इसको कभी मकानों के बाहर या बँगलों के होते (कम्पाउण्ड) में पड़े-पड़े सड़ने न देना चाहिए क्योंकि मक्खियों के अण्डे देने की यह एक खास जगह होती है, और इनकी अण्डे देने की जगहें जितनी कम होंगी उतने ही इनकी उत्पत्ति के मार्ग कम होंगे।

(ख) मकानों के अन्दर का कूड़ा हर तीसरे या चौथे दिन जला देना चाहिए या हटवा देना चाहिए। यदि मक्खियाँ उनमें अण्डे भी दे चुकी हों तो उन लाखों को बढ़ कर प्यूपा या मक्खी का अवसर ही न देना चाहिए।

(ग) गोबर या लीद के ढेर अक्सर मक्खियों के लारवों और प्यूपों को जाल में फँसाने के भी काम में जाए जा सकते हैं। इन ढेरों को हमेशा गीला रखना चाहिए और इनके चारों तरफ सूखे घास की पालें सी बाँध देना चाहिए। जब मक्खियाँ इस गोबर या लीद के ढेर में अण्डे देंगी तब ये लाखे बढ़ कर प्यूपे बनने के लिए सूखी जगह ढूँढेंगे और इसलिए इस घास की पाल में आवेंगे। यदि यह घास की पाल हर चौथे या पाँचवें दिन जला दी जाय तो जितने लाखों ने इस चार और पाँच दिनों में इसमें प्यूपे बनाये होंगे वे मक्खियाँ बनने से पहले ही जला दिये जावेंगे।

इस छोटे से लेख के अन्त में हम इतना और लिखना चाहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य को नीचे लिखी हुई बातों पर ध्यान देकर जितना उससे बन सके इाका अनुकरण करने का प्रयत्न करें :

(1) मक्खियों के अण्डे देने की जगहें जहाँ तक हो सके बरबाद करो।

(2) मनुष्यों और जानवरों की लाशें, खाद (manure) और कचरा सब जलवा दो या गड़वा दो। (3) ऐसी तरकीबें और युक्तियाँ सोचो कि जिनमें मक्खियाँ मैले में, थूकों के ऊपर और बीमारों के जखमों में ना जा सकें। (4) बच्चों और बीमारों के पास, जहाँ तक हो सके मत जाने दो। (5) दूध, पानी और खाने के पदार्थों पर मक्खियों को कभी न बैठने दो। उपर्युक्त पदार्थ और अपने खाने–पीने के बर्तन सदा ढ़के रहना चाहिए। हिंदुओं में जो बर्तन माँजने के बाद धोकर उलटे रखने की प्रथा है यह बहुत अच्छी है क्योंकि अन्दर मक्खियाँ बैठने ही नहीं पातीं।

---

1. बार
2. बदबू

श्री जमशेदजी नौशेरवां जी ताता की जन्म–शताब्दी*

डा. आत्माराम, डी.एस–सी

ताता का नाम उन चिरस्मरणीय व्यक्तियों में से है जिन्होंने भारत की गिरी हुई दशा को दूर करने का बीड़ा उठाया हो। यों तो कभी ताता ने अपने व्याख्यानों में या किसी संस्था के उद्घाटन में यह न कहा होगा कि भारतवर्ष को अपनी गिरी दशा से उठना चाहिये या राजनैतिक उन्नति के लिये उन्होंने लोगों को उकसाया हो परन्तु यदि देखा जाय तो उस समय जब कि भारत के वर्तमान नेताओं में बहुतों का जन्म भी न हुआ होगा और सर्वोपरि नेता महात्मा गाँधी ने स्वतंत्रता का ज्ञान भी लोगों को न दिया होगा, ताता ने भारत को स्वतंत्र बनाने के व्यवहारिक साधनों का उद्घाटन किया था। पाठक इनसे शायद सहमत न हों। परन्तु यह बात नितांत ठीक है। भारतवर्ष इतनी दीन तथा शोचनीय दशा को क्यों पहुँचा? इसका उत्तर तो सभी जानते हैं कि कला, कौशल तथा दस्तकारियों के प्रभाव से वह देश जिसकी बनाई हुई चीजें पहिले बाहर के देशों में इज्जत की निगाह से खरीदी जाती थीं आज छोटी से छोटी चीज के लिये दूसरे देशों का मोताज बना हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि भारतवर्ष स्वतंत्र होना चाहता है तो उसको अपनी दस्तकारियों को बढ़ाना पड़ेगा और वर्तमान युग में विज्ञान की बिना सहायता के किसी देश की दस्तकारियाँ अन्य देशों का मुकाबला नहीं कर सकतीं। ताता ने सबसे पहिले भारत में दस्तकारियों को वैज्ञानिक रीतियों से चलाने का उद्योग किया, तथा जनता को इसके लिये उकसाया। इसलिये इसमें संदेह नहीं कि भारत–स्वतन्त्रता के महारथियों में ताता का स्थान बड़ा ऊँचा रहेगा। गत् 3 मार्च सन् 1939 ई. को सारे भारतवर्ष में और विशेष कर जमशेदपुर जो ताता के नाम पर प्रसिद्ध है उसका शतवर्ष–जन्म–गाँठ (जन्मशताब्दी) बड़े समारोह से मनाई गई। यह लेख उस महान् आत्मा के लिये इस महत्वपूर्ण अवसर पर विज्ञान की ओर से एक श्रद्धान्जलि है।

पिता का कारबार

जमशेद जी नौशेरवां जी ताता का जन्म 3 मार्च सन् 1839 ई. को पारसी कुटुम्ब में हुआ। इसके पिता का नाम नौशेरवाँ जी था। ताता पारसियों में पुजारी होते हैं। ताता के जीवन पर पढ़ने के समय की बातों का विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। ताता के पिता नौशेरवाँ जी अपनी जवानी में ही पुजारियों के बन्धनों को तोड़कर व्यवसायों में लग गये थे। जमशेदजी की पढ़ाई विशेषकर बम्बई के ऐलफिन्सटन कालेज में हुई। यहाँ से पढ़ने पर किसी वकील के यहाँ कानून संबन्धी बातें सीखकर चीन देश अपने पिता के कारबार को देखने के लिये गये। परन्तु अमेरिकन लड़ाई के बाद कुछ कारणों से

---

* *विज्ञान*, मई 1939

जमशेदजी के पिता का कारबार एकदम नष्ट हो गया। उस समय नवयुवक ताता ने जिस धैर्य तथा तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय दिया वह सर्वदा के लिये याद रहेगी। उसका कर्जेवालों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने उसको अपनी ओर से उसकी ही कम्पनी का ;ण चुकानेवाला बना दिया। इससे अधिक सच्चाई व ईमानदारी का क्या प्रमाण मिलेगा? मानचस्टर में रहने के कारण ताता को उस समय पश्चिमी रीति पर रुई–व्यवसाय संचालन का अच्छा अनुभव प्राप्त हुआ। उसी समय जनरल नेपीयर की अध्यक्षता में एक दल एबासीनिया गया हुआ था। उनके खाने–पीने की चीजों का ठेका नाशेरवाँ जी ताता को मिला जिससे उन्होंने काफी लाभ उठाया।

नागपुर में कपड़े का कारखाना

इस रुपये से ताता जीवन के विलास में लिप्त नहीं हुआ, बल्कि उस गये समयमें कपड़े की मिल खोली। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति ने ताता को व्यवसाय के सब हथकंड़े सिखा कर ही पैदा किया था। ताता ने सबसे पहिले यह सोचा कि मिल को ऐसी जगह स्थापित करना चाहिए जहाँ पर कच्ची चीजें पास हों, तथा बेचने की सुविधा भी हो। अर्थात् बाजार भी(इसलिये नागपुर सबसे अच्छी जगह मालूम हुई। बहुतों ने ताता के इस विचार का विरोध किया, पर वह न माना। बाद को ताता ने दिखा दिया कि ताता का विचार बिल्कुल ठीक था, क्योंकि नागपुर की मेनप्रेस मिल की अपेक्षा कोई कपड़े की मिल अधिक लाभ न दिखा सकी। यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि यदि भारतवर्ष में दस्तकारियों की असफलता का कारण खोजा जाय तो एक कारण यह भी मिलेगा कि बहुत सी मिल बिना सोचे स्थापित कर दी गईं, यानी न तो कच्ची चीजों के पास रक्खी गईं और न बाजार के पास।

अनुभवी ताता

नागपुर मिल की सफलता से ताता केवल एक अनुभवी व चतुर व्यवसायी ही प्रसिद्ध न हुआ बल्कि उसमें अपनी योग्यता का भरोसा तथा दृढ़संकल्प भी उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात ताता ने बहुत सी मिलें जो कुप्रबन्ध के कारण सोचनीय दशा को पहुँच चुकी थी, खरीद लीं और उनका संचालन करके पूरा लाभ दिखलाया। ताता की इतनी भारी सफलता का एक अन्य कारण था – अपने कर्मचारी चुनने की विलक्षण बुद्धि । यह गुण भारत के लोगों में जरा कम पाया जाता है। यहाँ यह कह देना उचित है कि इसका विशेष कारण है हृदय–संकीर्णता। जब हम लोग कोई काम करते हैं तो चाहते हैं कि हमारा भाई, दामाद, रिश्तेदार या जाति वाला इसका संचालक हो(उसकी चतुरता का ध्यान नहीं रखते, इसीलिये हम लोगों को असफलता होती है। इस संबन्ध में स्वर्गीय सर आशुतोष मुकर्जी का नाम याद आता है। लेखक की दृष्टि में भारत के विश्वविद्यालयों में उनसे महान वाइसचांसलर अभी तक नहीं हुआ। संकीर्णता उनमें छुई भी न थी। उनकी छाँट सर्वदा व्यक्ति के गुणों पर होती थी, चाहे बंगाली हो या न हो। उदाहरणार्थ, सर चन्द्रशेखर रमन नोबेल पुरस्कार के विजेता, सर सर्ववाली राधाकृष्णन, गणितज्ञ स्वर्गीय डाक्टर गणेश प्रसाद। वास्तव में भारत में रमन जैसे वैज्ञानिक होने का बहुत कुछ श्रेय सर आशुतोष मुकर्जी को है। यद्यपि ताता का बहुत सा कारबार उनके बेटों ने संभाला पर ताता ने उनको इतना चतुर तथा अनुभवी भी बनाया कि वे इतने कड़े कार्य को संभाल सके।

लोहे और बिजली के कारखाने

भारत को व्यवसायों में उन्नति प्राप्त कराने की लगन ताता के विचारों में आजीवन सर्वोपरि रही। इतने दिनों पहिले ताता को ही यह बात सूझी कि इस व्यवसायिक उन्नति के प्राप्त करने के लिये पहिले मुख्य व्यवसाय जैसे लोहा तथा सस्ती व अधिक शक्ति–संचय (पावर–सप्लाई) होना आवश्यक है। इसकी ओर भारत सरकार का ध्यान ताता ने आकर्षित किया। मगर कोई सफलता प्राप्त न हुई। ताता के मरने के पश्चात् ही उसकी कम्पनी ने जमशेदपुर के लोहे के कारखाना तथा पश्चिमी घाट के जल सम्बन्धी बिजली के कारखाने खोले। परन्तु इनकी नींव वह स्वयं अपने हाथों से डाल चुका था। इनके प्रारम्भिक खोज का सारा खर्च ताता ने किया और कम से कम अपने जीवन काल में उसे सरकार से एक कौड़ी भी न मिली।

लोहे की खानों की खोज

लोहे का कारखाना खोलने के लिये ताता ने इंगलैण्ड तथा अमरीका के कारखानों का भ्रमण किया। अमरीका में पेरिन महोदय की सलाह से मि. वेल्ड को भूगर्भ–कार्य्य करने के लिए भारतवर्ष लाया क्योंकि कारखाना खोलने से पहिले धातु का पता लगाना जरूरी था। सन् 1903 ई. में ताता के सुपुत्र स्वर्गीय सर दोराबजी ताता तथा मि. वेल्ड ने मध्य प्रदेश के जंगलों में छानबीन करके डंडी लोहारा के जिले में लोहे के संग्रह ढूँढ़ निकाले, और सम्भालपुर के पास पदमपुर जो झरिया की कोयले की खानों तथा महानदी के पास है कारखाना स्थापित करने का निर्णय किया। ज्योलोजिकल सर्वे के पी.एन. बोस महोदय ने पन्द्रह वर्ष पहिले डंडी लोहारा में लोहे का पता लगाया था। बोस महोदय का नाम जमशेदपुर के कारखाने से सर्वदा संयुक्त रहेगा। जिस समय पदमपुर में कारखाना खोलने का निर्णय हो चुका था, और काम शुरू करने में थोड़ी ही देर थी ठीक उसी समय बोस महोदय जो तब मयूरभंज राज्य में भूगर्भ–विभाग के अध्यक्ष थे, गुरुमहशिनी पहाड़ी पर लोहे की तह की तह विदित की थी, और दोराबजी को लिखा कि पदमपुर के बजाय यदि गुरुमहशिनी पहाड़ी के पास लोहे का कारखाना खोला जाय तो बहुत अच्छा होगा। क्योंकि डंडी लोहारा के लोहे से गंरुमहशिनी का लोहा अच्छा–अधिक और सुगमता से खोदा जा सकता था। चतुर वैज्ञानिक गुरुमहशिनी में लोहे की इस प्रकार की तह को जिसमें 3.9 प्रतिशत लोहा है एक प्राकृतिक अद्भुत रचना समझते हैं। महाराजा ने जिन्होंने बड़ी सहानुभूति दिखायी कम्पनी को धातु खोदने की आज्ञा दे दी। इस कार्य्य में महाराजा ने वह उदारता प्रकट की जो इस देश में कम पाई जाती है। पहिले तीन साल धातु मुफ्त खोदने दी, फिर बड़े सूक्ष्मकर (रायल्टी) पर, यानी दो पैसे टन से आरम्भ करके धीरे–धीरे आठ आने टन तक, बनाने पर ठेका दे दिया। दुनिया भर में कहीं भी इतने कम कर पर धातु नहीं मिलती। साकची में जो उस समय स्वर्ण रेखा नदी के पास छोटा सा गाँव था, कारखाने खोलने का निर्णय किया। यहाँ कोयला पास था तथा कलकत्ता जैसा बड़ा शहर जहाँ से लोहा बाजार को जाता है एक बड़ा बाजार है। आज साकची गाँव का नाम ही हट गया। वहाँ पर जमशेदपुर शहर ताता के नाम पर बसाया गया, जिसमें ब्रिटिश साम्राज्य का सबसे बड़ा कारखाना है, और लगभग डेढ़ लाख आदमी रहते हैं।

कम्पनी के लिये धन

दोराबजी ताता तथा जमशेदजी के मुख्य सहकारी बरजोरजी बादशाह ने 1908 ई. में विलायत जाकर कम्पनी के लिये धन इकट्ठा करने की बड़ी चेष्टा की मगर असफल रहे। क्योंकि अँगरेजों को

एक तो इतने बड़े कार्य्य की सफलता का विश्वास ही न था। दूसरे, यदि रुपया देते भी तो ऐसी शर्तों पर जिनसे कि ताता के हाथ में कुछ न रहता। भाग्यवश उस समय भारत में लार्ड कर्जन के किये हुए बंग–विच्छेद के कारण स्वदेशी की लहर चल रही थी, दोराबजी ने इस अवसर का पूरा पूरा लाभ उठाया। मानों बिल्ली के भागों छीका टूट पड़ा। सुबह से शाम तक ताता का दफ्तर रुपया देनेवालों की भीड़ से भरा रहता था। बूढ़े जवान, गरीब अमीर, आदमी, स्त्री, पुरुष सभी ने सामर्थ्य अनुसार धन दिया। यहाँ तक कि तीन हफ्ते में 2 करोड़ रुपया इकट्ठा हो गया। लगभग 50 लाख रुपया कार्य्य संचालन के लिये ग्वालियर के स्वर्गीय महाराजा सिंधिया ने दिया था। 27 फरवरी सन् 1908 में ताता के मरण–पर्यन्त साकची के स्थान पर वर्तमान जमशेदपुर कारखाने की नींव डाली गई थी। सन् 1911 ई. में पहिली बार कच्चा लोहा (पिग–आयरन) तथा 16 फरवरी सन् 1912 को पहिली बार फौलाद या इस्पात बनी। खेद है कि जमशेद जी अपने कार्य्य की सफलता देखने के लिए जीवित न रहे।

पानी से बिजली

ताता की दूसरी बड़ी व्यवस्था जल सम्बन्धी बिजली का संचालन थी। एमप्रेस मिल की स्थापना के लिये नागपुर में रहने के समय नर्मदा के झरने जो प्रसिद्ध बिल्लौरी चट्टानों के पास है, ताता की आंखों में खटकते रहते थे। दूध सागर के झरनों से भी बिजली पैदा करने की व्यवस्था की गई। इस कार्य्य में एक मि. गोसलिंग को प्रारम्भिक कार्य करने के लिये रक्खा गया। छुट्टी के दिनों में गोसलिंग पश्चिम घाट की पहाड़ियों पर घूम रहा था, वहाँ पर उसने एक ऐसा स्थान मालूम किया जहाँ नदी के पानी के अतिरिक्त बरसाती पानी इकट्ठा किया जा सकता था, जिससे अधिक मात्र में बिजली पैदा की जा सकती थी। काबेरी झरनों की विद्युत व्यवस्था की सफलता के आधार पर गोसलिंग ने ताता से पश्चिमी घाट में बिजली का कारखाना खोलने का अनुरोध किया। ताता इनके रहस्य को तुरन्त समझ गया और एक कम्पनी की स्थापना की। परन्तु कारखाना खोलने के लिए ज़मीन और बहुत सी बातों की आवश्यकता थी। ताता स्वयं भारत–मंत्री लार्ड हैमिल्टन से मिला और सहायता का वादा करा लिया। यह कार्य्य भी ताता के जीवन काल में न हो सका। रुपया मिलने में फिर असुविधा हुई परन्तु सन् 1910 ई. में लार्ड सीडेनहेम ने शोलापुर में कपड़े की एक मिल का उद्घाटन करते हुए जनता को इस लाभदायक व्यवस्था के लिए रुपया देने को प्रेरित किया। 7 नवम्बर सन् 1910 ई. में ताता–जल–सम्बन्धी विद्युत कम्पनी खुली तथा 11 फरवरी सन् 1915 ई. को विद्युत धारा का संचालन हुआ।

बम्बई में इतने बड़े कारखाने होने का कारण इस सस्ती शक्ति का होना है। एक बार जब वहाँ शक्ति मिलने लगी, तब बहुत से कारखाने बढ़ गये तथा नये खोले गये। यहाँ तक कि लोनावाला का बिजली घर बदल गया और बाद में खोपोली तथा मीरा के बड़े–बड़े बिजली घर बनाने पड़े।

शिक्षा की व्यवस्था

पाठक समझेंगे कि ताता ने अधिकतर ऐसे काम किये जिनसे उसे खूब धन मिला। अवश्य, परन्तु ताता दान देने में भी उतना ही उदार था। पहिले कहा जा चुका था कि भारत की दस्तकारियों को बढ़ाने के लिये वैज्ञानिक शिक्षा का होना आवश्यक है। इसलिये शुरू में भारतवासियों के लिये पश्चिम देशों में पढ़ने के लिये ताता ने छात्रवृत्ति स्थापित की। ताता विशेषकर वैज्ञानिक शिक्षा के पक्ष में था। ताता के मरण–पर्यन्त इस कोष को जो जे.एन. ताता–शिक्षा–व्यवस्था के नाम से प्रसिद्ध है

और भी बढ़ा दिया। इससे इस समय लगभग दस लाख से अधिक रुपया जमा है। परन्तु यह तो शुरुआत थी। ताता तो भारत में वैज्ञानिक शिक्षा की सुविधा करना चाहता था। इसलिये भारत सरकार तथा देशी रियासतों से इसके लिये अनुरोध किया और स्वयं कहा जाता है 25 लाख रुपया देने का संकल्प किया। मैसूर दरबार ने सुप्रसिद्ध दीवान सर शेशाद्री अय्यर के प्रभाव से पाँच लाख रुपया प्राथमिक व्यय के लिए तथा पचास हजार रुपया सलाना देने का इस शर्त पर वादा किया कि बंगलौर में विद्यापीठ स्थापित की जाय। भारत सरकार ने विश्वविख्यात प्रो. सर विलयम रेमजे को इस व्यवस्था की जाँच करने के लिये 1901 में भारतवर्ष बुलाया। प्रो. रेमज़े ने भारत में वैज्ञानिक शिक्षा की सुविधा का रहस्य तथा आवश्यकता को दर्शाया और बंगलौर में ही विद्यापीठ स्थापित करने का निर्णय किया। परन्तु महा खेद है कि जो कार्य्य ताता को इतना प्रिय था वह भी उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रें के बार बार चेष्टा करने पर पूर हुआ। सन् 1906 ई. में प्रो. रेमज़े के विद्वान् सहायक तथा शिष्य डा. ट्रेवर्स विद्यापीठ के प्रथम अध्यक्ष होकर आये। सन् 1911 ई. में भारतीय विज्ञान विद्यापीठ (इण्डियन इंस्टीट्यूट आव् सायन्स) बंगलौर में कार्य्य किया।

ताता की उदारतायें

ताता–वंश जनता सम्बन्धी कार्य्यों के लिये दान देने में विख्यात् है। लगभग सात वर्ष हुए ताता के सुपुत्र सर दोरबजी ने अपनी स्त्री की स्मृति में पच्चीस लाख रुपया देकर एक कोष (लेडी ताता मेमोरियल ट्रस्ट) स्थापित किया जिसके ब्याज से 1·50 रु. मासिक की 10 छात्रवृत्तियाँ भारतवासियों को और लगभग 500 रु. मासिक की चार छात्रवृत्तियाँ जो अन्य देशों के लोगों को भी दी जाती हैं, स्थापित की गई हैं। यह छात्रवृत्तियाँ ऐसे कार्य्य के लिये दी जाती हैं जो रोगों की शान्ति करने तथा स्वास्थ्य बढ़ाने से सम्बन्ध रक्खें। कितना उदार उद्देश्य है।

वास्तव में ताता को भारत का ऐण्डस कारनेगी कह सकते हैं। यहाँ यह बता देना उचित है कि कारनेगी ने 10 शिलिंग मासिक वेतन पर अपनी जीवन लीला आरम्भ की थी और एक अमरीकन लोहे के कारखाने में कुली हुआ था। बाद में इसका सभापति हुआ। उसने 10 अरब रुपया दान देकर वाशिंगटन की कारनेगी विद्यापीठ खोली जो अमरीका में विज्ञान का सबसे बड़ा विद्यापीठ है। कहा जाता है कि संसार के किसी व्यक्ति ने विज्ञान के लिये इतना दान नहीं दिया। परन्तु करनेगी की तरह ताता को अपने कार्य्यों को फूलते फलते देखने का सौभाग्य प्राप्त न हुआ। लगभग सभी बड़े काम जिनसे ताता का नाम चिरस्मरणीय रहेगा, उसके मरणोपरान्त हुये।

ताता जैसे महान व्यक्ति सर्वदा पैदा नहीं होते, वे तो ईश्वर की कृपा से देश की उन्नति का मार्ग दिखलाने के लिये कभी–कभी संसार में भेजे जाते हैं। ईश्वर उनको वैसी ही बुद्धि भी देता है। ताता ने भारत के उद्धार के लिये जो जो काम किये उसके लिये भारतवासी सर्वदा उसके सादर ;णी रहेंगे। यद्यपि ताता ने स्वयं रुपया कमाया, परन्तु उससे जनता को कितना लाभ हुआ, लाखों भारतवासी ताता के कारखानों के कारण अपनी जीविका कमाते हैं। सैकड़ों विद्यार्थी अपनी शिक्षा समाप्त करते हैं।

वास्तव में जो काम ताता ने किये उनमें जातीयता की झलक टपकती है और उसके सब कार्यों का मुख्य ध्येय भारत का उद्धार था। इस लेख का मुख्य उद्देश्य भारतवासियों को उस महान आत्मा की याद दिलाना है, जिसने भारत को उन्नति का मार्ग दिखलाया तथा उस उन्नति को प्राप्त करने के साधनों का संचालन किया। उन लोगों के लिये जो साधारण असुविधाओं से काम करने से हट जाते हैं तथा उनके लिये भी जिन्हें रुपया भले कार्यों में लगाने के लिये कुछ दिक्कत होती है, ताता की जीवन–लीला से अधिक ज्वलन्त उदाहरण नहीं मिल सकता।

संसार की सर्वप्रसिद्ध वाटिका – क्यू*

राधानाथ टण्डन, बी.एस–सी.

काँच के विशाल घर

इस समय संसार में सबसे बड़ी वाटिका क्यू की मानी जाती है। यह स्थान लण्डन से आधे घंटे के रास्ते की दूरी पर है। सरे में टेम्स नदी के तट पर यह वाटिका स्थित है। छुट्टियों के दिनों में यहाँ की चहल–पहल देखने योग्य होती है। सहस्रों की संख्या में दर्शकगण यहाँ उपस्थित होते हैं। इस वाटिका में 288 एकड़ भूमि है। यहाँ पूरे वर्ष भर मनोहर चित्ताकर्षक पौधे देखने को मिल सकते हैं। जिस ऋतु में अन्य स्थानों के बाग सूखे पड़े होंगे, उस ऋतु में भी यहाँ काँच के बने घरों के लहलहाते उपवन देखने को मिल जायँगे। काँच के एक विशाल घर में पाम और साईकार्डो का विस्तृत समेह यहाँ सुरक्षित है। यह अपने ढंग का अद्वितीय है। काँच के हजारों टुकड़ों को लगाकर बनाया गया यह घर इतना बड़ा है कि इसमें खजूर के बड़े पेड़ भी उग सकते हैं यहाँ पर एक वृक्ष 'ब्रौनिया' है जो अप्राकृतिक साधनों द्वारा बराबर पूरे वर्ष पुष्पित हुआ करता है। कैक्टी, चूस कर खाने योग्य पदार्थों के पौधे, व्यापारिक महत्व के अनेक वृक्ष, तरह तरह के फर्न, आर्किड, सामान्य तापक्रम में रहनेवाले पौधे, और भी अनेक प्रकार के लता–पादक इस क्यू–वाटिका के काँच घरों में सुरक्षित हैं। मांस–भक्षी या ऋषि–आहारी पौधे भी यहाँ देखने को मिलेंगे।

पौधों की प्रदर्शनी

क्यू–वाटिका में एक कन्सरवेटरी है जिसमें अनेक पौधों की प्रदर्शनी की गई है। कैलसिओलेरिया, बिगोनिया, लिली, सिनेटेरिया, पेलार्गोनियम, आदि के पौधे यहाँ विशेष प्रकार से देखने को मिलेंगे।

इस वाटिका में वैज्ञानिक दृष्टि से बराबर पौधों पर कुछ न कुछ प्रयोग होते ही रहते हैं। अनेक वनस्पति–विज्ञान–वेत्ता और उपवन–विज्ञान–वेत्ता नये नये ढंग से अपने प्रयोग यहाँ किया करते हैं।

अपूर्ण शोभा

बसन्त ऋतु के प्रथम चरण रखते ही फुलवारियाँ हँस पड़ती हैं। एक सी कुशलपूर्वक कटी हुई हरी घास बड़ी मोहक प्रतीत होती है। नदी के किनारों पर क्रोकस ऐसे सुन्दर लगतें हैं मानों सोना बिछा

---

* *विज्ञान*, मई 1939

हो। गौरइयों के आने से पूर्व ही डैफोडिल पौधे अपने चटक और चमकीले रंग को प्रदर्शित करने लगते हैं। बीच, हार्स चेस्टनट, ओक आदि अनेक वृक्षों की शोभा का तो कहना ही क्या। यहाँ दर्शकों की नित्य प्रति बड़ी भीड़ रहती है, पर फिर भी सब जगह शान्ति मिलेगी। नीली घंटियाँ शान्ति का सन्देशा देती रहती हैं। इस शान्ति में पक्षियों के मधुर राग उपवन के महत्व को बढ़ा देते हैं।

क्यू–गार्डन में ट्यूलिप, हेयासिन्थ और अन्य सुकुमार फूल ऐसे लगते हैं, मानो देवलोक की अप्सरायें ही वृक्षों पर उतर आयी हों। एक एक फूल में सौन्दर्य की होड़ सी लग जाती है। अज़ेलिये अधिक सुन्दर हैं या रोडोडेण्ड्रोम मैगनोलिया, फार्सीयिया, जापानी चैरी, हाथर्न, लिलाक आदि सब एकसे एक बढ़कर हैं। कुछ का कहना है कि क्यू–वाटिका में तभी आओ जब लिलाक खिल रहे हों। ऐसे समय की बात ही क्या! गुलाब की शोभा का तो कहना ही क्या! यहाँ के चट्टानी–बाग भी देखने योग्य हैं। झीलों की शोभा तो अवर्णनीय है।

क्यू–वाटिका के प्रति जनता को इतना ध्यान रहता है कि वह इसे गन्दा नहीं करती। कोई भी दर्शक किसी पेड़ पौधे को हानि पहुँचाने की नहीं सोचता और बगीचों में जाकर देखिये, कहीं कागजों और समाचारपत्रों के ढेर हैं, कहीं मूँगफली, केलों या नारंगी के छिलके पड़े हैं, पर क्यू–वाटिका में कहीं ऐसा न पाइयेगा। जिन दिनों बैंकों की छुट्टियाँ होती हैं, यहाँ प्रति दिन 50000 की संख्या में जनता का आना साधारण सी बात है। सन् 1931 के एक सोमवार को 96859 अर्थात् एक लाख के लगभग जनता ने इस बाग की सैर की। यह अब तक की सबसे अधिक संख्या है।

क्यू–वाटिका का ऋण

क्यू–वाटिका में दोनों बाते हैं, वह अत्यन्त मनोमोहक भी है और साथ ही साथ ज्ञानवर्धक भी। अनेक उपनिवेशों में नये–नये पौधों को लगाने का प्रोत्साहन क्यू वाटिका ने ही दिया। 1791 में वेस्टइण्डीज़ में ब्रेड–फ्रूट के प्रवेश का श्रये इस वाटिका को ही है। अनन्नास, चाय, कोको, कहवा, कोकेन, क्वीनीन और अनके प्रकार की लकड़ियाँ देश देशान्तरों में इस वाटिका के प्रोत्साहन से ही फैलाई गयीं। भारतवर्ष में सिंकोना की विस्तृत खेती भी क्यू वाटिका की ऋणी है। लंका और मलाया प्रायद्वीप में रबड़ का प्रदेश भी इसी के कारण हुआ। सन् 1876 में क्यू से ही इन पौधों का प्रथम पार्सल इन स्थानों को किया गया था। इस प्रकार समस्त संसार पर क्यू–वाटिका का ;ण है।

इस बाग की प्रधानता

क्यू बाग लगभग तीन सौ वर्ष पुराना है। 17वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में क्यू–घर और वाटिका सर हेनरी केपेल के अधिकार में थी। इन सज्जन में इस वाटिका में फल–वृक्षों का संग्रह किया था। सेम्युअल मालीनियो नामक एक ज्योतिषी ने इस स्थान को वेधशाला में परिवर्तित कर दिया और वहाँ एक दूरदर्शक यंत्र लगाया। इस वेध–शाला में डाक्टर ब्रेडले ने महत्वपूर्ण खोजें की। लेडी मालीनियो की मृत्यु पर समस्त जायदाद उस समय के प्रिन्स आव् वेल्स फ्रेडरिक के नाम कर दी गयी। सन् 1759 में सैक्सगाथा की राजकुमारी अगस्ता ने (तृतीय जार्ज की माँ) 9 एकड़ भूमि में एक बाग लगाना आरम्भ किया। इसके बाद उसके लड़के ने रिचमाण्ड लॉज और क्यू–गृह दोनों की जायदादें मिला दीं। ये ही अब क्यू–गार्डन के नाम से प्रसिद्ध हैं। तृतीय जार्ज को पौधों के एकत्रित करने का विशेष शौक था। देश देशान्तरों में उसने लोगों को भेजकर पौधों का संकलन कराया। रानी विक्टोरिया के राज्यकाल के आरम्भ में इस वाटिका को कोई प्रोत्साहन न मिला, पर जनता के

विरोध करने पर यह बाद को जनता को सौंप दिया गया। इस समय वह कृषि और मीन[1] विभाग के मंत्री के अधिकार में हैं।

सन् 1841 में बाग का क्षेत्रफल 15 एकड़ था और जबसे यह सर्व साधारण को इस बाग में आने की अनुमति मिली, पहले वर्ष 9174 दर्शक यहाँ आये। पर अब तो इसका क्षेत्रफल 288 एकड़ है। आजकल यहाँ वनस्पतियों से संबन्ध रखनेवाला एक बड़ा पुस्तकालय भी है जिसमें 40000 से अधिक पुस्तकें हैं।

---

1. मत्स्य, मछली

फल और शाक–संरक्षण*

श्रीमती कमला सद्गोपाल बी.ए.

फल और शाक–संरक्षण कलाका ज्ञान हिन्दुस्तानमें हजारों वर्षोंसे आर्य महिलाओंको मालूम है; किन्तु इस कलाका उपयोग विविध फलों और शाक इत्यादिके अचार चटनी और मुरब्बों तकही सीमित रहा।

बीसवीं सदीकी पाश्चात्य सभ्यताके प्रभावसे जहाँ हमारे देशके राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रोंमें कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं, वहां उसके साथही साथ हम लोगोंके रहन–सहन, वेश–भूषा और खान–पानमें भी कई परिवर्तन हो चुके हैं। आज हमारे घरोंमें भी डिब्बाबन्द तरकारियों और फलोंका उपयोग इस तेजीसे बढ़ रहा है कि विदेशोंसे ऐसे फल और शाक लाखों रुपयोंके मूल्यके मंगवाए जाते हैं। थोड़ेही वर्षोंसे कुछ लोगोंका ध्यान इस धन्धेको भारतवर्षमें व्यवसायके रूपमें संगठित करनेकी ओर खिंचा है, और कई कारखाने भी इस कामके लिए खुल गये हैं। हमारा देश भी विविध प्रकारके फलों और शाकोंसे इतना परिपूर्ण है कि थोड़े–से वैज्ञानिक प्रयत्नसे ही विविध प्रकारके स्वादिष्ट खाद्य–पदार्थ बनाए जा सकते हैं।

ताजे फल, शाक और अन्य खाद्य–पदार्थ बहुत देर तक अच्छी अवस्थामें नहीं। रखे जा सकते, क्योंकि वायुमण्डल तथा अन्य प्रभावोंके कारण इन पदार्थोंमें कई प्रकारके विकार उत्पन्न हो जाते हैं। वैज्ञानिकोंको कई प्रकारके प्रयोगों और सतत परिश्रमके पश्चात् यह विदित हुआ कि कुछ जीवाणु (micro-organisms) ऐसे हैं, जो इन खाद्य–पदार्थोंके विकारके मूल कारण हैं। ये जीवाणु इतने सूक्ष्मशरीरी होते हैं। कि खुर्दबीनके बिना इनको देखना कठिन है। यदि खाद्य–पदार्थोंको रखनेपर अवस्थाएं अनुकूल हों, तो इनकी वृद्धि बहुत शीघ्र होती है। खाद्य–पदार्थ और जीवाणुओंमें घोर संघर्ष पाया जाता है। यदि फल और शाक जलवियोजित (dehydrate) करके रखे जायें, तो उनके बिगड़नेका भय कमहो जाता है, क्योंकि वैज्ञानिकोंका अनुमान यह है कि निर्जलीकरण (dehydration) द्वारा इन जीवाणुओंका जड़से नाशहो जाता है और इनकी वृद्धिकी कोई सम्भावना नहीं रह जाती।

साधारणतया जीवाणु दो प्रकारके होते हैं :– फंजाई (Fungi) और ऐल्जी (Algae)। साधारण वृक्ष संसारमें पाये जाने वाला क्लोरोफिल (Chlorophyll) नामका हरा पदार्थ फंजाईमें नहीं रहता और इसी कारण इसमें जड़, फूल और पत्ते भी नहीं होते। फल और शाक–संरक्षणके लिए फंजाईको जानना आवश्यक है।

फंजाई मुख्यतया दो प्रकारकी होती है–संवर्द्धक (Budding) फंजाई और जननशील (थ्येपवद) फंजाई। इन दो मुख्य भागोंके भी आगे निम्नलिखित प्रकार होते हैं:–

* *विशाल भारत*, जून 1939

संवर्धक (Budding) फंजाई :

1. मुख्य यीस्ट (True yeast)
2. तत्सम यीस्ट (Psuedo yeast)
3. मोल्ड (Molds)

जननशील (Fission) फंजाई :

1. बैक्टीरिया (Bacteria)
2. कौकेशी (Coccaceae)

इन मुख्य श्रेणियोंके भी कई प्रकार हैं; परन्तु हमें इतने विस्तारकी कोई आवश्यकता नहीं है।

मोल्ड (Molds) नामक जीवाणु तरकारियों और फलोंके लिए अधिक हानिकारक होते हैं। ये भी इतने सूक्ष्म होते हैं कि सूक्ष्मदर्शकीय यन्त्रके बिना इनको देखना कठिन है। जब इनकी वृद्धि होने लगती है, तो उस समय ये नरम और सफेद होते हैं, और सूक्ष्मदर्शकीय यन्त्रसे ऐसा जान पड़ता है, मानो किसी सूक्ष्म सूत्रका जाल बिछा हुआ है। बड़ेहो जाने पर ये जीवाणु नीले, पीले और खाकी रंगके भी होते हैं। मोल्डकी वृद्धिके लिए फल शर्कराकी अधिकता और अम्ल (Acid) की वर्तमानता अधिक अनुकूल होती है। 15° से 25° C तापक्रमपर इनकी वृद्धि बहुत जल्द होती है; परन्तु 35° से 37° C तापक्रमपर वृद्धि धीरे–धीरे होती है। ताजे फल, विशेषकर अंगूरके रस, अनाज (विशेष तौरपर जौ और चावल), मुरब्बे और चीनीके बने हुए घोलोंके लिए ये बहुत हानिकारक होते हैं। इनमेंसे बहुत दुर्गन्ध आती है, इसीलिए फल और शाकके बिगड़नेकी सम्भावना रहती है।

मुख्य यीस्ट (True yeasts) नामक जीवाणुओंकी वृद्धि जीवित सेलों द्वारा होती है। मुख्य यीस्ट (True yeasts) और तत्सम यीस्ट (Psuedo yeast) में मुख्य भेद यही है कि मुख्य यीस्ट किण्वीकरण (fermentation) के लिए आवश्यक हैं, इसलिए ये लाभप्रद होते हैं। इसके विपरीत तत्सम यीस्ट हानिकारक होते हैं।

शराब, फलोंके रस और सिरका इत्यादिका किण्वीकरण यीस्ट द्वाराही किया जाता है। सूक्ष्मदर्शकीय यन्त्रके बिना इनको भी देखना कठिन है; परन्तु जब बहुत–से जीवाणु इकट्ठेहो जाते हैं, तब ये सूक्ष्मदर्शकीय यन्त्र बिना भी देखे जा सकते हैं। इनकी वृद्धि बहुत जल्द होती है। साधारणतया एकही सप्ताहके भीतर किण्वीकरण पूराहो जाता है। चीनीके द्रव और फलोंके रसको शीघ्र किणिवत करनेमें ये यीस्टही सहायक होते हैं।

इन जीवाणुओंके लिए अधिक आर्द्रता और 10° से 30° C तापक्रमकी आवश्यकता होती है। यीस्टकी वृद्धिके आंरभमें शर्करायुक्त द्रवोंके उपर सफेद रंगका धुंधलापन आने लगता है। ज्यों–ज्यों इनकी वृद्धि होती जायगी, त्यों त्यों द्रवके भीतर गैससी निकलनी आरम्भ होती है। उसके पश्चात द्रवकी पृष्ठभूमिके ऊपर फेन–सा इकट्ठा होता है और तब किण्वित होनेकी तेज गन्ध आने लगती है। जब द्रव पूर्णतया किण्वितहो जाता है, तब चीनीके स्थानपर अलकोहलकी गन्ध आने लगती है।

फलों और शाकोंके संरक्षरणके लिए इनकी वृद्धि सर्वथा अवांछनीय होती है। ये जीवाणु अधिक छोटे और अनियमित भी होते हैं और आकारमें एक–जैसे नहीं होते।

बैक्टीरिया नामक जीवाणु स्थिर रूपसे काम करते हैं। ये कई प्रकारके होते हैं। गन्नेके रस अथवा फलोंके रसोंका सिरका बनानेमें यही जीवाणु खमीरका काम देते हैं। आकार और परिमाणमें

ये छोटे होते हैं। जो बैक्टीरिया खट्टे दूधके अम्लमें पैदा होते हैं, वे अधिकतया अस्थिर होते हैं। इनके गुण भिन्न–भिन्न होते हैं। कई बैक्टीरियाके जीवाणु तो 60° तापक्रम तक भी जीवित रहते हैं और कई 37° C तापक्रममें ही पदार्थोंको विकृत करनेमें असमर्थहो जाते हैं।

काकेसी नामक जीवाणु आकारमें गोल होते हैं। ये शाकों और फलोंके रस इत्यादिके लिए हानिकारक होते हैं।

उपरिलिखित जीवाणुही खाद्य–पदार्थके विकारणके मुख्य कारण हैं। संरक्षणके लिए फल और शाकको इन जीवाणुओंके आक्रमणसे बचाए रखना अत्यावश्यक है। इसलिए फल और शाकको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर भेजते समय बहुत ध्यानसे बक्सोंमें बन्द करनेकी आवश्यकता होती है, जिससे हाथों या बक्सोंके साथ लगनेसे फल और शाकपर दाग न पड़ जायें। ये दाग इन जीवाणुओंकी वृद्धिमें सहायक होते हैं। कम तापक्रमपर खाद्य–पदार्थोंको रखनेसे जीवाणुओंका यद्यपि जड़से नाश नहीं होता, तो भी कुछ समयके लिए उनकी वृद्धि रुक जाती है। आर्द्रतामें ये भी जल्द फलते–फूलते हैं, इसलिए पदार्थोंके संरक्षणके लिए उन्हें आर्द्रतासे बचाए रखना आवश्यक है।

कई बार फूल और शाकको इन जीवाणुओंसे सुरक्षित रखनेके लिए नमक और चीनीका भी उपयोग किया जाता है; परन्तु इन पदार्थोंका प्रभाव अल्पकालके लिए होता है। कम तापक्रमकी तरह गर्मी भी इन जीवाणुओंका नाश नहींकर सकती; परन्तु उनकी वृद्धि कम करनेमें अवश्य सहायता देती है।

कुछ फलोंको वायुसे बचाए रखना भी अत्यावश्यक होता है, तो उनके पूतिगन्धि होनेका भय रहता है। कुछ किण्वित पदार्थोंको वायुसे बचाकर उन्हें कई वर्षों तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

वैज्ञानिक अनुसन्धानोंसे यह सिद्धहो गया है कि फल और शाक–संरक्षणके लिए खाद्य–पदार्थोंको उपरिलिखित जीवाणुओंसे बचाए रखना आवश्यक है। इसलिए खाद्य–पदार्थोंको इन जीवाणुओंसे बचानेके लिए विविध विधियां सोची जाने लगी है।

अठारहवीं शताब्दीके मध्यसे लेकर उन्नीसवीं शताब्दीके मध्य तक वैज्ञानिकोंका जीवाणुओंकी स्वयम्भू उत्पत्तिपर बहुत वाद–विवाद होता रहा। ये जीवाणु स्वयंही किस प्रकार खाद्य–पदार्थोंमें पैदा होते हैं और फल तथा शाक–संरक्षणके लिए इनका नाश कैसे किया जाना चाहिए–ये बातें उस समय सोची जाने लगीं।

सन् 1747 ई. में नीडहम (Needham) नामक एक अंगरेज वैज्ञानिकने मांसको उबालकर एक फ्लास्कमें वायुरोधन (air-tight) करके बन्दकर दिया। एक सप्ताहके पश्चात् फलास्क खोलनेपर उसने मांसके ऊपर लाखोंही जीवाणु पाये।

सन् 1765 ई. में सबसे पहले स्पालनजानी (Spalanzani) ने यह सिद्ध करके दिखा दिया कि खाद्य–पदार्थ संरक्षण गरम करनेसे भी हो सकता है।

यद्यपि फल और शाक–संरक्षणके लिए वैज्ञानिकोंने कई प्रयोग और प्रयत्न किए; परन्तु इस व्यवसायका मुख्य श्रेय निकोलस एपर्ट (NicholasAppert) को ही प्राप्त है।

नेपोलियन बोनापार्टने अपनी जल और स्थल सेनाओंके लिए फल और शाक–संरक्षण आवश्यक समझा, क्योंकि युद्धके दिनोंमें ताजा फल शाक इतनी बड़ी संख्यामें दूरसे से मंगवाना कठिन था, और फिर फल और शाक ताजा होनेके कारण आधेसे अधिक रास्तेमें ही खराब हो जाते थे। इसलिए युद्धके समय फल और शाककी समस्या उनके संरक्षणके अतिरिक्त किसी और विधि दूर न हो सकती थी।

नेपोलियनने सन् 1795 में यह घोषणाकी कि जो मनुष्य फल और शाक–संरक्षणके लिए कोई उत्तम रीति निकालेगा, उसे 12,000 फ्रैंकका पारितोषिक दिया जायेगा। निकोलस रपर्टकी

रुचि पहलेसे ही खाद्य–पदार्थके संरक्षणकी ओर बहुत थी। इस पारितोषिकको पानेके लिए उसने 15 वर्ष तक बहुत परिश्रम किया।

1804 ई. में वह पहली बार कांचके बोतलोंमें फल और शाकको सुरक्षित रख सकनेमें सफल हुआ। उसके पश्चात् भी वह 7 वर्ष तक इसीपर निरन्तर प्रयोग करता रहा। अन्तमें जब अपने प्रयोगसें उसे पूरा सन्तोष हो गया, तो उसने सन् 1810 में अपने परिणामकी घोषणाकी और 12,000 फैंकका पारितोषिक पानेमें सफल हुआ।

एपर्टकी फल–संरक्षणकी मुख्य विधि यह थी कि कांचकी बोतलमें खाद्य–पदार्थ डालकर ऊपरसे कार्क लगा दिया जाय। उसके पश्चात् बोतलको पानीमें रखकर पानीको आवश्यक समय तक उबाला जाय। फिर बोतलको पानीमें से निकालकर कार्कको अच्छी तरह बन्दकर दिया जाय, ताकि बाहरकी वायु भीतर न जा सके। उसका विश्वास यह था कि बाहरकी वायु द्वाराही इन जीवाणुओंकी उत्पत्ति होती है, और ये ही खाद्य–पदार्थके विकारका मूल कारण हैं। भीतरी वायु गर्म हो जानेपर हानिकारक नहीं रहती।

एपर्ट को तो निःसंक्रामक विधि (Sterilization) का अच्छी तरह ज्ञान न था; परन्तु निःसंक्रामण उपरिलिखित एपर्ट वाली विधिसे ही किया जाता है। निःसंक्रामणसे हमारा तात्पर्य खाद्य–पदार्थमें जीवाणुओंका तापसे नाश करना है। फल और शाक–संरक्षणके लिए पदार्थोंको इस प्रकारसे मुद्रित करना आवश्यक है, ताकि कोई भी जीवाणु दुबारा भीतर न जा सके।

खाद्य–पदार्थोंके द्रवण मुद्रित (Hermetically sealed) डिब्बों को तापसे निःसंक्रामक करनेको डिब्बाबन्दी कहते हैं। निकोलस एपर्टकी विधि सफलहो जानेके कारण चारों ओर प्रसिद्धहो गई,और उसका चलाया हुआ डिब्बाबन्दीका कारखाना आज तक फ्रांसमें सर्वोत्तम पदार्थोंके लिए विख्यात है।

हिन्दुस्तानमें फल–संरक्षणका सिद्धान्त लोगोंको प्राचीनकालसे ही विदित है; किन्तु अधिकतया फल और शाकका संरक्षण अचार, चटनी, शरबत, और मुरब्बे रूपमें ही हुआ करता था, जो चिरकाल तक उत्तम दशामें रखा जा सकता था। महेन–जो–दारो, हरप्पा तथा नालन्दा इत्यादि प्राचीन स्थानोंकी खुदाईसे भी यह पता चला है कि उस कालके लोगोंमें ऐसे पदार्थोंका खूब चलन था।

यद्यपि फल और शाक–संरक्षणके सिद्धान्त प्राचीन भारतीयोंको विदित थे, तो भी डिब्बाबन्दीके व्यवसायसे वे अनभिज्ञ थे। उसके कई एक मुख्य कारण थेः–

सर्वप्रथम लोग देहातोंमें रहते थे। खेती–बारीके काम स्वयं करते थे। नाज, फल और शाक इत्यादि उनकी आवश्यकतासे अधिक उनको मिल जाया करते थे, इसलिए फल और शाकको डिब्बोंमें बन्द करके किसी और आवश्यक समयके लिए चिरकाल तक रखना, उनके ध्यानमें आना कठिन था।

दूसरे, आधुनिक वैज्ञाानिक साधन भी उनके पास कमही थे। पाश्चात्य सभ्यताके साथही साथ हमारे देशमें डिब्बाबन्द फलोंकी मांग भी बढ़ने लगी। रेल और सड़कें इत्यादि बन जानेके कारण एक स्थानके खाद्य–पदार्थ दूसरे स्थानोंपर भेजे जाने लगे। ताजे फलोंके रास्तेमें ही खराब हो जानेका भय रहता था, इसलिए डिब्बाबन्द संरक्षित पदार्थही सर्वत्र इस मांगको पूराकर सकते थे।

बीस वर्ष पूर्व तक हिन्दुस्तानमें फल और शाक संरक्षणका कोई भी कारखाना खुला न था। स्वदेशीके प्रचारके साथ लोगोंको विदेशी वस्तुओंके बहिष्कारकी जरूरत सूझी। पाश्चात्य शिक्षाके प्रसारसे लोगोंके वैज्ञानिक अनुभव भी बढ़ेने लगे। कई स्वदेशी कारखानोंके अतिरिक्त हिन्दुस्तानमें दो ऐसी बड़ी संस्थाएं भी हैं, जो फल और शाक–संरक्षणमें शिक्षा देनेके लिए उत्तम मानी जाती हैं। एक तो पूनामें डाक्टर चीमाके अधीन और दूसरी लायलपुरमें प्रो. लालसिंहके अधीन है। लायलपुर

वाली संस्था, प्रो. लालसिंहके अथक परिश्रमके कारण, वास्तवमें बहुत प्रशंसनीय कार्यकर रही है। डिब्बोंका बनाना अभी हिन्दुस्तानमें आरम्भ नहीं हुआ; परन्तु उसके शीघ्रही आरम्भ होनेकी सम्भावना है।

प्राचीन कालमें विदेशमें भी डिब्बे हाथसे ही बनाए जाते थे; परन्तु उन्नीसवीं सदीसे यान्त्रिक उन्नतिके कारण डिब्बे भी मशीनों द्वारा बनाए जाने लगे हैं। ये डिब्बे टिनकी चादरके होते हैं, जिनमें ९८ प्रतिशत लोहा और दो प्रतिशत टिन होता है। इन डिब्बोंके भीतर साधारण लाखका पालिश होना आवश्यक है, नहीं तो कई प्रकारके फलों और शाकोंके खराब हो जानेका भय रहता है।

कागज़*

रामदास तिवारी, एम. एस–सी.

वर्तमान सभ्यता में कागज का स्थान बहुत ऊँचा है। शिक्षित तथा अशिक्षित सभी व्यक्तियों को किसी न किसी रूप में कागज का प्रयोग करना पड़ता है। अतः हमारे लिए यह जानना कि रासायनिक दृष्टिकोण से कागज क्या है और किस प्रकार बनाया जाता है, बहुत ही आवश्यक है।

यदि आप प्राचीन समय के किसी शब्द–कोष को उठाकर देखें तो उसमें कागज का मतलब यह लिखा होगा कि यह एक पदार्थ है जो सूत या लिनेन के चिथड़ों से बनाया जाता है, परन्तु वर्तमान समय में सस्ते साहित्य की उन्नति के साथ ही साथ कागज का प्रयोग बढ़ता गया और यह परिभाषा भी बदल गई। आजकल तो सूत का प्रयोग बहुत ही कम होता है और अधिकांश में कोई भी लकड़ी जिसमें रेशे हों, कागज बनाने के काम में लाई जाती है। ज्यादातर लकड़ी की लुगदी, स्पार्टो घास, भावर घास तथा भूसे का प्रयोग होता है।

साधारण कागज जो अखबार छापने के लिये, किताबों पर चढ़ाने तथा किताबें बांधने में आवश्यक होते हैं, यन्त्रों द्वारा बनाई हुई लुगदी से बनाये जाते हैं। यह चीड़ तथा अन्य मुलायम लकड़ियों को पानी के साथ कुचल कर तथा पीसकर बनाई जाती है। इस लुगदी में उस लकड़ी का जिससे वह बनी होती है लिगनोसेल्यूलोज होता है जो लिगनिन तथा सेल्यूलोज का मिश्रण होता है। इन दोनों पदार्थों के अलग न हो सकने के कारण यह रंगहीन नहीं किया जा सकता तथा कागज समय के साथ पीला पड़ता जाता है। अतः इस प्रकार से बना हुआ कागज किताबें छपाने तथा स्थाई रूप का अन्य काम करने के लिए बेकार है।

अच्छा कागज बनाने के लिये रासायनिक लुगदी का प्रयोग होता है। इस लुगदी में शुद्ध सेल्यूलोज होता है और लिगनिन का अंश बिलकुल नहीं रह जाता। इसको बनाने के लिये लकड़ी के छोटे–छोटे टुकड़े या बुरादे को लेकर कैलशियम बाई सलफाइट, कास्टिक सोडा, या कैलसियम बाई सलफाइट तथा सोडियम सलफाइट के मिश्रण के साथ उँचे दबाव पर रासायनिक क्रिया करते हैं। इस क्रिया से लिगनिन कैल्सियम बाई सल्फाइट या कास्टिक सोडा से मिल कर एक पदार्थ बनाता है जो पानी में घुलनशील है। इस प्रकार अलग किया जा सकता है और इस प्रकार सेल्यूलोज का शुद्ध रूप रह जाता है। इसके पश्चात् इसको धोकर ब्लीचिंग पाउडर या सोडियम हाइपोक्लोराइड की सहायता से रंगहीन किया जाता है। लुगदी जिप्सम या मिट्टी के साथ मिलाने से एक मजबूत रूप में आ जाती है। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हमें कागज पर स्याही से लिखना है और स्याही कागज पर फैलना न चाहिए। अतः इसके साथ रोजिन, साबुन तथा फिटकरी मिलाते हैं। इस प्रकार कागज के ऊपर एल्यूमीनियम रेजिनेट की एक सतह बन जाती है

* *विज्ञान*, दिसम्बर 1939

और स्याही नहीं फैलती। इस क्रिया को साइजिंग कहते हैं। सतह चिकनी करने के लिए कैसीन का भी उपयोग किया जाता है जो कि दूध फाड़ कर बनाई जाती है।

लुगदी को कूट–कूट कर दबाव के द्वारा तावों में बनाते हैं और फिर इसे गर्म रोलरों के बीच से निकालते हैं जिससे यह सूख जाते हैं। इसके पश्चात् वे पालिश करने वाले सिलिंडरों के बीच से निकाले जाते हैं और इस प्रकार कागज बन कर तैयार हो जाता है।

हमारे भारतवर्ष में कागज बनाने के लिए बहुत ही बड़ा क्षेत्र है। यहां अनेक प्रकार की लकड़ियां तथा घासें पैदा होती हैं जिनका प्रयोग हो सकता है। इन पदार्थों की रासायनिक परीक्षा करने से मालूम हुआ है कि इनसे बहुत ही अच्छा कागज बन सकता है। इतना होने पर भी हमारे यहां के कारखाने इतना कागज नहीं बना सकते कि हम अपना काम स्वयं चला सकें। हमें काफी कागज बाहर से मंगाना पड़ता है। यदि हमारे यहां के कारखाने यहां की पैदा होने वाली वस्तुओं का ठीक उपयोग करें तो हमारे यहां बहुत अच्छा तथा सस्ता कागज बनाया जा सकता है और काफी रुपया बाहर जाने से बचाया जा सकता है।

तपस्विनी मेडम क्यूरी*

बनारसीदास चतुर्वेदी

"मई 7, 1906

मेरे पीरी मैं निरन्तर तुम्हारा ही ध्यान करती रहती हूं। सिर फटा जाता है, अक़्ल हैरान है। अब तुम्हारे बिना–अपने जीवन–सखा पतिदेवके बिना–दिन काटने होंगे, तुम्हारे दर्शन असम्भव होंगे, अब अपनी मुस्कराहट किसके सामने प्रकट करूंगी, ये बातें मेरी समझमें नहीं आतीं।

पिछले दो दिनोंसे वृक्षोंमें नवीन कोंपल आ गई है, बगीचे ने सुन्दर रूप धारणकर लिया है। आज अपनी दोनों बालिकाओंको उपवनमें देखा। अगर तुम आज होते, तो अपनी लड़कियोकी सुन्दरतापर मुग्ध हो जाते और मुझे बुलाकर दिखलाते कि अमुक–अमुक पौधोंमें फूल फूल रहे हैं। आज तुम्हारी समाधिपर पीरी क्यूरी ये शब्द क्यों लिखे गये हैं। आज प्राकृतिक सौन्दर्य मेरे मनके लिए कष्टदायक हो रहा है और मुंहपर बुरका डालकर उसे भीतरसे देख रही हूं।

मई 11–

मेरे पीरी, आज नींद कुछ ठीक आई, चित्त थोड़ा–सा शान्त था। अभी उठे–उठे पन्द्रह मिनट भी नहीं हुए और अब मेरा मन जंगली जानवरकी तरह चिल्लानेको होता है।

मई 14–

मेरे छोटे पीरी! Laburnum पौधेमें फूल आ गये हैं और दूसरे पौधे भी पुष्पित होनेको हैं। तुम्हें कितनी खुशी इन पौधोंको देखकर होती; पर न अब मुझे सूरजकी धूप पसन्द है और न फूलोंका खिलना। उनके दर्शन मात्रसे मुझे कष्ट होता है। अब मुझे अन्धकार प्रिय है–वैसा ही अन्धकार, जैसा तुम्हारी मृत्युके दिन था। यदि मैं अच्छे मौसमको घृणा नहीं करने लगी, तो इसका कारण यह है कि मेरी प्यारी लड़कियोंके लिए सुन्दर ऋतुकी आवश्यकता है।

मई 22–

आज सारे दिन प्रयोगशालामें काम करती रही। और कर ही क्या सकती हूं ; यही अपनी प्रयोगशालामें अन्य स्थानोंकी अपेक्षा मेरी तबीयत ठीक रहती है। सम्भवतः वैज्ञानिक कार्यके सिवा और किसी बातसे मुझे हार्दिक प्रसन्नता नहीं हो सकती; पर वैज्ञानिक अनुसंधानकी सफलतासे भी मुझे आनन्द नहीं मिलेगा, क्योंकि तुम्हारे बिना उस आनन्दका अनुभव मेरे लिए असम्भव होगा।

जून 10–

हर चीज दुःखदायी और अन्धकारमय है। हा! ज़िन्दगीके गोरखधन्धेंसे मुझे इतनी भी फुर्सत नहीं मिलती कि मैं शन्तिपूर्वक अपने पीरीका ध्यानकर सकूं।"

---

* *विशाल भारत*, जनवरी 1940

ये हैं वैज्ञानिक–जगतकी उस अमर साधिका मेडम क्यूरीकी डायरीके कुछ पृष्ठ, जो उन्होंने अपने पतिके स्वर्गवासके बाद लिखे थे। श्री पीरी क्यूरीका देहान्त 16 अप्रैल 1906 को एक घोडागाडीसे पिचकरहो गया था।

जब हम मेडम क्यूरी जीवन–चरितके इस अध्यायपर पहुंचे, तो आगे बढ़ना कठिन हो गया। रेडियम देखनेका सौभाग्य हमें नहीं मिला और न हम उसके महत्वसे ही भली भांति परिचित हैं। भौतिक विज्ञान अथवा रसायन–शास्त्रके विषयमें, जिनपर मेडम क्यूरीको दो बार नोबेल–प्राइज मिली थी, हमारा ज्ञान शून्यके बराबर है; पर उपर्युक्त वाक्योंने हमारे अन्तस्तलको झकझोर डाला।

आज उसी अमर साधिकाकी समाधिपर श्रद्धांजलिके रूपमें चार आंसू बहानेका विचार है।

मां का स्नेह:–

"मन्या सो गई क्या?"

नहीं अम्मा, अभी जागती हूँ –सिर हिलाते हुए छोटी–सी बच्चीने कहा। प्रेमी मां अपनी सबसे छोटी सन्तानका सिर सहलाने लगी। उसके एक लड़का था और चार लड़कियां। मन्या सबसे छोटी थी। मां अपने बच्चोंका कभी चुम्बन नहीं करती थी। बात यह थी कि उसे तपेदिक हो गई थी और इसलिए छूतसे बचानेके लिए वह बालक–बालिकाओंसे अलग ही रहती थी। मन्याको इस बातका पता नहीं था, वह मांसे चिपटी रहना चाहती थी।

मेरी मन्या! मुझे जाने दे, बहुत काम करना है।

अम्मा, मैं तो तेरे पास बैठकर पढ़ूंगी।

बेटी, वहां बगीचेमें पढ़, देख तो कैसा सुन्दर दिन है!

चार वर्ष की–

(सन् 1871)

बड़ी बहन ब्रोन्या वर्णमाला पढ़ रही थी। अकेले–अकेले पढ़ते वह तंग आ गई। इसलिए उसे गुरु बननेकी सूझी। उसने अपनी छोटी बहन मन्याको वर्णमाला पढ़ाना शुरू किया। मन्या बड़ी होशियार थी, थोंड़े दिनोंमें ही उसने सारी वर्णमाला सीख ली। माता–पिताको इस बातका कुछ भी पता नहीं था। एक दिन उन्होंने ब्रोन्यासे एक वाक्य पढ़नेके लिए कहा। वह बहुत धीरे–धीरे पढ़ने लगी। मन्याका धीरज जाता रहा, उसने किताब बड़ी बहनके हाथसे छीन ली और खटाकसे पहला वाक्य पढ़ डाला। माता–पिता दंग रह गये। सन्नाटा छा गया। मन्या समझी कि अच्छा खेल है, इसलिए पढ़ती चली गई; पर जब उसने देखा कि माता–पिता और बहनें सभी आश्चर्य–चकित हैं, तो बेचारी डरके मारे सकपका गई। पहले तो उसने माता–पिताके चेहरेकी ओर देखा और फिर बड़ी बहनपर निगाह डाली, उसकी जबान लड़खड़ा गई, फिर बिसूरती सी सूरत बनी और उसने रोना शुरू कर दिया! माफ करो अम्मा! मेरा क़सूर नहीं, ब्रोन्याका का कोई क़सूर नहीं, किताब आसान थी, इसलिए पढ़ गई।

मन्या समझी कि अवश्यही इस अपराधके लिए–पढ़ना सीखनेके लिए–हमें कोई सजा मिलेगी!

मन्या (मेडम–क्यूरी) के पिता स्क्लोडोवस्की भौतिक विज्ञानके प्रोफेसर थे और स्कूलोंके डिप्टी–इन्सपेक्टर। उनके चार लड़कियां थीं, जोशिया, ब्रोन्या, हेला और मन्या, और एक लड़का जोसफ।

ज़ोशिया सबसे बड़ी थी, और वह मन्याको बहुत प्यार करती थी। पांच वर्षकी मन्या इन कहानियोंको सुन–सुनकर आश्चर्य–चकित रह जाती।

बहनकी मृत्यु :–

ज़ोशियाको टाइफाइड (मोतीझला) की बीमारीहो गई थी। वह इस बीमारीको झेल नहीं सकी और उसका स्वर्गवासहो गया। मन्या ने पहली बार मृत्यु को निकट से देखा। ज़ोशिया सफेद कपड़े पहने हुए थी, चेहरा बिल्कुल सफेद था, शरीर में खून नहीं रहा था, हाथ की मुट्‌ठी बंधी हुई थी। चेहरे पर वैसी ही सुन्दरता थी। मां तो कमजोरी के कारण कब्रिस्तान तक नहीं जा सकी; पर उसकी आंखें खिड़की से दूर–दूर तक अपनी बच्ची को झांकती रहीं। पर छोटी–सी मन्या को काले कपड़े पहने हुए कब्रिस्तान तक जाना पड़ा।

वृक्षों की कथा*

प्रभा अष्ठाना, बी.ए.

एक समय था जब कि इस पृथ्वी की धरातल पर केवल जल ही जल था, जीवित पदार्थों में केवल अत्यन्त सूक्ष्म कण जो कि अणुवीक्षण यंत्र से ही देखा जा सकता था, पाया जाता था। क्रम–क्रम से इसका विकास हुआ और तब इसी ने सृष्टि को प्रथम जीवन–दान दिया। इसे प्रोटोजोआ के संसार से आगे चलकर जन्तु–जगत की उत्पत्ति हुई। उस समय से लेकर आज तक वनस्पति–जगत के कई हजार विभिन्न प्रकार के पेड़–पौधे उत्पन्न किये हैं जिनमें दो लाख किस्म से अधिक के तो फूलों के ही पौधे हैं।

समुद्री घास और इसी प्रकार के अन्य कुछ पौधे संसार की प्रारम्भिक ज्ञातव्य वनस्पतियों में से हैं। इन घासों के जो कुछ अवशेष बचे हैं उससे ज्ञात होता है कि उस समय की और आज की घास में कोई अन्तर नहीं है। इन्हीं जल–वनस्पतियों से क्रमशः स्थल–वनस्पतियों ने जन्म धारण किया। लगभग सैंतीस करोड़ वर्ष पहिले ऐसे पौधों के अवशेष पाये गये हैं जिनके तने का व्यास दो फुट का होता था। इसकी बनावट समुद्री घास की तरह ही थी परन्तु यह दलदली जमीन में उगा था। छोटे और साधारण स्थली पौधे भी उस समय थे।

लगभग बीस करोड़ वर्ष के पश्चात् पृथ्वी पर अधिक परिमाण में वनस्पतियां होने लगीं। उनमें बहुत से सुन्दर बहुपत्रक (fern-like) पौधे थे यद्यपि उनमें और आज कल के बहुपत्रक (fern-like) वृक्षों में बहुत अन्तर है। उस समय पाये जाने वाले ऐसे वृक्षों में अधिकतर घोड़े की पूंछ के आकृति के होते थे जिनकी डालियां एक–एक फुट लम्बी होती थीं। आजकल जो तीस के लगभग विभिन्न जाति के बहुपत्रक होते हैं वे बहुत छोटे होते हैं। पूरा पौधा केवल एक फुट का होता है। परन्तु दक्षिणी अमेरिका में अब भी विशालकाय तीस फुट लम्बे बहुपत्रक पाये जाते हैं।

इसी समय स्केल वृक्ष और कुछ समय बाद साल वृक्ष अधिकाधिक पाये जाने लगे। पहले प्रकार के वृक्षों की जड़ें अब पाई गई हैं। उनकी लम्बाई 114 फुट तक निकली है। इसकी डालियों पर छोटी और पतली पत्तियां होती थीं जिनके गिर जाने के बाद डाल पर बड़े–बड़े चिन्ह रह जाते थे। ऐसे भी वृक्ष थे जिन्हें आज कल के कोनिफरो या बहुपत्रक वृक्षों का पूर्वज कहा जा सकता है। ब्रिटिश म्यूजियम में एक ऐसे वृक्ष की जड़ है जिसका ब्यास पांच फुट है।

पृथ्वी के मध्यकाल में—लगभग अट्ठारह करोड़ वर्ष पहिले—जलवायु शुष्क होने लगी। उस समय एक विशेष प्रकार के ताड़ (cycad) के वृक्ष और बहुपत्रक पौधे (conifers) होते थे। धीरे–धीरे इस जाति के पेड़–पौधे समाप्त होने लगे और 34 करोड़ वर्ष पहिले बिलकुल ही लुप्त हो गये। उस समय आधुनिक काल के बहु पत्रक पौधों के समान पौधे जैसे रेड–वुड और साइप्रेस थे। यह सम्भव

---

* *विज्ञान*, दिसम्बर 1940

है कि आधुनिक कालके फूलों के पौधे उस समय से ही आरम्भ हुए हों। कुछ लोगों का कहना है कि ओस और बर्च आदि की जाति के वृक्ष सबसे पहिले हुए, परन्तु कुछ कहते हैं कि जल कमल अथवा मैगनोसिया के फूल के समान एक सुन्दर पुष्प ही सृष्टि का आदि पुष्प है।

चाहे यह जो कुछ हो पृथ्वी के मध्य–युग के अन्त में—लगभग ग्यारह करोड़ वर्ष पहिले सृष्टि में अनेक प्रकार के वृक्ष जैसे नरकुल, कमल, असली ताड़ और अन्य पतझड़ वाले वृक्ष पाये जाने लगे थे। उस समय के वृक्षों में कुछ के नाम ये हैं—बबूल, अखरोट बेन से मिलता–जुलता एक वृक्ष तथा कपूर आदि। उसी समय जन्तु–जगत में शहद की मक्खी का आविर्भाव हुआ जो एक फूल का मधु दूसरे तक पहुंचा कर बीज की स्थापना करती थी।

वृक्ष का आवागमन

पौधे जलवायु के अच्छे परिचायक हैं। अन्तिम हिमयुग के पहिले मध्य यूरोप अन्तिम बार एक उष्ण देश था। उस काल में वहां देवदार के साथ ताड़ पंखी और बलूत के साथ दालचीनी के वृक्ष भी होते थे। क्रमशः वह एक शीत प्रधान देश हो गया और चारों ओर बर्फ ही दीखने लगी। नार्वे में छः हजार फीट गहरी बर्फ जमी थी। तब वनस्पति–जगत दक्षिण की ओर चला गया। यहां तक कि सिसली में भी छोटे कद के ताड़ वृक्ष होने लगे। हिमयुग के अन्त में जब पृथ्वी फिर साफ हो गई तब वहां बर्च और स्काटलैंड के देवदार के वृक्ष होने लगे।

ईसा से 55,00–3500 वर्ष पूर्व जब ज़लवायु अधिक नम और गर्म हो गई इस देवदार के स्थान पर एक प्रकार का बलूत होने लगा। फिर कुछ समय के लिए घोर वर्षा–काल का आरम्भ हुआ और उसके बाद एक सूखाकाल आया। इस समय गेहूं, और मटर लगाये गये।

ईसा से 2000–1000 वर्ष पूर्व का काल अच्छा गर्म था और उस समय स्कैण्डिनेविया में जई और बाजरा होते थे। प्रथम लौह युग से ईसा के सम्वत् तक जलवायु फिर कम हो गई, धरातल का जल बढ़ा और पृथ्वी पर झाऊ तथा बीच के वृक्ष उगने लगे।

ईसा से एक हजार वर्ष पूर्व तक भूमध्यसागर के देशों में बलूत, देवदार और एक प्रकार का पेड़ बीच (beech) जिसकी डालियों से नाव का मस्तूल बनाया जाता है तथा एक अन्य पेड़ (birch) जिसकी टहनियों से स्कूल के लड़कों को मारने के लिए कमची बनाई जाती है तथा लार्च के पेड़ पाये जाते थे। धीरे–धीरे इनका स्थान कम उष्ण देशों में पाये जाने वाले वृक्षों जैसे बलूत, चेस्टनेट, देवदार और अंजीर आदि ने ले लिया। लोगों का कहना है कि पहिले–पहल यह वृक्ष जब कम उष्ण देशों में लगाये गये तो इनमें फल नहीं लगे। इनमें से कुछ रोमन सेनाओं के साथ–साथ उत्तरी इटली, दक्षिणी फ्रान्स, इंगलैण्ड और उत्तरी जर्मनी तक चले गये। अंगूर की बेल जिसका असली घर कैसपियन सागर के दक्षिणी तट पर है पहले एशिया माइनर से होकर बालकन में पूर्व के स्थित थ्रेस में पहुंची। होमर के समय में मदिरा सभी मनुष्यों का पेय पदार्थ था और आगे चलकर इटली अपनी मदिरा को अनाज से बदलने लगा।

उस समय भी भू–मध्यसागर पर एप्रीकॉट और चेरी के वृक्ष होते थे। जर्मनी की जलवायु केनाडा की जलवायु से मिलती थी परन्तु थोड़े ही काल पश्चात् वह अधिक गर्म हो गई और तब बन कम घने हो गये, दलदलें सूख गईं, अंगूर जिनसे मदिरा बनाई जाती थी केवल राइन नदी के आस–पास ही रह गये और गेहूं की खेती की जाने लगी।

ईसा के 500 वर्ष पश्चात् से लेकर 1100 वर्ष पश्चात् तक जलवायु में बहुत से परिवर्तन हुये। कैस्पियन सागर से लेकर ग्रीस तक के खजूर और ताड़ के वृक्ष समाप्त हो गये, उत्तरी चीन में होने वाले बांस फिर वहाँ नहीं होने लगे और अंगूर ने उत्तरी जर्मनी को छोड़ दिया। हैनोरव से लौपर

तक के प्रदेश में तापक्रम 2° श कम हो गया, परन्तु उत्तरी पूर्वी यूरोप में तापक्रम 1° श तक बढ़ गया और स्टॉकहोमु तथा आइसलैंड में जलवायु अधिक गर्म हो गई।

वृक्षों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर लगाने की प्रथा लगभग सन् 1450 से चली आ रही है। यहां तक कि 1100 ई. में ही अरब लोग नारंगी को सिसली ले आये थे। कनारी द्वीपसमूह का फ़िनिक्स नामक ताड़ का पेड़ इटली के मेरानो प्रदेश तक में पहुंच गया था और दक्षिणी सागरों का बौना ताड़ रिविरा तक में पाया जाता था। यहीं रिविरा में चीन के कुछ पेड़, आस्ट्रेलिया का एक कांटेदार वृक्ष और भारत का ताड़ सभी पाये जाते हैं। मेक्सिको का ऐगेव भी भूमध्यसागर के देशों में अधिकता से पाया जाता है।

यूरोप में प्रथम 'जीवनतरु' सन् 1526 में लगाया गया था। लगभग सन् 1770 में हंसके फ्रेडरिक द्वितीय ने चार सौ से अधिक प्रकार के विदेशी वृक्ष अपनी वाटिका में लगवाये। 1882 में सिडार का वृक्ष फ्रांस, इंगलैंड और रायनलैंड में प्रथम बार लगाया गया। इसके भी पहले एक प्रकार का चेस्टनेट, जो दक्षिण में पाया जाता था, इन देशों में बोया गया था।

श्वेत मार्गरेट का असली जन्म स्थान स्पेन है और हॉर्स चेस्टनेट का ग्रीस। मिश्र देश के संसार को करमकल्ला दिया, सूरन मध्य अफ्रीका ने, ग्लेडियोविस और दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका ने विरेनियम प्रदान किया है। उत्तरी साइबेरिया में मैलो, मध्य चीन में लार्कस्पर, विस्टीरिया और प्योनी तथा बर्मा में आडू और चमेली होना आरम्भ हुए थे। चायल से हमको स्ट्रॉबेरी और फ्यूशिया तथा मध्य अमेरिका से डेहलिया मिले। मेक्सिको की खाड़ी से लौकी और अनाज की हडसन की खाड़ी से हमको फूल मिले हैं।

मांस–भक्षी पौधे*

हिम्मतसिंह नवलखा, एम. एस–सी.

यह तो सभी जानते हैं कि जानवर पेड़–पौधों और सब्जी का भक्षण करते हैं; पर यह बहुत कम लोगों को मालूम है कि कुछ पौधे भी ऐसे हैं, जो जानवरों को खा जाते हैं। चार्ल्स डारविन के अनुसंधान के बाद जितनी ख्याति मांस–भक्षी पौधों ने पाई है, उतनी शायद ही और किसी वनस्पति–जगत् के प्राणी ने पाई होगी। पर मांस–भक्षी पौधे ज्यादा नहीं हैं। ये सबके सब दलदली भूमि में पाए जाते हैं। दलदली भूमि में नोषजन[1] की कमी होती है, और इस गैस की कमी को ये पौधे मांस खाकर पूरा करते हैं। आइये, अब इन पौधों के छोटे जीवों के शिकार करने की रीति पर कुछ दृष्टि डालें।

सबसे विख्यात शिकारी पौधा है मुखजली , जिसे अंग्रेजी में ड्रासेरा (Drocera) कहते हैं। यह पहाड़ों पर और बंगाल तथा आसाम की दलदली भूमि में बहुतायत से पाया जाता है। यह पौधा छोटा होता है। इसके पत्ते जमीन के पास उसके तने के चारों ओर गोलाई में फैले रहते हैं। इसकी जड़ें ज्यादा गहरी नहीं होतीं और तना भी बहुत छोटा होता है। इसका हर एक पत्ता गोल और लाल रंग का होता है। इस गोलाकार पत्ते के ऊपरी भाग पर बहुत से छोटे–छोटे पतले और चमकीले बाल होते हैं। ये बाल, जिन्हें अंग्रेजी में टेन्टिकल्स (Tenticles) कहते हैं, पत्ते के ही चर्म से बने होते हैं और हर एक बाल का सिरा फूला हुआ होता है। पत्ते के किनारे के बाल लम्बे होते हैं और भीतर के छोटे। ये सब बाल सिर्फ पत्ते के ऊपरी भाग पर ही होते हैं। हर बाल के ऊपरी फूले हुए भाग पर एक प्रकार का चिपचिपा तरल पदार्थ होता है। यही पदार्थ किसी छोटे जीव को फँसाने का कारण होता है। जैसे ही कोई मक्खी या अन्य कीड़ा, पतिंगा आदि इन बालों को छूता है, वह इन पर ही चिपक जाता है। जब वह जीव इन बालों में फँस जाता है, तब फौरन ही ये सब एक तरल पदार्थ देने लगते हैं और सबके सब उस प्राणी पर झुक जाते हैं। अगर जीव बाहरी बालों के छूने से पकड़ा गया हो, तो बाहरी बाल सब झुकने लगते हैं, और एक मिनट में ही उस जीव को ठीक पत्ते के बीच में ला देते हैं। जब जीव बीच में आ जाता है, तब

पत्ते के किनारे भी भीतर की ओर झुकने लगते हैं और इसके साथ ही साथ तरल पदार्थ – जो कि जीव को मारने का कारण होता है – ज्यादा मिकदार[2] में आने लगता है और जीव उसमें पूर्णतया

---

* *विशाल भारत*, जुलाई 1941
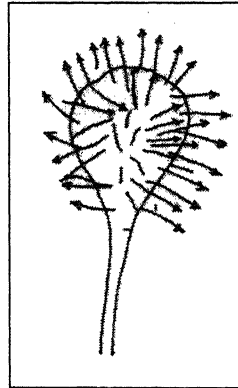
डूब जाता है। तरल पदार्थ में डूबने के कुछ ही समय बाद पत्ता उस जीव को खा जाता है। जीव को भक्षण कर लेने के बाद पत्ता और उसके बाल फिर से खुलने लगते हैं और पत्ता फिर अपने आकार को ग्रहण कर नए शिकार के लिए तैयार हो जाता है।

ड्रासेरा के पत्तों को अंडे की जिरदी, मॉस के टुकड़े आदि दिए गए और उनके बालों का मुड़ना देखा गया, पर जब काँच के टुकड़े, कागज, पत्थर आदि पत्तों पर रखे गए, तब बालों पर या पत्तों पर कोई असर नहीं हुआ। ड्रासेरा के मांस–भक्षण की रीति बड़ी विचित्र है। यह बड़े तथा छोटे कीड़ों को – जिनका आकार पत्ते से बड़ा नहीं होता – पकड़ सकता है और उनका भक्षण पांच मिनट से लगाकर कई दिन तक होता रहता है। अगर जीव छोटा हुआ, तो भक्षण जल्द समाप्त हो जाता है। जीव के बड़े होने पर यह लक्षण कभी–कभी महीने भर तक चलता है। इस पौधे में एक साथ एक या दो मक्खियों या अन्य जीवों का भक्षण होता है। पुर्तगाल और दूसरे ठंडे देशों में एक और पौधा पाया जाता है, जिसके पत्ते लम्बे और मोटे होते हैं और जिसमें 100 से भी ज्यादा मक्खियों का एक साथ भक्षण होता है। इसे अंग्रेजी में Drosophyllum कहते हैं। चूंकि यह पौधा इतनी मक्खियों को एक साथ पकड़कर खा सकता है, इसलिए पुर्तगाल के लोग इसे अपने घरों में रखते हैं और इससे मक्खियों के पकड़ने का काम लेते हैं। इसकी मक्खियों के पकड़ने की क्रिया इतनी अच्छी होती है कि इस पौधे का नाम मक्खी पकड़ने वाला पौधा, रख दिया गया है।
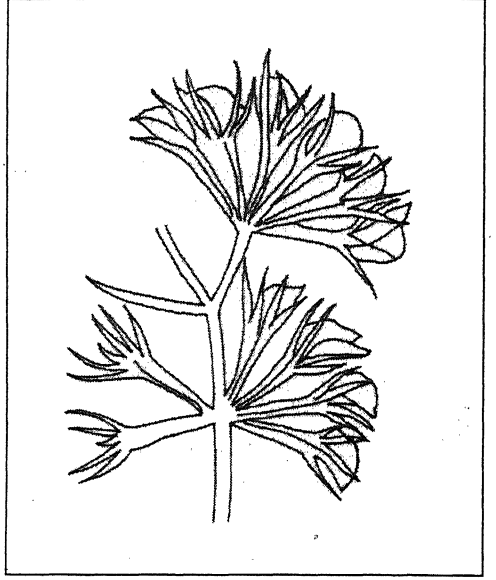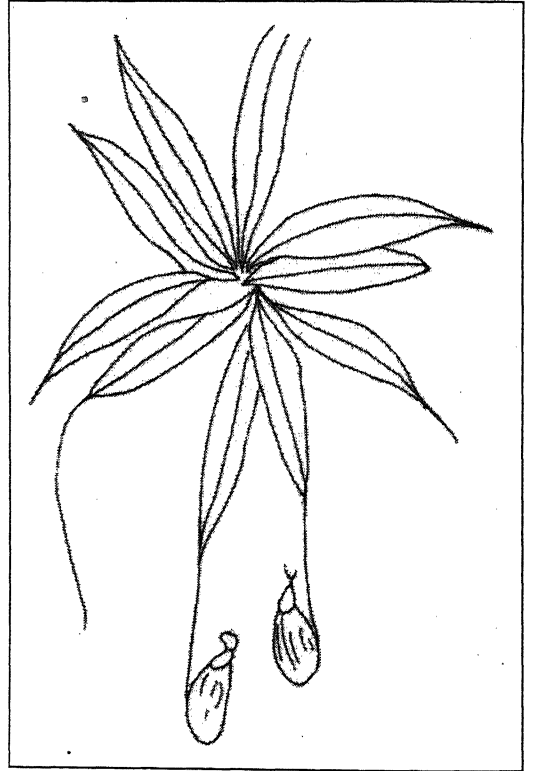
एल्ड्रोवेन्डा (Aldrovenda) में जीवों के पकड़ने की दूसरी रीति होती है। यह पौधा भी बंगाल और आसाम में पाया जाता है। एल्ड्रोवेन्डा के जड़ें नहीं होतीं और सारा पौधा पानी में डूबा रहता है– सिर्फ फूल ही पानी के बाहर निकला होता

है। इसके पत्ते गोल, छोटे और क़रीब एक–तिहाई इंच लम्बे होते हैं। पत्तों का डंठल (Petiole) पंख के आकार का होता है और ऐसा प्रतीत होता है, मानो डंठल ही पत्ता हो। पत्ते के ऊपरी भाग में सुबेधी (sensitive) बाल होते हैं और जब कोई छोटा प्राणी इनको छूता है, तब पत्ता दोनों ओर से सिकुड़कर प्राणी को अपने में बन्द कर लेता है। इस पत्ते में छोटी–छोटी कई ग्रन्थियां होती हैं, जो एक प्रकार का जहरीला रस देती हैं। जब जीव इस रस में फंस जाता है, तब वह जीवित अवस्था में बाहर नहीं आता। जीव के मरने पर पत्ता उस जीव के पदार्थ को चूस लेता है।

चींटियां, कीड़े, पतिंगे आदि छोटे जीवों के पकड़ने के और भी कई साधन हैं, जो अन्य पौधों में पाए जाते हैं। नेपेन्थीज (Nepenthes) एक अद्‌भुत तरीके से जीवों को पकड़ता है। यह गर्म देशों में पाया जाता है। मलाया में तो यह विशेष रूप से पाया जाता है। यह एक प्रकार की लता होती है और काफी लम्बी होती है। इसके पत्ते बड़े और चौड़े होते हैं। पत्तों का ऊपरी भाग धागे के आकार का बना होता है और काफी लम्बाई तक फैला होता है। जब यह धागा, जिसे टेन्ड्रिल (Tendril) कहते हैं, किसी जीव का स्पर्श करता है, तब वह नीचे की ओर झुक जाता है और सिरे पर एक छोटे घड़े की शक्ल (Pitcher) बना देता है। शेष भाग उस घड़े के मुंह पर ढक्कन बना देता है। अस्तु, घड़ा पत्ते के सिर्फ ऊपरी भाग का ही बना होता है। यह घड़ा लाल, हरे आदि रंगों से रंगा होता है। घड़े का मुंह मोटा और मजबूत होता हैं, ताकि वह हमेशा खुला रहे। इस घड़े की भीतरी दीवार मोम के समान चिकनी होती है और भीतर तले में कई छोटी–छोटी ग्रन्थियां होती हैं, जो घड़े में रस छोड़ा करती हैं। इसी रस से घड़ा करीब–करीब आधा भरा होता है। ऊपर के भाग में कुछ नुकीले नीचे की ओर मुड़े कांटे भी पाए जाते हैं। घड़े के रंग से मोहित होकर मक्खी या अन्य जीव घड़े के पास मधु की खोज में आता है
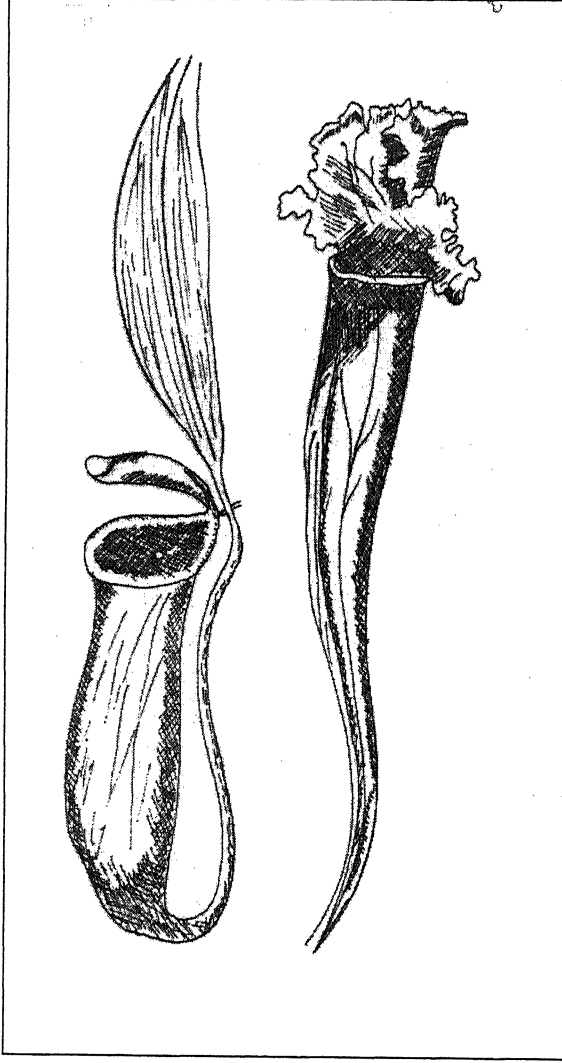
घड़े के भीतर उसकी खोज में जाता है; पर वहां पैर फिसल जाने वे वह सीधा उस रस में गिर जाता है। एक बार इस तरल पदार्थ में गिरने के बाद उस जीव का बाहर निकलना अत्यन्त कठिन हो जाता है और वह उसी रस में डूबकर मर जाता है। पौधे की ग्रन्थियां भी जीव के रस में गिरते ही और रस देने लग जाती हैं और कुछ ही समय के बाद घड़े की दीवारें उस प्राणी के पदार्थ को चूस लेती हैं। अनुसन्धान से पता चला है कि यह रस, जो ग्रन्थियां घड़े में देती हैं, ठीक हमारे पेट में पैदा होने वाले पाचक–रस के समान होता है।
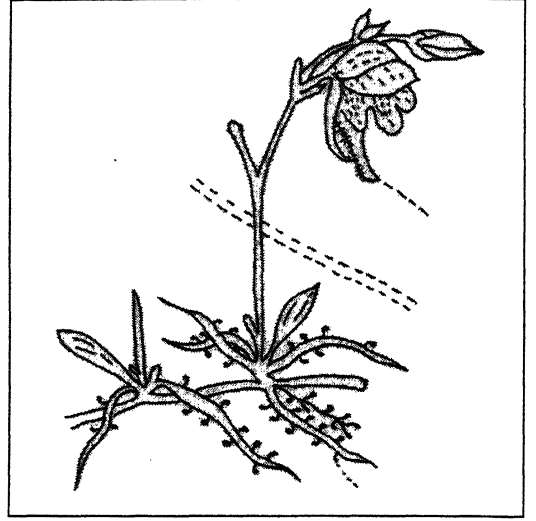
एक और पौधे के पत्ते नेपेन्थीज के पत्ते से कुछ ही भिन्न होते हैं, और वे भी इसी के समान जीवों के भक्षण की क्रिया को करते हैं। यह पौधा सेरासीनिया (Sarracenia) है। इसके पत्ते सीधे रहते हैं और कोन[3] की शक्ल होते हैं। पर मुंह के पास पत्ता पंखे के आकार में परिणत हो जाता है। इसमें भी रस होता है, जो जीवों को मारने और भक्षण करने में मदद करता है।

एक और भी दिलचस्प पौधा झाझी होता है, जिसे अंग्रेजी में यूट्रीक्यूलेरिया (Utricularia) कहते हैं। यह जमीन पर और पानी में दोनों जगह होता है। पर जीवों के पकड़ने की क्रिया को वे ही पौधे, जो पानी में होते हैं, ज्यादा अच्छी तरह से बताते हैं। उसके पत्ते व और सब भाग पानी में डूबे रहते हैं, सिर्फ फूल पानी की सतह से ऊपर निकला रहता है। इसके पत्ते छोटे और कटे हुए होते हैं। इन विभजित पत्तों की जड़ में और किनारे पर छोटे–छोटे थैले होते हैं, जिनकी शक्ल आडू के समान होती है और आकार में एक–तिहाई इंच के होते हैं। थैले के नुकीले भाग में एक छिद्र होता है। इस छिद्र में एक वाल्व लगा होता है। यह वाल्व सिर्फ अन्दर की ओर ही खुलता है और एक ओर छिद्र की मोटी दीवार से लगा रहता है। वाल्व के बाहरी ओर कुछ लम्बे बाल होते हैं। कुछ छोटे बाल छिद्र के चारों ओर भी पाए जाते हैं। यह थैला ही जीवों को पकड़ने का काम करता हैं। थैले की दीवारें मजबूत और मोटी होती हैं, ताकि पानी उनमें से छनकर न जा सके। थैले की भीतरी दीवार में बहुत–से चौकोने बाल होते हैं, जो भीतर से पानी को बाहर करते रहते हैं। जैसे ही पानी बाहर निकलता है, थैले की दीवारें सिकुड़ जाती हैं और उसमें से एक दबाव पैदा हो जाता है। कुछ देर थैला इसी स्थिति में रहता है, और जब कोई छोटा जन्तु पानी में तैरता हुआ इस थैले के पास आता है और वाल्व के बालों को छू देता है, तब वाल्व खुल जाता है और पानी एकदम थैले में
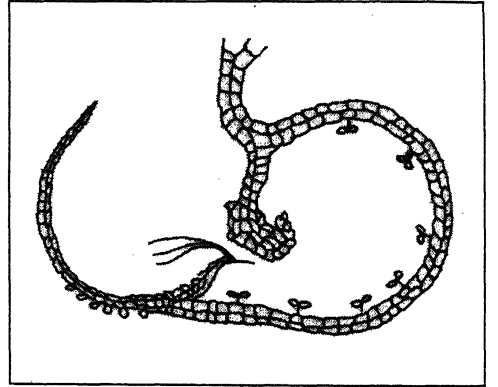
घुसता है। पानी के प्रवाह के वेग में जन्तु भी थैले में चला जाता है। पानी के घुसते ही वाल्व फिर बन्द हो जाता है और जन्तु उस थैले में ही बन्द हो जाता है। कुछ समय में उस जीव को पौधा खा लेता है।

जो भी हो, मांस–भक्षी पौधे अपने ढंग के निराले हैं। फिर भी वनस्पति–जगत् में इनकी संख्या बहुत कम है। यह खुशी की बात है कि अभी तक कोई भी ऐसा पौधा या बेल नहीं देखी गई, जो आदमियों को या अन्य बड़े जानवरों को पकड़कर खा सके। सुप्रसिद्ध अंग्रेजी–साहित्यकार श्री एच. जी. वेल्स की कहानी का पौधा, जो अपनी जड़ों से माली को पकड़कर उसका खून चूस लेता था, अभी तक पाया नहीं गया है। वास्तव में ऐसे पौधे की खोज और भी दिलचस्प और अद्भुत होगी!

---

1. नाइट्रोजन
2. मात्रा
3. Cone, शंकु

प्राचीन कवि और चिड़ियां*

कुंवर सुरेशसिंह

हमारे देशमें पक्षि–शास्त्रका अध्ययन कभी वैज्ञानिक ढंगसे नहीं हुआ, क्योंकि इस प्रकारके वैज्ञानिक अध्ययनका समय हमारे यहां नहीं आया था। पर दिन भर आकाशमें तैरने वाली इन रंगीन चिड़ियोंकी ओर हमारे साहित्यकारोंका ध्यान अवश्य गया और उन्हींके द्वारा हमें विविध प्रकारके पक्षियोंका वर्णन मिलता है।

सोलहवीं शताब्दीको हम हिन्दीका स्वर्ण–काल कह सकते हैं, जब सूर और तुलसीके भक्ति काव्यसे सारे देशका वातावरण ओतप्रोत हो गया था और जब मीराकी प्रेम कथा मरुभूमि तकही सीमित न रहकर सारे देशको प्रभावित करने लगी थी। पर उसके बाद पराजित देश जिस विलासिता और शृंगारकी गाढ़ निद्रामें सोया तथा उसे शृंगार रसकी लोरी गाकर और सुलानेके लिए हमारे शृंगारी कविगण अपना एक कालही बना गए। इन दोनोंही दो अवस्थाओंमें और गद्यके अभावमें किसी भी प्रकारके वैज्ञानिक अध्ययन और साहित्य–निर्माणकी सम्भावना नहींकी जा सकती; पर इस कालके कविगण प्रकृतिकी इन सुन्दर कृतियोंको अपनी कृतियोंमें स्थान न दें, यह भी सम्भव नहीं था। नख–शिख–वर्णनमें, प्रकृति–वर्णनमें और विरह–वर्णनमें उन्होंने हमारे कुछ पक्षियोंको अमरकर दिया है। यही नहीं, चन्द्र–चकोरका प्रेम, चातक और स्वातिका नेह, हंसका नीर–क्षीर विवेचन और चकवा–चकईकी रात्रिको विलग हो जानेकी कथा इतनी बार कवियोंने दुहराई है कि साधारण लोगोंको इन कल्पित कथाओंपर विश्वास सा होने लगता है। हंसोंके मोती चुगने और चकोरके आग खानेको बहुत–से लोग अब भी सही मानते हैं। पर इनमें सुन्दरता होते हुए भी वास्तविकता कुछ भी नहीं है।

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम' – मलूकदासका पक्षियोंका यह विश्लेषण सबसे सुन्दर है। शुक–वाटिका जैसे पिंजड़ेके लिएही पैदा किए गए हों। कुछ कवियोंने इनके बंदी–जीवनपर दुःख जरूर प्रकट किया है; पर दिन–रात घरके प्राणियोंकी तरह साथ रहनेवाले इन पंक्षियोंका ज्यादा वर्णन नहीं मिलता। पिंजड़ेमें बंद रहनेके कारण इनसे दूतका काम भी नहीं लिया जा सकता। हाँ, ये बैठे–बैठे किस्से जरूर कह सकते हैं।

ब्रजभाषाके कवियोंने अपने काव्योंमें पक्षियोंका काफी वर्णन किया है; पर वे सब ज्यादातर उपमा और उपमेयके ही रूपमें – दूत और सखीके रूपमें। कुछ काल्पनिक कथाएँ जरूर इन पक्षियोंके बारेमें गढ़ी गईं हैं; पर वे उन्हीं पुरानी कल्पनाओंके आधार पर। यह तो माननाही पड़ेगा कि इनमेंसे कुछ उपमाएँ और कुछ कल्पनाएँ इतनी सुन्दर बन पड़ी हैं कि इन कवियोंकी सूक्ष्म दृष्टिकी प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जा सकता।

---

* *विशाल भारत*, अगस्त 1941

हंसके मोती चुगनेकी कल्पनाके अलावा नेत्रोंके लिए खंजनकी उपमा जिस कविने पहले–पहल सोची होगी, उसकी जितनी तारीफकी जाय, थोड़ी है। जिसने चंचल नेत्रोंकी तरह इन चपल चितकबरी चिड़ियोंको मैदानमें घूमते देखा है, वही इसका रस ले सकता है।

खंजन नैन रूप रसमाते।
अतिसे चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते।
चल चल जात निकट श्रवननके, उलट–पलट ताटंक फँदाते।
'सूरदास' अंजन बिनु अँटके, नतरु अबहिं उड़ि जाते।'

सूरने नेत्रहीन होकर भी नेत्रोंका जो यह सुन्दर चित्र खींचा है, उसे अनेक नेत्रवाले भी नहीं देख पाते।

तुलसी और जायसी द्वारा वर्णित पक्षियोंका विशद वर्णन तो एक स्वतंत्र लेखका विषय है। यहां ब्रजभाषाके अन्य कवियोंके साथ उनकी कुछ मिसालें देकर इतना भी कह देना पर्याप्त होगा कि तुलसीका जितना व्यापक अध्ययन संस्कृत–साहित्यका था, उससे कम ज्ञान उन्हें अपने देश–कालका नहीं था। वे हमारे समाज और संस्कृतिके प्रतिनिधि कवि थे। अतः उन्होंने जिस विषयपर भी अपनी कलम उठाई है, उसे पूर्ण करकेही छोड़ा है। जिन पक्षियोंके बारेमें उन्होंने लिखा है, उसमें स्वाभविकताकी, जहां तक हो सका है, रक्षाही की गई है। पर जायसीका सूक्ष्म निरीक्षण इस विषयमें सबसे आगे बढ़ जाता है। जान पड़ता है, उन्हें चिड़ियोंके बारेमें साहित्यकी काल्पनिक कथाओंसे ज्यादा उनका वास्तविक वर्णन अधिक प्रिय था। देहातमें रहनेके कारण उन्होंने चिड़ियाके साहित्यिक नामोंसे अधिक उनके लोक–प्रचलित नामोंको ही अधिक महत्व दिया है। हंसकी जगह सोन का प्रयोग इसका साक्षी है:–

'बोलहिं सोन ढेंक बक लेदी।
रहीं अबोल मीन जल–भेदी'।

जायसीने जिन सोन, ढेंक, बक और लेदी चार पक्षियोंका जिक्र किया है, वे आज भी देहातमें काफी तादादमें देखे जाते हैं। सोन (सवन) या काज़ आज भी जाड़ोंमें हमारी झीलों और नदियोंमें भर जाते हैं। यही हमारे यहांके हंस या कलहंस हैं (क्योंकि असली हंस तो काश्मीरके इधर आते ही नहीं)। इन्हींको देखकर हमारे कविगण हंसके नामपर सन्तोषकर लेते हैं। पर जायसीने बिना किसी संकोचके इस बातको मान लिया है और सोनका ही वर्णन किया है। काल्पनिक हंससे तो वास्तविक सवनही अच्छे। ढेंकका दूसरा नाम आंजन भी है, जो देहातमें बहुत प्रचलित है। यह एक प्रकारका सिलेटी रंगका बड़ा बगुला है। बक या बगुलेको तो सभी जानते हैं। लेदी एक छोटी बतख है, जो देहातोंमें काफी परिचित है। पर हमें दुःखके साथ कहना पड़ता है कि पद्मावत के उल्थाकारोंने जायसी द्वारा वर्णित पक्षियोंका बड़ा उल्टा–सीधा अर्थ किया है।

अब हम अपने प्राचीन कवियों द्वारा वर्णित खास–खास पक्षियोंको लेते हैं। कौआ हमारा चिर–परिचित पक्षी है। शायदही कोई दिन ऐसा जाता हो,जब कि इसके दर्शन हमें न होते हों। तुलसीदास जी ने तो सारी रामायण कागभुशुंड जीके मुंहसे कहलाकर इसे अमरकर दिया है। पर इसका रंग कवियोंको प्रिय नहीं, बोली और स्वभाव भी अच्छा नहीं, अतः इसका ज्यादातर वर्णन कवियोंने बोलीके मामलेमें पिक और रंगके मामलेमें हंस या बगुलेकी तुलनामें ही किया है। तुलसीदास जी जहां कहते हैं:–

'मज्जन फल देखिय ततकाला,
होहिं काग पिक बकहु मराला।'

वहीं बिहारीलाल जी भी हंस को आगाह करके कहते हैं:–

'अरे हंस या नगर में जैयो आप विचार,
कागन सों जिन प्रीति कर कोयल दई बिगार।'

वृन्द कवि भी कौए को नहीं छोड़ते; अपनी राय जाहिर कर ही देते हैं:–

'जो जाके गुन जानही सो तिहिं आदर देत।
कोकिल अंबहि लेत है, काग निबौरी हेत।'

कौए को निबौरी पसन्द है या नहीं, यह तो वृन्द जी ही जानें; पर तुलसीदास जी के होहिं निरामिष कबहुं कि कागा में जरूर सत्यता है।

कबीरदास जी ने कौएका बहुत स्वाभाविक वर्णन किया है:–

'पांचों नौबत बाजतीं होत छतीसो राग।
सो मन्दिर खाली पड़ा बैठन लागे काग।'

खाली मकान पर कौएका बैठना बहुत ही स्वाभाविक है। कबीरके जैसे काग जहाजको सूझै और न ठौर', और सूरके 'जैसे उड़ि जहाजको पन्छी पुनि जहाजपर आवै' में भी स्वाभाविकता है, क्योंकि कूल–किनारा न समझनेके कारण जहाजका पक्षी जहाजपर ही थककर लौट आता है। पर यह कौएके ही लिए कबीरदासने क्यों महदूद रखा, इसका पता नहीं।

पर इस युगके 'भारतेन्दु' जी तथा 'रत्नाकर' जीने कौएके बारेमें बहुतही सुन्दर और स्वाभाविक वर्णन किया है:–

'कहूं स्वान इक अस्थि खंड लै चाटि चिचोरत।
कहूं कारौ महि काक ठोर सों ठोंकि टटोरत।।
कहुं शृंगाल कोउ मृतक अंग पर ताक लगावत।
कहुं कोउ शव पर बैठि गिद्ध चट चोंच चलावत।।'

'भारतेन्दु' जी का भी एक पद इसी प्रकार श्मशानके वर्णन का है, जिसमें कई पक्षी आ जाते हैं:–

'ररुआ चहुंदिसि ररत डरत सुनिके नर–नारी।
फटफटाइ दोउ पंख उलूकहु रटत पुकारी।।
अंधकार बस गिरत काग अरु चील करत रव।
गिद्ध, गरुड़, हड़गिल्ल भजत लखि निकट भयद रव।।
रोवत सिआर गरजत नदी, स्वान भूंकि डरावहीं।
संग दादुर झींगुर रुदनि धुनि मिलि स्वर तुमुल मचावहीं।।'

भयानक होनेपर भी वर्णन बहुतही स्वाभाविक हुआ है। रुआ एक प्रकारका उल्लू, उलूक, काग, चील और हड़गिल्ला बड़ा चमर घेंच सभी श्मशानके आसपास रहने वाली चिड़ियाँ हैं।

'रत्नाकर' जीके 'गंगाष्टक' में भी एक सुन्दर पद कौएपर है। उसे भी जरा सुन लीजिए। इस पदमें उन्होंने कौएकी वकालतमें अपनी कविताका चमत्कार दिखाया है:–

'लोटि–लोटि लेत सुख कलित कछारनि कौं,
सुर–तरु डारन कौ गौरव गहै नहीं।
कहै 'रतनाकर' त्यौं कांकर औ सांक चुनि,
चारु मुकता फल पै नेक उमहैं नहीं।
हेम हंस होन की न राखत हियें में हौंस,
नन्दन के कोकिल कौं कलित कहैं नहीं।
गंगजल तोषि दोषि संस्कृति सुधासन को,
काक पाकसासन कौ आसन चहै नहीं।'

कौएकी तरह हंस भी कई बातोंके लिए याद किया जाता है। सुन्दर चालके लिए हंसकी याद आनी ठीक है; पर मोतीके चुगनेकी बात सुन्दर होनेपर भी निरी कल्पनाही रहेगी। इतने सुन्दर पक्षीके भोजनके लिए कवियोंके पास मोतीसे कम और क्या हो सकता है, भलेही वह झीलोंमें घास-फूस और दाने आदिसे ही अपना पेट भरता हो। इसके अलावा इसके दूध और पानीको अलग करनेकी कल्पना भी कम सुन्दर नहीं, भलेही उसमें सचाई कुछ भी न हो।

मानसरोवरमें रहने वाला यह सुन्दर पक्षी हमारे साहित्यमें पक्षियोंका राजा माना जाता है। तभी तो इसे रहनेके लिए इतना सुन्दर स्थान दिया गया है। रहीम कवि कहते हैं–

'सरवरके खग एक-से बाढ़त प्रीत न धीम।

पै मराल को मानसर एकै ठौर रहीम।'

और तुलसीदास जी कहते हैं–जहँ-जहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल।' तुलसी या रहीमने ही इसका निवास-स्थान मानसरोवर नहीं निर्धारित किया है, बल्कि नरहरि आदि अन्य कई कवियोंने भी इसकी ताईदकी है। नरहरिने कहा है– सर-सर हंस न होत बाजि गजराज न दर-दर।' नरहरि और गंग कवि तो इसे मानसरोवर का इतना स्थायी पक्षी समझते हैं कि रहीम खानखानाके क्रोधकर अपने घोड़ेके तंग न कसने, भ्रमरके घबराकर कमल-वन नहीं जाने, सांपके डरके मारे उगली हुई मणि नहीं निगलनेपर ही हंस मानसरोवर छोड़ सकता है।

हंसके रहने आदिके स्थानका निर्णय होनेके बाद कविगण उसको सौंपे गए दूध-पानीके विभक्त करनेके बारेमें अपनी-अपनी राय देते हैं। तुलसीदास जी उसकी सन्तोंसे तुलना करते हुए लिखते हैं–' संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार।' नरहरिजी बड़े जोरसे प्रश्न करते हैं–

'हंसन को सिक्खवत करनि पय पानि भिन्न गति?

वृन्दजीको इसीकी फ़िक पड़ी है कि कौन यह मुश्किल काम हंसके बिना करेगा?

राज हंस बिनको करै क्षीर नीरको दोय?

पता नहीं, हंसको अपनी इस जिम्मेदारीका कुछ खयाल भी है या नहीं; रहीमने उसके इस काल्पनिक गुणका सहारा लेकर एक बहुत सुन्दर बरवा लिखा है–

'पिय सन अस मन मिलयउं जस पय पानि।

हंसिन भई सवतिआ लै बिलगानि।।'

प्रियके साथ दूध-पानीकी तरह मन मिला देनेमें जितना सौन्दर्य है, उससे कहीं अधिक सौन्दर्य हंसिन-रूपी सौतका उसे अलगकर देनेकी कल्पनामें है।

हंसके बाद चकोर, कोयल, पपीहा और चकई-चकवेसे हमारा काव्योद्यान भरा पड़ा है। चकोर चन्द्रमाका अनन्य प्रेमी है। उसीकी ओर रातभर देखता रहता है। उसीके धोखेमें आग तक खाकर पचा डालता है। हमारे कवियोंने उसे यह काल्पनिक मान देकर उसके प्रेमको बहुत सराहा है। स्वयं चकोर शायद सपनेमें भी आगका यह खेल न जानता होगा पर कवियोंको इससे क्या, उन्हें तो अपनी कविताके आगे ये बातें गौणही लगती हैं। कबीरका कहना है–

'लागी लगन छुटै नहीं जीभ चोंच जरि जाय।

मीठा कहां अंगारमें जाहि चकोर चबाय।'

'प्रेम तो ऐसा कीजिए जैसे चंद-चकोर।

घींच टूटि भुंइ मा परै चितवै वाही ओर।

रैदास ही फिर इस दौड़में क्यों किसीसे पीछे रहें? उनकी दीन प्रार्थना भी सुन लीजिए–

'प्रभुजी तुम घन बन हम मोरा,

जैसे चितवत चंद चकोरा।'

पर रहीम अनुभव की बात बताते हैं–

'जिहि रहीम चित आपनो कीन्हो चतुर चकोर;
निशि बासर लाग्यो रहै कृष्णचन्द्र की ओर।'

इसी कल्पनासे प्रेरित होकर कालिदास त्रिवेदी भी कुंअर कन्हैयासे प्रार्थना करते हैं–

'कुंअर कन्हैया मुख चंद की जुन्हैया,
चारु लोचन चकोरन की प्यासन निवार दे।
मेरे कर मेंहदी लगी है नन्दलाल प्यारे,
लट उलझी है नकबेसर उतार दे।

पर पूखी कवि चकोरके इस प्रेमसे डरकर बताते हैं कि यदि उनकी प्रेमिकाके दांतोंकी दम्पाकी–सी द्युति न होती, तो किस प्रकार उसके चन्द्रमुखके कारण उसे चकोर परेशान करते–

'लीलि जाते बरही बिलोकि बेनी बनिता की
जौ न होती गूंथनि कुसुम सर कम्पा की।
चोंथते चकोर चहुंओर जानि चंदमुखी
जौ न होती डरनि दसन दुति दम्पा की।

अब हम कोयल और पपीहेकी ओर आते हैं। ये दोनों पक्षी जैसे विरहियोंका दिल दुखानेके लिएही बनाए गए हों। कोयल हमारे यहांकी बड़ी प्रसिद्ध चिड़िया है। इसका नर तो काले रंगका होता है; पर मादा भूरी चित्तेदार होती है। इसके अपने अंडे कौएके घोंसलेमें सेनेके लिए धोखेसे रख देनेकी बात सत्य है। पपीहा भी ऐसीही धोखेबाजी करता है; पर वह कौए–सरीखे चालाक पक्षीके घोंसलेके बजाय चरखीके घोंसलेमें अपने अंडे रख आता है।

कोयलकी कुहू–कुहू या टुऊ टुऊ , टुऊ' और पपीहेका 'पी कहां, पी कहां' का क्रमशः चढ़ता हुआ स्वर सभीने सुना होगा। इससे अधिक मीठे बोलने वाले पक्षी हमारे यहां और दूसरे नहीं हैं। पर इनकी बोलीके अलावा जिस और काल्पनिक गुणसे पपीहा या चातकको हमारे कवियोंने भूषित किया है, वह है उसका स्वाति–नक्षत्रके जलके लिए आतुर होना। कल्पना इस तरहकी गई है कि चातक स्वातिके जलके सिवा और कोई जल पीताही नहीं–भलेही उसके प्राण निकल जायं इसी कल्पनाको ध्यानमें रखकर कबीर ने कहा है–

'चातक सुतहिं सिखावही आन नीर मति लेव।
मम कुल यही स्वभाव है स्वाति बूंद चित देव।'

'दीन' जी भी चातक को दुखी देखकर घनश्यामको धमकाते हैं–

दीन कवि चातक की बिनै अनसुनी करि,
एहो घनश्याम फिर सुनिहौ खरी–खरी।

पर मीराबाई पपीहेकी पी कहां, पी कहांसे चिढ़कर कहती हैं– रहु–रहु पापी पपिहा रे पिवको नाम न लेय।' और यही शिकायत द्विज देव' जी भी करते हैं। पातकी पपीहा तू पियाकी धुनि गावै ना' कहकर वे उसे पी कहां' कहनेसे रोकते हैं। पर सूरदासजीके बिरहीपर पपीहेकी बोलीका दूसराही असर हुआ –

कछु ध्वनि सुनि स्रवनन चातककी प्रान पलटि तनु आए।
'सूर' सो अबके टेरि पपीहै विरही प्रान जिवाए।

अब कोयलकी 'कुहू–कुहू' से विरहियोंकी बढ़ती हुई परेशानीको देखिए। रहीम व्याकुल होकर किस आजिजीसे कहते हैं–

'भोरहि बोले कोइलिया बढ़वत ताप।
घटि–घटि एक घरियवा रहु चुपचाप।

पर शायद कोयल चुप नहीं होती, तभी 'पदमाकर' कहते हैं–

'काली कुरूप कसाइन पै सुकुहू कुहू,
कोयलिया बोलन लागी।

और उधर 'आलम' को घनश्यामके न आनेसे यह सन्देह होने लगता है कि कहीं उस देशके कोयल–पपीहोंको तो किसीने नहीं मार डाला–

'कीधौं मोर शोर तजि गए री अनत भाजि,
कीधौं उत दादुर न बोलत हैं ए दई।
कीधौं पिक–चातक बधिक काहू मारि डारे,
कीधौं बक पांति उत अन्तगति ह्वै गई।

कोयल–पपीहोंको भला कौन मार डालेगा? पर 'आलम' को कौन समझावे?

चकई–चकवेसे पहले बगुलोंके सम्बन्धमें संक्षेपमें कुछ लिखना असंगत न होगा। बक सब गुणोंसे रहित होनेपर भी अपनी दूध–सी सफेदीके कारण वर्षा–कालमें कवियोंको बहुत याद आते हैं। जलसे भरे हुए काले बादलोंमें इनकी उड़ती हुई पंक्ति जो शोभा देती है, वह किसी भी प्रकृति–प्रेमी कविकी दृष्टिसे बच जाय, यह सम्भव नहीं। तभी तो आलम' ऊपरके उद्धरणमें श्यामके न आनेका एक कारण उस देशोंमें बक–पंक्तिका अन्त हो जाना समझ बैठे हैं। 'पदमाकर' ने भी वर्षामें बगुलोंको नहीं भुलाया–

'बद्दलनि बुंदनि बिलोको बगुलानि बाग,
बंगलनि बेलिन बहार बहार बरसा की है।

पर जनताके स्पष्ट वक्ता कवि घाघने जो बुराई और मनहूसियत गांवोंमें सुन रखी थी, उसे साफ–साफ कह डाला है–

'गया पेड़ जहं बगुला बैठा,
गया गेह जहं मुड़िया पैठा।
गया राजा जहं राजा लोभी,
गया खेत जहं जामी गोभी।

बगुलोंके बैठनेसे पेड़ तो नहीं सूख जाता; पर गांवोंके लोग ऐसा विश्वास करते हैं कि जिस पेड़पर बगुले बसेरा लेते हैं, वह सूख जाता है।

अब चक्रवाककी ओर आइए। चकई–चकवेके अनेक साहित्यिक नाम हैं; पर देहात में चकई–चकवा या सुरखाबही विशेष प्रचलित हैं। यह नारंगी रंगकी बतख है, जो जाड़ोंमें यहां आती है और गरमी शुरू होते–होते हमारे देशसे लौट जाती है। ये रातको अक्सर बोला करते हैं, और शायद इसीसे किसी कविने इनके शब्दमें आतुरता अधिक मात्रामें पाकर यह कल्पना कर ली कि इनके नर–मादा रातमें अलग–अलग हो जाते हैं और रातको एक नदीके इस पार रहता है, तो दूसरा उस पार। सवेरा होनेपर कहीं जाकर इनका पुनर्मिलन होता है। गंग कविकी नायिकाकी सखी सबेरा होनेके सभी चिह्नोंकी ओर इशारा करके उससे मान–लीला समाप्त करनेको बड़े सुन्दर ढंगसे कहती है, जिसमें चकईके मिलनका जिक्र भी सवेरा होनेकी ओर इशारा करता है–

'चकई बिछुरि मिली तू न मिली प्रीत सों,
गंग कवि कहै एतो कियो मान ठान री।

अथए नखत शशि अथई न तेरी रिस,
तू न परसन्न परसन्न भयो भान री।
तू न खोल्यो मुख, खिल्यो चन्द और गुलाब मुख,
चली सीरी वायु तू न चली भो बिहान री।
राति सब घटी, नाहीं करनी ना घटी तेरी,
दीपक मलीन ना मलीन तेरो मान री।'

सेनापति ऋतुओंके वर्णनमें सि हस्त थे। वे शिशिर–वर्णनके सिलसिलेमें कोककी मजबूरीपर लिखते हैं।–

'जौलौं कोक कोकी को मिलन तौलौं होति राति,
कोक अधबीच ही ते आवत है फिरिकै।

बेचारा चकवा करे तो क्या करे, दिन छोटे होतेही हैं और सूर्य भी जाड़ेके डरके मारे तेजीसे भाग खड़े होते हैं तथा अधेंरा होना लाजिमीहो जाता है, फिर कोक आधे राह से लौट न आवे, तो क्या करे? खैरियत इतनीही है कि चकवेको हमारे कवियोंके इस काल्पनिक वियोगके किस्सेका हाल नहीं मालूम, नहीं तो वह जाने क्या करता? कबीर की निम्न–पंक्तियाँ शायद उसके कान तक पहुंची नहीं कि–

'सांझ भए दिन बीतवे चकई दीना रोय;
चल चकवा वा देस को जहं रैन कबहुं ना होय।
तुलसीदास जी कहते हैं–
संपत चकई मरत चक, मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निसि आसुम पींजरा राखे भा भिनुसार।

पर बिहारी सबसे आगे बढ़ गए मालूम होते हैं। उनका कहना है कि पावस–ऋतुमें ऐसा घोर अन्धकार छा गया कि अगर चकई–चकवा न होते, तो दिन और रातका पताही न चलता–

'पावस घन अंधियार में, रह्यो भेद नहीं आन,
राति–दिवस जान्यौ परै लखि चकई–चकवान।

अब रह जाते हैं खंजन, शुक, सारिका और मयूर। खंजन, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, आंखकी उपमाके लिए और शुक नाककी उपमाके लिए याद किए जाते हैं। सूरदासके अद्भुत एक अनूपम बाग' वाले प्रसिद्ध पद–

'फल पर पुहुप पुहुप पर पालव
तापर शुक, पिक, मृगमद काग।
खंजन धनुष चंद्रमा ऊपर,
ता ऊपर एक मनिधर नाग।'

में कई पक्षी आ जाते हैं। केशव' ने भी कहा है–

तापर एक सुआ सुभ तापर
खेलत बालक खंजन के द्वै।

तोतेके बन्दी हानेका कइयोंको दु:ख है। बिहारी भी दुखी होकर कहते हैं– मरत प्यास पिंजरा पर्यौ सुआ समयके फेर।' इसी प्रकार दीनदयाल गिरिका दु:खमें भी उपदेश है–

'पराधीनता दुख महा सुख जग में स्वाधीन।
सुखी रमत शुक बन विषे, कनक–पींजरा दीन।'

तुलसीदास इस सम्बन्धमें भी अनुभवकी ही बात बताते हैं। भले और बुरे मनुष्योंके यहांके तोता–मैनाकी बोलियोंसे उस घरके प्राणियोंके स्वभावको वे जान लेते हैं। वे कहते हैं:–

'साधु असाधु सदन सुक सारी।
सुमिरहिं रामु देहिं गनि गारी।'

पर देवके पक्षियोंको मदन महीपके बालक वसन्तको सुलानेसे ही फुरसत नहीं हैं; वहां–

पवन झुलावै केकी कीर बतरावै देव',
कोकिल हलावै हुलसावै कर तारी दै।'

शुककी एक और कथा गांवोंमें प्रचलित है। 'सेमर सेय सुआ पछिताने, मारे टोंट भुआ उधिराने।' सेमलके फलोंके पकनेके इन्तजारमें तोतोंको निराश होना पड़ा। जब उन्होंने उनमें चोंच मारी, तो रसके बजाय रुई निकलकर चारों ओर फैल गई। इसी कथाको लक्ष करके गिरधर कविराय शुककी ओरसे सेमलके पास यह सन्देश पहुंचाते हैं–

'शुक ने कह्यो संदेस सेंमर के पग लागि हौ,
पग न परै वहि देस, जब सुधि आवै फरन की।'

अब हम मोरको लेते हैं। सौन्दर्यमें यह अपना कोई सानी नहीं रखता और साथ–ही–साथ उसका घनश्यामके प्रति प्रेम भी प्रसिद्ध है। तभी तो अम्बिकादत्त जी के कथनानुसार उसे इतनी प्रतिष्ठा मिली है–

'मोर सदा पिउ–पिउ करत, नाचत लखि घनश्याम।
यासों ताकी पांखहू, सिर धारी घनश्याम।।

इसके अलावा वर्षाकालमें स्थान–स्थानपर इसके सुन्दर नृत्यसे जब जंगल शोभितहो उठता है, तब कविगण इसको भला कैसे भुला सकते हैं? इस सम्बन्धमें कविवर सत्यनारायण जीका कितना स्वाभाविक वर्णन नीचेकी पंक्तियोंमें है–

'चातक शुक कोयल ललित बोलत मधुरे बोल;
कूकि–कूकि केकी कलित कुंजन करत कलोल।
निरखि घन की छटा।।

अब आइए, ज़रा हरिनाथजीके चिड़ियाखानेकी भी सैरकर लीजिए, जहां उन्होंने तरह–तरहकी बेमेल चिड़ियों पाल रखा है–

'बाजपेई बाज सम, पांड़े पच्छिराज सम,
हंस से त्रिवेदी और सोहैं बड़े गाथ के।
कुही सम सुकुल, मयूर से तिवारी भारी,
जुर्रा सम मिसिर नवैया नहीं माथ के।
नीलकंठ दीक्षित, अवस्थी हैं चकोर चारु,
चक्रवाक दुबे गुरु सुख सुभ साथ के।
एते द्विज जाने रंग–रंग के मैं आने,
देस–देस में बखाने चिरीखाने हरिनाथ' के।'

हरिनाथ जीने पक्षियोंका दूसरा पर्यायवाची शब्द 'द्विज' देखकरही शायद यह चिड़ियाखाना बनानेकी बात सोची होगी, नहीं तो बाज, कुही और जुर्राके साथ न तो हंस और चक्रवाकको ही रखते और न मोर, चकोर और नीलकंठ को ही।

भूषण कविका भी एक पद इसी प्रकार है, जो सुन्दर और स्वाभविक है। उन्होंने बाजके चपेटेसे जिन पक्षियोंके न बचनेका जिक्र किया है, वे सब प्रायः शिकारकी चिड़ियाँही हैं। देखिए–

'सरस से सूबा, करबानक से साहजादे,
मोर से मुगल मीर धीर में धंचैं नहीं।
बगुला से बंगस, बलूची और बतक जैसे,
काबुली कुलंग याते रन में रचैं नहीं।
भूषनजू खेलत सितारे में सिकार सिवा,
साहिको सुअर जाते दुवन संचैं नहीं।
बाजी सब बाज से चपेरैं चंगु चहूंओर,
तीतर तुरुक दिल्ली भीतर बचैं नहीं।।'

सारस, करबानक, मोर, बगुला, बतख, कुलंग, तीतर आदि सब शिकारकी चिड़ियां हैं। बगुला जरूर शिकारकी चिड़ियोंमें नहीं आता; पर प्रायः लोग इसे भी खाते हैं और बाजके लिए तो परहेजकी गुंजाइश भी नहीं रह जाती। भूषणका संकलन बहुतही स्वाभविक है। जान पड़ता है, भूषणको पक्षियोंका अच्छा ज्ञान था। पर शृंगार–रसमें ही गक्र रहने वाले मतिराम तकने भी एक स्थानपर कुछ चिड़ियोंको जमा जरूरकर दिया है, हालांकि हरिनाथकी तरह वे सब भी बेसिलसिला और बेमेल हैं। जरा देखिए–

'शुक चकोर चातक चुहिल, कोक मत्त कलहंस;
जहं तरवर सरवरनिके लसत ललित अवतंस।'

कलहंस और कोक कवितामें भलेही पेड़पर बैठ सकते हों पर वैसे जालपाद होनेके कारण उनके लिए पेड़पर बैठना सम्भव नहीं।

पर इन सबसे सुन्दर और स्वाभाविक वर्णन हमें भारतेन्दु जीके सरोवरका लगता है, जो इस प्रकार हैः–

'कूअत कहुं कलहंस कहूं मज्जत पारावत।
कहुं करण्डव उड़त, कहूं जल–कुक्कुट धावत।।
चक्बाक कहुं बसत कहूं बक ध्यान लगावत।
सुक–पिक जल कहुं पिवत कहूं भ्रमरावलि गावत।।
कहुं तट पर नाचत मोर बहु रोर बिबिध पच्छी करत।
जलपान हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत।।

कारण्डव भलेही हमारे यहां न आता होयपर चक्रवाक और कलहंस तो हमारे तालाबोंके परिचित पक्षी हैं। 'जल–कुक्कुट धावत' में बहुत स्वाभविकता है। ये जल–मुर्गियां जब तालके एक स्थानसे उड़कर दूसरे स्थानको जाती हैं, तो पानीकी सतहसे मिली हुई इनकी उड़ान इस तरहकी होती है कि जान पड़ता है, ये पानीपर दौड़ रही हैं। बक–ध्यान तो प्रसिद्ध ही है। पारावत (कबूतर), सुक और पिकको हरिश्चन्द्र जीने पानी पीने या नहानेके बहाने और मोरको किनारेपर नाचनेके मिस ऐसे मौकेसे बुला लिया है कि वर्णनकी स्वाभाविकता जरा भी नष्ट नहीं होने पाई है।

बाज और कबूतरका वर्णन और भी कुछ कवियोंने किया है। तुलसीदास जीका बाज झपटि जनु लवा लुकाने' तो प्रसिद्ध ही है। कबीरने भी विषय–वासनाके बाजको साथ लेकर आने वाली तृष्णासे सावधान किया है। तिस्ना चली सिकारको बिसै बाज लिहे हाथ।'

अब रह जाते हैं कपोत। ये सिधाईके लिए काफी मशहूर हैं। ये वैसे तो अपने प्रेमके लिए प्रसिद्ध हैं और कभी–कभी कंठकी उपमाके लिए भी पकड़ लिए जाते हैं। इनका सबसे सुन्दर वर्णन बिहारीने किया है। उनका प्रसिद्ध सपर परेई संग' वाला दोहा स्वाभाविकतासे परिपूर्ण है।

'पट्टु पाखैं, भख काकरैं, सपर परेई संग।
सुखी परेवा जगत में, एकै तुही विहंग।'

अन्तमें रहीमका एक सुन्दर और सरस बरवा देकर,जिसे उन्होंने सारसकी जोड़ीको देखकर लिखा है, हम लेख समाप्त करेंगे। सारस जीवनमें एक ही बार जोड़ा बांधता है और एकके मर जानेपर दूसरा अक्सर तड़प–तड़पकर जान दे देता है। रहीम शायद इस अभिन्नताकी बात जानते थे, तभी उन्होंने ऐसी कामना की है–

'पीतम तुम कचलोहिया हम गजबेलि।
सारस कै अस जोरिया फिरौं अकेलि।।

यह हमारे प्राचीन कवियोंके पक्षियोंके वर्णनका एक मामूली–सा निरीक्षण हुआ, जिसमें हमने कुछ उद्धरण देकर पाठकोंका उन पक्षियोंसे परिचय भर करा दिया है, जो हमारे कवियों द्वारा हमारे साहित्यमें अमर बना दिए गए हैं। किन्तु अब वह समय आ गया है, जब कि हमारा गद्य एक आकार–प्रकार ग्रहण करके इस योग्य हो गया है कि इसमें हम सभी विषयोंपर वैज्ञानिक ढंगसे पुस्तकें लिखकर अपने साहित्यका भण्डार भरें।

फलाहार*

कुंवर वीरेन्द्र नारायण सिंह, एम. एस–सी.

मनुष्य के भोजन में फल एवं शाक–भाजियों का एक विशेष स्थान है। भारतवर्ष के कृषि–प्रधान देश है,एवं जलवायु और भूमि विस्तृत होने के कारण यहां पर प्रायः सभी प्रकार के फल और तरकारियां अधिकता से उत्पन्न होती हैं। फिर अल्प–व्यय और सरलता से मिल जाने के कारण उनका यहां अधिक उपयोग भी होता है; किंतु फलों के गुणों को देखते हुए उनसे कोई विशेष लाभ नहीं उठाया जा रहा है। ऐसी अवस्था में जबकि हमारे सेवन के पश्चात् भी इतनी अधिकता होती है कि करोड़ों मन फल और तरकारियां प्रतिवर्ष सड़ कर बरबाद हो जाती हैं तो फिर क्यों न हम उनको भली–भांति काम में लाएं। सम्भवतः अधिकांश जनता उनके गुणों से अपरिचित हैं और फलों का उचित उपयोग एवं उनके सेवन करने की विधि ही हमें ठीक प्रकार से ज्ञात नहीं है। यही कारण है कि हम प्रत्येक दिन कुछ अंशों में उनका सेवन करते हुए भी फलों के गुणों से लाभ नहीं उठा सकते।

प्रत्येक फल और तरकारियों में विशेष गुण होते हैं। यदि एक फल शरीर के अन्तर्गत किसी अंग की पुष्टि करता है, तो दूसरा शरीर के अन्य अंगों की पुष्टि में सहायक होता है। फल तो मनुष्य स्वाद के लिए सेवन करता है; किंतु वैज्ञानिकों ने फल एवं शाक–भाजियों में पाये जाने वाले भिन्न–भिन्न तत्वों अथवा वास्तविक खाद्य–पदार्थों का, जिनसे कि हमारे स्वास्थ्य का घनिष्ट सम्बन्ध है, भली भांति निरीक्षण किया है। अन्यथा फलों का अधिकांश भाग जल ही होता है, जिसकी मात्र 70–80 प्रतिशत अथवा अधिक होती है।

फलों में पाये जाने वाले तत्वों में से 'विटामिन' प्रधान है। यह हमारे भोजन का बहुत ही आवश्यकीय अंग है। इनका भोजन में न रहना तरह–तरह के रोगों को निमन्त्रण देना है। विटामिन्स कई प्रकार के होते हैं और उनका नाम क्रमशः आविष्कार के अनुसार विटामिन ए, बी, सी, डी, ई, आदि रखे गये हैं। सभी विटामिन्स एक फल में प्रायः नहीं पाये जाते। यदि एक फल में विटामिन 'ए' अधिक है, तो दूसरे में बी'। सामान्य अंशों में दो तीन विटामिन्स एक फल में पाये जाते हैं, जिस फल और तरकारी में जितने अधिक विटामिन्स होंगे, वह उतना ही स्वास्थ्य के प्रति हितकर होगा। भिन्न–भिन्न विटामिन्स शरीर के विभिन्न अंगों की पुष्टि करते हैं। यदि कोई विटामिन नियमित अंश से कम हो जाता है, तो अंग शिथिल पड़ जाता है, और हम रोग से पीड़ित हो जाते हैं।

विटामिन ए— शरीर के बढ़ने एवं अंगों की रचना में उसकी अधिक आवश्यकता होती है। भोजन में यथेष्ट अंशों में रहने से, शरीर पर वायु के जन्तुओं का प्रभाव नहीं पड़ता। यह नेत्र एवं फेफड़ों के रोगों के लिए विशेष लाभदायक है।

---

* *विज्ञान*, जुलाई 1942

विटामिन बी— यह शरीर के अन्तर्गत समस्त अंगों की भलीभांति पुष्टि करता है। मस्तिष्क, मांस–पेशियों, हृदय एवं पट्ठों को विशेष लाभ पहुंचाता है। यह नसों की शिथिलता और पेट के रोगों को भी दूर करता है।

विटामिन सी— यह रक्त शुद्ध करता है। हड्डियों एवं दांतों के निर्माण में सहायता देता और उनको पुष्ट करता है, अन्तड़ियों को भी स्वच्छ रखता है। दांत के रोग में, कमजोर बच्चों के लिए और रक्त की खराबियों में विशेष लाभ पहुंचाता है।

विटामिन डी— यह रक्त एवं मांस–पेशियों को शक्ति प्रदान करता है। पोटेशियम और कैलसियम नामक खनिज–पदार्थों का शोषक है, एवं उनको शरीर के अन्दर नियमित मात्रा में रखता है। इसके अतिरिक्त यह विटामिन शरीर के ढांचे को सुन्दर रूप से निर्माण करने में सहायता पहुंचाता है।

विटामिन ई— जनन–शक्ति के लिये यह अत्यन्त आवश्यक विटामिन है और प्रत्येक स्त्री–पुरुष में इसका उचित मात्रा में रहना आवश्यक है। अन्यथा जननशक्ति क्षीण हो जाती है और ऐसे रोगियों के लिए विटामिन ई' यथेष्ट रूप से लाभदायक सिद्ध हुआ है।

इनके अतिरिक्त अन्य विटामिन जैसे बी$_1$, बी$_2$, बी$_3$, एफ, जी आदि आविष्कृत हुए हैं; किंतु उपर्युक्त पांच विटामिन प्रधान हैं। विटामिन्स के अलावा फल एवं शाक–भाजियों में प्रोटीन्स, कार्बोहाइड्रेट्स, और खनिज–पदार्थ नामक तत्व भी पाये जाते हैं। इनका हमारे भोजन में यथेष्ट मात्रा में रहना भी आवश्यक है।

प्रोटीन्स— यह फलों का ठोस पदार्थ होता है। इनमें नत्रजन की यथेष्ट मात्रा होती है। ये हमारे शरीर के रक्षक है और शरीर के अन्तर्गत एवं बाहरी चोटों को भरते हैं।

कर्बोहाइड्रेट्स— भोजन का अधिकांश भाग इन्हीं से पूर्ण रहता है। इन विभिन्न शाक्ररी पदार्थों से हमारे शरीर में पौरुष एवं अग्नि उत्पन्न होती है। यह अन्य तत्वों को भलीभांति प्रयोग में लाने में सहायक होते हैं।

खनिज पदार्थों में— कैलसियम, फास्फोरस, आयोडीन,आयरन, सोडियम, और पोटेशियम प्रधान हैं। कैलसियम और फास्फोरस, मुलायम हड्डियों को दृढ़ बनाते हैं एवं रक्त को शुद्ध रखते हैं। उसका चटक लाल रंग आयरन के कारण है। ये खनिज पदार्थ शुद्ध वायु को शरीर के प्रत्येक अंग में पहुंचाने में सहायता करते हैं।

आयोडीन— मस्तिष्क को उचित प्रकार से कार्य संचालन करने में सहायक बनता है। स्मरण शक्ति की हीनता और मस्तिष्क के अन्य रोग प्रायः आयोडीन के अभाव से होते हैं।

इन तत्वों का संक्षिप्त वर्णन केवल इसी आशय से दिया गया है कि फल एवं शाक–भाजियों में, जिनमें ये खाद्य पदार्थ यथेष्ट मात्रा में पाये जाते हैं, हम उनके गुणों का अनुमान कर सकें। यह ध्यान रखने की बात है कि ये तत्व अधिक गर्मी सहन नहीं कर सकते। यदि इनको आध घंटे तक तेज आंच में पकाया जाय, तो प्रायः सभी नष्ट हो जाते हैं और उनसे कोई लाभ नहीं उठाया जा सकता। विटामिन्स, प्रोटीन्स, कार्बोहाइड्रेट्स आदि सभी पदार्थ ताजे एवं पूर्ण–रूप से विकसित फल और तरकारियों में अधिकतर पाये जाते हैं। कच्चे फलों में इनकी मात्रा कम होती है और अधिक पके हुए फलों में सब नष्ट होने लगते हैं। सूखे हुए फलों में भी इनका अंश कम हो जाता है। ;तु के अन्त में पूर्ण रूप से पके हुए फल एवं शाक–भाजी ही विशेष लाभदायक हैं।

हमारे यहां वस्तुओं के सेवन करने की अनोखी रीतियां हैं। हम गेहूं खाते हैं किंतु उसकी भूसी निकाल कर। चावल खाते हैं किंतु मांड निकाल कर। जिस भूसी और मांड में वैज्ञानिक निरीक्षण द्वारा बताये गये वास्तविक खाद्य पदार्थ अधिक अंशों में हैं, उन्हीं को हम निकाल देते हैं। यही हाल

शाक–भाजियों के साथ भी है। हम उनका सेवन करते हैं; किंतु या तो इन्हें अधिक घोलते और इतना उबालते हैं कि उनके विटामिन्स, प्रोटीन्स आदि नष्ट हो जाते हैं, या उनको गरम मसालों से इतना भर देते हैं कि तत्वों का असर जाता रहता है। अथवा उनके उन हिस्सों को छीलकर फेंक देते हैं, जिनमें अधिकांश तत्व पाये जाते हैं। फलों में प्रोटीन्स, कार्बोहाइड्रेट्स, कैलसियम, पोटेशियम, आयरन एवं आयोडीन सामान्य अंशों में रहते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक फल में अन्य विशेषतायें भी होती हैं। नीचे कुछ भारतीय फलों की विशेषतायें संक्षेप में दी जाती हैं:–

संतरा– इसमें विटामिन सी' अधिक मात्रा में है और 'ए' और बी' भी यथेष्ट अंशों में पाये जाते हैं। फल की प्रकृति गर्म और मधुर होती है। इसका रस बच्चों के लिए विशेष लाभदायक है। उनके समस्त अंगों की पुष्टि करता है। छोटे बच्चों को ठंडे दूध में संतरे का रस मिला कर देने से विशेष लाभ होता है।

नींबू– इस फल में विटामिन 'सी' अधिक है, और 'बी' भी काफी मात्रा में है। इसका रस शरीर की अग्नि को तीव्र करता है हल्का और पाचक है। पेट के दर्द और अजीर्णता में लाभ पहुंचाता है। संतरे एवं नींबू का रस मिलाकर भी सेवन किया जाता हैं

गाजर– इसमें विटामिन 'ए' अधिक अंशों में हैं; किंतु विटामिन बी' और सी' भी यथेष्ट है। इसके अतिरिक्त इसमें फास्फोरस भी पाया जाता है, जो कि शरीर के अन्दर अग्नि उत्पन्न करता है। यह हल्का, स्वास्थ्यवर्द्धक और किसी भी प्रकार से हानिकारक नहीं हैं। गाजर विलायती हो अथवा देशी–गुण दोनों के एक ही हैं। लाल गाजर अधिक स्वादिष्ट होती है।

सेब,नाशपाती– दोनों फलों में विटामिन 'बी' और 'सी' सामान्य मात्रा में है। सेब में विटामिन 'ए' भी यथेष्ट है। दोनों ही मधुर और शीतल प्रकृति के हैं। इनको बिना छीले हुए ही सेवन करना उचित है। कारण फलों का अधिकांश तत्व छिल्कों में ही रहता है। छीलने के पश्चात् इन फलों पर वायु का शीघ्र ही प्रभाव पड़ता है और वे लाल पड़ जाते हैं, अतः सेवन करने के समय ही काटना चाहिए।

आम– इसमें विटामिन 'ए' अधिक मात्रा में है। इसकी प्रकृति गर्म होती है। शरीर में कान्ति उत्पन्न करता है, एवं थकावट को दूर करता है। आम के टुकड़े और रस को ठंडे दूध में मिला कर पीने से शीघ्र ही पच जाता है, और स्वास्थ्यवर्द्धक भ्री होता है।

पपीता– इसमें विटामिन 'ए' और 'सी' यथेष्ट अंशों में है। यह अत्यन्त हल्का भोज्य पदार्थ है। पाचक एवं शीतल प्रकृति का है। नेत्रों को ठंडक पहुंचाता है और विशेषतया उदर रोगियों को अधिक लाभदायक है।

केला– इसमें विटामिन 'ई' अधिक मात्रा में पाया जाता है, और सामान्य अंशों में अन्य सभी विटामिन्स पाये जाते हैं। यह मधुर और शीतल होता है। भूख और प्यास को शान्त करता है; किंतु तनिक कठिनता से पचता है।

अंगूर– इसमें विटामिन 'ए' 'बी' और 'सी' तीनों ही सामान्य रूप से पाये जाते हैं। इनकी प्रकृति शीतल होती है। नेत्रों को विशेष लाभदायक है। यह शरीर को पुष्ट एवं ज्वर को शान्त करता है। छोटे अंगूर बड़ों से खट्टे होते हैं परन्तु दोनों के गुण समान हैं।

अमरूद– इस फल में विटामिन 'सी' अधिक है। यह शीतल प्रकृति का है। यह रक्त को शुद्ध रखता है एवं भूख को बढ़ाता है, शरीर के भीतरी अंगों की पुष्टि करता है। इसका बीज कठोर और अपचनशील होता है। अतः उसको निकाल कर सेवन करना चाहिए।

खीरा–ककड़ी– इनमें सामान्य अंशों में विटामिन 'ए' और 'सी' के अतिरिक्त फास्फोरस एवं लोहा यथेष्ट मात्रा में है। खीरा शीतल एवं हल्का होता है, इसका कड़वापन दूर करके, बिना

छीले सेवन किया जावे तो अच्छा है। ककड़ी कुछ गर्म और भारी होती है। ये फल प्यास को शान्त करते हैं।

लोगों की ऐसी धारणा है कि फल जितने अधिक दाम के होंगे, उतने ही लाभदायक होते हैं, किंतु वैज्ञानिक निरीक्षणों से सस्ते फलों–गाजर, खीरा–ककड़ी आदि; मंहगे फलों–सेब,अंगूर, अनार, आदि से अधिक लाभदायक एवं स्वास्थ्यवर्धक सिद्ध हुए हैं। पैसे में सेर भर बिकने वाली हरी शाकभाजियां जिनकी ओर संभवतः हमारा ध्यान भी नहीं जाता; वैज्ञानिक दृष्टिकोण से स्वास्थ्य के लिए विशेष रूप से हितकर हैं।

हरी तरकारियां— इनमें सब प्रकार के साग पात–सोया, मेथी,पालक, चौलाई, पुदीना, बथुआ, चना आदि सम्मिलित हैं। इनमें विटामिन 'ए' और 'डी' अधिक मात्रा में है। प्रोटीन्स की भी अधिकता होती है, एवं कार्बोहाइड्रेटस भी सामान्य मात्रा में पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त खनिज पदार्थ–कैलसियम, पोटेशियम, आयोडीन, भी यथेष्ट अंशों में होते हैं। इतने तत्व एक साथ किसी भी फल या तरकारी में नहीं मिल सकते। पालक के साग में उपर्युक्त तत्वों के अतिरिक्त फास्फोरस एवं विटामिन 'सी' और 'ई' भी काफी मात्र में होते हैं। ये सब बहुत ही हल्के, शीतल एवं पाचक होते हैं। अनेक तत्वों के होने के कारण शरीर के प्रत्येक अंग की पुष्टि करते हैं। ये क्षुधावर्धक और तरह–तरह रोगों पर लाभदायक हैं; किंतु इनको अधिक उबालने अथवा मसालेदार बनाने से सब तत्व नष्ट हो जाते हैं। यदि इनसे वास्तविक लाभ उठाना है तो उसी दशा में सेवन करना चाहिए। भाजी को धोकर, महीन काट कर नमक, मिर्च और सिरका डाल कर भली भांति खाया जा सकता है। अधिक स्वाष्टि एवं हितकर बनाने के लिए टिमाटर, प्याज, मूली के टुकड़े आदि डाले जा सकते हैं।

गोभी— इसमें विटामिन 'ए' 'बी' और 'सी' तीनों ही अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। फूल गोभी से पत्ता गोभी अधिक लाभदायक है। इसमें फास्फोरस भी पर्याप्त अंशों में है। इनकी प्रकृति शीतल है। ये पाचक एवं स्वास्थ्यवर्धक होती हैं।

टमाटर— इसमें विटामिन 'बी' और 'सी' अधिक मात्रा में हैं। विटामिन 'ए' भी यथेष्ट है। खनिज पदार्थ भी पर्याप्त अंशों में हैं। इसके सेवन करने की सबसे उत्तम विधि उसके रस को निकाल कर चीनी अथवा नमक के साथ पी जाने की है। अथवा उबलते जल में 2–3 मिनट तक डाल कर चटनी की भांति भी खाया जा सकता है। अधिक उबालने या भूनने से सब तत्व नष्ट हो जाते हैं।

मूली, शलजम— इनमें विटामिन 'बी' के अतिरिक्त फास्फोरस और लोहा यथेष्ट अंशों में है। शलजम में विटामिन 'ए' और 'सी' भी सामान्य मात्रा में पाया जाता है। इनके सेवन करने से नेत्रों को विशेष लाभ होता है।

आलू— इसमें प्रोटीन्स, कोर्बोज, और विटामिन 'ए' 'बी' 'सी' सामान्य अंशों में पाया जाता है। भारत एवं अन्य देशों में इसका अधिक प्रचार है; किंतु अधिकतर मसालों में भून कर सेवन किया जाता है, जिसके कारण कुल तत्व नष्ट हो जाते हैं, अन्यथा यह पुष्टिकारक एवं स्वास्थ्यवर्धक होता है।

हरे चने, मटर— इनमें बी' विटामिन और प्रोटीन्स सामान्य अंशों में होते हैं। इसके अतिरिक्त हरे मटर में विटामिन 'ए' और 'ई' भी पर्याप्त है। भिगोये हुए चने और मटर में जबकि अंकुर निकल आते हैं, विटामिन सी' अधिक मात्रा में पाया जाता है। वे अधिक लाभदायक होते हैं। सूखे हुए हरे चने और मटर में कार्बोहाइड्रेट्स यथेष्ट अंशों में पाया जाता है। इनकी प्रकृति शीतल होती है। ये पुष्टिकारक एवं रक्त को शुद्ध रखते हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य सहस्रों फल एवं तरकारियां हैं, जिन में कोई न कोई विशेषता है, और सच तो यह है कि कोई भी फल या शाक–भाजी खाई जाए, उसका अवश्य ही स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। प्राकृतिक दशा में ही उनका सेवन करें। उनके वास्तविक स्वाद में अधिक कृत्रिमता लाने की चेष्टा न करें। तभी हम उनके गुणों से पूर्ण लाभ उठा सकते हैं।

'फल' मनुष्य शरीर का एक प्राकृतिक चिकित्सिक है। इसको प्रतिदिन यथेष्ट मात्रा में सेवन करने से हमारा शरीर तमाम रोगों से मुक्त हो कर हृष्ट–पुष्ट हो जाता है। शरीर के अन्तर्गत एक जाग्रति एवं नूतन स्फूर्ति उत्पन्न होती है।

फॉसिल की खोज में*

विद्याभास्कर शुक्ल

लखनऊ विश्वविद्यालयका वनस्पति–शास्त्र–विभाग भारतवर्षमें प्रथम श्रेणीका है। इस विभाग की एम. एस–सी. आदि कक्षाओंमें भारतवर्षके भिन्न–भिन्न सूबोंसे केवल विद्यार्थीही नहीं आते, वरन् शोधके लिए भी अनेक छात्र आते हैं। इन छात्रोंमें अनेक विभिन्न विश्वविद्यालयोंके अध्यापक आदि भी होते हैं। सरस्वतीके इस मन्दिरमें इन दूरवर्ती छात्रोंके केन्द्रीभूत होनेका एक प्रधान कारण है विश्व–विख्यात वैज्ञानिक प्रो. बीरबल साहनी। गत वर्ष आपकी देख–रेखमें पेलियोबोटैनी (Palaeobotany) में शोध–कार्य करनेको आए हुए छात्रोंका बड़ा सुन्दर मेला–सा लग गया था। इन छात्रोंमें थे काशी–विश्वविद्यालयके अध्यापक श्री खुशीराम मेहता, खालसा–कालेज अमृतसरके वनस्पति–शास्त्रके अध्यापक श्री गोपालसिंह पुरी, जम्मू–कालेजके भूगर्भ शास्त्रके अध्यापक श्री प्राणनाथ गंजू, लखनऊ–विश्वविद्यालयके एम. एस–सी. (वनस्पति–शास्त्र) में सर्वप्रथम उत्तीर्ण होने वाले श्री दिव्यदर्शन पंत तथा अध्यापक श्री राजेन्द्र वर्मा सिठोले, जो प्रो. साहनीके सहकारी भी हैं, और इन पंक्तियोंका लेखक। जुलाईसे जनवरीके अन्त तक लगातार पेलियोबोटैनिकल प्रयोगशालामें बैठे–बैठे तथा दूरवीक्षण–यंत्रमें झाँकते–झाँकते हम लोग कुछ थक–से गए थे। अतः यह विचार हुआ कि कहीं बाहर सैरपर चला जाय। चूँकि हम सबका शोध–कार्य फॉसिल वनस्पतियों (Fossil plants) के सम्बन्धमें ही था और भारतवर्षमें कुछ स्थान ऐसे हैं, जहाँ ये काफी संख्यामें मिलते हैं, हम लोगोंने फॉसिलोंकी खोज (Fossil Excursion) में निकलनेका ही निश्चय किया।

फिर हम लोगोंको दूसरा प्रलोभन यह था कि प्रो. साहनीकी अध्यक्षतामें यह यात्रा खाली सैरही न होकर विशेष शिक्षाप्रद तथा लाभदायक भी होगी। यों तो सन् 1931 में जब इन पंक्तियोंका लेखक लखनऊ–विश्वविद्यालयमें एम. एस.–सी. का छात्र था, तब वह एक बार प्रो. साहनीके साथ एक ऐसीही यात्रापर बिहारमें राजमहलकी पहाड़ियोंका चक्कर लगा आया था। इसके अतिरिक्त एक–दो बार और भी प्रो. साहनी एम. एस–सी. के छात्रोंकी परीक्षा लेने नागपुर पधारे थे, तब भी मध्य–प्रान्तकी कुछ जगहोंमें उनके साथ जानेका अवसर मिला था। प्रो. साहनीकी सम्मतिसे यह तय पाया गया कि यात्रा मुहर्रमकी छुट्टियोंमें की जाय और हम लोग बिहार चलें। आवश्यक सामान–जैसे फॉसिलोंको तोड़नेके लिए छेनी, हथौड़ी, उन्हें लपेटनेके लिए रद्दी कागज, कई टोकरियाँ, थैले, खाने–पीनेकी चीजें आदि–इकट्ठा हुआ और गत 27 जनवरीकी शामको हम लोग साहबगंज जानेके लिए लखनऊ स्टेशनपर पहुँच गए। हम लोगोंके दलमें थे श्री गुरुदेव, लखनऊ–विश्वविद्यालयके अध्यापक डाक्टर ए. आर. राव, सर्वश्री पुरी, पंत, सिठोले, गंजू, इन पंक्तियोंका लेखक तथा दो नौकर।

---

* *विशाल भारत*, अगस्त 1942

हम सब तो तीसरे दर्जेमें बैठे ही; परन्तु हमारे साथ भारतवर्षके विशिष्ट विज्ञानवेत्ता प्रो0 साहनी भी वहीं बैठे। हमारे साथियोंमें से श्री पुरीकी शरीर–सम्पत्ति शायद सर्वश्रेष्ठ थी, अतः सामानकी व्यवस्था आदि उन्हींके जिम्मे छोड़ी गई। ट्रेनमें जगह काफी थी, अतः हमारे बिस्तर ठीक तरहसे जमा दिए गए। प्रो. खुशीराम मेहता कुछ काल पूर्वही अपने घर (बनारस) चले गए थे, अतः हमने उन्हें यथासमय तार द्वारा इस यात्राकी सूचना दे दी थी। फलतः रातको 1 ।। बजे मेहता जी बनारस स्टेशनपर मिले। कहना न होगा कि रातका अधिकांश भाग हम लोगोंका बातें करतेही बीता। प्रातःकाल जिस स्टेशनपर गाड़ी रुकी, वहाँ हमने अपनी चाय आदिकी व्यवस्थाकी। उस समय बड़े आश्चर्यसे हमें मालूम हुआ कि प्रो. साहनी अपने साथ हम लोगोंके लिए बहुत काफी खानेका सामान (मक्खन, मिठाइयाँ, फल आदि), सेलुलाइड के करीब 2–3 दर्जन चम्मच, प्याले, तश्तरियाँ आदि रख लाए हैं। इस प्रकार बड़े आनन्दपूर्वक रेलका सफर करते हुए संध्या–समय हम लोग साहबगंज पहुँचे।

साहबगंज पहुँचनेके पहलेही प्रो. साहनीने हम लोगोंसे पूछ लिया था कि वहाँ पहुँचकर हम लोग अपना प्रोग्राम कैसा–क्या रखेंगे। जहाँ–जहाँ हम लोगोंको जाना था, करीब–करीब पैदलही जाना था। हम लोगोंमें से कुछने वह मार्ग निश्चित किया, जिससे करीब 70 मीलका सफर 5 दिनमें तय करना था और शेषने वह मार्ग, जिससे उतनेही समयमें 50 मील चलना था। प्रश्न फासलेका नहीं था, वरन् इस बातका कि किस मार्गसे जानेसे अधिक मूल्यवान फॉसिल मिल सकेंगे। अन्तमें 50 मील वाला मार्गही सबने तय किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर नित्यकर्म आदिसे सब निवृत्त हुए। अब हमें औंटिया नामक स्थानको जाना था। यह स्थान साहबगंजके आगे महाराजपुर तथा बालझरी स्टेशनोंके बीचमें रेलवे लाइनसे लगभग दो मील बाईं ओर है। प्रश्न यह था कि वहाँ पहुँचा कैसे जाय। कोई सवारी गाड़ी इस स्थानके दो स्टेशनोंके बीच खड़ी नहीं होती थी और हम यह भी चाहते थे कि प्रातःकाल वहाँ जाकर शामको वापस लौट आयें। प्रो. साहनीने पता लगाया कि सबेरे 8 बजे एक मालगाड़ी उस ओर जाती है और वही गाड़ी शामको वापस भी आती है। फौरनही हम लोग उस गाड़ीके गार्ड महोदयसे मिले। वे हम लोगोंमें से कुछके परिचित भी निकले और हमें अपने साथ ले जानेको राजीहो गए। बस, हम सब उनके साथ उनके डिब्बेमें ही बैठ गए और निर्दिष्ट स्थानको चल दिए। इसी समय हम लोगोंके जीमें आया कि आज इंजनमें क्यों न बैठा जाय। प्रो. साहनीके सामने यह बात कहनेमें हमें जरा संकोचहो रहा था; पर हम लोगोंकी कानाफूसीसे जब उनका ध्यान हमारी ओर आकर्षित हुआ, तब उन्होंने पूछा कि क्या बात है? हमारी बात सुनकर वे मुस्कराए और न केवल हमें सहर्ष इंजनमें बैठनेकी अनुमतिही दे दी, बल्कि स्वयं भी हम लोगोंके साथ इंजनमें बैठे। इस समय सिठोले जीने उनका एक चित्र भी खींचा।

रास्तेमें महाराजपुर स्टेशन गाड़ी कुछ देरके लिए रुकी। यहां उतरकर हम लोगोंने स्टेशनके आसपाससे कई फॉसिल इकट्ठे किए। महाराजपुरसे लगभग 4 मील चलकर हमारी गााड़ी फिर रुकी और हम सब उतरकर वहाँसे ठीक बाईं ओर चल दिए। चलते समय गार्ड महोदयने हमें यह आश्वासन दिया कि वे हमें शामको वापस भी ले चलेंगे। सामनेही लगभग दो मीलपर एक पहाड़ी दिखाई देती थी। व्रही औटिया स्थान था। वहाँ पहुँचतेही हम लोगोंने अपना–अपना रास्ता चुन लिया और उस पहाड़ीके घने जंगलमें फॉसिल चुननेके लिए चल पड़े। लगभग 4 घंटे तक हम लोगोंने लगातार खोजकी और हममें से प्रत्येकने बहुत–से फॉसिल इकट्ठे किए। बड़े हर्षकी बात है कि हमें एक फॉसिल ऐसा मिला, जिसका वजन लगभग 18–20 मन था और वह इतना बहुमूल्य था कि उसे वहाँ छोड़नेको हमारा जी नहीं होता था। उसमें प्राचीन कालकी असंख्य पत्तियां, फूल आदि थे,

जो उच्च अध्ययनकी दृष्टिसे बड़े महत्वके थे। इसी बीच हममें से कुछ लोग पहाड़ीके नीचे बस्तीमें चले गए और वहाँसे कुछ खानेका समान भी ले आए। चार–पाँच घंटे बाद हम सब मिले और भोजन किया।

अब हमारे सामने यह समस्या उपस्थित हुई कि वे सब फॉसिल, विशेषकर वह बड़ा फॉसिल – रेलकी लाइन तक कैसे लाए जायें। तुरन्तही गाँवके कुछ संथालोंको इकट्ठा किया गया और हम सब लोग वनस्पतिके पाषाण रूपमें परिवर्तित इन भारी फॉसिलोंको संथालोंकी गाड़ियोंपर रखने लगे। हमें इस बातका बड़ा ध्यान था कि आपसमें रगड़नेसे कहीं इनके कुछ चिह्न मिट न जायें, इसलिए हम उन्हें पत्तियों आदिके बीचमें दबाने लगे। उस बड़े फॉसिलको उठानेमें बड़ाही परिश्रम करना पड़ा। इस अवसर प्रो0 साहनीने भी शारीरिक श्रमका जो परिचय दिया, उसे देखकर तो हम सब दंग रह गए।

हमारे फॉसिल लादते समय संथाल गण सब जुट आए थे और साथही अपने नगाड़े, तीर आदि भी लेते आए थे। इन्होंने दस–पन्द्रह मिनट हमें अपना नृत्य भी दिखाया। इनकी इस कलामें हमें कुछ सुर और तालका भी भास हुआ। इन लोगोंके तीर–कमान भी बड़े भयंकर होते हैं। किसी जंगली जानवरका थोड़ी देरमें ही शिकारकर लेना इनके बाएँ हाथका खेल है। जिस पहाड़ीपर हम लोग गए थे, वहाँ उन लोगोंके कथनानुसार कुछ चीते आदि हिंस्र पशु भी थे, और उनमेंसे कुछका तो संथालोंने शिकार भी किया था। इन लोगोंके तीर बड़ी दूर तक जाते हैं और इनका निशाना बहुधा अचूक होता है। संथालोंके दर्जनों बच्चे भी हमारे आस–पास जुट आए थे। इन्होंने भी हमें अपनी धनुर्विद्याका खासा अच्छा परिचय दिया। इनमेंसे कुछ इस विद्यामें काफी निपुण थे। आमतौरसे संथालोंका स्वास्थ्य बुरा नहीं होता और शरीर सुदृढ़ होता है।

दूसरे दिन प्रातः काल हम लोग फिर उसी दिशामें गए; पर इस बार तालझरीके भी आगे तिनपहाड़ नामक स्थान तक गए। इसी स्थानसे कुछ वर्ष पूर्व प्रो. साहनीके एक शिष्य डाक्टर जैकब, डी. एस–सी., ने – जो आजकल जियोलाजिकल सर्वे ऑफ् इण्डिया, कलकत्ता, में असिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं – एक नया फॉसिल ढूँढ़ निकाला था, और जिसका नाम उन्होंने 'तिनपहाड़ी' रखा था। यह तथा अन्य कई फॉसिल हमें यहीं मिले। इन्हें ढूँढ़नेके लिए हम पहाड़ोंकी चोटियोंपर चढ़े। दाहिनी ओरकी चोटीपर प्रो. साहनी, डाक्टर राव तथा श्री गंजू चढ़े। बीच वाली चोटी इन पंक्तियोंके लेखक, श्री पुरी और श्री मेहताको दी गई। बाईं ओरकी चोटीपर श्री सिठोले तथा श्री दिव्य दर्शन पंत चढ़े। इन पहाड़ियोंकी चढ़ाई बड़ी कठिन थी। चोटियोंपर से हम लोग आगे–पीछी उतरे। प्रो. साहनी पहलेही स्टेशन पहुँच गए थे। हमने पहाड़के नीचे कुछ कुलियोंको गिट्टी तोड़ते देखा। श्री सिठोलेने इनका भी एक चित्र लिया। ये सब कुली संथाल थे। इनके बच्चे भी इनके साथही काम करते थे। अन्तमें हम सब लोग गाड़ीमें आकर बैठे और साहबगंजके लिए चल दिए। रास्तेमें हमारी गाड़ी वहाँ आकर रुक गई, जहां हम पहले दिन उतरे थे। वहाँ हमने देखा कि हमारे फॉसिल वहाँ तक आ गए। अब हमारे पास समय बहुत थोड़ा था और उन फॉसिलोंको गाड़ीपर चढ़ाना था। छोटे–छोटे फॉसिल चढ़ानेमें तो अधिक समय नहीं लगा; पर उस बड़े फॉसिलने हमारी शक्तिकी पूरी आजमाइश करा ली। उस विशाल फॉसिलके चारों ओर तार लपेटकर गार्डके डिब्बेमें खड़े होकर प्रो. साहनीने उसे ऊपरसे पूरी शक्तिसे खींचा। आठ–दस कुलियोंकी सहायतासे अन्तमें वह गाड़ीमें चढ़ा दिया गया। प्रो. साहनीने कुलियोंको मुक्तहस्त होकर पैसे दिए, और उन्हें खुशी और सन्तोष तब हुआ, जब उन्होंने प्रत्येक कुलीको सन्तुष्ट देखा। गाड़ी चल दी और घंटे–डेढ़–घंटेमें हम लोग साहबगंज आ गए।

हमारे तीसरे दिनकी यात्रा बड़ी लम्बी और कष्टसाध्य थी। इस दिन हम महाराजपुरकी ओर

न जाकर उससे उल्टी दिशामें मिरजा चौकी गए। प्रोग्राम यह तय हुआ कि दिन–भर कुछ मुख्य–मुख्य स्थान देखते जायँ और शामको करीब 7 बजेकी गाड़ीसे वापस चला जाय। दिन प्रात:कालकी गाड़ीसे हम मिरजा चौकी आ गए। अन्दाज यह लगाया गया कि पूरी यात्रा करीब 25 मीलकी होगी। रास्तेका निश्चय हुआ और सबसे पहले प्रो. साहनी उस मंजिलको तय करनेके लिए आगे बढ़े। हम सब लोग उनके पीछेहो लिए। खाने–पीनेका सामान साथमें था ही। हम लोगोंने चार–पांच कुली भी ले लिए; पर न जाने क्यों ये कुली बड़े डरे हुए–से प्रतीत होते थे।

जाड़ेका मौसम था। चलनेमें काफी आनन्द आ रहा था। जहाँ फॉसिल मिलनेकी कुछ आशा थी, वहाँ हम रुक जाते और फिर आगे बढ़ते। कुली तथा गाँवके लोग भी बड़े चकित होते थे कि हम लोग पत्थरोंको इकट्ठा करके क्या करेंगे? इसी प्रकार हम लोगोंने दोपहर तक करीब 14 मीलका फासला तय करके वृन्दाबन नामक गाँवमें पहुँचे। हमारी इच्छा थी कि वहाँ कुछ विश्राम करें; पर प्रो. साहनीने यह प्रस्ताव रखा कि वहाँसे दो मीलकी दूरीपर एक नाला खैरबानी है, वहीं क्यों न चला जाय। इसी स्थानसे प्रो. साहनीके एक शिष्य डाक्टर के. एम. गुप्ता, डी. एस–सी. ने एक नया फॉसिल (Williamsonia) ढूँढ निकाला था।

हम सब लोग खैरबानी पहुँचे। यहाँ करीब दो घंटे खोज करनेपर हमें कुछ अच्छे फॉसिल मिले। उनमेंसे पाषाण–रूपमें चीड़ (Coniferous) जातिकी एक लकड़ी मिली और एक प्रकारका दूसरा फॉसिल ;ळसमपबीमवपकमे) भी। वहीं हमने भोजन आदि किया और विचार हुआ कि अब स्टेशन चलें। यहाँ एक मजेदार घटना हुई हमारे कुलियोंमें से एक–दो बहुत घबरा गए थे तथा उनमेंसे एक, जो पथ–प्रदर्शक था, चुपकेसे भाग गया। फौरनही हममेंसे दो–तीन उसे ढूँढ़नेको दौड़ पड़े। विश्वास यही था कि वह समीपके छोटेसे गाँवमें ही कहीं छिप गया है। श्री पंतने यह अन्दाज लगाया कि वह अमुक झोपड़ेमें ही घुसा होगा। श्री पुरीने बड़ी निर्भीकतासे उस झोपड़ेमें घुसकर देखा। कुली और श्री पुरीकी आँखें चार होतेही कुली उस घरके अन्दरही लघुशंका करनेके बहाने बैठ गया। इसपर हमें बड़ी हँसी आई। खैर, जैसे–तैसे कुछ पैसे और खाना देकर उसे मनाया और फिर चल पड़े।

अब हमें स्टेशन वापस जाना था। सरल मार्गसे स्टेशन करीब 6 मील था। थके–थकाए, घूमते–घामते हम लोग एक पहाड़पर आए, जिसका नाम 'भुतहा' पहाड़ था। पाठक विश्वास करें, जैसा इस पहाड़का नाम है, वैसाही यह विकट भी है। करीब, 1000 फीटकी एकदम सीधी–सी चढ़ाई है। प्रो. साहनीकी यह इच्छा हुई कि इस पहाड़के ऊपर चढ़कर हम लोग उस पार उतरें। करीब एक फर्लांग सीधी चढ़ाई चढ़नेके बादही हम लोग बुरी तरह थक गए। प्रो. साहनीने एक दूसरा रास्ता पकड़ा था, जो हमारे रास्तेसे भी बीहड़ था। साथके कुली भी, जो वैसी चढ़ाईके विशेष अभ्यस्त न थे, करीब रो–से दिए। उन्हें किसी प्रकार रोके रखनेके लिए हमने अपनी मिठाइयाँ, फल आदि उन्हींको खिला दिए और हम लोग बिना कुछ खाए–पिएही जैसे–तैसे पहाड़ की चोटी पर पहुँचे। इस पहाड़की चोटीपर हम लोगोंने करीब पाँचही मिनट विश्राम किया होगा कि हमारा एक कुली बड़े जोरसे चिल्ला उठा। हमने देखा कि हमारे पासही पहाड़के जंगल और घासमें आग लग गई है और बड़ी तेजीसे आगे बढ़ रही है। हम लोगोंने थोड़े धैर्यसे काम लिया और जल्दीसे उतरने लगे। पहाड़के नीचे एक बड़ा सुन्दर निर्मल जलका कुण्ड था। उसमें बड़े सुन्दर कमल खिले थे। किनारेके वृक्षोंकी परछाईं दर्पणकी भाँति साफ दिखलाई पड़ रही थी। उस तालाबके किनारे कुछ देर बैठकर हम सब जल्दीसे स्टेशन आए। बड़े आश्चर्यसे हमने देखा कि हमारे आनेके चार या पाँच मिनट बादही गाड़ी आ गई। उसमें बैठकर हम लोग शामको साहबगंज आ गए।

चौथे दिन हम लोगोंकी लखनऊ वापस आनेकी तैयारी थी; पर उसके पहले प्रथम दिन तथा अन्य दिनोंके जो फॉसिल साहबगंज आ गए थे, उन्हें पैक करके लखनऊ भेजनेके लिए रेलवेको

सुपुर्दकर देना था। हम लोगोंने कुछ पैकिंग–केस खरीद लिए। श्री सिठोले फॉसिलोंपर नम्बर डालने लगे तथा प्रो. साहनी अपने हाथसे उन्हें पैक करने लगे। दोपहर तक सब फॉसिल पैकहो गए। इधर हमारे अन्य साथियोंने हमारा सामान पैककर लिया। माल–दफ्तरसे हम लोग दौड़ते हुए स्टेशन आए और गाड़ीमें बैठ गए। इधर हमारे मित्रोंने गाड़ीमें सब सामान रख लिया था और हमारे आतेही गाड़ी चल दी। इस प्रकार बड़े आनन्दसे प्रो. साहनीके साथ हमारी यह यात्रा पूरी हुई।

करीब 15 दिन बाद हमारे सब फॉसिल भी आ गए, और बड़ी मनोरंजक बात यह है कि जिस दिन फॉसिल आए, उसी दिन प्रो. साहनीके साथ उनके एक सामान्य अतिथि भारतवर्षके एक दूसरे प्रमुख वैज्ञानिक, कलकत्ता विश्वविद्यालयके भौतिक विज्ञान–विभागके अध्यक्ष प्रो. कृष्णन् भी थे । प्रो. कृष्णन्ने भी उन फॉसिलोंको बड़े चाव और उत्सुकतासे देखा। छोटे–छोटे फॉसिल प्रयोगशालामें रख दिए गए और उस बड़े फॉसिलके काटे जानेका प्रबन्ध होने लगा। अभी पता चला है कि इसके अन्दर अन्य कई नए फॉसिल निकले हैं। यह फॉसिल शायद वनस्पति–जगत्में अद्वितीय है। हमें विश्वास है कि हमारे इस प्रवासमें जो फॉसिल मिले हैं, उनसे भविष्यमें खोज होनेपर कई नई बातें और परिणाम निकल सकेंगे।

वृद्धावस्था और मृत्यु का प्रश्न*

डा. श्रीरंजन, एम. ए., डी. एस–सी.

संभवतः विज्ञानके किसी विभागने मनुष्य जातिका ध्यान उतना आकर्षित नहीं किया है जितना कि उसके जीवनका प्रश्न। साधारणतः अब तक ऐसा विश्वास किया जाता था कि ज्यों–ज्यों मनुष्यकी आयु बढ़ती जाती है – वह वृद्धावस्थाको प्राप्त होता है – त्यों–त्यों वह मृत्युके समीप आता जाता है किन्तु अब यह प्रमाणित किया जा चुका है कि यह कथन पूर्णतया सत्य नहीं है। कुछ छोटे जीवोंमें उनकी अमरता दिखलायी गयी है। इन जीवोंमें एक 'पारामीसियम' भी है। वह जीव केवल एक सेलका है। नर व मादा धर्मोंके सम्मेलनके परिणाम–स्वरूप इन जीवोंकी वंश–वृद्धि होनेके अतिरिक्त इनकी संख्या साधारण विभाजनसे भी बढ़ती है। वह जीव एक सीमा तक बढ़नेके पश्चात् दो बराबर भागोंमें विभाजितहो जाते हैं एवं दोनों भाग अलग–अलग अपनी जीविका संचालन करते हैं। वे भाग उसी प्रकार बढ़नेके बाद उपर्युक्त विभाजनकी विधिकी पुनरावृत्ति करते हैं। इस प्रकार उनके जीवनमें मृत्युका प्रश्नही नहीं आता। इस प्रकार वुडरफ महोदयने 'पारामीसियम' को 13 वर्षसे अधिक समय तक रक्खा। इस विधिमें नर एवं मादा धर्मोंका सम्मेलन न होनेका विशेष रूपसे प्रबन्ध किया गया था और केवल विभाजन क्रिया द्वाराही उनकी वंश–वृद्धिकी गई थी। उपर्युक्त समयमें पारामीसियमकी संख्या 85.. पीढ़ियों तक पहुँच गई। इस बीचमें एक भी जीवकी मृत्यु नहीं हुई। इस दृष्टांतको देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि कुछ जीव निस्संदेह अमर हैं।

इस प्रकारकी विभाजन क्रिया द्वारा जीवोंकी संख्या–वृद्धि स्पंज, फ्लैट–वर्म एवं अन्य अगणित सेलोंसे–निर्मित जीवोंमें भी होती है। प्लेनेरिया नामक कीड़ा तालाबोंमें पाया जाता है, संपूर्ण रूपसे बढ़नेके पश्चात् शरीरके पिछले भागमें एक सिकोड़ प्रकट होती है और जीवके शरीरसे क्रमशः वह भाग अलगहो जाता है। कीड़ेमें नूतन पूँछ निकल आती है और विभाजित भाग अपना एक सिर निर्माणकर नया जीवन संचालन करता है। यह क्रिया पुनः होती है और उनकी संख्या बढ़ती जाती है। वृक्षोंमें भी इस प्रकारकी अमरता पायी जाती है। वास्तविकता तो यह है कि पुरानेसे पुराने वृक्षमें ऐसे विभाजन क्रिया वाले सेल उपस्थित रहते हैं। वृक्षोंकी वंश वृद्धिका साधारण साधन उनका कलम लगाना है। यह विधि स्वयं इस बातको प्रमाणित करती है कि वृक्षोंके कुछ अंग अमर हैं। कारण यह है वह कलम अत्यन्त शीघ्रतासे बढ़कर वृक्षमें परिणतहो जाती है और जिसको कि हम नीबू, आम या अमरूदका पेड़ समझते हैं वह एक पुराने वृक्षकी शाखा मात्र है जो कि कलम द्वारा बढ़कर संपूर्ण वृक्षमें परिणतहो जाती है।

भली–भांति विकसित अगणित–सेलोंके जीवोंमें जनन–क्रिया विभिन्न प्रकारसे होती है। दो विशेष सेलोंके संयुक्त प्रभावसे एक नूतन जीव अपना जीवन आरम्भ करता है। उपर्युक्त सेलोंको

---

* *विज्ञान*, सितम्बर 1942

जर्म सेल कहते हैं जिनमें कि एक असाधारण शक्ति होती है। मनुष्य जातिमें 'ओवा' नामक जर्म-सेल स्त्रीमें और 'स्पर्म' नामक मनुष्यमें पायी जाती है। इन दोनोंके सहयोगसे एक नया जीव अपना अस्तित्व स्थापित करता है। संयुक्त-क्रियाके पश्चात् उनका दो सेलोंमें विभाजन हो जाता है। पुनः वे विभाजित होते हैं और सेलोंकी संख्या बढ़ जाती है। जर्म सेलमें परिणतहो जाते हैं और शेष शरीरके निर्माणमें सहयोग देते हैं। ये शरीर निर्मायक सेल कुछ समयके पश्चात् वृद्धहो जाते हैं और मृत्युके ग्रास हो जाते हैं। यही हाल उन जर्म सेलोंका होता है जो शरीरके अंतर्गत रह जाते हैं किन्तु वे जर्म सेल जो शरीरके बाहर निकल आते हैं एवं स्त्रीके ओवाके साथ संयुक्त होकर एक नूतन जीवका निर्माण करते हैं वे अपना अस्तित्व उस नये शरीरमें बनाये रखते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि शरीरकी मृत्युहो जाती है किन्तु जर्म सेल सदा जीवित रहता है। वह केवल एक शरीरको छोड़कर दूसरेमें चला जाता है और अपना अस्तित्व स्थापित रखता है।

लोब महोदयके चमत्कारिक आविष्कारोंने यह प्रकट किया है कि अंडेके बढ़नेके लिये नर और मादा धर्मोंका परस्पर मिलना हमेशा आवश्यक नहीं होता। मेंढकके अंडोंमें नर धर्मका कार्य एक सुई द्वारा संपन्न किया जा सकता है। अंडेमें तनिक सुई चुभो देनेपर अंडेके बढ़नेकी क्रिया आरम्भ हो जाती है। इस अंडे द्वारा उत्पन्न मेंढक एक वर्ष तक जीवित रहा। लोब महोदयने अंडेका रसायनिक भाग भी अध्ययन किया। साधारणतः समुद्रके 'अर्चिन' नामक जीवके अंडे जो कि नर धर्मके संपर्कसे रहित थे वे समुद्रके जलमें अधिक समय तक रखनेसे कुछ समयके बाद नष्ट हो जाते थे किन्तु यदि वे रासायनिक पदार्थ जैसे ब्यूट्रिक एसिडके संपर्कमें रक्खे जाते हैं तो उनके नष्ट होनेकी सम्भावना जाती रहती है और उनमेंसे मेढकके बच्चे निकल आते हैं।

इन परिणामोंसे जीवनका वैज्ञानिक अस्तित्व भलीभांति स्पष्टहो जाता है और इस जीवनकी रासायनिक क्रियाका प्रतिपालन करना मनुष्यकी ज्ञान-शक्तिके ऊपर निर्भर है। लोब महोदयके अनुसार एक सेलमें दो प्रकारकी क्रियाएँ एक साथ हो रही हैं (1) सेलोंका क्षय और मृत्युकी ओर प्रस्थान और (2) क्रिया सेलोंका विभाजन होकर क्रमशः संख्या बढ़ना। और यदि किसी प्रकार प्रथम क्रिया यानी सेलोंका क्षय किसी प्रकार रोक दिया जावे तो दूसरी क्रिया सेल निर्माणका कार्य-अनिश्चित रूपसे संपन्न होता चला जावे। हमें ये भी ज्ञात है कि सेलोंकी क्षय एवं मृत्यु 'एनजाइम' के प्रभावसे होती है। अतः यदि इस प्रभावको रोका जा सके तो जीवोंकी आयु बढ़ाई जा सकती है। इस कार्यके लिए 'पोटैसियम-सायनाइड' एक रासायनिक पदार्थ है। लोब महोदयने यह दिखलाया है कि यदि इसका अत्यन्त थोड़ी संख्यामें समुद्रके जलमें सम्मिश्रणकर दिया जावे तो समुद्रके अर्चिनके अंडे साधारण जलमें रक्खे अंडोंसे प्रायः तिगुने कालसे अधिक समय तक जीवित रहते हैं और उनके शीघ्रही नष्ट होनेकी सम्भावना जाती रहती है।

केवल जर्म सेलही नहीं किन्तु किसी-किसी दशामें शरीरके सेलोंको भी कृत्रिम-रूपसे बढ़ाया जाकर अनिश्चित समय तक जीवित रक्खा जा सकता है। वर्नर महोदयने सफलतापूर्वक मुर्गीके गर्भावस्थाके हृदय और नसके कुछ सेलोंको बाहर निकालकर रक्तमें अनेक समय तक सुरक्षित रक्खा। आपने अपने अनुसंधानों द्वारा यह प्रकट किया कि कुत्ता, बिल्ली और मनुष्यके समस्त सेल उपर्युक्त विधि द्वारा पर्याप्त समय तक जीवित रक्खे जा सकते हैं। केजल महोदयने एक प्रयोगमें मुर्गीके हृदयके कुछ भागोंको 18 वर्ष तक सकर्मक क्रियामें जीवित रक्खा। यह काल मुर्गीके बच्चोंके जीवित रहनेके समयसे कहीं अधिक है। वह भाग आज भी उसी प्रकारकी क्रियामें है जैसा कि वह 18 वर्ष पहले था। वास्तवमें ऐसा ज्ञात होता है कि यह महोदय उसे अनिश्चित समय तक जीवित रक्खेंगे।

इस बातके अनेक प्रमाण हैं कि जीवोंके जीवित रहनेका समय उसकी वंश-परम्पराके ऊपर

भी निर्भर होता है। अनेक ऐसे वार्षिक वृक्ष हैं जो कि बीजसे लेकर फूलके फलने तककी क्रिया केवल कुछही महीनोंमें समाप्तकर देते हैं। मनुष्यकी औसत आयु प्रायः 1.. वर्षसे कुछ कम है। किन्तु यह दिखलाया गया है कि मनुष्यकी आयु उनके वंशपर होती है। कुछ ऐसे वंश हैं जिनमें लोग 5. वर्ष तकही जीवित रहते हैं और दूसरे वंशोंके लोग साधारण रूपसे अधिक काल तक जीवित रहते हैं। पर्ल महोदयने 'ड्रोसोफिला' नामक फलकी मक्खीका अध्ययन करते हुए यह दिखलाया है कि लंबे पंख वाली मक्खियाँ नाटे पंखों वालोंसे अधिक समय तक जीती हैं, इस अध्ययनके फलस्वरूप आप इस परिणाम पर पहुँचे हैं:–

अ–>शक्ति का बाहरी साधन

ब–>स जीवकी संचित शक्ति जो कि अ–>स में परिणत करनेकी क्षमता रखती है।

उत्पत्तिः– 1–गर्मी 2–कार्य 3–जीवित पदार्थ 4–मलमूत्र

उपर्युक्त सूचीसे इस परिणामपर पहुँचते हैं कि यदि एक विशेष वंशका जीव बाहरी शक्तिके साथ इस प्रकार क्रिया करे कि 'स' का अधिक उत्पादन हो तो वह जीव निस्संदेह अधिक काल तक जीवित रह सकता है। इसके अतिरिक्त उक्त महोदय वृक्षोंकी संचित शक्तिका अध्ययन करते हुए एक अत्यन्त आवश्यक परिणामपर पहुँचे हैं कि जितनीही शीघ्रतासे वृक्ष बढ़ते हैं उनके जीवनकी आयु घटती जाती है। दूसरे शब्दोंमें जीवका जितना अधिक व्यस्त जीवन होता है वह शीघ्रही मृत्युका ग्रास होता है।

ऊपर यह दिखलाया जा चुका है कि यह आवश्यक नहीं कि सेल अमरहो किन्तु उनका जीवन कृत्रिम रूपसे अनिश्चित समय तकके लिए बढ़ाया जा सकता है। यह प्रयोग अभी पूर्ण रूपसे विकसित जीवोंके लिए जैसे मुनष्य आदिके साथ सफल नहींहो सका है। अतः मृत्युका कारण सेलोंके ऊपर न निर्भर रहकर जीव विशेषकी गूढ़ रचनापर आश्रित है। केजल महोदयने अपने प्रयोगों द्वारा यह प्रकट किया है कि जीव अंश केवल मलमूत्रोंको अलग रखकर अनेक समय सुरक्षित रखा जा सकता है। कारण यह है कि वे विषयुक्त होते हैं और जीवोंकी आयु घटा देते हैं। आपने उपयुक्त खाद्य सामग्री प्रदानकर जीव अंशोंको इस प्रकार अधिक समय तक जीवित रक्खा है। अतः अधिक समय तक जीवित रहनेके लिए यह आवश्यक है कि जीव अपने रक्त और शरीरके अन्य भागोंको मलमूत्र एवं अन्य विषयुक्त पदार्थोंके संपर्कसे सुरक्षित रक्खे। सेलोंकी मृत्यु चाहे वह शरीरके भीतरहो अथवा बाहर, विषके प्रभावसे ही होती है। मिचिनाफ महोदयने अपने प्रयोगों द्वारा यह दिखलाया है कि अंतड़ियोंमें विषयुक्त पदार्थोंके संग्रहहो जानेपर यह जीर्णावस्थाको प्राप्तहो जाता है। वृद्धावस्थाका दूसरा कारण प्रोटोप्लाज्म है जो कि जीवनका मूल तत्व है। यह पदार्थ कोलायडल दशामें अनेक रासायनिक पदार्थोंका सम्मिश्रण है। रसायनज्ञोंका कथन है कि कोलायडल पदार्थ अधिक समय तक रखनेसे निष्कामहो जाता है। लिनश्योर महोदयने यह दिखलाया है कि प्रोटोप्लाज्मके स्वाभाविक क्रमशः रूपांतर होनेके कारण कोलायड थक्केके रूपमें परिणत होता जाता है जिसके फलस्वरूप शरीर जीर्ण होकर मर जाता है। वृद्धावस्था उसी समयसे आरम्भहो जाती है जब कि सेलोंका विभाजन और नूतन कोलायडका निर्माण बन्दहो जाता है अथवा एक निश्चित गतिसे कमहो जाता है। पुनर्युवावस्था उसी समय वापसहो सकती है जब कि नूतन सेलों और कोलायडका पुनः निर्माण आरम्भ हो। एक सेल वाले जीव, अगणित सेल वाले अनेक वृक्ष, कुछ सुरक्षित जीव अंश, और जीवोंके जर्मप्लाज्म अमर कहे जाते हैं। इसका यही कारण है कि नये कोलायडल प्रोटोप्लाज्मका निर्माण और सेलोंकी विभाजन क्रिया अनिश्चित रूपसे संपादितकी जा सकती है।

पुनर्युवावस्था प्राप्त करनेपर स्टेना, वारोनाफ आदि महोदयोंके अध्ययनपर विचार करना इस लेखमें संभव नहीं है। किन्तु संक्षेपमें उनका प्रयोग जनन क्रियासे संबंधित जीर्ण भागोंको हराकर नये

युवा नसोंको लगाना है। किन्तु उनके परिणामोंको ध्यानपूर्वक अध्ययन करनेपर यह प्रकट होता है कि उनका कार्य केवल कुछ समय तकके लिए उत्तेजना प्रदान करना होता है उसके द्वारा जीवोंकी आयुके बढ़नेपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

इन गूढ़ विषयोंकी आधुनिक जानकारीके परिणामस्वरूप हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि जीवनका तत्व प्रोटोप्लाज्मकी रसायनिक क्रियाका ज्ञान हमें पर्याप्त रूपसे प्राप्त हो गया है। इसके पहले उसके विषयमें कोई विशेष जानकारी नहीं थी। भविष्यमें इस विषयपर जो अनुसंधान किये जावेंगे वे मुख्यतः कोलायडको पुनर्निर्माण करने और मलमूत्र आदि विषयुक्त पदार्थोंको और भी सफलतापूर्वक शरीरके बाहर निकालनेकी विभिन्न विधियोंपर प्रकाश डालनेका प्रश्न होगा। उस समय यह कहना संभव होगा कि जीवनमें मृत्युका होना आवश्यक नहीं है।

दाँतों की रक्षा*

ठाकुर शिरोमणि सिंह चौहान, एम. एस–सी., विशारद

दाँत परमात्माकी एक अनमोल देन है। इनके अभावमें न तो हम भोजनका वास्तविक स्वादही पाते हैं और न हम उसे भली भाँति हजमही कर सकते हैं। सच पूछो तो जीवनकी सबसे महत्वकी क्रिया भोजन करना और उसे यथेष्ट रूपसे हजम करना है। भोजन क्रिया और दाँतोंका अत्यन्त घनिष्ट संबंध है। भोजन क्रियामें सबसे प्रथम और सबसे महत्वपूर्ण काम उसको अच्छी तरह चबाना या पीसना है। क्योंकि अच्छी तरहसे पिसे हुए भोजनपर पाचक रसोंका शीघ्र प्रभाव पड़ता है जिसके फलस्वरूप वह शीघ्र पच जाता है।

परमात्माने दाँतोंका निर्माण ऐसी कुशलतासे किया है कि जो प्राणी जिस प्रकारका भोजन करता है उसके दाँत उसीके काटने, फाड़ने, चबाने अथवा पीसनेके योग्य होते हैं। तात्पर्य यह कि प्राणीके दाँतोंका आकार–प्रकार एवं बनावट उसके खाद्य–पदार्थके अनुकूल होता है। यदि शेरके दाँत बकरी अथवा भेड़के दाँतोंके समान होते तो वह बड़े संकटमें पड़ जाता, और न बेचारी भेड़ही शेरके समान लम्बे और नोकीले दाँतोंको पाकर अपनी उदरपूर्ति सुगमतासे कर पाती। शाकाहारी और माँसाहारी प्राणियोंके दाँतोंकी बनावटमें उनके भोजनके कारण बड़ा अन्तर होता है। दूध पीने वाले बच्चोंमें दाँतोंका अभाव होता है क्योंकि दूध पीनेमें उनकी आवश्यकता नहीं होती। प्राणियोंके भोजन और उनके दाँतोंकी इतनी घनी अनुकूलता होती है कि एकको देखकर दूसरीका सहजही अनुमान किया जा सकता है। लुप्त हुए (Extinct) प्रणियोंके दाँतोंको निरीक्षण करके हम निश्चय पूर्वक बता सकते हैं कि वे किस भाँतिका भोजन करते थे। यह एक वैज्ञानिक तथ्य हैं कि दाँत हमें निर्देश करते हैं कि हमारा भोजन किस प्रकारका होना चाहिए।

दाँतोंके निर्माणकर्त्ताने तो उन्हें ऐसी सावधानीसे बनाकर हमें प्रदान किए हैं किन्तु क्या हम उनकी आरोग्यता एवं रक्षाकी ओर उचित ध्यान देते हैं। जाँच करनेसे पता चला है कि अमेरिकन स्कूलोंमें 9. प्रतिशत विद्यार्थियोंके दाँत खराब होते हैं। उनकी खराबीका हमारे स्वास्थ्य अथवा रोगोत्पादनपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। पछत्तर प्रतिशत् रोगोंका आरंभ हमारे मुँहसे होता है। आपको यह सुनकर अचंभा होगा कि पायोरिया (गोश्तखोरा) ग्रसित रोगीके मुँहसे लगभग एक औंस पूय (पीब) लारके साथ मिलकर उनकी उदर दरीमें नित्य पहुँचता है और वहाँसे लसिका–वाहिनियों द्वारा समस्त शरीरमें व्याप्त होकर अनेक संस्थानिक एवं शारीरिक भयंकर रोगों, आमाशय–कला–प्रदाह (Gastritis), उपांत्र प्रदाह (Appendicitis), गठिया आदिका निमित्त कारण बनता है। यह पीब भोजनके समयही उदर दरीमें जाता हो, सो बात नहीं। वह तो प्रत्येक क्षण थूकके साथ न्यूनाधिक

---

* *विज्ञान*, जून 1943

मात्रामें पेटके भीतर जाता रहता है। रोगोत्पादनके अतिरिक्त इससे मुँह सदैव दुर्गंधमय रहता है।

ऊपरके विवेचनसे हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि स्वास्थ्य–वर्द्धन एवं रोग निवारणके अर्थ हमारे दाँतोंका निरोग और दृढ़ होना अत्यावश्यक है। भोजनको भली भांति पीसनेकी क्षमता रखने वाले दाँतोंही की अधिक महत्ता है। वे हमारी जीवन–शक्तिके विधायक हैं। कुछ दिन हुए क्लीललैंडकी जाँचसे मालूम हुआ था कि स्कूलमें अच्छे दाँत वाले विद्यार्थी दूषित दांत वाले विद्यार्थियोंकी अपेक्षा पढ़ने–लिखनेमें श्रेष्ठ एवं प्रतिभावान् होते हैं किन्तु आज कल तो अधिकांश व्यक्ति दाँतोंकी एक–न–एक बीमारीसे पीड़ित रहा करते हैं। ऐसे बहुत कम हैं जिनके दांत आदर्श रूपसे स्वस्थ, श्वेत और चमकदार होते हों।

साधारण नीरोग अवस्थामें दाँतों और मसूढ़ोंकी संधिके बीच कोई रिक्त स्थान नहीं होता। रोगी होनेपर मसूढ़ोंके किनारे सिकुड़ जाते हैं और उनके तथा दाँतोंके बीच दराज हो जाती है। भोजनोपरांत दांतों और मसूढ़ोंकी इन्हीं दराजोंमें खाद्य पदार्थके अति सूक्ष्म अंश फंस जाते हैं और वहाँ कुछ घंटे फंसे रहनेपर उनमें विकार उत्पन्न होने लगता है। वे सड़ते गलते हैं। उनके विकृत होनेपर वहाँ जीवाणुओंमें बहुत वृद्धिहो जाती है। यह जीवाणु दाँतोंके आवेष्ठक किनारोंको गलाकर उसे खाने लगते हैं। मसूढ़ोंके गलनेसे सन्धियोंकी दराजें उत्तरोत्तर बढ़ती जाती हैं। साथही उनमें फंसने और सड़ने वाले खाद्य द्रव्योंकी मात्रामें भी वृद्धि होती जाती है। परिणाम यह होता है कि वहाँ जीवाणुओंके बढ़ने और मसूढ़ोंके गलनेके कारण मवाद पड़ने लगता है। धीरे–धीरे इसका प्रभाव दाँतोंकी जड़ों तक पहुँच जाता है; उनमें वेदना होने लगती है और हिलने लगते हैं। दाँतों और मसूढ़ोंकी इन समस्त तकलीफोंके मुख्य कारण उनमें व्यायामकी कमी, उनकी यथेष्ट सफाईमें असावधानी और खाद्य–पदार्थोंमें खाद्योजों (विटामिन) की न्यूनता हैं।

आप कहेंगे कि दाँतोंका व्यायाम किस भांति होना चाहिए। यह सभी जानते हैं कि यदि शरीरके किसी अंग विशेषसे कम काम लिया जाय अथवा बिल्कुल न लिया जाय तो वह अंग शनैः शनैः क्षीण होने लगता है और अंतमें बिल्कुल निकम्माहो जाता है। इसके विपरीत जिस अंगसे अधिक काम लिया जाता है वह अधिक पुष्ट और बलिष्ट होता है। कुछ जमातके साधू अपना एक हाथ सदैव ऊपरको उठाए रहते हैं वह हाथ कुछ समयके उपरांत अत्यंत जीर्ण–शीर्ण होकर निकम्माहो जाता है। और बढ़ईका वह हाथ जिससे वह नित्य बसूला चलाया करता है अत्यंत मजबूत और शक्तिशाली हो जाता है। उपयोग करनेका ही अर्थ स्वास्थ्य है और उसके अभावका अर्थ उसकी शक्तिमें ह्रास है। इस तथ्यको दृष्टि–बिन्दुमें रखकर दाँतोंके खराब होनेका कारण सहजही समझमें आ जावेगा।

बात यह है कि हम अपने दाँतोंसे पूरा काम नहीं लेते हैं। आधुनिक सभ्यताके पुजारी ऐसा भोजन करते हैं जिसके काटने और चबानेकी बहुत कम जरूरत पड़ती है। अतएव उनपर बहुत कम काम पड़नेके कारण वे शीघ्रही कमजोर पड़ जाते हैं और समयसे पहलेही उखड़ जाते हैं। असलमें, ईश्वरने दाँतोंको मरण पर्यंत काम करनेके लिए बनाया है किन्तु हमारी सभ्यताका महारोग ऐसा नहीं होने देता। कुछ वैज्ञानिकोंके मतसे तो बहुत काल पीछे बिना दाँतके मनुष्य हुआ करेंगे।

जंगली आदमी कच्चा भोजन करते हैं, विविध भाँतिके कंद, मूल, फल और तरकारियाँ खाते हैं। फल यह होता है कि उन्हें अपने भोजनको बहुत चभुलाकर खाना पड़ता है। देहातके मनुष्य भी प्रायः सादा और कड़ा भोजन करते हैं। खूब चर्बण चबाते हैं, मोटा अन्न खाते हैं, गन्ना चूसते हैं। गन्ना चूसनेकी क्रियामें वे उसके कड़े तन्तुओंको दाँतोंसे चीड़–फाड़कर टुकड़े–टुकड़ेकर देते हैं और फिर उसे खूब चूसकर उसका सारा रस निकाल लेते हैं और खोईको थूक देते हैं। इस प्रकारके भोज्य–पदार्थोंके सेवन करनेमें दाँतोंको कड़ा परिश्रम करना पड़ता है। यही कारण है कि उनके दाँत वृद्धावस्था तक दृढ़, बलिष्ट और निरोग बने रहते हैं। बन्दर भी इस भाँतिका भोजन करते हैं। उन्हें

पायोरिया आदि दाँतके रोग कभी नहीं होता। पशुओंके दाँत हमारे दाँतोंसे कहीं अधिक पुष्ट और टिकाऊ होते हैं क्योंकि भोजन कड़ा और सादा होता है और कुछ चारा खानेके बाद फिरसे पागुर करते हैं।

किन्तु इससे हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि पशुओं और जंगली जानवरोंकी भांति हम भी कच्चा भोजन किया करें। आशय तो केवल यह है कि दाँतोंसे उनके अनुकूल खूब श्रम लिया जाय। हम देखते हैं कि हमारे दाँत इनैमेल (Enamel) जैसे कड़े पदार्थसे आवेष्टित होते हैं और उनके नीचेका जबड़ा शरीरकी समस्त हड्डियोंसे मजबूत होता है और वह माँस–पेशी जो भोजनको चबाते समय इस जबड़ेको हिलाती हैं सारे शरीरकी मांस पेशियोंसे मजबूत होती हैं। अतः दाँतोकी मजबूतीको देखकर यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि हमारा भोजन कड़ा होना चाहिये। ऐसा मुलायम नहीं कि उसे ग्रहण करनेमें कुचलने और चबानेकी आवश्यकताही न पड़े। अतएव दाँतोंसे कड़ा भोजन खाइये कौर खूब चबाइये। तभी उन पर काफी परिश्रम पड़ेगा और यही उनका व्यायाम है।

कड़ा भोजन करने साथही हमें उनकी सफाईपर भी काफी ध्यान रखना चाहिए। 'सफाई साधुता है'। पर हम देखते हैं कि मुँह और दाँत जिन्हें सबसे स्वच्छ रहनेकी आवश्यकता है, सबसे गंदे रहते हैं। कुछ लोंगोंपर आजकल फैशनका भूत सवार है। वे भोजन, चाय, फल आदि ग्रहण करने अनन्तर मुँह और दाँतोंकी अधिक सफाई तो दरकिनार कुल्ला करना तक फैशनके विरुद्ध समझते हैं। वे यूरोप निवासियोंकी देखादेखी अपने दाँतोंके स्वयं शत्रु बन रहे हैं। बिना मुँह साफ किये हुए प्रातः चाय अथवा जलपान कर लेना अतीव हानिकर है।

प्रातः सायं और भोजनोपरान्त मँह, दाँत और जिह्वाको अच्छी तरह साफ करना चाहिए। नित्य प्रातःकाल कड़े ब्रुश अथवा नीमकी ताजी दातौनकी कूंचीसे मुँह और दाँतोंको खूब साफ करना चाहिये। दातौन करते समय यह ध्यान रहे कि दातौनकी कूँची दाँतोंपर आगे–पीछे न रगड़कर ऊपर–नीचे रगड़ी जाय। ऊपर वाले जबड़ेके दाँतों और मसूढ़ोंपर ऊपरकी ओरसे नीचेको और नीचे वाली पंक्तिके दाँत और मसूढ़ोंपर नीचेसे ऊपरको फेरना चाहिए। दातौनकी कूँचीको आगे–पीछे फेरनेसे मसूढ़ोंको क्षति पहुँचती है। जीभी या दातौनके चिरे हुए टुकड़ेसे जिह्वापर जमे हुए मैलको खूब साफ करना चाहिए। यदि दाँतोंपर धब्बे पड़ गये हों तो थोड़ा सा साबुन और पिसी हुई खरिया रगड़ना चाहिए। कडुआ तेल और नमक मिलाकर दाँतोंपर रगड़नेसे भी लाभ और सफाई होती है।

प्रत्येक भोजनके उपरान्त खूब कुल्ला करना चाहिए फिर अँगूठे और मध्यमासे दाँतों और मसूढ़ोंको रगड़ना चाहिए। इससे दाँतों और मसूढ़ोंपर लगा हुआ भोजनका अंश छूट जाता है। कुल्ला करने अथवा दाँत और मसूढ़ोंको अंगुलीसे साफ करनेसे उनकी ऊपरी सफाई तो हो जाती है किन्तु दाँतों और मसूढ़ोंकी संधियोंके भीतरकी सफाई नहीं होती। इस प्रकारकी सफाई पायोरिया जैसे रोगोंसे दाँतोंकी रक्षा नहीं करती क्योंकि दाँतोंकी संधियोंमें खाद्य द्रव्यके कुछ न कुछ अंश फंसे रह जाते हैं। इन्हें तो जलपान और भोजनके उपरान्त नीमकी सींकको दाँतोंको संधियोंके बीच फेरकर निकालना चाहिए। तत्पश्चात् जीभको घुमा फिराकर देख लेना चाहिए कि खाद्य पदार्थके कोई अंश फंसे तो नहीं रह गये हैं। यूरोप निवासी भोजनोपरांत कुल्ला आदि नहीं करते। यह बड़ी मलिन आदत है। इसका परिणाम यह होता है कि उनके दात बहुत खराब होते हैं और शीघ्रही गिर जाते हैं।

दाँतों और मसूढ़ोंको रेत आदि बहुत कड़े पदार्थसे मलकर न साफ करना चाहिए। अच्छी तरह पिसे हुए कोयलेसे दाँत मलनेमें कोई हानि नहीं है।

दाँतोंको बुरी तरह काममें न लाना चाहिए जैसे कड़ी सुपारीको तोड़ने अथवा किसी ऐसी चीजके काटनेमें जिससे उन्हें हानि पहुँचे।

अधिक गरम और अधिक ठंडे पदार्थोंके खानेसे भी दाँत खराब हो जाते हैं। अधिक गरम पदार्थके खानेके बादही बहुत ठंडी चीजका सेवनकर लेना भी दाँतोंको हानि पहुँचाता है। दाँतों और मसूढ़ोंको पुष्ट और स्वस्थ बनानेमें खाद्योजों (विटामिन) का सेवन करना बड़ा लाभकारी होता है। उनकी वृद्धि और रक्षामें खाद्योज 3 और 4 बड़े उपयोगी होते हैं। खाद्य पदार्थोंमें इनकी न्यूनतासे दाँतोंकी शक्ति क्षीण होती है। खटिक लवण (Calcium Salts) भी दाँत और मसूढ़ोंको लाभप्रद होते हैं। किन्तु ये लवण दूधमें पर्याप्त मात्रामें मौजूद होते हैं अतः दूध पीने वालोंको इन्हें अलगसे खानेकी कोई आवश्यकता नहीं होती है।

स्वास्थ्यके लिये खाद्योज 2, 3 और 4 का ग्रहण करना परमावश्यक है। ये शरीरकी वृद्धि में तो सहायता करते ही हैं उसे अनेक रोगोंके आक्रमणसे भी बचाते हैं। इन खाद्योजोंके उपयोगसे दंतकृमि (caries) से दूषित मसूढ़ोंको अवश्य लाभ होता है। ये खाद्योज नारंगी (संतरा), नीबू और टमाटरमें पर्याप्त मात्रामें मौजूद होते हैं।

हमारी भोजन सामग्रीमें दूध, नीबू, संतरा, टमाटर आदिका उपयोग दाँतों और मसूढ़ोंकी तकलीफको दूर करता है और हमारे शरीरको आरोग्यता प्रदान करता है जिससे हमारी जीवन शक्ति बढ़ती है और जीवन आनंदमय बनता है।

अणुजीवों का प्रथम अन्वेषक ल्यूवेनहुक*

श्रीमती रानी टंडन, एम. एड.,

लगभग 25 वर्ष हुए एक मुनष्य ल्यूवेनहुक ने सृष्टि के उस आश्चर्यजनक जगत में प्रथम बार प्रवेश किया जहाँ तरह तरह के अणुजीव विद्यमान थे। इन जीवों में कुछ मनुष्यों के लिए घातक थे और कुछ उपयोगी।

यद्यपि ल्यूवेनहुक ने ही सर्वप्रथम अणुजीवों की जानकारी प्राप्त की, इस समय बहुत कम लोग ल्यूवेनहुक के नाम से परिचित हैं। ल्यूवेनहुक के बाद भी कितने ही जीव वैज्ञानिक हुए जिन्होंने विभिन्न अणुजीवों को खोज निकालने में अपने प्राणों की भी परवा नहीं की किन्तु इनमें से बहुतों का नाम आजकल स्मरण में भी कभी ही आया करता है।

वर्तमान समय में जब कि विज्ञान की इतनी उन्नति हो गई है हमें इस बात की कभी कल्पना भी नहीं हो सकती कि ल्यूवेनहुक के समय में विज्ञान की खोज का काम करना कितना कठिन था। यदि आप तीन सौ वर्ष पहले की उस अवस्था का ध्यान करें जब कि चारों ओर अन्धविश्वास का राज्य था और प्रकृति की छोटी से छोटी घटना दैवी इच्छा का फल समझी जाती थी तब सम्भवतः आपको थोड़ा सा इस बात का अनुमान हो सके कि ऐसे वायुमंडल में विज्ञान का कार्य करने वालों को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा। उन दिनों किसी घटना को दैवी न मानना और उसका कारण ढूंढ़ निकालना एक अक्षम्य अपराध था।

ऐसे ही समय में ल्यूवेनहुक ने अन्धविश्वासों के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई। विज्ञान का यह वह युग था जब वैज्ञानिकों को सत्य की खोज में अपने जीवन की बलि देनी पड़ती थी। यह वही युग था जिसमें सरवीटस (Survitus) को, केवल इस अपराध में कि उसने एक मरे हुए मनुष्य के शरीर को चीरकर मनुष्य के भीतरी अंगों की जानकारी प्राप्त करनी चाही थी, जीवित जला दिया गया था। इसी युग में गैलीलियो को, केवल इस बात के लिए कि उसने उन दिनों के प्रचलित विश्वास के विरुद्ध यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, जीवन पर्यन्त जेल में बाँध दिया गया था।

एनटोनी ल्यूवेनहुक (Antony Leeuwenhoek) का जन्म सन् 1662 ई. में हालैंड के डेल्फ्ट (Delft) नामक स्थान में हुआ था। उनके कुटुम्ब में टोकरी बनाने तथा शराब खींचने का व्यवसाय होता था। हालैंड में उन दिनों शराब खींचना एक प्रतिष्ठित व्यवसाय समझा जाता था। ल्यूवेनहुक के पिता का देहान्त छोटी अवस्था में ही हो गया था। ल्यूवेनहुक की माता ने उन्हें स्कूल पढ़ने को भेजा। उनकी यह इच्छा थी कि ल्यूवेनहुक पढ़ लिख कर कोई सरकारी अफसरी का पद ग्रहण करे। किन्तु ल्यूवेनहुक 16 वर्ष की अवस्था में ही स्कूल छोड़कर एमस्टर्डम में एक कपड़े की

---

* *विज्ञान*, जुलाई 1945

दुकान में सहायक हो गये। यहाँ उसने 6 वर्ष तक काम किया। 21 वर्ष की अवस्था में वह डेलफ्ट वापस आये और अपनी एक स्वतन्त्र कपड़े की दूकान खोल ली। इसी समय उन्होंने अपना विवाह भी किया। इसके बाद से 2. वर्ष तक ल्यूवेनहुक के जीवन का कोई विशेष हाल नहीं मिलता। केवल इतना ही ज्ञात है कि उनके दो पत्नियाँ थीं। जिनसे कई बच्चे थे। ल्यूवेनहुक के कई बच्चे छोटी अवस्था में ही मर गए थे। इन्हीं दिनों डेलफ्ट के 'टाउनहाल' में भी उन्होंने कुछ काम करना आरंभ किया। यहीं पर उन्हें ताल (Lenses) बनाने का शौक हुआ। उन्होंने यह सुन रखा था कि यदि एक साधारण काँच को घिस कर एक छोटा लेन्स बनाया जाए तो उसके द्वारा चीजें अधिक बड़ी दिखलाई देती हैं। यद्यपि ल्यूवेनहुक के जीवन के 2. से 4. वर्ष की अवस्थाकाल की अधिक बातें मालूम नहीं हैं किन्तु इतना अवश्य मालूम है कि उनकी गणना उस समय के पढ़े–लिखे लोगों में नहीं थी। वह केवल डच भाषा जानते थे जो उस समय सभ्य समाज में एक देहाती भाषा समझी जाती थी। विद्वत् समाज में लेटिन भाषा का चलन था और ल्यूवेनहुक इस भाषा से बिल्कुल अनभिज्ञ थे। एक दृष्टि से ल्यूवेनहुक का अनपढ़ होना अच्छा ही था, क्योंकि वह अन्य लोगों की लिखी बातों से प्रभावित न होकर प्रत्येक बात स्वयं विचारते थे और अपना स्वतंत्र निर्णय करते थे।

इस बात का परीक्षण करने के लिए कि ताल द्वारा चीजें बड़ी दिखलाई देती हैं ल्यूवेनहुक ने स्वयं ताल बनाने का निश्चय किया। ताल बनाने का कार्य उन्होंने चश्मा बनाने वालों के पास जा जाकर उनसे सीखा। इसी बीच वह आलकीमियों (Alchemists) और अत्तारों के यहाँ भी दौड़े और उनसे कच्ची धातुओं में से शुद्ध धातु प्राप्त करने की विधि मालूम की। ल्यूवेनहुक को इस बात का उत्साह था कि वह जो ताल बनायें वह बाजार के सब तालों से श्रेष्ठ हो। बहुत प्रयत्न के बाद ल्यूवेनहुक इस प्रकार के ताल बनाने में सफल हुए। अपने तालों को स्वयं ही उन्होंने अपने द्वारा शुद्ध की गई ताँबे, चाँदी या सोने की धातुओं के फ्रेमों पर चढ़ाया। इन सब बातों से यह अनुमान किया जा सकता है कि ल्यूवेनहुक में काम करने की कितनी लगन थी और कितना धैर्य था।

ल्यूवेनहुक के पड़ोसी उसे सनकी समझते थे किन्तु ल्यूवेनहुक ने कभी जनमत की परवा न की और सदा अपनी लगन में जुटे रहे। अपने कुटुम्ब तथा अपने मित्रों सब को भुला कर वह रात भर एकान्त में बैठकर काम करते रहते थे। बहुत प्रयत्न के बाद लयूवेनहुक को 3 इंच से भी कम व्यास (Diameter) का एक अच्छा ताल बनाने में सफलता प्राप्त हुई। इस ताल से सभी छोटी चीजें कई गुना बड़ी और बहुत साफ दिखलाई दीं।

इस प्रकार एक अच्छा ताल बना लेने के बाद ल्यूवेनहुक उसके द्वारा तरह तरह की चीजें अपने शौक के लिए निरीक्षण करने लगे। कसाई के यहाँ से बैल की आँख लाकर अपने ताल द्वारा उसका निरीक्षण किया। आँख के ताल को देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। छोटे पौधों के पतले कटे सेक्शन का भी ताल द्वारा उन्होंने निरीक्षण किया। ल्यूवेनहुक अपने इन सब निरीक्षणों का चित्र बना कर रखते थे। किसी चीज का चित्र वह तब तक नहीं बनाते थे जब तक कि उसे बहुत बार देख कर उन्हें उसके आकार की सत्यता का निश्चय नहीं हो जाता था। ल्यूवेनहुक केवल अपने संतोष तथा सुख के लिए ही कार्य करते थे। उन्हें इस बात की परवाह नहीं थी कि उनके कार्य को कोई दूसरा सुने व देखे और उनकी प्रशंसा करे। इस प्रकार वह 2. वर्ष तक काम करते रहे और उनके काम की जानकारी किसी दूसरे को न हो पाई।

इन्हीं दिनों सत्रहवीं सदी के बीच में संसार में विचारों की क्रान्तियाँ आरम्भ हुईं। अरस्तू और पोप की कहीं बातों पर अन्धविश्वास न करके लोग उन्हें तर्क की कसौटी पर कसने लगे। ऐसे ही विचारों के कुछ लोगों ने मिल कर इंगलैंड में एक संस्था की स्थापना की जिसका नाम उन्होंने 'अदृश्य कालेज' रखा। इस संस्था का सब कार्य गुप्त रखा जाता था जिससे उस समय के शासक,

क्रॉमवेल, को इसका पता न चले और वह इस संस्था के सदस्यों को उनके नवीन विचारों के कारण दंड न दे सके। इस संस्था के सदस्यों में न्यूटन, बॉयल (Boyle) ऐसे लोग थे। यही संस्था बाद में चार्ल्स द्वितीय के शासन काल में रॉयल सोसाइटी के नाम से प्रकट रूप से काम करने लगी। ल्यूवेनहुक ने अपने कार्यों की सर्वप्रथम चर्चा इसी संस्था में की।

डेलफ्ट रेग्नीर दि ग्रैफ (Regnir de graaf) ही एक सज्जन थे जो ल्यूवेनहुक के काम की हँसी नहीं उड़ाते थे। ग्रैफ स्त्रियों की शुक्र–ग्रंथियों में कुछ नई चीजें मालूम करने के कारण रॉयल सोसायटी के सदस्य बनाए गए थे। एक दिन ल्यूवेनहुक ने अपने ताल द्वारा अपनी चीजें ग्रैफ को दिखाई, जिनको देखकर ग्रैफ को बड़ा आश्चर्य हुआ, और ल्यूवेनहुक के इस कार्य की तुलना में उन्हें अपना कार्य तुच्छ जान पड़ा। उन्होंने तुरंत रॉयल सोसायटी को लिखा कि वह ल्यूवेनहुक को पत्र लिख कर उसके कार्य का विवरण प्राप्त करे। रॉयल सोसायटी के पत्र के उत्तर में ल्यूवेनहुक ने अपने कार्य का एक लम्बा विवरण डच भाषा में लिखकर भेजा। इस विवरण में ल्यूवेनहुक ने मक्खी के डंक, तथा कुछ फंफूदियों के संबंध के अपने निरीक्षणों का उल्लेख किया था। रॉयल सोसायटी के सदस्यों को ल्यूवेनहुक के इस विवरण से बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके बाद सोसायटी के प्रार्थना करने पर ल्युवेनहुक बराबर पत्र लिख कर अपनी खोजों का हाल बताते रहे। इन पत्रें में बहुत सी निरर्थक बातें पड़ोसियों आदि के संबंध की रहा करती थीं। किन्तु इन निरर्थक बातों के बीच में महत्वपूर्ण खोजों का वर्णन भी पढ़ने को मिलता था।

आज हमें यह जानकर हँसी सी आती है कि अणुजीवों को जो इतनी सरलता से अणुवीक्षण यंत्र में दिखलाई देते हैं, खोज निकालने में मनुष्य को इतनी देर लगी। ल्यूवेनहुक ने ऐसा कौन सा कठिन कार्य उन्हें ढूँढ़ निकालने में किया? जब हम ऐसा सोचते हैं तो हम इस बात को बिल्कुल भूल जाते हैं कि किसी भी नयी चीज का खोज निकालना कितना कठिन कार्य है। खोज हो जाने के बाद तो सभी चीजें सरल ही दिखलाई देती हैं। ल्यूवेनहुक के पहले अणुजीवों की खोज के न होने का एक कारण यह भी था कि उन दिनों जो ताल थे वे इतने अच्छे नहीं थे कि उनसे अणुजीव देखे जा सकते। ल्यूवेनहुक ने ही सबसे पहले ऐसे अणुवीक्षण यंत्र बनाए जो इस योग्य थे कि उनके द्वारा अणुजीव दिखलाई पड़े। उन दिनों के प्रचलित तालों को यदि ल्यूवेनहुक भी उपयोग में लाते तो जीवन पर्यन्त प्रयत्न करने पर उन्हें भी अणुजीव दिखलाई न पड़ते।

ल्यूवेनहुक के जीवन में वह दिन सबसे महत्व का था जब उसने वर्षा के जल को अपने अणुवीक्षण–यंत्र में देखा। साधारण मनुष्य के मन में तो कभी यह विचार भी नहीं उठ सकता कि वर्षा के जल में जल के अतिरिक्त कुछ और भी हो सकता है। ल्यूवेनहुक को तो केवल यह धुन थी कि वह अपने अणुवीक्षण यंत्र द्वारा प्रत्येक पदार्थ को देखे। अपनी इसी धुन में उसने एक दिन बाग में रखे हुए मिट्टी के बर्तन में से जिसमें वर्षा का पानी इकट्ठा हो रहा था, पानी की एक बूँद स्लाइड पर रख कर अपने अणुवीक्षण यंत्र में देखा। अणुवीक्षण यन्त्र में उसने जो कुछ देखा उससे उसे इतना अधिक हर्ष हुआ कि वह जोर से चिल्ला उठा और अपनी 19 साल की पुत्री मेरिया को आवाज लगा कर कहा "शीघ्र यहाँ आओ और देखो इस वर्षा के जल में छोटे जीव हैं जो तैर रहे हैं और आपस में खेल रहे हैं। ये आँखों से दिखलाई देने वाले जन्तुओं की अपेक्षा बहुत ही छोटे हैं।" अचानक इस प्रकार के जीवों को पानी में देखकर ल्यूवेनहुक के मन में क्या विचार उठे होगें और उसे कितनी प्रसन्नता हुई होगी यह अनुभव करना हम लोगों के लिए बड़ा कठिन है। ल्यूवेनहुक की यह प्रसन्नता कितने गुना बढ़ गई होती यदि उस समय उसे कहीं यह मालूम हो जाता कि उसने उस जीव–जगत में प्रवेश किया था, जहाँ के जीव इतना छोटे होते हुए भी इतने शक्तिशाली और भयंकर हैं कि वे मनुष्यों की पूरी की पूरी जाति को सरलता से एकदम नष्ट कर सकते हैं। ल्यूवेनहुक

को उस समय क्या पता था कि उसके यही अणुजीव आग उगलने वाले बड़े बड़े भयंकर टैंकों और बमों से भी अधिक भयंकर है। यही अणुजीव कोमल बच्चों तथा बड़े–बड़े शक्तिशाली नरेशों के जीवन को क्षणमात्र में निर्दयता पूर्वक इस प्रकार समाप्त कर देते हैं कि किसी को कुछ पता ही नहीं लगता। उसकी यह खोज बड़े–बड़े राज्यों के जीतने तथा नई दुनिया को खोज निकालने से भी कहीं अधिक महत्व की थी।

जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं ल्यूवेनहुक किसी बात पर शीघ्र विश्वास करने वाले मनुष्य नहीं थे। वर्षा के जल में अणुजीवों को देखकर ल्यूवेनहुक ने प्रारम्भ में यह संदेह किया कि संभवतः उसके निरीक्षण में ही कोई त्रुटि है क्योंकि इतने छोटे और विचित्र जीवों की सृष्टि का अनुमान कोई कर ही नहीं सकता था। उसने बार–बार उसी वर्षा के पानी की परीक्षा की और घंटों अणुवीक्षण यंत्र में अपनी आदाँख गड़ाये निरीक्षण करता रहा। अंत में उसे विश्वास हो गया कि अणुजीव सचमुच एक प्रकार के जीव हैं और उनकी भी एक सृष्टि है। अधिक ध्यान से देखने पर उसने यह भी मालूम किया कि यह सब जीव एक ही प्रकार के नहीं हैं। एक दूसरे से भिन्न प्रकार के कितने ही जीव उसने देखे। ल्यूवेनहुक ने स्वयं लिखा है कि इन जीवों को फुर्ती और तेजी से रेंगते और तैरते हुए देखने में उसे बहुत आनन्द प्राप्त होता था।

अपने सबसे छोटे जीव की तुलना उसने चीलर की आँख की लम्बाई से करते हुए यह बतलाया कि वह जीव आँख से लगभग 1 ... गुणा छोटा था।

ल्यूवेनहुक ने सोचा कि ये जीव वर्षा के पानी में कहाँ से आये। क्या वे आकाश से वर्षा के जल के साथ गिरे या पृथ्वी से रेंग कर बर्तन में पहुँच गये? क्या उनकी सृष्टि ईश्वर स्वतन्त्र रूप से कर उन्हें आकाश से पृथ्वी पर टपका देता है या उनको भी पैदा करने वाले उन्हीं के समान जीव हैं जो उनके माता–पिता हैं? सत्रहवीं सदी के अन्य डच लोगों की भाँति ल्यूवेनहुक को भी ईश्वर ऐसी दैवी शक्ति में विश्वास और श्रद्धा थी। ईश्वर पर विश्वास होते हुए भी वह यह मानता था कि संसार का प्रत्येक जीव किसी दूसरे जीव से ही उत्पन्न होता है, अर्थात् प्रत्येक जीव का कोई माता–पिता होता है। सृष्टि की रचना के सम्बन्ध में उसका यह दृढ़ विश्वास था कि ईश्वर ने सारे जीवित पदार्थों को 6 दिन में उत्पन्न किया और उसके बाद वह निश्चिन्त होकर बैठ गया। अतः इस विश्वास के आधार पर उसने अपने मन से यह धारणा निकाल दी कि इन अणुजीवों को ईश्वर ने पुनः बनाकर आकाश से टपकाया होगा। साथ ही उसने यह भी सोचा कि बिना किसी पितृजीव के आधार के उस बर्तन में भी ये आप से आप नहीं उत्पन्न हो सकते। अतः ये अणुजीव फिर कहाँ से और किस प्रकार बर्तन में आये इस बात को खोज निकालने के लिए ल्यूवेनहुक ने प्रयोग शुरू किए। उसने एक छोटे काँच के गिलास को धोकर सुखाया और उसे पानी के बर्तन के मुंह के किनारे रख दिया जिससे केवल वर्षा का शुद्ध जल ही गिलास में आ सके। इस गिलास के पानी की परीक्षा करने पर इसमें भी जीव दिखलाई दिए। तब उसने सोचा संभव है यह जीव पानी इकट्ठा करने के बर्तन में ही पहले से रहे हों और वर्षा के पानी के साथ बह कर उसमें से गिलास में चले आए हों। इस विचार का निर्णय करने के लिए उसने एक बड़ी चीनी की प्याली ली और एक ऊँची तिपाई के ऊपर रख कर बाहर वर्षा का जल एकत्र करने के लिए रख दिया। ऊँची तिपाई पर प्याली के रखने में उसका ध्येय यह था कि पृथ्वी पर गिरने वाले पानी की छींटों द्वारा पृथ्वी का कोई पदार्थ प्याली में न पहुँच जाए। आरम्भ में जो पानी प्याली में एकत्रित हुआ उसे उसने फेंक दिया। इसके बाद जो पानी प्याली में एकत्रित हुआ उसकी परीक्षा उसने की। इस पानी में एक भी जीव नहीं था। ल्यूवेनहुक ने इससे यह निष्कर्ष निकाला कि जीव आकाश से वर्षा के जल के साथ नहीं आते। वर्षा के इस स्वच्छ जल को उसने संभाल कर रख लिया और प्रतिदिन उसका निरीक्षण करता रहा। चौथे दिन उसने देखा

कि उस जल में धूल के कण तथा सूत के महीन टुकड़ों के साथ–साथ अणुजीव भी पहुँच गए थे। वर्षा के जल में अणुजीव देखने के बाद ल्यूवेनहुक ने विभिन्न स्थानों के पानी की परीक्षा करनी आरम्भ की। हवा में रखे पानी, डेलफ्ट की नहर के पानी और अपने बाग के कुयें के पानी की परीक्षा उसने की। प्रत्येक पानी में उसे अणुजीव दिखलाई दिए। इन जीवों का बहुत छोटा आकार उसके लिए आश्चर्य की बात थी। यह जीव इतने छोटे थे कि हजारों मिलकर भी बालू के एक कण के बराबर नहीं होते थे। पनीर में पड़ने वाले कीड़ों के आकार से इन अणुजीवों के आकार की तुलना करने पर उसने यह बतलाया कि यह अणुजीव उस कीड़े के सामने वैसे ही हैं जैसे घोड़े के सामने एक मक्खी।

ल्यूवेनहुक प्रत्येक बात का कारण जानने के लिए उत्सुक रहता था। अपने इसी स्वभाव के कारण वह ऐसी खोजें कर सका जिनके संबंध में उसने पहले से कोई धारणा ही नहीं की थी। एक दिन उसके मन में प्रश्न उठा कि काली मिर्च क्यों इतनी कड़वी है। उसने सोचा कि काली मिर्च के कणों में संभवतः छोटे–छोटे तेज नुकीले काँटें होंगे जो जीभ को काटते हों। अपने इस विचार का निर्णय करने के लिए उसने काली मिर्च के पतले–पतले टुकड़े काट कर अणुवीक्षण यंत्र में देखना चाहा। सूखी काली मिर्च से पतले टुकड़े जब न कट सके तो उसने उसे कई सप्ताह तक मुलायम होने के लिए पानी में भीगे रहने दिया। इसके बाद जब उसने काली मिर्च के कण निकाल कर देखे तो उसे उसमें भी अणुजीव देखकर आश्चर्य हुआ।

अणुजीवों की विद्यमानता के बारे में जब ल्यूवेनहुक को पूर्णतः संतोष हो गया तब उसने इस संबंध में रॉयल सोसायटी को बहुत बाद में पत्र लिखा। इस पत्र में उसने यह बतलाया कि बालू के एक कण की बराबरी करने के लिए लाखों अणुजीव एकत्र करने पड़ेंगे और काली मिर्च के पानी की एक बूंद में 2,..,... से भी अधिक अणुजीव विद्यमान रहते हैं।

ल्यूवेनहुक के पत्र का अंग्रेजी अनुवाद रॉयल सोसायटी के सदस्यों के सम्मुख पढ़ा गया। बहुत से सदस्यों को इन अणुजीवों की विद्यमानता में विश्वास नहीं हुआ। वे लोग पनीर के कीड़े को ही ईश्वर की सृष्टि का सबसे छोटा जीव मानते थे। लेकिन कुछ सदस्यों ने ल्यूवेनहुक के पत्र की बातों को हँसी में नहीं टाला। वे यह देख चुके थे कि उस समय तक ल्यूवेनहुक ने जो कुछ रॉयल सोसायटी को लिखा था वह सब ठीक निकला था। अतः उन्होंने सोचा कि अणुजीवों की उसकी खोज में भी सत्यता हो सकती है। रॉयल सोसायटी ने ल्यूवेनहुक को पत्र लिखकर यह बतलाने की प्रार्थना की कि वह अपने अणुवीक्षण यंत्र बनाने की विधि तथा उसके द्वारा निरीक्षण करने का ढंग सोसायटी को लिखे। इस पत्र से ल्यूवेनहुक को थोड़ा आश्चर्य हुआ। वह अभी तक रॉयल सोसायटी के सदस्यों को सच्चा दार्शनिक समझता था। उसने सोचा कि क्या डेलफ्ट के साधारण लोगों की भाँति रॉयल सोसायटी के सदस्य उसकी बात पर हँसते हैं? वह विचारने लगा कि क्या रॉयल सोसाइटी को पूरा ब्योरा लिखना उचित है या किसी से कुछ संबंध न रखकर एकान्त में अपना कार्य करना ठीक है। बहुत सोच–विचार के बाद उसने रॉयल सोसायटी को उत्तर दिया और यह विश्वास दिलाया कि उसने किसी भी बात को बतलाने में अतिशयोक्ति से काम नहीं लिया था। पत्र के अन्त में उसने लिखा कि डेल्फ्ट के बहुत से सज्जनों ने इन विचित्र नए जीवों को उसके अणुवीक्षण यंत्र में देखा था। उसने इन अणुजीवों की संख्या तथा आकार का हिसाब लगाने का पूरा ब्योरा भी लिख दिया। सबसे अन्त में उसने यह लिखा कि वह डेल्फ्ट के प्रतिष्ठित नागरिकों द्वारा अपनी इस खोज की सत्यता का प्रमाण पत्र भी लिखाकर भेज सकता है किन्तु अपने अणुवीक्षण यंत्र बनाने की विधि नहीं बतला सकता। ल्यूवेनहुक में कुछ सनक थी। वह लोगों को अपने अणुवीक्षण यंत्र में चीजें तो दिखला देता था किन्तु किसी को अपना अणुवीक्षण यंत्र छूने नहीं देता था।

रॉयल सोसायटी ने राबर्ट हुक (Robert Hooke) नामक सज्जन के सुपुर्द यह काम किया कि वह एक अच्छा अणुवीक्षण यन्त्र बनायें और काली मिर्च को पानी में कई सप्ताह भिगोकर उसके पानी की परीक्षा करें। 12 नवम्बर सन् 1677 में हुक अपना अणुवीक्षण लिए हुए रॉयल सोसायटी की मीटिंग में पहुँचे और बतलाया कि ल्यूवेनहुक ने जिन विचित्र अणुजीवों की खोज की है यह सत्य है और वह अणुजीव यहाँ मौजूद हैं। सदस्यों को इन अणुजीवों को देखने की इतनी अधिक उत्सुकता हुई कि सबने हुक के अणुवीक्षण यन्त्र के चारों ओर भीड़ लगा ली। हुक के अणुवीक्षण यन्त्र में अणुजीवों को देखने के बाद सब सदस्यों ने एकमत से स्वीकार किया कि ल्यूवेनहुक का निरीक्षण आश्चर्यजनक था और ल्यूवेनहुक का यह कार्य किसी जादूगर के कार्य से कम नहीं था। इस कार्य के उपलक्ष में रॉयल सोसायटी ने ल्यूवेनहुक को अपना सदस्य चुना और एक सुन्दर डिप्लोमा एक चाँदी के बक्स में रख कर उसके पास भेजा। इस सम्मान के लिए रॉयल सोसायटी को धन्यवाद देते हुए ल्यूवेनहुक ने लिखा कि वह जीवनपर्यन्त सच्चाई के साथ सोसायटी की सेवा करता रहेगा। अपने इन शब्दों का उसने बराबर पालन किया। किन्तु अपना अणुवीक्षण यन्त्र सोसायटी को देने से उसने सदा इन्कार किया। उसने कहा कि वह अपने जीवित रहते ऐसा नहीं कर सकता। रॉयल सोसायटी ने डा. मॉलीन्यूक्स को उसके पास उसके कार्यों की रिपोर्ट लेने भेजा। मॉलीन्यूक्स ने ल्यूवेनहुक को एक अणुवीक्षण यंत्र के लिए काफी धन देने का भी प्रलोभन दिया किन्तु वह किसी भी शर्त पर अपना अणुवीक्षण यंत्र देने के लिए तैयार नहीं हुआ। यह बात नहीं थी कि उसके पास फालतू अणुवीक्षण यंत्र न रहे हों। उसके पास बहुत से अणुवीक्षण यंत्र थे किन्तु वह देना ही नहीं चाहता था। उसने मॉलीन्यूक्स से कहा कि जो भी चीज वह देखना चाहे उसके अणुवीक्षण यंत्र में देख ले किन्तु वह अपना अणुवीक्षण यंत्र उसे दे नहीं सकता। डा. मॉलीन्यूक्स को उसने अपने भिन्न–भिन्न नमूने दिखलाये। जब तक मॉलीन्यूक्स उसके अणुवीक्षण यंत्र में उसके नमूने देखता रहा ल्यूवेनहुक यह निगरानी करता रहा कि मॉलीन्यूक्स उसके यंत्र को छूकर उसके सम्बन्ध में कुछ मालूम तो नहीं कर रहा है। मॉलीन्यूक्स ने ल्यूवेनहुक से कहा "तुम्हारा यंत्र बहुत उत्तम है और इंगलैंड में हम लोगों के पास जो ताल हैं उनसे हजारों गुना अधिक साफ इससे चीजें दिखलाई देती हैं।" ल्यूवेनहुक ने उत्तर दिया "मैं कितना चाहता हूं कि मैं आपको अपना अणुवीक्षण यंत्र दिखाऊँ जिसे मैं स्वयं अपने कार्यों के लिए उपयोग में लाता हूँ। किन्तु मैं अपने स्वभाव से लाचार हूँ और इसी से मैं उसको कभी किसी को भी देखने नहीं देता–अपने कुटुम्ब के लोगों को भी नहीं।"

रॉयल सोसायटी को ल्यूवेनहुक ने अपनी खोज का जो विवरण दिया उसमें उसने बतलाया कि अणुजीव प्रत्येक स्थान में मौजूद रहते हैं। उसने यह बतलाया कि मुख ऐसा स्थान है जहाँ से बहुत आसानी से अगणित अणुजीव गुच्छों के रूप में प्राप्त किए जा सकते हैं। मुख में अणुजीव रहते हैं यह बात ल्यूवेनहुक को कैसे मालूम हुई इस संबंध में उसने स्वयं रॉयल सोसायटी को इस प्रकार लिखा था। "मेरे दाँत यद्यपि मैं 50 साल का हूँ बहुत अच्छे और मजबूत हैं। मैं अपने दाँतों की सफाई की सदा फिक्र करता रहा हूँ। प्रतिदिन प्रातःकाल मैं अपने दाँतों को एक दातून से साफ करने के बाद एक मोटे कपड़े से रगड़ कर पोंछ लेता हूँ। सफाई का इतना ध्यान रखने पर भी मैंने एक दिन ताल शीशे से अपना दाँत देखने पर मालूम किया कि दाँतों के बीच में कुछ सफेद पदार्थ लगा हुआ था। इस सफेद पदार्थ को जांचने के लिए मैंने इसे दांत से खुर्च कर निकाला और शुद्ध पानी में मिलाकर अणुवीक्षण यंत्र से देखा। मुझे यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि उसमें भिन्न–भिन्न प्रकार के अगणित अणुजीव इधर–उधर तैर रहे थे। उसमें से कुछ का आकार टेढ़े डंडे की तरह था और वे बहुत धीरे–धीरे चलते थे; कुछ चक्राकार थे जो गोलाई में तेजी से चक्कर काटते थे; कुछ

ऐसे थे जो मछली की भाँति पानी में उछाल मार रहे हैं, और कुछ कलाबाजी लेते हुए चल रहे थे। मेरा मुँह क्या है मानों इन अणुजीवों का एक जगत है।"

अपने मुँह के अणुजीवों का बहुत देर निरीक्षण करने से थकावट आ आने के कारण वह एक दिन नहर के किनारे ऊँचे वृक्षों की छाया में भ्रमण करने निकला। यहाँ उसे एक वृद्ध मनुष्य मिला। ल्यूवेनहुक ने इसकी चर्चा राँयल सोसायटी को भेजे अपने पत्र में इस प्रकार की है। "मैं इस वृद्ध मनुष्य से बातें कर रहा था जिसने बड़ा संयमित जीवन बिताया था और जिसने अपने जीवन में कभी तम्बाकू और शराब का प्रयोग नहीं किया था कि अचानक मेरी दृष्टि उसके दांतों पर पड़ी जो मुझे बहुत गंदे मालूम हुए। मैंने उससे पूछा कि उसने कितने दिनों से अपने दांतों को साफ नहीं किया था। उसने जवाब दिया कि उसने आज तक अपने जीवन में कभी भी दांत साफ नहीं किये थे।" तुरन्त ल्यूवेनहुक के मस्तिष्क से सारी थकान दूर हो गई और उसने सोचा कि इस मनुष्य के मुँह में तो अणुजीवों की एक बहुत बड़ी सृष्टि होगी। वह उस मनुष्य को अपनी प्रयोगशाला में लिवा लाया और उसके दाँतों में जमे पदार्थ को खुर्च कर उसका निरीक्षण किया। ल्यूवेनहुक का विचार बिल्कुल ठीक निकला। उस वृद्ध के मुख में करोड़ों अणुजीव विद्यमान थे। इन अणुजीवों में उसे एक नए प्रकार का अणुजीव दिखलाई दिया जो साँप की तरह अपना शरीर टेढ़ा करता हुआ रेंग रहा था।

ल्यूवेनहुक ने अपने विवरण में कहीं भी यह नहीं कहा है कि अणुजीव हानि पहुँचाते हैं। उसने अणुजीवों को पीने के जल में, मुख में मेंढक और घोड़ों की अँतड़ियों में तथा स्वयं अपनी विष्ठा में देखा। उसने यह भी निरीक्षण किया जिस समय उसे पतले दस्तों की शिकायत हुई उस समय उसकी विष्ठा में अणुजीव बहुत अधिक संख्या में विद्यमान थे। यह निरीक्षण करने पर भी उसे कभी इस बात का संदेह तक नहीं हुआ कि इन्हीं अणुजीवों के कारण उसे पेचिश हुई। वर्तमान काल के जीवाणु वैज्ञानिक यदि उसकी जगह होते तो तुरन्त यह कह बैठते कि अणुजीवों के कारण ही विशेष रोग होते हैं। अधिकांश रोगों के जीवाणु इसी प्रकार मालूम किये गये हैं। जब किसी रोग की दशा में किसी विशेष प्रकार के अणुजीव दिखलाई दिए तो वर्तमान काल के जीवाणु वैज्ञानिकों ने तुरंत उन्हें उस रोग को उत्पन्न करने वाला बतलाया और अधिकतर इस प्रकार का कथन ठीक भी निकला। किन्तु ल्यूवेनहुक के मस्तिष्क में इतनी विचार शक्ति नहीं थी। वह केवल प्रयोग द्वारा नई वस्तुओं को जानने में ही संलग्न रहता था। उसकी सहज–बुद्धि को प्रत्येक वस्तु बहुत कठिन प्रतीत होती थी और इसीलिए वह कभी यह प्रयत्न नहीं करता था कि किसी बात का मूल कारण मालूम करे।

समय की गति के साथ ल्यूवेनहुक भी अपने निरीक्षण कार्य में अधिकाधिक संलग्न होता गया। अपने इस परिश्रम के फलस्वरूप उसने बहुत सी आश्चर्यजनक खोजें कीं। उसने प्रथम बार मछली की पूँछ में रक्तकोशिकाओं के जाल को देखा और यह मालूम किया कि इनके द्वारा धमनियों से शिराओं में रक्त जाता है। हार्वे की शरीर के रक्त परिभ्रमण की खोज में उसने अपनी इस नई खोज से पूर्णता ला दी। उसने मनुष्य के शुक्र–रस में शुक्र–कीटों की भी खोज की। कुछ वर्ष बीतने के बाद समस्त यूरोप ल्यूवनेहुक के नाम से परिचित हो गया। रूस का राजा पीटर उससे मिलने आया और उसके प्रति अपना आदर भाव प्रकट किया। इंगलैंड की रानी डेलफ्ट केवल इस लिए आई कि वह ल्यूवेनहुक के अणुवीक्षण यंत्र द्वारा उसकी खोजी हुई आश्चर्यजनक वस्तुओं को देखें।

ल्यूवेनहुक; न्यूटन और बॉयल के बाद रॉयल सोसायटी का सबसे प्रतिष्ठित सदस्य माना जाता था। प्रशंसायें उसके मस्तिष्क पर कुछ भी प्रभाव नहीं डालती थीं। वह सदा नम्र बना रहा क्योंकि उसे उस ईश्वर पर पूर्ण श्रद्धा थी जो सारी सृष्टि का जनक और पालनकर्त्ता है। वह सदा सत्य का उपासक रहा।

उसका स्वास्थ्य प्रारम्भ से ही बहुत अच्छा था। ८० वर्ष की अवस्था में भी अणुवीक्षण यंत्र से

कार्य करते समय उसका हाथ हिलता नहीं था। उसको संध्या समय थोड़ी शराब पीने की आदत शुरू से ही थी। वह डाक्टरों के सदा विरुद्ध रहा। वह कहा करता था कि डाक्टर रोगों के बारे में क्या ज़ान सकते हैं जबकि उन्हें शरीर की आंतरिक रचना के सम्बन्ध में इतना भी नहीं मालूम है जितना कि मुझे मालूम है। उसने अपने रक्त की भी परीक्षा की थी। उसने रक्त में गोल कण देखे और यह मालूम किया कि ये कण धमनियों से शिराओं में रक्त केशिकाओं द्वारा जाते हैं। एक दिन प्रातःकाल उसे कुछ ज्वर आया। उसने विचार किया कि उसका रक्त कुछ गाढ़ा हो गया है और इसलिए इसका बहाव धमनियों से शिराओं में ठीक से नहीं हो रहा है।! उसने सोचा कि रक्त को पतला करने से रोग दूर हो जायेगा। इस विचार से उसने गर्म–गर्म कहवा इतनी अधिक मात्र में पिया कि उसे खूब पसीना निकलने लगा। रॉयल सोसायटी को उसने पत्र में लिखा कि यदि इस विधि से मेरा ज्वर दूर न हो सका तो अस्पतालों की सारी दवायें भी इसे दूर नहीं कर सकेंगी।

गर्म कहवा पीने से अणुजीवों के बारे में उसे एक नई बात मालूम हुई। एक दिन प्रातःकाल गर्म कहवा पीने के बाद तुरन्त ही उसने अपने सामने के दाँतों में जमे सफेद पदार्थ का पुनः निरीक्षण किया। उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि एक भी अणुजीव उसमें मौजूद नहीं था। उसने सोचा था कि यदि जीवित नहीं तो कम से कम मरे हुए अणुजीव तो अवश्य ही उसे देखने को मिलेंगे। ल्यूवेनहुक ने इतना गर्म कहवा पिया था कि उसके मुख में छाले पड़ गये थे। फिर उसने पीछे के दाँतों में जमे पदार्थ का निरीक्षण किया। उसे पुनः यह देख कर आश्चर्य हुआ कि वहां पहले की अपेक्षा बहुत अधिक संख्या में अणुजीव एकत्रित हो गये थे–इतने अधिक कि वह सोच भी नहीं सकता था। उसने इसका कारण जानने के लिए कुछ प्रयोग किये। उसने एक शीशे की नली में पानी के साथ अणुजीवों को लेकर इतना गर्म किया कि नली हाथ से छुई न जा सके। इसके बाद उसने पानी को ठंडा किया। परीक्षा करने पर उसने देखा कि सब अणुजीव शिथिल और गतिहीन हो गये थे–अर्थात् वे मर गये थे। इससे उसने यह निष्कर्ष निकाला कि सामने के दाँतों के बीच के अणुजीव गर्म कहवे के प्रभाव से मर गये थे, पीछे दाँतों तक पहुँचने में कहवा कुछ ठंडा पड़ गया था अतः वहां के अणुजीव नहीं मर सके थे–बल्कि अन्य स्थानों के अणुजीव भी जो मरने से बचकर भाग सके थे वहां आकर एकत्रित हो गये थे। उसने अणुजीवों के आन्तरिक अंगों को मालूम करने का प्रयत्न किया। उसका यह अनुमान था कि मनुष्यों की तरह इन छोटे जीवों में भी मस्तिष्क, हृदय, फेफड़े, यकृत आदि सब अंग हैं। यह धारणा उसके मन में पिस्सुओं को अणुवीक्षण यंत्र से देखने पर हुई थी। पिस्सू यद्यपि बहुत सरल जीव है फिर भी अणुवीक्षण यन्त्र में देखने पर उसने ज्ञात किया कि उसके आँतरिक अंगों का अच्छा संगठन है। ल्यूवेनहुक ने सोचा कि संभवतः इन्हीं की भांति अणुजीवों में भी अंतरिक अंगों का संगठन होगा जो उसे अपने अणुवीक्षण यन्त्र में दिखलाई नहीं दे रहा है। यद्यपि ल्यूवेनहुक यह नहीं मालूम कर सका कि मनुष्यों के रोग इन्हीं अणुजीवों के कारण होते हैं और इस प्रकार यह उनके संहारकर्त्ता हैं, उसने इतना अवश्य बतलाया कि अणुजीव अपने से भी बड़े जीवों का भक्षण कर लेते हैं।

एक दिन वह नहर में निकाले हुये सीपी जाति के जीवों का निरीक्षण कर रहा था। उसने देखा कि बहुतों के गर्भ में हजारों की संख्या में भ्रूण थे। उसे आश्चर्य हुआ कि जब प्रत्येक कें गर्भ में हजारों बच्चे विद्यमान थे तो क्या कारण था जो नहर इन जीवों से पट कर रुक नहीं गई। वह इन भ्रूणों की वृद्धि का प्रतिदिन अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा निरीक्षण करता रहा। उसने देखा कि जीव के सीपी के खोल के भीतर वह भ्रूण धीरे–धीरे कम होते जा रहे थे। इसका कारण यह था कि इन भ्रूणों को वे अणुजीव नष्ट करते जा रहे थे जिन्होंने इन सीपी के कीड़ों पर आक्रमण कर रखा था। उसने कहा–"जीवन जीवन द्वारा ही पोषित हो यही ईश्वर की इच्छा है। एक दृष्टि से यह लाभदायक ही है

क्योंकि यदि इन सीपी के कीड़ों के बच्चों को खाने वाले अणुजीव न हों तो धीरे–धीरे इनकी बड़ी संख्या से सारी नहर ही भर जाये और उसका बहना रुक जाये।" इस प्रकार एक बच्चे की भांति ल्यूवेनहुक ईश्वर की सृष्टि की प्रत्येक बात को नम्रता से मानकर उसके अस्तित्व के लाभ को समझता था।

८० वर्ष की अवस्था हो जाने पर उसके दाँत हिलने लगे। उसने तुरन्त अपना दाँत उखाड़कर अणुवीक्षण यन्त्र के नीचे रखा। उसने देखा कि दाँत के अन्दर का भाग बहुत खोखला हो गया था और उसमें बहुत से अणुजीव विद्यमान थे। ८० वर्ष की अवस्था में भी वह बड़ी मेहनत और लगन से अपना कार्य करता था। इस अवस्था में भी वह घंटों अणुवीक्षण यन्त्र के ऊपर अपनी आँखें गड़ाए निरीक्षण कार्य किया करता था। उसके मित्रों ने उसे समझाया कि अब उसे आराम करना चाहिए। उसने उत्तर दिया, "पतझड़ में जो फल पकता है वह अधिक स्थायी होता है। उसके जीवन का भी यह पतझड़ का समय है।"

ल्यूवेनहुक केवल अपनी खोजें दूसरों को दिखलाना और बतलाना ही जानता था। उसने किसी को अपनी विद्या पढ़ाने की इच्छा नहीं की। वह कहता था कि यदि मैं एक को पढ़ाऊँगा तो बहुतों को पढ़ाना पड़ेगा और यह एक दासता का कार्य है। वह सदा अपने को स्वतन्त्र रखना चाहता था।

सन् 1723 में 91 वर्ष की अवस्था में जब वह अपनी मृत्यु शैया पर था उसने अपने एक मित्र को अपने दो अन्तिम पत्र रॉयल सोसायटी को भेजने का काम सुपुर्द किया। इस प्रकार उसने रॉयल सोसायटी को अंत तक अपने कार्यों का विवरण भेजकर 5 वर्ष पहले दिये हुए अपने बचन का पालन किया।

यही उस ल्यूवेनहुक के जीवन की कहानी है जिसने अणुजीवों की सृष्टि की सबसे पहले खोज की। ल्यूवेनहुक के बाद कई अधिक प्रसिद्ध अणुजीव खोजक हुए जो ल्यूनवेनहुक से अधिक योग्य थे और जिनका नाम इस समय तक भी उससे अधिक प्रसिद्ध है किन्तु इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि उनमें से कोई भी ल्यूनवेनहुक की सच्चाई और लगन की बराबरी नहीं कर सकता।

क्या अजगर मनुष्य को खा सकता है?*

श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार

यूनानका चिकित्सक मेगस्थनीज ईसासे तीन सौ साल पहले जब भारतकी यात्रा करने आया था तो उसने देखा था कि यहाँके अजगर हिरण, बकरी और बैल तकको निगल जाते हैं। संस्कृत साहित्यके विद्यार्थी जानते हैं कि अगस्त्य मुनिके आश्रमको जाते हुए रामने मुंह बाये हुए अजगरोंके मुखमें हाथियोंको घुसते देखा था। वैदिक ऋषियोंने बकरे (अज) को निगलते (गर–निगलना) देखकरही इस साँपका नाम अजगर रक्खा था। उनकी पालतू भेड़ोंको भी यह अक्सर शिकार बना लेता था।

बचपनमें आपने सुना था कि अफ्रीकाके घने जंगलोंमें और हिमालयकी कन्दराओंमें बड़े–बड़े भीमकाय अजगर सालों सोए पड़े रहते हैं और उनपर घास उग आती है। जब उनकी नींद खुलती है तो पास या दूर चरने वाले किसी जानवरको वे अपनी साँससे ही खींच लेते हैं और देखतेही देखते शिकार उस भयंकर दानवके पेटमें समा जाता है। आपने यह भी सुना था कि एक बार गौएँ चराते हुए एक चरवाहेको जब अजगरने साँससे खींचा तो वह हाथमें गौका रस्सा पकड़े हुए था। चरवाहा मुँहके अन्दर जा ही रहा था कि गौने भागनेकी कोशिशकी। चरवाहेने कसकर रस्सी पकड़ रखी थी। फिर भी उस दैत्यने अभागे चरवाहेको अन्दर पहुँचाही दिया। कभी–कभी तो ऐसे हिम्मत वाले चारवाहे भी निकले जिन्होंने अन्दर जाकर अपनी जेबकी छुरीसे साँपका पेट चीर डाला और एक बार फिर खुली हवामें साँस लेनेके लिए बाहर आ गये। परन्तु विषसे उनका शरीर पीला पड़ चुका था इसलिए थोड़ीही देरमें वे मर गये।

पिछले दिनों, अखबारोंमें काश्मीरके जंगलोंका एक समाचार छपा था। अन्धेरी गुफामें एक आदमीको कोई चीज घसीटे ले जा रही थी। जो लोग खोज करनेके लिए गये उन्होंने रिपोर्ट दी कि गुफामें रहने वाला अजगर उस आदमी को खा गया।

बातचीतमें यदि साँपोंका विषय आ जाय तो इस प्रसंगमें कही गई हर बात पर लोग विश्वासकर लेते हैं, क्योंकि इस विषयका उनको साधारण ज्ञान तक नहीं होता। ऊपर कही गई अत्यन्त विस्मयजनक घटनाएँ क्या सच हो सकती हैं और क्या अजगर मनुष्यों और ऐसे–ऐसे बड़े जीवोंको खा सकता है? इन प्रश्नोंका उत्तर जाननेसे पहले यह समझ लीजिए कि अजगर कैसे खाता है। अजगरके दाँत सीखकी तरह नुकीले और पीछेकी ओर मुड़े होते हैं। हमारी तरह या अन्य जानवरोंकी तरह चपटे नहीं होता ये शिकारको पकड़नेके लिए बने होते हैं, चबानेके लिए नहीं। पकड़ा गया शिकार छूटनेकी जितनी कोशिश करता है ये उसमें और अधिक गड़ते जाते हैं। साँप स्वयं भी उसे सुगमतासे बाहर नहीं निकाल सकता। दाँतोंकी नोकीली रचनाके कारण वह शिकारको

---

* *विज्ञान*, सितम्बर 1945

चबा नहीं सकता और न निगलनेकी सुविधाके लिए वह उसके टुकड़े करके उसे छोटाकर सकता है। लाचारीमें उसे पूराका पूरा जीव निगलना पड़ता है।

शिकारको पेटमें पहुँचानेकी प्रक्रिया कौशलपूर्ण तथा परिश्रमसाध्य है। इसमें शरीरको बहुत प्रयत्नशील होना पड़ता है। गला और मुख अविश्वसनीय चौड़ाई तक फैल जाते हैं। जिन हिरण, गीदड़ और बन्दरोंको मैंने अजगर द्वारा निगलते देखा है या निगले हुओंको अजगरका पेट चीरकर निकाला है वे मोटाईमें साँपकी मोटाईसे तीन चार गुने मोटे थे।

अजगरमें विष तो होता नहीं इसलिए वह शिकारको अपनी कुण्डलियोंमें भींचकर मारता है। कुण्डलियोंमें जकड़ जानेके बाद शिकार पहले प्रायः मुखके अगले सिरेसे पकड़ा जाता है। निचले जबड़ेकी ऊपरके जबड़ेमें से एक हड्डी और उसके सामनेकी निचले जबड़ेकी हड्डी आगे आ जाती है। मुख फैला रहता है। मुड़े हुए दाँतोंको शिकारमें चुभाती हुई ये हड्डियां बन्द होती हैं और साथही सिरका यह पार्श्व प्राणीको मुखके जरा अन्दर खींचता हुआ पीछेकी ओर जाता है। सिरके दूसरे पार्श्वसे यह प्रक्रिया दोहराई जाती है। दोनों पार्श्व बारी–बारीसे कार्य करते हैं और शिकारको मुखके अन्दर खींचकर गलेमें जबरदस्ती प्रविष्ट करा देते हैं। गला बहुत लचकीला होता है। फैलकर जीवका स्वागत करता है। ज्योंही शिकार गलेमें पहुँचता है, गरदनमें लहरोंकी सी बाह्यगति आरम्भ होती है, जैसे कि अटका हुआ प्राणी चूसा जा रहा हो। पूर्ण रूपसे फैले हुए जबड़ोंको इससे बहुत सहायता मिलती है। निचले जबड़ेकी हड्डियोंका पुली सदृश लटकता हुआ बन्धन निगरणकी इस अवस्थामें अपनी साधारण स्थितिसे बहुत अधिक तन जाता है और यह सम्भव है कि निचला जबड़ा शिकारको कसकर पकड़ने और बाहर जानेसे रोके रखनेका काम करता हो और ऊपरका जबड़ा शिकारको अन्दर धकेलता हो जिसमें गरदनकी गतियाँ भी सहायता देती रहती है। जोर लगानेके कारण सांपकी आँखें बाहर निकल आती हैं। गरदनकी खाल इतनी तन जाती है कि छिलकोंकी पंक्तियाँ बहुत दूर तक अलग–अलग हो जाती है। शिरायें फूल जाती हैं।

थोड़ी–थोड़ी देर बाद विश्राम करनेके अनन्तर सांप फिर जोर लगाता है। गलेमें प्राणीके अंटका रहनेसे श्वासकी नलियोंमें सांसका आवागमन रुक जाता है। एक या दो लम्बी सांस लेनेके बाद फिर वही महान वीरताका कार्य आरम्भ हो जाता है। अन्तमें गलेकी तरंगायित या सर्पण गतियाँ भारी शिकारको पेटमें पहुँचा देती हैं। सिर शीघ्रही साधारण हालतमें आ जाता है। केवल खालकी कुछ ढीली तहेंही कुछ देर तक बनी रहती हैं जो अभी अभी की गई चकितकर देने वाली बहादुरीको सूचित करती हैं। एक या दो बार मुँहको पूरा खोलनेके बाद इस प्रदर्शनका कोई चिह्न–शरीरके फूले हुए भागके अतिरिक्त शेष नहीं रह जाता। तरंगायित गतियों और अन्दरकी मांसपेशियोंके एक साथ इकट्ठा होकर अन्दर खींचनेकी गतियोंके एक साथ काम करनेसे शिकार धीरे–धीरे आमाशयमें धकेला सा जाता है।

निगलनेकी यह प्रक्रिया धीरे–धीरे होती है। पन्द्रह फुटके अजगरको पूरा हिरण निगलनेमें एक बार सोलह घंटे लग गये थे। पेनके सावरसई जंगलकी एक घटना है। रातको गाँव वालोंने लगातार आती हुई चीतेकी आवाज सुनी। शब्द एक ही स्थानसे आता हुआ सा मालूम पड़ा। सुबह कुछ लोग उधर देखनेके लिए गये तो एक चीतेको अजगरके आवेष्टमें परिवद्ध देखकर दंग रह गये। चीतेको पकड़नेके बाद अजगरने उसे पीछेसे निगलना आरम्भ किया था और गाँव वालोंके पहुँचने तक वह आधेसे अधिक निगल चुका था। मुक्त होनेकी जी तोड़ कोशिशोंमें चीतेने सामनेही जमीनपर अपने पंजोंको दो फुट तक गहरा गाड़ लिया था, पर उसके ये सब प्रयत्न व्यर्थ गये। उसे निगलनेकी प्रक्रिया चौबीस घंटे तक जारी रही और अन्तमें सारा चीता अन्दर चला गया। बड़ा शिकार खानेमें इसको जो श्रम करना पड़ता है वह वस्तुतः इसकी शक्तिके बाहर की बात है। इसमें

गरदनके तन्तु तनकर टूट तक जाते हैं। इसीसे बड़ा शिकार खानेके बाद जंगलोंमें मैंने इन्हें प्रायः अर्द्ध मूर्च्छित पाया है। ये इतने लाचार होते हैं कि जान बचानेके लिए भाग भी नहीं सकते, आदमीपर हमला करना तो दूर रहा। इस समय इन्हें पकड़ना या मारना कठिन नहीं होता। एक बड़े छिंकोरेको निगलनेके बाद शिवालिक अजगरको हमने खैरके घने कुन्जमें अर्द्ध मूर्च्छित पाया। हम दस–पन्द्रह आदमी कुछ दूरी हर खड़े उसे देखते रहे। उसने हमारे ऊपर हमला नहीं किया और न भागनेकी कोशिशकी। पहली गोली लगनेपर वह जोरसे झपटा, और दूसरी गोलीने उसका काम तमामकर दिया। पेट चीरकर छिकोरेको निकालनेके बाद मरे हुए अजगरका भार डेढ़ मन था और लम्बाई सत्रह फुट। यह अजगर अब गुरुकुल काँगरीके संग्रहालयमें रखा हुआ है। सिंगापुरमें सूअरोंकी फार्मसे एक दिन सूअरके दो बच्चे गुमहो गये। बहुत खोज करनेपर कुछ दूरीपर एक अजगर मूर्च्छामें पाया गया। मारकर उसका पेट चीरा गया तो मालूम हुआ कि उन बच्चोंका चोर वही था। बच्चोंका वजन सवा मनके करीब था।

कितना बड़ा अजगर मनुष्यको मार सकता है?

दस बारह फुटी अजगर मनुष्यकी बाँहों और गरदनके चारों ओर अपनी कुण्डलियोंको कस कर लपेट ले तो यह खतरनाक हो सकता है। आदमी अकेला है तो यह और भी खतरेकी बात है। क्योंकि जब यह जोरसे कुण्डलियोंको भींच लेता है तब इसको छुड़ानेका तरीका यही है कि दूसरा आदमी पूंछको खींचकर खोलना आरम्भकर दे। नहीं तो दस बारह फुटका अजगर कुछ ही देरमें भीच कर उसके साँसको बन्द कर देगा।

यदि अजगर या किसी दूसरे बड़े साँपने कुण्डलियोंमें जकड़ लिया है तो मुक्त करानेके लिए साँपके बीचमें से शिकारको खींचनेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए। सबसे पहले उसकी गरदन दबोचनी चाहिए जिससे वह काट न सके, फिर पूँछका सिरा पकड़कर कुण्डलीको खोलने लगना चाहिए। पीठके ऊपर जहाँ रीढ़पर पतली खालका आवरणही होता है, जोरकी चोट करनेसे वह तुरन्त छोड़ देगा। तब इसे पकड़ा या माराजा सकता है। सर्पशालामें तेज–भूखसे सताया अजगर हमला करके आदमीको मार सकता है। इसलिए दस फीटसे ऊपरकी लम्बाईके अजगरको भोजन खिलाते समय आदमीको अकेले कभी नहीं जाना चाहिए।

अठारह या बीस फुट लम्बा अजगर मारनेको उतारूहो जाय तो उसके लिए मनुष्यको मारना मामूली बात है। गरम देशोंमें जंगली अजगरों द्वारा बच्चोंको निगल जानेके विश्वसनीय उल्लेख मिल जाते हैं, लेकिन बड़े आदमियोंको निगलनेके नहीं। जवान आदमीके कन्धे इतने चौड़े होते हैं कि अजगरके मुँहके लिए इतना फैलना सम्भव नहीं दीखता। हाँ, यदि ऐसा प्रबन्धकर लिया जाय कि कन्धे, पीठ और छाती की हड्डियोंको कुचलकर चूराकर लिया जाय और कन्धेकी चौड़ाई कम हो जाय तो दो ढाई मनकी साढ़े पाँच–छह फुट लम्बी लाशको वह निगल सकता है।

यह बात सच है कि अजगरमें इतनी अधिक शक्ति होती है कि शेर, गौ और मनुष्य भी इसके शिकार बन जाते हैं परन्तु स्पष्ट है कि इसका छोटा शरीर इन बड़े प्राणियोंको अपनेमें समा नहीं सकता। मेगस्थनीज आदिने बैलों और हाथियोंको निगलनेके जो विवरण दिये हैं वे निरी अतिशयोक्तियाँ हैं। शारीरिक दृष्टिसे सोचनेपर यह सर्वथा असम्भव प्रतीत होता है। बड़ेसे बड़ा शिकार जो अजगर खा सकता है वह पूरी भेड़ समझा जा सकता है। इस सीमाको लाँघना इसके बससे बाहर है।

खाद्य–समस्या*

प्रो. फूलदेव सहाय वर्मा

खाद्य से मनुष्य का बड़ा घना सम्बन्ध है। जन्म से मृत्यु तक प्रति दिन उसे खाद्य से अटूट सम्बन्ध रहता है। बिना आहार मनुष्य बहुत दिन तक जीवित नहीं रह सकता। केवल मनुष्यों को ही आहार की जरूरत नहीं होती वरन् अन्य सब प्राणियों को भी सामान्य रूप से आहार की जरूरत होती है। केवल जीव–जन्तु, पशु–पक्षी और कीड़े–मकोड़ों को ही नहीं बल्कि पेड़–पौधों को भी हरे भरे रहने और फूलने फलने के लिए आहार की समान रूप से ही आवश्यकता होती है। संसार के भिन्न–भिन्न प्राणियों में जो संघर्ष, वैमनस्य और समय–समय पर युद्ध होते हैं उनका मूल कारण भी खाद्य से संबंध रखता है। प्रत्येक प्राणी और प्रत्येक राष्ट्र अपने लिए प्रचुर मात्रा में खाद्य प्राप्त करना चाहता है। यदि इस प्रयत्न में कोई रुकावट पड़ी तो वह सब कुछ–युद्ध करने तक के लिए प्रस्तुत होता है। संसार के अनेक युद्धों का मूल कारण खाद्य की प्राप्ति ही है।

केवल जीवित रहने के लिए ही आहार की जरूरत नहीं होती। शरीर की वृद्धि के लिए भी आहार परमावश्यक है। प्रायः 25 वर्ष की उम्र तक मनुष्य का शरीर बढ़ता है। इस बीच हड्डियां बनती और बढ़ती हैं। मांस और पुट्ठे, वस्तुतः शरीर के प्रत्येक अंग और प्रत्यंग बढ़ते और मजबूत होते हैं। शरीर की यह वृद्धि आहार के द्वारा होती है। यदि बाल्यावस्था में पर्याप्त और उपयुक्त आहार न मिले तो शरीर की आवश्यक वृद्धि नहीं होती और मनुष्य का सारा जीवन दुर्बल शरीर रह जाता है। दुर्बल शरीर से संसार–यात्रा सुख और शान्ति से व्यतीत नहीं होती। दुर्बल शरीर वाला मनुष्य न केवल अपने लिए वरन् समाज और राष्ट्र के लिए भी भारभूत रहता है। इसी से पाश्चात्य सुशिक्षित देशों में बालकों के पालन–पोषण की विशेष चिन्ता की जाती है और इसके लिए राज्य की ओर से विशेष प्रबन्ध रहता है। राष्ट्र की निधि, छोटे–छोटे बालकों के लिए स्थान–स्थान पर रक्षा–गृह बनते हैं जहां उन्हें पर्याप्त मात्रा में उपयुक्त भोजन देने का प्रबन्ध रहता है।

आहार से शरीर में शक्ति उत्पन्न होती है। काम करने के लिए शरीर में शक्ति का होना बड़ा जरूरी है। जिस मनुष्य में जितनी ही अधिक शक्ति होगी उतने ही अधिक उत्साह से वह कार्य करेगा। शक्तिहीन मनुष्य आलसी होता है। चुपचाप बैठे रहना वह पसन्द करता है। हाथ–पैर चलाने, शारीरिक श्रम करने में उसे कष्ट मालूम होता है। गूढ़ विषयों पर सोचने विचारने की भी उसमें क्षमता नहीं होती। जिस मनुष्य में पर्याप्त शक्ति होती है वह उमंग से भरा होता है, कार्य करने में चाहे वह शारीरिक हो चाहे मानसिक, उसे विशेष आनन्द प्राप्त होता है। उसका चेहरा खिला हुआ होता है और अपनी चारों ओर वह आनन्द और शक्ति का संचार करता है।

---

* *हिन्दुस्तानी*, 1946

आहार से शरीर में ताप भी उत्पन्न होता है। शरीर का तापक्रम–टेंपरेचर पार्श्ववर्ती वायु के तापक्रम से ऊँचा होता है। इससे शरीर की गरमी बराबर बाहर निकलती है। जाड़े के दिनों में तो यह गरमी और भी ज्यादा निकलती है, क्योंकि उस समय वायु का तापक्रम अधिक नीचा होता है। इसी से जाड़े के दिनों में ऊनी कपड़े पहन कर शरीर की गरमी को निकलने से बचाने की जरूरत पड़ती है और ऐसा भोजन भी करने की जरूरत पड़ती है जिससे शरीर में अधिक गरमी उत्पन्न हो।

आहार से शरीर के ह्रास की भी पूर्ति होती है। मनुष्य का शरीर एक बड़ा सूक्ष्म–यंत्र है जो बिना रुकावट के रात–दिन चलता रहता है। यदि वह यंत्र रुक जाय तो तत्काल मृत्यु हो जाये। मनुष्य का हृदय प्रतिक्षण धड़कता रहता है। इससे शरीर के अंग प्रत्यंग में रक्त दौड़ता रहता है। फेफड़ा वायु और उसके साथ आक्सीजन नामक गैस को जिसके अभाव में हम जी नहीं सकते अन्दर खींचता रहता है और शरीर की दूषित वायु को मुख और नाक के छेदों से बाहर निकालता रहता है। पेट और आंतों में आहार पचता है और पचकर शरीर की वृद्धि, क्षतिपूर्ति और संचालन के लिए आवश्यक रस रक्त के द्वारा शरीर के भिन्न–भिन्न भागों में पहुँचाता है। आँतों और त्वचा के द्वारा अनावश्यक वस्तुएं शरीर से बाहर निकलती रहती हैं। मस्तिष्क शरीर के सारे अंगों और कार्यो को संचालित करता रहता है। इन कामों में शक्ति का व्यय होता है और यदि इसकी पूर्ति न हो तो शरीर क्षीण हो जाता है। इस क्षति की पूर्ति के लिए आहार अत्यावश्यक है।

मनुष्य के स्वास्थ्य का भी आहार से बड़ा घना सम्बन्ध है। एक समय रोगरहित होना ही स्वास्थ्य का लक्षण समझा जाता था। आज स्वास्थ्य की परिभाषा कुछ और ही है। वही मनुष्य आज स्वस्थ समझा जाता है जिसके शरीर और दिमाग की पूरी वृद्धि हुई है और जो अपने शरीर और दिमाग को सजीवता के साथ उपयोगी कामों में लगा सकता है। आज स्वास्थ्य के लक्षण हैं शरीर का निरोग होना, त्वचा में कान्ति का होना। आँखों में चमक का होना, शरीर में स्फूर्ति का होना, दीर्घ काल तक उत्पादन–शक्ति का कायम रहना और बहुत दिन तक जीवित रहना। कुछ आहार विशेषज्ञ डाक्टरों का मत है कि बुढ़ापा एक रोग है और उपयुक्त भोजन के व्यवहार से वह बहुत कुछ रोका जा सकता है।

भोजन के सम्बन्ध में जो प्रश्न हमारे उपस्थित होते हैं वे निम्नलिखित हैं–

(1) हमें क्यों भोजन करना चाहिए

(2) हमें क्या भोजन करना चाहिए

(3) हमें कितना भोजना करना चाहिए

(4) भोजन करने पर शरीर में क्या परिवर्तन होते हैं

(5) हमें खाद्य–सामग्री कैसे प्राप्त हो सकती है

पहले प्रश्न का उत्तर ऊपर दिया जा चुका है। दूसरे प्रश्न के उत्तर में हमारे आहार में कार्बोहाइड्रेट होना चाहिए। कार्बोहाइड्रेट से शक्ति और ताप उत्पन्न होते हैं। यदि आवश्यकता से कुछ अधिक मात्रा में लिया जाय तो भविष्य के लिए शरीर में संचित रहता है। अत्यधिक मात्रा से अनेक रोग होते हैं। साधारणतया ऐसा समझा जाता है कि एक हिन्दुस्तानी के भोजन में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा जरूरत से ज्यादा रहती है। इसी से अनेक भारतीय प्रमेह की बीमारी से आक्रान्त होते हैं, विशेषतः 40 वर्ष की उम्र के बाद। कार्बोहाइड्रेट हमें अनाज से प्राप्त होता है। गेहूँ, चावल, बाजरा, जौ, मकई, ज्वार, कोदो, साँवाँ आदि कुछ ऐसे अन्न हैं जिनसे हमें कार्बोहाइड्रेट प्राप्त होता है। आलू में भी पर्याप्त कार्बोहाइड्रेट होता है। पाश्चात्य देशों में गेहूँ के बाद आलू से ही कार्बोहाइड्रेट प्राप्त होता है। शक्कर शुद्ध कार्बोहाइड्रेट है, शक्कर से बहुत जल्द शक्ति और ताप उत्पन्न हाते हैं। इसी

से किसी थके मांदे अतिथि के आने पर पहले–पहल उसे शर्बत देने की प्रथा है। इससे उसकी थकावट शीघ्र दूर हो जाती और शरीर में स्फूर्ति आ जाती है।

हमारे भोजन का दूसरा आवश्यक अंग प्रोटीन है। इसे नाइट्रोजन वाला अंश भी कहते हैं, इससे भी शक्ति और ताप उत्पन्न होते हैं पर इसका प्रधान कार्य शरीर के कोषों का निर्माण करना और श्रम से जो क्षति हो उसकी पूर्ति करना है। हमारे भोजन में प्रोटीन का अंश बड़ा जरूरी है। प्रोटीन कई प्रकार के होते हैं। जो प्रोटीन जन्तुओं से प्राप्त होते हैं उन्हें जान्तव प्रोटीन कहते हैं, जो प्रोटीन वनस्पतियों से प्राप्त होते हैं उन्हें उद्‌भिज प्रोटीन कहते हैं। मनुष्य के शरीर का प्रोटीन इन दोनों से भिन्न होता है। जान्तव प्रोटीन उद्‌भिज प्रोटीन से भिन्न होता है। जान्तव प्रोटीन मनुष्य के लिए अधिक लाभदायक है। यह सरलता से पचकर मानव प्रोटीन में परिणत हो जाता है। इस कारण हमारे आहार में कुछ न कुछ जान्तव प्रोटीन रहना जरूरी है। कुछ उद्‌भिज प्रोटीन भी सरलता से पच जाते हैं। अधिकांश उद्‌भिज प्रोटीन बिना पचे ही शरीर से मल के रूप में निकल जाते हैं। उद्‌भिज प्रोटीन हमें कुछ अनाजों, पत्तों और फलों से प्राप्त होता है। उपयुक्त जान्तव प्रोटीन हमें दूध, दही, मक्खन (घी में प्रोटीन नहीं होता), अंडा, मांस और मछली से प्राप्त होता है। निरामिष भोजियों के लिए दूध और दही और उनसे बने अन्य पदार्थों का सेवन बहुत आवश्यक है। शाकभाजियों में उपयुक्त उद्‌भिज प्रोटीन रहता है। इनमें पालक, सोवा, मेथी, चँवराई, मरसा, चना इत्यादि का शाक अधिक उपयुक्त है। गेहूँ, चावल, दाल, गाजर, गाँठ गोभी, चुकन्दर, बादाम इत्यादि में भी प्रोटीन रहता है। पर आटे से चोकर निकाल देने, चावल को छाँट देने से उनके उपयोगी प्रोटीन बहुत कुछ निकल जाते हैं। अतः आटे से चोकर निकालना और चावल को छाँटना ठीक नहीं। छँटा चावल तथा घी और शक्कर में बिल्कुल प्रोटीन नहीं होता।

हमारे भोजन में तेल, घी और चर्बी का होना बहुत जरूरी है। इससे अत्यधिक मात्रा में ताप उत्पन्न होता है और देर से पचता है। तेल और चर्बी से इसी कारण भोजन में गुरुता आती है। यदि इनकी मात्रा पर्याप्त न हो तो जल्दी जल्दी भूख लगने लगेगी और काम करने में रुचि नहीं रहेगी। इसी कारण सैनिकों के आहार में एक नियिमित मात्रा से कम घी तेल नहीं होना चाहिए अन्यथा वे अच्छी तरह से युद्ध न कर सकेंगे। ताप उत्पन्न करने और भोजन की गुरुता को बढ़ाने के सिवाय तेल–घी से दो और महत्वपूर्ण कार्य होते हैं। इनसे शरीर में चर्बी बन कर संचित रहती है जो भोजन के अभाव में कुछ सीमा तक ताप और शक्ति प्रदान करती रहती है। और शरीर के अन्दर के सूक्ष्म–यन्त्रों को चोट आदि से बचाकर सुरक्षित रखने का काम भी चर्बी करती है। तेल–घी द्वारा कुछ के आवश्यक विटामिन भी हमें प्राप्त होते हैं। तेल और घी हमारे आंतों को भी चिकनाते हैं जिससे शरीर के अन्दर के मल को पूर्ण रूप से बाहर निकालने में सहायता मिलती है। तेल–घी से कैलशियम के पाचन में भी मवंद मिलती है। प्रौढ़ मनुष्य की अपेक्षा बच्चों को घी–तेल की अधिक मात्रा में जरूरत होती है।

हमारे आहार में खनिज–लवणों का होना बहुत जरूरी है। शरीर के निर्माण में अनेक लवण लगते हैं। ऐसे लवणों में कैलशियम, फास्फरस, लोहे और क्लोरीन के लवण प्रमुख हैं। खनिज लवणों के तीन प्रधान कार्य हैं। खनिज लवणों से ही हमारी हड्डियाँ और दाँत बने हैं। शरीर के तन्तुओं, रक्त, कोष और पुट्ठों के निर्माण में लवण प्रयुक्त होते हैं। हड्डियों से शरीर में दृढ़ता आती है और हम सीधे खड़े रहने पर झुकते नहीं। शरीर की विविध क्रियाओं के सुचारु रूप से संचालित होने, पाचक रस के उपयुक्त अवस्था में रखने और रक्त को ठीक तरह से शरीर के विभिन्न भागों में प्रवाहित होने के लिए हमारे आहार में उपयुक्त लवणों का होना बहुत जरूरी है। पर्याप्त कैलशियम से हृदय की क्रिया सुचारु रूप से होती और फास्फरस, प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट का

पाचन ठीक तरह से होता है। इसके अभाव से शरीर दुर्बल हो जाता, हड्डियाँ कोमल हो जाती, दांते कमजोर हो टूट जाते और बच्चों को रिकेट की बिमारी हो जाती है। बच्चों को अधिक मात्रा में कैलशियम और फास्फरस की जरूरत पड़ती है। फास्फरस से हड्डियों के सिवाय शरीर के कोष भी बनते और उनसे उसकी वृद्धि होती है। फास्फरस और कैलशियम साथ–साथ चलना चाहिए। ये दोनों ही तत्व दूध, दही, अंडे, मछली, मांस, दाल, बादाम, मूली, गाजर और फूलगोभी से प्राप्त होते हैं।

लोहा रक्त का एक आवश्यक अंग है। रक्त का लाल रंग लोहे के कारण होता है। लोहे के अभाव में रक्ताल्पता (एनीमिया) का रोग होता है। रक्त कम बनता, बिलकुल न बनता, या जो बना है वह भी नष्ट हो जाता है। लोहे के अभाव में कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन भी ठीक तरह से नहीं पचता। मांस, अंडा, दाल, अनाज के पूरे दाने, पालक, सलाद, प्याज, मूली, तरबूज, टोमैटो इत्यादि में लोहे का विशेष अंश रहता है।

उपर्युक्त पदार्थों के अतिरिक्त हमारे आहार में विटामिन का होना भी बहुत जरूरी है। विटामिन कई प्रकार के होते हैं। उनके कार्य भी भिन्न–भिन्न प्रकार के हैं। इनमें विटामिन 'ए', विटामिन 'बी', विटामिन 'सी', 'डी', 'ई' प्रमुख हैं।

विटामिन 'ए' कार्बन का एक योगिक है जिसके सम्बन्ध में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हो चुका है। गाजर में जो रंग होता है उसे 'कैरोटीन कहते हैं। विटामिन "ए" इससे बहुत मिलता जुलता पदार्थ है। वस्तुतः वह कैरोटीन से ही बनता है। शरीर की वृद्धि और क्षति की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है। रोगों के किटाणुओं से भी इसके द्वारा रक्षा होती है। मछड़, खटमल और जूं के काटने से जो विष शरीर में प्रविष्ट करता है उनसे भी इसके द्वारा रक्षा होती है। इस विटामिन के अभाव में आंख, कान, नाक, कंठ और फेफड़ों की बिमारी होती है। रतौंधी इसी के कारण होती है। शरीर के अन्दर जाने पर यह कलेजा, गुर्दा और अन्य भागों में संचित रहता है, हरे पत्तों में सूर्य किरण से यह बनता है। अंकुरे दानों में इसकी विशेष मात्रा होती है। चावल के कणों में यह होता है पर छाँटने से निकल जाता है। बिना छंटा हुआ चावल इस्तेमाल करना इसी के कारण लाभप्रद है। यह विटामिन तेल, घी और चर्बी में विलेय (घुलनशील) होता है। मछली के तेल, दूध, मक्खन, अंडा, मांस, हरे पत्ते वाले शाक—पालक, करमी, सलाद, पातगोभी और चुकन्दर, शलजम, मूली और अन्य पेड़–पौधों के पत्तों और सिरों में यह विशेष पाया जाता है। आग में पकाने से यह जल्द नष्ट नहीं होता।

विटामिन 'बी' कई प्रकार के होते हैं। इनके अभाव में बेरीबेरी और पेलाग्रा (त्वचा का एक रोग) की बिमारी होती, भूख कम हो जाती, पाचनशक्ति नष्ट हो जाती, दुर्बलता बढ़ जाती, चमड़ा पीला पड़ जाता, तरुणाई जल्द नष्ट हो जाती और बुढ़ापा शीघ्र आ जाता है। इसकी प्रचुरता से युवावस्था अनेक काल तक स्थायी रहती और दीर्घ जीवन होता है। यह विटामिन दूध, अंडा, मांस, ईस्ट, ताजी शाक भाजियों, ताजे फलों और अनाज के अंकुरों में होता है। कृत्रिम रीति से तैयार होकर भी यह बाजारों में बिकता है।

विटामिन 'सी' रक्त को शुद्ध रखने, दाँत और हड्डियों के बनाने, आंतों को स्वस्थ रखने और संक्रामक रोगों के कीटाणुओं से शरीर को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक है। इसकी कमी से भूख कम हो जाती, शरीर पीला पड़ जाता, सांस जल्दी–जल्दी चलने लगती, हृदय शीघ्रता से धड़कने लगता और तौल कम हो जाता है, सांस में दुर्गंध आने लगती और गांठों और पैर में दर्द होता है। यह विटामिन आंच से तुरन्त नष्ट हो जाता है। इसके लिए बिना आग पर पकाए कुछ न कुछ प्रतिदिन अवश्य सेवन करना चाहिए। ताजे पत्तों, अंकुरे दानों, नींबू और संतरा के रसों, टोमैटो, हरे मिरच, पुदीना और मूली में यह विशेष रहता है।

विटामिन 'डी' के अभाव में हड्डियाँ कोमल हो जाती हैं और बच्चों को रिकेट की बीमारी होती है। इसके अभाव में बच्चे चिड़चिड़े हो जाते, गाढ़ी नींद में सोते नहीं, खड़े होकर जल्दी चलते नहीं, कोष्टबद्धता रहती है और पेट निकल आता है। उनके दांत समय पर निकलते नहीं, और सर्दी–जुकाम बराबर होता रहता है। यह विटामिन दूध, मक्खन, अंडा, मछली के तेल इत्यादि में रहता है। देह में तेल लगा कर धूप में रहने से भी शरीर में यह बनता हैं। डाक्टर कर्नल मैकर्सन का मत है कि तेल लगाकर कुछ देर धूप में रहना अच्छी बात है। इससे विटामिन 'डी' शरीर में बनता है। 'कैलसिफेरोल' के नाम से यह विटामिन अंग्रेजी दवाखानों में मिलता भी है।

विटामिन 'ई' से पुनरुत्पत्ति (बाल–बच्चे पैदा करने) की शक्ति आती है। इसके अभाव में बांझपन होता है। हर एक पत्ते और बीज में इसकी थोड़ी बहुत मात्र अवश्य रहती है। इसकी प्राप्ति के लिए किसी विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं पड़ती।

ऊपर जो कुछ कहा जा चुका है उससे मालूम होता है हमारे भोजन में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, घी और तेल, खनिज–लवण और कुछ विटामिन–विटामिन ए, विटामिन बी, विटामिन सी, विटामिन डी और विटामिन ई–अवश्य रहना चाहिए। आटा व चावल व आलू से हमें कार्बोहाइड्रेट प्राप्त होता है। दूध, दही, अंडा, मांस, मछली और कुछ शाक–भाजियों से उपयुक्त प्रोटीन और खानिज–लवण प्राप्त होते और ताजे पत्ते, फूल और फलों दूध और मक्खन से आवश्यक विटामिन प्राप्त होते हैं। बिना छटा हुआ आटा और बिना छँटा हुआ चावल अधिक उपयोगी होता है क्योंकि इनमें कार्बोहाइड्रेट के सिवाय कुछ खनिज लवण और उपयुक्त प्रोटीन भी रहते हैं। शाक–भाजियों में हरे पत्ते अधिक उपयोगी हैं। इनमें खानिज लवणों के सिवाय अनेक विटामिन भी रहते हैं। हमारे आहार में दूध व दही का होना बहुत जरूरी है। इनसे उपयुक्त प्रोटीन के अतिरिक्त आवश्यक कैलशियम और फास्फरस और विटामिन भी रहते हैं। मांस–मछली का व्यवहार जितना कम हो उतना ही अच्छा है। यद्यपि इनसे उपयुक्त प्रोटीन और खानिज–लवण अवश्य प्राप्त होते है पर इनसे शरीर में बैक्टीरिया के वृद्धि होने का भय रहता है। कुछ बैक्टीरिया अच्छी भी होती है पर अधिकांश बुरी होती है जो रोगों को पैदा करती हैं। इससे अमेरिका के अनेक भोजन–विशेषज्ञ डाक्टरों का मत है कि मांस का व्यवहार जितना कम हो उतना ही अच्छा है। मांस के स्थान में दूध और दही का व्यवहार अधिक लाभदायक है। इससे उपयुक्त प्रोटीन और कैलशियम और फास्फरस प्राप्त होते हैं। दही में लैक्टिकाम्ल नामक पदार्थ के तैयार करने की बैक्टीरिया रहती है और इस बैक्टीरिया की उपस्थिति में अन्य बैक्टीरिया पनप नहीं सकती। इससे दही खाने से बैक्टीरिया जनित अन्य रोगों के उत्पन्न होने का भय नहीं रहता। अम्लों की उपस्थिति में हैजे के कीटाणु भी नष्ट हो जाते हैं। इसी से भोजन में नींबू के रस, सिरका इत्यादि के सेवन से हैजे का भय नहीं रहता। सिरका तो हैजे की एक अच्छी औषधि भी समझी जाती है। इसका सेवन विशेषतः वर्षा ऋतु में विशेष लाभदायक होता है।

कितना भोजन करना चाहिए इस सम्बन्ध में कोई एक निश्चित बात नहीं कही जा सकती। यह प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति और व्यवसाय पर निर्भर करता है। आहार की मात्रा'कलोरी' से नापी जाती है। जो ताप एक सी. सी. (एक ग्राम) जल के ताप को एक डिगरी शतांश बढ़ाता है उसे कलोरी कहते हैं। एक ग्राम कार्बोहाइड्रेट से प्रायः 4 कलोरी, एक ग्राम तेल व चर्बी से प्रायः 9 कलोरी और एक ग्राम प्रोटीन से प्रायः 5 कलोरी ताप उत्पन्न होता है। एक पाउंड रोटी से 1200 कलोरी, एक पाउंड घी से 3500 कलोरी, एक पाउन्ड शक्कर से 1200 कलोरी, एक पाउन्ड दूध से 300 कलोरी और एक पाउन्ड आलू से 380 कलोरी ताप उत्पन्न होता है। एक स्वस्थ युवा पुरुष के लिए जो कोई शारीरिक श्रम नहीं करता प्रतिदिन 2200 कलोरी की जरूरत होती है। एक घण्टा साधारण मेहनत करने वाले के लिए 100 कलोरी और अधिक और एक घंटा कठिन मेहनत करने

वाले के लिए 200 से 300 कलारी और अधिक की जरूरत पड़ती है। स्त्रियों के लिए इससे कुछ कम पर गर्भवती और बच्चे के दूध पिलाने वाली स्त्रियों के लिए 200 से 300 कलोरी और अधिक लगती है। मनुष्य को इतना भोजन करना चाहिए कि उनका वजन औसत वजन से न बहुत कम हो और न बहुत अधिक औसत वजन ऊँचाई पर निर्भर करता है। पुरुष का औसत वजन निम्नलिखित है

5 फू. ऊँचाई वाले पुरुष का 126 पाउन्ड*
5 फू. 2 इं. वाले पुरुष का 130 पाउन्ड
5 फू. 3 इं. वाले पुरुष का 133 पाउन्ड
5 फू. 4 इं. वाले पुरुष का 136 पाउन्ड
5 फू. 5 इं. वाले पुरुष का 14. पाउन्ड
5 फू. 6 इं. वाले पुरुष का 144 पाउन्ड
5 फू. 7 इं. वाले पुरुष का 148 पाउन्ड
5 फू. 8 इं. वाले पुरुष का 152 पाउन्ड
5 फू. 9 इं. वाले पुरुष का 156 पाउन्ड
5 फू. 1. इं. वाले पुरुष का 161 पाउन्ड

एक साधारण स्वस्थ पुरुष के लिए जो विशेष श्रम नहीं करता जरूरत पड़ती है प्रतिदिन

कार्बोहाइड्रेट	350 ग्राम
तेल व चर्बी	60 ग्राम
प्रोटीन	60 ग्राम
कैलशियम	आधा ग्राम
फास्फरस	1 ग्राम
लोहा	1 ग्राम के शतांश की।

डाक्टर कर्नल मैकर्सन, जिन्होंने भारत के खाद्य पदार्थों के सम्बन्ध में पर्याप्त अन्वेषण किया है, का मत है कि आदर्श भोजन में निम्न वस्तुएं निम्नलिखित मात्रा में होनी चाहिए

बिना छना हुआ आटा	12 औंस
हाथ का कुटा हुआ चावल	6 औंस
दूध	20 औंस
दही	4 औंस
तेल	1 औंस
घी	1 औंस
पत्तीदार भाजियां	8 औंस
फल व जड़वाली भाजियां	8 औंस
दाल	1 औंस

कुछ आटा और चावल के स्थान में ताजा फल खाया जा सकता है। महीने में दो तीन बार मांस व मछली खाई जा सकती है। अधिक भोजन करने से अनेक रोग होते हैं, तौल बढ़ जाती है। जिससे ह्रदय कमजोर हो जाता है, पाचन–शक्ति का ह्रास होता और अनेक रोग आ दबाते हैं और शीघ्र मृत्यु हो जाती है।

जब हमें भूख लगती है तब पेट और आँतों में रस उत्पन्न होता है जिसे "पाचक रस" कहते हैं। भोजन पचाने के लिए यह रस बहुत जरूरी है। जितनी अधिक भूख लगती है उतना ही अधिक

यह पाचक रस बनता है। इसी से भूख लगने पर ही खाने से भोजन ठीक ठीक पचता है। बिना क्षुधा के भोजन करने से पाचक रस पर्याप्त मात्रा में नहीं बनता और इससे भोजन ठीक नहीं पचता। हमारे थूक में अनेक ऐसे पदार्थ होते हैं जो भोजन पचाने में सहायक होते हैं। हमारा थूक क्षारीय होता है और भोजन ज्यों ही मुख में रखा जाता है थूक के द्वारा रसायनिक क्रियायें शुरू होती हैं और स्टार्च शक्कर में परिणत होना शुरू होता है। यदि देर तक ग्रास को मुख में रखा जाय तो मुख में ही स्टार्च पूर्ण रूप से शक्कर में परिणत हो सकता है। इसी से यह धारणा कि धीरे–धीरे भोजन करने से भोजन स्वादिष्ट लगता है वैज्ञानिक दृष्टि से बिलकुल ठीक है। यदि मुख में ग्रास देर तक न रहे तो थूक से मिला हुआ भोजन पेट में जाकर धीरे–धीरे पचता है। पेट में पाचक रस के योग से भी क्रियाएँ शुरू होती हैं और प्रोटीन, तेल और घी का पचना शुरू होता है। लघु आंतों में भोजन पचकर रक्त और अन्य रस के रूप में शरीर के विभिन्न भागों में पहुँच कर शरीर की वृद्धि और क्षति की पूर्ति करता है। पाचक रस आम्लिक होता है। नमक से नमक का अम्ल छन कर पाचक रस में रहता है। पाचक रस में अनेक पदार्थ रहते हैं जिन्हें वैज्ञानिक एंजाइम (Enzyme) कहते हैं। इनमें एक प्रमुख एंजाइम पेपसीन होता है जो प्रोटीन के पचाने का काम करता है। इसके द्वारा प्रोटीन छोटी–छोटी अंशों में टूट कर फिर अन्य एंजाइमों की सहायता से मानव प्रोटीन बन कर शरीर के कोषों का निर्माण करता है। इस पाचक रस में एक और प्रकार का एंजाइम होता है जिसे लाइपेज (Lipase) कहते हैं। यह तेल और घी को विच्छेदित कर देता है जिसमें कुछ तो गरमी पैदा कर नष्ट हो जाते और कुछ फिर परस्पर सम्मिलित हो मनुष्य की चर्बी में परिणत हो शरीर में संचित रहते हैं। भोजन का जो अंश पचता नहीं वह मल और मूत्र के रूप में शरीर से बाहर निकल जाता है। भोजन पच कर कैसे रक्त मांस और हड्डी बनता है यह ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर एक छोटे लेख में नहीं दिया जा सकता।

भोजन ठीक ठीक पच कर शरीर के लिए उपयुक्त रस बने इसके लिए आवश्यक है कि हम भूख लगने पर ही खाएँ, भोजन धीरे–धीरे और खूब चबाकर करें ताकि भोजन के साथ थूक ठीक प्रकार से मिल कर और भोजन पीसा जाकर जठर में प्रविष्ट करे, भोजन करने के समय अधिक पानी न पिएं क्योंकि इससे पाचक रस पतला होकर पाचन–क्रिया में बाधक होता है।

अब हमें विचार करना है कि खाद्य–सामग्री कैसे प्राप्त की जा सकती है। साधारणतया लोग समझते हैं कि रुपये से खाद्य–सामग्री सरलता से मिल जाती है पर यह बात नहीं है। आधुनिक विश्वव्यापी युद्ध से यह स्पष्ट हो गया है कि रुपया होते हुए भी खाद्य–पदार्थ प्राप्त नहीं हो सकते। गत वर्ष खाद्य के अभाव में बंगाल में जो भीषण अकाल पड़ा जिसमें करीब 50 लाख आदमी मर गए वह हमारे सामने है। जब तक बरमा अंग्रेजों के अधिकार में था, सर्व साधारण को मालूम न था कि भारत में पर्याप्त खाद्य पदार्थ पैदा नहीं होता। बरमा का अंग्रेजों के हाथों से निकल जाने से यह बात अब सबको मालूम हुई है। भारत की आबादी दिन–ब–दिन बढ़ रही है। पर आबादी के साथ–साथ पैदावार की बढ़ती नहीं हुई है। बल्कि पैदावार दिन–ब–दिन कम होती जा रही है पैदावार कम होने के अनेक कारण हैं। यह बात नहीं है कि यहां जमीन की कमी है। भारत में अभी काफी जमीन है और दिन–ब–दिन जोती जाने वाली जमीन की मात्रा बढ़ रही है। भारत के किसान काफी परिश्रमी भी होते हैं और पैदावार बढ़ाने के लिए पर्याप्त मेहनत करते हैं पर इस पर भी जमीन की पैदावार में विशेष वृद्धि नहीं हो रही है। आज भारत में पर्याप्त अनाज पैदा नहीं हो रहा है। भारत के लोगों के खिलाने–पिलाने के लिए यहां की जमीन से पर्याप्त अन्न पैदा हो सकता है पर ऐसा नहीं हो रहा है। निम्न आँकड़ों से पता लगता है कि अन्य देशों की अपेक्षा भारत में फी एकड़ पैदावार की बड़ी कमी है।

	धान की एकड़	गेहूँ की एकड़
भारत	1357 पाउन्ड	652 पाउन्ड
जापान	2767 पाउन्ड	1508 पाउन्ड
इजिप्ट	2356 पाउन्ड	1688 पाउन्ड
इटली	4601 पाउन्ड	1241 पाउन्ड
इंग्लैण्ड	–	1812 पाउन्ड
अमेरिका	2112 पाउन्ड	973 पाउन्ड

भारत में दस करोड़ एकड़ भूमि से प्रतिवर्ष अढ़ाई करोड़ टन चावल और एक करोड़ टन गेहूँ पैदा होता है। इतनी ही जमीन से कम से कम दुगुना अनाज सरलता से पैदा किया जा सकता है। यदि बृटिश भारत की आबादी 3. करोड़ मान ली जाय तो यहाँ के पैदा धान और गेहूँ से फी मनुष्य के लिए पौन (3/4) पाउन्ड प्रतिदिन अनाज पड़ता है। अवश्य ही एक आदमी के भोजन के लिए यह बहुत कम है। साधारण समय में भारत में सब लोगों को प्रतिदिन एक शाम भी पूरा भोजन नहीं मिलता। इस पर भी यदि पर्याप्त संख्या में बाहर से लोग यहाँ आ जाँय तो खाद्य की और भी कमी हो जायगी। ऐसी दशा में बाहर से खाद्य का आना बन्द होने और कुछ लोगों को खाद्य संचित रखने से दशा का बिगड़ जाना और भीषण अकाल का पड़ना स्वाभाविक है। कुछ कम्पनियां अपने कर्मचारियों के लिए 3 से 6 मास तक के लिए खाद्य–सामग्री इकट्ठा कर रक्खे हुए हैं। उनको ऐसा करना कुछ सीमा तक ठीक भी है। क्योंकि ऐसा न करने से उनके कार्य में बाधा पड़ने की सम्भावना है पर इसका परिणाम यह हुआ है कि अनेक स्थानों में खाद्य पदार्थ बाजार से लुप्त हो गया है। इस पर भी रेल के डब्बों की कमी से अनाज के एक स्थान से दूसरे स्थान में आने जाने में दिक्कतें हो रही हैं। इन सब कारणों के फलस्वरूप अनाज के अभाव में बिना अकाल ही भोजन के बिना लोग मर रहे हैं।

कृषि विभाग की ओर से पैदावार बढ़ाने के लिए अनेक प्रयोग हुए और हो रहे हैं। यदि इन प्रयोगों के परिणामों को किसान तक पहुँचा कर उन्हें अमल में लाने की कोशिश की जाय तो पैदावार कम से कम दुगुनी तो सरलता से बढ़ाई जा सकती है। पैदावार बढ़ाने के लिए अच्छे बीज का होना बहुत जरूरी है। कृषि विशेषज्ञों का मत है कि अच्छे बीज से पैदावार कम से कम 10 फी सैकड़ा आसानी से बढ़ाई जा सकती है। जिस खेत में 100 मन गेहूँ पैदा होता है उसमें अच्छे बीज से 110 मन आसानी से पैदा किया जा सकता है। किसानों को चाहिए खेत में उपजे सबसे अच्छे अनाज को ही बीज के लिए प्रयुक्त करें। कृषि विभाग की ओर से भी अच्छे बीज बांटे जाते हैं। लिखने से वे मिल सकते हैं। जिनके पास अच्छे बीज न हों उन्हें कृषि विभाग को लिख कर अच्छे बीज मंगाकर खेतों में बोना चाहिए। अच्छे बीज प्रौढ़ होते हैं और सब के सब उग जाते हैं।

पैदावार बढ़ाने के लिए खेतों में खाद डालना बहुत जरूरी है। जिस प्रकार मनुष्य बिना भोजन बहुत दिन तक जीवित नहीं रह सकता उसी प्रकार पेड़–पौधे भी बिना खाद के जीवित नहीं रह सकते। वनस्पतियों के भोजन खानिज पदार्थ हैं जो खाद में रहते हैं। भिन्न–भिन्न फसलों और पौधों को भिन्न–भिन्न प्रकार से खाद की आवश्यकता होती है। वनस्पति अपने खाद को जमीन, जल और वायु से ग्रहण करते हैं। जब ज़मीन पहले पहल जोती और बोई जाती है तब उसमें पर्याप्त खाद रहता है, पर बारबार बोने और बाहर से खाद न देने से खाद की मात्र कम होती जाती है और इससे ज़मीन की उपजाऊ शक्ति हीन होती जाती है। इस कमी की पूर्ति के लिए खेत में खाद डालने की जरूरत पड़ती है। कभी–कभी किसी खास फसल के उपजाने के लिए किसी विशेष अंश की पूर्ति की आवश्यकता पड़ती है और इसके लिए किसी विशेष खाद के डालने की जरूरत पड़ती

है। एक ही खेत में गेहूँ के बारबार बोने से सिलिका नामक पदार्थ की कमी हो जाती है। यदि सिलिका बाहर से न दी जाय तो गेहूँ की फसल अच्छी नहीं होगी। इस कमी की पूर्ति कुछ सीमा तक एक खेत में बारी–बारी से भिन्न–भिन्न फसलें बोकर की जाती है। खेत के पानी के बह जाने से भी खाद का बहुत कुछ अंश पानी के साथ घुल कर निकल जाता है। खेत में कुछ ऐसे स्थूल पदार्थ भी रहते हैं जो बिना रासायनिक क्रिया के पौधों के काम नहीं आ सकते। ऐसी रासायनिक क्रियाओं के संचालन के लिए भी कभी–कभी विशेष खाद के डालने की जरूरत होती है। साराँश यह है कि बिना खाद डाले ज़मीन की उपजाऊ शक्ति बढ़ाई नहीं जा सकती। अन्य देशों में पैदावार के अधिक होने का प्रधान कारण खाद का प्रयोग ही है। अन्य देशों के किसान अधिक धनी होते हैं, कृत्रिम खाद खरीद कर खेतों में डाल सकते हैं और उन्हें अनाज उपजाने में राज्य की ओर से पूरी सहायता मिलती है। भारत के किसान दरिद्र होते हैं, खाद में रुपया खर्च नहीं कर सकते और उन्होंने खाद के लाभ को पूर्ण रूप से समझा भी नहीं है।

खाद ऐसे रूप में होना चाहिए कि पौधे उसे जल्दी ग्रहण कर बाढ़, फूल और फल सकें। खाद के रूप में पौधों को निम्न तत्वों की जरूरत होती है –

(1) कार्बन, (2) हाइड्रोजन, (3) आक्सीजन, (4) गंधक, (5) मैगनीशियम, (6) लोहा, (7) चूना, (8) पोटाश, (9) फास्फोरस और (10) नाइट्रोजन।

कार्बन से ही पौधे बढ़ते हैं। पौधों को कार्बन हवा से प्राप्त होता है। कार्बन के लिए किसी विशेष प्रयत्न की जरूरत नहीं पड़ती। हवा में कार्बन डायक्साइड नामक गैस, जो सभी प्राणियों के साँस में बाहर निकलता है बहुत थोड़ी मात्रा में रहता है। इसी गैस से पौधों को कार्बन प्राप्त होता है। पौधे क्लोरोफील नामक एक हरे पदार्थ की सहायता से, जो सब पौधों के पत्तों में विद्यमान रहता है, सूर्य–किरण की उपस्थिति में कार्बन डायक्साइड से कार्बन को ग्रहण कर बढ़ते हैं और आक्सीजन को हवा से छोड़ देते हैं। इस प्रकार पेड़–पौधों के द्वारा वायुमण्डल की दूषित वायु स्वच्छ होती रहती है। यह काम धूप में ही होता है। इस कारण सूर्य किरण का पौधों पर पड़ना बहुत जरूरी है। इसी से पौधे छाये में नहीं बढ़ते, पीले पड़ जाते हैं और उनमें फूल–फल नहीं लगते।

पौधों को हाइड्रोजन और आक्सीजन जल से प्राप्त होता है। आक्सीजन कुछ हवा से भी मिलता है। जल के बिना पौधे बढ़ नहीं सकते। इससे समय समय पर वर्षा के अभाव में खेतों को सींचने की जरूरत पड़ती है। अच्छी पैदावार के लिए आवश्यकतानुसार खेतों को सींचना बहुत आवश्यक है। गंधक, मैगनीशियम, चूना और लोहा पौधों को मिट्टी से मिलता है। मिट्टी में ये तत्व पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहते हैं। पौधों के लिए अल्प मात्र में ही इनकी जरूरत पड़ती है। इस कारण इनके लिए किसी विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती। केवल जमीन को बारबार जोत देना चाहिए ताकि सूर्य–प्रकाश और वायु के द्वारा ये तत्व ऐसे रूप में परिणत हो जांय कि पौधे शीघ्र ग्रहण कर सकें। किसी किसी जमीन में चूने का अंश कम रहता है। साधारणतया इसकी मात्रा 1 से 3 प्रतिशत होनी चाहिए। यदि किसी खेत में इसकी मात्र कम हो तो कंकड़ को पीसकर 2. मन फी एकड़ के हिसाब से व चूना डालना चाहिए। जमीन से पानी में घुलकर पौधों की जड़ के द्वारा ये तत्व पौधों को प्राप्त होते हैं। आवश्यक आहार की खोज में पौधे अपनी जड़ों को दूर–दूर तक भेज सकें इसके लिए यह आवश्यक है कि खेत की मिट्टी भुरभुरी हो। खेत के जोतने और कोड़ने से मिट्टी भुरभुरी होती है।

मिट्टी में पोटाश का होना बहुत जरूरी है। पोटाश से पौधे प्रौढ़ होते, फूलते और फलते हैं और उनका डंठल मजबूत होता है। खास खास फसलों के लिए इसकी विशेष आवश्यकता होती है। ईख, आलू, साग–सब्जी और तम्बाकू में पोटाश विशेष रहता है। इस कारण कुछ फसलों के लिए

पोटाश का खाद डालना जरूरी है। पोटाश के कृत्रिम खाद शोरा (भारतीय) और पोटाशियम सल्फेट बाजारों में बिकते हैं पर इसकी प्राप्ति का सरल और सस्ता साधन राख है। पेड़–पौधों के जलने से जो राख बच जाती है उसमें पोटाश की मात्र पर्याप्त रहती है और उसे खाद के रूप में इस्तेमाल करनी चाहिए।

पौधों के लिए फास्फरस बड़ी जरूरी है। जमीन के पौधे फास्फरस को ग्रहण करते हैं। कृषि विशेषज्ञों का मत है कि भारत की मिट्टी से फास्फरस की मात्र धीरे–धीरे कम हो रही है। पौधों के द्वारा मिट्टी से जो फास्फरस प्रति वर्ष निकल रहा है उसकी पूर्ति नहीं हो रही है। हड्डियाँ फास्फरस से बनी हैं। पहले मनुष्य और पशुओं की हड्डियाँ सड़ गल कर मिट्टी में मिल जाती थीं और उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ाती थीं पर आज पशुओं की हड्डियाँ लेकर कृत्रिम खाद बन कर देश से बाहर चली जाती है और अन्य देशों की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाती है। भारत की मिट्टी में फास्फरस डालना जरूरी है। फास्फरस से पौधों में फूल और फल अधिक लगते हैं, फल स्वादिष्ट होता है और पौधों में रोगों से बचने की क्षमता आती है। फास्फरस के लिए हड्डी का चूरा तथा खनिज सुपर फास्फेट प्रयुक्त होता है।

नाइट्रोजन या नत्रजन पौधों के लिए बड़ी जरूरी चीज है। बिना नाइड्रोजन पौधे बढ़ नहीं सकते। उनके पत्ते और तने छोटे–छोटे होते हैं और उनके बीज की पैदावार बहुत कम होती है। नाइट्रोजन की कमी से पत्ते पीले भी हो जाते हैं। यद्यपि हवा के 5 भाग में 4 भाग नाइट्रोजन का रहता है पर बहुत थोड़े इने गिने पौधे ही हवा का नाइट्रोजन ग्रहण कर सकते हैं। कुछ थोड़े से फलीदार पौधे हैं जिनकी जड़ों में छोटी–छोटी कुण्डियां[1] होती हैं। इन कुण्डियों में बैक्टीरिया होती है जो हवा के नाइट्रोजन को ऐसे रूप में परिणत कर देती है जिन्हें पौधे ग्रहण कर सकते हैं। ऐसे पौधे हरे खाद के रूप में प्रयुक्त होते हैं। अन्य पौधे हवा का नाइट्रोजन ग्रहण नहीं कर सकते। उन्हें यौगिक रूप में नाइट्रोजन मिलना चाहिए। पैदावार बढ़ाने के लिए नाइट्रोजन वाला खाद खेत में डालना जरूरी है। मिट्टी का नाइट्रोजन बहुत कुछ निकल चुका है। प्रति वर्ष जो निकलता है उसकी पूर्ति नहीं होती है। यदि खेत को एक दो साल परती छोड़ दिया जाय तो नाइट्रोजन की कमी पूरी हो जायगी पर किसानों के लिए यह सम्भव नहीं है। इस कारण प्रतिवर्ष खेतों में नाइट्रोजन वाला खाद पर्याप्त मात्र में डालने की जरूरत है। यह खाद ऐसे रूप में होना चाहिए कि पौधे उन्हें जल्द ग्रहण कर सकें। भिन्न–भिन्न फसलों के लिए भिन्न–भिन्न मात्र में नाइट्रोजन वाले खाद की जरूरत पड़ती है। गेहूँ के लिए फी एकड़ 2. सेर नाइट्रोजन चाहिए। अन्य फसलों के लिए इससे कम वा अधिक। ईख और आलू में भी पर्याप्त नाइट्रोजन वाले खाद की जरूरत होती है।

पैदावार बढ़ाने के लिए खेतों में नाइट्रोजन, फास्फरस और पोटाश वाले खाद डालने की विशेष आवश्यकता है। अनेक ऐसे खाद हैं जिनमें ये तीनों चीजें मौजूद रहती हैं पर कुछ ऐसे भी विशेष खाद हैं जिनमें कुछ में केवल नाइट्रोजन रहता है, कुछ में केवल फास्फरस होता है और कुछ में केवल पोटाश होता है। ऐसे खादों को क्रमशः नाइट्रोजन वाले खाद, फास्फरस वाले खाद और पोटाश वाले खाद कहते हैं। ऐसे खाद बाजारों में बिकते हैं। कुछ खाद ऐसे हैं जिनमें पौधों के लिए सब आवश्यक अंश विद्यमान रहते हैं और वे सब पौधों के लिए समान रूप से व्यवहृत हो सकते हैं। कुछ खाद ऐसे हैं जिनमें कोई विशेष तत्व ही विद्यमान रहता और वह किसी खास खेत में किसी खास फसल के लिए ही प्रयुक्त हो सकता है। पहले किस्म के खादों में हैं–

(1) गोबर, पेशाब, भेड़ व बकरी की लेण्डी, घोड़े की लीद, विष्ठा। कूड़ा–कर्कट, घास–फूस और राख से बने खाद।

(2) वृक्ष के सूखे पत्ते से बना खाद

(3) हरा खाद

(4) खली का खाद

(5) शहर के नालियों के गन्दे पानी का खाद।

दूसरे प्रकार के खादों में हैं – (1) शोरा (भारतीय व चीली का),

(2) अमोनियम सल्फेट, (3) हड्डी का चूरा और हड्डी को गन्धकाम्ल में गला कर बना खाद, (4) खनिज सुपर फास्फेट, (5) चूना, (6) जीप्सम, (7) नाइट्रोलियम, (8) पोटाश सल्फेट और (9) मछली का खाद।

भारत के किसान साधारणतया दरिद्र होते हैं। वे रुपया खर्च कर खाद खरीद नहीं सकते। पर जो रुपया लगा कर खाद खरीदने के योग्य हों उन्हें खाद खरीद कर अवश्य इस्तेमाल करना चाहिए और अधिक अनाज व साग सब्जी पैदा कर लाभ उठाना चाहिए। बाग–बगीचों में तो खाद डालना नितान्त आवश्यक है। बंगले के हाते में पूरा खाद डाल कर काफी साग सब्जियाँ उपजाई जा सकती हैं। इसके लिए कुछ नाइट्रोजन वाली खाद, अमोनियम सल्फेट व सोडियम नाइट्रेट (चीली–शोरा), व दोनों नाइट्रोजन और पोटाश वाला खाद भारतीय शोरा (कलमी शोरा) आदि कुछ फास्फरस वाला खाद, हड्डियों का चूर्ण व खनिज सुपर फास्फेट अवश्य इस्तेमाल करना चाहिए। जो लोग खाद खरीदकर व्यवहार में नहीं ला सकते उन्हें अपना खाद स्वयं तैयार करना चाहिए। प्रत्येक किसान खेतों के पैदावार और मवेशियों के मल, मूत्र और व्यर्थ के उपजे घास–पानी से उत्तम खाद तैयार कर सकता है। कृषि विभाग की ओर से ऐसा खाद तैयार करने पर बहुत कुछ खोज–बीन हुआ है और ऐसी विधियां निकाली गई हैं जिनसे पेड़–पौधों और मवेशियों के मल–मूत्र के आवश्यक अंश नष्ट न होकर खाद में ही वर्तमान रहते हैं। इन विधियों के सम्बन्ध में विस्तार से यहाँ लिखना सम्भव नहीं है। जो इस विषय पर विशेष ज्ञान प्राप्त करना चाहें वे इस विषय के ग्रन्थों और पुस्तिकाओं को देख सकते है। इन्दौर के Institute of plant Industry से इस सम्बन्ध में दो परचे—परचा न. 1 और परचा न. 2, अंग्रेजी में छपे हैं। इस सम्बन्ध में कुछ लेख पूना खेती कालेज के और कुछ नागपुर खेती कालेज के मैगजीनों में भी छपे हैं। हिन्दी में ज्ञानमण्डल प्रेस, बनारस से छपी पुस्तक 'खाद का उपयोग–और खेती–पुस्तक भण्डार, देहली की छपी 'खेती' नामक पुस्तिका से भी खाद तैयार करने के सम्बन्ध में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

इन्दौर विधि से खाद तैयार करने में किसानों का धन नहीं लगता। उनके खेत और खलिहानों में जो निरर्थक वस्तुएं रह जाती हैं और उनकी मवेशियों से जो मल–मूत्र प्राप्त होता है उसी से खाद तैयार होता है। इसके तैयार करने में थोड़ा श्रम तो अवश्य पड़ता है पर खाद उत्तम कोटि का होता है। पौधों के लिए आवश्यक सभी तत्व विशेषतः नाइट्रोजन, फास्फरस और पोटाश इसमें विद्यमान रहते हैं। इनका अनुपात भी ठीक ठीक होता है। खेतों में इस खाद के अधिक हो जाने से भी कोई नुकसान नहीं होता। इस खाद के डालने से खेतों की उपज बहुत बढ़ जाती और फसल की पैदावार बहुत अच्छी होती है। इस खाद के तैयार करने में निम्न वस्तुएं इस्तेमाल होती हैं।

(1) खेत और खलिहान की वे सब चीजें जो और किसी काम में नहीं आतीं। घास–पात, कपास, तिल, कुसुम, अलसी, सरसों और चने के डंठल, ईख की सूखी पत्तियाँ, ज्वार और मकई की खुखुड़ियाँ, वृक्ष के सूखे पत्ते, खलिहान के और काम में न आने वाले डंठल, मवेशियों के खाने से बचे हुए भूसे, सब इसके लिए इस्तेमाल हो सकते हैं। यदि इनमें कोई वस्तुएँ हरी हों तो उन्हें कुछ सुखा लेना चाहिए। यदि कोई वस्तु कठिन हो तो उसे फाड़ लेना चाहिए और यदि सम्भव हो तो ऐसी फाड़ी चीज को कुछ दिन तक ढेर में रख कर तब खाद बनाने में इस्तेमाल करना चाहिए।

(2) गोबर। यदि सम्भव हो तो मवेशियों का सारा गोबर खाद बनाने में ही इस्तेमाल करना

चाहिए। यदि ऐसा सम्भव न हो और गोबर को जलावने के लिए भी इस्तेमाल करने की जरूरत पड़े तो कम से कम गोबर का चौथाई भाग तो खाद तैयार करने में अवश्य लगानी चाहिए। गोबर के सिवाय घोड़े की लीद और बकरी और भेड़ी की लेण्डियाँ भी इसके लिए प्रयुक्त हो सकती हैं।

(3) राख। घर में जलावन के इस्तेमाल में जो राख बनती है उसको सावधानी से इकट्ठा कर रखना चाहिए और खाद बनाने में इस्तेमाल करना चाहिए।

(4) मूत्र से मिली हुई मिट्टी। जहाँ मवेशी रहती हो वहाँ भुरभुरी मिट्टी की 6 इंच मोटी तह बिछा देनी चाहिए और जब वे मूत्र से भींग जायं तो उन्हें हटाकर दूसरे स्थान में रख देना चाहिए और उनके स्थान में ताजी मिट्टी बिछा देनी चाहिए। इस प्रकार कुछ दिनों में काफी मिट्टी इकट्ठी हो जायेगी जो खाद बनाने में इस्तेमाल हो सकती है। मूत्र से मिली हुई मिट्टी स्वयं अच्छा खाद है और सीधे खेत में डाली जा सकती है। मिट्टी के स्थान में घास पात भी मवेशियों के बिछावन के लिए इस्तेमाल हो सकता है और ऐसी घास पात जो मूत्र आदि गोबर से मिला हुआ है खाद बनाने के लिए अधिक उपयुक्त है।

(5) पानी। एक गाड़ी खाद बनाने में प्रायः 5. से 6. कनस्टर पानी लगता है। ताजा पानी इसके लिए अच्छा है। गंदला पानी ठीक नहीं। घर में इस्तेमाल हुआ पानी भी काम आ सकता है बशर्ते वह पुराना न हो।

(6) चूना। जला हुआ व बिना जला चूना इस्तेमाल हो सकता है।

इन सब सामानों को एकत्र कर एक गड्ढा खोदना चाहिए। गड्ढा पानी के निकट हो तो अच्छा है। इसकी लम्बाई–चौड़ाई खाद बनाने के सामान की मात्रा पर निर्भर है। गड्ढा 3. फूट लम्बा और 14 फूट चौड़ा तक रह सकता है। ज़मीन की तह से एक फूट गहराई हो ताकि उसकी मिट्टी को मेंढ़ पर रख देने से गड्ढे की गहराई वस्तुतः दो फूट की हो जाय। इस गड्ढे की मेंढ़ तिरछी हो तो अच्छा है। जरूरत पड़ने पर एक गड्ढे के स्थान में एक से अधिक गड्ढे तैयार कर इस्तेमाल किए जा सकते हैं। इस प्रकार तैयार खाद को 'कम्पोस्ट' कहते हैं। इस कम्पोस्ट के तैयार करने में विभिन्न पदार्थों का अनुपात निम्न रहना चाहिए—

खेत और खलिहान का अवशेष	400 भाग
मूत्र मिली हुई मिट्टी	56 भाग
ताजा गोबर	60 भाग
राख	6 भाग
चूना	2 भाग

गोबर मूत्र मिली हुई मिट्टी और राख व चूना को पानी से लेई सा बना कर घास पात को उसमें मिलाकर गड्ढे में एक तह रख देनी चाहिए। यह क्रम प्रति दिन एक सप्ताह चलना चाहिए ताकि एक सप्ताह में वह गड्ढा भर जाय। एक तह रखने पर आधा कनस्टर पानी उस पर छिड़क देना चाहिए। संध्या में भी एक कनस्टर पानी उसमें डाल देना चाहिए। 1. दिन में रासायनिक क्रियाएँ शुरू होती हैं। 12 वें दिन उसमें अढ़ाई कनस्टर पानी डालना चाहिए। 15 वें दिन उसे एक मास का पुराना कम्पोस्ट डाल कर ऊपर नीचे पलट देना चाहिए। 24 वें दिन फिर पानी डालकर 30 वें दिन पलट देना चाहिए। 38 वें और 45 वें दिन फिर पानी डालना चाहिए और 60 वें दिन पलट देना चाहिए। 67 वें और 75 वें दिन फिर पानी डाल कर छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार 90 दिन में कम्पोस्ट तैयार हो जाता है।

ऐसा खाद पहले–पहल इन्दौर में तैयार हुआ था, फिर बुन्दी में, फिर सिन्ध और तब संयुक्त प्रान्त में बनना शुरू हुआ। आज इस विधि से केवल भारत में ही नहीं वरन्, अफ्रीका, रूस,

चेकोस्लोवाकिया इत्यादि देशों में भी खाद तैयार होकर खेतों में प्रयुक्त होता है। यदि ऐसा खाद तैयार न हो सके तो केवल गोबर को ही किसी गड्ढे में सड़ा कर खाद बना कर पर्याप्त मात्र में इस्तेमाल करना चाहिए। यदि इस गोबर के साथ राख और पशुओं का मूत्र भी मिला हो तो और उत्तम खाद बन सकता है।

कुछ फलीदार पौधों की जड़ों में कुण्डियाँ होती हैं जिसमें पौधे वायु के नाइट्रोजन को ग्रहण कर ऐसे रूप में परिणत कर देते हैं कि अन्य पौधे भी उसे ग्रहण कर सकें। ऐसे पौधों में सनई, नील और कुर्थी हैं, इन पौधों को खेतों में उगाकर जमीन में जोत डालते हैं। इन्हें हरी खाद कहते हैं। हरी खाद से जमीन की पैदावार बढ़ जाती है। मछली में पर्याप्त नाइट्रोजन और फास्फरस होता है। खास–खास वृक्षों के लिए–विशेषतः बाग–बगीचों के वृक्षों के लिए–मछली का खाद इस्तेमाल हो सकता है।

नीम, रेड़ी और महुए इत्यादि तेलहनों की खलियाँ पशुओं के खिलाने में नहीं काम आती। ऐसी खलियाँ खाद के लिए प्रयुक्त होती हैं। इनसे पौधों को नाइट्रोजन प्राप्त होता है। इनमें से कुछ खलियाँ वृक्षों और पौधों को कीड़े–मकोड़ों और दीमकों से भी बचाती हैं। जिन पशुओं को सरसों, अलसी, तिल इत्यादि की खलियाँ खिलाई जाती हैं उनके गोबर खाद की दृष्टि से अधिक लाभदायक होते हैं।

खाद्य पदार्थों की पैदावार बढ़ाने के लिए ताकि इस देश के लोगों को खाद्य के लिए दूसरे देशों पर निर्भर न रहना पड़े यह आवश्यक है कि पर्याप्त मात्रा में खाद खेतों में डाला जाय। इसके लिए खाद की पैदावार बढ़ानी चाहिए। कृत्रिम विधि से अनेक खाद तैयार हो सकते हैं। ऐसे खाद तैयार करने के सब साधन इस देश में विद्यमान हैं पर अभी तक इस ओर न तो सरकार का और न देश–भक्तों व व्यवसायों का ही ध्यान गया है। इधर युद्ध के कारण खाद्य की जो कमी हुई है उससे लोगों का ध्यान बहुत कुछ इस प्रश्न की ओर आकर्षित हुआ है और सरकार की ओर से भी 'अधिक खाद्य पैदा करो' की आवाज उठ रही है पर इसके लिए वास्तविक प्रयत्न अभी तक जो हुए हैं वे नगणय हैं।

नगर के लोगों को खाद्य प्राप्त करने के लिए धन चाहिए। यह धन उद्योग–धन्धों से ही प्राप्त हो सकता है। जब तक देश में पर्याप्त उद्योग–धन्धे नहीं होते और लोगों के पास पर्याप्त धन नहीं होता तब तक सबको भर पेट भोजन मिलना सम्भव नहीं। अधिक खाद्य उत्पन्न करने के साथ–साथ उद्योग–धन्धों का होना भी अत्यावश्यक है। कम से कम उन चीजों को जिनको हम इस्तेमाल करते हैं और जिनके तैयार करने के लिए कच्चे माल हमारे देश में प्राप्य हैं, बनाने के कारखाने हमारे देश में खुल जाने चाहिए ताकि जो लोग कृषि व्यवसाय में नहीं लगे हैं उनको दोनों शाम पेट भर भोजन मिल सके।

रत्नगर्भा वसुन्धरा*

यशवन्तसिंह नेगी

कृषि अपनी भूमिको प्यार किया करते थे। वैदिक युगके उषाकाल तक अत्यधिक दार्शनिकता उनकी सोम–मन्दिर आँखोंमें किसी दूरस्थ स्वर्गके स्वप्न लाकर नहीं बिछा पाई थी, उनके लिए पृथ्वी ही स्वर्ग और नरक थी। भूमिके रंग अभी समीचीन बने थे। यथार्थतः भूमिवादी हिन्दुस्तानमें ये रंग कभी धुंधले पड़ेही नहीं। 'पृथ्वी' नहीं, 'भूमि' प्रत्येक हिन्दुस्थानीकी मां है। अगर अपने दैवत्वकी गरिमासे ओत प्रोत पृथ्वी हमसे सहजही दूर जा पड़े, तो हमें 'पृथ्वीपुत्र' नहीं, 'भूमिपुत्र' या 'धरापुत्र' बननेका प्रयत्न करना चाहिए। खेलमें बच्चा मांको भूल जाता है। उमंगमें रंग–बिरंगे खिलौनोंमें उसका बालक–मन विलम जाता है। यह जीवन–सातत्यका स्वाभाविक फल है। जब तक बालककी कोमल शिराओंमें मांके स्तन्यका जीवन अक्षुण्ण रहता है, उसे कोई चिन्ता नहीं रहती। अपने खेलोंकी विचित्रता उसे मुग्ध किये रहती है; परन्तु नग्न यथार्थका पहला प्रहार होने पर, भूख लगनेपर, उसे कहना पड़ता है :–

'सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्रय मे पयः।'

—अथर्ववेद

ठीक यही बांत आजसे दो ढाई हजार साल पहले मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंने कही थी। वैदिक कविने उस एक महान सत्यको, जिसे आजके व्यावसायिक युगमें प्रत्येक हिन्दुस्थानी देखकर भी भूल जाता है, कितने सीधे–सच्चे शब्दोंमें रखा था :–

'माता भूमिः पुत्रोऽहम्'

व्यवसाय और वित्त विलासकी वृद्धिहो सकती है; परन्तु विलास कभी भी जीवनका पर्याय नहीं है। अपने शुद्ध वास्तविक रूपमें जीवन भूमिसे ही उत्पन्न होता है। अपने अक्षुण्ण जीवनके एक भागकी मिट्टी अपने एक मूर्त अंशमें भर देती है और यत्नपूर्वक उसकी स्थितिका आयोजन करतीं है। यही तो जीवन–सातत्यका रहस्य है, इसीलिए भूमिकी गोदमें मानव अमर है। भूमिकी इस महत्ताको एक अंगरेज़ कविने बड़ेही सुन्दर शब्दोंमें स्पष्ट किया है :–

You could not but live, you sons of the earth!
In the plenty of grains, and herbs and springs fair.
अर्थात् मिटे नहीं तुम, हरित तुम्हारी पृथ्वी पर;
शस्य, शीत जल, कन्द–मूल–फल, रस अक्षर।

जीवन–स्थितिके यथार्थ उपादान शस्य, शीत जल, कन्द–मूल–फल और गो–दुग्ध हैं। उत्तम भोजन, सुन्दर वस्त्र और रत्नमय प्रासादोंसे जीवनके वैचित्यमें वृद्धि अवश्य होती है; परन्तु शरबत

---

* *विशाल भारत*, मार्च 1946

खूनका काम नहीं दे सकता। इस खूनका स्रोत मिट्टीमें है – 'सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु।' अथर्ववेदमें भूमिकी उपमा सवत्सा गौसे दी गई है और अग्निको उसका वत्स बताया गया है। काम्य वस्तुओंमें जीवन (आयुष्) का प्रथम स्थान है– 'आयुःप्रथमम्।' भौतिक देहमें जीवन–सृष्टिके पश्चात् भूमि अन्य कई उपकरणों द्वारा उसकी दृढ़ स्थिति–सुप्रतिष्ठाके लिए आयोजन करती है। वीर्य और बलकी वृद्धिके लिए वह 'अन्न, व्रीहि, यव' और 'नानावीर्य ओषधियों' को उत्पन्न करती है:–

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमा पंच कृष्टयः।
नानावीर्या ओषधीर्या विभर्ति पृथिवी। ––अथर्ववेद

भूमि इन वीर्य वर्द्धक ओषधियोंकी मां है––'भारतमोषधीनां' और इन ओषधियोंमें वह अपना अमृत उड़ेल देती है––'पयस्वतीरोषधयः'। जीवन–सातत्यके लिए अक्षर–रसकी धाराएँ, शीतल जलकी सरिताएँ, भूमिपर निरन्तर प्रवाहित होती रहती हैं– 'यस्यामापः परिचराः समानोरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।'

(अथर्ववेद)

इस प्रकार जीवनकी सृष्टि और वर्द्धनकर स्वयं भूमिही उसे अपने क्रोधसे बचाती है। वर्षा, धूप, झंझा और तुषारपातकी क्षयकारी शक्तियोंसे आश्रय प्रदान करती है। प्रकृतिका समस्त कम्पन, सारा उद्वेग अपने ऊपर झेल लेती है। अपने छोटे–से शिशुओंपर जरा भी आँच नहीं आने देती। इसी कारण भूमि वह महान् आश्रय–स्थल बन गई है, जिसका 'सराय' कहकर कभी कोई उपहास नहींकर सकता, जिससे सबको सच्ची ममता होनी चाहिए– 'महत्सधस्थं महती वभूविथ महान्वेग एजथुर्वेपथुष्टे।' और इसी कारण केवल श्यामलांचला धरणीपर ही मनुष्य जी सकता है– 'भूम्यां मनुष्याः जीवन्ति' (अथर्ववेद)। 'शिला' अश्म और पांशु, की संहति यह भूमि 'ध्रुवं' है, धर्मसे 'धृत' है। इसपर चलने वालोंके पाँव डगमगा नहीं सकते, इसपर गिरनेका भय नहीं है। यहां किसी वस्तुकी कमी नहीं है, यह हमारी 'भूरिवर्याः' माँ है। इस मिट्टीमें असीम ऐश्वर्य है, अमर विभूति है। इस भृत्तिकाके कण–कणसे स्रुत चिरन्तन आनन्दमें मनुष्यको आँसू बहानेका अवसरही कहां है–'यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या ब्यैलवाः।'

ऋषियोंने रत्नगर्भा भूमिको कभी सराय या होटलके रूपमें देखनेकी राय नहीं दी है। उन्होंने उसे नश्वर, क्षणभंगुर, माया–जाल इत्यादि कहकर कभी भी उसकी महत्ताको कम नहीं किया। उनकी यह मातृभूमिकी कल्पना स्तुत्य है। यह 'विश्वम्भरा' मनुष्यही नहीं, पशु–पक्षियोंकी भी माँ है–आश्रयके लिए; पर और–और पद दोनों इसी ओर बढ़ते हैं– 'यां द्विपादः पक्षिणकः संपतन्ति हंसा सुपर्णाः शकुना वयांसि।' धरा केवल सन्तोंको ही आश्रय नहीं देती। वह अपार क्षमाशील है। उसके शीतल अंचलमें पापियोंके लिए भी स्थान है। भले और बुरे दोनोंके निधनको माँ चुपचाप सह लेती है–'मल्वं विभ्रती गुरुमद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः।' (अथर्ववेद)

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, अगर अपनी दैवत्व गरिमाके कारण 'पृथिवी' हमसे कुछ दूर जा पड़े तो हमें भूमिपुत्र बननेका प्रयत्न करना चाहिए। वैदिक 'पृथ्वी' और 'भूमि' में थोड़ा–सा अन्तर है। यद्यपि दोनोंके विशेषण और विशेषताएँ एकही हैं और बहुधा दोनों एकही अर्थमें तथा साथ–ही–साथ प्रयुक्त हुए हैं, तथापि जाने कल्पनाकी किस झोंकमें वैदिक कवि एक अखण्ड पृथ्वीकी त्रिमूर्तिके दर्शनकर बैठा। परन्तु जैसे कि एक रोज स्वर्गीय डॉक्टर इकबालने कण्ठ भरकर कहा था– 'सारे जहांसे अच्छा हिन्दोस्तां हमारा'; वैसेही वेदोंके कविने एक उदारतर भावनासे प्रेरित होकर इस पार्थिव 'भूमि'की महत्ताको स्वीकार किया। तीन पृथिवियां हैं; परन्तु उनमें सबसे उत्तम हमारी ही 'भूमि' है। इससे बढ़कर श्रद्धांजलि क्याहो सकती है– 'इमां यास्तिसः पृथिवीस्तासां ह भूमिरुत्तमा।'

भूमिसे अलग मनुष्य जी नहीं सकता। स्वस्थ मनुष्यको जीनेके लिए मिट्टीकी गन्धकी आवश्यकता होती है। पर्ल एस. बकके अमर उपन्यास 'गुड अर्थ' में वैभवमें लोटे हुए नायकको बार–बार अपने बूट उतारकर खेतोंकी गीली, भीनी महक वाली भूमिपर चलनेकी, उसका स्पर्श अनुभव करनेकी इच्छा होती है। तपी हुई भूमिसे बरसातके पहले दिन उठने वाली भीनी गन्धमें 'पयस्वती' वसुन्धराके अमृतका आभास मिलता है। ज़मीनके साथ हमारा तादात्म्य हमारी एक बहुत बड़ी जीत होगी। हमें इसी गन्धमें, इसी अमृतमें शराबोर होनेकी आवश्यकता है:–

यस्ते गन्धः पृथिवि संवभूव यं विभ्रत्योषधयो यमापः।
यं गन्धर्वा अपसरसश्च भेजिरे तेना मा सुरभि कृणु... ।।

अर्थात् – हे पृथिवी, जो यह गन्ध तुमसे उत्पन्न होती है, जिसे समस्त ओषधियां और सरित्सागर धारण करते हैं, जिसे गन्धर्व और अप्सराएँ सेवन करती हैं, उस गन्धसे मुझे सुरभित कर।

यह मिट्टीसे अटूट सम्बन्ध स्थापित करनेकी कामना, जो केवल मानसिक स्वास्थ्यसे ही उत्पन्न होती है। रुग्ण मानस वाले बहुत कम लोगोंमें यह प्रवृत्ति पाई जाती है।

यद्यपि भूमिका मूल ऐश्वर्य जीवन है, अपनी प्राणायुर्दा विशेषताके कारणही वह 'विश्वगर्भा' कहलाती है, तथापि वह 'हिरण्यवक्ष' अपनी कोखसे पैदा हुए शिशुओंको दाना–दाना बीननेके लिए नहीं छोड़ देती। उसके वक्षमें सोना है; परन्तु निकालनेके लिए प्रयत्न करना पड़ता है। उसकी गुफाएँ मणियोंसे जगमगाती हैं; परन्तु वहां तक पहुंचे कौन? उसके सागरोंकी तहमें हीरे–मोती बिखरे पड़े हैं; परन्तु 'क्षुधार्त पानी' से कौन टक्कर लेगा? यह शक्ति अपनेमें उत्पन्न करो, इच्छा करनेसे पहले योग्य बनो, बलवान बनो और धराके सच्चे पुत्र बनो, जिससे तुम अंचल पकड़कर उससे कह सको :–

निधि विभ्रती बहुधा गुहा वसुं मणिं हिरण्यं पृथ्वी ददातु मे।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातुं सुमनस्यमाना।।

हम अपने मृतकोंकी मसालेदार 'ममी' नहीं बनाते थे। कयामत के बाद उस सार्वजनिक न्याय–दिवस (Day of Judgement) में हमारा विश्वास नहीं था। उसके लिए हम बेजान शरीरको यत्नपूर्वक नहीं बनाये रखते थे। जिसे भूमिसे ही जीवन दान मिला था, जन्म–भर जिसने धराके अमृतसे ही अपनी प्राण–स्थितिकी थी, उसे भूमिके पास चला जानाही चाहिए :–

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथवीं सुमेवाम्।

–जाओ, इस दयार्द्रचेता भूमिमें सुविस्तृत अंचलमें निःशंक चले जाओ।

उछ्वश्वस्व पृथिवि मा निबाधथाः सूपायनास्मै भव सूपसाणा।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि।। (अथर्ववेद)

–उच्छ्वास लो, हे पृथिवी, इसे बहुत जोरसे न दबाना। इसे आवृत्तकर लो, जैसे माता अपना वस्त्र पुत्रके चारों ओर लपेट लेती है। और पुत्रके लिए इससे प्रसन्नताकी बात क्याहो सकती है कि मृत्यु–कालमें उसकी माँने फिर उसे अपनी गोदमें ले लिया है। सदाका थका–माँदा वह अब सुखकी नींद सोयेगाः–

सर्व्वस्य प्रतिशीवरी भूमिस्त्वोपस्थ आधित।
नास्मै सुषदा भव यच्छास्मै शर्म्म सप्रथाः।

–कृष्णायजुर्वेद

–सबको शरण देने वाली भूमिने तुझे क्रोड़में ले लिया है। हे भूमि, इसके लिए सुखदायी बन और इसे शान्ति प्रदान कर।

भूमि इस प्रकार हमारी ओर देखकर मुस्कुराती है। मातृ–गर्वसे वह फूल उठती है। उसकी गोदमें हम नाचते–गाते हैं, आमोद मनाते हैं और साथही उसके असीम सौन्दर्यको क्षति पहुँचाते हुए युद्धकी विभीषिका भी रचते हैं–'युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः।' परन्तु भूमिको क्षति पहुँचाना हमारा कर्त्तव्य नहीं। जिस अर्थमें अथर्ववेदके कविने उपर्युक्त पंक्ति लिखी है, उससे खेद प्रकट नहीं होता, प्रत्युत उसमें शक्तिकी उच्छृंखल क्रीड़ाके दर्शनसे प्रादुर्भूत आनन्दकी व्यंजना है। इसका कारण वैदिक आदर्श है। जनों और गणोंका वह निर्माणकाल स्वभावतः ही युद्ध–काल था। आर्य–जाति स्वयंही युद्धप्रिय थी, इसीलिए कदाचित् वैदिक कविने देख पाया कि युद्धसे भूमिकी व्यापक सुन्दरताको ठेस पहुंचती है। परन्तु दूसरे तरीकोंसे भूमिको नुकसान पहुँचानेकी उसने सख्त मुमानियतकर दी है। होम करना है, करो; करनाही चाहिए। परन्तु होम होगा, तो इसी जमीनपर न? इसलिए धराकी वनस्पतिके मूलको ठेस न पहुँचाना– 'पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं माहिं सिषम्।'

–कृष्णायजुर्वेद

धरा देवयजनि है। उसके पृष्ठपर देवताओंके लिए होम किया जाता है। उसकी छाती घायलकर हवन–कुण्ड बनाया जाता है, उसकी छातीपर पत्थर धरकर वेदी तैयारकी जाती है, और 'क्षमा' धरणी सब चुपचाप सहन करती है। परन्तु हमें चाहिए कि जहाँ तक हो सके, उसे नुकसान न पहुँचानेका प्रयत्न करें–'मा ते मर्म विमृग्वरि, मा ते हृदयमर्पियम्।' मनुष्यके हाथोंके उत्पातसे नहीं, प्राकृतिक शक्तियोंसे भी वैदिक कवि अपनी प्यारी भूमिको बचाना चाहता है—'न घ्रस्त ताप न हिमो जघान।' पानी बरसे, पर वह उसे कहीं गर्मी और शीतसे नुकसान न पहुँचा दे।

भूमिकी उर्वरतामें सबको विश्वास होना चाहिए। पृथिवी बन्ध्या नहीं है। ओषधियां बार–बार उसके गर्भसे खोदकर निकाली जाती हैं; परन्तु देनेके लिए ही तो वह ओषधियोंको उत्पन्न करती है। उसकी इस निरन्तर उर्वरतामें वैदिक कविको विश्वास है, इसीलिए तो वह कहता है :–

यत्ते भूये विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।

–हे भूमि, जो कुछ मैं तुझसे खोदकर निकालूँ, वह भी फिर जल्दी ही पनप जाय।

कृष्णयजुर्वेद तै. सं. में पृथिवीकी एक बहुत कवित्वपूर्ण प्रशस्ति है। उससे स्पष्ट है कि वैदिक आर्य पृथ्वीपर, उसकी क्लेश–वहन–शक्ति और उर्वरता दोनोंके लिए, आस्था रखते थे—'बडित्था पर्वतानां खिद्रं विभर्षि पृथिवी' प्र या प्रवत्वति मन्हा जिनोषि महिनि। सोमासस्त्वा विचारिणि प्रतिष्ठोभत्यक्तुभिः। प्र या बाज न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि। श्री ए. बी. कीथने इसका सुन्दर अनुवाद इस प्रकार किया है :–

"O Earth, thou bearest,
The weight of the mountains,
Thou that dost, O great Earth,
With thy hills, quicken with Thy might;
The songs salute thee;
Thee, that extendest far, each day;
Thee, that, O bright one, dost shoot forward
The seed like great riches"

इस विस्तृत वसुन्धरामें सौन्दर्य और वैचित्र्यकी कमी नहीं है। उसका सौन्दर्य तो सदासे ही कलाकी वस्तु रहा है। आर्यावर्त्तमें जिस दिन ज्योतिका प्रथमोदय हुआ था, उसी दिन वैदिक कविने अपने आर्ष–चक्षुओंसे इस महान् सत्यको देख लिया था कि सात्विक मानस वाले मनुष्यके लिए हमारी भूमि और भी सुन्दर हो उठती है :–

मधुवाता ;तायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वोर्नः सन्त्वोषधी मधुनक्तमुतोषसि मधुमत् पार्थिवं रजः।
'To the pious the winds pour honey,
The streams honey,
Be sweet to us the plants,
Sweet is the night and sweet
At dawn the air of the earth.'

मूल और अनुवादकी अन्तिम दो पंक्तियां अपनी सरलतासे उतनीही सुन्दर हैं, जितनी महाकवि वर्ड्सवर्थकी निम्नलिखित पंक्तियां :–

'Waters on a stormy night,
Are beautiful and fair!'

हम भूमिसे अनुक्षण दूर होते चले जा रहे हैं। आजसे नहीं, सदियोंसे यह कुप्रथा जारी है। इस क्षयका श्रीगणेश उसी रोज़हो चुका था, जिस दिन हमारे शास्त्रकारोंने अन्तरिक्षके जाने किस कोण में अपनी पर–कटी कल्पना द्वारा एक अजीब दुनिया का निर्माण किया, जिसे हम आज स्वर्ग कहते हैं। परन्तु यह विषकी उपज हुई। कल्पनाके इस शिल्पकला–आकाशमें ढके स्वर्गसे हमें कितना नुकसान हुआ, यह कहनेकी बात नहीं। हमारा धरतीका मोह बहुत–कुछ कमहो गया। हम दुनियाको सराय समझने लगे, संन्यासी, वैरागी और भी न जाने क्या–क्या बने। और आज तो यह अवस्था है कि "दुविधामें दोनों गये, माया मिली, न राम।" हमारी भौतिकताको दूर करनेके लिए, हमारी सच्चिदानन्द–स्वरूप आत्माको मिट्टीके बोझसे मुक्त करनेके लिए यह सब किया गया। तारीफ यह कि अगर मिट्टी जीवनका पोषण न करती, तो अखिल हिन्दू–दर्शनका सारा बेकाम मसविदा कभीका मिट्टीहो गया होता। यूरोपकी भी मध्य–युगीन सन्यासिनियोंने करीब–करीब यही दुरवस्थाकर डाली थी; परन्तु प्राकृतिक पुनर्जागरणवादियोंने स्थितिको संभाल लिया। यद्यपि यूरोपमें भूमिका मोह बहुत अधिक नहीं पाया जाता; परन्तु भारतवर्ष तो यूरोप नहीं है। हमारी भूमि बहुत उर्वरा है। हमारी भूमिमें गंगा–यमुनाकी धाराएं हैं। हमारी भूमिके मस्तकपर मुकुट–सा हिमालय है। समयसे वर्षा–धूप होती है। भूमि हम हिन्दुस्थानियोंको कभी धोखा नहीं दे सकती, फिर भूमिसे यह विरक्ति क्यों? आइए, हम भूमिकी ओर वापस चलें, ताकि हम भारतकी भावी सन्ततिसे सन्तोषके साथ कह सकें– 'पृथिव्यास्त्वा द्रविणे सादयामि' द्धयजुर्वेदञ्ञ– अर्थात् मैं तुम्हें पृथिवीकी सम्पन्नतामें स्थापित करता हूँ।

तरकारियोंके गुण तथा उनके उचित प्रयोग*

श्रीमती शान्ती गुही और श्रीमती शकुन्तला वर्मा

स्वस्थ और निरोग रहना कौन नहीं चाहता? यह भी निश्चित ही है कि स्वास्थ्यका बनना–बिगड़ना बहुत कुछ आहारपर ही निर्भर है। शरीरको पानीके अतिरिक्त ये पाँच प्रकारकी वस्तुएँ भोजनके साथ मिलनी चाहिए—

कर्बोदेत (Carbohydrates), प्रत्यामिन (Proteins), चर्बी (Fat), खनिज नमक (Minerals), और खाद्योज (Vitamins) । कर्बोदेत तो हमें अधिकतर अनाजों और शक्करोंमें मिलते हैं, प्रत्यामिन गोश्त, मछली, अंडा, दाल तथा कुछ तरकारियोंसे प्राप्त होते हैं। चर्बी घी, तेल, दूध, मक्खन, मलाई जैसी चीज़ोंमें मिलती हैं। नमक अधिकांश फलों और तरकारियोंमें ही होते हैं। यदि आप अपने शरीरकी बनावटसे भली भाँति परिचित हैं तो आपको विदित होगा कि जिस प्रकार पेशियों और तन्तुओं (Muscles and Tissues) के लिए कर्बोदेत और प्रत्यामिन आवश्यक हैं उसी प्रकार रक्तका खारापन (Alkalinity) स्थिर रखनेके लिए खनिज नमक और कार्बनिक अम्ल भी अत्यन्त आवश्यक हैं। भोजनमें जब खार बनाने वाली चीजोंकी न्यूनताहो जाती है तो रुधिरका खारापन भी कम हो जाता है और उसमें अम्लता (Acidity) आ जाती है जो अनेकों बीमारियों की जड़ है। खारी द्रव्य जीवनकी रक्षा करने और उसकी शक्ति बढ़ानेमें सहायता करते हैं। ये द्रव्य वनस्पतियोंके प्रत्येक भाग, पत्ते, जड़, बीज और फलमें पाये जाते हैं और सब जीवोंके माँस, रक्त, हड्डी तथा भीतरी अंगों, उनके दूध और अंडोंमें होते हैं। वनस्पतियाँ खनिज नमक पृथ्वीसे खींचती हैं और हम उन्हें सब्जियोंके द्वाराही प्राप्तकर सकते हैं। खनिज नमकोंमें आयोडीन (Iodine), कैलशियम, चूना (Calcium), लोहा (Iron), सोडियम (Sodium), पोटेशियम (Potassium), फास्फोरस (Phosphorous), मैगनेशियम (Magnesium) और गन्धक (Sulphur) ही अधिक आवश्यक हैं।

सब्जियोंमें भोजनके वे आवश्यक अंश भी अधिकतासे प्राप्त होते हैं जिन्हें विटामिन, खाद्योज या प्रत्यामिन कहते हैं। विटामिन है क्या यह बतलाना तो कठिन है किन्तु यह जानना आवयश्क है कि वे हमारी शरीर रूपी मशीनको चलानेमें आवश्यक भाग लेते हैं। यदि किसी मनुष्य या पशुको ऐसा खाना दिया जाए जिसमें विटामिन न हो तो उनके शरीरके पुर्जोंका चलना शीघ्रही रुक जाएगा। नर्म और ताजी सब्जियोंमें, विशेषकर फलोंमें विटामिन खूब होते हैं।

चूँकि सब्जियों में भोजन के नमक और विटामिन जैसे जरूरी भाग होते हैं इसीलिए उन्हें रक्षा करने वाले खाने (Protective Food) कहते हैं। बालकोंको आरम्भसे ही कच्ची तरकारी खानेकी आदत डाल देनी चाहिए जिससे वे सदा तन्दुरुस्त बने रहें।

खनिज पदार्थोंमें से कैलशियम या चूना, आयरन या लोहा, आयोडीन और फास्फोरस या

---

* *विज्ञान*, अगस्त 1946

स्फुर ही भोजनके विचारसे ज्यादा जरूरी हैं। कैलशियमकी न्यूनतासे हड्डियां और दाँत निर्बल नहीं होते बल्कि अन्य बीमारियां भी उत्पन्न हो जाती हैं। कैलशियम शरीरको शक्तिशाली रखता है और तपेदिक तथा सूखा जैसे भयंकर रोगोंसे बचाये रखता है। पालक, काहू (Lettuce), मूली, प्याज, शलजमके ऊपरी भागही कैलशियमके अच्छे जरिये हैं।

लोहेकी कमीसे एनीमिया या रक्त–हीनताका रोग हो जाता है। यह रोग विशेषकर स्त्रियोंमें होता है क्योंकि उन्हें मासिक धर्म और गर्भावस्थामें रक्तको अधिक मात्रामें बनानेके लिए अधिक लोहेकी आवश्यकता होती है। शरीरमें जितने लोहेकी आवश्यकता होती है उसमेंसे 7. प्रतिशत रुधिरमें रहता है और शेष 3 प्रतिशत समस्त शरीरके कोषों (Cells) में फैला रहता है। लोहेके द्वारा रक्त ओषजन[1] को प्रति स्थान पहुँचाता है। इसीलिए हमारे भोजनमें अगर इसकी मात्रा पर्याप्त न हो तो हम स्वच्छ वायुका भी पूरा लाभ नहीं उठा सकते। लोहा तरकारियोंके हरे पत्तोंमें मुख्यता से मिलता है। जैसे लेटूस, पालक, चनेका साग, करमकल्ला, सिलेरी, हरी मटर, शजलम, सेम आदि। अगर उपर्युक्त सब्जियां नित्य ठीक तौरसे और काफी खाई जाएं तो एनीमियाके इतने रोगी दृष्टिमें न आयें जितने आजकल दिखाई देते हैं।

फॉस्फोरस भी कैलशियमकी भांति हड्डी, दाँतोंकी बाढ़ तथा शक्तिके लिए आवश्यक है। दिमाग, नाड़ियों और पेशियोंको भी फॉस्फोरस और पोटेशियमकी आवश्यकता होती है। तरकारियोंमें से मटर, सेम और गोभीमें भी फॉस्फोरस विशेषकर पाया जाता है और पोटेशियम सभी तरकारियोंमें काफी मात्रामें होता है।

साधारणतः थोड़ीही सी आयोडीनकी हमको आवश्यकता होती है। वह Thyroid तथा दूसरी ग्रन्थियोंके काममें आवश्यक है। Thyroid का रस शरीरकी बाढ़को वशमें रखता है और अग्निवर्धक पदार्थके पाचनको ठीक रखता है। इसकी कमीसे गलेमें घेंघाका रोगहो जाता है। कुछ जिलोंमें इस रोगके अधिक होनेका कारण यह है कि वहाँ की भूमिमें आयोडीनकी न्यूनता हो जानेसे तरकारियोंमें भी उसकी कमी रहती है। समुद्री पौधों और समुद्र तटकी तरकारियोंमें आयोडीन सबसे अधिक होता है किन्तु थोड़ा बहुत सभी सब्जियों, फलों और दूध व मछलीमें रहता है।

विटामिनों में से 'ए', 'सी', 'डी' तरकारियोंमें विशेषकर पाये जाते हैं। सब्जियांही विटामिन 'ए' का आरम्भिक स्रोत हैं। गाजरका रस तो उसका भण्डार है। पालकके रसमें भी वह गाजरके रससे कम नहीं होता लेकिन पीनेमें उतना अच्छा नहीं लगता। पालकके रसको टमाटरके रसके साथ मिलाकर पीना चाहिए। विटामिन 'ए' शरीरके भीतरी भागोंकी श्लैष्मिक कला और ऊपरी खालको उचित अवस्थामें रखती है तथा भोजनमें जो शरीरको बनाने वाली सामग्री हम खाते हैं उसका उचित उपयोग करती हैं। बाल्यकालमें इसकी आवश्यकता इसीलिए अधिक होती है। विटामिन 'ए' शरीरको हानि पहुँचाने वाली कृमियोंको दूर करनेके लिए भी लाभप्रद है। वह हमें सर्दी, जुकाम, इन्फ्लुएन्जा, ब्रोन्काइटिस, निमोनिया आदिसे बचाती है। इसी कारण शीतकालमें मछलीका तेल, मक्खन, हरी तरकारियोंका और भी अधिक प्रयोग करना चाहिए। रतौंधी भी इस विटामिनसे रुक जाती है। मुँहासे, खालकी खुश्की, बालोंका गिरना तथा अन्य चर्मरोग पालक, गाजर, लेटूस और फलोंके न खाने या कम खानेसे हो जाते हैं। आप हरे और पीले रंग वाली तरकारियाँ और फल जितने खाते हैं उससे भी ज्यादा खाइये फिर देखिये आपकी खाल कैसी नर्म, चिकनी और सुन्दरहो जाती है।

विटामिन 'डी' भी विटामिन 'ए' के साथ मिला करती है किन्तु यह सूर्यकी किरणोंमें बहुत होती है। विटामिन 'ए' की तरह यह आँच या गर्मीसे खराब नहीं होती। इसके अभावसे शरीर कैलशियम और फॉस्फोरस उचित ढंगसे हजम नहींकर सकता। बालकोंमें सूखाका रोग भी इसी विटामिन और कैलशियमकी कमीके कारण होता है। यह भी हरी तरकारियोंमें मिलती है।

विटामिन 'बी' रक्त, हृदय और नाड़ियोंको ठीक रखनेके लिए अनिवार्य है। यह भूख और दाँतोंकी क्रियाको भी दुरुस्त रखती है। इसकी कमीसे नाड़ियोंमें सूजन, झनझनाहट, सुईकी सी चुभन मालूम पड़ने लगती है। भूख कमहो जाती है, दिल बड़ाहो जाता है और उसमें सूजन भी आ जाती है। कब्ज और बदहजमी भी इसकी कमीसे हो जाती है। विटामिन 'ए' की तरह यह शरीरमें जमा नहीं रहती, इसीलिए यह भोजनके साथ शरीरमें पहुँचती रहनी चाहिए। किन्तु यह विटामिन हरे पत्तोंमें बिल्कुल नहीं होती। आलू, हाथी चक, चुकन्दर, इत्यादिमें थोड़ी–थोड़ी मिलती है लेकिन मटर, सेम और दालमें प्रचुर होती है। यह विटामिन साधारणतः पकाये जाने पर नष्ट नहीं होती।

विटामिन 'सी' का प्रभाव रुधिर और उसकी रगोंपर होता है और वह रोगोंकी छूतसे भी शरीरकी रक्षा करता है। इसकी न्यनूतासे दाँत, हड्डियों और खूनकी रगोंपर बुरा प्रभाव पड़ता है, बच्चोंके दाँत देरमें निकलते हैं और बड़ोंके शीघ्रही घिसने लगते हैं। भोजनमें इसकी ज्यादा कमीके कारण स्कर्वी रोगहो जाता है। यह विटामिन हमें सबसे अधिक और सबसे सहजमें तरकारियों और नीबूकी जाति वाले फलोंमें मिल सकती है। बिना गर्म किये हुए दूधमें भी यह रहती है। सब्जियोंमें पालक, करमकल्ला, कादू हलीम (Cress), हरी मटर और किसी–किसी जातिकी शलजममें बहुतायतसे मिलती है। यह विटामिन गर्म करनेपर बहुधा खराबहो जाती है।

अब मैं आपको रोजाना काममें आने वाली तरकारियोंके गुण और अवगुण अलग–अलग बतलाती हूँ। सारी तरकारियाँ मुख्य रूपसे चार भागोंमें विभाजित की जा सकती हैं:–

(1) जड़ वाली तरकारियाँ, (2) पत्तों वाली तरकारियाँ, (3) फल वाली तरकारियाँ और (4) फूल वाली तरकारियाँ।

जड़ वाली तरकारियाँमें कर्बोदेत[2] यानी शक्कर और श्वेतसार (Starch) का ही भाग अधिक होता है।

आलू

यह एक लोकप्रिय हर दिलअज़ीज[3] तरकारी है। भारतवर्षमें ही नहीं, संसार भरके लोग अन्य तरकारियोंकी अपेक्षा इसकोही अधिक खाते हैं। इसके इतना लोकप्रिय होनेका कारण यह है कि बहुत दिनों तक रखे रहनेके बाद भी यह अच्छा बना रहता है और दूसरा यह कि आलूमें संवर्द्धक शक्ति (Nutritive value) और तरकारियोंके मुकाबलेमें बहुत ज्यादा है। मनुष्य केवल थोड़ेसे ही आलू घी या मक्खनके साथ खाकर कई सप्ताह तक जीवित रह सकता है और साथही साथ अपना रोजका काम और मजदूरी भी कर सकता है। आलू सबसे पहिले अमरीकामें होता था। अमरीकाकी खोजके बाद यह यूरोपमें आया और वहाँसे ही दुनियाके अन्य भागोंमें फैला। आलू जड़ वाली तरकारियोंमें गिना अवश्य जाता है, किन्तु वास्तवमें यह जड़ नहीं है। पौधेके तनेके जो सूत निकलते हैं वे मिट्टीमें दबा दिये जाते हैं और उन्हींमें आलू लगता है। छीलकर आलू खानेसे उसका 31 प्रतिशत लाभ जाता रहता है। इसका पूरा लाभ प्राप्त करनेके लिए छिलके सहितही खाना चाहिए। आलूमें 'ए', 'बी' और 'सी' तीनों विटामिन होते हैं। आलूमें पानीको छोड़कर स्टार्चही सबसे ज्यादा होता है। खनिज नमकोंमें कैलशियम, लोहा, पोटेशियम, सोडियमही इसमें मिलते हैं। यह देरमें तो अवश्य पचता है लेकिन नाजुकसे नाजुक मेदे वाले भी इसे पचा लेते हैं। प्रत्येक बच्चेको आलू बहुत पसन्द होता है लेकिन उन्हें आलू अधिक न खाने देना चाहिए और जब कभी वे आलू खायें भी तो उसके साथ हरी सब्जी अवश्य खिलाना चाहिए। अत्यधिक आलू खानेसे बच्चोंकी आंतोंमें कीड़े पड़ जाते हैं। गठिया और रक्तकी न्यूनतामें आलू खाना लाभ पहुँचाता है। खानेके अतिरिक्त भी आलूके कई गुण हैं। जल जानेपर कच्चा आलू पीसकर लगानेसे जलन नहीं होती और छाले भी नहीं पड़ते।

जिस पानीमें आलू उबाले गये हों उसीमें आप चाँदीकी मैली चीज़ें रात भर पड़ी रहने दीजिए और प्रातः काल किसी ब्रुशसे रगड़ दीजिए। ऐसा करनेपर वे फिर नई की तरह चमकने लगेंगी।

घुइयाँ

यह एक भारतीय तरकारी है। भारतवर्षके बाहर इसका प्रचार नहीं है। आलूकी भाँति यह भी बहुत दिनों तक रखी जा सकती है। इसमें भी 'ए' और 'बी' व 'सी' विटामिन होते हैं किन्तु 'बी' ही प्रधान है और 'सी' तो केवल नाममात्रके लिए पाया जाता है। नमकों में लोहा, कैलशियम, फॉस्फोरस भी पाया जाता है। वह बादी होती है और हज्म भी कठिनाईसे होता है। इसीकी एक और जाति है जो बंडके नामसे प्रसिद्ध है। यह घुइयाँसे बहुत बड़ा होता है और शेष गुण वही हैं।

रतालू

यह भी कई प्रकारका होता है लेकिन इसकी दो जातियाँ – सफेद और सुर्खही ज्यादातर मिलती हैं। इसमें सिर्फ थोड़ी सी विटामिन 'बी' होती है और विटामिनें इसमें नहीं होतीं। कैलशियम और फॉस्फोरस तो केवल नाममात्रके लिए ही होते हैं। लोहा अवश्य इसमें अधिक होता है पर वह भी बहुत नहीं। आमतौरपर तो रतालू फुटसे एक डेढ़ फुट लम्बे होते हैं किन्तु अलीगढ़के एक निजी बाग (Private Garden) में 35 सेर वजनका रतालू पैदा हुआ था जो आदमकद[4] था। इस रतालू को नुमाइशमें इनाम भी दिया गया था। रतालूकी तरकारी बहुतही स्वादिष्ट होती है।

जमीकन्द

इसको कुछ लोग सूरन भी कहते हैं। यह कई किस्मका होता है। बम्बईका जमीकन्द सबसे अच्छा समझा जाता है। इसकी विशेषता यह है कि यह परपराता बिल्कुलही नहीं है। वहाँका जमीकन्द होता भी बहुत बड़ा है। एक–एक गाँठ 1–12 सेर वज़न तककी होती है। जो तत्व रतालूमें पाये जाते हैं वे ही इसमें मौजूद हैं। इसकी तरकारी बवासीरमें फायदा करती है। बवासीरमें जमीकन्दको सुखाकर और पीसकर दूध या पानीके साथ खानेसे बहुत लाभ होता है। इसका अचार भी बनाया जाता है।

चुकन्दर

लाल–लाल शलजमकी तरह होता है। इसमें 'बी' और 'सी' दो जरूरी विटामिन होते हैं तथा लोहा, कैलशियम, फॉस्फोरस और सोडियम भी थोड़ी–थोड़ी मात्रामें पाये जाते हैं। यह खून बढ़ाता है इसीलिए बहुतही लाभप्रद गिना जाता है। इसे सलादकी तरह काटकर कच्चा भी खाते हैं। इसका हलवा स्वादिष्ट बनता है जो शक्तिदायक होता है। इसमें शक्कर बहुत होती है। यूरोपमें यह बहुत होता है और वहाँ इसकी शक्कर भी काममें लाई जाती है।

हाथीचक

इसका प्रचार हमारे देशमें अंग्रेजोंके आनेके बाद ही हुआ है। इसकी असली जन्मभूमि उत्तरी अमरीका है। आलूकी तरह इसके तनोंपर मिट्टी चढ़ाई जाती है। इसमें 'ए' और 'बी' विटामिन होती है तथा लोहा जैसा गुणकारी तत्व भी यथेष्ट मात्रामें मिलता है। कुछ कैलशियम, फॉस्फोरस और सोडियम इसमें पाया जाता है। इसकी तरकारीका स्वाद भी अच्छा होता है।

गाजर

हमारे देशमें हर जगह बोई जाती है। इसकी काली–पीली दो जातियाँ होती हैं। लाभ की नजर[5] से काली गाजर ज्यादा अच्छी समझी जाती है। गल्ले[6] की कमी होनेपर किसान इसीसे अपना गुज़ारा करते हैं। गाजर में 'ए', 'बी' और 'सी' तीनों ही विटामिन होते हैं। 'ए' का मानो यह खजाना है। विटामिनोंके अलावा कैलशियम, फॉस्फोरस, पोटाश और सोडियम इत्यादि भी इसमें काफी मात्रामें रहते हैं। गाजरमें अनेक गुण हैं। सबसे बड़ा फायदा इसका यह है कि इसके खानेसे शुद्ध रक्त बनता है। 'एनीमिया' या खूनकी कमीके रोगियोंके लिए यह अत्यन्त लाभदायक है। छूत से लगने वाले रोगोंसे भी रक्षा करती है। बच्चोंकी आँतोंमें जो कीड़े (चुन्ने) हो जाते हैं वे भी गाजरसे मर जाते हैं। कच्ची गाजर खानेसे चर्म रोगोंमें भी लाभ होता है, चेहरा भी साफ और रौनकदारहो जाता है। पाश्चात्य देशकी स्त्रियोंका कहना है कि ताज़ी गाजरोंके टुकड़े अपने चेहरेपर रखकर 15–20 मिनटों तक लेटे रहनेसे खालकी अशुद्धियाँ दूरहो जाती हैं और रंग भी निखर जाता है। गाजरका हलवा स्वादिष्ट तो होताही है साथही दिमागको भी ताकत पहुँचाता है। विद्यार्थियोंके लिए अत्यन्त गुणकारी है। जाड़ेमें इसका अचार भी पड़ता है जो हाजमा ठीक रखता है। पंजाबमें काली गाजरोंसे एक खास तरहका पानी तैयार किया जाता है जो भोजनके बाद पीनेसे हाजमा ठीक रखता है। देखनेमें यह बिल्कुल 'शेरी' नामक अंग्रेजी शराब जैसा ही लगता है। गाजरका रस या कच्ची गाजर रतौंधीमें भी उपयोगी सिद्ध होता है।

मूली

इसकी भी कई किस्में होती हैं। कुछ मूलियाँ शलजम सी गोल होती हैं और उनके रंग भी बड़े खूबसूरत होते हैं – कोई लाल, कोई सुनहली, कोई बैजनी, कोई दोरंगी इत्यादि। मूलीके मुख्य विटामिन 'बी' और 'सी' हैं लेकिन थोड़ा–थोड़ा 'ए' भी मिलता है। कैलशियम, लोहा, फॉस्फोरस, सोडियम वगैरह[7] जरूरी नमकोंकी उसमें कमी नहीं है। मूलीका सबसे बड़ा गुण पाचन–क्रियाकी सहायता करना है। कुछ लोग इसके पत्तोंको बेकार समझकर फेंक देते हैं लेकिन यह उनकी गलती है। पत्तोंमें मूलीसे अधिक कैलशियम होता है इसीलिए मूलीके पत्तोंको अवश्य खाना चाहिए। इसके पत्तोंकी भाजी[8] भी हमारे यहाँ खाई जाती है। मूलीका रस बहुत सी दवाओंमें काम आता है।

शजलम

गाजर और मूलीकी भाँति शजलमकी गणना भी फायदेमंद सब्जियोंमें की जाती है। शलजम भी कई तरहके होते हैं किन्तु सफेद शलजमही अधिक प्रचलित है। इसमें 'बी' और 'सी' विटामिनोंकी प्रधानता है। खनिज नमकोंसे कैलशियम, लोहा, फॉस्फोरस, सोडियम, पोटेशियम पाये जाते हैं। अधिकांश घरोंमें देखा गयाा है कि शलजम की गांठकी तरकारी बना ली जाती है और उसके पत्तों तथा ऊपरी भाग काटकर फेंक दिये जाते है लेकिन यह भारी गलती है। जितनी भी हरी तरकारियाँ हैं उन सबसे अधिक कैलशियम शलजमके पत्तोंमें होता है। बालकोंको पत्तोंका रस पिलाना चाहिए। इसके रसमें गाजरका रस मिला देनेसे उसका फायदा और भी बढ़ जाता है। स्वाद भी अच्छाहो जाता है। शलजम खून बढ़ाता है और मधुमेह (Diabetes) में लाभ पहुँचाता है।

प्याज–लहसुन

हमारे देशमें प्याज–लहसुन ज्यादातर मसालेकी तरहही काममें लाये जाते हैं लेकिन ये भी स्वास्थ्यकी दृष्टिसे बड़े लाभदायक हैं। प्याजमें तीनोंही विटामिन पाये जाते हैं पर 'बी' सबसे अधिक होता है। लहसुनमें 'ए' और 'बी' तो होते ही नहीं हैं केवल 'सी' होता है। प्याज और लहसुनमें कैलशियम, लोहा, फॉस्फोरस, सोडियम, पोटेशियम, मैगनेशियम, ताँबा, गन्धक आदि अनेक तत्वोंकी भरमार है। प्याज व लहसुनके तत्व एकसे ही हैं केवल अन्तर इतना है कि प्याजमें एक प्रकारका तेल होता है जिसकी वजहसे ही उसे खानेके बाद मुँहसे बड़ी देर तक महक आती रहती है और आँखोंमें झरम लगती है। प्याजकी महक कम करनेका भी उपाय है। चूल्हेकी सारी आग बुझा देनेके बाद गर्म राखमें उसकी गाँठें दबा दीजिए और एक घंटेके बाद उन्हें निकाल लीजिए। इस तरहसे प्याजके गुण भी नष्ट नहीं होते और उसकी नागवार[9] महक भी चली जाती है और वह नर्म भी हो जाते हैं। गर्मीके दिनोंमें हमारे देशमें गर्म हवाओंमें लू लगनेसे कितने ही प्राणियोंकी जानें जाती हैं। प्याज उनसे हमारी रक्षा करता है। गर्मीमें यदि घरके बाहर जाना हो तो प्याजकी गाँठ अपने पास अवश्य रख लीजिए। इसकी महक लू नहीं लगने देती। इसके अतिरिक्त खाँसी, सर्दी, कब्ज, गठिया और जिगरकी तकलीफोंके लिए भी यह एक अनुपम वस्तु है। प्याज खूनको साफ करता है, चेहरेके सौन्दर्यको बढ़ाता है। गुर्देके रोगियोंको प्याज नुकसान भी करता है। लहसुनको नीबूके रस और नारियलके साथ देनेसे टी.बी. में भी आश्चर्यजनक लाभ होता है।

पत्तों वाली तरकारियाँ

ये तरकारियाँ और तरहकी अपेक्षा अधिक फायदेमंद होती हैं। इनमें कैलशियम, लोहा और विटामिन 'सी' खूब होती है।

पालक

पत्तों वाली तरकारियोंमें पालकका ही स्थान प्रमुख है। गुणकारी तत्वोंका तो यह भंडार है। इसमें 'ए', 'बी', 'सी' और 'डी' चारों विटामिन यथेष्ट मात्रामें होते हैं किन्तु विटामिन 'ए' सबसे ज्यादा होता है। इसमें लोहा और कैलशियम भी खूब होता है। किन्तु इसके अतिरिक्त आयोडीन, सोडियम, पोटेशियम, फॉस्फोरस और गन्धक जैसे नमकोंकी भी कमी नहीं। लोहा खूब होनेकी वजहसे खूनकी कमी और एनीमियाके लिए एक लाजवाब चीज़ है। गुर्देकी तकलीफोंमें भी पालक बड़ा असर करता है। इसको खूब खानेसे चेहरेका रंग भी निखर आता है और उसपर चमक भी आ जाती है। थोड़ेसे पानीमें पालकके दो–चार पत्ते भिगो दीजिए और 2–3 घंटेके बाद पत्तोंको फेंककर उसी पानीसे मुँह धो डालिये। कुछ दिनों तक लगातार ऐसा करनेसे आपको आश्यर्चजनक परिवर्तन मालूम पड़ने लगेगा।

चौलाई

यह भी पालकसे किसी बातमें कम नहीं। इसमें 'ए', 'बी', 'सी' और 'डी' विटामिन होते हैं जिसमें विटामिन 'ए' तो बहुतही ज्यादा होता है। 'बी', 'डी' थोड़ेही पालकसे कम होते हैं और 'सी' पालकसे भी ज्यादा होता है। लोहा व कैलशियम भी पालककी अपेक्षा चौगुने मिलते हैं। शेष खनिज नमक जो पालकमें होते हैं वही चौलाईमें भी होते हैं।

मेथी

इसमें अन्य नमकोंकी अपेक्षा लोहाही अधिक रहता है किन्तु कैलशियम, फॉस्फोरस, सोडियम आदिका भी प्रभाव भी कम नहीं है, 'ए' विटामिन अधिक मिलती है और कुछ 'बी' भी पायी जाती है। इसके सारमें हल्की कड़वाहट होती है।

सरसों

यह साग जाड़ेके दिनोंमें भारतवर्षमें खूब खाया जाता है। इसके मुख्य नमक कैलशियम, फॉस्फोरस और लोहा हैं। विटामिनोंकी अभी खोज नहींकी गई है।

बथुआ

इसके विटामिनोंकी भी अभी तक खोज नहींकी गई है। लोहा, कैलशियम, फॉस्फोरस आदि नमक इसमें मिलते हैं। यह कब्जको दूर करता है। भाजी बड़ी स्वादिष्ट होती है।

करमकल्ला

करमकल्लेका स्थान भी पत्ते वाली तरकारियोंमें ऊँचा है। हालाँकि गुणोंमें पालक और चौलाईकी समता नहींकर सकता लेकिन फिर भी इसका यह मतलब नहीं है कि इसका खाना व्यर्थ है। इसमें 'ए', 'बी', 'सी' तीनों विटामिन होते हैं। कैलशियम, लोहा, फॉस्फोरस, सोडियम, गन्धक इत्यादि नमक भी इसमें बहुत थोड़े पाये जाते हैं। करमकल्ला शक्तिवर्धक (Tonic) है। इसे ज्यादा नहीं खाना चाहिए क्योंकि यह हजम देरमें होता है। मन्दाग्निमें यह पेटमें तकलीफ पैदाकर देता है। करमकल्ला कई प्रकारका होता है। हरेकी अपेक्षा बैंजनी रंगका अधिक अच्छा होता है क्योंकि उसमें लोहा और कैलशियम ज्यादा होते हैं।

काहू

यह करमकल्ला वर्गकी ही एक सब्जी है। हमारे देशमें इसका इतना प्रचार नहीं है जितना पाश्चात्य देशोंमें है। इसके हरे–हरे नर्म पत्ते कच्चेही खाये जाते हैं। कुछ लोग इसकी तरकारी भी पकाकर खाते हैं लेकिन न तो इसमें स्वादही होता है और न उतना फायदाही करती है। इसका खास विटामिन तो 'ए' है परन्तु 'बी' और 'सी' भी काफी मात्रामें मिलते हैं। कैलशियम, फॉस्फोरस, सोडियम आदि नमकोंकी अपेक्षा अधिक होता है। लोहाही अधिक होनेके कारण एनीमियाके रोगियोंके लिए लाभदायक होता है।

सलाद और सिलेरी

लेटूसकी तरह यह भी यूरोप और अमरीकामें ही अधिक खाये जाते हैं। इनके हरे पत्ते प्याज, खीरा, गाजर, टमाटर आदि और तरकारियोंके साथ काटकर खाना खानेसे पहिले खानेसे भूख बढ़ाते हैं। इनके खानेसे खून भी बढ़ता है। इसमें 'ए' और 'सी' विटामिन विशेष रूपसे पाये जाते हैं। नमकोंमें से लोहाही सबसे ज्यादा होता है। वैसे तो कैलशियम और फॉस्फोरस भी मिलते हैं।

फल वाली तरकारियाँ

ये तरकारियां दो तरहकी होती हैं। एक गूदेदार और दूसरी रेशेदार। गूदेदार तरकारियोंमें लौकी, ककड़ी, टिन्डे, परवर इत्यादि शामिल हैं और भिन्डी, सेम, कटहल आदि रेशेदार सब्जियाँ कहलाती हैं।

लौकी–टिन्डे–तरोई–चिचिन्डा–ककड़ी–खीरा –

ये सब तरकारियाँ आपसमें मिलती–जुलती हैं। इनमें गुण और तत्व भी बहुत कुछ एक ही हैं। इन सभीमें विटामिनोंका अभाव है अथवा यों कहिए कि यह तत्व बहुतही कम मिलते हैं। कैलशियम, लोहा, फॉस्फोरस, सोडियम, पोटेशियम, मैगनेशियम, गन्धक आदि तत्व होते हैं। ककड़ी–खीरेमें पोटेशियम खूब होता है और 'बी' तथा 'सी' विटामिन भी थोड़े मिलते हैं। चिचिंडेमें केवल 'ए' विटामिन होता है। तरोई दो प्रकारकी होती हैं– घिया और नसैली। इनमें 'ए', 'बी' विटामिन थोड़े–थोड़े होते हैं। लौकी और टिन्डेमें विटामिन बहुतही कम होते हैं। ये सभी सब्जियाँ शीघ्र हजमहो जाती हैं। ठंडी होती हैं और पेशाब भी लाती हैं। ककड़ी और खीरेका रस अगर गाजरके रसके साथ पिया जाए तो गठियामें बहुत आराम पहुंचाता है। गाजरकी तरह खीरेके टुकड़े काटकर चेहरेपर कभी कभी लगा लेनेसे खुरखुरी व फटी हुई खाल चिकनी और कोमलहो जाती है। लौकीका रस टी. बी. के रोगियोंके लिए लाभदायक है।

काशीफल

इसे कद्दू या कुम्हड़ा भी कहते हैं। ये सस्ती तरकारियोंमें से है और कच्चा–पक्का दोनों तरह खाया जाता है। इसका मुख्य विटामिन 'बी' है। इसमें खनिज नमक बहुत कम होते हैं। यह बादी होता है इसीलिए देरसे हजम होता है। यह कुछ–कुछ दस्तावर भी होता है। ज्यादा खाने से दस्त आने लगते हैं।

परवर

ये अधिकर पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल में होता है। यह बड़ी ही लाभदायक तरकारियों में गिना जाता है। इसमें विटामिन नहीं होते किन्तु कैलशियम और लोहा जैसे आवश्यक नमक यथेष्ट मात्र में होते हैं। परवर हजम जल्दी से हो जाते हैं। इसी कारण रोगी की दशा में इसका रस बहुत दिया जाता है। परवर खून शुद्ध करता है और फुन्सियों की बड़ी अच्छी औषधि है।

बैगन

यह कई तरह के होते हैं– हरे, बैजनी, सफेद आदि। इसे बहुत से लोग अधिकतर देहाती कच्चा ही खाते हैं। 'ए', 'बी', 'सी' तीनों विटामिन थोड़े–थोड़े मिलते हैं। कैलशियम, लोहा व फॉस्फोरस में से लोहा ज्यादा होता है। भारतवर्ष में बैगन की तरकारी कई ढंगों से बनाई जाती है। इसका अधिक खाना हानिकारक है क्योंकि यह बादी होता है।

टमाटर

यह फल और तरकारी दोनों ही है। और साथ ही बहुत लाभदायक भी है। विलायती बैगन के नाम से पुकारा जाता है। टमाटर सबसे पहले केवल अमरीका में होता था। वहाँ से यूरोप में और उसके बाद धीरे–धीरे अन्य देशों में बोया जाने लगा। ये कई रंग और भिन्न–भिन्न प्रकार की शक्ल के होते हैं। टमाटर तो विटामिनों की खान है। 'ए', 'बी', 'सी' और 'डी' सभी विटामिन खूब होते हैं लेकिन 'ए' की मात्र सबसे अधिक होती है। टमाटर में लोहा भी काफी होता है। इसके अतिरिक्त कैलशियम, फॉस्फोरस, सोडियम आदि तत्वों की भी कमी नहीं है। इसे कच्चा ही खूब खाना चाहिए। पकाकर खाने से इसके बहुमूल्य विटामिन नष्ट हो जाते हैं। टमाटर खाने से खून साफ होता है और गुर्दों को भी उत्तेजना मिलती है। बच्चों के सूखा रोग की यह अनुपम औषधि है। मधुमेह (Diabetes) में भी आराम पहुँचाता है। एनीमिया वालों को इसके प्रयोग से बहुत लाभ होता है। विटामिन 'ए' की अधिकता होने के कारण त्वचा पर टमाटर का प्रभाव पड़ता है। बिना पकाये हुए टमाटर खाने से मुखड़े पर कान्ति छा जाती है और रंग भी खुल जाता है। इसके टुकड़े काट कर कुछ देर तक लगाये रहने से भी रंग साफ हो जाता है। चेहरे की झुर्रियाँ भी कम हो जाती हैं। वस्त्रों पर स्याही के धब्बे टमाटर के रस लगाने से साफ हो जाते हैं। इसकी चटनी बड़ी ही स्वादिष्ट होती है।

हरी मटर

मटर कई तरहकी होती है। इसे कच्ची ही खाने से अधिक लाभ होता है। 'ए', 'बी' और 'सी' तीनों विटामिन होते हैं। लोहा भी इसमें अच्छी मात्रा में मिलता है। कैलशियम, पोटेशियम, मैगनेशियम और फॉस्फोरस भी प्राप्त होते हैं। मटर शीघ्रही हजमहो जाती है।

सेम

यह सब्जी बहुत फायदेमन्द है। इसकी कई जातियाँ होती हैं। एक सफेद और चपटी होती है, दूसरी हरी और गोल होती है, तीसरी हरी चपटी और नर्म तथा चौथी गहरी हरी होती है। इनके अलावा भी कई और तरहकी सेम होती है। भारतवर्षमें इसकी तरकारी बहुत खाई जाती है। इसके विटामिनोंमें केवल 'सी' ही उल्लेखनीय है। लोहा, कैलशियम और फॉस्फोरस भी साधारणतया अच्छी मात्रामें होते हैं।

बोड़ा, ग्वार की फली

ये सेमकी ही जातिकी चीजें हैं। इनमेंसे बोड़ा तो नर्म होता है लेकिन ग्वारकी फली जिसे बनसिमिया भी कहते हैं कड़ी होती है। इसकी तरकारी देरसे गलती है और पचती भी देरमें है। जो तत्व सेममें होते हैं वही इनमें भी मिलते हैं किन्तु मात्रामें कम होते हैं। इसी वजहसे ये सब्जियां सेमके मुकाबलेमें कम लाभदायक होती हैं।

भिन्डी

इसमें 'ए', 'बी' और 'सी' तीनों विटामिन थोड़े–थोड़े होते हैं। लोहा, कैलशियम, फॉस्फोरस जैसे खनिज नमक भी इसमें मौजूद हैं। ताजी भिन्डी कच्ची खानेपर फायदा करती है। यह हजम भी

जल्दीहो जाती है। जोरकी खांसी आनेसे गलेमें जो खराश पड़ने लगती है वह भिन्डी खानेसे कम हो जाती है।

सैजन

इसकी तरकारी बहुत लाभदायक होती है। बंगालियोंकी तो यह प्रिय वस्तु है। वास्तवमें इसमें बहुतसे गुणकारी तत्व रहते हैं। 'बी' विटामिन इसमें नहीं होती लेकिन 'ए' और 'सी' दोनोंही खूब होती हैं। लोहेकी भी इसमें भरमार है। कैलशियम, फॉस्फोरस, सोडियम आदि नमक भी इसमें पाये जाते हैं। इसमें रेशे बहुत होते हैं इसलिए सैजन कब्जको भी दूर करता है। इसकी तरकारी स्वादिष्ट होती है तथा जड़ औषधिकी तरह बहुतसे रोगोंमें दी जाती है।

कटहल

भारतवर्षकी यह एक प्रसिद्ध तरकारी है। गुणोंका विचार रखते हुए तो इसे ऊँचा स्थान नहीं दिया जा सकता है किन्तु फिर भी हमारे देशमें तरकारीके अलावा कबाब, पुलाव, अचार जैसी बहुतेरी भोजनकी वस्तुएं बनाई जाती हैं। इसमें विटामिन नहीं होते और नमक भी बहुत कम होते हैं। यह बादी होता है इसलिए कमजोर मेदा वालोंको नहीं खाना चाहिए।

करेला

यह एक भारतीय सब्जी है। इसका स्वाद कड़वाहट लिये होता है। इसलिए ज्यादातर बच्चे इसे नहीं खाते लेकिन यह गर्मीके दिनोंकी बड़ी लाभदायक तरकारियोंमें से एक है। दिलके रोगोंको शान्त करती है। जिगर बढ़ जानेमें भी बहुत फायदा करती है।

फूल वाली तरकारियाँ

इस प्रकारकी तरकारियाँ बहुत थोड़ीसी हैं।

गोभी

फूल वाली तरकारियोंमें गोभीही सबसे पहले आती है। जाड़ेकी तरकारियोंमें से बहुत जायकेदार समझी जाती है। भारतवर्षमें ही नहीं अन्य देशोंमें भी खूब खाई जाती है। इसमें 'बी' विटामिन अधिक होता है और 'ए' तथा 'सी' विटामिन कम होते हैं। लोहा, कैलशियम, फॉस्फोरस भी इसमें अच्छी मात्रामें मौजूद रहते हैं। कच्ची गोभी खानेमें अच्छी लगती है। इसलिए कच्चीही खूब खानी चाहिए। इसका अचार और तरकारी भी बनती है। पत्ते गोभीके फूलसे अधिक लाभदायक होते हैं। इसलिए इनकी भाजी अवश्य खानी चाहिए।

कचनार

इसके फूल और कलियोंकी तरकारी बनाई जाती है। इसकी कलियाँ खाँसी और बवासीरमें आराम देती हैं। इसकी छाल और पत्तियाँ भी बहुतसी दवाओंके काम आती हैं।

इनके अतिरिक्त काशीफलके फूल, अगस्त के फूल, केलेके फूल तथा और भी अनेक प्रकारके फूलोंकी तरकारियाँ बनाई जाती हैं।

भिन्न–भिन्न प्रकारकी तरकारियोंके गुण और उनकी उपयोगिताके विषयमें तो आप सुन चुकीं। अब आप यह और समझ लीजिए कि सब्जियोंको किस भाँति पकाना चाहिए जिससे हमें उनका पूरा लाभ हो सके। तरकारियाँ सदैव मन्द आँचपर पकाना चाहिए। तेज आँचपर उनके कुछ विटामिन खराबहो जाते हैं। सब्जियोंको विशेषकर हरे साग और गोभीको पकानेके पूर्व बिना छीले लगभग एक घंटे तक पानीमें भिगोये रहना चाहिए। इससे उनके कीड़े बाहर पानीमें निकल आते हैं। कुछ लोग पानीमें नमक डाल देते हैं किन्तु यह ठीक नहीं होता क्योंकि उसके कारण कीड़े तरकारियोंमें से निकलकर बाहर पानीमें नहीं आ सकते और भीतरही मर जाते हैं। तरकारियोंमें पकाते समय उनका रंग कायम रखनेके लिए कुछ लोग सोडा डाल देते हैं। परन्तु यह भी विटामिनोंको विशेषकर 'ए' और 'सी' को नष्टकर देता है। जो तरकारियाँ उबालकर पकाई जाती हैं। उन्हें उतनेही पानीमें उबालें जितना जल सके। अधिक पानीमें उबालनेसे तरकारियोंके बहुतसे तत्व पानीमें ही घुल जाते हैं जो पानीके साथ फेंक दिये जाते हैं। इसलिए जिन तरकारियोंके छिलके नर्म होते हैं उन्हें तो उनके छिलके समेत पकाना चाहिए और जिनके छिलके कड़ेहों उन्हें छीलकर छिलकोंको एक पोटलीमें बांधकर तरकारीके साथ ही उबाल लेना चाहिए; इससे इसके आवश्यक तत्व तरकारीके रसमें ही घुल जाते हैं। तरकारी पक जानेके बाद पोटलीको निकालकर फेंक देना चाहिए। इसी कारण तरकारियोंको ठीक अथवा विधिपूर्वक पकाकर खानेसे ही उनका पूर्ण लाभ मिल सकता है।

---

1. oxygen
2. carbohydrate
3. मनपसन्द
4. आदमी की ऊंचाई का, 5 फुट से ऊपर
5. दृष्टि
6. अनाज
7. इत्यादि
8. तरकारी, सब्जी
9. अप्रिय

रंग–बिरंगी मछलियाँ*

के. सी. जोशी

रंग–बिरंगी मछलियों का पालना आजकल एक उत्तम एवं मनोरंजक शौक है। इसमें बहुत अल्प परिश्रम व ध्यान की आवश्यकता है। अनेक घरों में रखा हुआ रंग–बिरंगी मछलियों का जलचर–वासन (Aquarium) एक प्रकार की अभंग सुन्दरता व अध्ययन की सामग्री प्रस्तुत करता है। इन वासनों दो प्रकार की मछलियाँ रखी जाती हैं – एक तो ठण्डे जल की सुनहली मछलियाँ और दूसरी उष्ण–देश की 'ट्रापिकल्स'। प्रथम प्रकार की मछलियों में साधारण सुनहली मछलियाँ (लाल, सफेद, काली व सुनहली), पतली–लम्बी दुमदार, झालरदार पूँछवाली, काजल–काली, दूरदर्शक यन्त्र की भाँति चक्षुवाली, आकाश–चक्षु (Celestial), सिंह के सिर की भाँति (Lionhead) आदि हैं। उष्ण–देश की मछलियों में अण्डे देने वाली, जीवित बच्चे जनने वाली, मुँह में बच्चे रखने वाली, घोंसला बनाने वाली तथा अन्य जाति की बहुरंग सुन्दर मछलियाँ हैं। इनके अतिरिक्त अद्‌भुत रूप–रंग की, अश्व की भाँति शरीर और बिच्छू की तरह डंक वाली समुद्री मछलियाँ हैं।

आश्चर्य तो इस बात का है कि उष्ण–देश की विभिन्न प्रकार की बहुजातीय मछलियाँ यद्यपि भारतवर्ष ही में तालाबों, झीलों व नदियों में पाई जाती हैं, फिर भी यहाँ के निवासी सदा रंग–बिरंगी मछलियाँ पालने के शौक से उदासीन रहे हैं। चीन, जापान, जर्मनी, अमरीका, इंग्लैण्ड व यूरोप के अन्य मुल्कों में तो बहुतायत से लोग रंग–बिरंगी मछलियाँ पालते हैं। इन बहुरंगी मछलियों का पालन चीनियों के सदियों के परिश्रम का परिणाम है। इसके पश्चात् जापानियों ने अति सुन्दर झालरदार पूँछ वाली, आकाश–चक्षु, सिंह के सिर की भाँति शरीर वाली आदि मछलियों का पालन किया। जर्मनी के निवासी उष्ण–देश की मछलियों के जनन–विज्ञान में दक्ष हैं। इस शौक का अमरीका में इतना प्रचलन है कि केवल संयुक्त–राज्यों में ही सौ से ऊपर मछली पालने वालों द्वारा संचालित संस्थाएँ हैं और इस विषय पर अनेक उत्तम मासिक पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती हैं। यहाँ पर मछलियों एवं उनके रखने की अन्य वस्तुओं के विक्रय का व्यवसाय कई हजार मनुष्यों को जीविका देता है। इंग्लैण्ड में भी कई संस्थाएँ हैं और कुछ उत्तम पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती हैं। भारत में भी जिन्होंने मद्रास का मछली–भवन (Aquarium) देखा है, वे जलचर–वासनों में मछलियों के सुन्दर रंगों, विभिन्न अकृतियों और शीघ्र गति की मनोहरता को आसानी से समझ सकते हैं।

घरों में पालने के अलावा नदियों व जलाशयों से मछली पकड़ना एक प्रकार का नवीनतम आकर्षण प्रस्तुत करता है। इसके लिए केवल एक त्रिभुजाकार जाल की आवश्यकता है। उसमें से जलचर–वासन में रखने वाली मछलियों को भीगे हाथों से उठाना चाहिए और जिस बर्तन में मछली

---

* *विशाल भारत*, अगस्त 1946

ले जाना हो, वह उसी जल से भरा हुआ हो, जिससे मछली निकाली जाय। केवल उतनी ही मछलियाँ निकाली जायँ, जितनी जलचर–वासन के लिए आवश्यक हों। निम्नलिखित जातियों की मछलियाँ जलचर–वासन के लिए उपयुक्त होंगी–छोटा खर्दा या छोटी कोई (Dwarf Gourami), बड़ा खर्दा या बड़ी कोई (Giant Gourami), चँद बिजला या चाँदा (Ambassislala), बड़ा चँद बिजला (AmbassisAmbassis), श्रूर या पूँटी (Rosy Barb, Barbus Chola, Barbus Terio, Barbus Ticto, Barbus Vittatus), पाँचा (Panchax Lineatus), भदुवा (Badis- Badis), जेबरा की तरह धारीदार मछली (Zebra fish), मैलुवा या सीपी धानी (Pearl Danio), बड़ी धानी (Giant Danio), बिल्ली या मौसम बतलाने वाली मछली (Weather fish), नारंगी–मिश्रित पीतवर्ण (Orange Chromide), गैंड, ईल मछली की तरह की (Spiny eel), टपफुल्ला (Puffer fish) और दणौस या डैने वाली भूर (Flying barb)। बड़ी जाति की मछलियाँ–मोह, जलकपूर फ्लुआ, कँटुवा सिंथी, माँगुर, सौरी इत्यादि बच्चे भी जलचर–वासन में रखे जा सकते हैं।

छोटा खर्दा या छोटी कोई

जिसका वैज्ञानिक नाम कौलिसा ललिया (Colissa lalia) है। सचमुच यह अपनी जाति की मछलियों में सबसे छोटी और सुन्दर है। यह जलचर–वासन के लिए बहुत उपयुक्त है। परन्तु इसमें एक ही अवगुण है। यह अत्यन्त संकोची होने के कारण सदा पत्तों के बीच छिपी रहती है। इसको अन्य जाति की असंकोची मछलियों के साथ रखने से कुछ ही समय में इसकी लज्जा दूर हो जाती है। इसकी लम्बाई लगभग दो इंच होती है। नर मादा से चटकीले रंग का होने के अतिरिक्त अगले हिस्से के पतवारों के नारंगी रंग से पहचाना जाता है। ग्रीष्म–काल में, जिस समय मछलियाँ अण्डे देती हैं, इसका सम्पूर्ण शरीर गहरी लाल, हरी या नीली लड़ी–सदृश धारियों से सुशोभित रहता है। अन्य काल में ये धारियाँ इतनी गहरी नहीं होतीं। इसका अण्डा देना भी अन्य जाति की मछलियों से भिन्न व विशेष प्रकार का है। नर–मछली पानी की सतह पर अपने मुँह के बुलबुलों से एक ऊँचा घोंसला बनाती है। नर–मछली सतह पर आकर वायु का एक घूँट लेती है और उसे अपने थूक के चिपचिपे पदार्थ से मिलाकर फूँककर सतह पर एक बुलबुला छोड़ देती है। इन्हीं बुलबुलों में घास और पत्तियों को मिलाकर यह एक ऊँचा घोंसला बना लेती है। कभी–कभी मादा मछली भी इसमें सहायता पहुँचाती है। जब घोंसला प्रस्तुत हो जाता है, तो नर मादा को ठेल–ठेलकर उसके नीचे लाता है। अगर मादा अण्डे जनने–योग्य नहीं है, तो वह या तो नर की चेष्टाओं से उदासीन रहेगी या बहुत ही धीरे–धीरे घोंसले की तरफ जायेगी। ऐसी हालत में बहुधा नर मादा को मार डालता है। यदि सारी बातें ठीक ढंग से हुई, तो घोंसले के नीचे नर अपना शरीर अर्द्धचन्द्र की भाँति मोड़कर मादा को उसके अन्दर ले लेता है। जैसे–जैसे जल के अन्दर लिपटे हुए ये डूबते जाते हैं, वैसे–वैसे मादा अण्डे गिराती जाती है। उसी समय नर अण्डों में प्राण–वायु भरकर उन्हें घोंसलें में रखता जाता है। यद्यपि यह मछली अन्य जातियों की मछलियों को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाती; पर अण्डे जनने के समय पारस्परिक विरोध के कारण जोड़े में से एक की कभी–कभी मृत्यु हो जाती है और मरने वाली मछली प्रायः मादा ही होती है।

अण्डों को स्थान पर रख देने के पश्चात् नर बुलबुले बनाने का प्रयत्न दूना कर देता है और अण्डों की रक्षा भी करता रहता है। इस समय भी अगर मादा घोंसले के समीप आ जाय, तो वह उस पर आक्रमण कर देता है। इसलिए अण्डे दे लेने के बाद मादा को जलचर–वासन से स्थानान्तरित कर देना चाहिए। यदि जलचर–वासन का तापक्रम 78 से 82 अंश फैरेनहाइट हो, तो 24 घण्टे

के बाद अण्डों से छोटे–छोटे धागे की भाँति पतले बच्चे निकल आयँगे। यह उस जाति की मछलियों में से है, जिनके मुँह में साँस लेने के लिए एक सहायक यन्त्र होता है। यद्यपि यह अंग नि:सहाय कार्य नहीं कर सकता; पर इसकी थलचर प्राणी के फेफड़े से तुलना कर सकते हैं। इसीलिए इस जाति की मछलियों को छोटे काँच के वासनों में रखना निरापद है। बच्चे जनाने[1] के लिए जलचर–वासन पन्द्रह गैलन से कम नहीं होना चाहिए, अन्यथा सब बच्चे पैदा होने के पश्चात् मर जायँगे।

बड़ा खर्दा या बड़ी कोई

यह छोटी कोई की जाति की मछली होने पर भी उससे बड़ी एवं रंग में भिन्न होती है। जनन काल में नर का रंग गहरा लाल, पीला व हरी धारियों से सुशोभित होता है और गरदन के समीप के पतवार गहरे नारंगी रंग के होते हैं। मादा का रंग इससे हल्का होता है। इसका स्वभाव एवं अण्डे देने का ढंग बिल्कुल छोटे खर्दे के समान है। इसकी लम्बाई लगभग 4–1/2 इंच होती है और यह भी जलचर–वासन के लिए उपयुक्त है।

चँद बिजला

बहुत सी मछलियाँ अल्प–पारदर्शक प्रतीत होती हैं; परन्तु चँद बिजला तो निश्चित रूप से पारदर्शक है। इसको प्रथम बार देखने से ऐसा जान पड़ता है कि इसके भीतरी अंग दृष्टि से ओझल नहीं हैं। स्फटिक की तरह जलचर–वासन में चलती–फिरती यह बड़ी मनोहर प्रतीत होती है। जलचर–वासन में सरलतापूर्वक इसके अण्डे पैदा नहीं होते। यद्यपि अमरीका, इंग्लैण्ड आदि देशों में यह मछली बहुत मूल्यवान है; पर भारतवर्ष में यह खाने के काम में लाई जाती है। इसकी लम्बाई लगभग 1–1/2 इंच होती है और नर–मादा में विशेष अन्तर नहीं मालूम पड़ता।

बड़ा चँद बिजला

इसका अंग्रेजी नाम 'ऐम्बासिस–ऐम्बासिस' है। इसमें और छोटी चँद बिजला में विशेष अन्तर नहीं। केवल इसकी लम्बाई अधिक होती है और यह देखने में भी उससे भली प्रतीत नहीं होती है। इसकी लम्बाई लगभग 2 1 1 इंच होती है।

गुलाबी भूर (Rosy Barb)

इसका स्थानीय नाम भूर या पूँटी है। इसका रंग चाँदी की तरह सफेद और उभरा अंश गहरा चमकीला, गहरा हरा और कभी–कभी गुलाबी–मिश्रित होता है। इसके शरीर में एक काला बिन्दु (लम्बाई में कुछ–कुछ चपटा) होता है। यह लम्बाई में लगभग 3।। इंच होती है।

चोला भूर (Barbus Chola)

इसको भी भूर ही कहा जाता है। इसकी लम्बाई प्राकृतिक रूप से 5 इंच तक होती है। इसकी पीठ गहरे जैतूनी रंग की और निचला हिस्सा फीका होता है। दो गहरे काले रंग की बिन्दियाँ–एक मुँह के साँस निकालने वाले स्थान पर और दूसरी पूँछ के समीप–होती है। यह गुलाबी भूर से देखने

में कुछ पतली प्रतीत होती है। इसके मुँह के पास की काली बिंदिया के निकट एक गुलाबी बिन्दु होता है।

गोल पूँछ वाली भूर (Barbus Terio)

मछुओं और साधारण जानकारों की भाषा में इसको भी भूर ही कहा जाता है। यह देखने में गुलाबी भूर की तरह है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने से इसके साँस लेने के स्थान पर एक गुलाबी धब्बे का और दुम के कुछ गोल होने का अन्तर ही मिलेगा। जनन–काल में नर मनोहर गुलाबी रंग का हो जाता है।

तिक्तो भूर (Barbus Ticto)

यह भी भूर ही कही जाती है। यह लगभग 3–1/2 इंच लम्बी होती है। जनन–काल में इसका उपरी भाग अत्यन्त गहरा लाल हो जाता है।

छोटी भूर

यह बहुत ही छोटी भूर है।इसकी लम्बाई लगभग 2 इंच होती है और जलचर–वासन में रत्न के समान प्रतीत होती है।

पाँचा (Panchax lineatus)

इसकी लम्बाई 3–1/2 इंच से 4 इंच तक होती है। इसका शरीर अति सुन्दर गहरा लाल, पीले, हरे व बैंगनी रंग के बिन्दुओं से ढँका होता है। इसका रंग विभिन्न प्रकार के प्रकाश में रखने से बदल जाता है। कोई भी चित्र सफलतापूर्वक इसके रंगों को प्रदर्शित नहीं कर सकता। यद्यपि यह मछली मांसाहारी और छोटी मछलियों का भक्षण करती है; परन्तु जलचर–वासन में अपनी ही लम्बाई की दूसरी मछलियों के साथ रहने के लिए यह बहुत उपयुक्त है। उत्तर–भारत में यह बहुतायत से पाई जाती है। इसमें वे सभी गुण विद्यमान हैं।, जो मच्छरों के बच्चों के नाश के लिए उपयोगी हैं। इसीलिए मलेरिया वाले स्थानों में सरोवरों, झीलों और नदियों में इसको पालने की ओर सरकारी विभाग का ध्यान गया है।

भदुवा (Badis-badis)

यह मछली लगभग पौने तीन इंच लम्बी होती है। साधारणतः इसका शरीर भूरा, लाल या काली आड़ी लड़ियों से युक्त होता है। इसका कोई विशेष रंग नहीं होता–हल्के हरे व गुलाबी रंग से लेकर नीले–काले व काजल–काले रंग का होता है।यह मछली मांसाहारी है और कभी भी छोटी मछलियों की संगत में न रखी जाय।

जेबरा मछली (Zebra fish)

जलचर–वासन के उपयुक्त समस्त मछलियों में यही अत्यन्त स्फूर्ति वाली मछली है। यह लगभग 1 इंच लम्बी होती है। इसके शरीर का रंग जैतूनी, हरा, सुनहली चमक लिए होता है। अगल–बगल में दुम व उसका निचला पर नील के रंग का होता है, जिसमें आड़ी सुनहली–पीली धारियाँ होती हैं।

दणौस, सीपी मैलुवा

इसका स्थानीय नाम मैलुवा है। इसके सुन्दर सीप के रंग के शरीर पर एक लाल या बैजनी रंग की आड़ी लकीर होती है, जो पूँछ के समीष चपटी हो जाती है। इस मछली की लम्बाई लगभग 21 इंच होती है। यह भी जेबरा मछली की तरह स्फूर्ति वाली है।

बड़ा दणौस (Pearl Danio)

इसको अंग्रेजी में 'जायण्ट डेनियो' (Giant Danio) कहते है। यह स्थानीय नाम दणौस का अपभ्रंश होता है। इस मछली का शरीर चटकीला नीला या क्षार रंग–मिश्रित हरा और निचला हिस्सा गुलाबी रंग का होता है। अगल–बगल में तीन या चार नील के रंग की आड़ी धारियाँ होती हैं। इसकी लम्बाई लगभग 4 इंच होती है। यद्यपि इस मछली की प्रकृति सौम्य है, फिर भी इसको छोटी–छोटी मछलियों के साथ रखना निरापद नहीं है।

ऋतु प्रदर्शित करने वाली मछली (Weather fish)

इस मछली का स्थानीय नाम बिल्ली है। इसका लम्बा पतला शरीर लगभग 4 इंच होता है। इसके मुँह पर दो लम्बी सींक सी मूँछें होती हैं। इसका शरीर हल्का जैतूनी रंग का आड़ी काली धारियाँ लिए होता है। यह मैला साफ करती है और अपने रहने का भाड़ा जलचर–वासन के पेंदे को साफ करके चुकाती आँधी या तूफान के आगमन की सूचना यह रह–रहकर सीधे तीर की तरह पानी की सतह की ओर भागकर देती है।

नारंगी पीली मछली (Orange Chromide)

इसकी लम्बाई लगभग 3 इंच होती है। इसके पीले शरीर के केन्द्र में एक काला बिन्दु होता है, जिसके चारों तरफ लाल चित्तियाँ होती हैं।

गैंड (Spiny Eel)

यह मछली देखने में बड़ी विचित्र है। इसका शरीर लम्बा–पतला, मुँह चोंच की तरह व दुम चपटी होती है, जिसमें लम्बाई में चार या पाँच गोल काली बिन्दियाँ होती हैं। साधारणतः शरीर का रंग जैतूनी होता है।

पटफुल्ला (Puffer fish)

यह एक परिहासपूर्ण मछली है। इसका शरीर जैतूनी रंग का होता है, जिसमें यत्र–तत्र हरे धब्बे होते हैं। इसकी विशेषता, जैसा इसके नाम से ही प्रकट है, यह है कि जब यह जल के बाहर निकालकर हाथ में ली जाती है, तो यह हवा को अपने पेट में समेटकर गेंद की तरह गोल हो जाती है। पर जैसे ही फिर पानी में डाली जाती है,वैसे ही फूटे हुए बैलून के समान पानी के तल पर गिर जाती है।

दणौस (Flying Barb)

इसके जल में भ्रमण करने वाले पतवार पक्षियों के डैने की तरह होते हैं। इसकी लम्बाई 2 से 3

इंच तक होती है। इसकी पीठ गहरे जैतूनी रंगी की और शरीर में लड़ी–सी काली रेखाएँ अग्रभाग में सुनहला फीता लिए होती हैं।

उल्लिखित वर्णन केवल उन्हीं मछलियों का है, जिसको लेखक ने तालाबों, झीलों व नदियों में देखा है। इनके अतिरिक्त जीवित मछलियाँ, जो साधारणतः कलकत्ते या बम्बई में प्राप्त हो सकती हैं, दो भागों में विभक्ति की जा सकती हैं–एक तो शीत जल की सुनहली मछलियाँ (Gold fish) हैं और दूसरी उष्ण–देश की। यहाँ हम उनमें से मुख्य–मुख्य का ही संक्षेप में परिचय देंगे:–

सुनहली मछलियाँ शीत जल की मछलियाँ हैं। अगर किसी प्रकार उस जल को, जिसमें ये मछलियाँ हैं, ठंडा करके मछलियों–समेत जमा दिया जाय तो, हिम के गल जाने के उपरान्त भी ये जल में चलती–फिरती दृष्टिगोचर होंगी। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि जल के हिम होने वाले तापक्रम पर ये स्वस्थ रहेंगी। सुनहली मछलियों का पालना लगभग उष्ण–देश के समान है। पर इनके सुन्दर स्वास्थ्य एवं दीर्घायु के लिए यह ध्यान रखना आवश्यक है कि (1) मछलियों की संख्या व लम्बाई ध्यान में रखते हुए जलचर–वासन में पर्याप्त खुली जल–सतह रखना। (2) जल के परिवर्त्तन से तापक्रम में शीघ्र हेर–फेर कभी न करना। (3) पर्याप्त जल के पौधे जलचर–वासन में रखना। (4) भोजन पर्याप्त मात्रा में, पर आवश्यकता से अधिक न देना।

निम्नलिखित प्रकार की सुनहली मछलियाँ कलकत्ते में मिल सकती हैं:–

साधारण सुनहली मछली

अपने आदि माता–पिता के समान होती है। यह सुदृढ़ और एक विस्तारपूर्ण तापक्रम के अन्तर्गत जीवित रह सकती है। इसका रंग लाल, नारंगी या सीप की तरह सफेद होता है। यह या तो छिलके से ढँकी या बिना छिलके के होती है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि इसके छिलका होता ही नहीं, पर साधारणतः यह दृष्टिगोचर नहीं होता।

पुच्छल तारा

इस नयनाभिराम मछली की पूँछ बहुत लम्बी, शरीर पतला, लम्बा व उर्ध्व और सामने के पंख दीर्घ होते हैं। इसी से वह जल में चल–फिर सकती है। इसका रंग काला–लाल मिश्रित, सीप की तरह सफेद या लाल–सफेद होता है।

पंखे के आकार की पूँछ वाली सुनहली मछली

इस मनोहर मछली का शरीर इसकी पूँछ व पंख की तुलना में लम्बा होता है। यह एक शक्तिशाली मछली है और एक सन्तुलित जलचर–वासन में बहुत वर्षों तक जीवित ही नहीं रहती, वरन् दो–एक वर्ष पश्चात् इसके अति सुन्दर पंख भी निकल आते हैं।

दूरदर्शक–यन्त्र की भाँति चक्षु वाली सुनहली मछली

इसके नाम से ही प्रकट है कि इसके चक्षु दूरदर्शक–यन्त्र की भाँति होते हैं। यह मछली भी छिलके–युक्त या बिना छिलके दोनों तरह की होती है। यह लाल शरीर की, सफेद या लाल–सफेद मिश्रित होती है। यह नीली छींट–से शरीर वाली या चीनी आकाश–चक्षु (सिर के उपर आँख) वाली भी होती है। चीनी भूर या तो पूर्ण सुनहले रंग की होती है या पूर्ण मखमली काले रंग के पेट वाली। इसका शरीर छोटा व भरा होता है, परन्तु शरीर के ऊपर के पंख व झालरदार पूँछ लम्बे होते हैं।

उष्ण देश की मछलियों में निम्नलिखित मुख्य हैं

गपी (Guppys), खड्ग पूँछ (तलवार की तरह दुम वाली Sword-tail), प्लेटी (Platys), वर्णसंकर (Halleries), मौली (Mollys), काला माणिक्य (Black rubies), बाघ–मछली (Tiger fish), स्याम–देश की यो)ा मछली (Siamese fighting fish) पैरेडाइज मछली (Paradise fish), गुलाबी चक्षु पैरेडाइज मछली (Albino Paradise), एक्स–किरण बिल्ली (X-ray Cat fish), नियोन टैट्रा (Neon Tetras), ऐंजल मछली (Angel fish), गैम्बूसिया (GambusiaAffinis), मधुमक्खी मछली (Bee fish) और विदूषक ईल के प्रकार की (Clown loach)।

गपी (लम्बाई नर 1–1/8 इंच, मादा 2–1/4 इंच)

गपी या लेबिस्टस रिटिक्युलेट्स (वैज्ञानिक नाम) एक बहुत ही छोटी मछली है। इसका दूसरा नाम इन्द्रधनुष मछली है। नर मछली मनोहर विविध प्रकार के इन्द्रधनुष के रंगों की होती है। मादा यद्यपि शरीर में बड़ी होती है, परन्तु इसका रंग हल्का जैतूनी होता है। यह शक्तिशाली, सुन्दर प्रकृति एवं असीम बच्चे जनने के कारण सदा प्रारम्भिकों की मछली कही जाती है। अन्य मछलियों की भांति इसके अण्डे नहीं होते, जीवित बच्चे पैदा होते हैं। हर चार या पाँच सप्ताह बाद इसके 15 से 5. तक बच्चे होते रहते हैं।

खड्ग–पूँछ (लम्बाई तीखी पूँछ को छोड़कर 2–3/4 इंच)

जैसा कि इसके नाम से ही बोध होता है, नर–मछली की पूँछ तलवार के समान लम्बी–तीखी होती है। यह लाल, सुनहले या हरे रंग की होती है। पूँछ के खड्ग–अंश में तीनों प्रकार के रंगों की मछलियों के सुन्दर काली किनारी होती है। नर–मछली मादा के चारों ओर फिरती और सदा उसके लिए चिन्तित रहती है। यह मछली अपनी बाँकी चाल व सुन्दर रंग के कारण दर्शक का ध्यान शीघ्र ही अपनी आरे आकर्षित करती है। यह गपी से भी अधिक उपयुक्त वातावरण में बच्चे जनती है।

प्लेटी (लम्बाई 1–1/2 से 2 इंच तक)

यह भी अण्डे न देकर जीवित बच्चे जनती है। एक विशेष रंग के धब्बे वाली नर–मछली और उसी रंग के धब्बे वाली मादा–मछली के संयोग से अनेक रंगों की मछलियाँ पैदा की गई हैं। इनमें सुनहली, लाल, नीली, हरी, काली और मिश्रित रंगों की मछलियाँ प्रमुख हैं।

वर्ण संकर (लम्बाई लगभग खड्ग–पूँछ के बराबर)

यह मछली विविध रंगों की प्लेटी व खड्ग–पूँछ के संयोग से उत्पन्न होती है। यह अति सुन्दर और शरीर में अपने माता–पिता से बड़ी होती है।

मौली (लम्बाई लगभग 3।। इंच)

यह जीवित बच्चे जनने वाली होने पर भी अन्य जाति की मछली है। मौली निम्नलिखित भाँति की होती है–पाल के आकार की उर्ध्व पंख वाली, नारंगी रंग की दुम वाली और काजल–काली। पाल के आकार की उर्ध्व पंख वाली मौली विशेषतः जब पाल को खड़ा रखती है, अत्यन्त दीप्तिमान प्रतीत होती है। कुछ लोग तो इसे जीवित बच्चे जनने वाली मछलियों की रानी कहते हैं। इसका

शरीर जैतूनी रंग का होता है; परन्तु पूँछ व उर्ध्व पंख हल्के चमकदार नीले रंग के होते हैं। यह नारंगी रंग की दुम वाली 3 से 4 इंच तक लम्बी होती है। यह विभिन्न रंगों की होती हैं।

काला माणिक्य (लम्बाई लगभग 2।। इंच)

इस मछली का वैज्ञानिक नाम 'बारबस नाइग्रोफेसियेट्स' है। इसका चमकता हुहा काला रंग लाली लिए होता है। यह लाल रंग मुख्यतः नाक व पेट पर अधिक फैला रहता है। यह सुनहली मछली की ही जाति की है। इसका रंग सदा एक–सा नहीं रहता। जरा भी भय होने पर इसके रंग की चमक लुप्त हो जाती है।

बाघ मछली (लम्बाई लगभग 2।। इंच)

यह अण्डे देती है। इसका शरीर जैतूनी–लाल मिश्रित होता है, जिस पर चौड़ी खड़ी काली धारियाँ होती हैं।

स्याम की योद्धा मछली (लम्बाई लगभग 2।। इंच)

इसका वैज्ञानिक नाम "बीटा–स्प्लेडन" है। यह खर्दा की ही जाति की है। इसका आदि–स्थान स्याम है। यहाँ यह कृत्रिम साधनों से उत्पन्न करके लड़ाने के काम में लाई जाती है। झालरदार पूँछ की चमकीले रंगों से सुसज्जित इस मछली का सुहावनापन शीघ्र ही दर्शक को जलचर–वासन की ओर आकर्षित करता है। नर–मछली को अपनी क़िस्म की अन्य मछलियों के साथ रखना निरापद नहीं है। यह मादा के साथ केवल जनन–काल में ही रखी जाती है। फेफड़ होने के कारण इसको काँच के छोटे वासनों में रखा जा सकता है।

पैरेडाइज मछली (लम्बाई लगभग 3 इंच)

यह भी खर्दा की जाति की मछली है। जनन–काल में नर–मछली का शरीर अत्यन्त लाल और हरी चौड़ी खड़ी धारियों से शोभायमान हो जाता है। लम्बी दुम के किनारे नीले–सफेद हो जाते हैं। मादा–मछली की पूँछ व पंख न उतने विकसित होते हैं और न उनमें उतनी रंगीनी ही होती है। पर यदि मछली मनोवेग में न हो, तो नर मछली का न तो उतना गहरा रंग होता है और न मादा का उतना सादा ही।

गुलाबी चक्षु (पैरेडाइज) मछली (लम्बाई 2।। इंच)

यह जर्मनी में 1933 में खोज निकाली गई, जो सम्पूर्ण सफेद और गुलाबी खड़ी धारियाँ लिए होती है। यह प्रचुर मात्रा में अपनी ही तरह के बच्चे जनती है। इसे भय की कोई सम्भावना नहीं है।

बिल्ली मछली या एक्स–किरण (लम्बाई लगभग 2।। इंच)

इस मछली का वैज्ञानिक नाम 'क्रिपटोपटिरस बाइसिरस' है। यह पारदर्शक है। इस मछली की समस्त अस्थियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। इसके मुँह का अग्रभाग साँस लेने वाले स्थान तक काला होता है और पेट से लेकर पूँछ तक काँच की तरह दिखलाई देता है।

नियोन टैट्रा (लम्बाई 1 से 1 1 5 इंच तक)

यह जलचर–वासन की समस्त मछलियों में अति आकर्षक रंग की होती है। इसके शरीर पर गहरे चमकदार विपरीत रंग सुशोभित रहते हैं। इसका भारतवर्ष में मिलना सरल नहीं है।

ऐंजल मछली (लम्बाई आध इंच से 5 इंच तक)

इस मछली का वैज्ञानिक नाम 'टेरोफिलम स्कालेयर' है। यह लम्बे पंख–तलवार व काली खड़ी धारियों से ऐसी प्रतीत होती है, मानो एक पक्षी आड़ा होकर उड़ रहा हो। अन्य बहुत–सी मछलियों की भाँति इसकी भी नर–मादा की पहचान सरल नहीं है। केवल जनन काल में ही मादा मछली का पेट भरा हुआ बोध होता है।

मच्छ मछली, गेम्बुसिया (लम्बाई: नर 1 इंच, मादा 2 इंच)

यह सूक्ष्म जन्तु उत्तर–अमरीका का निवासी है। स्वभावतः यह मछली स्वच्छ जल पसन्द करती है; पर गन्दे गड्ढ़ों, तालाबों व जलयुक्त दलदलों में, जहाँ इसके स्वाभाविक शत्रु मच्छरों के बच्चे पैदा होते हैं, स्वच्छन्दतापूर्वक रह सकती है। यद्यपि इसके छोटे शरीर के कारण इसको 'मच्छर मछली' कह सकते हैं; पर यथार्थ में इसका नामकरण इसकी तीव्र अभिरूचि मच्छर के बच्चो के भोज्य से ही है। यह मछली मच्छरों के नाश करने की प्रवृत्ति एवं बहुसंख्यक जीवित बच्चे जनने के कारण मलेरिया पीड़ित देशों में तालाबों व गड्ढों में पाली जाती है। साधारणतः यह हल्के काले रंग की गहरी काली धारी–युक्त या बहुरंजित लाल, हरे और पेट के पास काले धब्बे से सुशोभित रहती है।

मधुमक्खी मछली (लम्बाई 1 ।। इंच)

यह मछली मलाया में धान के खेतों के रुके हुए जल में या छिछले स्वच्छ जल के कुण्डों में पाई जाती है। इसके शरीर में चौड़ी, खड़ी, काली, सुनहली धारियाँ होती हैं। इसका अधिक समय जलचर–वासन के पेंदे में ही व्यतीत होता है। अन्य समय यह या तो घूमती रहती है या जलचर–वासन के शीशे पर लटकी रहती है। यह बड़ी मजबूत होती है एवं दीर्घ तापक्रम जल में रह सकती है।

विदूषक ईल की किस्म की मछली (लम्बाई 3 इंच)

यह ईल की किस्म की लम्बी, पर शरीर में कुछ गोल पूर्वीय द्वीप–समूह में पाई जाती है। इसका शरीर सुनहला–लाल और पूँछ के निकट कुछ हल्के रंग का होता है, जिस पर चौड़ी, खड़ी, काली धारियाँ होती हैं। इसी से यह विदूषक के–से वस्त्र पहने प्रतीत होती है। इसके चोंच के–से मुँह में दोनों ओर एक–एक छोटी सींक–सी मूँछ होती है।

सर जेम्स जीन्स*

महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव

सर जेम्स हॉपउड जीन्सका जन्म 11 सितम्बर सन् 1877 ई. में हुआ था। आप बड़े प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता, उच्च कोटिके ज्योतिर्विद् तथा विचारक थे। दु:ख है कि आपकी मृत्यु गत 17 सितम्बरको 69 वर्षकी अवस्थामें हो गयी। यह और भी दु:खकी बात है कि गत दो वर्षोंमें इंगलैंडके दो प्रमुख ज्योतिर्विद् और गणिताचार्य कराल कालके गालमें चले गये। इनमेंसे प्रथम थे सर आर्थर एडिंगटन।

आपने इंगलैंडके प्रसिद्ध विश्व–विद्यालय केम्ब्रिजके ट्रिनिटी कालेजमें शिक्षा पायी थी और सन् 1898 ई. में उसके द्वितीय रैंगलर (गणितके सर्वोच्च उपाधिधारी) हुए। 1900 ई. में आपको स्मिथ पारितोषिक मिला। 1905 से 1910 ई. तक आपने संयुक्तराज्य अमेरिकाके प्रिन्स्टन विश्वविद्यालयके व्यावहारिक गणितके अध्यापकके पदको सुशोभित किया। आपका सबसे पहला निबन्ध 1904 ई. में प्रकाशित हुआ जिसका शीर्षक था गैसोंका गति विज्ञान सम्बन्धी विचार (Dynamical theory of gases)। केम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें आपको सर ऐजक निउटन छात्रवृत्ति सन् 19.1 ई. में प्राप्त हुई जहाँ आप सर जार्ज डार्विनके प्रमुख शिष्य हुए। सर जार्ज डार्विन प्रसिद्ध डार्विनके पुत्र थे जिनका नाम वैज्ञानिक संसारमें डार्विन सिद्धान्तके कारण अमरहो गया है। सर जार्ज डार्विन एक प्रसिद्ध गणितज्ञ थे और उन्होंने समुद्रके ज्वार–भाटा और ग्रहोंके आकारके सम्बन्धमें विशेष अध्ययन किया था। 19.1 में इन्होंने फ्रांसके प्रसिद्ध गणितज्ञ प्वाइंकारके सहयोगसे दो बहुतही रोचक निबन्ध लिखे जिनमें इस विषयपर विचार किया गया था कि जब तरल पदार्थोंके पिंड घूर्णन करते हैं तब साम्यावस्थामें उन पिंडोंका आकार नासपाती के फलके सदृशहो जाता है जो, इनके विचारसे, उस समय भी स्थायी रहता है जब उनका घूर्णन अत्यन्त अधिकहो जाता है। परन्तु सर जेम्स जीन्सने जो उस समय केवल एक विद्यार्थी ही थे इसका विरोध किया और बतलाया कि पदार्थोंकी भौतिक दशा यथार्थमें ऐसी नहीं होती। इन्होंने सिद्ध किया कि घूर्णनकी गति बढ़ने पर न दबने वाले पदार्थका पृष्ठ हल चले हुए खेतकी तरह विषमहो जाता है उनका आकार नासपातीके सदृशहो जाता है और उसके दो भाग हो जाते हैं। परन्तु घूर्णन करते हुए दब जाने वाली गैसोंके पिंड घूर्णनकी गति तीव्रहो जानेपर फैल जाते हैं और बीचसे दो भागोंमें बंट जाते हैं। जीन्सका अनुमान था कि निकटवर्ती युगल तारों (binary star) की रचना पहली तरहकी होती है और कुंडलीकार नीराशिकाकी रचना दूसरी तरह। बहुत सी नीहारिकाओंमें जो घूर्णन देख पड़ता है उसकी भी उपपत्ति इसी प्रकार समझायी गयी।

---

* *विज्ञान*, सितम्बर 1946

तत्वदर्शियोंमें कान्टका नाम प्रसिद्ध है। लाप्लास एक प्रसिद्ध गणितज्ञ और ज्योतिर्विद् था। दोनोंने नीहारिकाओंके सम्बन्धमें एक मत स्थिर किया था जिसपर पीछेके वैज्ञानिकोंने बहुत विचार किया और उसकी सत्यता गणितसे सिद्ध करनेका प्रयत्न किया। सर जेम्स जीन्सने भी स्वभावतः इसपर विचार किया और इस परिणामपर पहुँचे कि हमारे सौर परिवारके सम्बन्धमें तो यह मत शायद लागू नहीं हो सकता।

जीन्सके इस मतके विरुद्ध दो आपत्तियाँकी जा सकती हैं। अमेरिकाके प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् रसेलने गणितसे सिद्ध किया कि जीन्सकी लहर संबंधी मतके माननेमें एक कठिनाई तब पड़ती है जब हम पाससे जाने वाले तारे, सूर्य और ग्रहोंके कोणात्मक वेगों (Angular momenta) पर विचार करते हैं। यदि वह तारा उसी आकार और द्रव्यमानका था जैसा हमारा सूर्य तो सूर्यसे इसकी निकटतम दूरी दस लाख मीलसे बहुत अधिक न रही होगी। रसेलने गणितसे सिद्ध किया कि ग्रहोंके लिए मध्यम कोणात्मक वेग प्रति इकाई द्रव्यके लिए तारोंके वेगकी अपेक्षा दस गुना होता है इसलिए यह अचिंत्य है कि पाससे जाने वाले तारेके कारण झटकेसे निकले हुए पिंडमें इतना वेग हो। दूसरी आपत्ति यह है कि स्थिति विज्ञानके अनुसार यह असम्भव है कि दो तारे एक दूसरेके इतने निकट आ जायँ कि उनमें लहरें उत्पन्न हो जायं। ऐसी प्रलयकारी घटनाएं बहुत कम संभव हैं और यदि हमारे ग्रह इसी प्रकार उत्पन्न हुए हैं तो इसे प्रकृति की विचित्रताही समझनी चाहिए और अरबों तारोंमें दो ही चार तारे ऐसे होंगे जिनमें ग्रहोंकी उत्पत्ति हुई होगी। परन्तु क्या ग्रहोंकी संख्या विश्वमें इतनी कमहो सकती है? इसलिए जीन्सका यह सिद्धान्त न तो सन्तोषजनक है और न तर्कसेही ठीक जान पड़ता है।

सौभाग्यसे सर जीन्ससे स्वयम्ही अपने पहले मतको सन् 1942 में बदल दिया। इन्होंने कहा कि ऐसे बहुतसे तारे हो सकते हैं जिनमें ग्रहोंकी उत्पत्ति हुई हो। जीन्स अब कहने लगे कि अरबों वर्ष पहले जब सूर्य सिकुड़ रहा था इसका आकार वर्तमान आकारका हजारों गुना रहा होगा, उस समय इसकी दशा नीहारिकाओंके सदृश रही होगी, उसी समय ग्रहोंकी उत्पत्ति हुई होगी। परन्तु इस मतके माननेमें भी कई आपत्तियाँ हैं जिनकी ओर हमारे प्रयाग विश्वविद्यालयके गणिताचार्य प्रो. ए. सी. बनर्जीने ध्यान आकर्षित किया है।

जीन्सने नक्षत्र–भौतिक विज्ञान (Astrophysics) में भी बहुतसे अविष्कार किये। तारोंके विकिरणकी साम्यावस्था (equilibrium) के संबंधमें इनका और एडिंगटनका बहुत दिनों तक वाद–विवाद चलता रहा। नाक्षत्रिक गतिविज्ञान (Stellar Dynamics) पर भी इन्होंने गवेषणाएं कीं। इस विज्ञानमें यह बतलाया जाता है कि दूसरे तारोंके आकर्षणके कारण तारोंकी निजी गतिमें क्या अंतर पड़ जाता है। जीन्सने गणना करके दिखा दिया कि दूसरे पिंडोके अचानक आगमनसे तारोंकी गतिमें कितना अंतर पड़ जाता है। इस प्रकार इन्होंने बतलाया कि कुछ चलते हुए नीहारिका गुच्छ किस प्रकार चपटेहो गये। ऐसे नीहारिका गुच्छ सप्तर्षि पुंजमें हैं।

सर जीन्स रॉयल ऐस्ट्राँनामिकल सोसाइटीके सेक्रेटरी 1925 से 1927 रहे। 1934 में यह ब्रिटिश एसोसिएशन फार ऐडवान्समेंट आफ सायन्सके सभापति रहे। सन् 1935 से यह रॉयल इन्स्टीट्यूशनके ज्योतिर्विज्ञानके अध्यापक रहे और लार्ड रथरफोर्डके एकाएक मर जाने पर इन्डियन सायन्स कांग्रेसके रजतजयन्तीके अवसरपर सभापतिके आसनको कलकत्तेमें सुशोभित किया था। आपने सन् 1938 में रॉयल एशियाटिक सोसाइटी आफ बेंगालका पदक भी प्राप्त किया था।

सर जेम्स जीन्समें सबसे बड़ी प्रशंसनीय बात यह थी कि यह गूढ़से गूढ़ वैज्ञानिक तथ्योंको ऐसी सुन्दर और रोचक भाषामें व्यक्त कर सकते थे कि साधारण पढ़ा लिखा आदमी भी उसको आसानीसे समझ सकता है। इनकी दो पुस्तकें 'मिस्टीरियस यूनिवर्स (रहस्यमय विश्व) तथा 'दि

स्टार्स इन देयर कोसंज' (तारों की बातें) ऐसी ही पुस्तकें हैं। इनको साधारण गृहस्थ भी पढ़कर लाभ उठा सकता है, और गूढ़ वैज्ञानिक तत्वोंकी जानकारीकर सकता है। यह कोरे गणितज्ञ और ज्योतिर्विदही नहीं थे, दर्शनशास्त्रमें भी रुचि रखते थे और उसका गहरा अध्ययन किया था। अर्वाचीन विज्ञानके तथ्योंका दर्शन–शास्त्रके सिद्धान्तोंपर क्या सूक्ष्म प्रभाव पड़ता है इससे भी यह खूब परिचित थे। ऐसी महान् आत्माओंका स्वर्गवासी होना किसको नहीं खलेगा? भगवान् इनकी आत्माको शान्ति दे।

यांत्रिक चित्रकारी*

ओंकारनाथ शर्मा

यन्त्र निर्माण कला में नकशों का उपयोग

जब कि किसी नये यंत्र अथवा औजार का आविष्कार अथवा किसी पुराने ढंग के यंत्र अथवा औजार में सुधार किया जाता है तब निर्माण कार्य आरम्भ करने पहले उसके नकशे बना लेना अत्यंत आवश्यक है। उक्त यंत्र अथवा औजार के आविष्कारक अथवा सुधारक के दिमाग में तो उक्त यंत्र अथवा औजार की बनावट और सिद्धान्त स्पष्ट होते ही हैं और यदि वह चाहे तो अपने मानसिक चित्रानुसार सरल आकृति और बनावट के यंत्र अथवा औजार को स्वयं भी बना सकता है लेकिन अपने विचारों को किसी दूसरे कारीगर को जबानी समझा कर उसे बनवा लेना बड़ा ही कठिन है और विशेष कर उन कारखानों में जिनका कि व्यापार ही यंत्र निर्माण करना है। उनका तो इस प्रकार से काम चल ही नहीं सकता। अतः यांत्रिक को अपने उस मानसिक चित्र को कागज पर उतार लेना अत्यंत आवश्यक है। इस लिए यंत्र निर्माण कला की उन्नति के साथ-साथ यांत्रिक चित्रकारी नामक विज्ञान की भी उचित उन्नति की गई।

ड्राफ्टस्मैन अर्थात् यांत्रिक चित्रकार का काम

यंत्रों के निर्माण का कार्य निम्नलिखित चार विभागों में बाँटा जा सकता है (1) पूर्ण अथवा आंशिक आविष्कार करना और सिद्धान्तों का निश्चय करना। (2) उक्त निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार उस यंत्र और उसके पुर्जों की रचना करना और उनके प्रत्येक अंग को इतना मजबूत बना देना कि जिससे वे उस पर पड़ने वाले चाँप (Stresses) को भली भांति सह लें। (3) कारखाने के उपयोग के लिए उक्त पुर्जों के निर्माण चित्र (Working Drawings) बनाना। (4) उक्त निर्माण चित्रों के अनुसार उक्त पुर्जों को ढालना, गढ़ना खरादना और फिट कर यंत्र को खड़ा करना। यांत्रिक चित्रकारी के विद्यार्थियों को, उक्त चारों विभागों में आपस में क्या सम्बन्ध है, भली-भांति समझ लेना चाहिए। क्योंकि कुछ ड्राफ्टस्मैनों को तो दूसरों के विचारों के अनुसार आविष्कृत यंत्र की आकृति को विकसित कर उसके प्रत्येक भाग की रचना करनी पड़ती है, कुछ ड्राफ्टस्मैनों को नवीन आविष्कार के ऊपर विवेचना करनी होती है और उसकी योजना को स्थूल रूप देना होता है, कुछ ड्राफ्टस्मैनों को उक्त आविष्कृत यंत्र अथवा औजार के पुर्जों को निर्माण करने की विधि पर ध्यान देना होता है और उसके अनुसार उसकी रचना की छान-बीन करनी पड़ती है, कुछ ड्राफ्टस्मैन

---

* *विज्ञान*, फरवरी 1948

उपरोक्त बातों के निश्चित हो जाने पर प्रत्येक पुर्जे और सम्पूर्ण यंत्र के निर्माण चित्र ही बनाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक यंत्रकार (Designer) आविष्कारक हो सकता है और आविष्कारक यंत्रकार भी हो सकता है और आविष्कारक और यंत्रकारों को यांत्रिक चित्रकार होना सदैव ही आवश्यक है जिसमें कि वे अपने यंत्र की आकृति सम्बन्धी मानसिक चित्र को कागज पर स्थूल रूप दे सकें। लेकिन प्रत्येक यांत्रिक चित्रकार को आविष्कारक और यंत्रकार अथवा यांत्रिक होना आवश्यक नहीं, क्योंकि यांत्रिक चित्रकारी आज कल एक स्वतंत्र विधा बन गई है जिसे प्रत्येक नौसिखिया भी सीखना आरम्भ कर सकता है और फिर धीरे धीरे कोशिश करने पर आविष्कारक, यंत्रकार अथवा यांत्रिक भी बन सकता है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि जो आदमी यन्त्र शास्त्र और यंत्र विज्ञान की जितनी ही अधिक योग्यता रखता हुआ मौलिक आविष्कार, यन्त्र रचना और विकास कर सकता है उतना ही अधिक वह यंत्र रचना विभाग के लिए उपयोगी समझा जाता है। यह भी जानना चाहिए कि "यांत्रिक चित्रकार" (ड्राफ्टस्मैन) शब्द का अर्थ भी बहुत विशद् है। यथा हस्त चित्र (Free hand) द्वारा पैमाने का चित्र नकशा बनाने वाले से लेकर स्वयं चालक यन्त्रों की रचना करने वाले तक को ड्राफ्टस्मैन अर्थात् यांत्रिक चित्रकार ही कहते हैं। वास्तव में हस्त चित्र से पैमाने का चित्र बनाने वाला ही यांत्रिक चित्रकार कहलाना चाहिए और यन्त्र की रचना (Design) करने वाला यन्त्रकार (Designer) कहलाना चाहिए लेकिन अक्सर नकशे–घरों में इस प्रकार का भेद नहीं किया जाता। यह भेद केवल उनके वेतन से ही प्रकट होता है और जो व्यक्ति पैमाने के चित्रों से ट्रेसिंग बनाता है वह ट्रेसर कहलाता है। प्रत्येक यन्त्रकार अपने अपने विषय के विशेषज्ञ हुआ करते हैं। एक ही यंत्रकार सब प्रकार के यंत्रों की रचना नहीं कर सकता, क्योंकि किसी भी यन्त्र की रचना करने वाले को उस यन्त्र में निहित सिद्धान्त का बड़ा गहरा अध्ययन, अनुभव और यन्त्र निर्माण कला का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। जैसे कि गणित और अर्थशास्त्र का कोई भी स्वतंत्र रूप से पुस्तकों द्वारा ही हर कोई नहीं सीख सकता जब तक कि उस औद्योगिक क्षेत्र का पूरा अनुभव न प्राप्त कर ले।

यांत्रिक चित्रकार को किन किन बातों का ज्ञान होना चाहिए?

जो लोग यांत्रिक चित्रकार बन कर यंत्र सम्बन्धी वास्तविक मौलिक रचनायें करना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि वे ट्रेसरों की भांति लकीर पर लकीर मारकर अथवा दूसरों की यांत्रिक रचनाओं के नकशे बनाकर ही संतोष नहीं कर लें, बल्कि यंत्र विज्ञान और यंत्र निर्माण कला का पूर्ण ज्ञान धीरे धीरे प्राप्त करते रहें और सचेत दृष्टि से देखते रहें कि उनसे ऊँचे दरजे के यन्त्रकार किस प्रकार से यंत्र शास्त्र के साधारण से साधारण सिद्धान्तों का उपयोग कर के आश्चर्यजनक रचनायें प्रस्तुत कर देते हैं। वे व्यवहार में देखेंगे कि एक ही साधारण सी प्रयुक्ति कई प्रकार के नतीजे प्राप्त करने के लिए काम में लाई जाती है और कई बेर एक ही प्रकार के नतीजे को प्राप्त करने के लिए भिन्न भिन्न प्रयुक्तियां काम में लाई जाती हैं, लेकिन कहां पर किस प्रयुक्ति का उपयोग करना श्रेय होगा इसी बात का उचित निश्चय करने में यंत्रकार की चतुराई समझी जाती है। वास्तव में अधिकतर जितने भी यन्त्र हमारे देखने में आते हैं उनमें से एक भी ऐसा नहीं मिलेगा जो कि किसी व्यक्ति विशेष के दिमाग की विशुद्ध उपज हों बल्कि वे सब अपने पूर्ववर्त्ती यंत्रों के परिष्कृत स्वरूप हैं। व्यवहार में किसी यंत्रकार अथवा यांत्रिक चित्रकार से यह आशा नहीं की जाती कि वह जो कुछ भी रचना करेगा वह सर्वथा मौलिक ही होगी, बल्कि उससे केवल यही आशा की जाती है कि जो कुछ भी वह बनावे वह सर्व सम्मत वैज्ञानिक सिद्धान्तों और अनुभवों द्वारा परिपुष्टित हो। इसका मतलब यह नहीं

है कि कोई यंत्रकार किसी प्रकार का मौलिक आविष्कार करे ही नहीं अथवा सदैव दूसरों के विचारों का अपहरण ही करता रहे बल्कि इसका मतलब यह है कि जो कुछ भी वह रचना करे वह वैज्ञानिक सिद्धान्तों और अनुभवों द्वारा प्रमाणित हो।

यांत्रिक चित्रकार को यंत्र निर्माण कला का ज्ञान क्यों होना चाहिए?

कागज पर लकीरें खींच देना तो बहुत आसान है लेकिन उन लकीरों के अनुसार लकड़ी, लोहा, इस्पात या पीतल का सामान बना डालना ही अधिक कठिन है। अनुभव हीन यांत्रिक चित्रकारों के बनाये हुए नकशे और रचनायें जब कारखाने में बनने के लिए जाती हैं तब कई बेर मालूम होता है कि उनके बनाये नकशे के अनुसार कोई फरमा नहीं बनाया जा सकता, यदि फरमा बन भी जाता है तो सांचा बनाते समय मिट्टी टूटती है या उस की हवा नहीं निकलने पाती जिससे ढलाई में ऐब रह जाता है, अथवा वह अदद गढ़ा नहीं जा सकता अथवा उसकी खराद वगैरा में किसी प्रकार की बेजा दिक्कतें पेश आती हैं जिन दिक्कतों के कारण उस पुर्जे या अदद का बनाना असम्भव अथवा बड़ा खर्चीला हो जाता है। यदि उस रचना में थोड़ी सी कोई तब्दीली या सुधार कर दिया जाय तो उपरोक्त सब दिक्कतें दूर हो सकती हैं। अतः एक होशियार यांत्रिक चित्रकार को फरमें बनाने का, उनसे ढलाई करने का, और लुहारी के काम का अच्छा अनुभव होना चाहिए। बहुत अधिक खराद किये जाने वाले अदद, अथवा विशेष औजार, जिग अथवा फिकश्चरों की रचना करने वालों को यंत्र घर के काम का अच्छा अनुभव होना चाहिए। सर्वोत्तम रचना वही समझी जाती है जिसमें प्रत्येक अदद की आकृति यथासम्भव बहुत सरल, पेचिदगियों और उलझनों से रहित हो और जिसका निर्माण बहुत सस्ते में हो सके। अतः योग्य यांत्रिक चित्रकार स्वरचित यंत्र अथवा औजार की कार्यप्रणाली का ही केवल ध्यान नहीं रखते बल्कि उसको बनाने वाले फरमागर (Pattern Maker), सांचागर (Moulder), लोहार (Black smith), खरादी (Machinist) और मिस्त्री (Fitter) आदि सब प्रकार के कारीगरों का ध्यान रखते हैं। इसलिए जिन यांत्रिक चित्रकारों को कारखाने के काम का प्रायोगिक अनुभव नहीं उन्हें आवश्यक बातों में उपरोक्त कारीगरों और उनके फोरमैनों की सलाह लेते रहना चाहिए। विशेष औजार जैसे कि जिग, फिक्श्चर, जिनका मुख्य उद्देश्य काम को सस्ता और अच्छा करना ही है, उनकी रचना करते समय कारीगर और फोरमैनों की केवल सलाह ही न ली जाय बल्कि उनकी राय को मान कर उस पर अमल भी किया जाय, क्योंकि वे ही लोग तो उन औजारों के उपयोग करने वाले होंगे अतः उनकी अच्छाई और बुराई के विषय में उनसे अधिक यांत्रिक चित्रकार नहीं जान सकते।

कारीगर और फोरमैन लोग जो कि हमेशा निर्माण कार्य में ही लगे रहते हैं भली–भांति जानते हैं कि किन–किन क्रियाओं के करने में क्या–क्या दिक्कतें पेश आती हैं और कौन–कौन सी क्रियायें विशेष खर्चीली पड़ती हैं जिनका निवारण रचना में थोड़ा सा हेर–फेर करने से हो सकता है। यंत्र निर्माण करने वाले कई बड़े–बड़े कारखानों में ऐसा रिवाज होता है कि प्रत्येक फोरमैन और जिम्मेदार मिस्त्रियों के पास एक एक कोरी कापी रहती है जिसमें वे अपनी दिक्कतें और उन्हें दूर करने के उपाय ज्योंही उनके काम के सिलसिले में आते हैं लिखते जाते हैं। इस कापी में एक दिक्कत और उसे दूर करने के उपाय को एक ही पन्ने में लिख जाता है। उन पन्नों पर हेडिंग आदि सब छपे रहते हैं और एक छोड़ एक पन्ना छिदा हुआ रहता है जिससे कि वह उचित स्थान से फाड़ा जा सके। अतः प्रत्येक प्रस्ताव की दो लिपियां तैयार करके एक लिपि का पन्ना फाड़कर चीफ ड्राफ्टस्मैन (मुख्य यांत्रिका चित्रकार) को भेज दिया जाता है। उन प्रस्तावों को पाते ही वह अफसर

आवश्यक और जल्दी के प्रस्तावों पर तो फौरन उचित कार्यवाही करवाता है और शेष को उचित अवसर आने पर विचार करने के लिए छोड़ देता है। कई कारखानों में कारीगरों को केवल सुझाव रखने के लिए ही प्रोत्साहन और आजादी नहीं दी जाती बल्कि निर्माण करते समय किसी भी प्रकार के ऐब को न प्रकाशित करने के लिए जिम्मेदार भी ठहराया जाता है।

यांत्रिक चित्रों का वर्गीकरण

यांत्रिक चित्रों को दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। एक तो रूपरेखा चित्र (Outline drawing) और दूसरे निर्माण चित्र (Working drawing)। रूपरेखा चित्रों में तो चित्रित वस्तु की साधारण आकृति और समाहृत नाप (Overall dimensions) ही दिये जाते हैं जिनकी कि अकसर सूची पत्र आदि में आवश्यकता पड़ती है। निर्माण चित्रें में चित्रित वस्तु की भीतरी और बाहरी सही सही आकृति, उसके सब नाम और सूचनायें दी जाती हैं जिनकी कि उक्त वस्तु का निर्माण करते समय फरमाघर, ढलाई खाना, लुहार खाना और खरीदखाने आदि में आवश्यकता पड़ती है। निर्माण चित्र भी दो प्रकार के होते हैं, एक तो संगम चित्र (Assembly Drawing) जिसमें पूरे यन्त्र के सब पुर्जों को यथास्थान लगा हुआ बताया जाता है और उनकी आपेक्षिक स्थिति प्रदर्शित करने वाले सब नाप दिये जाते हैं जिनकी फिटरों और यन्त्र को जोड़कर खड़ा करने वाले मिस्त्रियों को आवश्यकता पड़ती है। दूसरी प्रकार के निर्माण चित्रों को विवरण चित्र (Detail Drawing) कहते हैं, जिनमें प्रत्येक पुर्जे की पूरी बनावट, सब नाप और सूचनायें दी जाती हैं जिनकी सहायता से वह पुर्जा बनाया जा सकता है। रूपरेखा और संगम चित्र अक्सर छोटे पैमाने पर बनाये जाते हैं क्योंकि उनमें नाप और सूचनायें बहुत थोड़ी दी जाती हैं और विवरण चित्र या तो पूरे पैमाने पर बनाये जाते हैं या जितना हो सके उतने बड़े पैमाने पर बनाये जाते हैं। यहाँ पर यह बता देना आवश्यक है कि यांत्रिक चित्रों को देख कर साधारण व्यक्ति जिनको इस विद्या का ज्ञान नहीं है प्रदर्शित वस्तु की आकृति उसी प्रकार सरलता से नहीं देख और समझ पाते जैसी की दृश्य चित्र अथवा फोटो में देखकर समझ सकते हैं, बल्कि उन्हें तो रेखाओं का एक जाल सा दिखाई देता है।

वास्तव में, यांत्रिक चित्रों में बनी हुई प्रत्येक रेखा, प्रत्येक बिन्दु अथवा अक्षर या चिह्न कोई विशेष अर्थ रखता है और वैज्ञानिक रीति से उस वस्तु की सही बनावट, आकार, धातु और निर्माण विधि पर कोई न कोई निश्चित बात बताता है। इसके विपरीत दृश्य चित्र, प्रदर्शित वस्तु की बाहरी आकृति का ज्ञान तो करवा देते हैं लेकिन उसके विविध भागों के आपेक्षिक सही नाप, भीतरी बनावट और निर्माण सम्बन्धी कुछ भी सूचना नहीं दे सकते। अतः यांत्रिक चित्रकारों को सूचीपत्रों के उपयोग के अतिरिक्त दृश्य चित्र कभी भी बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनके आकृति और सूचनायें व्यक्त करने के तरीके इस प्रकार के होते हैं जिनके अनुसार चित्र बनाने में थोड़ा से थोड़ा समय लगे और आकृति और निर्माण विधि सम्बन्धी विशुद्ध सत्य व्यक्त किया जा सके। अतः यांत्रिक चित्रकारों को इस कला का इसी दृष्टिकोण से अध्ययन करना चाहिए।

भूमि की उर्वरा शक्ति का ह्रास*

बांके बिहारी श्रीवास्तव

भारतीय कृषि की दृष्टि से 1942 का वर्ष अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। इसी वर्ष से भारत–सरकार की कृषि सम्बन्धी नीति में परिवर्तन देखने को मिलता है। इसके पहिले सरकार और जनता दोनों ही इस विषय में उदासीन थे। महायुद्ध में बर्मा के पतन से भारत में चावलों की एकाएक भारी कमी आ गई। फलस्वरूप भारत–सरकार ने "अधिक अन्न उत्पादन" योजना चालू की, जिसका एकमात्र उद्देश्य तत्कालीन चावलों की कमी को पूरा करना था। यह योजना अधिक काल के लिए नहीं थी। जैसे ही एक–दो वर्ष में योजना का उद्देश्य पूरा हो जाता, वह बंद कर दी जाती। पर इसके बाद ही बंगाल का भीषण दुर्भिक्ष पड़ा, जिसने सरकार की आँखें खोल दीं। भारत कृषि की दृष्टि से कैसी हीनावस्था में है यह सत्य इसके पहिले इतने प्रखर रूप में कभी प्रकट न हुआ था। सरकार को कृषि–सम्बन्धी उदासीनता त्याग देने के लिए विवश होना पड़ा। परिस्थितियों का तकाजा था कि कृषि–सम्बन्धी नीति में शीघ्र ही परिवर्तन किया जावे और ऐसी योजना बनाई जावे जो न केवल तत्कालीन खाद्यान्नों के अभाव की पूर्ति करे, वरन् भविष्य में भी बढ़ती हुई जनसंख्या को उचित परिमाण में खाद्यान्न सुलभ बनाने में सहायक हो। तदनुसार सरकार की नीति में जो परिवर्तन हुआ, उसने कृषि के क्षेत्र में क्रांति–सी मचा दी। कालान्तर में केन्द्र और प्रान्तों में जनप्रिय सरकार की प्रतिष्ठा से और इसके पश्चात् ही स्वतन्त्रता–प्राप्ति से भारतीय कृषि का एक नया ही युग प्रारम्भ हो गया। "अधिक अन्न उत्पादन" योजना अपने संकुचित रूप में न रहकर अब एक विस्तृत रूप में हमारे सामने उपस्थित हुई है। इसके अन्तर्गत कृषि–सम्बन्धी बहुत से दोषों के निवारणार्थ सभी संभाव्य उपाय कार्य रूप में परिणित करने का कार्यक्रम है। इसके 3 मुख्य लक्ष्य हैं – (1) सिंचाई के साधनों की वृद्धि (2) खाद, सुधरे हुए बीज तथा सिंचाई के द्वारा उपलब्ध भूमि में अधिक से अधिक अन्न उत्पादन करना और (3) पड़ती तथा बँजर जमीन को कृषि–योग्य बनाकर कृषि के अन्तर्गत भूमि का क्षेत्र बढ़ाना। इस योजना के द्वारा भारत–सरकार 5 वर्ष की अवधि में देश के उत्पादन में 15 प्रतिशत की वृद्धि करना चाहती है। जनवरी 1947 में इस पंच–वर्षीय योजना का उद्घाटन करते हुए देश–रत्न डा. राजेन्द्रप्रसादजी ने (ज़ो उस समय भारत–सरकार के खाद्य–मन्त्री थे) Food and Agricultural Prices Conference में बताया था कि उक्त योजना के संचालन में सरकार को 200 से 300 करोड़ रुपयों का व्यय उठाना पड़ेगा। इस योजना के द्वारा हमारी आज की खाद्य समस्या तो हल होगी ही, साथ ही भावी जनता को भी प्रचुर मात्रा में भोजन–सामग्री देने में समर्थ होंगे।

---

* *वीणा*, अक्टूबर 1948

इस योजना से हमें अभी तक काफी सफलता मिल चुकी है। अपने जन्म–काल से ही इसने हमारी समस्या को हल करना आरम्भ कर दिया है। 1942–43 में देश में केवल गेहूं का उत्पादन 1,09,38,000 टन था जो 1941–42 के गेहूं उत्पादन से 9 प्रतिशत अधिक है। इसी प्रकार 1947 में मुख्य मुख्य खाद्यान्नों का उत्पादन 1946 के उत्पादन से 1–1/2 करोड़ टन अधिक बैठता है। ऐसा अनुमान है कि यदि यह योजना सही–सही और ईमानदारी से बर्ती गई तो 5 वर्ष की अवधि के अन्त में (1951) देश में खाद्यान्नों का उत्पादन 1946 के उत्पादन से 1. करोड़ टन अधिक होगा। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, सरकार का लक्ष्य उत्पादन में 15 प्रतिशत की वृद्धि करने का है अर्थात् आज जहाँ औसत पैदावार 1. मन फी एकड़ है वहाँ 11 1/2 मन प्रति एकड़ उत्पादन होना चाहिए।

प्रति–एकड़ उत्पादन में वृद्धि करना आज की नितान्त आवश्यकता है। जब तक हमारा ध्येय अधिक से अधिक भूमि को कृषि के अन्तर्गत लाने के साथ ही प्रति–एकड़ उत्पादन में वृद्धि करने अर्थात् भूमि की उर्वरा–शक्ति बढ़ाने का नहीं होगा, हमें अधिक सफलता की आशा न करना चाहिए। प्रस्तुत लेख में हम पाठकों का ध्यान केवल इसी विषय पर केन्द्रित करना चाहते हैं। निम्न पंक्तियों में यह बताने का प्रयत्न किया गया है कि हमारे देश की उपजाऊ शक्ति में कैसा चिन्तनीय ह्रास हुआ है और इस ह्रास को रोकने के लिए तथा उर्वराशक्ति को बढ़ाने के लिए हमारे और हमारी सरकार के क्या कर्तव्य हैं। विषय की गहनता में प्रवेश न करते हुए प्रस्तुत लेख का ध्येय केवल मोटी–मोटी आवश्यक बातों का ही ज्ञान कराना है। अस्तु!

आज हमारे देश के किसान खेती किसानी छोड़कर भाग रहे हैं। जब उनसे कारण पूछा जाता है, तब उनका उत्तर यही होता है कि अब खेती से उनका भरण–पोषण नहीं हो सकता। उनके बाप–दादों के जमाने में जहाँ 2. मन अन्न उपजता था, वहाँ अब 8 मन भी मुश्किल से नहीं मिलता। ऐसी हालत में खेती न छोड़ें तो क्या करें। उनका कथन नितान्त सत्य है। फसलों की पैदावार आज बहुत गिर गयी है। उत्पादन की दृष्टि से अन्य देशों की तुलना में हमारा क्या स्थान है यह निम्नाँकित आँकड़ों से देखिए –

कोष्टक 1

देश	मुख्य खाद्यान्नों का औसत उत्पादन प्रति एकड़, मनों में
डेनमार्क	36
बेल्जियम	32
जर्मनी	33
फ्रांस	20
इंग्लैंड	15
भारत	8

कोष्टक 2

देश	औसत उत्पादन प्रति एकड़, (मनों में)	
	गेहूँ	चावल
चीन	14	35
जापान	19	33
अमेरिका	14	25
भारत	9	12

खाद्यान्नों के अतिरिक्त दूसरी फसलों की यही दशा है –

कोष्टक 3

देश	साफ किए हुए कपास की औसत पैदावार प्रति एकड़
मिश्र	53. पौण्ड
सूडान	28. पौण्ड
अमेरिका	265 पौण्ड
ब्राजील	165 पौण्ड
रूस	345 पौण्ड
भारत	8. पौण्ड

उपरोक्त कोष्टकों से स्पष्ट है कि हमारे देश में प्रति–एकड़ उत्पादन, अन्य देशों के प्रति एकड़ उत्पादन से बहुत ही गिरी दशा में है। हम इस दशा को एकाएक प्राप्त हो गये हों सो बात नहीं, यह परिवर्तन धीरे–धीरे हुआ है। 1921–22 में मुख्य मुख्य अनाजों की प्रति एकड़ पैदावार 9 मन थी। 1941–42 में–केवल 2. वर्ष बाद प्रति एकड़ पैदावार 8 मन पर पहुँच गई। 17 वीं सदीं में गेहूँ और चावल की औसत पैदावार क्रमशः 15 मन और 18 मन थी। यही आँकड़े हमारे जमाने में गिरकर 9 मन और 12 मन पर पहुँच गए हैं। इससे यह निर्विवाद है कि भूमि की उपजाऊ शक्ति में जो ह्रास हुआ है, उसकी ओर हमने किंचित भी ध्यान नहीं दिया और न उसे रोकने का कोई प्रयत्न ही किया।

आगे बढ़ने के पहिले हम एक बात और स्पष्ट कर देना चाहते हैं। कुछ विद्वानों का कथन है कि इस देश की भूमि की उर्वरा–शक्ति इस समय संतुलित अवस्था में है और आगे इसके कम होने की कोई संभावना नहीं है। इसकी पुष्टि करते हुए वे कहते हैं कि यदि भूमि को कोई खाद आदि न दिया जावे, तो भूमि पौधों का भोजन प्राकृतिक साधनों से उपलब्ध करती है। इस परिस्थिति में प्रति एकड़ पैदावार बहुत कुछ स्थिर हो जाती है (केवल मौसमी परिवर्तनों से उसमें कुछ घटा–बढ़ी देखने को मिलती है) और प्रति एकड़ पैदावार में आगे कमी होने की कोई संभावना नहीं रहती, बशर्ते कि एक सी ही कृषि–प्रणाली का उपयोग होता रहे। विशेषज्ञों का उक्त मत भिन्न–भिन्न प्रान्तों में किए गए कुछ प्रयोगों पर निर्धारित है। परिणाम–स्वरूप कुछ मुख्य खाद्यान्नों के 1913–14 से 1926–27 तक जो प्रति एकड़ उत्पादन के आँकड़े प्राप्त हुए हैं; वे इस तरह हैं–

वर्ष	औसत उत्पादन प्रति एकड़		
	चावल (साफ किया हुआ) पौंड	गेहूँ पौंड	कपास पौंड
1913–14	85.	66.	82
1914–15	800	700	85
1915–16	925	640	84
1916–17	975	700	82
1917–18	1000	600	64
1918–19	700	710	75
1919–20	900	750	98
1920–21	750	575	68

1921–22	850	790	96
1922–23	850	725	92
1923–24	725	700	88
1924–25	850	625	92
1925–26	825	630	88
1926–27	850	640	80

इस कालावधि में उत्पादन बहुत कुछ स्थिर सा है। जो घटी बढ़ी है वह केवल मौसमी परिवर्तनों (seasonal changes) के कारण है। अंतिम वर्षों का प्रति एकड़ उत्पादन प्रारम्भिक वर्षों जैसा ही है। इस प्रकार विशेषज्ञों के मत की पुष्टि हो जाती है। यहाँ हम केवल इतना कह देना चाहते हैं कि यद्यपि उक्त आँकड़ों से भूमि की उर्वरा–शक्ति की स्थिरता और साथ ही उसकी संतुलित–अवस्था में पहुँचने का प्रमाण मिलता हैं, पर इससे यह अन्दाज लगा लेना कि उर्वरा–शक्ति में अब आगे कोई ह्रास नहीं होगा–भ्राँतिपूर्ण है। कृषि–विषयक प्रयोग जिन विशिष्ट परिस्थितियों के अन्तर्गत किये जाते हैं,उनका एकत्रीकरण व्यवहारिक–रूप में सभी जगह और सभी कालों में संभव नहीं। इसीलिए किसी स्थान विशेष पर पाए गए किसी प्रयोगात्मक तथ्य की सत्यता प्रायः उसी स्थान तक सीमित रहती है, सो भी उसी समय तक जब तक कि कुछ विशिष्ट परिस्थितियां जिनके अन्तर्गत प्रयोग हुआ है, बनी रहती हैं। और जहाँ तक कृषि का सम्बन्ध है, परिस्थितियों पर मनुष्य का कोई बस नहीं। भूमि की उर्वरा–शक्ति एक गहन–विषय है, जिस पर पूरा–पूरा प्रकाश अभी तक नहीं डाला जा सका। उर्वरा–शक्ति प्रकृति पर भी निर्भर रहती है। भूमि की स्थिति, उसके कणों की बनावट, उसमें कुछ विशिष्ट खनिजों एवं क्षारों की विशिष्ट मात्रा में उपस्थिति, भूमि में विशेष–कीटाणुओं की एक खास संख्या में उपस्थिति, वायुमंडल की नत्रजन आदि–आदि ऐसे तत्व (Factors) हैं, जो उर्वरा–शक्ति का संचालन करते हैं। यदि मनुष्य अपनी ओर से भूमि की कोई फिकर न करे और उर्वरा–शक्ति की व्यवस्था में प्रकृति को कोई सहायता न दे, तो उर्वरा–शक्ति सर्वथा प्राकृतिक–तत्वों पर निर्भर होकर कुछ समय में स्थिर और संतुलित–अवस्था को प्राप्त हो जायगी। पर क्या यह अवस्था–स्थायी रहेगी? नहीं। प्रकृति में भी परिवर्तन होते रहते हैं। प्राकृतिक परिस्थितियों का सदा एक सा रहना सम्भव नहीं। आज से हजार वर्ष पहिले जो तत्व (Elements) जिस मात्रा में भूमि में मिलते थे, उनमें भारी कमी आ गई है। और हजार वर्ष के बाद वे उस परिमाण में भी नहीं मिलेंगे जिस परिमाण में वे आज पाए जाते हैं। यद्यपि प्रकृति भूमि में आवश्यक तत्वों की पूर्ति में संलग्न है, पर जिस गति से हम भूमि से फसलों के द्वारा उन्हें निकालते जाते हैं, उनकी तुलना में प्रकृति का पूर्ति–कार्य बहुत मन्द पड़ जाता है। जन–संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। भूमि को विराम देने की हम आज कल्पना भी नहीं कर सकते। इन सब बातों पर गौर करते हुए यह मान लेना कि पैदावार में कोई कमी होने की सम्भावना नहीं और फलस्वरूप इस विषय में उदासीनता ग्रहण कर लेना ठीक न होगा। कुछ अवधि तक पैदावार अवश्य स्थिर रहेगी पर इसके बाद ही उसमें घटी आ जायगी। हमारे इस कथन की पुष्टि उस समय सहज में हो जाती है, जब हम आज से 100 वर्ष पहिले के आँकड़ों की तुलना आज के आंकड़ों से करते हैं।

यह लेखक का अपना स्वतन्त्र–मत है। इस विषय में मत–भेद होना सम्भव है। पर यह तो निर्विवाद है कि हमारे देश की भूमि की उपजाऊ–शक्ति आज काफी गिरी हालत में है और यदि उचित व्यवस्था नहीं की जाती तो भविष्य में भीषण–अनिष्ट की आशंका है। इस दिशा में कोई कदम उठाने के पहिले उन सब कारणों का ज्ञान होना आवश्यक है जिनके द्वारा उर्वरा–शक्ति क्षीण होती

है। इसके पश्चात् उन कारणों को दूर करने का प्रयत्न किया जावे। रोग का विनाश करने के पहिले रोग के कारणों को दूर करना होगा। भूमि को हीन–दशा में लाने की जिम्मेवारी मनुष्य और प्रकृति दोनों पर है। विनाश दो प्रकार के होते हैं। प्रथम तो वह जो प्राकृतिक–शक्तियों के द्वारा होता है और दूसरा वह जिसका मूल–कारण मनुष्य रहता है। दोनों प्रकार के विनाशों में वह विनाश शोचनीय है, जो मनुष्य के हाथों होता है। अतः देश में खाद्यान्नों के उत्पादन में कमी होने के लिए हम ही विशेष–रूप से जिम्मेवार हैं।

पौधे अपना भोजन भूमि से ही लेते हैं। यों तो उनके भोजन में कई तरह के तत्व रहते हैं, पर उनमें 3 मुख्य हैं–नाइट्रोजन या नत्रजन, फासफरस और पुटेशियम। पौधे इन तत्वों को उसी समय ग्रहण करते है, जब ये तत्व भूमि में विशिष्ट घुलन–शील क्षारों के रूप में रहते हैं। भूमि में नत्रजन की मात्रा 002 प्रतिशत से 003 प्रतिशत (7000 से 10000 पौंड) प्रति एकड़ (1 फुट की गहराई तक) पाई गई है। यह सब नत्रजन पौधों के काम की हो सो बात नहीं। एक भूमि है जिसमें नाइट्रोजन का परिमाण 7000 पौंड प्रति एकड़ है पर इस नाइट्रोजन की केवल 100 पौंड मात्र ही भूमि जल (Soil Water) में घुलनशील है। और इस घुलनशील नाइट्रोजन का केवल कुछ अंश ही पौधों को प्राप्य है। इस प्रकार भूमि में नाइट्रोजन की काफी तादाद होते हुए भी भूमि नाइट्रोजन से हीन कही जा सकती है। यही दशा अन्य तत्वों की भी समझना चाहिए। विस्तार–भय से अधिक न कह इतना ही कह देना पर्याप्त है कि अच्छी फसल लेने के लिए भूमि में आवश्यक तत्वों (नाइट्रोजन, फासफरस और पुटाश) का विशिष्ट क्षारों के रूप में और विशिष्ट मात्रा में होना आवश्यक है, इतना ही नहीं वरन् इन तत्वों की मात्रा के बीच एक समानुपात भी रहना चाहिए। यदि सावधानी से फसलें न ली जावें और उचित कृषि–प्रणाली का उपयोग न किया जावे तो स्पष्ट है कि इन तत्वों की मात्रा और इनके पारस्परिक समानुपात में भारी गड़बड़ी मच जायगी। फसलें लेने के बाद यदि उक्त तत्वों की पूर्ति का प्रबन्ध न हो तो उसके बाद जो फसल ली जायगी, उसकी पैदावार में भी अन्तर आ जायगा। साथ ही भूमि भी उक्त तत्वों से हीन होती जायगी। हमारे देश में ऐसा ही हुआ है। बिना किसी क्रम के हम फसलें बराबर लेते गए हैं पर इस बात की तनिक भी चिंता नहीं की कि भूमि में फसलों के लिए आवश्यक भोजन प्रचुर–मात्रा में है या नहीं? अन्न के अभाव में जिस प्रकार मनुष्य कमजोर और बीमारियों का शिकार हो जाता है, उसी प्रकार हमारे देश की फसलें पर्याप्त–भोजन न मिल सकने के कारण हीन और क्षीण हो रही हैं और उनमें गेरुआ जैसे रोगों का सामना करने की किंचित भी शक्ति नहीं रह गई है। भूमि की जाँच पड़ताल करने से विदित हुआ है कि हमारे देश में सर्वत्र ही (पौधों के) खाद्य–पदार्थ–विशेषतः नाइट्रोजन की कमी है। फासफरस और पुटाश की कमी सभी जगह नहीं है मनुष्योचित सहायता से परे यद्यपि प्रकृति इस कमी को पूरा करने का प्रयत्न कर रही है, पर जिस गति से और जिस क्रम से हम फसलें ले रहे हैं उस दशा में जितना खाद्य–पदार्थ फसलें ले लेती हैं, उतना फिर भूमि को नहीं मिल पाता। अंग्रेजी में एक कहावत है–Return to the soil what you take from अर्थात् भूमि से तुम जो कुछ भी लो उसे फिर भूमि को दोः अन्यथा जितना भी तुम्हें पहिली–बार मिला है दूसरी बार नहीं मिल सकता। यह एक उदाहरण से और भी स्पष्ट हो जायगा। मान लीजिये, आपका कुछ कोष में संचित है। यदि आप बैंक से सदैव रुपया निकालते हैं तो एक समय आयेगा जब आपका कोष समाप्त हो जायगा। आपका चेक बिना भुने ही वापस कर दिया जायगा। यदि आप रुपया निकालने के साथ ही साथ कुछ रुपया समय समय पर जमा भी करते जावें, तो उक्त परिस्थिति कभी न आने पावेगी। भूमि कुछ नहीं एक बैंक के ही समान है।

अब प्रश्न यह है कि भूमि में खाद्य–पदार्थों की पूर्ति कैसे की जावे। यह कार्य विविध खादों से भली प्रकार हो रहा है। खाद की कई कोटियाँ हैं, जिनमें दो मुख्य हैं। कार्बनिक (Organic) और रासायनिक (In organic)। कार्बनिक खादों की सबसे बड़ी खूबी यह है कि ये एक ही समय एक से अधिक आवश्यक तत्वों की पूर्ति करती हैं, साथ ही साथ भूमि–सुधार में भी काफी मदद करती हैं। समुचित प्रयास ये ऊसर–भूमि भी उर्वरा बनाई जा सकती है–इतने से ही इनकी महत्ता समझी जा सकती है। सेन्द्रिय★ के प्रयोग से भूमि से एक विशिष्ट पदार्थ "गलित की" (Humus) की सृष्टि होती है। इसी पदार्थ पर पौधों का जीवन निर्भर–रहता है और इसकी थोड़ी भी कमी से पौधों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। ह्यूमस भूमि के कीटाणुओं को भी जीवन प्रदान करता है। यदि किसी भूमि में ये कीटाणु नहीं है तो उसे ऊसर समझना चाहिए। रासायनिक खादों के विपरीत सेन्द्रिय आँख मूंद कर कितनी ही मात्र में और कैसी ही जमीन में दी जा सकती है। गोबर गोमूत्र, आदि का खाद (Farm yard Manure), कूड़े–कचड़े का संयुक्त–खाद (Compost Manure), खली का खाद, सोन–खाद (Night Soil) आदि प्रमुख सेन्द्रिय खादें हैं। दुख का विषय है कि हमारे किसान भाई इनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। एक तो ये खाद वैसे ही कम–मात्रा में (क्योंकि इनके परिमाण को बढ़ाने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता) उपलब्ध हैं और उस पर भी जो कुछ मात्रा उपलब्ध हो सकती है, उसका सदुपयोग नहीं होता। बहुत सा गोबर कंडों के रूप में जला दिया जाता है, हमारे किसान भाई नहीं जानते कि इस तरह वे किस प्रकार पौधों के खाद्य–पदार्थ को स्वाहा कर रहे हैं। हमारे यहाँ लगभग 23 करोड़ पशु हैं, तथा कुल भूमि जिसमें खेती होती है 36 करोड़ 2. लाख एकड़ है। एक पशु से एक वर्ष में–गावों में व्यवहृत रीति द्वारा 1 टन से अधिक गोबर आदि का खाद नहीं मिल सकता। इस तरह कुल 23 करोड़ टन के लगभग गोबर का खाद हुआ। इससे प्रायः 23×12=306 करोड़ पौंड नाइट्रोजन प्राप्त हुई (1 टन गोबर के खाद में 12 पौंड नाइट्रोजन पाई जाती है)। यदि इस नाइट्रोजन को कृषि के अन्तर्गत भूमि में फैलाया जावे, तो 1 एकड़ भूमि को लगभग 8 पौंड नाइट्रोजन मिल पाती है, जब कि गेहूँ, धान, ज्वार आदि के लिए 15–20 पौंड नाइट्रोजन की जरूरत पड़ती है। इस भारी कमी को दूर करने के लिए जहाँ हमें अधिक से अधिक गोबर का खाद प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए वहाँ साथ ही संयुक्त खाद, सोन–खाद, खली आदि की खाद का भी प्रयोग उचित है। संयुक्त–खाद (Compost) और सोन–खाद (Nightsoil) का नाम सुनते ही कृषक बन्धु नाक सिकोड़ने लगते हैं। पर इन्हीं खादों का प्रयोग कर अन्य देश वाले धन–धान्य से परिपूर्ण हो रहे रहे हैं। संयुक्त–खाद या कम्पोस्ट शहर तथा गाँव के कूड़े–कचड़े से, पेड़ों के पत्तों, पौधों के रटैलों से बनाया जाता है। खाद की दृष्टि से इसका वही स्थान है जो गोबर की खाद का। सोन खाद भी कम मूल्यवान नहीं है। इसमें दुर्गन्ध अवश्य रहती है, पर आजकल वैज्ञानिक–रीति से इस खाद से एक विशिष्ट खाद–पौडरेट (poudrette) तैयार की जाती है, जिसमें दुर्गन्ध नाम को भी नहीं रहती। इन खादों के प्रति कृषकों में जो घृणा है, उसे दूर करने के लिए सरकार को पूरा–पूरा प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए कृषकों में सर्वप्रथम समुचित ज्ञान का प्रचार करना पड़ेगा।

हमारे देश में करोड़ों टन की संख्या में सेन्द्रिय खादों का विनाश हो रहा है। जब तक इस विषय में कड़ाई से काम नहीं लिया जाता, तब तक कोई लाभ की सम्भावना नहीं। संयुक्त–खाद की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट हो चला है। 1946–47 में 578 शहरों में 4,09,360 टन संयुक्त खाद तैयार की गई और 2,89,170 टन वितरित हुई। उसी वर्ष भारत के साढ़े छः लाख गाँवों में से 7,569 गाँवों ने 10,00,000 टन संयुक्त खाद तैयार की और 8,29,000 टन वितरित की। सरकार ने इस कार्य को अभी 4–5 साल से ही अपने हाथ में लिया है। इस थोड़े से

ही काल में इसने जो उन्नति की है उससे इसका भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है। कृषकों के बीच इस खाद के गुणों का अधिक से अधिक प्रचार किया जाना चाहिए। गोबर से कंडा तैयार करना नाजायज करार दिया जावे। मध्यप्रांत की सरकार शीघ्र ही इस दिशा में एक प्रतिबन्ध लगाने पर विचार कर रही है।

गोबर का खाद, संयुक्त खाद तथा पौडरेट में भिन्न–भिन्न तत्व निम्न–मात्र में पाए जाते हैं–

	संयुक्त–खाद प्रतिशत	गोबर का खाद प्रतिशत	पौडरेट प्रतिशत
कंकड़	15.25	11.5	23.9
आर्द्रता,नमी	19.45	6.32	3.42
ऐन्द्रिक पदार्थ	29.09	18.18	13.75
नाइट्रोजन	1.45	0.88	0.68
पुटाश	1.15	0.74	000
फासफरस	0.75	0.53	000

इसके अतिरिक्त खली का खाद, हरी खाद (Green Manure) आदि और भी खादें हैं, जिनका प्रयोग करना चाहिए। स्थानाभाव से यहाँ प्रत्येक खाद का विवरण देना कठिन है। यह ऊपर कहा जा चुका है कि हमारे देश की भूमि में सर्वत्र नाइट्रोजन की कमी पाई गई है। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि यह कमी रासायनिक नाइट्रोजन (Inorganic Nitrogen) की नहीं वरन् सेन्द्रिय नाइट्रोजन (Organic Nitrogen) की है और यह कमी तभी पूरी हो सकती है जब सेन्द्रिय खादों का अधिक से अधिक प्रयोग किया जावे। हम यह भी कह चुके हैं कि सेन्द्रिय खादें कितनी ही मात्रा में डाली जा सकती हैं। भिन्न–भिन्न फसलों को भिन्न–भिन्न मात्रा में नाइट्रोजन की जरूरत पड़ती है, अतएव फसलों के लिए आवश्यक नाइट्रोजन के हिसाब से सेन्द्रिय खादों के परिमाण का लेखा लगा कर उस मात्रा में उनका उपयोग करना चाहिए। इससे सेन्द्रिय खादों का अनावश्यक खर्च बच जावेगा। नाइट्रोजन के साथ ही साथ अधिकांश सेद्रिय खादें फासफरस और पुटाश की भी पूर्ति कर देती हैं।

रासायनिक खाद एक साथ एक ही समय एक से अधिक तत्वों की पूर्ति नहीं कर सकती। हां कुछ रासायनिक खाद तत्वों की पूर्ति भी करती है। पर इससे अधिक नहीं। रासायनिक खादों का विशिष्ट रूप में होना आवश्यक है, जिससे कि पौधे उनका उपयोग सहज ही में कर सकें। अमोनियम सलफेट (21.2 प्रतिशत नाइट्रोजन), सोडियम नाइट्रेट (15 1/2 प्रतिशत नाइट्रोजन), केलसियम सायनेमाइड (19 1/2 प्रतिशत नाइट्रोजन) नाइट्रोजन की प्रसिद्ध खादें हैं। इनमें अमोनियम सलफेट अधिक व्यवहृत है। सुपरफासफेट (13–18 प्रतिशत फास्फोरिक एसिड), डबल सुपर फासफेट (4. प्रतिशत फा. एसिड), बेसिक स्लेग (12–15 प्रतिशत फा. एसिड), हड्डी का बुरादा (2. प्रतिशत फासफोरिक एसिड) फासफरस की मुख्य मुख्य खादें हैं। इसी प्रकार पुटाश की प्रधान खादें पुटैशियम सलफेट (48–51 प्रतिशत पुटैश), पुटैशियम क्लोराइड (5.–55 प्रतिशत पुटैश) हैं। पुटैश की खादों का प्रयोग करने की हमारे यहाँ बहुत कम आवश्यकता है। निसीफास, अमोनियम सलफेट आदि संश्लेषण विधि द्वारा तैयार की हुई रासायनिक खादें हैं, जो नाइट्रोजन के साथ–साथ फासफरस की भी पूर्ति करते हैं। इन भिन्न–भिन्न खादों का फसलों पर भिन्न–भिन्न प्रभाव पड़ता है, जिसका वर्णन विस्तार भय से यहाँ नहीं दिया जा रहा। इन खादों के प्रयोग में विशेष सावधानी रखना चाहिए। थोड़ी सी ही असावधानी से भूमि नष्ट हो सकती है, फसल पर भी उलटा पड़ सकता

है। सर्व–प्रथम यह देख लेना चाहिए कि फसल विशेष के लिए नाइट्रोजन, फासफरस आदि की कितनी मात्रा आवश्यक है तथा भूमि इन तत्वों की पूर्ति कहाँ तक कर सकती है। शेष की पूर्ति इन खादों से की जावे, रासायनिक खाद एक प्रकार के टानिक हैं। रोगी को आँख मूँद कर कोई भी टानिक नहीं दिया जा सकता। डाक्टर की सलाह अपेक्षणीय होती है। इसी प्रकार विशिष्ट फसल के लिए विशिष्ट रासायनिक खाद का प्रयोग होता है। निरन्तर टानिक लेने वाला व्यक्ति जिस तरह अपनी खुद की कोई ताकत नहीं रखता, उसी प्रकार रासायनिक खादों का लगातार प्रयोग उर्वरा शक्ति को मंद कर देता है। इसके प्रतिकूल सेन्द्रिय खाद पौष्टिक भोजन–घी–दूध के समान है। पर इसका अर्थ यह नहीं कि रासायनिक खादें बिलकुल ही काम में न लाई जावें। उनका समुचित प्रयोग अतीव लाभदायी सिद्ध हुआ है।

खादों के प्रयोग के साथ ही साथ यह देखना भी उचित है कि फसलों के द्वारा भूमि से आवश्यक तत्वों का अपव्यय तो नहीं हो रहा है। फसलों का क्रम इस तरह निर्धारित करना चाहिए कि भूमि में आवश्यक तत्वों के अनुपात में कोई गड़बड़ी न मचने पावे। ऐसा न हो कि कोई फसल केवल नाइट्रोजन ही लेकर भूमि को नाइट्रोजन से हीन कर दे। और न ऐसा ही होने पाये कि फसलें भूमि को केवल ऊपरी तह से ही आवश्यक तत्व निकालती रहें और निम्न स्तर अछूते पड़े रहें। भूमि से आवश्यक तत्व समान गति में खर्च होना चाहिए। अस्तु, फसलों को एक विशिष्ट चक्र–शस्य चक्र (crop rotation) — में लेना अभीष्ट है। शस्य चक्र बहुत सी बातों पर निर्भर रहता है और शस्य चक्र बनाते समय उनका अनुशीलन करना आवश्यक है। शस्य चक्र से भूमि की उर्वरा शक्ति की संरक्षा में बहुत सहायता मिलती है। कुछ छीमीदार (Leguminous) फसलें ऐसी होती हैं (चना, सन आदि) जिनकी जड़ें विशेष क्रिया द्वारा वायुमण्डल से नाइट्रोजन खींच लेती है। फसल काट लेने के बाद ये जड़ें भूमि में ही मिल जाती हैं और उनके द्वारा ली हुई नाइट्रोजन भूमि को मिल जाती है। ऐसी फसलों को शस्य चक्र में शामिल कर रासायनिक खादों के अधिक व्यय से बचाया जा सकता है। इनके अतिरिक्त और भी कई नियम हैं जिनका पालन उर्वरा शक्ति के संरक्षण हेतु आवश्यक है। समुचित कृषि–प्रणाली का प्रयोग एवम् भूमि को सर्वदा कांस कुंदा आदि से मुक्त रखना, उर्वरा शक्ति के संचालन में काफी हद तक सहायक होते हैं।

अब मनुष्य से परे प्रकृति के राज्य की ओर दृष्टिपात कीजिए। यहाँ प्रकृति बड़ी निष्ठुरता के साथ भीषण गति से भूमि की उर्वरा शक्ति का विनाश कर रही है। हवा, आँधी, तूफान, वर्षा आदि प्रकृति की विनाशकारी शक्तियाँ हैं। हवा, आँधी आदि से उतना नुकसान नहीं होता जितना वर्षा, नदी और नालों से होता है। इस विषय को समझने के पहिले यह जान लेना चाहिए कि भूमि में पौधों का भोजन केवल 8"–1 ." गहराई तक ही संचित रहता है। जब वेग से हवा चलती है तो मिट्टी के कण (जिनमें प्रचुर मात्रा में पौधों का खाद्य–पदार्थ संचित है, उड़ जाते हैं। यदि खेत जोता–बखरा हुआ है तो कणों का उड़ना और भी तेज हो जाता है। इस प्रकार भूमि पौधों के खाद्य–पदार्थ से हीन होती जाती है। पानी की तेज धारें खेत की मिट्टी को तोड़ देती हैं और जब पानी स्तर में होकर बहने लगता है, तो अपने साथ खेत की मिट्टी भी बहा ले जाता है। यदि खेत सम न होकर कुछ ढालू हो तो पानी का बहाव और भी तेज होगा और उसी के अनुपात में खेत की मिट्टी भी बहेगी। इस क्रिया को मिट्टी का बहना या Soil erosion कहते हैं। ऐसा अन्दाज लगाया गया है कि एक एकड़ भूमि से प्रतिवर्ष 60 टन मिट्टी बह जाती है। यदि भूमि ढालू हुई तो यह आँकड़ा 300 टन प्रति एकड़ पर पहुँच जाता है। इस हानि की पूर्ति किसी भी तरह संभव नहीं। स्वयं प्रकृति भी 1" भूमि का निर्माण करने में 300 से 1000 वर्ष तक का समय लेती है और इस अवधि में करोड़ों टन मिट्टी बहाकर नष्ट कर दी जाती है।

हवा और पानी के द्वारा मिट्टी के बहाव की क्रिया एकदम दृष्टि–गोचर नहीं होती। सूक्ष्म निरीक्षण के द्वारा ही इसका भान हो सकता है। वर्षा के बाद खेत में पानी की धारों के रेले बन जाते हैं। उनसे भी इस क्रिया का अन्दाज हो सकता है। इसी प्रकार नदी–नालों का पूर घट जाने के बाद आस–पास की भूमि का अवलोकन करने से भी यह क्रिया दृष्टिगोचर हो सकती है। प्रकृति की इन शक्तियों के द्वारा समस्त देश में प्रतिवर्ष 1800 करोड़ टन मिट्टी विनष्ट हो रही है। यह एक राष्ट्रीय हानि है जिसे रोकना राष्ट्रीय सरकार का परम कर्त्तव्य है। राष्ट्रीय–सरकार और प्रान्तीय सरकारों का ध्यान कई बार इस ओर आकृष्ट किया जा चुका है, पर अभी तक सरकार की ओर से कोई ऐसा प्रयत्न देखने–सुनने में नहीं आया, जिसका यहाँ उल्लेख किया जा सके। इस तरह की हानि दूसरे देशों में भी होती है पर वहाँ की सरकारों ने इस विनाश से अपने राष्ट्र को बनाने का उचित प्रबन्ध किया है। हमें आशा है, निकट भविष्य में इस देश की सरकार भी इस ओर सक्रिय कदम उठाएगी। कोई खास योजना बनाने के पहिले सरकार को लोगों को इस हानि से अवगत कराना होगा। प्रचार के द्वारा का सहयोग सहज ही प्राप्त किया जा सकता है। उक्त योजना की सफलता के लिए कानून भी बनाने पड़ेंगे। योजना को कार्यान्वित करने की सारी जिम्मेदारी सरकार को अपने ऊपर लेनी पड़ेगी। मिट्टी का बहाव (Soil Erosion) कई प्रकार का होता है जिसका विस्तृत वर्णन यहाँ संभव नहीं, यहाँ इस विनाश को रोकने के मुख्य–मुख्य साधनों का ही संक्षिप्त वर्णन किया जायेगा।

सर्वप्रथम, प्रकृति की विनाशकारी शक्तियों को रोकने के लिए हम उपलब्ध प्राकृतिक साधनों का ही प्रयोग कर सकते हैं। मिट्टी के बहाव को रोकने में जंगलों का जो महत्व है वह भुलाया नहीं जा सकता। जंगलों की छत्र–छाया में भूमि को हवा अथवा पानी से कोई हानि नहीं हो सकती। ईंधन तथा आदि प्राप्त करने के उद्देश्य से हमारे देश के बहुत जंगलों की सफाई की जा चुकी है। यह कृषि की दृष्टि से ही बहुत अहितकर हुआ है। सरकार का कर्त्तव्य है कि वह इन जंगलों को आगे बर्बाद होने से बचावे और ऐसे स्थानों पर जहाँ भूमि को दूर तक जंगलों की छत्र–छाया प्राप्त नहीं होती फिर से जंगलों का निर्माण करे।

चारागाह भी मिट्टी को बहने से बचाने में काफी मदद करते हैं, तृणाच्छादित भूमि की मिट्टी तृणों के कारण बहने से बच जाती है। साथ ही वह मिट्टी भी रुक जाती है, जिसे पानी दूर से बहाकर लाता है। हमारे देश में चारागाह भी दुरावस्था में हैं। पशुओं को चराने की यथेष्ट व्यवस्था न होने से तथा चारागाह संबंधी विविध नियमों का अतिक्रमण करने से ही चारागाहों की दुर्गति हुई है। सरकार को इस ओर भी ध्यान देना होगा। चारागाहों की वर्तमान स्थिति में सुधार करने के साथ ही साथ नए–नए चारागाहों का निर्माण भी अपेक्षित है। प्रत्येक गाँव में चारागाह अवश्य होना चाहिए। ये चारागाह ऐसे स्थान पर हों जहाँ से वे उस गाँव की मिट्टी को बहने से बचा सकें।

नदी–नालों में पूर आने से भी आस–पास की भूमि की मिट्टी बह जाती है। ऐसे नदी–नालों में बाँध आदि डालकर उनका उचित प्रबंध किया जावे।

ये सब ऐसे उपाय हैं, जिन्हें सरकार ही कार्य–रूप में बर्त सकती है। किसान भी इस दिशा में स्वयं बहुत कुछ कर सकते हैं। खेत की मिट्टी को बहने से बचाने के हेतु कुछ विशिष्ट कृषि–प्रणालियाँ हैं। उनका ठीक–ठीक प्रयोग करना चाहिए। फसलों को विशिष्ट शस्य–चक्र में निर्धारित कर, भूमि को उचित तरीके से जोत–बखर कर कृषक काफी हद–तक अपनी भूमि की मिट्टी की रक्षा कर सकते हैं। यदि खेत ढालू है तो ढाल के अंत में भूमि पर घास बो देना चाहिए।

भूमि की उर्वरा शक्ति की रक्षा के कार्य में हमें भगीरथ प्रयत्न करना है। इस दिशा में हमने अभी तक एक भी कदम नहीं बढ़ाया। एक ओर हमें प्रकृति की विनाशकारी शक्तियों से लोहा लेना

है, दूसरी ओर मनुष्य की निरंकुश प्रणालियों का विरोध करना है। जनप्रिय सरकार को शीघ्र ही इस कार्य में तत्पर होना चाहिए। उर्वरा शक्ति की रक्षा का प्रश्न आज किसी भी, राजनैतिक प्रश्न से कम महत्व का नहीं है। भूमि से अधिक अन्न लेने के पहिले हमें यह भी तो देखना उचित है कि उसमें अधिक अन्न उत्पादन की शक्ति है भी या नहीं, वह किसी रोग में ग्रस्त तो नहीं है। जब तक भूमि के स्वास्थ्य में यथोचित सुधार नहीं किया जाता — उसे Soil Erosion जैसे क्षय रोग से मुक्त नहीं किया जाता, तब तक हमें अधिक अन्न उत्पादन की कल्पना भी न करना चाहिए। प्रति एकड़ उत्पादन में वृद्धि करना "अधिक अन्न उत्पादन" योजना का केवल अंग–मात्र ही न बना रहे, हम तो यह चाहते हैं कि समग्र "अधिक अन्न उत्पादन" आंदोलन भूमि की उर्वरा शक्ति की रक्षा एवम् उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि संबंधी उद्देश्यों पर निर्धारित किया जावे। बहुत अच्छा हो यदि भूमि की उर्वरा शक्ति की रक्षा विषयक एक विस्तृत नियमावली बनाई जावे तथा उसका पालन राज्य के अन्य नियमों के अनुसार ही कराया जावे। क्या हम आशा करें केन्द्रीय धारा–सभा निकट भविष्य में—अपने किसी अधिवेशन में इस समस्या पर विचार करने का कष्ट करेगी।

हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ*

श्रीमती नीरा

किसी भी अनुभव का ज्ञान हमें तभी होता है जब हमारी नाड़ियाँ उस अनुभव का समाचार हमारे मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं। वाह्य वस्तुओं के अनुभव को प्राप्त करके उसका समाचार मस्तिष्क तक पहुँचाने का कार्य हमारी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होता है। ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच हैं–दृश्येन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, स्वादेन्द्रिय तथा स्पर्शेन्द्रिय।

दृश्येन्द्रिय

हम अपनी आँख की तुलना चित्र खींचने के कैमरे से कर सकते हैं। दोनों की रचना और दोनों के कार्यों में बहुत समानता है।

कैमरा वास्तव में एक छोटी–सी अँधेरी कोठरी के समान होता है। इसमें एक ओर एक छोटा सा गोल छिद्र होता है जिसमें ताल लगा रहता है। ताल के सामने की दूसरी दीवार पर अन्दर की ओर चित्र अंकित होने के लिए एक विशेष मसाला लगी काँच की प्लेट लगी रहती है। जिस वस्तु का चित्र खींचना होता है उसकी स्थिति और दूरी कैमरे के ताल से इस ढंग से रखी जाती है कि उसका प्रकाश ताल से होता हुआ अन्दर की प्लेट पर पड़े। आँख की रचना भी ठीक ऐसी ही है। आँख की बन्द अँधेरी कोठरी कैमरे की भाँति चौकोर न होकर गोल होती है। इसमें भी सामने की ओर एक पारदर्शक ताल लगा रहता है जिसमें से होकर प्रकाश की किरणें अन्दर ठीक सामने की दीवार पर पड़ती हैं। इस स्थान पर मसालेयुक्त प्लेट के स्थान पर एक सांवेदनिक झिल्ली लगी रहती है और इसी पर वस्तुओं का प्रतिबिंब पड़ता है। इस प्रतिबिंब का स्थान यहाँ पर स्थित नाड़ियाँ मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं और हम उस वस्तु विशेष को पहचानते हैं।

हमारी आँखों के लिए चेहरे की हड्डी में एक–एक छिद्र नाक के दोनों और ललाट के नीचे रहते हैं। आँखे इन्हीं छिद्रों के भीतर स्थित रहती हैं। इन्हें इनकी जगह पर दृढ़ता से स्थित रखने के लिए प्रत्येक आँख में छः छोटी माँसपेशियाँ होती हैं–दो ऊपर, दो नीचे और एक–एक आँख के दोनों ओर। ये मांसपेशियाँ लचीली (Flexible) होती हैं। इसी से हम आँखों को इधर–उधर घुमा कर सब ओर की चीजें देख सकते हैं। यदि ये मांसपेशियाँ लचीली न होतीं तो हम आँखों को इधर–उघर घुमा–फिरा न सकते और केवल आमने–सामने की ही चीजें देख पाते।

आँख गोलाकार है किन्तु इसका आगे का कुछ भाग, जिसे हम देखते हैं, कुछ उभरा हुआ रहता है। यह डेला या कारनिया (Cornea) कहलाता है। कारनिया एक मोटी पारदर्शक झिल्ली है।

---

* *विज्ञान,* अक्टूबर–दिसम्बर 1948

कारनिया के ऊपर एक बहुत पतली झिल्ली और होती है जिसको कंजंक्टाइवा (Conjunctiva) कहते हैं।

आँख के गोले की दीवार के तीन पर्त होते हैं – स्कलिराटिक (Sclerotic), कोरायड (Choroid) तथा रेटिना (Retina)। स्कलिराटिक पर्त सबसे ऊपरी पर्त है। कारनिया इसका ही उभरा हुआ अग्र भाग है। स्कलिराटिक पर्त श्वेत वर्ण, कड़ी, ठोस व सौत्रिक तन्तुओं से बनी होती है किन्तु इसका कारनिया वाला भाग पारदर्शक होता है। यह कड़ा पर्त आँख की रक्षा का कार्य करता है। आँख की माँसपेशियाँ भी इसी पर्त से जुड़ी रहती हैं।

स्कलिराटिक के बाद अन्दर को दूसरी पर्त कोरायड (Choroid) है। यह भी सौत्रिक तन्तु से बनती है और इसकी सेलों में काले रंग का द्रव्य भरा होने के कारण यह पूरी पर्त ही काली दीखती है। इस पर्त में रक्त कोशिकाओं का जाल सा बिछा रहता है और इसी से यह पर्त आंख के पोषण का काम करती है। कारनिया के पास पहुँचने पर इस पर्त के दोनों सिरे पतले सूत्र के आधार के बन जाते हैं। यह आइरिस (Iris) कहलाते हैं। दोनों ओर की आइरिस आपस में जुड़ी नहीं रहती है और इन्हीं के बीच एक गोल रिक्त स्थान रहता है जो काला सा दिखलाई देता है। यह छिद्र तारा या पुतली कहलाता है। तारा के अन्दर आइरिस के कुछ पीछे आँख का पारदर्शक ताल रहता है। यह ताल उन्नतोदर (Convex) होता है। आइरिस से यह ताल बंधक तन्तुओं द्वारा बँधा रहता है। ताल कुल आँख को दो भागों में विभक्त करता है–एक ताल के आगे का भाग और दूसरा ताल के पीछे का भाग। आइरिस सिकुड़ और फैल सकती है।

आँख की तीसरी व सबसे भीतरी पर्त रेटिना कहलाती है। यह बहुत ही कोमल होती है और नाड़ी सूत्रों तथा विशेष प्रकार की सेलों से बनती है। इसका कारनिया के पास वाला भाग पतला और सांवेदनिक सेलों रहित होता है। पिछला भाग मोटा तथा सांवेदनिक सेलों से युक्त होता है और ठीक वही काम करता है जो कैमरे में लगी प्लेट करती है। आँख की पुतली के ठीक सीध में रेटिना में एक पीले रंग का धब्बा होता है। यह पीतबिंदु (Yellow spot) कहलाता है। पीतबिंदु रेटिना का सबसे सांवेदनिक स्थान है और इसी से देखे हुई चित्र की छाया इस पर पड़ने से हम उसे अधिक स्पष्ट देख सकते हैं। पीतबिंदु से थोड़ा हटकर (नाक की ओर) एक दूसरा स्थान है जो अंधबिन्दु (Blind spot) कहलाता है। हमारे रेटिना के समस्त नाड़ी सूत्र यहाँ आकर एकत्र होते हैं और एक बड़ी नाड़ी बनाते हैं। यह नाड़ी दृष्टि नाड़ी कहलाती है। अंधबिन्दु से होते हुई दृष्टि नाड़ी वृहत् मस्तिष्क के दृष्टि केन्द्र तक जाती है। जिस समय हम कोई वस्तु देखते हैं और उसकी छाया पीतबिन्दु पर पड़ती है तब यह दृष्टि नाड़ी ही उसकी संवेदना को मस्तिष्क तक पहुँचाती है। मस्तिष्क की सहायता से हम उस वस्तु के रूप–रंग व आकार को देख तथा पहचान पाते हैं।

रेटिना और ताल के बीच का सारा स्थान खोखला होता है और जेलीकोष कहलाता है। इसमें एक स्वच्छ रंग का गाढ़ा पारदर्शक तरल भरा रहता है। यह जेलीरस (Vitreous humour) कहलाता है। कारनिया और ताल के बीच के रिक्त स्थान में पानी के समान एक पतला तरल भरा रहता है। यह जल रस (Aqueous humoun) कहलाता है और इस स्थान को जल कोष (Aqueous chamber) कहते हैं।

आँख की भीतरी बनावट जानने से पता लगता है कि यह कितना कोमल अंग है। इस कोमल अंग की रक्षा के लिए प्रकृति ने स्वयं ही प्रबन्ध कर दिया है। हमारी पलकें आँखों के लिए कपाटों का काम करती हैं। थोड़ा भी तीव्र प्रकाश हो, कोई हमारी आँख की ओर हाथ या अन्य कोई चीज बढ़ाये, हम स्वयं ही किसी उद्देश्य से हाथ आँखों की ओर ले जायँ, या तेज हवा बहती हो, तो पलकें झट से स्वयं बन्द होकर हमारी आँखों की रक्षा करती हैं। पलकों के किनारों पर छोटे–छोटे बाल होते हैं

जो पक्ष्मन् (Eye lashes) कहलाते हैं। पलक सौत्रिक तन्तुओं से बनी हैं। इनकी ऊपरी सतह पर त्वचा की पर्त और अन्दर की ओर श्लैष्मिक झिल्ली की पर्त रहती है। श्लैष्मिक झिल्ली की पर्त में रक्त कोशिकाओं का जाल बिछा रहता है और इसी कारण उसका रंग भी लाल दिखलाई पड़ता है।

ऊपर की पलक में कनपटी की ओर एक अश्रुग्रन्थि होती है। इसमें नमकीन पानी के समान रस निकलता है। इस ग्रन्थि से 12 छोटी–छोटी नलिकायें निकलकर पलक की भीतरी सतह तक पहुँचती हैं। इन्हीं से होकर यह रस जो अश्रु (आँसू) कहलाता है, आँख की पलक की सतह पर आता रहता है। साधारणतः यह केवल इतनी ही मात्र में निकलता है कि कारनिया तथा पलकों को तर रख सके। जिस समय किसी दुःख या पीड़ा से व्यथित होकर हम रोते हैं उस समय भावोद्वेग के कारण इसका प्रवाह बढ़ जाता है और आँसू हमारे नेत्रों से बाहर टपकने लगते हैं। नाक की ओर वाले भाग में जहाँ दोनों पलकें परस्पर मिलती हैं एक छिद्र होता है। इसमें से होकर ही तीव्र प्रवाह के समय कुछ आँसू नाक में भी पहुँच जाते हैं।

आँखों की पलकों के किनारों पर बालों की जड़ों से सटी हुई छोटी–छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं। इनमें से एक चिकना द्रव्य सदा निकलता रहता है। यह पलकों को को चिकना रखती है। किसी ग्रन्थि का प्रवाह जब कारण वश रुक जाता है तो वह जल जाती है। इसी को अंजनपारी कहते हैं।

हम पहले ही बतला चुके हैं कि पुतली से होकर जब प्रकाश की किरणें जलरस, ताल, व जेलीरस से होती हुई रेटिना के पीतबिन्दु पर पड़ती है तभी हम किसी वस्तु को स्पष्ट देखते हैं। 25 फीट की दूरी तक की चीजें देखने में साधारणतः स्वस्थ नेत्रों को कोई कष्ट या कठिनाई नहीं होती। इससे दूर की या बहुत ही समीप की वस्तुयें देखने के लिए हमारे ताल को परिस्थिति के अनुकूल अपने को बनाना पड़ता है। ताल के समीप लगी हुई पेशियों के सिकुड़ने या फैलने से ही यह काम होता है।

आँखों के कुछ रोग

नेत्रों के कुछ दोष तो जन्मजात होते हैं और कुछ अर्जित। जन्मजात दोष तो साधारणतः ठीक हो सकते, किन्तु अर्जित दोषों का सावधानी से उपकर करने पर वे ठीक हो जाते हैं। कुछ दोष तो शिशुअवस्था से आँखों को उपयुक्त व्यवहार न करने से ही उत्पन्न हो जाते हैं। यदि मातापिता तथा अध्यापक सतर्क रहें तो ऐसे दोषों को उत्पन्न होने से रोक सकते हैं।

वर्ण अन्धता — इस दोष होने पर बालक विभिन्न रंगों में अन्तर नहीं जान सकता। यह दोष जन्मजात होता है और ठीक नहीं हो सकता।

निकट दृष्टि का रोग (Short sightedness) — इस दोष में लोगों को समीप की चीजें तो स्पष्ट दिखलाई पड़ती हैं किन्तु दूर की चीजें ठीक नहीं दिखलाई पड़तीं। यह दोष जन्मजात भी होता है और अर्जित भी। इसमें आँख का गोला कुछ अधिक लम्बा हो जाता है जिससे ताल और पीतबिन्दु के बीच की दूरी स्वस्थ आँख की अपेक्षा अधिक हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि किसी बाहरी वस्तु से प्रकाश की किरणें जब आँख पर पड़ती हैं तो पीतबिन्दु पर केन्द्रित न होकर रेटिना के पहले ही जेलीकोष के बीच केन्द्रित हो जाती हैं। इससे उस वस्तु का चित्र स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़ता वरन् उसकी धुधली छाया दिखलाई पड़ती है। इससे हमारे नेत्रों को बहुत परिश्रम करना पड़ता है और फलस्वरूप हम उस वस्तु को अत्यन्त समीप से देखने की चेष्टा करते हैं। इस प्रकार हमारी आँखों का माँसपेशियों को सदा परिश्रम करते रहना पड़ता है और धीरे–धीरे यह रोग भी अधिक बढ़ता जाता है।

आँखों के इस दोष को उचित उपाय नतोदर (Concave) तालों वाला चश्मा लगाना है। इन नतोदर तालों पर उस वस्तु की किरणों जब पड़ती हैं तो ये उन्हें दूर छितरा हुई किरणों को समेटता है तो ये पहले की अपेक्षा अधिक दूर पर केन्द्रित होती हैं। इस प्रकार पहले जेलीकोष तक ही रह जाने वाली किरणें अब रेटिना के पीतबिन्दु तक पहुँच जाती हैं। इस प्रकार चश्मा लगा लेने से केवल दूर की चीजें ही दिखलाई नहीं पड़ती वरन् यह दोष और अधिक बढ़ भी नहीं पाता।

पुस्तक आँख के बहुत पास रखकर पढ़ने, या इसी प्रकार रख कर अन्य कोई कार्य सीना, बुनना आदि करने से, पर्दे के बहुत समीप बैठकर तथा अधिक परिश्रम लेने से, धीमे प्रकाश में पढ़ने आदि से ही यह दोष आँखों में उत्पन्न होता है। अतः माता पिता और अध्यापक को बच्चों के काम करने के ढंग को भी देखना चाहिए जिससे उन्हें इस कष्ट से बचाया जा सके। पुस्तक को पास रख कर पढ़ने की चेष्टा, सिर दर्द ध्यान न लगना आँखों से पानी गिरना, दूर की चीजें अस्पष्ट दीखने का उलाहना करना, पुतली का बड़ा दीखना आदि इस रोग के स्पष्ट लक्षण हैं। इन लक्षणों के देखते ही खूब ध्यान से उनका उपचार कराना चाहिए, नहीं तो यह दोष बढ़कर नेत्रों को बिल्कुल अंधा हो कर देता है।

दूरदृष्टि का रोग (Long sightedness) — इस दोष के होने पर दूर की चीजें तो दिखलाई पड़ता है किन्तु समीप वाली स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़तीं। इस दोष में आँख का गोला कुछ कम लम्बा हो जाता है अर्थात् उसके ताल और पीतबिन्दु के बीच की दूरी स्वस्थ आँख की अपेक्षा कम होती है। इसका परिणाम यह होता है कि बाहरी वस्तु के प्रकाश की किरणें रेटिना पर न पड़कर उसके पीछे पड़ती हैं और वह हमें अस्पष्ट दिखलाई पड़ती है। अति समीप की चीजें देख सकना ऐसे लोगों के लिए अत्यन्त कठिन होता है। अतः इस दोष के होने पर आँखों का अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

छोटी आँखें व छोटी पुतली किताब दूर से पढ़ने की चेष्टा आदि इसके लक्षण हैं।

उन्नतोदर तालों चश्मा लगाने से इस रोग को बढ़ने से रोका जा सकता है तथा सब चीजें भी स्पष्ट देखी जा सकती हैं। चश्में के उन्नतोदर ताल प्रकाश की किरणों को समेटते हैं। कुछ सिमटी हुई ये किरणें जब आँख के ताल पर पड़ती हैं। इस प्रकार वस्तुयें स्पष्ट दीखती हैं और हमारे नेत्रों को कोई विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता।

असमान दृष्टि का रोग — इस दोष में चीजें धुँधली और असमान दिखलाई पड़ती हैं। आँखों की बनावट में अन्तर हाने से यह दोष उत्पन्न होता है। पूर्ण आँख की अथवा विशेष रूप से कारनिया की सहि इस दोष में असमान हो जाती है। इसके परिणाम स्वरूप प्रकाश की किरणें एक ही स्थान पर केन्द्रित नहीं हो पाती। इसका उपचार भी उपयुक्त चश्मा लगाने से ही हो सकता है। चश्मे के ताल की सतह भी असमान होनी चाहिये जिससे उसकी तथा करनिया की असमान सतहें मिलकर एक समान सतह बन सके। ऐसा होने पर हमें चीलें स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगेंगी।

आँखों का तिरछा होना (टिपरापन Squint) — यह दोष दो कारणों से उत्पन्न होता है। यदि बालक की दोनों आँखों की दृष्टि में अन्तर होता है तो उसे प्रत्येक वस्तु देखने के लिए आँखों को इधर–उधर घुमा कर और बड़े परिश्रम से देखना पड़ता है। लगातार परिश्रम के कारण आँख की कोई पेशी खिंच जाती है तो कोई सिकुछ जाती है। दूसरे यदि आँख की पेशियों में ही कोई दोष हो जाय तो उनके कारण आँख को इच्छानुसार घुमा फिरा सकना सम्भव नहीं होता और बालक टेढ़ी आँखों से ही देखने लगता है। यह दोष तीन साल की आयु में उत्पन्न होता अधिक पाया गया है। छोटे बच्चों की आँखों पर यदि लगातार बाल लटकते रहें तो भी वह इधर–उधर तिरछी निगाह से ही देखने लगता है ऐसी परिस्थिति में भी यह दोष उत्पन्न हो जाता है। कभी–कभी आँख के कुछ अन्दर की ओर झुके रहने से भी यह दोष उत्पन्न हो जाता है। आपरेशन द्वारा प्रायः यह दोष ठीक

हो जाता है। आपरेशन से सिकुडी हुई पेशी को बढ़ाया तथा खिंची हुई पेशी को काट कर छोटा किया जाता है। आरंभ में बहुत थोड़ा सा दोषान्तर होने पर उपयुक्त चश्मे द्वारा भी लाभ हो सकता है।
आँख दुखना या आँख उठना (Sore eyes) — यह छूत से लगने वाला रोग है और गन्दगी के कारण फैलता है। गंदे कपड़े से मुँह पोछने आदि से आँखों में गन्दगी पहुँचती हे। पलकें सूज जाती हैं और आँख से सफेद रंग का एक गाढ़ा पदार्थ जिसे कीचड़ कहते हैं, निकलने लगता है। रोग बढ़ने पर कारनिया भी लाल पड़ जाता है। पल्कें सूजकर ऐसी मोटी व भारी हो जाती हैं कि उनका खुलना कठिन हो जाता है। साधारणतः सोडा बाइकारबोनेट (Sodium bi-carbo) मलहम लगाने से यह दो चार दिन में ठीक हो जाता हे। किन्तु यदि लापरवाही से रोग बढ़ जाता है तो फिर विशेष डाक्टरी उपचार की आवश्यकता पड़ती है और ठीक होने में समय भी बहुत लगता है। आँख उठने का आभास पाते ही तत्परता से उसका उपचार करना चाहिये नहीं तो यह रोग बढ़ कर आँखों को खराब कर देता है। इससे कभी कभी दृष्टि तक समाप्त होते देखी गई है।

आँखों के दोषों से बचने के लिये यह आवश्यक है कि आँखों से उचित ढंग से काम लिया जाय। गलत विधि से या कम प्रकाश में बैठ कर पढ़ना, छोटे–छोटे अक्षर लिखने या पढ़ने की चेष्टा करना, बहुत अधिक बुनाई–सिलाई का काम करना आदि आँखों के लिये बहुत ही हानिकर है। अतः माता पिता व अध्यापक का कर्तव्य है कि वे आरम्भ से ही इस बात का ध्यान रखें कि बालक बालिकायें इस प्रकार की हानिकर आदतें न सीखने पायें।

श्रवणेन्द्रिय

जीवन में आँखों के बाद कानों का ही महत्व है। हम देखकर ही सब चीजों का ज्ञान प्राप्त करते हैं किन्तु कुछ चीजें ऐसी हैं जिनका शब्द बिना सुने हम उनका पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते। बालक अनुकरण द्वारा ही बोलना सीखते हैं। बोलने वाले के मुख की गति को देखकर वे उसका अनुकरण करते हैं पर साथ ही अपने कानों से सुने शब्द का भी अनुकरण करते हैं। यदि कानों में किसी प्रकार का दोष हो तो बालक दूसरों के शब्दों को नहीं सुन सकता। ऐसी अवस्था में वह दूसरों के मुख की गति का अनुकरण चाहे कर ले, पर शब्दों का उच्चारण नहीं कर सकेगा। यही कारण है कि अधि ाकतर बहरे लोग गूँगे भी होते हैं। कुछ लोगों के कान एकदम बहरे तो नहीं होते पर उन्हें स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ता या बहुत जोर की आवाज़ ही सुनाई पड़ती हे।

हमारा कान तीन मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है—बाह्य कान, मध्य कान, मध य कान, अंतस्थ या भीतरी कान।
बाह्य कान — यह कान का वह भाग है जिसे हम ऊपर से देख सकते हैं। यह कार्टिलेज से बना होता है। किन्तु इसके नीचे के भाग में, जो कुछ मोटा और मुलायम होता है, कार्टिलेज नहीं होता। वह सौत्रिक तन्तुओं से बना होता है। ऊपर से हम कान का जो छिद्र देखते हैं वह कर्णनली का बाहरी मुख है। गर्णनली 1 से 1–1/4 इंच की एक छोटी सी नली है जो खोपड़ी की हड्डियों के बीच स्थित है। इसके चारों और की त्वचा में छोटी–छोटी ग्रंथियां होती हैं जिनमें से मोंम की भाँति का सा पदार्थ निकलता रहता है। यह कान की रक्षा का प्राकृतिक उपाया है। कोई कीड़ा पतिंगा यदि कान की इस नली में घुस जाता है तो इसी मोम में चिपक कर रह जाता है, अन्दर घुस कर कान के कोमल भीतरी भागों को क्षति पहुँचा पाता। इसके अतिरिक्त यह मोम की नली की त्वचा को चिकनी और गीली भी रखता है समय–समय पर बड़ी सावधानी से इसे निकालते रहना चाहिए, अन्यथा बहुत अधिक मात्रा में एकत्र होकर हमारे सुनने में यह बाधा डालती है।

मध्यकाल — बाह्यकान की समाप्ति पर खोपड़ी की हड्डियों के बीच में ही मध्यकाल स्थित है। बाह्य व मध्य काल हो अलग करने वाला इसके बीच में एक पर्दा (Ear drum) रहता है। यह पर्दा कोमल झिल्ली का बना होता है और इसमें ऐसा कोई छिद्र या मार्ग नहीं होता जिससे बाह्य व मध्य कान में कोई सबंध स्थापित हो सके। पर्दे के पीछे की ओर तीन छोटी–छोटी हड्डियाँ होती हैं। सबसे पहली हड्डी मुग्दर (Hammer) कहलाती है। इसका आकार हथौड़े के सदृश होता है। दूसरी हड्डी नेहाई (Anvil) कहलाती है और इसका एक भाग मोटा तथा दूसरा पतला होता है। तीसरी हड्डी रकाब के आकार की होने से रकाब (Stirup) ही कहलाती है। ये तीनों हड्डियाँ बंधक तन्तुओं द्वारा कम से परस्पर एक दूसरे से जुड़ी रहती है। मध्यकर्ण के नीचे की ओर से कंठ तक भी एक नली जाती है। यक कंठकर्णी नली (Eustachion Tube) कहलाती है। मध्यकान के दूसरे सिरे पर भी एक पतली झिल्ली रहती है जो भीतरी पर्दा (Inner Drum) कहलाती है।

अंतस्थ कर्ण — मध्य कर्ण के बाद अंत कर्ण स्थित है। इसके भी तीन भाग होते हैं— (1) तीन अर्द्धचन्द्राकार नलियाँ (Semicircular canals), (2) जौ के आकार की एक नन्हीं सी बन्द कोठरी जो कर्णकुटी (Vestibule) कहलाती है, तथा (3) कोकला (Cochlea)।

मध्यकान की भीतरी झिल्ली से कुद हट कर कर्णकुटी स्थित हैं मध्यकर्ण की ओर के कर्णकुटी के भाग से तीन नलियाँ निकलती हैं जो थोड़ा सा घुमाव देकर फिर उसमें ही मिल जाती है। इस प्रकार ये अर्द्धचन्द्र का सा आकार बनाती हैं और इसीसे इनका नाम अर्द्धचन्द्राकार नलियाँ पड़ा है। इन नलियों में उन नाड़ियों के सिरे मिलते हैं जो लघुमस्तिष्क से आती हैं। इनका संबंध शरीर के समतुलन से है।

कर्णकुटी के पिछले सिरे के छिद्र से एक और नली निकलती है जो सीधे घोंघे की भाँति खूब मुड़ी हुई रहती है। यही कोकला (Cochlea) है। इसमें श्रवण नाड़ी के सिरे रहते हैं। यही नाड़ी हमारे सुने हुए शब्दों को बृहत् मस्तिष्क में श्रवण केन्द्र तक पहुँचाता है।

कर्णकुटी, अर्द्धचन्द्राकार नलियों तथा कोकला में एक तरल पदार्थ भरा रहता है।

सुनने की क्रिया — जब हम बोलते है तो हमारे शब्दों से पास की वायु में लहरें (Vibrations) उत्पन्न होती हैं। वायु में शब्दों से उत्पन्न हुई लहरें जब कान के बाहरी भाग से टकराती हैं तब वह इन्हें एकत्रित रूप से कर्णनली में भेज देता है। कर्णनली में प्रवेश करने पर ये स्वर लहरें कान के पद्रे से टकराती हैं जिससे मध्यकर्ण की हड्डियों में भी ठीक वैसी ही लहरें उत्पन्न हो जाती हैं ये लहरें आगे बढ़ कर अंतत्थ कर्ण के तरल द्रव्य में भी लहरें उत्पन्न कर देती हैं। इस तरल द्रव्य की लहरों की समाचार वहाँ पर स्थित श्रवण नाड़ी मस्तिष्क के श्रवण केन्द्र तक पहुँचाती है और तब मस्तिष्क की सहायता से हम सुने हुए शब्दों को पहचान पाते हैं।

कान के रोग

कान में आँख की भाँति अधिक दोष नहीं पाये जाते। जब कान की बनावट में ही कोई अन्तर या कमी होती है तभी स्वर लहरों को मस्तिष्क तक पहुँचने में कठिनाई होती है और फलस्वरूप हमारे सुनने में बाधा पड़ती है। कान का पर्दा यदि फट जाय तो हम बिल्कुल नहीं सुन सकते। कान में तिनके आदि डालने, कनपटी पर या सिर पर जोर से मारने या चोट लगने से इसके फटने की संभावना रहती है। कुक्कुर खाँसी (Whooping cough), निमोनिया (nrimpnos), सरसाम (Meningitis) आदि जैसे कठिन रोगों में भी प्राय: कान में दोष उत्पन्न हो जाते हैं और हमारे सुनने में अन्तर पड़ने लगता है। अत: रोग की अवस्था में तथा उसके बाद भी बहुत सावधानी की

आवश्यकता होती है। कान में किसी प्रकार की फुड़िया–फुँसी होना भी बड़ा खतरनाक है। यदि घाव जल्दी नहीं भरता तो यह अन्दर ही अन्दर फैलकर मस्तिष्क तक पहुँच जाता है। ऐसी अवस्था में यह प्रायः सदा ही जीवन के लिए घातक सिद्ध होता है।

घ्राणेन्द्रिय

घ्राणेन्द्रिय का अंग हमारी नासिका है। नासिका का जो भाग ऊपर से दिखलाई पड़ता है उसे बाह्य नाक कहा जाता है। इसका कड़ा भाग जो मस्तिष्क के समीप से आरम्भ होता है हड्डी से बनता है। नाक के दोनों छिद्र नथुने या नासिकारंध्र कहलाते हैं। इन छिद्रों से दीखने वाली नाक की भीतरी सतह श्लैष्मिक झिल्ली से बनी हुई है। इसमें छोटे–छोटे रोयें होते है। दोनों नासिकारंधों की नलियाँ थोड़ा ऊपर बढ़कर फिर नीचे की ओर झुक जाती हैं और हमारे तालू के पिछले भाग में समाप्त हो जाती है। नाक की ऊपरी सतह के कुछ भाग में त्वचा के भीतर छोटी–छोटी सांवेदनिक सेलें तथा नाडियाँ होती हैं।

हम पढ़ चुके हैं कि श्वास लेने का काम नाक ही करती है। श्वास के लिये खींची हुई वायु जब नाक के अन्दर जाती है तो उसके धूल के कण आदि नाक के रोओं में अटक कर रह जाते हैं और इस प्रकार शुद्ध होकर वायु अन्दर फेफड़ों की ओर बढ़ती है। धूल आदि को अन्दर से रोकने के अतिरिक्त नाक से एक लाभ और है। इसकी त्वचा की भीतरी पत्र की ग्रन्थियों से सदा एक तरल पदार्थ निकल कर नाक को अन्दर से गीला रखता है। इस तरल के सम्पर्क में आने पर वायु भी कुछ सीली हो जाती है। नाक की भीतरी सतह पर रक्त केशिकाओं का भी घना जाल है। इन कोशिकाओं के रक्त की गर्मी के सम्पर्क में आकर यह वायु कुछ गर्म भी हो जाती है। इस प्रकार नाक श्वास की वायु को सीली व गर्म भी बना देती है और बाहर की शुष्क व ठंडी वायु सीधे फेफड़ों में पहुँच कर उन्हें हानि नहीं पहुँचा पाती।

वायु के साथ जब किसी प्रकार की गंध के कण नाक में पहुँचते हैं तो वहां की सांवेदनिक सेलें तुरन्त अपनी नाड़ियों द्वारा गंधपिंडों तक उसकी सूचना पहुँचाते हैं। वहाँ से गंधनाड़ी मस्तिष्क के गंध–केन्द्र तक समाचार पहुँचाती है और तब हम उस गंध विशेष को पहचानते हैं। यदि यह गंध किसी प्रकार की सुगन्ध होती है तो हम बार बार उसे सूंध कर उसका आनन्द उठाते हैं। इसके विपरीत यदि वायु किसी गंदे स्थान से आती है और उसकी गन्ध दुर्गन्ध होती है, तो हम तुरन्त वहाँ से हट जाते हैं। हम साथ ही अपने श्वास को रोकने की चेष्टा करते हैं जिससे गन्दी वायु हमारे फेफड़ों तक न पहुँच सके। यदि हमारी नाक में इस प्रकार दुर्गन्ध और सुगन्ध पहचानने की शक्ति न होती तो हम गन्दे से गन्दे स्थान के समीप की वायु में भी श्वास नित्संकोच ले लेते। ऐसी परिस्थिति में अनेकों प्रकार के रोगों के होने की संभावना रहती।

किसी वस्तु की गन्ध अनुभव करने के लिए यह आवश्यक है कि वायु में मिले हुए उसके गन्धकण नाक की ऊपरी सतह से, जहाँ गन्ध सेले स्थित हैं, टकरायें। यदि ऐसा नहीं होता तो या तो हम गन्ध अनुभव ही नहीं कर पाते या बहुत ही हल्की सी गन्ध अनुभव करते हैं।

यह तो सभी जानते हैं कि हम खाद्यवस्तुओं का स्वाद अपनी जिह्वा से अनुभव करते हैं पर वास्तव में अकेली जिह्वा यह काम नहीं कर सकती; उसे नाक की गन्ध सेलों की सहायता की आवश्यकता पड़ती है। यह साधारण अनुभव की बात है कि जब कोई वस्तु नाक बन्द कर के खाई या पी जाती है तो हम उसका पूरा स्वाद अनुभव नहीं करते। इसीलिए कुनैन आदि कड़ुवी दवायें पीते समय लोग नाक बन्द कर लेते हैं। हम ऊपर कह चुके हैं कि नाक के छिद्र मुख में तालू के

ऊपर खुलते है। जब मुख में भोजन पहुँचता है तब उसके गन्धकणों को लेकर मुख की हवा इन्हीं छिद्रों से नाक में पहुँचती है और वहाँ की गन्ध सेलों से टकराती है। बाहर से भी भोजन के गन्धकण वायु द्वारा नाक में पहुँचते हैं। इस प्रकार नाक की गन्ध सेल जिह्वा को भोजन का स्वाद अनुभव करने में सहायता देती है।

कुछ पशुओं की गंध अनुभव करने की सेलें अधिक तीव्र होती हैं। मनुष्यों में भी इस संबंध में व्यक्तिगत अन्तर होते हैं। गन्धसेलों या गन्धनाड़ी में रोग या चोट द्वारा किसी प्रकार का दोष उत्पन्न होने से गन्ध अनुभव करने में बाधा पड़ती है।

स्वादेन्द्रिय

हमारी जिह्वा ही हमारी स्वादेन्द्रिय है। यह हमारे गले के भीतर नीचे की सतह से आरंभ होती है ओर आगे की ओर दाँतों के समीप तक आती है। सामने की ओर पीछे की अपेक्षा यह पतली और नुकीली हो जाती है। गले की व निचले जबड़े की हड्डियों से यह माँस–पेशियों द्वारा जुड़ी रहती है। जिह्वा माँस से बनती है और उस पर श्लैष्मिक झिल्ली की पर्त रहती है। अपनी माँसपेशियों के संकोचन–विमोचन के कारण यह फैल व सिकुड़ सकती है तथा आगे–पीछे व ऊपर–नीचे सब और घूम भी सकती है। बोलने में तथा भोजन चबाने के लिए मुँह में इधर से उधर सरकाने में जिह्वा से बड़ी सहायता मिलती है।

जिह्वा की श्लैष्मिक झिल्ली की पर्त पर नन्हें–नन्हें बहुत से दाने पाये जाते हैं। इनमें से कुछ दानें तो स्पर्श व गर्मी–सर्दी अनुभव करते हैं अैर कुछ स्वाद। स्वाद अनुभव करने वाले दाने स्वाद–कलियाँ (Taste buds) कहलाते हैं। जिह्वा की नोक पर तथा जिह्वा के पिछले भागों में ही स्वाद कलियाँ विशेष रूप से होती हैं। स्वादकलियों से बाल के सदृश सूक्ष्म नाड़ियाँ निकल कर मुख्य स्वाद–नाड़ी में पहुँचती हैं। यह स्वाद–नाड़ी स्वाद–कलियों के अनुभव को वृहत मास्तिष्क के स्वाद–केन्द्र तक पहुँचाती है। तब मस्तिष्क की सहायता से हम उस स्वाद को पहचानते हैं।

स्पर्शेन्द्रिय

विसर्जन संस्थान के वर्णन में हम पढ़ चुके हैं कि त्वचा पसीने के रूप में हमारे शरीर की गन्दगी निकाल कर हमारे स्वास्थ्य को ठीक रखने में सहायता पहुँचाती है। इसके अतिरिक्त चीजों के स्पर्श का तथा गर्मी–सर्दी का अनुभव भी हमें त्वचा द्वारा ही होता है। इसी से इसे स्पशेन्द्रिय भी कहा जाता है।

हमारी त्वचा की बनावट वैसी सरल नहीं है जैसी ऊपर से देखने से मालूम पड़ती है। त्वचा के दो पर्त होते हैं। ऊपर की पर्त उपचर्म (Epiuermios) कहलाती हैं। इसके ऊपर के सेल सूख–सूख कर झरते रहते हैं और उनके स्थान पर सदा नये सेल निकलते रहते हैं। इस पर्त में लाखों नन्हें–नन्हें छिद्र होते हैं जिनमें हमारे रोयें रहते हैं।

उपचर्म के नीचे वाली दूसरी पर्त चर्म (Dermis) कहलाती है। यह पर्त उपचर्म से कुछ मोटी होती है। और वास्तव में त्वचा का मख्य भाग भी यही है। इसमें ही त्वचा की रक्तकेशिकायें, नाड़ियों के सिर (Touch Corpuscles), स्वेदग्रन्थियाँ (Sweat Glands) तथा नौमों की जड़ें (Roots of the hairs) रहती हैं। रोमों की जड़ों से लगी हुई नन्हीं–नन्हीं ग्रन्थियाँ होती हैं। इनमें एक प्रकार का चिकना द्रव्य बनता है जो रोमों व त्वचा को कोमल व चिकना बनाये रहता है।

त्वचा की चर्म नामक पर्त में कुछ चपटी सेलें भी होती हैं। ये स्पर्श सेलें (Tactile cells) कहलाती हैं। इसका सम्बन्ध नाड़ी सूत्रों से होता है। ये शरीर के सब भागों में स्थित हैं, कहीं कम और कहीं अधिक। त्वचा पर किसी प्रकार के दबाव, गर्मी–सर्दी, या किसी वस्तु के स्पर्श का ज्ञान होते ही ये सेलें उत्तेजित हो उठती हैं। अपने से संबंधित नाड़ी–सूत्रों द्वारा उस समाचार को मस्तिष्क के स्पश्र केन्द्र तक पहुँचाती हैं। तब मस्तिष्क हमें उसका चेतन रूप से ज्ञान कराता है।

कुछ स्थानों की त्वचा अधिक सचेतन होती है और स्पर्श का अनुभव बड़ी शीघ्रता और तत्परता से प्राप्त करती है, जैसे ओठ व अँगुलियों के सिरे। इसके विपरीत कुछ स्थानों की त्वचा बहुत ही कम सचेतन होती है और बहुत ही कम अनुभव प्राप्त कर सकती है, जैसे पीठ की त्वचा।

शरीर के विभिन्न अंगों की स्पर्शशक्ति में तो अन्तर होता ही है, किन्तु विभिन्न मनुष्यों की स्पर्शशक्ति में भी परस्पर व्यक्तिगत अन्तर होते हैं। कुछ लोगों की स्पर्शशक्ति बहुत ही कम होती है और कुछ की अधिक। स्पर्शशक्ति तीव्र होने से मनुष्य केवल स्पर्शमात्र से ही वस्तुओं का अनुभव प्राप्त कर लेते हैं। अंधों में यह विशेषता विशेष रूप से पाई जाती है। उनकी स्पर्शशक्ति बड़ी तीव्र होती है। दृश्येन्द्रिय के अभाव में वे स्पर्शेन्द्रिय द्वारा ही सब चीजों का अनुभव प्राप्त करते हैं।

विश्वविख्यात वैज्ञानिक स्वर्गीय आचार्य बीरबल साहनी*

दिव्यदर्शन पंत

रविवार तारीख 3 अप्रैल की शाम को 6 बजे, जब पंडित जवाहरलाल नेहरू ने बड़ी धूम–धाम के साथ गुरुदेव आचार्य वीरबल साहनी के पुरा–वनस्पति–विज्ञान–मन्दिर का शिलान्यास किया था, तब वह किसने सोचा था कि निष्ठुर दैव संसार के इस अमर वैज्ञानिक के मृत शरीर का दाहकर्म उसके केवल 7 ही दिन बाद, ठीक उसी समय, और उस सुन्दर पुरातन वनस्पति अवशेषों से जटित शिला के सामने ही करवायेगा। आचार्य साहनी की इस आकस्मिक और असामयिक मृत्यु से संसार का एक महान् वैज्ञानिक ही नहीं, वरन् वनस्पति शास्त्र का एक धुरन्धर विद्वान सदा के लिए उठ गया। सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन् ने एक बार कहा था कि आचार्य साहनी मनुष्यों में एक महान् रत्न हैं–देखने में सुन्दर, सुदृढ़ और सुडौल शरीर वाले, व्यवहार में विनयशील और नम्र, विज्ञान के अनन्य सेवक आचार्य साहनी सचमुच ही एक नर रत्न थे।

जन्म और शैशव

आचार्य साहनी का जन्म 14 नवम्बर 1891 को पंजाब के भेड़ा नाम ग्राम में हुआ था। आपकी माता श्रीमती ईश्वरी देवी अपने शील और सुन्दर स्वभाव के लिए प्रसिद्ध थीं। आपके पिता लाला रुचिराम साहनी, जिनका देहान्त पिछले ही वर्ष हुआ है, गवर्नमेंट कालेज लाहौर के रसायन शास्त्र के आचार्य और एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे। आचार्य साहनी प्रो. रुचिराम को अत्यन्त प्रिय थे। सन् 1942 में जब लेखक को आचार्य साहनी के अल्मोड़ा स्थित निवास स्थान पर रहने का सौभाग्य

* *विज्ञान*, अप्रैल–मई 1949

प्राप्त हुआ था–तब उन्होंने कहा था कि –"बीरबल मुझे बचपन से ही बहुत अधिक प्रिय है। बीरबल और उसकी धर्मपत्नी सावित्री मेरी सबसे अधिक सेवा–सुश्रुषा करते हैं।" आचार्य साहनी भी अपने वृद्ध पिता को बहुत प्रेम करते थे। मैंने स्वयं देखा है कि जब कभी उनका कोई लेख छपकर आता था वे सबसे पहले अपने हाथ से उसकी एक प्रतिलिपि लाला जी को भेजते थे।

बालक बीरबल का बाल्यकाल भेड़ा में ही बीता था। बचपन से ही इन्हें पतंग उड़ाने, डाकखाने के टिकट, केकड़े, पत्थर, पेड़–पौधे आदि जमा करने का बड़ा शौक था। टिकट जमा करने के लिए यह अक्सर आधे रास्ते तक जाकर पोस्टमैन को पकड़ लेते थे, ताकि इनके और भाई बहनें टिकट न ले सकें। अपने नटखटपन में कभी–कभी यह भेड़ा की मुसलमान जाटनियों के चरखें भी तोड़ डालते। इनसे बिगड़ कर, इनको चिढ़ाने के लिए वे कहा करती थीं :–

"बीरबला भे बीरबला, सैंया कदी ना होये तेरा भला।"

केम्ब्रिज में अपनी प्रारम्भिक शिक्षा लाहौर के सेन्ट्रल माडल स्कूल और गवर्नमेंट कालेज में समाप्त करने के बाद सन् 1911 में श्री साहनी केम्ब्रिज के इमेन्युअल कालेज में पढ़ने के लिए विलायत को रवाना हुए और वहाँ पहुँचने के कुछ ही समय बाद प्रथम महायुद्ध के प्रारम्भ हो जाने के कारण सन् 1919 तक वहीं रहे।

आरम्भ से ही बीरबल बड़े सत्यवादी, निर्भीक और न्यायप्रिय थे। इनकी बी. एस. सी. की परीक्षा के प्रश्न पत्रों में से एक पत्र में उससे पहले साल के सारे प्रश्न फिर से पूछे गये थे। बीरबल ने यह बात एक अध्यापक को बतलाई और जब उसने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया तो यह उसी क्षण बाहर निकल आये। बाद में विश्वविद्यालय की सीनेट ने विद्यार्थियों की बात को न्याय–संगत मान लिया और उस विषय की परीक्षा पुनः ली गई। केम्ब्रिज में भी आपने अपने चरित्र–बल का परिचय दिया। वहाँ की प्रवेशिका परीक्षा में जिस संस्कृत पुस्तक के एक अंश का आप को भावार्थ लिखना था, वह पुस्तक परीक्षा भवन में न थी। इस पर आपने निरीक्षक को यह बात बतलाते हुए कहा कि यदि वे आज्ञा दें तो आप अपने कमरे से अपनी पुस्तक ला सकते हैं परन्तु उसमें आपने किनारे पर पेन्सिल से नोट लिख रक्खे हैं। इनकी स्पष्टवादिता को देखकर निरीक्षक ने श्री साहनी को बिना किसी देखरेख के अपने कमरे में जाकर पुस्तक लाने की आज्ञा दे दी। वे अपने कमरे से पुस्तक ले आये और बिना नोट देखे भावार्थ लिख डाला। बाद में प्रोफेसर सीवर्ड ने जो उस समय विज्ञान के प्रधान थे, इनकी इस बात पर मुग्ध होकर इन्हें चाय पर निमन्त्रित किया। एक नये विद्यार्थी के लिए यह बहुत बड़ा सम्मान था। इसके बाद एक दिन जब कि बीरबल ट्राइपोस में ही पढ़ते थे, उन्होंने गिंक्जो नामक वृक्ष के बीज के अन्दर किसी अन्य वृक्ष के पराग को अंकुरित होते हुए देखा। यह एक विचित्र बात थी जिसे बीरबल ने प्रोफेसर सीवर्ड को दिखाया। बीरबल की तीव्र दृष्टि को देखकर प्रोफेसर महोदय ने उनकी बहुत प्रशंसा की और उन्हें उस विषय में एक छोटा सा लेख लिखने को प्रोत्साहित किया। फलतः यह श्री साहनी का वैज्ञानिक अनुसंधान सम्बन्धी प्रथम लेख वनस्पति विज्ञान के प्रसिद्ध पत्र 'न्यू फ़ाइटोलाजिस्ट' में 1914 में छपा और प्रोफेसर सीवर्ड की विद्वता और प्रोत्साहन से प्रभावित हो श्री साहनी विज्ञान के आजन्म सेवक बन गये।

संग्रह और अध्ययन की प्रवृत्ति

बीरबल पहले से ही एक परिश्रमी विद्यार्थी थे जो केवल कोर्स की पुस्तकों को ही नहीं वरन् और भी कई पुस्तकों और जानने योग्य बातों का अध्ययन करते रहते थे। केम्ब्रिज में आपने बहुत सी स्लाइडें बना और बहुत से प्रस्तरावशेष जमा किये जिनकी सहायता से बाद में आप अपने शिष्यों को

पढ़ाया करते थे। अपने विशाल पुस्तकालय के लिए भी लेखों और पुस्तकों का संग्रह आपने यहीं से आरम्भ कर दिया था।

केम्ब्रिज में आपने बड़ी सादगी से जीवन व्यतीत किया, जिसमें आपने अपने माता–पिता से बिना किसी धन की सहायता के अपनी 90 पौंड वार्षिक की छात्रवृत्ति से ही अपने सब खर्च पूरे कर लिए। कभी–कभी आप अपना खर्च कम करने के लिए एक ही बार खाकर रह जाते थे। विलायत जाते समय आप अपने साथ कुछ पायजामे और कमीज ले गये थे। इन्हीं से आपने आठ वर्ष तक अपना काम चलाया। एक बार जब आपके कोट का काज किनारे पर फट गया था, तब आपने उन्हें दूसरी तरफ बदल दिया। जब लोग आपसे इस विचित्र बदलाव का कारण पूछते तो आप बिना मुस्कराये ही बेधड़क होकर कहा करते कि यही नया फैशन है।

केम्ब्रिज में पढ़ने के साथ ही साथ आपने लन्दन विश्वविद्यालय की एम. एस–सी. और बाद में डी. एस–सी. की उपाधियाँ भी प्राप्त कीं। आपके अनुसंधान कार्य की महत्ता को समझकर लन्दन की रॉयल सोसायटी और इमेनुअल कालेज, दोनों ने आपको आर्थिक सहायता दी। इसके अतिरिक्त आप गर्मियों में म्यूनिख में भी अध्ययन करने जाते थे। इस प्रकार यूरोप और ब्रिटेन के प्रायः सभी बड़े–बड़े वनस्पति विज्ञानवेत्ताओं से आपका निकट–सम्पर्क हो गया, जिनमें आपके गुरु प्रोफेसर सीवर्ड और डाक्टर स्कॉट विशेष उल्लेखनीय हैं।

लन्दन से डी. एस–सी. की उपाधि लेकर श्री साहनी सन् 1919 में भारत लौट आये और हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी में वनस्पति विज्ञान के आचार्य नियुक्त किये गये। परन्तु तत्कालीन साइंस कालेज के प्रिंसिपल डॉ. गणेश प्रसाद से कुछ अनबन हो जाने के कारण आपने 1920 में बनारस से त्यागपत्र दे दिया और आप लाहौर के गवर्नमेंट कालेज में उसी पद पर नियुक्त किये गये। सन् 1921 में लखनऊ विश्वविद्यालय के स्थापित होने पर आप वहाँ पर वनस्पति विज्ञान के आचार्य नियुक्त हुए और अन्तिम दिन तक उस पद की शोभा को बढ़ाते रहे। इसके अतिरिक्त आप कई साल तक लखनऊ विश्वविद्यालय के विज्ञान विभाग के प्रधान भी रहे। सन् 1943 में जब आपके ही प्रयत्नों से लखनऊ में भूगर्भ–विभाग खुला तो आप उसके भी आचार्य नियुक्त किये गये। विश्वविद्यालय की इन सेवाओं के साथ–साथ आपका अपना अनुसन्धान कार्य और आपके शिष्य वर्ग का निरीक्षण तो चलता ही रहता था। किन्तु इसके अतिरिक्त पिछले कुछ दिनों से आप पुरावनस्पति–विज्ञान–मन्दिर के संचालक का भी काम कर रहे थे। इतने सब कामों को एक साथ इतनी सुन्दरता से बहुत कम लोग संभाल सकते हैं, लेकिन आपको अपने इन सब कामों में जो सफलता मिली है उसका बहुत कुछ श्रेय आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सावित्री साहनी के सहयोग, सहायता और सहानुभूति को भी हैं। अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति पुरावनस्पति विज्ञान मन्दिर को देकर आप दोनों ने विज्ञान और राष्ट्र को वास्तव में अपना सर्वस्व दे दिया। पिछले कुछ दिनों से श्रीमती साहनी मन्दिर की प्रबन्धक समिति की आजन्म अध्यक्ष के रूप में आचार्य साहनी के प्रबन्ध कार्य में भी हाथ बँटा रही थीं और हमें पूर्ण विश्वास है कि आपकी देख–रेख में यह मन्दिर इस महान क्षति के होने पर भी पूर्ववत् उन्नति करता रहेगा।

आचार्य साहनी का वनस्पति–विज्ञान सम्बन्धी अनुसंधान कार्य केम्ब्रिज में प्रारम्भ हुआ। आरम्भ में कुछ कार्य जीवित वनस्पतियों पर करने के बाद आपने भारतीय वनस्पति अवशेषों की दुबारा जांच–पड़ताल आरम्भ कर दी। इनका वर्णन आपके पहले क्राइस्ट मान्टल आदि विदेशी वैज्ञानिकों ने किया था; जिसमें आपने अनेक त्रुटियाँ पाईं और इन्हीं अवशेषों के संग्रह में अनेक नवीन अवशेषों को भी खोज निकाला। इसी प्रकार आपने और भी कई भारतीय वनस्पति अवशेषों का अन्वेषण किया जो कि भारत में ही नहीं वरन् विज्ञान के लिए सर्वथा नवीन हैं। आपके इन

अनुसन्धानों के विस्तृत वर्णन रायल सोसायटी के फिलोसोफिकल ट्रान्जेक्शन और अन्य विख्यात विदेशी तथा भारतीय वैज्ञानिक पत्रिकाओं में छपे हैं। आपके लगभग 8. लेख अभी भी और छपने को बाकी हैं। अपने लेखों में आपने पुरातन वनस्पति अवशेषों का ही विस्तृत रूप से वर्णन नहीं किया वरन् इनके आधार पर उनके कुल सम्बन्ध, वनस्पति जगत के विकास तथा तत्कालीन भूगोल और जलवायु के विषय में अत्यन्त सुन्दर और विश्वास करने योग्य मौलिक गवेषणायें की हैं।

इसके अतिरिक्त आपके अनुसंधान कार्य से वेगनर के महाद्वीप विभाजन सिद्धांत, दक्षिण पठार की आयु, ग्लोसोप्टिक वनस्पतियों की उत्पत्ति और स्वभाव तथा "मनुष्य जाति की उत्पत्ति के बाद हिमालय के उत्थान" आदि अनेक जटिल तथा वादविवाद–युक्त भूगर्भ और वनस्पति विज्ञान विषयक समस्याओं को हल करने में सहायता मिली है।

पुरातत्व और पुरावनस्पति तत्व

आपका अनुसन्धान कार्य वनस्पति और भूगर्भ विज्ञान तक ही सीमित नहीं है। आपने पुरातत्व सम्बन्धी भी अनेक अन्वेषण किये हैं। पुरातत्व में आपकी रुचि बहुत पहले से ही थी। एक बार तो आप इस बात पर अनिश्चित थे कि आप पुरातत्व का अध्ययन करेंगे या पुरावनस्पति विज्ञान का। एक बार रोहतक के पास यमुना की उपत्यका का भ्रमण करते समय आपको खोकराकोट नामक स्थान पर कुछ टूटे हुए मिट्टी के ठप्पे मिले जिनमें सिक्कों के चिहन बने हुए थे। बाद में वहाँ पर खुदाई करवाने पर आपको उसी प्रकार के हजारों ठप्पे और मिले जिनसे ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ पर ईसा से 100 वर्ष पूर्व यौधेय राजाओं की टकसाल रही होगी। इन ठप्पों की सहायता से आपने तत्कालीन सिक्के ढालने की विधि का विस्तारपूर्ण वर्णन लिख डाला और इस कार्य के लिए आपको भारतीय न्यूमैस्मेटिक सोसायटी ने एक पदक प्रदान किया। अनुसंधान कार्य के अतिरिक्त और भी कई प्रकार से आपने विज्ञान की सेवा की है। वास्तव में आपको भारतीय वनस्पति विज्ञान का जन्मदाता कहा जा सकता है। पुरावनस्पति विज्ञान मन्दिर के अतिरिक्त आपने भारतीय वनस्पति विज्ञान परिषद, अखिल भारतीय विज्ञान काँग्रेस, भारतीय वैज्ञानिक एकेडेमी, राष्ट्रीय वैज्ञानिक एकेडेमी, राष्ट्रीय विज्ञान मन्दिर और 'करेन्ट साइंस' आदि की स्थापना और संचालन में विशेष भाग लिया है। वनस्पति विज्ञान की शिक्षा प्रारम्भ करने वाले विद्यार्थियों के लिए प्रो. लोसन की पाठय–पुस्तक का भारतीय संस्करण लिखकर आपने इस देश में वनस्पति विज्ञान के प्रचार में बहुत बड़ी सहायता दी है। इस सुन्दर पुस्तक को आपने तभी लिख दिया था जब कि आप केम्ब्रिज में पढ़ते थे।इसके लिए आपको केवल 8. पौंड मिला और आपसे इस प्रकार की कोई दूसरी पुस्तक न लिखने की प्रतिज्ञा करवा ली गई थी, जिस पर आप जीवन भर दृढ़ रहे।

शिष्यों के प्रिय अध्यापक

आचार्य साहनी एक प्रख्यात वैज्ञानिक होने के साथ ही एक अत्यन्त योग्य अध्यापक और आचार्य भी थे। बहुधा दोनों हाथों से चित्र बनाकर आप अपने विद्यार्थियों को बड़े चाव और रोचक ढंग से पढ़ाते थे। इनमें योग्य नवयुवकों को अनुसन्धान कार्य में प्रोत्साहित कर तथा उन्हें इसकी उत्तम शिक्षा–दीक्षा देकर आपने वनस्पति विज्ञान का जो प्रचार इस देश में किया है, उसके लिए हम सदैव आपके ऋणी रहेंगे। अनेक विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में आपके शिष्य वनस्पति विज्ञान और विशेषकर पुरावनस्पति विज्ञान के अध्यापक हैं। इस देश में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में भी आपने बहुत बड़ा भाग लिया है। समय–समय पर आप जनसाधारण के लिए सरल तथा सरस भाषा में

लेख और भाषण दिया करते थे। आपका शिक्षा–कार्य विद्यालय के कमरों तक ही सीमित न था। बहुधा आप विद्यार्थियों के साथ वनस्पतियों और पुरावनस्पतियों के संग्रह और अध्ययन के लिए उन क्षेत्रों में भ्रमण करने जाते थे, जहाँ वे पाई जाती हैं। इन अवसरों पर आप विद्यार्थियों ही के साथ तीसरे दर्जे में यात्र करते, उन्हीं के साथ भोजन करते और उन्हीं के साथ रहा करते थे। अपने साथियों और शिष्यों के सुख–दुःख का आपको सदैव ध्यान रहता था। एक बार जब हम लोग राजमहल की पहाड़ियों में आपके साथ भ्रमण कर रहे थे तब दिन की कड़ी धूप में बहुत देर चलने के बाद सबको बहुत प्यास लग आई। बड़ी कठिनाई से एक कुआँ मिला। आचार्य साहनी ने अपने हाथ से कई बार किसी और बर्तन के न होने पर एक टिफिन कैरियर में पानी खींच कर हम लोगों को पिलाया और स्वयं सब को पिला चुकने के पश्चात् ही पिया। यदि आपके साथियों या शिष्यों में से कोई बीमारी अथवा अन्य किसी संकट में पड़ जाता था तो आपको बड़ा मानसिक कष्ट होता था और उसकी सहायता करने के लिए आप भरसक प्रयत्न करते थे। किन्तु इस सहायता और दयाभाव से कोई अनुचित लाभ नहीं उठा सकता था। उचित अनुशासन कर्त्तव्यपरायणता के आप सदैव प्रेमी थे। स्वयं रात्रि होने तक कालेज में अपना काम करते रहते थे और अपने शिष्यों से बहुधा कहा करते थे कि अनुसंधान कार्य में 99 प्रतिशत परिश्रम की आवश्यकता है और केवल 1 प्रतिशत बुद्धि की।

विश्वव्यापी सम्मान

विज्ञान की इन बहिर्मुखी सेवाओं के उपहारस्वरूप अनेक विदेशी तथा भारतीय वैज्ञानिक संस्थाओं ने आपको सब प्रकार से सम्मानित किया। सन् 1929 में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय ने आपको एस.सी. डी. की उपाधि प्रदान की। इस उपाधि को पाने वाले आप प्रथम भारतीय हैं। सन् 1936 में आप लन्दन की रॉयल सोसायटी के भारतीय फेलो निर्वाचित किये गये। इसी प्रकार आप और भी कई देशी तथा विदेशी वैज्ञानिक संस्थाओं के फेलो जिनमें अमेरिकन एकेडेमी ऑफ आर्ट्स, साइन्सेज एवं लेटर्स, भारतीय तथा राष्ट्रीय–वैज्ञानिक एकेडेमी (जिसके आप दो बार सभापति और उप सभापति भी रह चुके हैं राष्ट्रीय विज्ञान मन्दिर (जिसके आप उप सभापति भी रह चुके हैं) और भारतीय वनस्पति विज्ञान परिषद (जिसके आप सभापति भी रह चुके हैं) आदि मुख्य हैं। अखिल भारतीय विज्ञान कांग्रेस के तो आप 1921 और 1938 में भूगर्भ विभाग के अध्यक्ष और 1940 में सभापति रह चुके हैं। इसके अतिरिक्त आप अनेक अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक सभाओं में भारत के प्रतिनिधि और दो अन्तर्राष्ट्रीय वनस्पति विज्ञान कांग्रेस के उपसभापति रह चुके हैं। अभी हाल में तो वह सन् 1950 में स्वीडन में होने वाली आगामी अन्तर्राष्ट्रीय वनस्पति विज्ञान काँग्रेस के एक सभापति निर्वाचित हो गये थे।

सच्चे देशभक्त

एक प्रसिद्ध शिक्षक और वैज्ञानिक होने के साथ ही आचार्य साहनी एक सच्चे देशभक्त भी थे। खादी और स्वदेशी के तो आप पहले से ही प्रेमी थे। स्वच्छ सफेद खद्दर की अचकन, चूड़ीदार पायजामा, गाँधी टोपी और लाल जूता पहने हुए आप अपने सुन्दर रूप और स्वभाव से सब को मुग्ध और प्रभावित कर लेते थे। सन् 1922 में जब वेल्स के युवराज लखनऊ विश्वविद्यालय में पधारे थे तो आपने उनका बहिष्कार किया था। कांग्रेस के पहले आन्दोलन के समय आप उसमें शामिल होना चाहते थे किन्तु बाद में आपने विज्ञान द्वारा ही देश की सेवा करना अपने लिए यथेष्ट समझा। देश

की स्वतंत्रता के आन्दोलन के साथ आप की सच्ची सहानुभूति सदैव बनी रही। मुझे अच्छी तरह याद है कि स्वतंत्रता–दिवस के अवसर पर जब एक बार कुछ को छोड़कर सब विद्यार्थी हड़ताल पर थे तो आपने उनको भी अपने साथियों का अनुकरण करने को कहा और हाजिरी तक न ली। स्वदेशी के साथ–साथ राष्ट्र–भाषा हिन्दी और उसमें विज्ञान की शिक्षा के भी बहुत प्रेमी थे।

सर्वतोमुखी प्रतिभा वाले इस विश्व–विख्यात वैज्ञानिक देशभक्त के साथ केवल कुछ ही देर रहकर मनुष्य अनेक बातें सीख सकता था। मुझे तो कई साल तक उनकी छत्रछाया में रहने से ऐसा प्रतीत होता है कि मुझे न जाने कितनी बड़ी देन मिल गई है।

चन्द्र प्रकाश का वृक्षों पर प्रभाव*

शंकर राव जोशी

भारतीय अति प्राचीन काल से चन्द्र–प्रकाश के हितकर प्रभाव से परिचित हैं। वैद्यक आदि कई प्राचीन ग्रंथों में चांदनी के सुप्रभाव का वर्णन पाया जाता है किन्तु इधर कुछ सदियों से पश्चिमी सभ्यता की तड़क–भड़क से हमारी आँखें चौंधिया गईं थीं, जिससे भारतीय ऋषि–मुनियों तथा अन्य विद्वानों द्वारा उल्लिखित बातें कपोल–कल्पना ही मानी जाती रही हैं। परन्तु ज्यों–ज्यों वर्तमान वैज्ञानिक युग के नित नवीन आविष्कार हमारी आँखों के सामने आते गए, उनकी सत्यता पर धीरे–धीरे विश्वास जमने लगा है। यही बात ज्योत्स्ना पर भी लागू होती है।

एक विश्व–विख्यात प्राकृतिक–विज्ञान विशेषज्ञ ने एक स्थान पर लिखा है–"भूमंडल पर ज्योत्स्ना के प्रभाव की ओर उद्यान–विद्या–विशारदों का ध्यान गंभीरता–पूर्वक आकर्षित हो रहा है।" वन के वृक्षों पर ज्योत्स्ना का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है, यह बात अब अधिकांश विशेषज्ञ मानने लगे हैं। इंगलैंड के वृद्ध कृषकों की मान्यता है कि पौधों को पूरी तरह से जमने और ठीक तरह से वृद्धि पाने के लिए शुक्ल–पक्ष में ही स्थानान्तरित किया जाना चाहिए।

कमांडर ए.–बी. कैम्बेल एक सुविख्यात पर्यटक हैं। उन्होंने अपने एक बी.बी.सी. ब्रॉडकास्ट में कहा है,"कैबिन के बाहर का दृश्य अति ही मनोहारी था। थर्मामीटर 61 अंश से भी नीचे उतर आया था और पूर्ण चन्द्र अपनी सोलहों कलाओं से प्रभा फैला रहा था। खुले स्थान पर रखे हुए बालसम आदि के पौधे पिस्तौल के शब्द करते हुए फटाफट फटते जा रहे थे।"

यह निश्चित रूप से सही है कि ज्यों ज्यों चन्द्रमा बढ़ता जाता है, पौधों में रस (Sap) भी बढ़ता जाता हैं और उसी के साथ क्रमशः घटता भी जाता है। पौर्णिमा को बालसम की ग्रंथियां (Blisters) रस से परिपूर्ण हो जाती हैं। यदि इस समय तापक्रम घट जाए तो इन ग्रंथियों में का रस जमने लगता है और पिस्तौल की सी आवाज करते हुए ग्रंथियां फटाफट फटने लगती हैं तथा पौधा मुरझा जाता है।

ब्राजील देश के एक प्रमुख रेलवे के डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर मिस्टर हरबर्ट टी–वेट का कथन है कि इंजीनियरों का अनुभव है कि चन्द्र की वृद्धि और क्षय के दिनों में रस बढ़ता और घटता है। ज्योत्स्ना का यह प्रभाव रेलवे के स्लीपर्स पर स्पष्ट दिखाई देता है। स्लीपर्स बल खाकर फटते और अति शीघ्र खराब हो जाते हैं। अतएव ठेका देते समय यह शर्त रखी जाती है कि शुक्ल–पक्ष में काटी गई लकड़ी के स्लीपर्स ही लगाने पडेंगे और इससे कंपनी को काफी बचत हुई है।

मिस्टर ए.–व्ही–गुईज अपने 'बोलिविया में छह वर्ष' नामक पुस्तक में लिखते हैं, 'यहां के निवासी इमारत में लगाई जाने वाले लकड़ी का शुक्ल–पक्ष के प्रथम सप्ताह में काटने का विशेष

* *विज्ञान*, जुलाई–सितम्बर 1950

ध्यान रखते हैं। इसके बाद काटी गई लकड़ी में छेद करने वाले कीड़े जल्दी लग जाते हैं। 'पोलीलियो' नामक कीड़ा जल्द ही इस लकड़ी को बेकार कर देता है।

संसार के सभी देशों में यह बात निस्सन्देह स्वीकार कर ली गई है कि वनस्पति की वृद्धि पर चन्द्र–ज्योत्स्ना का प्रभाव निश्चित रूप से पड़ता है। आसाम के चाय की खेती करने वालों का अनुभव है कि ज्यों–ज्यों चन्द्र–कलाएं बढ़ती जाती हैं, चाय के पत्ते अधिकाधिक बढ़ते जाते हैं। अतएव, पूर्ण चन्द्र का उदय होने के बाद ही चाय के पत्ते तोड़े जाते हैं। कैनरी द्वीप का अनुभव है कि देशांश–अक्षांश और तापमान का प्रभाव केले पर स्पष्ट दिखाई देता है। किन्तु चाँद का भी काफी असर पड़ता है। अनुभव से देखा गया है कि मार्च, एप्रिल और मई में नव–चन्द्र का प्रभाव फलों के आकार आदि पर स्पष्ट दिखाई देता है। मार्च महीने में केले का फल लम्बा, सीधा, और जल्द टूटने वाला होता है और फल गाय के सींग के आकार का होता है। एवं नीचे का सिरा ऊपर की ओर उठा रहता है। मई में फल अधिक मीठे होते हैं किन्तु फलों का आकार अच्छा नहीं होता है।

पूर्णचन्द्र उदय होने से पहले स्थायी स्थान पर पौधे लगाना लाभदायक माना जाता है और नवीन चंद्र उदय होने से पहले लगाये गये पौधे उतने अच्छे नहीं जमते हैं। बरसों जाँच–पड़ताल करने से पाया गया है कि वृद्ध कृषकों और अनुभवी मालियों के कथन में बहुत कुछ सत्य निहित है।

परिशिष्ट 1

विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित निबन्धों की सूची

सरस्वती

क्रम	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ	अंक
1.	जन्तुओं की सृष्टि	–	54–58	फरवरी 1900
2.	फोटोग्राफी	–	65–67	फरवरी 1900
3.	जन्तुओं की सृष्टि	–	77–81	मार्च 1900
4.	जन्तुओं की सृष्टि	–	119–122	अप्रैल 1900
5.	रेल	–	188–194	जून 1900
6.	चन्द्रलोक की यात्रा	हंसपाल	196–204	जून 1900
		–	227–237	जून 1900
7.	मानवी शरीर	–	243–244	अक्तूबर 1900
8.	भारतवर्ष की शिल्प विद्या	–	379–387	दिसम्बर 1900
9.	चन्द्रलोक	बाबू दुर्गा प्रसाद	80–87	मार्च 1901
10.	पलुए जंगली जानवर	कुमार योधासिंह मेहता	181–82	मई 1901
11.	प्रलय	–	190–195	जून 1901
12.	मोती	ठाकुर प्रसाद	103–114	अप्रैल 1902
13.	मोतियों की गुफा	गोपाल दास	158–173	मई–जून 1902
14.	हीरा	ठाकुर प्रसाद	353–358	नवम्बर 1902
15.	ब्रह्मपुत्र घाटी की जंगली जातियाँ	गोपाल दास	339–346	नवम्बर 1902
16.	हीरा	ठाकुर प्रसाद	368–370	दिसम्बर 1902
17.	गरुड़	–	21–23	जनवरी 1903
18.	ग्रहों पर जीवधारियों के होने का अनुमान	–	24–25	जनवरी 1903
19.	अध्यापक वसु के अद्भुत आविष्कार	–	89–91	फरवरी–मार्च 1903
20.	जल–चिकित्सा	–	168–173	मई 1903
21.	विमान और उड़ने वाले मनुष्य	–	173–176	मई 1903
22.	आँख की फोटोग्राफी	–	176–180	मई 1903
23.	जल–चिकित्सा	–	239–243	जुलाई 1903
24.	मनुष्येतर जीवों का अन्तर्ज्ञान	–	243–246	जुलाई 1903
25.	जलगामिनी पैरगाड़ी और तैरने का यन्त्र	–	247–248	जुलाई 1903
26.	गर्भ–सन्चार	–	250–253	जुलाई 1903
27.	दीप्ति–मण्डल और सूर्याभास	–	280–281	अगस्त 1903
28.	जल–चिकित्सा	–	282–286	अगस्त 1903
29.	गर्भ के आकार और परिमाण	–	289–293	अगस्त 1903
30.	महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्री, सी .आई.ई.	पं. गिरिजाप्रसाद द्विवेदी	298–304	सितम्बर 1903
31.	पृथ्वी	–	317–326	सितम्बर 1903

32. कर और सिरमयी मछली	–	353–355	अक्तूबर 1903
33. ध्वनि	–	384–386	नवम्बर 1903
34. मारकर लौट आने वाला अस्त्र	–	386–389	नवम्बर 1903
35. प्रसूति	–	397–400	नवम्बर 1903
36. कीट–ग्राहक पौधा	–	423–425	दिसम्बर 1903
37. अतुल यन्त्र	–	434–436	दिसम्बर 1903
38. रजोदर्शन	–	436–438	दिसम्बर 1903
39. शुक्र	–	55–61	फरवरी 1904
40. वराहमिहिर	पं. गिरिजाप्रसाद द्विवेदी	108	अप्रैल 1904
41. रेडियम	–	121–124	अप्रैल 1904
42. हमारी देह	–	135–136	अप्रैल 1904
43. ज्वार भाटा	पं. महेन्दुलाल गर्ग	169–171	मई 1904
44. कीड़े मकोड़े	पं. श्रीनारायण मिश्र	194–201	जून 1904
45. विद्युत	बाबू माणिक्यचन्द्र जैनी	238–242	जुलाई 1904
46. मत्स्याहारी वनस्पति	बाबू यशोदानन्दन अखौरी	273–275	अगस्त 1904
47. सामुद्रिक सुरंग और समुद्रोदरगामिनी डोंगी	–	275–278	अगस्त 1904
48. पेट की आत्म–कहानी	पं. महेन्दुलाल गर्ग	319–320	सितम्बर 1904
49. किरण, रेडियम और परमाणु	बाबू जीतन सिंह	346–352	अक्तूबर 1904
50. पौधों का सांस लेना	पं. सूर्यनारायण दीक्षित	377–379	नवम्बर 1904
51. नेपल्स की कासानोवा नामक औद्योगिकशाला	माधवराव सप्रे	435–439	दिसम्बर 1904
52. विस्यूवियस	–	19–21	जनवरी 1905
53. आँख	पं. चन्द्रधर गुलेरी	78–79	फरवरी 1905
54. तार द्वारा खबर भेजने का यन्त्र	–	95–97	मार्च 1905
55. कुण्डलिनी	–	97–100	मार्च 1905
56. पौधों में रस–प्रवाह	पं. सूर्यनारायण दीक्षित	106–109	मार्च 1905
57. आँख	पं. चन्द्रधर गुलेरी	115–119	मार्च 1905
58. सृष्टि–विचार	–	171–180	मई 1905
59. कस्तूरी मृग	–	180–182	मई 1905
60. 3.ाकाशमण्डल	जीतन सिंह	186–191	मई 1905
61. सवाई जयसिंह	–	195–196	मई 1905
62. आँख	पं. चन्द्रधर गुलेरी	196–197	मई 1905
63. भूकम्प	माणिक्य चन्द्र जैन	227–236	जून 1905
64. आत्मा के अमरत्व का वैज्ञानिक प्रमाण	–	236–239	जून 1905
65. आँख	पं. चन्द्रधर गुलेरी	242–244	जून 1905
66. पौधों को नींद	सूर्यनारायण दीक्षित	261–263	जुलाई 1905
67. फोटोग्राफी के उपयोग	रामदुलारी दुबे	273–276	जुलाई 1905
68. आँख	पं. चन्द्रधर गुलेरी	324–326	अगस्त 1905
69. व्योम–विहरण	–	340–345	सितम्बर 1905
70. पत्थर का एक अद्भुत गोला	पं. देवीप्रसाद शुक्ल	346–348	सितम्बर 1905
71. हिम–स्फटिक	सरयू नारायण त्रिपाठी	348–351	सितम्बर 1905
72. प्रपन्च	गवीश	351–353	सितम्बर 1905
73. आँख	पं. चन्द्रधर गुलेरी	35–62	सितम्बर 1905
74. मार्तण्ड–महिमा	–	377–82	अक्तूबर 1905
75. सबसे बड़ा हीरा	–	389–392	अक्तूबर 1905

76.	वानस्पतिक सज्ञानता	सूर्यनारायण दीक्षित	400–403	अक्तूबर 1905
77.	गुरुत्वाकर्षण शक्ति	शुकदेव प्रसाद तिवारी	140–148	अप्रैल 1906
78.	कृत्रिम हीरा	गिरिजादत्त वाजपेयी	197–199	मई 1906
79.	क्या जानवर भी सोचते हैं?	–	199–201	मई 1906
80.	विवीसेक्शन	महेन्दुलाल गर्ग	201–202	मई 1906
81.	प्रकाश	लक्ष्मीधर वाजपेयी	12–16	जनवरी 1907
82.	वानस्पतिक विद्या में अद्‌भुत आविष्कार	गिरिजादत्त वाजपेयी	16–18	जनवरी 1907
83.	ज्योतिष वेदांग	पर्य्यालोचक	60–64	फरवरी 1907
84.	सम चिकित्सा–चमत्कार	राय देवी प्रसाद	95–100	मार्च 1907
85.	बिजली की रेलगाड़ी	सत्यदेव	150–152	अप्रैल 1907
86.	मानव जाति के उन्नायक सिद्धान्त	रामजी लाल शर्मा	167–168	अप्रैल 1907
87.	ज्योतिष वेदांग पर्य्यालोचक	–	186–191	मई 1907
88.	प्राणिमात्र से मनुष्य की सगोत्रता सत्यदेव	–	197–202	मई 1907
89.	रायबहादुर पण्डित लक्ष्मीशंकर मिश्र	रामनारायण सिंह	217–220	जून 1907
90.	रेडियम	सरयू नारायण त्रिपाठी	312–316	अगस्त 1907
91.	पराग–मिश्रण	गंगाशंकर पंचौली	331–332	अगस्त 1907
92.	बिजली का बाजा	सूर्यनारायण दीक्षित	365–367	सितम्बर 1907
93.	गेहूँ से रबर	लक्ष्मण गोविन्द आठले	.378–379	सितम्बर 1907
94.	आत्मा का अमरत्व	माधवराव सप्रे	447–452	नवम्बर 1907
95.	किरण–विकिरण	जगन्नाथ प्रसाद वर्मा	512–516	दिसम्बर 1907
96.	कृषि विद्या में अद्‌भुत आविष्कार	महावीर प्रसाद द्विवेदी	110	मार्च 1908
97.	मंगल के चित्र	महावीर प्रसाद द्विवेदी	137	मार्च 1908
98.	शब्द और प्रकाश की चाल	राय देवी प्रसाद	168	अप्रैल 1908
99.	पौधों की बाढ़	पं. सूर्य नारायण दीक्षित	178	अप्रैल 1908
100.	सोम लता	–	199–208	मई 1908
101.	प्लेग–तत्व	पं. महेन्दु लाल गर्ग	208	मई 1908
102.	हमारा वैद्यक शास्त्र	पं. लक्ष्मीधर वाजपेयी	226	मई 1908
103.	लार्ड केलविन	उदय नारायण वाजपेयी	215–218	मई 1908
104.	शरीर के भीतरी भागों का फोटो	पं. गिरजादत्त वाजपेयी	246	जून 1908
105.	हमारा वैद्यक शास्त्र	पं. लक्ष्मीधर वाजपेयी	307	जून 1908
106.	अध्यापक वसु के नूतन आविष्कार	उदयनारायण वाजपेयी	320	जून 1908
107.	प्राकृतिक दुर्घटना सूचक पौधा	महावीर प्रसाद द्विवेदी	323	जून 1908
108.	रोगोत्पादक–जन्तु विज्ञान	डॉ. मुरलीधर	399	सितम्बर 1908
109.	योगाभ्यास की शक्ति	लाला मुंशीलाल	404	सितम्बर 1908
110.	रक्त भ्रमण	पं. महेन्दु लाल गर्ग	430	अक्तूबर 1908
111.	बरबैंक साहब के नूतन आविष्कार	–	465	अक्तूबर 1908
112.	मलेरिया	पं. लल्ली प्रसाद पाण्डेय	492	नवम्बर 1908
113.	पुनर्जन्म	–	511–514	नवम्बर 1908
114.	जलरूपी वायु	सरयू नारायण त्रिपाठी	37–40	जनवरी 1910
115.	मानव–रहस्य	महेन्दु लाल गर्ग	45–47	जनवरी 1910
116.	पुच्छलतारा	सरयू नारायण त्रिपाठी	134	मार्च 1910
117.	मानव–रहस्य	महेन्दु लाल गर्ग	138–139	मार्च 1910
118.	एटम	सरयू नारायण त्रिपाठी	191–192	अप्रैल 1910
119.	पक्षी और कृषि	भोलादत्त पांडे	206–210	मई1910

120. भोजन की रसायन	महेश चरण सिंह	210–212	मई 1910
121. मानव–रहस्य	महेन्दु लाल गर्ग	310–312	जुलाई 1910
122. खाद और उसका उचित व्यवहार	मोहब्बत सिंह दोनवार	315–319	जुलाई 1910
123. बिजली	महेश चरण सिंह	351–354	अगस्त1910
124. आक्सिजन	सरयू नारायण त्रिपाठी	399–401	सितम्बर 1910
125. श्रीयुत भोलादत्त	पांडे सत्यदेव	456–457	अक्तूबर1910
126. दूध से बीमारियाँ	रामनारायण शर्मा	484–488	नवम्बर 1910
127. जीवधारियों की बनावट	काशीदत्त पांडे	516–518	नवम्बर 1910
128. मलेरिया के मच्छड़	लल्ली प्रसाद पांडे	68–72	फरवरी1911
129. उषा	गिरिजा प्रसाद द्विवेदी	129–131	मार्च 1911
130. गरमी	गिरधर शर्मा	113–116	मार्च1911
131. लिखने के साधन	पांडुरंग खानखोजे	151–155	अप्रैल1911
132. रक्त विज्ञान	–	185–187	अप्रैल 1911
133. जल का घनत्व	कृष्णचन्द्र गुप्त	221–223	मई 1911
134. शिशु–पोषण	रामनारायण शर्मा	235–238	मई 1911
135. शाकभोजन और माँस भक्षण	केशवदेव	238–241	मई 1911
136. उल्कापात	उदयनारायण वाजपेयी	324–327	जुलाई 1911
137. सौर जगत्	रघुवर प्रसाद द्विवेदी	430–433	सितम्बर 1911
138. भूकम्प के लाभ	उमराव सिंह गुप्त	542–544	नवम्बर 1911
139. फलित ज्योषि	गिरिजा प्रसाद द्विवेदी	595–601	दिसम्बर 1911
140. पदार्थ–विज्ञान का डीफो अभ्युदय	अनु. बालकृष्ण शर्मा	17–20	जनवरी 1912
141. ज्योतिर्विद्या	रामावतार शर्मा	20–25	जनवरी 1912
142. डारविन का सिद्धान्त	गिरिजादत्त वाजपेयी	44–46	जनवरी1912
143. क्या पुनर्जन्म सम्भव है?	रामनारायण शर्मा	46–48	जनवरी 1912
144. ज्योतिर्विद्या	रामावतार शर्मा	79–85	फरवरी 1912
145. मारकोनी का माहात्म्य	जगन्नाथ खन्ना	104–107	फरवरी 1912
146. जरमनी में सुनारी का काम	गुरदयाल सिंह	107–111	फरवरी 1912
147. व्योम–यानों से गोलों की वर्षा	–	114–116	फरवरी1912
148. विश्व–विज्ञान	भगवानदत्त रूपलाल	187–189	अप्रैल 1912
149. जनसंख्या की निःसीम वृद्धि से	–	–	
हानियाँ और उनसे बचने के उपाय	जर्नादन भट्ट	283–286	मई 1912
150. मनुष्य क्या चीज है?	रामनारायण शर्मा	301–304	जून 1912
151. भूगर्भ विद्या	रामावतार शर्मा	19–26	जनवरी 1913
152. सरआइजक न्यूटन	सरयू नारायण त्रिपाठी	99–105	फरवरी 1913
153. भूगर्भ विद्या	रामावतार शर्मा	111–114	फरवरी 1913
154. प्रकृति के अद्भुत रहस्य	रामनारायण शर्मा	117–119	फरवरी1913
155. पशुओं में बोलने की शक्ति	–	159–161	मार्च 1913
156. वनस्पति–शास्त्र	नारायण प्रसाद अरोड़ा	196–198	अप्रैल1913
157. पनामा की नहर	बदरीनाथ	284–288	मई 1913
158. परमाणुवाद	गोपाल स्वरूप भार्गव	391–395	जुलाई 1913
159. सांप काटे का इलाज	रामनारायण शर्मा	408–410	जुलाई 1913
160. भास्कराचार्य	गिरिजा प्रसाद द्विवेदी	431–437	अगस्त 1913
161. कपास	मन्नन द्विवेदी गजपुरी	605–607	नवम्बर 1913
162. वनस्पति विचार	नन्द किशोर	629–633	नवम्बर 1913

163. भावी हवाई युद्ध	आदित्यनारायण सिंह शर्मा	634–637	नवम्बर 1913
164. जगत् में विज्ञान का विकास	रामावतार शर्मा	11–13	जनवरी 1914
165. क्षयी रोग का कारण और उसका इलाज	बालकृष्ण शर्मा	155–158	मार्च 1914
166. मांस खाने वाले पौधे	कर्म्मनारायण	214–218	अप्रैल 1914
167. उद्योग–धन्धे की शिक्षा की जरूरत	विष्णुदास कोछड़	242–249	मई 1914
168. स्तनपायी पशुओं में मनुष्य की सर्वश्रेष्ठता	रामनारायण शर्मा	257–261	मई 1914
169. एक्स –किरण	विनायक गणेश साठे	321–326	जून 1914
170. बेतार की तारबर्की	जगन्नाथ खन्ना	315–318	जून 1914
171. अमेरिका में कृषि–विषयक प्रयोगालय	पाण्डुरंग खानखोजे	357–359	जुलाई 1914
172. इन्द्रधनुष	गोमती प्रसाद अग्निहोत्री	367–370	जुलाई 1914
173. खुजली	मैथिलीशरण गुप्त	397	जुलाई 1914
174. कोयला	दुर्गाप्रसाद रघुनाथ प्रसाद खेवरिया	404–405	जुलाई 1914
175. आधुनिक तोपें	–	555–556	अक्तूबर 1914
176. हैड्रोजन के चमत्कार	रामदास गौड़	640–648	नवम्बर 1914
177. वृक्षों में जीव	प्रो. बालकृष्ण	682–684	दिसम्बर 1914
178. हमारे किसान और खेती की कलें	वीरसेन सिंह	703–706	दिसम्बर 1914
179. पदार्थ और शक्ति	पं. चन्द्रशेखर वाजपेयी	706–711	दिसम्बर 1914
180. जलांतक रोग	नन्द किशोर	89–92	फरवरी 1915
181. प्रकाश–तत्व	–	70–73	फरवरी 1915
182. कुछ आधुनिक आविष्कार	सम्पादक	149–152	मार्च 1915
183. वायुयान	उमराव सिंह विद्यार्थी	168–172	मार्च 1915
184. प्रकाश का वेग	मुनिलाल स्वामी	213–215	अप्रैल 1915
185. भास्कराचार्य और लीलावती	अम्बिका प्रसाद पाण्डेय	229–232	अप्रैल 1915
186. वायु	दुर्गाप्रसाद सिंह श्रीवास्तव	326–329	जून 1915
187. समुद्र के भीतर तार डालना	सम्पादक	363–366	जून 1915
188. मक्खियों से हानि	पद्मनाभ पाण्डेय	367–369	जून 1915
189. खेती की बुरी दशा	सम्पादक	8–12	जुलाई 1915
190. उद्योग–धन्धे की शिक्षा	कृष्णानन्द जोशी	27–29	जुलाई 1915
191. भारतीय किसानों के उद्धार का उपाय	ईश्वरदास मारवाड़ी	68–76	अगस्त 1915
192. सवितृ मण्डल	जयवन्तराम	136–140	सितम्बर 1915
193. भारतीय किसान	कृष्णानन्द जोशी	177–179	सितम्बर 1915
194. आकाश–गंगा	श्रीलाल शालग्राम पण्ड्या	199–202	अक्तूबर 1915
195. भोजन	हीरावल्लभ जोशी	279–285	नवम्बर 1915
196. कृत्रिम नेत्र	दयाशंकर झा	293–295	नवम्बर 1915
197. सोने के गुण	गंगाशंकर पंचौली	376–377	दिसम्बर 1915
198. हर्बर्ट स्पेन्सर की अज्ञेय – मीमांसा	– लाला कन्नोमल	– 2–10	जनवरी 1916
199. हर्बर्ट स्पेन्सर की अज्ञेय – मीमांसा	– लाला कन्नोमल	– 120–127	फरवरी 1916
200. हर्बर्ट स्पेन्सर की अज्ञेय – मीमांसा	– लाला कन्नोमल	– 170–179	मार्च 1916
201. विज्ञान की महत्ता	सम्पादक	195–198	मार्च 1916
202. शरीर की उष्णता	चन्द्रमौलि सुकुल	263–266	अप्रैल 1916

203.	हर्बर्ट स्पेन्सर की अज्ञेय	–	–	—
	– मीमांसा	लाला कन्नोमल	402–411	जून 1916
204.	मृत्यु का नया रूप	सम्पादक	413–415	जून 1916
205.	वृक्ष की आँखें	–	59–61	जुलाई 1916
206.	एरोप्लेन वायुयान	जगन्नाथ खन्ना	91–93	अगस्त 1916
207.	बेंजामिन फ्रैंकलिन	सिंह–वर्मा	106–109	अगस्त 1916
208.	पारस पत्थर	–	114–117	अगस्त 1916
209.	भाषा–विज्ञान	सुरेन्द्रनाथ सिंह	148–155	सितम्बर 1916
210.	सब–मेरीन	जगन्नाथ खन्ना	155–160	सितम्बर 1916
211.	चिउँटियाँ	लज्जाशंकर झा	177–179	सितम्बर 1916
212.	बिना तार का टेलीफोन	जगन्नाथ खन्ना	211–213	अक्तूबर 1916
213.	नक्षत्रों में भौतिक परिवर्तन	विष्णुनारायण सेन	292–295	नवम्बर 1916
214.	डेनमार्क के किसानों की सहकारिता	–	–	
	और उनका सम्मिलित व्यापार	चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी	355–367	दिसम्बर 1916
215.	सामुद्रिक 'माइन' अर्थात् सुरंग	निरंजनदास धीर	397–398	दिसम्बर 1916
216.	पशु–पक्षियों की स्मरण	पं. वनमाली प्रसाद	10–15	जनवरी 1917
		शक्ति शुक्ल		
217.	बिजली और रसायन की बदौलत धनोपार्जन	जगन्नाथ खन्ना	29–31	जनवरी 1917
218.	चार्ल्स डारविन	श्याम सुन्दर जोशी	113–116	मार्च 1917
219.	श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना सेंट	निहाल सिंह	134–135	मार्च 1917
220.	ग्रामोफोन	जगन्नाथ खन्ना	147–151	मार्च 1917
221.	पृथ्वी की उत्पत्ति	जगन्नाथ खन्ना	238–242	मई 1917
222.	साकची में लोहे का कारखाना	जोखू पाण्डेय	246–52	मई 1917
223.	जीवन क्या है?	–	252–256	मई 1917
224.	प्राचीन ;षियों का वैज्ञानिक अनुभव	कोसलेन्द्रप्रताप साही	272–277	मई 1917
225.	किसानों की शिक्षा	माधवराव सप्रे	320–322	जून 1917
226.	प्राणि–शास्त्र	जगन्नाथ खन्ना	39–42	जुलाई 1917
227.	सूर्य्य	शारदा प्रसाद	68–70	अगस्त 1917
228.	कपड़ों के कीड़े	श्रीचरण वर्मा	84–86	अगस्त 1917
229.	गणित ज्योतिःशास्त्र	जगन्नाथ खन्ना	87–91	अगस्त 1917
230.	केंचुये की राम कहानी	कर्म नारायण	120–21	सितम्बर 1917
231.	वैज्ञानिक तौल और परीक्षा	चन्द्रमौलि सुकुल	177–180	अक्तूबर 1917
232.	पदार्थ कैसे बने?	जगन्नाथ खन्ना	201–205	अक्तूबर 1917
233.	भारत की खानें	ईश्वर दास जालान	231–37	नवम्बर 1917
234.	विज्ञानचार्य वसु का विज्ञान–मन्दिर	–	6–8	जनवरी 1918
235.	साकची में लोहे का कारखाना	जोखू पाण्डेय	88–96	फरवरी 1918
236.	विज्ञान की उपयोगिता	जगन्नाथ खन्ना	95–97	फरवरी 1918
237.	स्वास्थ्य मंत्र	गोपाल दामोदर तामसकर	122–125	मार्च 1918
238.	भूचाल	जगन्नाथ खन्ना	262–265	मई 1918
239.	मनुष्येत्तर प्राणियों की लीला	जगन्नाथ खन्ना	297–303	जून 1918
240.	विज्ञान का अध्ययन	दिनेश प्रसाद वर्मा और	–	
		नन्द कुमार सिंह	311–317	जून 1918
241.	पत्थर और लकड़ी के कीड़े	श्रीचरण वर्मा	22–25	जुलाई 1918

242. मक्खन	अनु. गुलजारी लाल चतुर्वेदी	76–78	अगस्त 1918
243. सफलता रहस्य	एल. सी. बर्म्मन	135–38	सितम्बर 1918
244. विज्ञान की उपयोगिता	जगन्नाथ खन्ना	95	अगस्त 1918
245. सफलता का रहस्य	एल. सी. बर्म्मन	135–138	सितम्बर 1918
246. मिट्टी का तेल हर	नारायण बाथम	314–317	दिसम्बर 1918
247. जीव क्या वस्तु है?	–	317–319	दिसम्बर 1918
248. मक्खियां	लज्जाशंकर झा	319–322	दिसम्बर 1918
249. विस्फोटक या शीतला रोग	प्रसादी लाल झा	24–30	जनवरी 1919
250. गणित से लाभ	गोपालदास झालानी	258–261	मई 1919
251. पृथ्वी और उसके खनिज पदार्थ	कृष्ण कुमार माथुर	314–324	जून 1919
252. राशि–चक्र	कन्नोमल	231–235	मई 1919
253. क्षयरोग की प्राचीन और अर्वाचीन चिकित्सा	सन्त निहल सिंह	153–162	सितम्बर 1919
254. प्लेटो	ब्रजमोहन लाल वर्मा	260	नवम्बर 1919
255. सांपों का स्वभाव	छबील दास सामन्त	185	नवम्बर 1919
256. रेल में बिजली	जगन्नाथ खन्ना	263–266	नवम्बर 1919
257. महाकर्षण	–	188–191	अक्तूबर 1919
258. वृक्षधर प्राणी	वनमाली प्रसाद शुक्ल	236–240	अक्तूबर 1919
259. पत्थर का कोयला	रामरक्षपाल संघी	42–44	जनवरी 1920
260. बिजली क्या है ?	जगन्नाथ खन्ना	86–90	फरवरी 1920
261. खेतों का संगठन और एकीकरण	चम्पाराम मिश्र	158–161	मार्च 1920
262. अनाज की कमी दूर कैसे हो ?	दयाशंकर दुबे	196–199	अप्रैल 1920
263. शक्ति उत्पन्न करने वाली बिजली	जगन्नाथ खन्ना	216–219	अप्रैल 1920
264. पृथ्वी का पुत्र	वनमाली प्रसाद शुक्ल	327–31	जून 1920
265. संस्कृत भाषा में रेखागणित	केदारनाथ	77–80	अगस्त 1920
266. परमाणु की शक्ति	–	88–91	अगस्त 1920
267. वायुमापक यन्त्र	अम्बिका प्रसाद पाण्डेय	223–25	अप्रैल 1920
268. बिजली की ट्राम और रेलगाड़ी	जगन्नाथ खन्ना	190–93	अक्तूबर 1920
269. जीवन और जीवनी शक्ति	रघुवर दयाल गुप्त	199–204	अक्तूबर 1920
270. लुई पास्टुर	सम्पादक	309–313	दिसम्बर1920
271. विषधर सर्प	सम्पाक	255–258	नवम्बर 1920
272. हेनरी फेवर	वनमाली प्रसाद शुक्ल	246–250	नवम्बर 1920
273. पृथ्वी की दैनिक गति और	गोपाल दामोदर तामसकर		
समय–सम्बन्धी चमत्कार	–	284–289	दिसम्बर 1920
274. मकड़ी	वनमाली प्रसाद शुक्ल	296–299	दिसम्बर 1920
275. भंग	कृष्णराम झा	261–264	नवम्बर 1920
276. विमानों का भविष्य	बालकृष्ण	129–132	सितम्बर 1920
277. प्रो. त्रिभुवनदास गज्जर	विनायक न. मेहता	232–234	नवम्बर 1920
278. मेघदूत में विज्ञान	रामदहिन मिश्र	93–96	अगस्त 1920
279. जीवाणु	आनन्दधर दीवान	34–38	जुलाई 1921
280. मोती	पारसनाथ सिंह	115–120	अगस्त 1921
281. रेडियोएक्टिविटी या तेजोनिर्गमन	–	176–180	सितम्बर 1921
282. जीवनी शक्ति	रघुवर दयाल गुप्त	265–269	नवम्बर 1921
283. ऋतु–परिवर्तन	गोपाल दामोदर तामसकर	282–290	नवम्बर 1921

284. मछलियों की प्रकृति और उनके	–	–	
गुणों के विषय में कुछ बातें	नवल किशोर सिंह	297–301	नवम्बर 1921
285. हीरा	रामेश्वर प्रसाद गुप्त	173–140	फरवरी 1922
286. मधुमक्खियों का वीरोचित त्याग	वनमाली प्रसाद शुक्ल	240–248	अप्रैल 1922
287. प्राणियों के बुद्धि–बल का परिचय	विद्याधर पाण्डेय	261–264	अप्रैल 1922
288. फोर्ड साहब का जीवन–वृत्तान्त	एस. बहादुर	369–378	जून 1922
289. एक वैज्ञानिक का दुष्कर कार्य	वनमाली प्रसाद शुक्ल	382–386	जून 1922
290. अमरीका में शहद की मक्खियां	गंगा प्रसाद	387–390	जून 1922
291. कृषि विषयक सरकारी रिपोर्टें	सहदेव सिंह वर्मा	5–11	जुलाई 1922
292. जल शक्ति द्वारा बिजली	जगन्नाथ खन्ना	18–22	जुलाई
293. विज्ञान का चमत्कार	लक्ष्मीकांत केसरी	211–218	अक्तूबर 1922
294. विज्ञान की उन्नति	दीनदयालु श्रीवास्तव	283–294	नवम्बर 1922
295. आधुनिक विज्ञान	गोपाल स्वरूप भार्गव	90–93	जनवरी 1923
296. बिजली का घर	लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव	226–228	फरवरी 1923
297. विज्ञान की उपयोगिता	रामदीन पाठक	382–390	अप्रैल 1923
298. वैज्ञानिक की निस्पृहता	गोपाल स्वरूप भार्गव	569–573	जून1923
299. विश्व का एक दृश्य	ए. सी. बनर्जी	322–326	मार्च 1923
300. धातु की उत्पत्ति और कला की समृद्धि	लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव	420–428	अप्रैल 1923
301. सोमरस	श्रीकण्ठ पाठक	487–490	मई 1923
302. मत्स्य नारी	सुशील कुमार	645–648	जून 1923
303. देशी ओषधियों की परीक्षा और निर्माण	महावीर प्रसाद द्विवेदी	4–9	जुलाई 1923
304. कपास की कृषि और किस्में	रामस्वरूप गुप्त	22–28	जुलाई 1923
305. बिजली की रोशनी	जगन्नाथ खन्ना	32–36	जुलाई 1923
306. समय	गोरख प्रसाद	147–153	अगस्त 1923
307. छाया–चित्रण	सिद्धहस्त	249–254	सितम्बर 1923
308. एक अद्भुत जीव	शिवगोपाल मिश्र – सं.	329–333	अक्तूबर 1923
309. वातावरण	शंकरराव जोशी	462–471	नवम्बर 1923
310. जीवों का विवर्तन	नलिनी मोहन सान्याल	18–22	जनवरी 1924
311. कपास	वनमाली प्रसाद शुक्ल	657–667	जून 1924
312. पशु–संसार में पारस्परिक सहायता	रघुपति सहाय	1218–25	नवम्बर 1924
313. गैसों के द्वारा विद्युत्प्रवाह	सन्तराम	540–557	मई 1925
314. चिकित्सा	दीनानाथ	288–298	सितम्बर 1925
315. परमाणुवाद	शम्भुनाथ त्रिपाठी	562–566	दिसम्बर 1925
316. पाण्डुरंग सदाशिव खान खोजे एम. एस. मल्हार एन. काले 1242–48			नवम्बर 1927
317. क्या मधुमक्खी बातचीत कर सकती है ?	प्रमथनाथ दत्त	289–294	मार्च 1928
318. सम्मोहन–विज्ञान	श्रीयुत प्रकाश	71–80	जनवरी 1928
319. रेशम	वनमाली प्रसाद शुक्ल	433–438	अक्तूबर 1928
320. मरण–काल	रामदास गौड़	438–444	अक्तूबर 1928
321. एक्स–रे	केशवदेव	623–625	दिसम्बर 1929
322. हमारा भोजन	हीरा लाल दुबे	603–608	मई 1931
323. सर चन्द्रशेखर वेंकटरमन	हीरा लाल दुबे	2–8	जनवरी 1931
324. सर गंगा राम का कृषि–फार्म	धर्मवीर	130–139	जनवरी 1931
325. कीड़े–मकोड़ों की विचार–शक्ति	वनमाली प्रसाद शुक्ल	307–310	दिसम्बर 1931
326. क्या विज्ञान मृतकों में जान फूंक सकता है?	के. एन. गाडगील	357–361	अप्रैल 1935

327. जंगली जन्तुओं की रक्षा	मुकन्दी लाल	99–106	जनवरी 1935
328. भारतीय ग्रामों में स्वास्थ्य और सफाई	शंकर सहाय सक्सेना	137–141	अगत्र 1936
329. सोयाबीन	वनमाली प्रसाद शुक्ल	462–465	नवम्बर 1936
330. शक्ति की कुंजी हवाई शक्ति	विद्यालंकार अवनीन्द्र कुमार	567–574	दिसम्बर 1936
331. जापान में मोतियों की खेती	नलिनी सेन	362–364	अप्रैल 1937
332. विज्ञानशाला में	ब्रजमोहन गुप्त	377–380	अप्रैल 1937
333. हमें कितने घंटे सोना चाहिए	गंगा प्रसाद गौड़ 'नाहर'	70	जून 1937
334. इटली का महान आविष्कारक मारकोनी	राजराजेश्वरनाथ	211–214	सितम्बर 1937
335. ग्राम–सुधार और इलेक्ट्रोकल्चर	हरिहर प्रसाद मिश्र	237–241	सितम्बर 1937
336. मलेरिया से मुक्ति की एक महौषधि	दयावान सिंह 'चन्द्र'	295–296	सितम्बर 1937
337. मृत्यु का रहस्य	केशवदेव शर्मा	341–345	अक्तूबर 1937
338. क्या खायं और कैसे?	विष्णुदत्त मिश्र 'तरंगी'	361–365	अक्तूबर 1937
339. श्रेष्ठ वैज्ञानिक लार्ड रदरफोर्ड	आत्मानन्द मिश्र	367–368	अप्रैल 1938
340. विद्युत–नेत्र	जगन्नाथ खन्ना	370–371	अप्रैल 1928
341. सन्ध्रुब मालेक्यूल	जगद्विहारी सेठ	466–475	मई 1938
342. सन्त निहाल सिंह	मोहन लाल महतो	538–549	जून 1939
343. शहद और मोम का धंधा	शिरोमणि सिंह चौहान	27–35	जुलाई 1939

माधुरी

1. पतंगों के रंग–ढंग	कर्मनारायण बाहल
2. विज्ञान–वाटिका (क्रमशः)	रमेश प्रसाद
3. जीवाणु	त्रिलोकी नाथ वर्मा
4. व्योम यान	श्यामाचरण
5. इमली और उसकी उपयोगिता	हरनारायण बाथम
6. जीव की नित्यता	नलिनी मोहन सान्याल
7. विकास	वादगोवर्द्धन लाल
8. औद्भिज–विकास	गोवर्द्धन लाल
9. प्राणियों में वीर्य–संयोग, संतान उत्पादन और लिंग भेद के कारण	नवल किशोर सिंह
10. विश्व की उत्पत्ति अर्थात् सृष्टि रचना वाद	जगद्विहारी सेठ
11. बायसकोप के गुप्त रहस्य	योगेन्द्रनाथ
12. रसायन–शास्त्र और रंग	हरनारायण बाथम
13. सौर जगत् की उत्पत्ति	जगद्विहारी सेठ
14. दूरदर्शन अथवा टेलीवीजन	श्यामनारायण कपूर
15. आलोकमय जीव	रामेश्वर प्रसाद गुप्त
16. डॉक्टर चंद्रशेखर वेंकट रमन	एफ. आर. एस.
17. मलेरिया	नवल विहारी मिश्र
18. विद्युत की चालक शक्ति	जगद्विहारी सेठ
19. प्रयाग वि.वि. का रसायन विभाग	सत्यप्रकाश
20. प्रेत बाधा का निदान और चिकित्सा	रामदास गौड़
21. विध्वंश होगा ?	नाथूराम शुक्ल
22. रेडियम	दशरथलाल श्रीवास्तव और अवध बिहारी लाल
22. बिजली (कविता)	गुलाब

23.	विज्ञान की प्रगति में बाधाएं	संतराम
24.	मधु मक्खियों का राजा	श्रीराम शर्मा
25.	गंध विज्ञान	महेशचरण सिंह
25.	हिन्दी में वैद्यक–शास्त्र	वैद्य गोपीनाथ
26.	मुद्रण यंत्र का आविष्कार और विकास	अवधेशपति वर्मा
27.	पृथ्वी पर का अमृत दूध	संतराम
28.	ज्ञान का रखवाला कागज	हरनारायण बाथम
29.	लेफ्टिनेंट गुलर के आरोग्यता संबंधी विचार	भूपनारायण दीक्षित
30.	आधुनिक अपराध–विज्ञान	रमाशंकर मिश्र
31.	जीवन की उत्पत्ति	गोवर्द्धन लाल
32.	नृ–विज्ञान	नलिनी मोहन सान्याल
33.	दक्षिणी ध्रुव का एक विचित्र पक्षी	भूपनारायण दीक्षित
34.	मुख्य–मुख्य रत्न	शिवमंगल पाण्डेय, निरंजन लाल शर्मा
35.	सापेक्ष्यवाद	अवध उपाध्याय
36.	रेडियम	दशरथ लाल, अवध बिहारी लाल
37.	वनस्पति निरीक्षण	चन्द्रमौलि सुकुल
38.	सजीव विकास	गोवर्द्धन लाल
39.	सूक्ष्म जन्तुओं का मनुष्य जाति से संबद्ध	नारायण दुलीचंद व्यास
40.	होम्योपैथी	चंद्रमौलि सुकुल
41.	आयुर्वेद–महत्व	शालग्राम शास्त्री
42.	चेतना का स्थान हृदय है, मस्तिष्क नहीं	मधूसूदन दीक्षित वैद्य
43.	दूध और उसके मुख्य अंश	हरनारायण बाथम, श्रीपाल सिंह
44.	बायोकेमिस्ट्री	चन्द्रमौलि सुकुल
45.	मनुष्यभक्षी मनुष्य	श्रीराम शर्मा
46.	क्या पौदे भी मांस खाते हैं ?	कमलादत्त त्रिपाठी
47.	जीवाणुवाद	मिश्रबंधु
48.	वर्षा तथा कृषि	हरनारायण बाथम और श्रीपाल सिंह
49.	विज्ञान की प्रगति में बाधाएं	सन्तराम
50.	स्मृति और उसके नियम	बाण

सुधा

1.	जयपुर का ज्योतिषालय	श्यामाचरण	127–37	मार्च 1928
2.	बाल्य विज्ञान	बाण	298–305	अप्रैल 1928
3.	पं. लज्जाशंकर झा	रघुवर प्रसाद द्विवेदी	397–401	मई 1928
4.	स्पर्श–मणि या पारस पत्थर	रमेश प्रसाद	477–86	जून 1928
5.	कविता और विज्ञान	हरिवंश जी	547–556	जून 1929
6.	संसार का सबसे मूल्यवान पक्षी	श्रीराम शर्मा	235–39	अप्रैल 1929
7.	प्राचीन भारतीय गणित विद्या	शिवदत्त ज्ञानी	227–34	अप्रैल 1929
8.	जानवरों के मकानात	हनुमान प्रसाद शर्मा	651–56	जनवरी 1930

9. तत्वों की खोज	सत्य प्रकाश	318–20	अक्तूबर 1929
10. फोटोग्राफी	आर. चरण	265–73	अक्तूबर 1929
11. शिशु–पालन	त्रिपुरारिशरण श्रीवास्तव	88–90	फरवरी 1930
12. क्षय रोगी की व्यवस्था	वैद्यराज	681–86	जुलाई 1930
13. प्राण–चिकित्सा	डॉ. दुर्गाशंकर नागर	238–42	सितम्बर 1930
14. क्या भारतवर्ष में क्षय रोग बढ़ रहा है?	शंकर लाल गुप्त	313–17	अक्तूबर 1930
15. प्रसूति–तंत्र अर्थात् जच्चा–बच्चा	डॉ. रामदयाल कपूर	338–43	अक्तूबर 1930
16. प्राण–चिकित्सा	डॉ. दुर्गाशंकर नागर	354–56	दिसम्बर 1930
17. प्रसूति–तंत्र अर्थात् जच्चा–बच्चा	डॉ. राम दयाल कपूर	635–41	दिसम्बर 1930
18. प्राण–चिकित्सा	डॉ. दुर्गाशंकर नागर	671–75	जून 1930
19. ग्रहण	महावीर प्रसाद श्रीवास्तव	583–89	जून 1931
20. भविष्य का महामनुष्य	सूर्यनारायण व्यास	673–76	जुलाई 1931
21. दूध	चतुरसेन जी शास्त्री	229	जुलाई 1931
22. प्राण–विद्या–विशारद	डॉ. दुर्गाशंकर नागर	516–21	जुलाई 1931
23. भोजन के सम्बन्ध में	राजेश्वर प्रसाद	488–93	नवम्बर 1931
	नारायण सिंह		–
24. विज्ञान	नाथूराम शुक्ल और	113–19	अगस्त 1931
	रमेश प्रसाद		–
25. वैज्ञानिक युग का धर्म	रमाशंकर जी मिश्र	733	अगस्त 1931
26. सिंकोना की खेती और कुनीन	सत्य प्रकाश व	335–40	अक्तूबर 1931
	हरप्रकाश कुमार वर्मा		–
27. अलौकिक शक्ति	दुर्गाशंकर नागर	1932	फरवरी 65–68
28. तपेदिक	चतुरसेन जी शास्त्री	165–73	मार्च 1932
29. गो दुग्ध–महत्व	केदार	306	मार्च 1932
30. पदार्थ के तीन रूप	कृष्णानंद गुप्त	221	मार्च 1932
31. भोजन के विषय में आयुर्वेद और एलोपेथी	चंद्रमौलि सुकुल	22–26	फरवरी 1935
32. चार्ल्स एम. स्क्वाब	गुरुनाथ शर्मा	662–66	फरवरी 1935
33. परलोक	रामदास गौड़	43	अगस्त 1927
34. आयुर्वेद	चन्द्रमौलि सुकुल	294	अक्टूबर 1927
35. रजत (चांदी)	प्रताप सिंह	307	अक्टूबर 1927
36. कपड़े की बनावट	मोहन लाल बड़जात्या	368	नवम्बर 1927
37. प्रो. खानखोजे	आनंदराव जोशी	519	दिसम्बर 1927
38. भू–डोल का वैज्ञानिक सिद्धांत	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	–	सितम्बर 1930
39. विज्ञान और वैज्ञानिक पत्र–कला	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	–	दिसम्बर 1932
40. वैज्ञानिक और धर्म	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	–	जनवरी 1933
41. शुद्ध तथा उत्तम दूध की आवश्यकता और	एम. पी. केदार	359	नवम्बर 1937
प्राप्ति के साधन	–	–	–
42. नेत्र और सूर्योपासना	डॉ. आर.एस. अग्रवाल	533	जनवरी 1938
43. नेत्रों की मानसिक सौर चिकित्सा	डॉ. आर.एस. अग्रवाल	48	फरवरी 1939
44. योग और स्वास्थ्य	गणेशदत्त 'इंद्र' आगर	271	अक्टू. 1939
45. प्रकृति के अनुगामी बनें	मंगलदेव शर्मा	529	जनवरी 1940
46. मलेन्द्रिय और उसकी रक्षा	बुद्धिसागर वर्मा	133	सितम्बर 1939
47. रोग क्यों होते हैं ?	राजवैद्य पं. रवीन्द्र	55	फरवरी 1940
	शास्त्री "कविभूषण"	–	–

47. पार्थिव कामधेनु	कृष्णदेव शर्मा	458	दिसम्बर 1939
48. दूध और स्वास्थ्य	एम. पी. केदार	150	मार्च 1940
49. तत्ववेत्ता महापुरुष वैलेस	मंगलदेव शर्मा	425	जून 1940
50. मानसिक शक्ति और उसके विकास का उपाय	पं. गया प्रसाद शास्त्री	586	दिसम्बर 1940
51. स्वर्गीय प्रोफेसर महेश चरण सिन्हा	वसंतलाल	497	नवम्बर 1940
52. प्रो. भोलानाथ सिंह, डी. एस–सी.	चक्रधर 'हंस' नौटियाल	147	मार्च 1941
53. वैदिक रहस्य–विज्ञान का एक दृष्टिकोण	सूर्य नारायण व्यास	403	जून 1941
54. स्वस्थ रहने के 10 नियम	केदार नाथ गुप्त	519	जुलाई 1941

विशाल भारत

1. प्रो. पांडुरंग सदाशिव खानखोजे	आनन्द राव जोशी	147	जनवरी 1930
2. क्षय–कीटाणु	डॉ. शंकर लाल गुप्त	601	मई 1930
3. टामस	ए. एडिसन	659	मई 1930
4. शरीर पर क्षय–कीटाणुओं का प्रभाव	डॉ. शंकर लाल गुप्त	777	जून 1930
5. क्षयोपचार में जलवायु का स्थान	डॉ. शंकर लाल गुप्त	169	अगस्त 1930
6. क्षय रोगी के भोजन का प्रबन्ध	डॉ. शंकर लाल गुप्त	289	सितम्बर 1930
7. क्षय रोग का स्वास्थ्यशाला द्वारा इलाज	डॉ. शंकर लाल गुप्त	425	अक्टू. 1930
8. रूस के किसान	जगन्नाथ प्रसाद मिश्र	473	अक्टू 1930
9. ग्राम्य सुधार और ग्रामीण धन्धे	शंकर सहाय सक्सेना	509	अक्टू. 1930
10. संसार के भावी नागरिक	ब्रजमोहन वर्मा	161	अगस्त 1930
11. क्षय रोग की उत्पत्ति	डॉ. शंकर लाल गुप्त	257	फरवरी 1931
12. क्षय रोग की उत्पत्ति	डा. शंकर लाल गुप्त	332	मार्च 1931
13. क्षय रोग का प्रसार	डॉ. शंकर लाल गुप्त	151	अगस्त 1931
14. अमेरिका में आइन्स्टाइन	डॉ. सुधीन्द्र बोस	178	अगस्त 1931
15. भारतवर्ष में अन्धता और उसका निवारण	–	396	अक्तूबर 1931
16. कृषि की दशा	शिव कुमार शर्मा	697	दिसम्बर 1931
17. भोजन	निरंजन	321	मार्च 1932
18. भारतवर्ष से सिंह क्यों मिट गया	–	536	नवम्बर 1932
19. मटर	श्रीराम शर्मा	274	सितम्बर 1932
20. पंजाब का सर्वप्रथम वैज्ञानिक	सद्गोपाल	291	सितम्बर 1932
21. भारतीय एडीसन – डॉ. शंकर ए. बिसे	श्यामनारायण कपूर	237	फरवरी 1933
22. भारत में फल का उद्योग	कालिका प्रसाद मोलि	588	मई 1933
23. विज्ञान की बलिवेदी पर	श्यामनारायण कपूर	25	जुलाई 1933
24. स्वप्न का स्वरूप	राजाराम	33	जुलाई 1933
25. ईख की खेती और मिल–मालिक	पीर मुहम्मद यूनिस	725	दिसम्बर 1933
26. देवनागरी लाइनोटाइप और उसका आविष्कारक	ब्रजमोहन वर्मा	739	दिसम्बर 1933
27. भारतीय युवकों की स्वास्थ्य–समस्या	रविप्रताप सिंह श्रीनेत	518	नवम्बर 1934
28. विटैमिन	सच्चिदानन्द	353	मार्च 1933
29. भारतवर्ष में होमियोपैथी	छगनलाल मेहता	498	अप्रैल 1933
30. चल–चित्र का जन्म और विकास	श्यामलाल कुटरियार	365	अक्तूबर 1935
31. गुलाब की जातियां	कन्हाई लाल साहा	552	मई 1935
32. गोबर का स्वास्थ्य पर प्रभाव	डॉ. रवि प्रताप सिंह श्रीनेत	646	जून 1935
33. भारत के गोवंश	कुंवर सुरेन्द्र सिंह 'इन्द्र'	685	जून 1935

34. तन्दुरुस्ती हजार न्यामत है	–	695	जून 1935
35. ग्रामीण उद्योग धन्धे	रामजीवन शर्मा	704	जून 1935
36. मनुष्य की उत्पत्ति	कृष्णमोहन विद्यालंकार	167	अगस्त 1935
37. कूंची और स्याही	धर्मवीर	261	सितम्बर 1935
38. स्वास्थ्य और व्यायाम	महामाया प्रसाद सिंह	273	सितम्बर 1935
39. सूर्य और स्वास्थ्य	हरिहर प्रसाद गुप्त	292	सितम्बर 1935
40. अलर्क या जलातंक रोग	शंकरलाल गुप्त	315	सितम्बर 1935
41. दूध और मानव सभ्यता का विकास	श्री केदार	504	नवम्बर 1935
42. हमारे पशुओं का चारा	सुरेन्द्र सिंह	650	दिसम्बर 1935
43. आयुर्वेद का पुनरुद्धार	ब्रजमोहन वर्मा	49	जनवरी 1936
44. गुपला	श्रीराम शर्मा	62	जनवरी 1936
45. हमारे पशुओं की दशा	कुंवर सुरेन्द्र सिंह 'इन्द्र'	611	मई 1936
46. फलों का विश्वकर्मा मिचूरिन	–	7	जुलाई 1936
47. डॉ. रोलिया और उनकी धूपशाला	एस. एन. सिंह	28	जुलाई 1936
48. परवल	श्रीराम शर्मा	454	अक्तूबर 1936
49. पेसुरुआन का विश्वविदित विज्ञान–मंदिर	अमृतलाल नायक	456	अक्तूबर 1936
50. धर्म के रास्ते में विज्ञान	भगवती प्रसाद श्रीवास्तव	483	अक्तूबर 1936
51. होमियोपैथी और भारत	डॉ. कृष्णगोपाल सक्सेना	19	जनवरी 1937
52. कोयले की खानों मे आग	गंगासागर मिश्र	157	फरवरी 1937
53. दूध देने वाली गायों	कुंवर सुरेन्द्र सिंह 'इन्द्र'	282	मार्च 1937
54. डॉ. नेहरू और उनका चमत्कारिक इलेक्ट्रोकल्चर	हरिहर प्रसाद मिश्र	504	मई 1937
55. हमारे नगर में दूध की समस्या	एम. पी. केदार	682	जून 1937
56. इलेक्ट्रोकल्चर और उसके जन्मदाता डॉ. नेहरू	हरिहर प्रसाद मिश्र	695	दिसम्बर 1937
57. हिन्दी में औद्योगिक और वैज्ञानिक साहित्य की कमी	रामनारायण कपूर	679	दिसम्बर 1937
58. स्व. ब्रजमोहन वर्मा	उपेन्द्रनाथ 'अश्क'	424	अप्रैल 1938
59. हमारे कोयले की समस्या	राम सेवक सहगल तथा गंगा सागर मिश्र	456	अप्रैल 1938
60. द्वन्द्ववृत्ति और फ्रायड	प्राण जीवन पाठक	489	मई 1938
61. भारतीय उद्योग धन्धों	अमरनारायण अग्रवाल	61	जुलाई 1938
62. क्षय–निवारण के साधन का संरक्षण	इ. कौ.	273	सितम्बर 1938
63. सौ टाइप का मुद्रण–यंत्र	करणसिंह गो. चुगसमा	268	सितम्बर 1938
64. शिशु की मेधा–शक्ति	कु. इन्द्रमोहिनी सिंह	628	दिसम्बर 1938
65. बीसवीं शताब्दी का भौतिक विज्ञान	ज्योति रंजन शास्त्री	17	जुलाई 1941
66. हमारी गायें	श्रीराम शर्मा	78	जुलाई 1941
67. मांस–भक्षी पौधे	हिम्मत सिंह नवलखा	82	जुलाई 1941
68. प्राचीन कवि और चिड़ियां	कुंवर सुरेश सिंह	109	अगस्त 1941
69. कोयला	हरेशचन्द्र अग्रवाल	143	अगस्त 1941
70. क्षीण होता सूर्य	शिवचन्द्र	177	अगस्त 1941
71. चारे के दुर्भिक्ष का एक उपाय	श्रीराम शर्मा	252	सितम्बर 1940
72. हमारी गायें	श्रीराम शर्मा	346	अक्तूबर 1941
73. अजगर आयुर्वेदालंकार	रामेश बेदी	395	अक्टूबर 1941

74. मेदीनापोली सेनेटोरियम	सोहन लाल पचीसिया	467	नवम्बर 1941
75. शुद्ध वायु आयुर्वेदालंकार	वैद्य राजितराय	503	नवम्बर 1941
76. बुलबुल	कुंवर सुरेश सिंह	554	दिसम्बर 1941
77. विज्ञान आशीर्वाद या अभिशाप	जगन्नाथ प्रसाद मिश्र	564	दिसम्बर 1941
78. हमारी ज्योतिष–समस्या	हजारी प्रसाद द्विवेदी	77	जनवरी 1939
79. भारतीय पशु–समस्या	ब्रह्मदत्त	115	जनवरी 1939
80. चूहों की समस्या	श्रीराम शर्मा	227	मार्च 1939
81. रोग की मूल खांसी	श्रीकेवल	475	मई 1939
82. फल और शाक–संरक्षण	कमला सद्गोपाल	531	जून 1939
83. प्राण–शक्ति और उसका विकास	श्री ईर्षण	626	दिसम्बर 1939
84. दीर्घ जीवन की कुंजी	सर हर्बर्ट बार्कर	105	अगस्त 1940
85. रेडियम	केदार नाथ चट्टोपाध्याय	526	दिसम्बर 1940
86. तपस्विनी मेडम क्यूरी	बनारसीदास चतुर्वेदी	15	जनवरी 1940
87. स्वर्ण–सन्धान	केदारनाथ चट्टोपाध्याय	119	फरवरी 1940
88. पृथिवी का जन्म	राजकिशोर सिंह	511	मई 1940
89. रबड़ कहां से आता है	मूर्तिवासन	6	जुलाई 1940
90. हड्डी की खाद का उपयोग कैसे हो ?	निरंजन	81	जुलाई 1940
91. वयस्कों का भोजन	ब्रजेन गांगुली	492	नवम्बर 1940
92. शिशुओं का खाद्य एवं पुष्टि–साधन	डॉ. अमरनाथ शुक्ल	105	जनवरी 1941
93. बतखें	कुंवर सुरेश सिंह	128	जनवरी 1941
94. चारे में विटामिन 'ए' की कमी	श्रीराम शर्मा	188	फरवरी 1941
95. इतना तो खाइये	महेश चन्द्र अग्रवाल	212	फरवरी 1941
96. गाय बनाम भैंस	श्रीराम शर्मा	263	मार्च 1941
97. दूध दूहना	कुंवर सुरेन्द्र सिंह	303	मार्च 1941
98. शरीर की ऊंचाई और ठिंगनापन	रणजितराय आयुर्वेदालंकार	306	मार्च 1941
99. गाय का ही दूध क्यों पीना चाहिए?	श्रीराम शर्मा	336	मार्च 1942
100. स्वस्थ कौन है?	रणजितराय आयुर्वेदालंकार	507	मई 1941
101. सूर्य–कलंक	देवनाथ उपाध्याय	536	मई 1941
102. गाय की पहचान	श्रीराम शर्मा	369	अप्रैल 1941
103. केला	शंकरदेव विद्यालंकार	390	अप्रैल 1941
104. भोजन–सम्बन्धी दो भूलें	डॉ. सुरेन्द्र प्रसाद	717	जुलाई 1942
105. फॉसिल की खोज मे	विद्याभास्कर शुक्ल	160	अगस्त 1942
106. कैन्सर–रोग की अर्थनीति	प्रो. जे.बी.एस. हाल्डेन	399	नवम्बर 1942
107. रक्च चाप	विट्ठल दास मोदी	450	दिसम्बर 1942
108. युद्ध और भोजन की समस्या	–	484	दिसम्बर 1942
109. सृष्टि में भगवान की ज्यामिति	–	5	जनवरी 1943
110. किर्लोस्करवाड़ी	रामस्वरूप व्यास	57	जनवरी 1943
111. जीव–जन्तुओं के वैज्ञानिक नाम	कृष्णानंद गुप्त	103	फरवरी 1943
112. जीव–विज्ञान के कुछ शब्द	कुंवर सुरेश सिंह	105	फरवरी 1943
113. तितलियां	कुंवर सुरेश सिंह	265	अप्रैल 1943
114. जीव के विकास की कथा	कुंवर सुरेश सिंह	337	मई 1943
115. आचार्यवर गीडीज	बनारसीदास चतुर्वेदी	147	सितम्बर 1943
116. प्रो. सर पैट्रिक गीडीज	माधव विनायक किबे	260	अक्टूबर 1943

117. सांप	कुंवर सुरेश सिंह	367	दिसम्बर 1943
118. आल्डस हक्सले	जगन्नाथ प्रसाद मिश्र	97	अगस्त 1943
119. मछलियां	कुंवर सुरेश सिंह	27	जनवरी 1944
120. पक्षियों का देश–परिवर्तन	हरिश्चन्द्र निगम	238	नवम्बर 1944
121. मगर और घड़ियाल	कुंवर सुरेश सिंह	161	मार्च 1944
122. किसान और फसल–योजना	महेशचन्द्र अग्रवाल	172	मार्च 1944
123. अंजीर	रामेश बेदी	167	अप्रैल 1945
124. छिपकलियां	कुंवर सुरेश सिंह	271	जून 1945
125. विज्ञान की उन्नति	पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी	59	फरवरी 1945
126. पशु–रक्षा की समस्या	सेठ अचल सिंह	76	फरवरी 1945
127. आधुनिक शिक्षा और ज्योतिष	कु. सुप्ति सिंह	213	मई 1945
128. वर्ण शंकर पौधों में सोवियत अन्वेषण	प्रकाश सक्सेना	415	जून 1946
129. रत्नगर्भा बसुन्धरा	यशवन्त सिंह नेगी	196	मार्च 1946
130. लहसुन	रामेश वेदी	233	मार्च 1946
131. रंग–बिरंगी मछलियां	के. सी. जोशी	108	अगस्त 1946
132. भारतीय समाज में रक्त–वर्ग	श्यामाचरण दुबे	116	अगस्त 1946
133. राडार	नरेन्द्र	372	दिसम्बर 1946
134. विज्ञान और मृत्यु	आत्मानन्द	21	जुलाई 1947
135. विष और विषघ्न	रघुवीर शरण शर्मा	47	जुलाई 1947
136. आयुर्वेद और शराब	अशोक	113	फरवरी 1950
137. गांव के कूड़े करकट का उपयोग	सी. एन. आचार्य	135	फरवरी 1950
138. बछड़े पालने की एक विकसित विधि	सी. एच. पार	138	फरवरी 1950
139. जरायुज सर्प	डॉ. शंकर लाल गुप्त	188	मार्च 1950
140. मधुमक्खी पालन तथा खेती	अमीचन्द शर्मा	213	मार्च 1950
141. पशुओं में चीचड़ियों (किलौनियों) का रोग	बी. एन. सोनी	217	मार्च 1950
142. सिम्बल (सेंवल)	भानु देसाई	219	मार्च 1950
143. गेसोलीन एंजिन	विष्णुदेव पोद्दार	264	अप्रैल 1950
144. सिरस या शिरीष	भानु देसाई	283	अप्रैल 1950
145. केन्द्रीय गांव, भारत में पशु उन्नति की आधारशिला	–	317	अप्रैल 1950
146. दैनिक जीवन में रसायन	इन्द्रदेव आर्य	362	मई 1950
147. केला और आपका स्वास्थ्य	डॉ. रवि किशोर नशीने	440	जून 1950
48. पक्षियों का आवागमन	त्रिलोकचन्द्र मजूपुरिया	443	जून 1950
49. अस्थिर पृथ्वी के रहस्य	श्यामाचरण दुबे	65	जुलाई 1950
50. असाधारण तथा विनाशकारी कटन के कारण	डॉ. अजीज दूल्हा खां	177	सितम्बर 1950
51. परमाणु शक्ति के उपयोग	दुलह सिंह कोठारी	192	सितम्बर 1950
52. गन्ना कब और कैसे बोना चाहिए	श्याम चरण वर्मा	211	सितम्बर 1950
53. नकली घी और गांधीजी	किशोरी लाल मशरूवाला	215	सितम्बर 1950
54. उषःपान	कविराज ओउम प्रकाश	283	अक्तूबर 1950
55. गणित शास्त्र का उद्भव और विकास	–	300	अक्तूबर 1950
56. द्विपद नाम पद्वति	लोकेश चन्द्र	306	अक्तूबर 1950
57. स्वास्थ्य का शत्रुः दूषित दूध	जे. टी. सी. राबर्टसन	431	दिसम्बर 1950
58. यातायात में विज्ञान की प्रगति	दुलह सिंह कोठारी	437	दिसम्बर 1950

हिन्दुस्तानी

1.	खाद्य समस्या	फूलदेव सहाय वर्मा	18	1946
2.	चरक और सुश्रुत का काल	देव सहाय त्रिवेदी	237	1940
3.	ध्वनि विज्ञान में प्रयोग	बाबू राम सक्सेना	211	1931
4.	पारिभाषिक शब्द और शिक्षा का माध्यम	कालिदास कपूर	285	1938
5.	प्राचीन भारत में पुस्तकालय	श्यामनारायण कपूर	447	1936
6.	प्राचीन भारत में तौल	प्राणनाथ विद्यालंकार	421	1932
7.	प्राचीन भारत में माप	प्राणनाथ विद्यालंकार	187	1933
8.	प्राचीन भारत में वास्तु विद्या और मानसार शिल्प	सत्यजीवन वर्मा	131	1935
9.	भारतीय मुस्लिम वास्तु कला के आदर्श	बनारसी प्रसाद सक्सेना	405	1937
10.	भारतीय साहित्य के 100 वर्ष	अमरनाथ झा	219	1937
11.	भूमंडल	ताराचंद्र	1	1936
12.	मक्खी	दयाकृष्ण माथुर	112	1944
13.	शिलालेखों में ग्राम संबंधी संख्यायें तथा भूमि का माप	प्राणनाथ विद्यालंकार	240	1931
14.	हिन्दुस्तान की पश्चिमोत्तरी वैज्ञानिक सीमा की समस्या	विश्वेश्वर प्रसाद	381	1934

गंगा

1.	आकाश–गंगा	रामदास गौड़	12	नवम्बर 1930
2.	हाथी	–	64	नवम्बर 1930
3.	अग्नि के तूफान	नाथूराम शुक्ल	76	नवम्बर 1930
4.	बर्फीले राक्षस	ब्रजमोहन वर्मा	79	नवम्बर 1930
5.	वैज्ञानिक सृष्टि	–	112	दिसम्बर 1930
6.	घोड़ा	–	118	दिसम्बर 1930
7.	स्वप्न का रहस्य	बा. रमेश प्रसाद	331	फरवरी 1931
8.	प्रत्यक्ष–फल–दायिका	वैद्यरत्न कविराज काशी नाथसेन	363	फरवरी 1931
9.	वायुयान	फूलदेव सहाय वर्मा	426	मार्च 1931
10.	गंगावतरण	रामदास गौड़	618	मई 1931
11.	गंगा–जल की आयुर्वेदिक महत्ता	पं. शिव चन्द्र	640	मई 1931
12.	गंगा–जल वैद्यशास्त्री	पं. हनुमान प्रसाद शर्मा	642	मई 1931
13.	गंगा की वैज्ञानिक उत्पत्ति और उसके जल का आयुर्वेदिक महत्व	पं. कन्हैया लाल मिश्र 'प्रभाकर'	645	मई 1931
14.	रहस्यमय विज्ञान	पं. नाथूराम शुक्ल	730	जून 1931
15.	वेद और विज्ञान	गंगा प्रसाद	207	जनवरी 1932
16.	वेद और विज्ञान चतुर्वेदोपाध्याय	पं. कालीचरण झा	209	जनवरी 1932
17.	भूगर्भ शास्त्र और पुरातत्व–विज्ञान	प्रो. कृष्ण कुमार माथुर	41	जनवरी 1933
18.	भारत में मानव–विकास	त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन	263	जनवरी 1933
19.	विज्ञान और उसका महत्व	फूलदेव सहाय वर्मा	3	जनवरी 1934
20.	हिमालय की जन्मकथा	अनन्त गोपाल झिंगरन	9	जनवरी 1934
21.	समुद्र का वैज्ञानिक अन्वेषण	कृष्ण कुमार लाल सक्सेना	16	जनवरी 1934
22.	विद्युत के विकास का इतिहास	ललित किशोर सिंह	30	जनवरी 1934

23. आइन्स्टाइन का अपेक्षावाद	ज्योतिः स्वरूप भटनागर	40	जनवरी 1934
24. विकासवाद	द्वारकाप्रसाद श्रीवास्तव	58	जनवरी 1934
25. पृथ्वी की आयु	अनन्त गोपाल झिंगरन	63	जनवरी 1934
26. भू–विकास का इतिहास	ललिता प्रसाद नैथानी	70	जनवरी 1934
27. वायुमंडल–विज्ञान	पं. रामनिवास शर्मा	74	जनवरी 1934
28. विषाक्त गैसें और उनका प्रयोग	प्रो. महादेव लाल सराफ	79	जनवरी 1934
29. सूर्य से शक्ति–ग्रहण	राम गोपाल सक्सेना	185	जनवरी 1934
30. कासमोलाजी	वटेकृष्ण दास	89	जनवरी 1934
31. बोलते–चालते चित्र	श्यामनारायण कपूर	91	जनवरी 1934
32. वायु–यान	प्रो. फूलदेव सहाय वर्मा	96	जनवरी 1934
33. वायु–यानों का इतिहास	बा. धर्मचन्द्र खेमका 'चन्द्र'	110	जनवरी 1934
34. दूरदर्शन का भविष्य	श्यामनारायण कपूर	113	जनवरी 1934
35. वर्णपट– विज्ञान	भृगुनाथ नारायण सिंह	117	जनवरी 1934
36. एक्स–किरण	नन्दलाल सिंह	126	जनवरी 1934
37. तार और समुद्री तार	नन्दलाल सिंह	135	जनवरी1934
38. रेडियो या बेतार का तार	विश्वेश्वर दयालु	144	जनवरी 1934
39. टेलीफोन का आविष्कार और विकास	–	149	जनवरी 1934
40. कागज पर रंगीन फोटो	डॉ. गोरख प्रसाद	156	जनवरी 1934
41. फोटो–प्रोसेस इनग्रेविंग	डॉ. सुरेन्द्रनाथ विद्यालंकार	163	जनवरी 1934
42. प्राणियों में लिंग और लिंग–निर्धारण	डॉ. ए. बी. मिश्र	170	जनवरी 1934
43. शरीर रचना में रसायन का स्थान	शिवनाथ प्रसाद	189	जनवरी 1934
44. साधारण रसायन का इतिहास	डॉ. गोरख प्रसाद	194	जनवरी 1934
45. प्राचीन हिन्दू रसायन	प्रो. महादेवलाल सराफ	206	जनवरी 1934
46. भारतीय विश्वविद्यालयों में व्यावहारिक रसायन की शिक्षा	प्रो. एन.एन. गोडबोले	212	जनवरी 1934
47. जीवाणु और उनके कार्बोहाइड्रेट	दशरथ लाल श्रीवास्तव	216	जनवरी 1934
48. विटामिन	रवि प्रताप सिंह श्रीनेत	218	जनवरी 1934
49. आहार	प्रो. फूलदेव सहाय वर्मा	223	जनवरी 1934
50. रसायन और उद्योग–धन्धे	सद्गोपाल	230	जनवरी 1934
51. कोयले की उत्पत्ति और उसके उत्पादक क्षेत्र	अध्यापक निरंजन लाल शर्मा	235 –	जनवरी 1934 –
52. आयुर्वेदीय खनिज	अध्या. दत्तात्रेय अनन्तकुलकर्णी	245	जनवरी 1934
53. पौधों में बच्चों का सरंक्षण	प्रो. बलवन्त सिंह	248	जनवरी 1934
54. भूकम्प	प्रो. फूलदेव सहाय वर्मा	256	जनवरी 1934
55. नाप–तौल की प्रणालियां	लक्ष्मण प्रसाद वर्मा	261	फरवरी 1934
56. सिमेंट	राजकृष्ण गुप्त	265	फरवरी 1934
57. हीरा	वृन्दावन दास	268	फरवरी 1934
58. अबरक के उपयोग और उत्पत्ति	अध्या. निरंजन लाल शर्मा	272	फरवरी 1934
59. वनस्पति रोग निवाण के सिद्धांत	प्रो. अक्षयवट लाल जी	277	फरवरी 1934
60. विश्वविद्यालयों में विज्ञान का अध्ययन	पंचम सिंह	282	फरवरी 1934
61. ताप	शारदा प्रसाद सिंह	287	फरवरी 1934
62. हिन्दुस्थान की वैज्ञानिक संस्थाएं	फूलदेव सहाय वर्मा	290	फरवरी 1934
63. मच्छड़ और मलेरिया	पं. वासुदेव उपाध्याय	297	फरवरी 1934
64. प्रयाग की विज्ञान–परिषद्	ब्रजबिहारी लाल गौड	304	फरवरी 1934

65. इंडियन केमिकल सोसाइटी	डॉ. बाबा करतार सिंह	306	फरवरी 1934
66. हिन्दी में वैज्ञानिक पुस्तकें 'अतरसनी'	ठाकुर अच्युतानंद सिंह	310	फरवरी 1934
67. काबेरी नदी के जलबल से विद्युत	राजकृष्ण गुप्त	314	फरवरी 1934
68. शरीर का स्वाभाविक संरक्षण	ब्रह्मानन्द सिंह	317	फरवरी 1934
69. फलों की रक्षा और व्यवसाय	बालगोविन्द प्रसाद श्रीवास्तव	320	फरवरी 1934
70. धूलि	परमेश्वर दयाल	323	फरवरी 1934
71. प्रकाश	अध्यापक शारदा प्रसाद सिंह	326	फरवरी 1934
72. कांच का निर्माण	पं. सहदेव प्रसाद पाठक	331	मार्च 1934
73. गन्ना और शक्कर	रामरक्षपाल संघी	335	मार्च 1934
74. श्रीनिवास रामानुजम	डॉ. बदरीनाथ प्रसाद	351	मार्च 1934
75. आचार्य सर प्रफुल्लचन्द्र राय	विश्वनाथ सहाय	361	मार्च 1934
76. सर जगदीश चन्द्र बोस	श्यामनारायण कपूर	363	मार्च 1934
77. डॉ. मेघनाद साहा	युधिष्ठिर भार्गव	370	मार्च 1934
78. डॉ. गणेश प्रसाद	रामदास गौड़	373	मार्च 1934
79. सर चन्द्रशेखर वेंकटरमन	श्यामनारायण कपूर	377	मार्च 1934
80. डॉ. नीलरत्न धर	आत्माराम	381	मार्च 1934
81. चैतन्य–मीमांसा	पं. रुद्रदेव शास्त्री	401	मार्च 1934
82. जगदीश चन्द्र बोस	पीताम्बर झा	218	फरवरी 1935
83. सर चार्ल्स डारविन	ठाकुर शिरोमणि सिंह चौहान	233	फरवरी 1935
84. डॉ. अल्बर्ट आइन्स्टाइन	श्रीमती राजकुमारी मिश्रा "रमा"	296	फरवरी 1935
85. आयुर्वेद	पं. हनुमान प्रसाद शर्मा वैद्यशास्त्री	541	अप्रैल 1932
86. वेदों में बिजली	पं. गांगेय नरोत्तम शास्त्री	766	जून 1932
87. बिहार में हलकर्षण की प्रथा	पं. दिगम्बरनाथ पाठक	937	अगस्त 1932
88. पिता–पुत्र का सम्बन्ध	महराजकुमार रणविजय बहादुर सिंह	1145	अगस्त 1932
89. आत्मा	साहित्याचार्य "मग"	1182	अक्टूबर 1932
90. हीरा	बा. आत्मानन्द सिंह	1256	नवम्बर 1932
91. वैज्ञानिकों की दृष्टि में ईश्वर	साहित्याचार्य "मग"	1395	दिसम्बर 1932
92. सर्पविद्या	पं. गणेशदत्त शर्मा गौड़ "इन्द्र"	558	अप्रैल 1933
93. तार–चित्र या टेलीफोन	श्यामनारायण कपूर	826	जुलाई 1933
94. ग्रहण	पं. राम निवास शर्मा	839	जुलाई 1933
95. स्वास्थ्य और उसकी रक्षा	डॉ. अखौरी रामनारायण	422	अप्रैल 1934
96. स्याही	अमरेन्द्र नारायण	425	अप्रैल 1934
97. विद्युत द्वारा कलई	राजकृष्ण गुप्त	459	अप्रैल 1934
98. भूकम्प–विज्ञान	रजनीकान्त शास्त्री	480	अप्रैल 1934
99. चार्ल्स डारविन	पाण्डेय जगन्नाथ प्रसाद	524	मई 1934
100. इस्पात	पं. शम्भुनाथ झा	552	मई 1934
101. वेद में रोग और उनकी औषधि	पं. गणेशदत्त शर्मा गौड़ "इन्द्र"	557	मई 1934
102. डॉ. वामनराव कोकटनूर	बाबू श्यामनारायण कपूर	560	मई 1934
103. रेडियो या बेतार का तार	रामगोपाल सक्सेना	10	जनवरी 1933

104. गर्भिणी की परचिर्या	बाबू ब्रह्मानंद सिंह	397	अप्रैल 1933
105. प्रसूति–शास्त्र	बाबू ब्रह्मानंद सिंह	590	मई 1933
106. कीटहारी पौधा	बाबू ब्रह्मानंद सिंह	656–58	मई 1933
107. इच्छा शक्ति	अध्या. पं. बदरीनाथ पाठक	779–82	जून 1933
108. नेत्र	बाबू ब्रह्मानंद सिंह	926–30	अगस्त 1933
109. धर्म और विज्ञान	डॉ. सत्यप्रकाश	962–76	अगस्त 1933
110. विटामिन	बाबू ब्रह्मानंद सिंह	764–67	जून. 1933
111. आचार्य रमन	बाबू साधुशरण	768–69	अगस्त 1933
112. आगामी सूर्यग्रहण	रजनीकांत शास्त्री	958–61	अगस्त 1933
113. तोप, बन्दूक और बारूद के आदि आविष्कर्ता	उपाध्याय महेन्द्र कुमार वेद शिरोमणि	581–88	अप्रैल 1933

नागरी प्रचारिणी पत्रिका

1. केतु तारों का संक्षिप्त वृतान्त	बाबू गोपाल प्रसाद	1	1897
2. अद्‌भुत रश्मि	पं. लोकनाथ शर्मा	81	1897
	बाबू कृष्णबलदेव शर्मा	–	–
3. भारतवर्ष में गणित शस्त्रादि की उत्पत्ति	–	3	1899
4. तरल वायु	बाबू दुर्गा प्रसाद	169	1900
5. अमेरिका में चिकित्सा शिक्षा	–	286	मार्च 1915
6. प्राचीन शल्य तंत्र	कविराज अत्रिदेवगुप्त	1–48	1984
	–	155–218	–
7. वैज्ञानिक खेती	श्रीमती हेमन्तकुमारी देवी	343–58	जून 1913
8. अखंडत्व	इंगलैंड के प्रसिद्ध	–	–
	विज्ञान–वेत्ता सर आलिवर		सितम्बर–
	लाज का व्याख्यान	84–97	अक्टूबर 1913
9. प्राचीन हिन्दू गणित में श्रेणी व्यवहार	डॉ. ब्रजमोहन	25–34	2004

चाँद

1. गर्भवती माता	मू. लेखिका–मिसेज मेरी केलब –		–
	अनुवादिका–पं. कौशल्या देवी	100–104	मई 1929
2. रोग फैलाने वाले जीव	राधाकृष्ण जी गुप्त	374–77	जुलाई 1929
3. ताऊन या मरी	हुक्मा देवी जी छात्र	871–75 तथा 878	अप्रैल 1929
4. चेचक और उसके प्राकृतिक उपाय	गोपाल गंगाधर भावे	514–17	फरवरी 1928
5. भारतीय ज्योतिःशास्त्र में पृथ्वी की गति	रजनीकान्त शास्त्री	485–91	फरवरी 1931
6. दूध में मिलावट	वृजेन्द्र प्रसाद पालीवाल	256–59	दिसम्बर 1935
7. नेत्र स्वस्थ रखने के उपाय	डॉ. आर.एस. अग्रवाल	270.72	दिसम्बर 1935

सम्मेलन–पत्रिका

1. प्रयाग का विज्ञान परिषद् और उसकी कार्यप्रणाली	–	9	आश्विन सं.1970
2. विज्ञान परिषद् और पारिभाषिक शब्द	रामदास गौड़	185	वैशाख सं.1971
3. कृषि साहित्य	गंगा प्रसाद अग्निहोत्री	364	चैत्रा सं. 1982
4. विज्ञान और कविता	आनन्दि प्रसाद श्रीवास्तव	206	माघ सं. 1982

हरिश्चन्द्र पत्रिका

1. पाला–हिम–तुषार	–	212	मई 1874
2. आलोक वा प्रकाश	बिहारी चौबे	212–14	मई 1874

हिन्दी प्रदीप

1. धूमकेतु	–	21–24	जुलाई 1881
	–	15–19	अगस्त 1881
2. परमाणु और आत्मा	–	3–9	जुलाई 1881
3. खगोल निरूपण	–	13–25	जन.–फर. 1898
	–	6–18	मार्च–अप्रैल 1898
	–	19–21	मई–जून 1898
4. सोहागा	श्याम सुन्दर दास	17–22	मार्च 1899
5. वनस्पति, विवरण	एल. एन. नागर	6–9	नवम्बर 1906
6. हैजा	डॉ. जी. के. व्यास	14–20	अप्रैल 1887
7. तारे का गिरना और जीव की उत्पत्ति	–	7–9	मई 1887
8. विकिरण	–	9–11	अगस्त 1887

मर्यादा

1. मनुष्य–तत्व	शारदा चरण पाण्डेय	114	जनवरी 1911
2. हमारी श्रोत्रेन्दिय	जीतन सिंह	150	फरवरी 1911
3. तापलोक से कम्प	गौरचरण गोस्वामी	156	फरवरी 1911
4. प्राचीन काल में विज्ञान	सालिगराम टण्डन	173	मार्च 1911
5. हंसना	जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल	40	मई 1911
6. अध्यापक प्रफुल्लराय की गवेषणा	गौरचरण गोस्वामी	236	सितम्बर 1911
7. तुषार	किशोरी लाल गोस्वामी	244	अक्तूबर 1911
8. डॉ. लूई कूने	गौरचरण गोस्वामी	278	अक्तूबर 1911
9. कारनेगी का लोहे का कारखाना	जगन्नाथ खन्ना	151	फरवरी 1912
10. वायु	नारायण प्रसाद	172	फरवरी 1912
11. आकाश नीलिमा	महेन्द्र पाल सिंह	196	फरवरी 1912
12. डॉ. प्रफुल्लराय	केशचन्द्र चौधरी	235	मार्च 1912
13. रक्त और उसकी बनावट	त्रिलोकीनाथ वर्मा	240	मार्च 1912
14. रक्त	त्रिलोकीनाथ वर्मा	299	अप्रैल 1912
15. हम शरीर से कैसे स्वस्थ हों	कालिदास मणि	319	अप्रैल 1912
16. आकर्षण–शक्ति	केशवदत्त जोशी	182	जुलाई 1912
17. द्रवद्रव्य	किशोरी लाल गोस्वामी	198	जुलाई 1912
18. भारतीय गणित	रत्नसिंह रावत	319	सितम्बर–अक्टू. 1912
19. जीरा	नन्दकिशोर शर्मा	348	सितम्बर–अक्टू. 1912
20. अमूल्य औषधि	फ्रांस प्रवासी	349	सितम्बर–अक्टू. 1912
21. मनुष्य की उत्पत्ति	गौरचरण गोस्वामी	18	नवम्बर 1912
22. कीड़ों के रंग	द्वारिका नाथ मैत्र	111	दिसम्बर 1913
23. यन्त्र विद्या	रत्नसिंह रावत	200	फरवरी 1913
24. सूर्य	ईश्वरदास मारवाड़ी	284	मार्च 1913
25. जीवन–संग्राम	विद्यार्थी	290	मार्च 1913
26. रेडियम धातु	मुनीन्द्र दत्त त्रिपाठी	377	अप्रैल 1913

27. स्वास्थ्य–रक्षा	लक्ष्मीशंकर अवस्थी	25	मई 1913
28. विज्ञान का समाज पर प्रभाव	–	119	जून–जुलाई 1913
29. हम सब कब उड़ सकेंगे	जी. सी. ग्रेहम ह्वाइट	201	अगस्त 1913
30. तवे की बूंद	जगद्विहारी सेठ	307	सितम्बर 1913
31. बिना सिंचाई की खेती	मुख्त्यार सिंह	338	अप्रैल 1914
32. रेल और नहर	एक किसान	351	अप्रैल 1914
33. रंग–रसायन विद्या	रघुनाथ प्रसाद	27	मई 1914
34. जलचर जीव	दशरथ बलवन्त जादव	103	फरवरी 1915
35. गर्भिणी स्त्री को प्रसव कष्ट क्यों होता है ?	डॉ. के. सी. औड़ी	266	मई 1915
36. शनि ग्रह	अनु. चंडी प्रसाद	357	जून 1915
37. महिलाओं की स्वास्थ्य	हेमन्त कुमारी देवी	115	अगस्त 1915
रक्षा के लिये आवश्यकीय उपाय	–	–	–
38. धान	नन्द किशोर शर्मा	120	अगस्त 1915
39. सन्तान–शास्त्र	सिद्धनाथ माधव	127	अगस्त 1915
40. सायोनारा	जापान–प्रवासी	218	सितम्बर 1915
41. पालतू पशु	प्रो. रतन चन्द्र रावत	310	नवम्बर 1915
42. ऊख की खेती और शक्कर	कृष्ण सीताराम पेंढ़र	142	मार्च 1916
43. विदेशी दियासलाई	रमेश प्रसाद वर्मा	155	मार्च 1916
44. कृषि–सुधार	राय बहादुर शर्मा	161	मार्च 1916
45. गेहूं की खेती	कृष्ण सीताराम पेंढकर	270	जून 1916
46. सृष्टि की उत्पत्ति	ताराचरण अग्निहोत्री	64	अगस्त 1916
47. वैज्ञानिक अनुसंधान का महत्व	डॉ. हरिश्चन्द्र	98	सितम्बर 1916
48. आयुर्वेद तथा रसायन शास्त्रा की उत्पत्ति	डॉ. बी. के. मित्रा		मार्च 1917
49. भारतवर्ष में कृषि का भविष्य	सैम हिगिनबाटम	77	जुलाई 1917
50. कृषि और कृषि–शिक्षा	कार्यी	242	सितम्बर 1917
51. मेघ–विद्या	शोभाचन्द्र जम्मड़	326	नवम्बर 1917
52. हमारे हृदय	उमादेवी नेहरू	175	अप्रैल 1918
53. सन्तानोत्पत्ति–समस्या	गिरिजादत्त शुक्ल	224	नवम्बर 1920
54. पौधों के बारे में कुछ अजीब बातें	–	248	नवम्बर 1920
55. समुद्र के रत्न	दयानन्द चतुर्वेदी	40	जनवरी 1921
56. पानी के नल की राम कहानी	ब्रह्मस्वरूप	128	मार्च–अप्रैल 1921
57. कार्तिक मास का आकाश चित्र	महावीर प्रसाद श्रीवास्तव	12	जुलाई 1921
58. रस्केगी इंस्टीच्यूट	शिव प्रसाद गुप्त	37	जुलाई 1921
59. कृषि पर ताप का प्रभाव	शीतला प्रसाद तिवारी	357	दिसम्बर 1921
60. ज्येष्ठ मास का आकाश चित्रा	महावीर प्रसाद श्रीवास्तव	44	जनवरी 1922
61. संसार के कुछ देशों में	दयाशंकर दूबे	212	श्रावण 1979
कृषि की उन्नति कैसे हो रही है	–		
62. प्रकृति के संगठन का प्रथम पाठ	सूर्यकरण पारीक	229	श्रावण 1979
63. पशु–जगत् के वर्ण भेद	पशुपति	273	भाद्रपद 1979
64. क्या सप्तर्षि चलते हैं	महावीर प्रसाद श्रीवास्तव	371	आश्विन 1979
65. राष्ट्रीय–तिथि–पद्धति कैसी हो ?	महावीर प्रसाद श्रीवास्तव	54	कार्तिक 1979
66. प्राचीनों ने सप्तर्षि को चार माना है	जगन्मोहन वर्मा	158	अगहन 1979

वीणा

क्र.	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ	अंक
1.	आइन्सटीन का सापेक्षिक सिद्धांत	वल्लभदास सुगंधी	33–36	नवम्बर 1942
2.	अग्नि का महत्व	वैद्यराज ख्यालीराम द्विवेदी	129–32	दिसम्बर 1942
		–	207–16	जनवरी 1943
3.	वर्षा	नन्द किशोर जी शास्त्री	461	जुलाई 1947
4.	सोप पाउडर	केदारनाथ अग्निहोत्री	462	जुलाई 1947
5.	मछली	भूपेन्द्र नारायण अवस्थी	463	जुलाई 1947
6.	हंसना	शंकर सहाय वर्मा	510	अगस्त 1947
7.	मकाई	–	511–12	अगस्त 1947
8.	मार्तण्ड प्रभा का स्रोत	प्रो. घासीराम जैन	132–35	जनवरी 1944
9.	किसान और उसके औजार	चन्द्र कुमार वर्मा	141–47	जनवरी 1944
10.	सफेद चीनी	डॉ. सुरेन्द्र प्रसाद	148–49	जनवरी 1944
11.	पुच्छल तारे	प्राणनाथ	176–80	फरवरी 1944
12.	प्रकृति की गति	शचीन्द्र नाथ चक्रवर्ती	517–20	मई 1933
13.	ज्वालामुखी के गर्भ में	श्यामनारायण कपूर	778–82	अगस्त 1933
14.	वायुयानों द्वारा भ्रमण	तुलसीराम गुप्त	863–66	सितम्बर 1933
15.	भारत में चीनी का व्यवसाय	प्रो. महेन्द्र कुमार सिंह	928–34	अक्तूबर 1933
16.	आयुर्वेदीय शास्त्रा क्रिया का इतिहास	लक्ष्मीधर वाजपेयी	7–15	आश्विन सं. 1984
17.	वेद में कृषि–विज्ञान	शंकर राव जोशी	200–7	मार्गशीर्ष सं. 1984
18.	खांसी, श्वास और क्षय रोग पर अनुभूत उपाय	पं. नंद राम जी, तुलसी राम वैद्य	219–22	मार्गशीर्ष सं 1984
19.	भारत में शक्कर का व्यापार	पं. गंगा प्रसाद शुक्ल	49–57	आश्विन सं.1984
20.	हिन्दुओं की चिकित्सा प्रणाली की प्राचीनता	डॉ. सरजू प्रसाद तिवारी	280–84	पौष सं. 1984
21.	खाद या पॉस	शंकर राव जोशी	441–46	फाल्गुन सं.1984
22.	खाद–पॉस	शंकर राव जोशी	102–5	वैशाख सं. 1985
23.	गो–रक्षा का मूल "इन्द्र"	गणेशदत्त शर्मा गौड़	111–116	वैशाख सं.1985
24.	दूषित दूध का कुफल खरे	डॉ. सीताराम शिवराम	469–72	भाद्रपद सं.1985
25.	स्वर्गीय एडिसन और उनके कुछ आविष्कार	लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी	293–301	फरवरी 1932
26.	वायु पर विजय	राधाकृष्ण गुप्त	302–6	फरवरी 1932
27.	भारत में रूई की उपज	गोपाल दास झलानी	557–64	मई 1932
28.	डॉक्टर रमण के आविष्कार	श्यामनारायण कपूर	794–99	अगस्त 1932
29.	शीतला रोग	रामदास गौड़	37–39	नवम्बर 1932
30.	एडिसन द्वारा बिजली के दीपकों का आविष्कार	–	61–64	नवम्बर 1932
31.	विद्युत–द्वारा चित्रा–प्रेषण	प्रो. घासीराम जैन	357–59	मार्च 1933
32.	सिनेमा का आदि रूप	लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी	395–96	मार्च 1933
33.	डॉक्टर वेजनर के आविष्कार	प्रकाश नारायण शिरोमणि	145–48	दिसम्बर 1933
34.	कृषि और युद्ध	रतनलाल	321–24	फरवरी 1936
35.	निश्चेष्ट वाष्पों की उपयोगिता	शचीन्द्र नाथ चक्रवर्ती	378–83	मार्च 1936
36.	खाद	शंकर राव जोशी	389–92	मार्च 1937

37. स्वास्थ्य रक्षा	डॉ. हरिशंकर चतुर्वेदी	381–88	मार्च 1937
38. चन्द्रमा और चन्द्रलोक	प्राणनाथ	370–75	मार्च 1937
39. हमारे भोजन के तत्व	समुद्र तरंग	50–53	नवम्बर 1937
40. ग्राम संस्कृति के संदेश वाहक वृक्ष एवं वनस्पति	मनोरमा "रमा"	75–80	फ.–मा. 1971
41. खाद	लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी	225–26	जनवरी 1937
42. ग्रामीण उद्योग–धंधे	शंकर राव जोशी	475–77	अप्रैल 1937
43. अंगूर की खेती	दलेलसिंह छत्रसिंह	648–50	जून 1937
44. प्राचीन भारत और विज्ञान	प्रो. शिवदत्त ज्ञानी	957–61	अक्टूबर 1937
45. सापेक्ष्यवाद और सर सुलेमान	प्रो. घासीराम जैन	211–14	जनवरी 1938
46. वर्तमान वैज्ञानिक युग	डॉ. सत्यप्रकाश	377–82	मार्च 1938
47. आलू की खेती	नगेन्द्र नारायण	403–6	मार्च 1938
48. हमारी खनिज सम्पत्ति	अनु. मुकुट विहारी वर्मा	878–82	आश्विन सं.1986
49. कोयला	तुलसीराम गुप्त	259–60	माघ सं. 1986
50. रक्त–संचालन क्रिया	रामकुमार सिंह	410–14	चैत्रा सं. 1986
51. जीवन–तत्व	पं. गोपीवल्लभ उपाध्याय	438–41	चैत्रा सं. 1986
52. प्राणि शास्त्रा	वासुदेव शरण अग्रवाल	336	मार्च 1930
53. भावी विज्ञान और मनुष्यत्व	गुलाबराय	348	मार्च 1930
54. भारतवासी ही गणित शास्त्र के जन्मदाता हैं	अध्या. रामचन्द्र गौड़	27–31	कार्तिक सं. 1986
55. ग्रामीण उद्योग धंधे	प्रो. शंकर सहाय सक्सेना	510–14	वैसाख सं.1986
56. सर चन्द्रशेखर व्यंकट रमण	रामचन्द्र मोरेश्वर करकरे	272–75	फरवरी 1931
57. हिन्दी का वैज्ञानिक साहित्य	सत्यप्रकाश	49–55	नवम्बर 1931
58. राष्ट्रभाषा और वैज्ञानिक साहित्य	सत्यप्रकाश	250–56	फरवरी 1933
59. हमारा स्वास्थ्य	मुन्तजिम–ए–खास राय बहादुर, डॉक्टर सरजू प्रसाद तिवारी	305–8	फरवरी 1933
60. स्व. एडीसन और उनके आविष्कार	लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी	308–9	फरवरी 1933
61. कृत्रिम रेशम	शचीन्द्र नाथ चक्रवर्ती	628–31	जून 1934
62. विज्ञान का दुरुपयोग और अर्थ–संकट	रामदास गौड़	863–68	सितम्बर 1934
63. भारतीय एडीसन डॉ. शंकर बिसे	श्यामनारायण कपूर	919–24	सितम्बर 1934
64. हरीतकी के गुण	वैद्यालंकार सूर्य नारायण जोशी	394 –	मार्च 1935 –
65. रेडियम और उसकी उपयोगिता	रामनारायण त्रिवेदी	454–57	अप्रैल 1935
66. विज्ञान–परिषद्	डॉ. गोरख प्रसाद	543–45	मई 1935
67. हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य	रामदास गौड़	595–602	जून 1935
68. रासायनिक–उद्योग धन्धे और बेकारी	श्री श्रीषचन्द्र कौशल	628–30	जून 1935
69. मनुष्य और पृथ्वी की उत्पत्ति	भगवान दास तोषनीवाल	697–703	जुलाई 1935
70. वॉटहैफ और उनके आविष्कार	राधामरण अग्रवाल	718–21	जुलाई 1935
71. प्रकृति का वैज्ञानिक रहस्य	प्रो. घासीराम जैन	936–39	अक्तूबर 1935
72. शीरे से कृषि की उन्नति	रतनलाल	63–65	नवम्बर 1935
73. स्वास्थ्य–साधन के सुलभ उपाय	नारायण दास भाटिया	634–38	जून 1936

74.	हमारा सौर–मंडल	प्राणनाथ	879–85	सितम्बर 1936
75.	स्व. राय बहादुर डॉ. सरजू प्रसाद	वजीरुद्दौला राय बहादुर सरदार माधव राव–विनायक राव किबे	925–35	अक्टूबर 1936
76.	डॉक्टर साहब का संक्षिप्त जीवन चरित	सदाशिव राव ठाकुर	939–42	अक्तूबर 1936
77.	भारतवर्ष में जल–विद्युत	रामेश्वर सहाय अग्रवाल	60–63	नवम्बर 1936
78.	मधुमक्खियां और शहद	प्रो. एस. जी. पाटिल	151–53	दिसम्बर 1936
79.	विषम ज्वर से बचने के उपाय	डॉ. हरीशंकर कपूर	150	दिसम्बर 1936
80.	कोलाहल–मापक यंत्रा	प्रो. घासीराम जैन	137–40	दिसम्बर 1936
81.	सोयाबीन	नगेन्द्र नारायण	579–80	मई 1938
82.	टेलीविजन का शोधक जान वेयर्ड जौन	लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी	653–55	जून 1938
83.	रंग और उनका प्रयोग	ब्रजबहादुर अवस्थी	65–5	जून 1938
84.	विषैली गैस और उससे बचाव	लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी	794–801	अगस्त 1938
85.	कृषि और इलेक्ट्रोकल्चर	श्रीशचन्द्र पाण्डेय	825–26	अगस्त 1938
86.	मक्खी	प्रो. केशव अनन्त पटवर्धन	957–64	अक्तूबर 1938
87.	रंग और उनका उपयोग	ब्रज बहादुर अवस्थी	981–84	अक्तूबर 1938
88.	सूर्य और उसका ताप	प्राणनाथ	209–15	जनवरी 1939
89.	भूमि की सिंचाई	नगेन्द्र नारायण	232–35	जनवरी 1939
90.	मच्छर	प्रो. केशव अनंत पटवर्धन	544–55	मई 1939
91.	जुवार	लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी	742–43	जुलाई 1939
92.	छाया–चित्रों के तीन अंग	गोरख प्रसाद श्रीवास्तव	881–85	सितम्बर 1939
93.	विस्फोटक वायुयान और अन्तरिक्ष	प्रो. घासीराम जैन	640–43	जून 1940
94.	आधुनिक अपराध–विज्ञान	ब्रजकिशोर वर्मा "श्याम" –	977–82 तथा 985	अक्टूबर 1940 –
95.	ग्राम में स्वास्थ्य और सफाई	डॉ. हरिशंकर चतुर्वेदी –	78–82 तथा 77	नवम्बर 1940 –
96.	दुग्ध–पशु–शाला (डेयरी)	राय रतन प्रयाग नारायण संगम	84–87	नवम्बर 1940 –
97.	हाथ का बना कागज	नगेन्द्र नारायण	87–88	नवम्बर 1940
98.	ताड़ का गुड़	गजानन नाईक	88–90	नवम्बर 1940
99.	पशु–चिकित्सा	राय रतन शंकर राव जोशी	116–20 –	नवम्बर 1940 –
100.	मधुमक्षिका– पालन	भंवर लाल भट्ट "मधुप"	312–14	जनवरी 1941
101.	घरेलू उद्योग–धंधे	प्रो. अमर नारायण अग्रवाल	332–35	फरवरी 1941
102.	चिड़ियां	सुरेश सिंह	336–42	फरवरी 1941
103.	सरीसृपों का विकास	सुरेश सिंह	535–39	अप्रैल 1941
104.	क्रमोन्नति–सिद्धांत	वल्लभदास सुगन्धी	164–69	दिसम्बर 1941
105.	आधुनिक सरजरी के कुछ चमत्कार	प्रो. घासीराम जैन	271–75	जनवरी 1942
106.	विज्ञान की सही दिशा	बाबूराव जोशी	40–41	नवम्बर 1947
107.	विकासवाद पर आधुनिक विचार	कृष्ण सहाय वर्मा	90–91	दिसम्बर 1947
108.	प्रबल रक्तचाप या	योगिराज, राजवैद्य	134–40	जनवरी 1948

"हाई ब्लड–प्रेशर" .	गोपाल चैतन्य	–	–
	देव पीयूषपाणि	–	–
109. शक्ति का नया स्रोत–विश्व किरणें	कुलदीप "सिन्धु"	346–49	मई 1948
110. प्रबल रक्तचाप (हाई ब्लड प्रेशर) में "यकृत"	योगिराज गोपाल चैतन्य देव	350–54	मई 1948
111. पशु–पालन और पशु–सुधार	बांके बिहारी श्रीवास्तव	402–5	जून 1948
112. प्रबल रक्तचाप में यकृत	गोपाल चैतन्य देव	406–9	जून 1948
113. पचन–क्रिया का स्वरूप	गोपाल चैतन्य देव	464–67	जुलाई 1948
114. पचन–क्रिया का स्वरूप	गोपाल चैतन्य देव	507–10	अगस्त 1948
115. अणु–संसार का सिंहावलोकन	कुलदीप चन्द्र चड्ढा	551–56	सितम्बर 1948
116. भूमि की उर्वरा–शक्ति का ह्रास	बांके बिहारी श्रीवास्तव	601–9	अक्तूबर 1948
117. फसलों की बढ़िया किस्में	डॉ. बी. पी. पाल	78–83	दिसम्बर 1948
118. वातावरण के विचारों का रोगी के मन पर प्रभाव	लालजी राम शुक्ल	112–13	जनवरी 1949
119. कृत्रिम वर्षा के प्रयोग	भगवती प्रसाद श्रीवास्तव	180–82	फरवरी 1949
120. गांवों में वृक्षारोपण	महेन्द्र सिंह रन्धावा	183–90	फरवरी 1949
121. दुग्ध उत्पादन और वितरण	बांके बिहारी श्रीवास्तव	217–22	मार्च 1949
122. सोयाबीन की उपयोगिता	जफर आलम	337–42	मई 1949
123. आयुर्वेद का राष्ट्रीयकरण	कविराज के.पी. भट्टाचार्य	393–96	जून 1949
124. भारतवर्ष में गन्ने का विकास	एन. एल. दत्त	397–400 तथा 406	जून 1949
125. मानसिक–शक्ति का केन्द्रीकरण	लालजी राम शुक्ल	425–26 तथा 434	जुलाई 1949
126. भारतीय कृषि–क्षेत्र में क्रांति की आवश्यकता	बांके बिहारी श्रीवास्तव	498–505 तथा 51	अगस्त 1949
127. हमारा देश हमारा काम	श्याम चरण प्रधान	32–38	नवम्बर 1949
		86–95 तथा 46	दि.–ज. 1950
128. भारतीय कृषि–क्षेत्र में प्रोपेगेण्डा	बांके बिहारी श्रीवास्तव	121–29	ज.–दि. 1950
129. फसल के शत्रु	शंकर राव जोशी	349–55	अप्रैल 1950
		461–68	जून 1950

परिशिष्ट 2

विभिन्न पत्रिकाओं के विज्ञान लेखकों की सूची

इस सूची में इन पत्रिकाओं में लेखक के कुल प्रकाशित लेखों की संख्या उनके नाम के साथ दी गयी है।

विज्ञान

अगरचन्द नाहटा, अच्युतानन्द वैद्यराज, अजय कुमार बोस–3, अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार, डॉ. अदालतसिंह, अनन्त गोपाल सिंगरन, अनन्त प्रसाद मेहरोत्रा–3, अनादिधन बंद्योपाध्याय–5, अब्दुल गनी, अब्दुल्लाह–2, अब्सार अहमद, अभय चन्द्र–2, अभय चन्द्र जैन–2, अमरनाथ टंडन, अमियचरण बंद्योपाध्याय–4, अमीचन्द्र विद्यालंकार, अम्बिका सहाय, अमूल्य रत्न प्रभाकर–8, अयोध्या प्रसाद भार्गव–20, अरविंद, अरविन्द व्यास, डॉ. अरुण डे, अवध उपाध्याय–3, अवधनारायण लाल, अवध विहारी भाटिया, अवध विहारी लाल–8, कविराज, अशोक कुमार, आ. सि. मेहता, आत्माराम अमृतसरी, आत्माराम–38, आनन्द मोहन–6, आनन्द लाल मिश्र, आर. एन. घोष, आर.जी. सक्सेना–3, आर.एन.पंडित, डॉ. आर.एस.अग्रवाल, आर.एस. चौधरी–3

इगॉन लारसेन, पं. इन्द्र विद्यालंकार–3, इन्द्रसेन आयुर्वेदालंकार–2, ई. डी. मास्टरमेन

उदित नारायण सिंह–2, डॉ. उमरावसिंह गुप्त, डॉ. उमाशंकर–2, उमाशंकर निगम, उमाशंकर प्रसाद–19, उमेश चन्द्र, उमेशचन्द्र सक्सेना, उमेश प्रसाद सिंह–2, उल्घानो वस्काया

एच.के.पी. वर्मा, एच. मार्किट, ए.डब्ल्यू हैजलेट, एन. के. चटर्जी, एम.एन. दत्त, एम.एस. कमठान, एम.एस. वर्मा, एस. के. चटर्जी, एम.एम.पी. जम्बुनाथन, एलए.जी.–14 एल.ए. डाउक्टर–3 एलबर्ट आइन्सटाइन, एस. आर.क्रिस्टोफर्स, डॉ. एस.के. मित्र–2, डॉ. एस. दत्त, डॉ. एस.पी.मुश्रान, डॉ. एस.पी. राय–19, डॉ. एस. हिगनबाटम, ओंकारनाथ, पर्ती, ओंकार नाथ शर्मा–27,ओमदत्त, ओम प्रकाश–2 अग्रवाल–2, ओम प्रकाश आयुर्वेदालंकार.1,

कपिल भार्गव–1, कपूरचन्द्र लाड–1, डॉ. कमला प्रसाद–28, कमला सद्गोपाल–3, कन्नोमल–5, कन्हैया लाल–1, करामत हुसेन कुरैशी–1, करुणा शंकर पंड्या–3, डॉ. कर्मनारायण बहल–1, कल्याण बख्श माथुर–4, कांतिलाल छगनलाल पंडि–1, कान्ती चन्द्र–11, कामता प्रसाद–1, कामेश्वरदेव शांडिल्य–1, कार्तिक प्रसाद–4, कालिका प्रसाद–1, कालिका प्रसाद वर्मा–7, कालिदास जी मणिक–1, कालीचरण–1, काशीनाथ त्रिवेदी–1, किशोरीदास बाजपेयी–3, कुंजर बहादुर माथुर–1, कुंज बिहारी लाल–1, कुंजाविहारी मोहनलाल–11, कुन्दन लाल–1, कुन्दन सिंह सिंगवी–1, कुलदीप चन्द्र चड्ढा–3, कुलदीप सहाय–1, कुंवर ब्रजेन्द्र सिंह क्षत्रिय, कुंवर वीरेन्द्र नारायण सिंह–9, कुंवर सुरेन्द्र सिंह–1, कृपाशंकर जायसवाल–1, कृष्णकान्त भार्गव, कृष्ण कुमार लाल सक्सेना–1, कृष्ण गापाल माथुर–7, कृष्ण चन्द्र–4, कृष्णजी–2, कृष्णदेव प्रसाद गौड़–7, डॉ. कृष्ण बहादुर–4, कृष्ण मोहन गुप्त–1, कृष्ण मोहन त्रिपाठी–1, कृष्ण विहारी–1, कृष्ण विहारी वाजपेयी–1, कृष्ण स्वामी नायडू–2, के.एल. गोविल–1, के.एल. राजन–1, डॉ. केलब–1, केशव अनन्त पटवर्धन–2, केशव चन्द्र सिंह चौधरी–5, केशवदेव–2, गंगानाथ झा–4, गंगा प्रसाद–2., गंगा प्रसाद उपाध्याय–11, गंगा प्रसाद गौड़–4, गंगा प्रसाद वाजपेयी–7, गंगा शंकर पंचाली–14, गंगा सिंह जी भ्रमर–1,

गणपति चन्द्र केला–1, गणेश दत्त शर्मा गौड़ इन्द्र–1, गणेश प्रसाद–1, गणेश प्रसाद अग्रवाल–1, गणेश प्रसाद दुबे–2, गया प्रसाद–2, गया प्रसाद वर्मा–2, गरुड़–1, गिरजादत्त शुक्ल–1, डॉ. गिरवर सहाय–4, गिरिजा शंकर मिश्रा–1, गिरिजा कुमार घोष–1, गिरिजा दयाल–1, गिरिराज बहादुर–1, गिरीश चन्द्र शिवहरे–3, गुलाबराय–6, गुलाबसिंह–1, गो.स. आपटे–1, गोपाल जी–2, गोपालनारायण सेन सिंह–18, गोपाल साह–3, गोपाल स्वरूप भार्गव–24, गोपीनाथ गुप्त–19, गोपीनाथ वर्मा–1, गोपीनाथ शास्त्री–11, गोपीनाथ शास्त्री चुलैट–1, गोमती प्रसाद अग्निहोत्री–2, गोरख प्रसाद–52, गावर्द्धन शर्मा–1, गोविन्द तिवारी–1, गोविन्दराम तोशनीवाल–4, गौदत्त शर्मा–4 गौरीशंकर तोशनीवाल–5

घनश्याम–1, घनश्याम कृष्ण शुक्ल–4

चक्रवर्ती–1, चण्डी प्रसाद–3, चण्डी चरण पालित–1, चन्द्रकान्ता बाली शास्त्री–1, चन्द्र प्रकाश अग्रवाल–1, चन्द्रभूषण मिश्र–1, चन्द्रमौलि सुकुल–1, चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय–1, चन्द्रशेखर शास्त्री–2, पं. चन्द्रशेखर शुक्ल–3, चन्द्रिका प्रसाद–11, चम्पत स्वरूप गुप्त–2, चुन्नीलाल साहनी–3, चिरंजीलाल माथुर–13, डॉ. चुन्नीलाल बोस–2, छुट्टनलाल कपूर–1, छेदीलाल–1, छोटू भाई सुथार–3,

जगदीश–1, जगदीश नारायण श्रीवास्तव–1, जगदीश प्रसाद राजवंशी–9, जगदेव सिंह–4, जगतविहारी सेठ–5, जगदीश सहाय माथुर–2, जगपति चतुर्वेदी–36, जगबिहारी लाल–1, जगमोहन–8, जगमोहन चतुर्वेदी–1, जगमोहन लाल–1, जगमोहन लाल चतुर्वेदी–3, जगराज बिहारी माथुर–1, जगेश्वर दयाल वैश्य10, जटाशंकर मिश्र–2, जटा शंकर द्विवेदी–1, जयशंकर दुबे–3, जटाशंकर मिश्र–4, जनार्दन प्रसाद शुक्ल–6, जबरा सिंह–1, जयदेव शर्मा विद्यालंकार–53, जयनारायण–1, जवाहिर लाल गुप्त–1, जान मेनर–1, जान लैंग्डोन डेवीस–2, जितेन्द्र नाथ वाजपेयी–1, जी.एच. एस्टब्रुक्स–1, जी.एल. सिंह–2, जी.एस. पथक–4, जी.के.

गर्वे–4, डॉ. जी. घोष–1, जीवन प्रकाश–1, पं. जीवन लाल जीवन–1, जे.एन. तिवारी–1, जे.के. चौधरी–1, जोखू पाण्डेय–2, जोजेफ कामर–1, जोजेफ केमलर–1, ज्योति प्रसाद मिश्र निर्मल–6, ज्योति स्वरूप–1, ज्योति स्वरूप गुप्त–1, ज्योतीन्द्रभूषण–1, ज्ञान प्रकाशजैन–1, डॉ. ज्ञान प्रकाश दुबे–1, डॉ. ट्रवर आई. विलियम्स–1, ठाकुर दत्त मिश्र–1, ठाकुर प्रसाद शर्मा–1, डब्ल्यू बी.हेज–2, डाह्यालालह जानी–2, डी. पी.ठेक्कर–1, डॉ. डी.बी.देवधर–3, प्रो.डी.स्वरूप–1, तत्ववेत्ता–6, तरंगित–1, तांत्रिक–1, ताराचन्द पांडे–1 तेजशंकर कोचक–14, त्रिलोकीनाथ–2, डॉ. त्रिलोकीनाथ वर्मा–6, त्रिवेणी राम विशारद–2, त्रिवेणीराय शर्मा–7, त्रिवेणी लाल श्रीवास्तव–3, त्रिवेणी राय साहित्यरत्न–1,

दत्तात्रेय गोपाल भटंगे–1, दत्तात्रय श्रीधर जोग–3, दक्षिणारंजन भट्टाचार्य–2, दयानिधान–3, पं. दयाराम जुगडान–1, दलजीत सिंह वैद्य–2, दाऊ जी दीक्षित–1, दिलीपचन्द्र–1, दिव्यदर्शन पन्त–1, दीनानाथ शास्त्री चुलैट–5, दुकालू प्रसाद मिश्र–1, दुर्गादत्त जोशी–4, दुर्गा प्रसाद–7, दुर्गा प्रसाद करन–2, दुर्गा प्रसाद डबराल–, दुलह सिंह कोठारी–2, दूधनाथ सिंह–7, देवेन्द्र शर्मा–3, देवसहाय त्रिवेद–2, देशदीपक–1, दौलत सिंह कोठारी–3, द्वारका प्रसाद गुप्त–3

धरणीधर जोशी–1, धर्मनाथ प्रसाद कोहली–8, धर्मवीर–1, पं. धर्मानन्द शास्त्री–1, धीरेन्द्र नाथ चक्रवर्ती–3, धीरेन्द्र नाथ सिंह–2

प्रो. नगेन्द्र चन्द्र नाग–1, नत्थन लाल गुप्त–9, नन्द किशोर शर्मा–5, नन्द कुमार तिवारी–4, नन्द लाल–10, नरेन्द्र कुमार गर्ग–1, नरेन्द्र देव–3, नवनिद्धिराय–13, नवनिहाल सिंह माथुर–2, नवलकिशोर सिंह–1, नवीनानंद–2, नागकेशर–1, नाथ प्रसाद, नारायण गोस्वामी–1, नारायण दास–10, नारायण स्वरूप भार्गव–1., नारायण सिंह परिहार–1, नीरा–11, नेमिचन्द्र शास्त्री–1, नृपेन्द्रनाथ विश्वास–2, निहालकरण सेठी–33, डॉ. नीलरत्नधर–11

पंचानन माहेश्वरी–1, पटु–1, पाथक–6, पद्मदत्त रतूड़ी नेपाल–1, पद्माकर द्विवेदी–1, पर्सी बेक्टर–1, पांडुरंग खानखोजे–1, पारस नाथ सिंह–1, आयुर्वेदाचार्य पारसनाथ पाण्डेय–2, पालवेस्ट–1, पी. एन. चटर्जी–11, डॉ. पी.बी. गांगुली–1, पीतमलाल गुप्त–5, पुरुषोत्तम देव मुलतानी–7, डॉ. पुरुषोत्तम नारायण शर्मा–1, डॉ. पृथ्वीनाथ भार्गव–2, प्रकाश चन्द्र–1, प्रताप नारायण सिंह–1, प्रताप सिंह–20, प्रताप सिंह

नेगी–1, डॉ. प्रफुल्ल चंद्र राय–3, प्रभा अष्ठाना–7, प्रभाकर वि. देहादय–1, प्रभुदत्त गांधी–1, प्रहलाद नारायण गुप्त–1, प्रभुनारायण त्रिपाठी सुशील–1, प्रो. प्राणनाथ विद्यालंकार–2, प्रेमदुलारे श्रीवास्तव–5, प्रभुनारायण टंडन–1, प्रेमबहादुर–2, प्रेमबहादुर वर्मा–3, प्रेमवल्लभ जोशी–15

फणीन्द्रनाथ चटर्जी–1, फूलदेव सहाय वर्मा–27,

बेंकट लाल ओझा–1, बटिया–2, बटुक–1, बद्रीनारायण जोशी–11, बद्री नारायण प्रसाद–4, बद्रीनारायण मिश्र–1, वनमाली–8, बलदेव उपाध्याय–7, बलदेव प्रसाद–1, पं. बलदेव मिश्र–1, बलदेव सहाय निगम–2, बरट्रेंड रसेल–1, चौधरी बलभद्र जी,–1, बलभद्र प्रसाद गुप्ता–1, बलराम बहादुर भटनागर–1, प्रो. बसन्त लाल–1, बापू बाणकर–3, बाबा करतार सिंह–2, बाबूराम अवस्थी–11, बाबूराम इकबाल श्रीवास्तव–1, बाबू लाल गुप्त–1, बाबूराम पालीवाल–10, बालकृष्ण–1, बालकृष्ण अग्रवाल–1, बालकृष्ण अवस्थी–5, बालगोविन्द प्रसाद श्रीवास्तव–1, बी.ए.साउथगेट–1, बी.एन.सिन्हा–1, बी.एन.स्वरूप–1, डॉ. बी. एन.प्रसाद–1, बी.एस.निगम–1, बी.एल.जैन–1, बी.एस.निगम–1, बी.एस.प्यु–1, डॉ. बी.के.मिश्र–25, बेनीचरण–1, बेनीचरण मेहन्द्र–1, बैकुण्ठ बिहारी भाटिया–1, बैजनाथ जगदीश–1, ब्रजकिशोर मालवीय–3, ब्रजनन्दन प्रसाद घिल्डियाल–2, प्रो. ब्रजनन्दन सहाय–2, ब्रजनाथ दीक्षित–1, ब्रजबिहारी लाल गौड़–10, ब्रजबिहारी लाल दीक्षित–1., बृजभूषण लाल चतुर्वेदी–1, डॉ. ब्रजमोहन–10, प्रो. ब्रजराज–10, ब्रजराज किशोर–1, ब्रजलाल गोवर्द्धन यादव–1, ब्रजबल्लभ–3, ब्रजबल्लभ अग्रवाल–3, ब्रजवासी लाल–1, ब्रजविहारी लाल वर्मा–2, ब्रजेन्द्र प्रसाद पालीवाल–1, ब्रजेश–1, ब्रहमदत्त भार्गव–1, ब्रहमदत्त शर्मा आयुर्वेदालंकार–1, ब्रहमस्वरूप मेहरोत्रा–1

भगवती प्रसाद श्रीवास्तव–8, भगवती लाल श्रीवास्तव–4, भगवान दास तोशनीवाला–5, भगवान दास वर्मा–1, भागीरथ स्वामी–1, भवानी प्रसाद–1, भवानीभीख त्रिपाठी–1, भवानी शंकर याज्ञिक–1, भास्कर गोविन्द घाणेकर, भास्कर वीरेश्वर जोशी–14 भीमसेन–11, भुवन चन्द्र बोस–1 भ्रमर–1

मंगलानन्द–1, मकरन्द ढोंडियाल–3, मथुरा प्रसाद श्रीवास्तव–1, मदन गोपाल मिश्र–1, मदन मोहन–2, मदनलाल जयसवाल–2, मदनलाल जैन–1, मदनलाल वर्मा–1, मधुमंगल मिश्र–4, मधुसूदन प्रसाद श्रीवास्तव–2, मनव्वर हुसैन–1, मनोरंजन दास–1, मनोहरलाल–14, मनोहर लाल भार्गव–23, मनोहर शान्ताराम देसाई–2, महाबीर प्रसाद गुप्त–11, महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव–78, महिपति सिंह जैन–1, महेन्द्रनाथ अष्ठाना–2, महेन्द्रनाथ गुप्त–11, महेन्द्र प्रकाश–1, महेश चन्द्र–1, महेश चरण सिंह–11, महेश प्रसाद वाजपेयी–1, महेश प्रसाद भार्गव–1, माइकेल ग्रान्ट–1, डॉ. मानकरण शारदा–1, मास्टर–1, मुकुटनारायण दर–1, मुकुट बिहारी लाल दर–17, डॉ. मुकुन्द स्वरूप वर्मा–1, मुक्तेश्वर प्रसाद वर्मा–1, मुख्त्यार सिंह–13, मुरलीधर–9, मुरलीधर कोठियाल–1, मुरारीलाल भार्गव–1, मूलजी कानजी चावड़ा–1, प्रो. मेंहदी हुसैन नासिरी–11, मेरियन स्पेयर–1, मेरी के. नेफ–1, डॉ. मोतीचन्द–1, मोन लाल जौहरी–1, मोहन लाल शर्मा–1, मौलाना करामत हुसैन कुरैशी–12

यमुनादत्त तिवारी–3, यमुनादत्त वैष्णव–1, यशपाल वार्शनी–1, युधिष्ठिर भार्गव–15, योगेश चन्द्र स्वरूप–1, योगन्द्र पाल शास्त्री–1, योगेश नारायण तिवारी–2, योगेश्वर दयाल वैद्य–1

रघुनन्दन लाल भार्गव–1, रघुनाथ चिन्तामणि चतुर्वेदी–1, रघुनाथ प्रसाद द्विवेदी–1, रघुनाथ सहाय भार्गव–1, रघुबीर सिंह–1, पं. रघुवर दत्त पाण्डेय–2, रघुवर दयाल मिश्र–1, रघुवर प्रसाद द्विवेदी–11, डॉ. रघुवीर–1, रघुबीर प्रसाद माथुर–1, रघुवीर शरण अग्रवाल–5, रतन लाल–12, रत्नकुमारी–4, रमाकान्त त्रिपाठी–1, रमाशंकर सिंह–3, रमेश चन्द्र कपूर–6, रमेश चन्द्र गुप्त–1, रमेश चन्द्र चड्ढा–1, रमेश चन्द्र शर्मा–3, रमेश प्रसाद–18, रसायन–3, राजकुमार जैन–4, राजनारायण भटनागर–3, राजा सर रामपाल सिंह–1, डॉ. राजेन्द्रनाथ मिश्र–1, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद–1, राजेन्द्र बिहारी लाल–6, राजेश्वर दत्त शास्त्री–1, राधाकृष्ण–2, राधाकृष्ण कौशिक–1, राधाकृष्ण झा–11, राधानाथ टण्डन–21, डॉ. राधा पन्त–1, राधामोहन गोकुल–111, राधा रमण अग्रवाल–1, राधारमण याज्ञिक–1, राधेलाल मेहरोत्रा–4, रानी टंडन–4, राजकुमार जैन–1, रामकुमार सक्सेना–1, रामगोपाल गुप्त–2, रामचन्द्र तिवारी–8, राम जीवन त्रिपाठी–2, डॉ. रामचन्द्र भार्गव–17, रामचरण मेहरोत्रा–12, रामदास–1, रामदास गौड़–65, डॉ. रामदास तिवारी–3, रामदास

विद्यार्थी–2, डॉ. रामदेव मिश्र–1, डॉ. रामनाथ दुबे–1, रामनाथ श्रीवास्तव–1, रामप्यारे लाल अवस्थी–1, रामप्रसाद पाण्डेय–5, रामभरोसे लाल–1, राममूर्ति मेहरोत्रा–1, डॉ. रामरत्न वाजपेयी–4, रामलाल–11, रामविलास सिंह–4, डॉ. राम शरण दास–4, राम सरण दास सक्सेना–11, रामस्वरूप गुप्त–1, रामस्वरूप चतुर्वेदी–8, रामस्वरूप भार्गव–1, रामस्वरूप शर्मा–3, रामानन्द त्रिपाठी–6, रामेश वेदी (आर बेदी)–4., राय परमात्मा प्रसाद माथुर–11, राहुल सांकृत्यायन–1, लक्ष्मीदत्त तिवारी–1

लक्ष्मीनारायण गुप्त–1, लक्ष्मीनारायण माथुर–1, लक्ष्मीनारायण शर्मा–1, लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव–4, लक्ष्मण प्रसाद भार्गव–1, लक्ष्मणराव घोड़गांवकर–1, लक्ष्मण सिंह कोठारी–1, लक्ष्मणसिंह भाटिया–5, लज्जाशंकर झा–6, लल्ली प्रसाद पाण्डेय–2, लाला पार्वती नन्दन–1, प्रो. लाला भगवानदीन–4, लोकनाथ वाजपेयी–2,

वंशीधर लाल शर्मा–1, वासुदेव लाल–1, वासुदेव शरण अग्रवाल–1, वा.वि.भागवत–34, वागीश्वरी प्रसाद पाठक–1, विकासप्रिय–1, विनायक गणेश साठ–1, विज्ञानी–2, विदुर नारायण अग्निहोत्री–2, विद्याभास्कर जी–1, विद्यासागर विद्यालंकार–7, विपिन जी वैद्य–1, विपिन बिहारी लाल दीक्षित–1, विपिन बिहारी श्रीवास्तव–1, विमल कुमार मुकर्जी–2, विश्वकर्मा–1, विश्वम्भर नाथ द्विवेदी–1, विश्वनाथ गुप्त–2, विश्वनाथ सुत–1, विश्व प्रकाश–3, विश्म्भरनाथ श्रीवास्तव–1, विश्वेश्वर नाथ रेऊ–3, विश्वेश्वर नाथ शास्त्री–1, विश्वेश्वर प्रसाद–7, विष्णगणेश नामजोशी–4, विष्णुदत्त–2, विष्णुदत्त मिश्र तरंगी–1, विष्णुस्वरूप गुप्त–1, वी.एस.तम्भा–3, वीरेश चन्द्र पन्त–1, डॉ. वेदव्यास दत्त–1, वैद्य–1, वैद्यराज कल्याण सिंह–1, व्रजकिशोर मालवीय–1, व्रजबल्लभ–8,

शंकर राव जोशी–43, शंकर लाल जींदल–11, शकुन्तला गुप्त–1, शकुन्तला वर्मा–1, शतानन्द–1, प्रो. शतीशचन्द्र देव–1, शांतिराम मुकर्जी–2, शान्ति स्वरूप जायसवाल–1, डॉ. शान्ति स्वरूप भटनागर–2, शान्ती गुहा–1, शारदा प्रसाद–1, शारदा सेवक–1, शालग्राम वर्मा–37, पं. शालग्राम शास्त्री–1, शिखिभूषण दत्त–3, शिरोमणि सिंह चौहान–23, शिवकुमार शुक्ल–1, डॉ. शिवकंठ पाण्डेय–1, शिवचरण सत्यवादी–1, प्रो. शिवदास मुकर्जी–2, शिव नारायण द्विवेदी–1, शिव प्रसाद श्रीवास्तव–1, शिवशरण वर्मा–1, शीतला प्रसाद तिवारी–8, श्याम बिहारी लाल कपूर–1, श्याम बिहारी लाल श्रीवास्तव–1, श्यामचन्द्र नेगी–1, श्याम नारायण कपूर–13, श्याम बिहारी शिवपुरी–1, श्याम लाल कुटरियार–4, श्याम सुन्दर–1, श्याम सुन्दर वर्मा–2, श्यामाचरण–1, श्रीकृष्ण श्रीवास्तव–1, श्रीचरण वर्मा–2, श्रीधर उपाध्याय–1, श्रीधर पाठक–1, श्रीप्रकाश–3, डॉ. श्रीरंजन–4, श्रीरामजी अग्रवाल–2,

सकर्षण–4, सच्चिदानन्द सहाय–1, सत्यनारायण–1, सत्यनारायण अवस्थी–1, डॉ. सत्यप्रकाश–152, सत्यभक्त जी–9, सत्यव्रत शर्मा–1, सत्यानन्द जोशी–1, सत्येन्द्र नाथ–1, सत्येश्वर घोष–4, सतीन्द्र नाथ भिषगरत्न–1, सतीशचन्द्र घोषाल–11, सतीशचन्द्र सक्सेना–4, सद्‌गुरु शरण, निगम–1, डा. सद्‌गोपाल–1, सुमन–5, सुरेन्द्र दत्त–1, पं. सुरेश चन्द्र अवस्थी–1, सुशील कुमार, अग्रवाल–1, सन्त प्रसाद टण्डन–19, सम्पूर्णानन्द–2, सर आर्थर एडिंगटन–1, सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन–1, सरदार लाल सिंह–1, सरयू प्रसाद मिश्र–1, सभाकान्त झा शास्त्री–1, सर मैलकम कैंपबेल–1, सहदेव प्रसाद, पाठक–1, सतकौडी दत्त–1, सालिगराम भार्गव–32, सिद्धरस्त–10, सियाराम चतुर्वेदी–1, सी डब्लू रौज–1, डा. सु.स. मुश्रान–1, डा. सी. पी. स्नो–1, सुखदेव प्रसाद खंडेलवाल–1, सुदक्षिणा देवी–1, सुदर्शन देव–1, सुदर्शनदेव कुलश्रेष्ठ–1, सुदर्शनाचार्य शास्त्री–1, सुधांशु कुमार जैन–2, सुरेश शरण अग्रवाल–9, सुशीला आगा–1, सुशीला देवी गुप्त–1, सुन्दर लाल–4, सुन्दर लाल निगम–1, प्रो. सूरजभान गर्ग–2, ठाकुर सूरज भान सिंह–1, सूर्यदेव नारायण सिंह–1, सूर्य नारायण–1, सूर्य प्रसाद सरयू पारीण–3, स्वरूप नारायणतिवारी स्वामी–2, स्वामी सुदर्शनाचार्य शास्त्री–2, स्वामी हरिशरणानन्द–44

हजारी प्रसाद द्विवेदी–1, हजारी लाल जडिया–1, हनुमान प्रसाद शर्मा–1, प्रो. हरनारायण बाथम–4, हर प्रसाद चौधरी–2, कविराज हरस्वरूप शर्मा–1, हरिकिशोर–2, हरि कुमार वर्मा–1, हरिकुमार प्रसाद वर्मा–8, हरिकृष्ण–1, डॉ. हरिकेशव सेन–1, हरिनारायण शर्मा–1, हरिनारायण शास्त्री–1, हरिश्चन्द्र–5, हरिश्चन्द्र गुप्त–9, हरिश्चन्द्र रायजादा–1, हरिवंश जी–4, हरिवंशराय वर्मा–1, हरि प्रसाद शर्मा–1, हरिशरण नारायण नन्द–1, हरीलाल निगम–1, हीरालाल शास्त्री–1, हृदय नारायण महेरोत्र–1, हेलन एस्ट–1,

गंगा

अखौरी रामनारायण
प्रो. अक्षयवट लाल
अनन्त गोपाल झिंगरन–2
प्रो. डॉ. एन.एन. गोडबोले
उपाध्याय महेन्द्र कुमार वेद शिरोमणि
कविराज काशीनाथ सेन
प्रो. कृष्ण कुमार माथुर
गंगा प्रसाद
पं. गार्गेय नरोत्तम शास्त्री
ज्योतिःस्वरूप भटनागर
दशरथलाल श्रीवास्तव
नाथूराम शुक्ल
निरंजन लाल शर्मा–2
परमेश्वर दयाल
पीताम्बर झा
डॉ. बदरीनाथ प्रसाद
प्रो. बलवन्त सिंह
बालगोविन्द प्रसाद श्रीवास्तव
बाबू रमेश प्रसाद
ब्रजमोहन वर्मा
ब्रह्मानन्द सिंह–4
महाराज कुमार रणविजय बहादुर सिंह
युधिष्ठिर भार्गव
रजनीकान्त शास्त्री–2
डॉ. अच्युतानन्द सिंह
अभरेन्द्र नारायण
आत्माराम
डॉ. ए.बी.मिश्र
पं. कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर
कालीचरण झा चतुर्वेदोपाध्याय
कृष्णकुमार लाल सक्सेना
पं. गणेशदत्त शर्मा गौड़ इन्द्र–2
डॉ. गोरख प्रसाद–2
दत्तात्रेय कुलकर्णी
पं. दिगम्बरनाथ पाठक
नन्द लाल सिंह
पं. नाथूराम शुक्ल
पंचम सिंह
पाण्डेय जगन्नाथ प्रसाद सिंह
फूलदेव सहाय वर्मा–6
बदरीनाथ पाठक
डॉ. बाबा करतार सिंह
बाबू आत्मानन्द सिंह
बाबू ब्रह्मानन्द सिंह
बाबू साधू शरण
ब्रजविहारी लाल गौड
भृगुनाथ नारायण सिंह
प्रो. महादेव लाल सराफ–2
रविप्रताप सिंह श्रीनेत
राजकुमारी मिश्रा "रमा"
राम गोपाल सक्सेना
रामदास गौड–3
रामरक्षपाल संघी
पं. रुद्रदेव शास्त्री
ललित किशोर सिंह
वटेकृष्ण दास
विश्वनाथ सहाय
वृन्दावन दास
शारदा प्रसाद सिंह–2
पं. शिवचन्द्र
श्याम नारायण कपूर–3
सदगोपाल
साहित्याचार्य "मग"–2
पं. हनुमान प्रसाद शर्मा वैद्यशास्त्री–2
राजकृष्ण गुप्त
पं. रामनिवास शर्मा–2
(त्रिपिटकाचार्य) राहुल सांकृत्यायन
लक्ष्मण प्रसाद वर्मा
ललिता प्रसाद नैथानी
पं. वासुदेव उपाध्याय
विश्वेश्वर दयालु
पं. शम्भुनाथ झा
(ठाकुर) शिरोमणि सिंह चौहान
शिवनाथ प्रसाद
पं. सहदेव प्रसाद पाठक
(बाबू) सुरेन्द्रनाथ विद्यालंकार

चाँद (8)

डॉ. आर.एस. अग्रवाल

गोपाल गंगाधर भावे
रजनीकान्त शास्त्री
वृजेन्द्र प्रसाद पालीवाल
पण्डिता कौशल्या देवी
मेरी केलब
राधाकृष्ण जी गुप्त
हुक्मादेवी जी छात्र

नागरी प्रचारिणी पत्रिका (8)

कविराज अत्रिदेव गुप्त
बाबू गोपाल प्रसाद
पं. लोकनाथ शर्मा
सर आलिवर लाज
बाबू कृष्णबलदेव शर्मा
बाबू दुर्गाप्रसाद
डॉ. ब्रजमोहन
हेमन्त कुमारी देवी

मर्यादा

ईश्वरदास मारवाड़ी
कृष्ण सीताराम पेंढरकर–2
कालिदास मणिक
डॉ. के.सी. औड़ी
गिरिजादत्त शुक्ल
चण्डी प्रसाद
जगन्नाथ खन्ना
जगमोहन वर्मा
जे.सी. ग्रेहम ह्वाइट
दयानन्द चतुर्वेदी
दशरथ बलवन्त जादव
नारायण प्रसाद
पशुपति
ब्रह्मस्वरूप
महेन्द्र पाल सिंह
मुनीन्द्र दत्त त्रिपाठी
प्रो. रतन चन्द्र रावत
रमेश प्रसाद वर्मा
लक्ष्मीशंकर अवस्थी
शिव प्रसाद गुप्त
शोभाचन्द्र जम्मड़
सिद्धनाथ माधव
सैम हिगिनबाटम
हेमन्त कुमारी देवी
उमादेवी नेहरू
कार्यी
किशोरी लाल गोस्वामी–2
केशवचन्द्र चौधरी
गौरचरण गोस्वामी–4
जगद्विहारी सेठ
जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल
जीतन सिंह
ताराचरण अग्निहोत्री
दयाशंकर दूबे
द्वारिकानाथ मैत्र
नन्दकिशोर शर्मा–2
डॉ. बी.के. मिश्र
महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव–4
मुख्त्यार सिंह
रघुनाथ प्रसाद
रत्नसिंह रावत
रायबहादुर शर्मा
शारदाचरण पाण्डेय
शीतला प्रसाद तिवारी
सालिगराम टण्डन
सूर्यकरण पारीक
डॉ. हरिश्चन्द्र
त्रिलोकी नाथ वर्मा–2

माधुरी

अवध उपाध्याय
अवधेशपति वर्मा
कर्मनारायण बाहल
गोपीनाथ वैद्य
चन्द्रमौलि सुकुल–3
त्रिलोकीनाथ वर्मा
दशरथ लाल श्रीवास्तव
नवल किशोर सिंह
नाथूराम शुक्ल
निरंजन लाल शर्मा
भूपनारायण दीक्षित–2

महेशचरण सिंह
योगेन्द्रनाथ
शिवमंगल पाण्डेय
रामदास गौड
शालग्राम शास्त्री
श्यामाचरण
श्रीपाल सिंह–2
संतराम–3
हरनारायण बाथम–5
अवध विहारी लाल–2
कमलादत्त त्रिपाठी
गुलाब
गोवर्द्धन लाल–4
जगद्विहारी सेठ–3
दशरथ लाल
नलिनीमोहन सान्याल–2
नवल विहारी मिश्र
नारायण दुलीचंद व्यास
बाण
मधुसूदन दीक्षित वैद्य
मिश्रबंधु
रमाशंकर मिश्र
रमेश प्रसाद गुप्त
श्यामनारायण कपूर
श्रीराम शर्मा–2
सत्यप्रकाश

विश्पवाणी

ए. एजेन्सीमित्तम
रायबहादुर ज्ञान शंकर पण्ड्या
प्रो. जूलियन हक्सले

विशाल भारत

डॉ. अजीज दूल्हा खाँ
डॉ. अमरनाथ शुक्ल
अमीचन्द शर्मा
अशोक
आनन्दराव जोशी
इ.कौ.
कु. इन्द्रामोहिनी सिंह
ईश्वरी प्रसाद
एम.पी. केदार
(डॉ.) एस.एम.एस. चारी
ओम प्रकाश शर्मा
कमला सदगोपाल
कविराज ओउम प्रकाश
कालिका प्रसाद मोहिले
कृष्ण कुमार तिवारी
कृष्ण मोहन विद्यालंकार
के.सी. जोशी
गंगा सागर मिश्र–2
छगनलाल मेहता
जी. तिखोव
अनुकूल चन्द्र दे
अमर नारायण अग्रवाल
अमृतलाल नायक
आत्मानन्द
आर.एन. मुट्टू
इन्द्रदेव आर्य
श्री ईर्षण
उपेन्द्र नाथ "अश्क"
एस.एन. सिंह
ओ.वाई. श्मिदत
कन्हाई लाल साहा
करण सिंह गो. चुडासमा
कामता प्रसाद सागरीय
किशोरलाल घ. मशरूवाला
कृष्ण गोपाल सक्सेना
कृष्णानन्द गुप्त
केदारनाथ चट्टोपाध्याय
गौरी शंकर ओझा
जगन्नाथ प्रसाद मिश्र
जे.टी.सी. राबर्टसन
प्रो. जे.बी.एस. हाल्डेन
धर्मपाल विद्यालंकार
नन्दलाल शर्मा
निरंजन–2
दुलहसिंह कोठारी–2
देवनाथ उपाध्याय
पदुमलाल पुन्नालाल
पांडेय जगन्नाथ प्रसाद सिंह

पीर मुहम्मद "मूनिस"
प्रभुदयाल बगड़िया विद्यार्थी
बनारसी दास चतुर्वेदी–2
बी.एन. सोनी
ब्रजमोहन वर्मा–3
ब्रह्मदत्त
भांनुदेसाई–2
महामाया प्रसाद सिंह
महेश चन्द्र अग्रवाल–2
माधुरी निगम
यशदेव शल्य
रघुवीर शरण शर्मा
रमेश चन्द्र नैथानी
डॉ. रवि किशोर नशीने
राजकिशोर सिंह
राधाकृष्ण कौशिक
रामनारायण कपूर
ज्योति निरंजन शास्त्री
धर्मवीर–2
नरेन्द्र
त्रिलोकचन्द्र मजूपुरिया
दूधनाथ सिंह–2
देवेन्द्र नाथ मित्र
बख्शी
पी.एस. राव
प्रकाश सक्सेना
प्राण जीवन पाठक
बाबू राम वर्मा
बी.के. कुमार
ब्रजेन गांगुली
ब्रह्मानन्द
मनोहर दास चतुर्वेदी
महेन्द्र सिंह रन्धावा
माधव विनायक किबे
मूर्तिवासन
यशवन्त सिंह नेगी
रमेश चन्द्र चौधरी
रमेश शंकर चौधरी
रवि प्रताप सिंह श्रीनेत–2
राजाराम
राम जीवन शर्मा

रामनारायण मिश्र
रामवृत प्रसाद सिन्हा
रामस्वरूप व्यास
राहुल सांकृत्यायन
विट्ठलदास मोदी
विष्णुदेव पोद्दार
वैदेही वल्लभ त्रिपाठी
शंकरदेव विद्यालंकार
शंकर सहाय सक्सेना
शिव चन्द्र
श्याम नारायण कपूर–2
श्यामाचरण दुबे–2
श्री केदार
श्रीराम शर्मा–14
सतीशचन्द्र दास गुप्त
सर हर्बर्ट बार्कर
सी.एच. पार
डॉ. सुधीन्द्र बोस
डॉ. सुरेन्द्र नाथ गुप्त–2
सुरेन्द्र सिंह
कुँवर सुरेश सिंह–1.
सोहन लाल पचीसिया
हरदेव सहाय
हरिहर प्रसाद गुप्त
हरेश चन्द्र अग्रवाल
होशिला प्रसाद तिवारी
राम सेवक सहगल
रामेश बेदी–3
लोकेश चन्द्र
विद्याभास्कर शुक्ल
(डॉ.) वेरियर ऐल्बिन
वैद्य रणजित राय–3
डॉ. शंकर लाल गुप्त–1.
शिव कुमार शर्मा
श्यामलाल कुटरियार
श्याम लाल पाण्डेय
श्यामाचरण वर्मा
श्री केवल
सच्चिदानन्द
सद्गोपाल
सहदेव प्रसाद पण्डा

सी.एन. आचार्य
कु. सुप्ति सिंह
डॉ. सुरेन्द्र प्रसाद–2
कुँवर सुरेन्द्र सिंह "इन्द्र"–4
सेठ अचल सिंह
हजारी प्रसाद द्विवेदी
हरिश्चन्द्र निगम
हरिरि प्रसाद मिश्र–2
हिम्मत सिंह नवलखा

वीणा

अमरनारायण अग्रवाल
एस.जी. पाटील
कुलदीप 'सिन्धु'
के.पी. भट्टाचार्य
प्रो. केशव अनन्त पटवर्धन–2
पं. गंगा प्रसाद शुक्ल
गणेशदत्त शर्मा गौड "इन्द्र"
गोपाल चैतन्य देव जी–7
पं. गोपीवल्लभ उपाध्याय
चन्द्र कुमार वर्मा
तुलसीराम गुप्त–2
नगेन्द्र नारायण–4
नंदराम जी तुलसीराज जी
प्रकाश नारायण
प्राणनाथ–4
डॉ. बी.पी. पाल
ब्रजबहादुर अवस्थी–2
भगवती प्रसाद श्रीवास्तव
भँवरलाल भट्ट "मधुप"
सौ. मनोरमा "रमा"
महेन्द्र सिंह रन्धावा
मुकुट विहारी वर्मा
राधाकृष्ण गुप्त
रामकुमार सिंह
रामचन्द्र मोरेश्वर करकरे
रामनारायण त्रिवेदी
एन.एल. दत्त
कुलदीप चन्द्र चड्ढा–2
कृष्ण सहाय वर्मा–2
केदारनाथ अग्निहोत्री
ख्यालीराम द्विवेदी
गजानन नाईक
गुलाबराय
गोपाल दास झलानी
डॉ. गोरख प्रसाद–2
प्रो. घासीराम जैन–2
जफर आलम
दलेल सिंह छत्रसिंह
नन्दकिशोर जी शास्त्री
नारायणदास भाटिया
प्रयाग नारायण संगम
बाबूराव जोशी–2
व्रजकिशोर वर्मा "श्याम"
बाँके बिहारी श्रीवास्तव
भगवानदास तोशनीवाल
भूपेन्द्रनारायण अवस्थी
प्रो. महेन्द्र कुमार सिंह
माधवराव–विनायकराव किबे
रतन लाल–2
राधारमण अग्रवाल
रामचन्द्र गौड़
रामदास गौड़–3
रामेश्वर सहाय अग्रवाल
लक्ष्मीधर वाजपेयी
लालजी राम शुक्ल–2
वासुदेव शरण अग्रवाल
शंकर सहाय जी वर्मा
शचीन्द्रनाथ चक्रवर्ती–3
श्यामचरण प्रधान
श्रीषचन्द्र कौशल
डॉ. सत्यप्रकाश–3
समुद्र तरंग
डॉ. सीताराम शिवराम खरे
सुरेश सिंह–2
डॉ. हरिशंकर चतुर्वेदी–2
लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी–7
वल्लभदास सुगंधी
शंकरराव जोशी–7
प्रो. शंकर सहाय सक्सेना
प्रो. शिवदत्त ज्ञानी

श्याम नारायण कपूर–3
श्रीचन्द्र पाण्डेय
सदाशिवराव ठाकुर
डॉ. सरजू प्रसाद तिवारी
डॉ. सुरेन्द्र प्रसाद
सूर्यनारायण जोशी
हरीशंकर कपूर

सरस्वती

अनन्दधर दीवान
अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार
आदित्य नारायण सिंह शर्मा
ईश्वरदास मारवाड़ी
उमाराव सिंह गुप्त
ए.सी. बनर्जी
एस. बहादुर
काशीदत्त पाँडे
कृष्ण कुमार माथुर
कृष्णराम झा
के.एन. गाडगिल
अम्बिका प्रसाद पाण्डेय–2
आत्मानन्द मिश्र
ईश्वरदास जालान
पं. उदयनारायण वाजपेयी–3
उमरावसिंह विद्यार्थी
एल.सी. वर्मन
कर्मनारायण
कुमार योधासिंह मेहता
कृष्ण चन्द्र गुप्त
कृष्णानन्द जोशी
केदारनाथ
केशवदेव–2
कोसलेन्द्र प्रताप साही
गंगा प्रसाद गौड़ "नाहर"
गवीश
पं. गिरिजादत्त वाजपेयी–4
गुरदयाल सिंह
गोपाल दामोदर तामसकर–3
गोपालदास झालानी
गोपाल स्वरूप भार्गव–2
गोरख प्रसाद
चन्द्रमौलि सुकुल–2
चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी
छबीलदास सामन्त
जगन्नाथ खन्ना–23
जनार्दन भट्ट
(बाबू) जीतन सिंह–2
ठाकुर प्रसाद–2
दयाशंकर झा
दिनेश प्रसाद वर्मा
दीनानाथ
दुर्गाप्रसाद रघुनाथ प्रसाद खेवरिया
पं. देवी प्रसाद शुक्ल
नन्द कुमार सिंह
नलिनीमोहन सान्याल–3
नवल किशोर सिंह
निरन्जनदास बीर
पर्य्यालोचक
केशवदेव शर्मा
गंगा प्रसाद
गंगा शंकर पचौली–2
गिरधर शर्मा
(पं) गिरिजा प्रसाद द्विवेदी–5
गुलजारी लाल चतुर्वेदी
गोपाल दास
गोपाल स्वरूप
गोमती प्रसाद अग्निहोत्री
पं. चन्द्रधर गुलेरी–4
पं. चन्द्रशेखर वाजपेयी
चम्पाराम मिश्र
जगद्विहारी सेठ
जगन्नाथ प्रसाद वर्मा
जयवन्त राम
जोखू पाण्डेय
दयावान सिंह "चन्द्र"
दयाशंकर दुबे
दीनदयालु श्रीवास्तव
(बाबु) दुर्गा प्रसाद
दुर्गाप्रसाद सिंह श्रीवास्तव
धर्मवीर
नलिनी सेन

नन्द किशोर–2
नारायण प्रसाद अरोड़ा
पदमनाथ पाएडेय
पाण्डुरंग खानखोजे
पारसनाथ सिंह
प्रसादीलाल झा
पं. वनमाली प्रसाद शुक्ल–11
बालकृष्ण शर्मा
व्रजमोहन लाल वर्मा
भोलादत्त पाँडे
मल्हर एन. काले
महेन्द्रलाल गर्ग–6
(बाबू) माणिकचन्द्र जैन–2
मुकन्दी लाल
डॉ. मुरलीधर
मोहनलाल महतो
(बाबू) यशोदानन्दन अखौरी
रघुवर दयाल गुप्त–2
राजराजेश्वर नाथ
रामदीन मिश्र
रामदीन पाठक
रामनारायण शर्मा–7
रामरक्षपाल संघी
रामावतार शर्मा–3
रामदेवी प्रसाद–2
पं. लल्ली प्रसाद पाँडे
लक्ष्मीकान्त केसरी
लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव–2
लाला मुंशीलाल
विनायक गणेश साठे
विष्णुदत्त मिश्र "तरंगी"
प्रमथनाथ दत्त
बदरीनाथ
प्रो. बालकृष्ण–2
व्रजमोहन गुप्त
भगवानदत्त रूपवाल
मन्नन द्विवेदी गजपुरी
महावीर प्रसाद द्विवेदी–4
महेशचरण सिंह–2
माधव सप्रे–4
मुनिलाल स्वामी
मैथिलीशरण गुप्त
मोहब्बत सिंह दोनवार
रघुपति सहाय
रघुवर प्रसाद द्विवेदी
रामजी लाल शर्मा
रामदास गौड़–2
रामदुलारी दुबे
रामनारायण सिंह
रामस्वरूप गुप्त
रामेश्वर प्रसाद गुप्त
लज्जाशंकर झा–2
लक्ष्मण गोविन्द आठले
लक्ष्मीधर वाजपेयी–2
लाला कन्नोमल–3
विद्याधर पाण्डेय
विनायक नं. मेहता
विष्णुदास कोछड़
विष्णु नारायण सेन
(मु.) शंकटाप्रसाद
शंकरराव जोशी
शारदा प्रसाद
शिव गोपाल मिश्र
पं. श्रीनारायण मिश्र
श्रीचरणवर्मा–2
श्रीलाल शालग्राम पण्ड्या
सत्यदेव–3
सरयू नारायण त्रिपाठी–7
सिद्धहस्त
सुरेन्द्र नाथ सिंह
पं. सूर्यनारायण दीक्षित–6
हंसपाल
हरिहर प्रसाद मिश्र
हीरावल्लभ जोशी
वीरसेन सिंह
शंकर सहाय सक्सेना
शम्भुनाथ त्रिपाठी
शिरोमणि सिंह चौहान
शुकदेव प्रसाद तिवारी
श्रीकण्ठ पाठक
श्रीयुत प्रकाश
श्यामसुन्दर जोशी

सन्तराम
सहदेव सिंह वर्मा
सिंह वर्मा
सुशील कुमार
सेंट निहाल सिंह–2
हरनारायण बाथम
हीरालाल दुबे–2

सुधा

आनंदराव जोशी
आर. चरण
कृष्णदेव शर्मा
केदार
गणेशदत्त "इन्द्र" आगर
गुरुनाथ शर्मा
चक्रधर "हंस" नौटियाल
दुर्गादत्त गंगाधर ओझा
त्रिपुरारि शरण श्रीवास्तव
बाण
मंगलदेव शर्मा–2
महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव
रघुबर प्रसाद द्विवेदी
रमेश प्रसाद
राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह
रामदास गौड़
वैद्यराज
शिवदत्त ज्ञानी
श्रीराम शर्मा
सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला"–3
हनुमान शर्मा
हरिवंश जी
डॉ आर.एस. अग्रवाल–2
एम.पी. केदार–2
कृष्णानंद गुप्त
केदारनाथ गुप्त
पं. गया प्रसाद शास्त्री
चंद्रमौलि सुकुल–2
चतुरसेन जी शास्त्री–2
डॉ. दुर्गाशंकर नागर–3
प्रतापसिंह
बुद्धिसागर वर्मा
मोहनलाल बड़जात्या
रमाशंकर जी मिश्र
पं. रवीन्द्र शास्त्री "कविभूषण"
डॉ. राम दयाल कपूर
वसंतलाल
शंकरलाल गुप्त
श्यामाचरण
सत्यप्रकाश–2
सूर्यनारायण व्यास
हरप्रकाश कुमार वर्मा

हिन्दुस्तानी

अमरनाथ झा
ताराचंद
देव सहाय त्रिवेदी
फूलदेव सहाय वर्मा
बाबूराम सक्सेना
विश्वेश्वर प्रसाद
सत्यजीवन वर्मा
कालिदास कपूर
दयाकृष्ण माथुर
प्राणनाथ विद्यालंकार–2
बनारसी प्रसाद सक्सेना
श्याम नारायण कपूर

हिन्दी प्रदीप

एल.एन. नागर
श्याम सुन्दर दास
डॉ. जी.के. व्यास

लेखिकाओं की सूची

गंगा

राजकुमारी मिश्रा 'रमा'

नागरी प्रचारिणी पत्रिका

हेमन्त कुमारी देवी

विशाल भारत

इन्द्रमोहिनी सिंह
कमला सदगोपाल
माधुरी निगम
कु. सुप्ति सिंह

वीणा

सौ. मनोरमा 'रमा'

चाँद

पण्डिता कौशल्या देवी
मेरी केलब
हुक्मादेवी

मर्यादा

उमादेवी नेहरू
हेमन्त कुमारी देवी

विज्ञान

कमला सदगोपाल
डॉ. केलब
नीरा
मोरयन स्पेयर
मैरी के. नेफ
रत्न कुमारी
रानी टण्डन
राधा पन्त
सुमन
सुशीला देवी गुप्त
शकुन्तला गुप्त
शकुन्तला वर्मा
शान्ती गुहा

सरस्वती

राम दुलारी दुबे